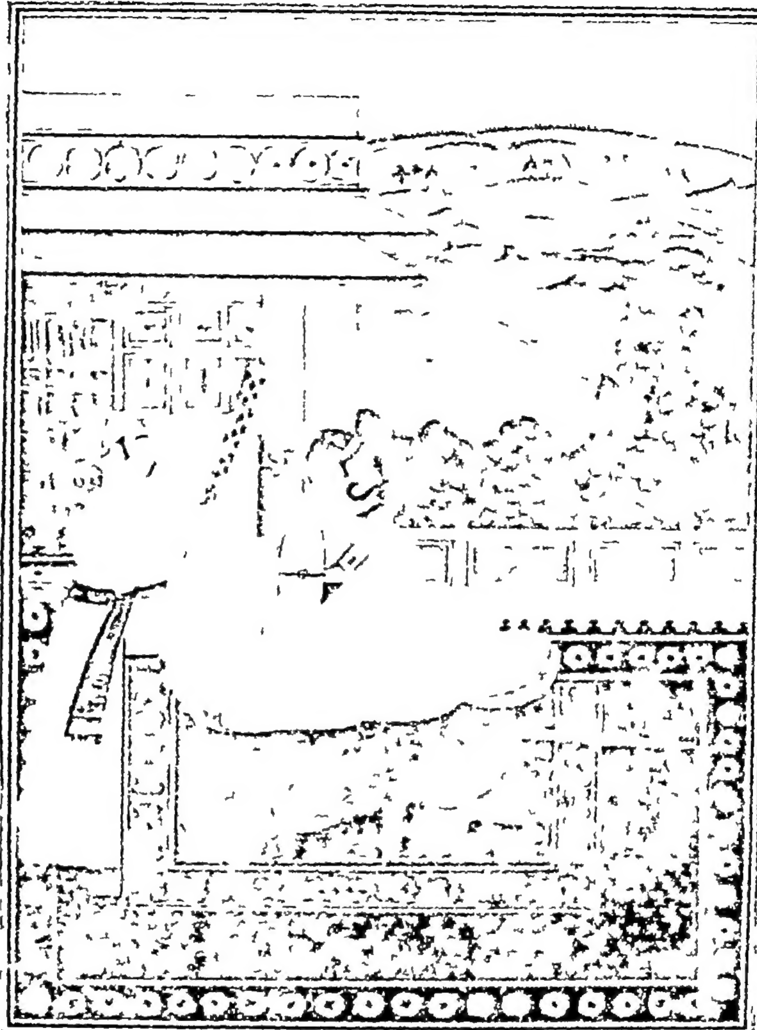
# प्राचीन अथवा मुसलमान-पूर्व दिल्ली ।



अपने प्रिय और पूज्य महाराज पञ्चम जार्ज के साम्राज्यारोहण के परम वैभवशाली दरबार के कारण इस समय दिल्ली शहर की ओर सब का ध्यान लगा है । उसमें भी, महाराज ने, आगे के लिए यह निश्चित करके, कि अब भारत की राजधानी कलकत्ता नहीं दिल्ली है, स्वयं अपने मुख से उक्त बात प्रकट भी कर दी है यही नहीं किन्तु हाल ही में इस नवीन राजधानी की नींव भी आपने अपने यशस्वी हाथ से रख दी है । इस कारण दिल्ली नगर के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में स्वाभाविक ही लोगों की जिज्ञासा बढ़ गई है । दिल्ली का प्राचीन इतिहास बहुत ही मनोरञ्जक है—और वह ऐसा है जो इस शहर के भावी उत्कर्ष के लिए शोभादायी होगा । यह कहने में कोई प्रत्यवाय नहीं कि दिल्ली के समान प्राचीन नगर भारतवर्ष में—नहीं, नहीं सारी पृथ्वी पर भी—नहीं मिलेगा । दिल्ली नगर से प्राचीनता में प्रतिस्पर्धा करनेवाले 'मिस्र, ' बाबिलोन, ' ' निनेवी ' इत्यादि प्राचीन नगरों का इस समय अस्तित्व भी नहीं है और उनके स्थान बड़े बड़े ढूहों की टेकड़ियों से भरे पड़े हैं । ये टेकड़ियाँ खोदकर पुराण-इतिहास-संशोधक विद्वान् लोग उनसे छुपी हुई ईंटों के अथवा खुदे हुए पत्थरों के टुकड़े बाहर निकाल रहे हैं । यूरप का सब से पुराना शहर रोम अभी अस्तित्व में है, पर वह प्राचीनता में दिल्ली की बराबरी नहीं कर सकता। क्योंकि उसकी स्थापना ईसवी सन् से ७०० वर्ष पूर्व के लगभग हुई । इस हिसाब से उसकी अवस्था अभी २६०० वर्ष के ही लगभग है । वर्तमान समय में लन्दन नगर सारे संसार में बड़ा है। यह ज़ूलियस सीज़र से बहुत पुराना नहीं है। अतएव उसकी उम्र लगभग २००० वर्ष की है और दिल्ली नगर के सामने वह एक छोटा सा अर्भक है । इस प्रकार हमारा दिल्ली नगर सब जगत में पुराना ठहरता है । यही नहीं किन्तु इस स्थान में बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा राज्य करते रहे हैं और सम्पत्ति तथा कलाकौशल की दृष्टि से भी वह जगत् के किसी प्रचण्ड और बलसम्पन्न साम्राज्य के अधिष्ठान के योग्य ही रहा है—और है । ईसा के लगभग ३२४० वर्ष पूर्व से लेकर आज तक अर्थात् लगभग ५०५१ वर्ष में भिन्न भिन्न बलवान् सम्राटों ने जो अनेक भिन्न भिन्न बसतियाँ इस स्थान में बसाईं उनके पर्त के पर्त एक दूसरी पर जमे हुए हैं, और इस प्रकार दिल्ली नगर की बस्ती करीब ४५ वर्गमील की विस्तृत भूमि पर फैली हुई है । यह बस्ती यमुना नदी के दक्षिण अर्थात् दाहने किनारे पर बसी हुई है और जान पड़ता है कि दक्षिण की ओर से उत्तर की ओर वह फैल रही है। पाण्डवों का प्राचीन नगर इन्द्रप्रस्थ इसका मूल है, उस पर क्रमशः विक्रम, अनंगपाल, भारत का अन्तिम आर्य सार्वभौम, शौर्यवीर्य का पुतला पृथ्वीराज चौहान गुलाम वंश का पहला मुसलमान बादशाह कुतुबुद्दीन और इसके बाद फीरोजशाह तुगलक की बस्तियों के और सम्राज्यों के चिन्ह देख पड़ रहे हैं । इन सब के ऊपर का पर्त, अर्थात मुगल बादशाह शाहजहाँ का बसाया हुआ शाहजहाँबाद, अथवा अर्वाचीन दिल्ली नगर, अपनी दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, जुम्मा मसजिद, आदि दर्शकों को चकित करनेवाली इमारतों के साथ, उत्तर की ओर सुशोभित है । इसीके उत्तर की ओर अब आगे महाराज जार्ज का नवीन स्थापित किया हुआ, बहुधा ' जार्जाबाद ' या ' जार्जनगर ' नाम से प्रसिद्ध होनेवाला पाश्चात्य शिल्पकला के उत्कर्ष से मुसलमानी शहर का भी नीचा दिखानेवाला नवीन पर्त भी अभी जमेगा । यह निर्विवाद है। इस प्रकार के भाग्यशाली और अत्यन्त प्राचीन नगर की स्थापना किसने की, अर्वाचीन इतिहास के पहले यहाँ कौन कौन पराक्रमी राजा हुए, आदि बात जानने के लिए स्वाभाविक ही प्रत्येक पुरुष को उत्कट इच्छा होती है। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास अन्धकारमय अवश्य है पर इस अन्धकार में भी विशाल प्रतिभावाले दो कवियों के लिख रखे हुए दो अजरामर ग्रन्थ हम पर ज़रा सा प्रकाश डाल रहे हैं । महर्षि व्यास के महाभारत और राष्ट्रीय कवि चन्दबरदाई के पृथ्वीराज-रायसा में दिल्ली का प्राचीन इतिहास हमें बहुत सा मिलता है । वही संक्षिप्त रीति से, आज हम चित्रमय जगत के प्रेमी पाठकों को सुनाते हैं ।



दिल्लीपति महाराज पृथ्वीराज ।



[illegible] ( दिल्ली )

प्राचीनतम इन्द्रप्रस्थ।

जान पड़ता है कि पहले पहल आर्यावर्त की भरत भू ( भारत

वर्ष) नाम से प्रसिद्ध करनेवाला चक्रवर्ती राजा भरत और पुरूरवा, नहुष, ययाति, पुरु, दुष्यन्त इत्यादि सोमवंशीय राजा, पंजाब में आकर राज्य करते थे। उनके नाम वेद के मंत्रभाग में प्रसंगानुसार आये हैं और भरत राजा भारती का नाम बहुत बार आया है। इससे जान पड़ता है कि ये राजा मंत्रकाल में हुए थे। भरतवंश का कुरु नामक राजा पंजाब के इसी ओर, सरस्वती, यमुना और गंगा नामक पवित्र नदियों के मध्यस्थ किये हुए प्रदेश में पहले पहल बसकर राज्य करने लगा। इस कारण इस प्रदेश का कुरुक्षेत्र अथवा कुरुजांगल नाम पड़ा। जांगल संस्कृत शब्द है। यह शब्द प्रायः जलहीन देश का वाचक है। इस प्रदेश की जमीन सूखी (Dry) रही है। कुरुजांगल का जलवायु अच्छा था, जमीन उपजाऊ थी, इस कारण कुरु राज्य के लोग धन के और सम्पन्न थे। [illegible] कुरु वंश की राजधानी था और आश्रय-स्थान था, इसी कारण कुरु वंश का नाम वेद के ब्राह्मण भाग में बारम्बार आया है। कुरु वंश के हस्ति राजा ने हस्तिनापुर नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। हस्तिनापुर, दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ से आगे है। यह स्थान बहुत प्राचीन जान पड़ता है। हस्तिनापुर गंगा के पश्चिम किनारे पर दिल्ली से करीब ६० कोस ईशान की ओर बसा था। यह नगर गंगा की बाढ़ से प्राचीन काल में ही जनमेजय के बाद बह गया और नामशेष हो गया। अस्तु। हस्तिनापुर में कौरव राजा राज्य करते थे। उसी वंश के दो राजा धृतराष्ट्र और पाण्डु भाई भाई थे। उनके लड़कों में, अर्थात् धार्तराष्ट्रों और पाण्डवों में बचपन ही से झगड़े होने लगे। आपस में वैर बढ़ गया। इस कारण धृतराष्ट्र ने राज्य के दो भाग करके पाण्डवों को यमुना के पश्चिम ओर का भाग दिया। तब पाण्डवों ने यमुना के पश्चिमी किनारे पर इन्द्रप्रस्थ नामक नगर स्थापित किया। यही वर्तमान दिल्ली नगर का मूल है। महाराज युधिष्ठिर आदि पाँच प्रतापशाली भाइयों ने न्याय और पराक्रम से राज्य का उत्कर्ष किया और उसे भारत में [illegible] के [illegible] बहुत समय तक नहीं लगी।

दिल्ली का पहला राज्याभिषेक—([illegible])

खाण्डवप्रस्थ आदि कहकर ही इन्द्रप्रस्थ की स्थापना हुई थी। नगर के पश्चिम ओर बहुत बड़ा जंगल था। उसमें नाग जाति के जंगली लोग रहते थे। उनके द्वारा नगर और राज्य को बहुत हानि पहुँचती थी। इस कारण पाण्डवों ने श्रीकृष्ण की सहायता से यह खाण्डववन जला डाला। तब नाग लोग भी उसीके साथ जल गये। कुछ बचे बचाये इधर उधर भाग गये। तब से नाग और पाण्डवों में वैर हो गया। तक्षक ने पाण्डववंशी परीक्षित को मारकर उस वैर का बदला लिया। परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने सर्पसत्र करके नागों से फिर अपना बदला लिया। यह ऐतिहासिक सत्य है। यह कल्पना बहुत युक्तिपूर्ण नहीं जान पड़ती कि खाण्डववन में असुर नाम के राक्षस रहते थे। क्योंकि असुर लोग राक्षसों से भिन्न हैं। मयासुर जो इस खाण्डवदाह से बचा था, वह नागों का पक्षपाती होगा। पाण्डवों ने उसे जीवदान दिया। इस उपकार के बदले में उसने पाण्डवों के लिए इन्द्रप्रस्थ में एक दिव्य सभा, अर्थात् मुसलमानी शब्द में दीवाने-खास, की रचना कर दी। अस्तु। भारत में एक जगह यह उल्लेख है कि उत्तर-गो-ग्रहण के ३२ वर्ष पहले, खाण्डवदहन के समय, अर्जुन को गाण्डीव धनुष मिला, और इन्द्रप्रस्थ की स्थापना खाण्डवदहन के साथ आठ वर्ष पहले हुई। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इन्द्रप्रस्थ की स्थापना भारतीय युद्ध के ३६।४० वर्ष पूर्व हुई। भारती युद्ध का काल ईसा के ३१०२ वर्ष पहले माना जाता है, अतएव कह सकते हैं कि इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली की स्थापना ईस्वी सन के ३१४० वर्ष पूर्व हुई। भारतीय युद्ध का समय कोई कोई बहुत ही इधर खींच लाते हैं, तथापि ईस्वी सन के १४०० वर्ष पहले से कम प्राचीनता कोई नहीं मानते। इस हिसाब से भी दिल्ली की स्थापना का काल ईस्वी सन से १४४० वर्ष पूर्व ठहरता है और यह समय रोम शहर की स्थापना के ७०० वर्ष पूर्व का है।

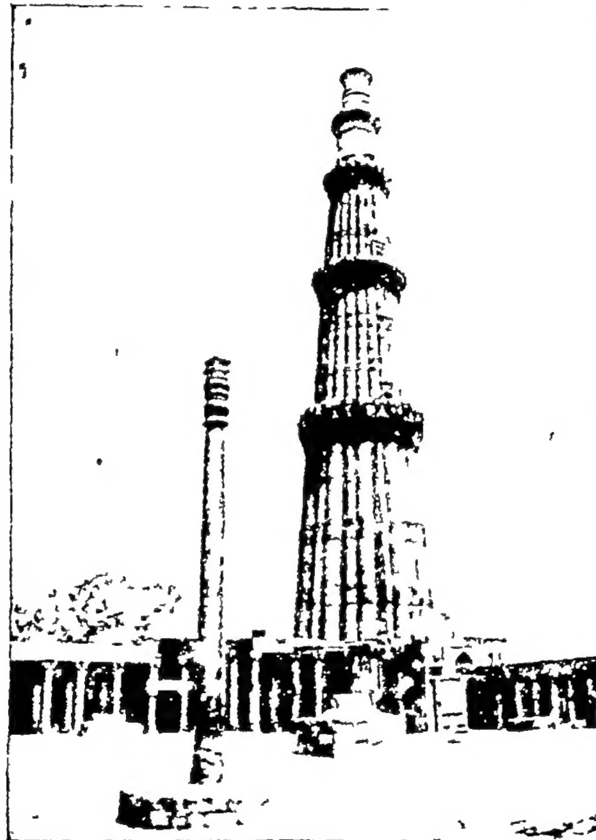
## दिल्ली का पहला साम्राज्यारोहणोत्सव ।

पांडवों के पराक्रम और न्याय से उनके राज्य की अच्छी समृद्धि हो गई। इन्द्रप्रस्थ राजधानी की बड़ी उन्नति हुई और मयसभा के निर्माण हो जाने से उसमें अलौकिक शोभा आगई। इतना होने पर महाराज युधिष्ठिर को स्वाभाविक ही यह इच्छा हुई कि अब राजसूय यज्ञ, अर्थात भरतखण्ड के चक्रवर्तित्व का निदर्शक यज्ञ, करना चाहिए। इस विषय में जब उन्होंने श्रीकृष्ण से सलाह ली तब धर्मराज से उन्होंने कहा कि 'राजा जरासन्ध तुम्हारी माडलिकता स्वीकार न करेगा।" कृष्ण अर्जुन, और भीम इन वीरों ने मगध देश में जाकर जिस तरह जरासन्ध का नाश किया उसका वृत्तान्त महाभारत में विस्तृतरूप से दिया ही है। इस प्रकार चक्रवर्तित्व के मार्ग का कांटा निकल जाने पर यादवों और कौरवों ने प्रेम और भय से पांडवों का माडलिकत्व स्वीकार कर लिया। इसके बाद महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। भारतवर्ष के सब राजा हाल ही दिल्ली-दरबार की तरह, सार्वभौम महाराज युधिष्ठिर की चरण धूलि मस्तक पर धारण करने के लिए इन्द्रप्रस्थ में जमा हुए। मय-सभा में दरबार हुआ। सब ने नम्र होकर महाराज को नमस्कार किया। नजराने दिये। धर्मराज ने भी सब का बहुमान किया। महाराज युधिष्ठिर के आज्ञाधारक बन्धुओं ने और प्रेमबद्ध द्वारका वासी माधव ने अत्यन्त परिश्रम करके, सार्वभौमत्व के योग्य, सब राजाओं और अतिथियों का उत्तम प्रकार से आदर-सन्मान किया। महाभारत के राजसूय यज्ञ का वर्णन पढ़ते समय, अब से, इस दरबार की याद आये बिना न रहेगी। भीम-अर्जुन और नकुल-सहदेव ने जो परिश्रम किये थे उन्हें पढ़कर सर जॉन हिवेट-प्रभृति उच्च और बुद्धिमान सरकारी अफसरों का स्मरण होगा और राजसूय यज्ञ में स्वयं अपने हस्तकमलों से ब्राह्मणों के जूठे पत्तल उठानेवाले माधव की लीनता और अविश्रान्त श्रम का वर्णन पढ़ते हुए वर्तमान माधव महाराज सेंधिया, की भी अवश्य ही याद आवेगी। हां उस समय माधव को अग्रमान मिलने के विषय में जैसा मतभेद हुआ था वैसा इस समय कोई मतभेद नहीं था-और नहीं है, यह बात विशेष हुज्ञ पाठकों के ध्यान में सहज ही आ जायगी। अस्तु।

पांडवों का भाग्य, सम्पत्ति और तेज प्रत्यक्ष देखकर दुर्योधन के मन में मत्सर उत्पन्न हुआ, इस लिए उसने कपट-द्यूत से पांडवों का राज्य हरण किया और उन्हें वन को भेज दिया। तब इन्द्रप्रस्थ सार्वभौम-राजधानी-पद से च्युत होकर माडलिक नगर हो गया। परन्तु हस्तिनापुर में दुर्योधन को साम्राज्याधिकार नहीं मिला। वह राजसूय यज्ञ करना चाहता था, परन्तु कई लोगों ने उससे कहा कि पांडव वन में हैं, उन्हें जीते बिना अथवा उनके स्वीकार किये बिना तुम्हें राजसूय यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। इस कारण दुर्योधन राजसूय यज्ञ नहीं कर सका। वनवास के बाद दुर्योधन ने पांडवों को आधा राज्य और उनकी इन्द्रप्रस्थ राजधानी नहीं दी, इसी कारण भारतीय युद्ध का भयंकर प्रसंग आ गया। यह सब पाठकों को मालूम ही है। युद्ध के बाद पांडव इन्द्रप्रस्थ में नहीं रहे किन्तु अपने वंश कुरु की प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर ही उन्होंने अपनी राजधानी कायम रखी और इन्द्रप्रस्थ शाखा-नगर बना रहा। अश्वमेध यज्ञ पांडवों ने हस्तिनापुर में किया, इन्द्रप्रस्थ में नहीं। द्वारका में जब यादव लोग आपस में लड़भिड़कर नाश हो गये तब पांडवों ने श्रीकृष्ण के पनती वज्र को इन्द्रप्रस्थ दिया और अपने नाती परीक्षित को हस्तिनापुर में राज्य पर स्थापित करके स्वयं महा-प्रस्थान को चले गये।

### प्राचीनतर दिल्ली ।

उपर्युक्त वृत्तान्त महाभारत से जाना जाता है। इसके बाद का पौराणिक काल का इन्द्रप्रस्थ-सम्बन्धी वृत्तान्त नहीं जाना जाता। वहां वज्र का यादव वंश कितने काल तक राज्य करता था और उसके बाद वहां का राज्य किस वंश में गया, आदि, आदि, बातें जानने के लिए कोई साधन नहीं है। जान पड़ता है कि इन्द्रप्रस्थ नगर बहुत वर्ष तक बहुधा शाखा-नगर ही रहा होगा और वहां के राजा शायद किसी सम्राट के माडलिक रहे होंगे। राजपूतों की दन्तकथाओं से ऐसा कुछ पता लगता है कि ईसवी सन् के करीब ५७ वर्ष पूर्व महाराज विक्रमादित्य ने इन्द्रप्रस्थ को फिर साम्राज्य का ऐश्वर्य दिया। जिस प्रकार युधिष्ठिर के साम्राज्यवैभव का वर्णन उनके समकालीन व्यासजी ने किया है उसी प्रकार विक्रम का वर्णन करनेवाला यदि कोई उनका समकालीन ग्रन्थकार मिलता तो बहुत अच्छा हुआ होता, तथापि इसमें कोई शंका नहीं कि विक्रम ने अपने पराक्रम से भारत में साम्राज्य अवश्य स्थापित किया और दिल्ली को फिर साम्राज्य-राजधानी का वैभव दिया। पाश्चात्य विद्वान् विक्रम का अस्तित्व नहीं मानते पर भारतवर्षीय लोग कभी उनका अस्तित्व माने बिना न रहेंगे। राजपूतों की दन्तकथाएं विश्वसनीय हैं और वे निदान सन् १००० ई० के लगभग तक पहुंचती हैं। राजपूतों का अभिमानी इतिहासकार टाड राजतरंगिणी आदि राजपूतों के दसवें शतक के अन्त और तेरहवें शतक के चन्द कवि के पृथ्वीराज रायसा के आधार से, लिखता है कि पांडवों के १९७५ वर्ष बाद विक्रम ने फिर दिल्ली में राज्य किया और यह विक्रम पांडववंश का है, तथा उसके वर्तमान वंशज तुअर राजपूत हैं। इस प्रमाण के अतिरिक्त सब से बड़ा और अटल प्रमाण यह है कि महाराज विक्रमादित्य का सम्वत् आज भी सारे भारत में माना जाता है। अलबरूनी नामक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ने सन् १००० ई० के करीब जो दन्तकथाएं लिख रखी हैं उनसे जान पड़ता है कि मुलतान से कुछ दूर पर कारूर नामक ग्राम के समीप विक्रम ने शकों का पराभव करके भारत का उद्धार किया था। अतएव यह मानने में कोई हर्ज नहीं कि इसी विक्रम ने दिल्ली में पुनः साम्राज्य-स्थापना की थी।



लोहस्तम्भ और कुतुबमीनार ।

### प्राचीन दिल्ली ।

ईसवी सन् के ५७ वर्ष पहले से लेकर स० ई० के आठवें शतक तक दिल्ली की श्रेष्ठता फिर हो गई। इसके बाद ऐतिहासिक दृष्टि से, अत्यन्त विश्वसनीय एक समय आया, जिसमें दिल्ली फिर उन्नतावस्था को प्राप्त हुई-अर्थात पांडववंशीय तुअर राजपूतों ने फिर दिल्ली में राज्य स्थापन किया। सन् ७९२ ई० में तुअरवंशीय राजा अनंगपाल ने फिर दिल्ली को पूर्वपद पर पहुंचाया। ये तुअर राजपूत अत्यन्त पराक्रमी थे और वे अपने को पांडववंशी ही मानते हैं, और राजपूतों के इतिहासकर्ता ने यह उनका अभिमान स्वीकार किया है। कर्नल टाड उनके इस वंशोत्पत्ति के विषय में कहता है— "Universal consent admits it, and the fact is as well established as most others of a historical nature of such a distant period, nor can any dynasty or family of Europe produce evidence as strong as the Tuar even to a much less remote antiquity" अस्तु। अनंगपाल के वंश ने सन् ११६४ तक दिल्ली में राज्य किया। जिस समय महमूद गजनवी ने भारत पर चढ़ाइयां कीं उस समय दिल्ली का राज्य वैभव में था। महमूद के विरुद्ध राजपूतों ने जो सलाह की थी उसमें दिल्ली के तुअर प्रमुख थे। तुअर वंश के अन्तिम राजा का भी अनंगपाल ही नाम था। उसके पुत्र नहीं था, इस लिए उसने अपनी पुत्री के पुत्र अजमेर के राजा पृथ्वीराज चौहान को दिल्ली की गद्दी पर बैठाया। महाराज पृथ्वीराज राजपूतों की वीरश्री के साक्षात मूर्ति ही थे। उनके समय में दिल्ली फिर साम्राज्य-राजधानी के पद पर पहुंच गई। पांडवों का पराक्रम और यश जैसे श्रीव्यासजी ने अजरामर कर रक्खा है वैसे ही महाराज पृथ्वीराज का पराक्रम और यश चन्दबरदायी ने अजरामर कर रक्खा है। प्राचीनतम क्षत्रियों के वंश और वंशधर जैसे महाभारत में दर्ज हैं उसी प्रकार वर्तमान सब राजपूत घरानों के प्राचीन वंशधर रायसा कवि चन्द के रायसे में दर्ज हैं।

पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी का अनेक बार पराभव किया। इतनाही नहीं, किन्तु उस अपने 'भावी काल' को उन्होंने एक बार जीवदान भी दिया। महाराज पृथ्वीराज के पास एक से एक बढ़िया योद्धा थे और वे स्वयं अर्जुन के समान अद्वितीय धनुर्धर थे। चन्द कवि ने लिखा है कि उनके चलाये हुए बाण में सात तवे फोड़कर बाहर निकल जाने की शक्ति थी वे शब्दवेधी भी थे। कन्नौज के राठौर (राष्ट्रकूट), चित्तौर के गेहलोट (वर्तमान उदयपुरवालों के पूर्वज) और गुजरात-पाटन के सोलंकी उनकी बराबरी के राजा थे। पर कन्नौज के आत्मघाती राठौर जयचन्द ने पृथ्वीराज के साथ स्पर्धा करना शुरू किया। यही नहीं बल्कि पाडवों के समान राजसूय यज्ञ की आकांक्षा रखकर सब राजाओं को बुलाया और अपनी सुन्दर कन्या संयोगिता का स्वयंवर भी रचा। उसने इस राजदरबार में पृथ्वीराज को नहीं बुलाया। राजसूय में छोटे से लेकर बड़े तक सब काम राजा लोग करते हैं। इस निमित्त उसने अपने शत्रु राजा पृथ्वीराज का पुतला बनाकर उसे दरबार का चोबदार मुकर्रर किया। इस प्रकार जयचन्द ने वैराग्नि भड़काकर उसमें स्वदेश की आहुति दी। संयोगिता ने पहले ही से मन में पृथ्वीराज को वर लिया था। इस लिए उसने स्वयंवर में सब राजाओं को छोड़कर पृथ्वीराज की मूर्ति के ही गले में जयमाला डाल दी। वीर-शिरोमणि पृथ्वीराज गुप्त वेष से वहीं मौजूद थे। उन्होंने तुरन्त ही संयोगिता का हरण किया। इस प्रयत्न में पाँच दिन तक कन्नौज में तथा उसके बाहर राठौर और चौहानों में घनघोर संग्राम हुआ। दोनों ओर के हजारों प्रसिद्ध वीर रण में पतन हुए। यह सब वृत्तान्त चन्द कवि ने विलक्षण प्रभावशाली भाषा के द्वारा अपने रासे में वर्णन किया है। अस्तु। पृथ्वीराज ने संयोगिता प्राप्त की पर दिल्ली का सामर्थ्य गंवा दिया। जयचन्द ने नीचतावश शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी को फिर दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिए उभाड़ा। शहाबुद्दीन ने दिल्ली पर धावा किया। जिस समय राज्य पर यह संकट आया उस समय पृथ्वीराज अपने राजमहल में सुन्दरी संयोगिता के संयोग में मग्न थे। अतएव उस संकट का समाचार वहाँ तक पहुँचाने की किसीकी हिम्मत न होती थी। अन्त में एक वीर ने साहस करके, पृथ्वीराज की आज्ञा के विरुद्ध, राजमहल में प्रवेश किया और राजा को जागृत किया। उस समय उस वीरपत्नी ने अपने हाथ से पृथ्वीराज को शस्त्र दिये और युद्ध पर जाने के लिए आनन्दपूर्वक आज्ञा दी। पृथ्वीराज के चलते समय उसने प्रतिज्ञा की कि यदि आप शत्रुओं का नाश करके जीवित लौटेंगे तो मैं आनन्द से आप का स्वागत करूँगी और यदि रणभूमि में पतन हो जायँगे तो आपके शव के साथ अथवा यदि शव नहीं मिलेगा तो राजचिन्हों के साथ, सती हो जाऊँगी। यह प्रतिज्ञा मानो उसने भविष्य जान कर ही की थी। उस समय में पृथ्वीराज की बची हुई सेना असीम धीरता के साथ लड़ी परन्तु दैव की प्रतिकूलता से उसका पराभव हुआ और धोखा देकर शत्रुओं ने पृथ्वीराज का रणांगण में वध किया। संयोगिता ने तुरन्त ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने पति के साथ गमन किया। पृथ्वीराज ने सन् ११६४ से ११९२ तक राज्य करके दिल्ली को साम्राज्यवैभव तक पहुँचाया। पृथ्वीराज के साथही आर्यों का साम्राज्य-सूर्य अस्त हो गया और आर्यों का स्वातन्त्र्यरूप सुखदायक प्रकाश उसीके साथ दासत्वरूप अन्धकार में परिणत हो गया। आपस में वैमनस्य मचाकर पापी जयचन्द ने अपनी प्यारी मातृभूमि को न जाने कब तक के लिए दासत्वरूप शृंखला में जकड़ दिया। पर उसके इस पातक का फल भी उसे शीघ्रही मिला। महाराज पृथ्वीराज के साथ ही स्वदेश की स्वतन्त्रता नष्ट करने के लिए जिस परकीय मुहम्मद गोरी को उसने उभाड़ा था उसी मुहम्मद गोरी ने, मानो जयचन्द को उसके स्वदेशद्रोहरूपी पाप का प्रायश्चित्त देने ही के लिए सन ११९३ ई० में स्वयं उसकी राजधानी कन्नौज पर भी हमला कर दिया। जयचन्द देशद्रोह के पातक से पहले ही नेजान हो चुका था, मुहम्मद गोरी के सामने वह नहीं टिक सका और पराभूत होकर अपने प्राण बचाने के लिए गंगा नदी तैर करके भगने लगा पर बीच ही में गंगाजी ने उसे अपने उदर में सदा के लिए विलीन कर दिया! इस प्रकार उसका दुःखमय अन्त हुआ। अस्तु।

सारांश, ई० स० के ३१८० वर्ष पूर्व पाण्डवों ने दिल्ली नगर की स्थापना की और वहाँ राजसूय नामक सार्वभौम यज्ञ किया। उन्हींके वंशज महाराज विक्रमादित्य ने ई० स० के ५७ वर्ष पूर्व फिर वहीं साम्राज्य-स्थापना की और अपना सम्वत चलाया। वहीं फिर अर्वाचीन ऐतिहासिक काल में पाण्डववंशी तुँअर घराने ने क्रमशः सं० ७९३ में राज्य स्थापित किया और महाराज पृथ्वीराज ने सन ११६४ में फिर इस नगर को साम्राज्य-वैभव पर चढ़ाया। इसके बाद आर्यों का साम्राज्य मुसल्मानों ने छीन लिया। इस बात की यादगार के लिए सन १२०० में कुतुबमीनार की स्थापना हुई। इसके ५०० वर्ष बाद मुसल्मानों की साम्राज्य-सत्ता कुछ दिन मराठों के हाथ में आकर फिर भाग्यशाली और पराक्रमी एक पाश्चात्य जाति में गई। तब से १०० वर्ष हुए, आज सन १९११ के अन्त में परम वैभवशाली जार्ज महाराज ने स्वयं इस पवित्र भूमि में आकर दरबार किया—अथवा कहिए राजसूय यज्ञ ही किया—और दिल्ली को फिर साम्राज्य-राजधानी-पद पर पहुँचाया। यह साम्राज्य सब प्रकार के सद्गुणों पर खड़ा किया गया है, अतएव परमेश्वरकृपा से चिरकाल तक टिकेगा।

पुराना किला।

* यह लेख रावबहादुर बाबू चिन्तामणि विनायक वैद्य, एम० ए० एल० एल० बी० के मराठी लेख के आधार पर लिखा गया।

---

## धर्म-राज्याभिषेक

( युग दृश्य )

( ५ )

गगनस्पर्शि दानों की अद्भुत एक ओर है धूम बड़ी,
एक ओर उस रण के कारण सर्वनाश की आग पड़ी।
एक ओर है फुल्ल कुसुम सा आमोदित यह अनुपम देश,
एक ओर उस फुल्ल कुसुम में विकट कीट का हुआ प्रवेश॥

( ६ )

एक ओर जातीय पताका विश्वतुल्य छवि पाती है,
एकच्छत्र सु राज्य हमारा ऊँचे चढ़ दिखलाती है।
एक ओर नि शङ्क भाव से दल-बल-सहित विजय के अर्थ
अन्य देशियों के आने पर होंगे अब क्या यत्न समर्थ ?

( ७ )

एक ओर फूलों की वर्षा, मानो खेल रहे तारे,
पड़े अनन्त चिताओं के हैं एक ओर वे अंगारे।
एक ओर तो मातृभूमि पर मधु धारा सी ढलती है,
एक ओर उस मृतवत्सा की छाती धक धक जलती है॥

( ८ )

भिन्न भिन्न भावों का ऐसा होगा आविर्भाव कहाँ ?
एक ओर गौरव गरिमा है एक ओर है पतन यहाँ !
एक ओर बल का विकास है एक ओर है उसका ह्रास,
एक ओर उल्लास-हास है एक ओर है श्वासोच्छ्वास !

( ९ )

समझ नहीं पड़ता है कुछ भी उधर जायँ या रहें इधर
तुम्हीं कहो अब किधर चलेंगे, देखोगे हे मित्र ! किधर ?
एक ओर हो रहा यश का जयजयकार अपार अनन्त,
एक ओर कातर कण्ठों का हाहाकार करे हा हन्त !

( १० )

भारत की दोनों आँखों की भिन्न भिन्न है आज छटा,
एक आँख प्रेमाश्रु पूर्ण है, एक आँख शोकाश्रु रटा।
आओ तब रोना आँखों से देखें हम भी रोना ओर,
एक आँख से अपनी उन्नति एक आँख से अवनति घोर॥

श्रीमैथिली-शरण गुप्त।

## शिवराज्याभिषेक।



शके १५९६ ई० में अर्थात् सन १६७४ ई० में राज्यारोहणोत्सव होने के बाद शिवाजी महाराज ने वैदिक, शास्त्री, पंडित, इत्यादि शिष्ट ब्राह्मणों का सन्मान किया। उसी अवसर के अनुसार उपर्युक्त चित्र तैयार किया गया है। महाराज को गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक की पदवी दी थी। भारतवर्ष की द्विजातियों के शिखा सूत्र मुसलमानी राज्य में छत्रपति शिवाजी ने ही रक्खे और स्वराज्य में गोवध बन्द किया। तात्पर्य आर्य-संस्कृति की सरक्षा और पुरस्करण महाराज ने किया। भूषण कवि ने कहा ही है —

" शिवाजी न होते तो सुनति होति सब की।"

## पुराने रामपंचायतन की नई आवृत्ति।

# सम्राट पञ्चम जार्ज।

इस समय के महाराज जार्ज के शरीर में तेजी और चपलता के गुण हैं। इन गुणों के साथ ही आनन्दी और शान्तिप्रिय होने में भी आपकी प्रख्याति है। नाविक भी आप अद्वितीय हैं।

राजकुमार जार्ज के बचपन का बहुतसा समय माता-पिता की ही संगति में व्यतीत हुआ। बिल्कुल सादे तौर पर आपका पालन-पोषण किया गया। इनकी शिक्षा पर माता की अच्छी दृष्टि थी। इन्हें परदेश की कई भाषाएं सिखाने का अच्छा प्रयत्न किया गया। राजपुत्र जार्ज अपने बड़े भाई के सहवास में आनन्द और प्रेम से रहते थे। इनकी माता महारानी अलेक्ज़ेण्ड्रा डेनमार्क की राजकन्या हैं। अर्थात् राजपुत्र जार्ज का ननिहाल डेनमार्क है। राजपुत्र जार्ज अपने भाई के साथ प्रायः सब समय बिताया करते थे। वहां [illegible] और उनके मित्रों के साथ उनका समय बड़े आनन्द में व्यतीत होता।



महाराज का बिलकुल बालपन का चित्र

आपको बचपन ही से समुद्रयात्रा का बड़ी प्रीति है। पहले आपके स्वर्गीय बड़े भाई राज्याधिकारी थे इस लिए आपने अपना प्यारा व्यवसाय प्रारम्भ कर लिया। [illegible] वर्ष की अवस्था में आप ब्रिटानिया नामक जहाज पर नाविक शिक्षा सम्पादन करने के लिए भेजे गए। कुछ दिन बाद [illegible] नामक जहाज के द्वारा आपने [illegible] जलप्रवास किया। ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश [illegible] इजिप्त, पालेस्टाइन इत्यादि कई देशों का आपने प्रवास किया। इस प्रवास में आपके बड़े भाई भी आपके साथ थे। इन दोनों राजपुत्रों के [illegible] नामक [illegible] थे। प्रवास में दोनों राजपुत्र अपनी अपनी दिनचर्या लिखते जाते थे। वे दिनचर्या [illegible] पुस्तकाकार प्रकाशित हो गई है।

[illegible] सन १८८[illegible] [illegible]

पर नियत किये गये। तब से लेकर १८९१ तक भिन्न भिन्न जहाजों पर आपकी उन्नति होती रही और नौ-सेनाधिकार में आपको कमाण्डर की पदवी मिली। नौ-सेनाधिकारी की हैसियत से आपने अच्छी लोकप्रियता सम्पादन कर ली। सन १९०१ में आपको 'रियर ऐडमिरल' की पदवी मिली। १९०७ में आप 'एडमिरल' हुए और १९०८ में आप एक नौ-सेना के अधिपति बन गये।

इसके पहले अर्थात् सन १८९२ में ही, आपके बड़े भाई स्वर्गवासी हुए। इस लिए आपही राज्य के अधिकारी हुए और आपका जीवनक्रम बदल गया। तब आपको अपनी समुद्रपर्यटन की इच्छा दाबनी पड़ी और राजा होने पर आनेवाली जवाबदारी की ओर आपका चित्त आकर्षित हुआ।



दो वर्ष की अवस्था से लेकर छः वर्ष की अवस्था तक भिन्न भिन्न अवसरों पर लिये हुए महाराज के चित्र।

सन १८९३ में राजकुमारी मेरी के साथ राजकुमार जार्ज का विवाह हुआ। यह प्रसंग राजगृह के लिए अत्यन्त आनन्ददायक था। [illegible] राजप्रिय होने के कारण [illegible] उत्साह उमड़ आया। [illegible] बड़ी धूमधाम से यह विवाह सम्पन्न हुआ।

विवाह के बाद इस दम्पति ने एक वर्ष तक [illegible] आयर्लेण्ड का प्रवास किया। इस प्रवास में [illegible] लोगों ने इस भावी राजा रानी का बहुत ही उत्साह-पूर्ण स्वागत किया। १९०७ में फिर एक बार आयर्लेण्ड का प्रवास किया।

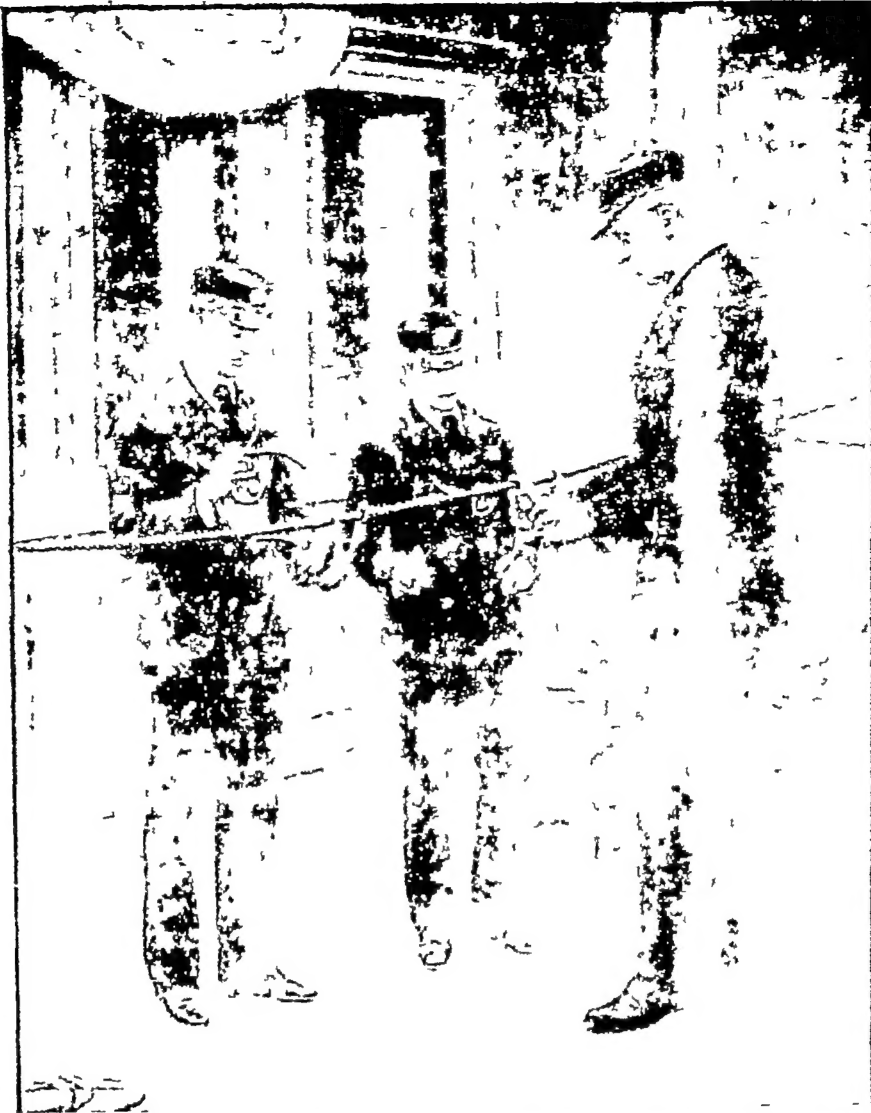
इसके बाद [illegible] उपनिवेशों की यात्रा [illegible] के लिए [illegible] तैयार हुए। इस लिए सन १९०१ में उन्होंने 'ओफिर' नामक जहाज के द्वारा [illegible] यात्रा प्रारम्भ की। इस प्रवास में [illegible] इस प्रवास से [illegible]

६. राजमाता महारानी अलेक्ज़ेण्ड्रा प्रिन्स जार्ज (वर्तमान महाराज) और उनके बड़े भाई प्रिन्स अल्बर्ट (स्वर्गीय) को घोड़े पर टहलाती हैं।

उपनिवेशों की एकता विशेष दृढ़ हुई। कानडा में क्वीबेक के विजय के स्मरणार्थ जो उत्सव हुआ उसमें भी आप उपस्थित थे। इसके बाद सन् १९०५ में अँगरेजी साम्राज्य के सब से महत्व के भाग अर्थात् अपने भारतवर्ष देश में बहुत दिनों तक आपने प्रवास किया और यहां के लोगों को अपने दर्शन का लाभ दिया।

हमारे महाराज बड़े विद्याप्रिय हैं, आप अच्छे वक्ता हैं। आपके व्याख्यान संक्षिप्त, विचारपूर्ण और स्पष्ट होते हैं। उनमें आपके स्वभाव की सरलता भी प्रकट होती है। आप बड़े मार्मिक हैं। पुस्तकावलोकन के आप बड़े प्रेमी हैं। प्रत्येक बात समझ लेने की आपको बड़ी उत्सुकता रहती है। अपना कर्तव्य करने में आप बड़े दक्ष हैं। जिस बात को आप स्वीकार करते हैं उसको पूर्ण करने में आपकी ओर से कभी त्रुटि नहीं होती। आप बड़े शान्त, धीर, उदार और कृपालु हैं।

हाथ में लिया हुआ काम जिस प्रकार आप पूरा करके ही छोड़ते हैं उसी प्रकार जिस खेल को आप शुरू करते हैं उसे भी अन्त तक पहुँचा देते हैं। यह आपका नियम है। आप अपनी धुन के बड़े पक्के हैं। उदाहरणार्थ

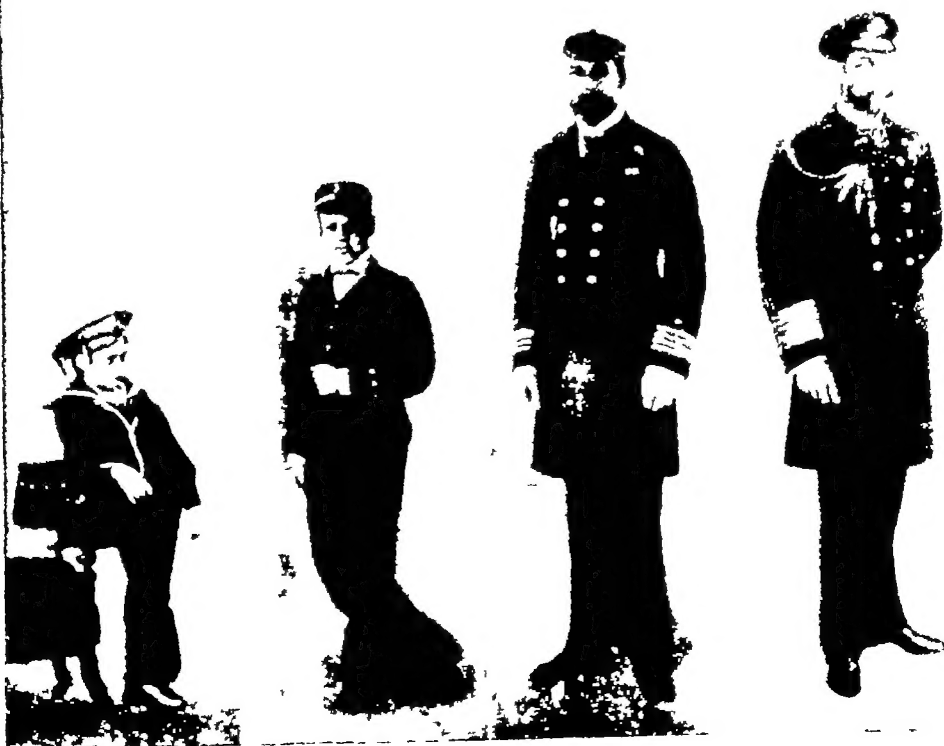


नाविक का काम सीखते समय महाराज के गुरु आपको और आपके बड़े बन्धु को गांठ लगाने का पहला पाठ पढ़ाते हैं।

लड़कपन से आपको भिन्न भिन्न समय के और भिन्न भिन्न देश के डाकघर के टिकट एकत्र करने का शौक है। कहते हैं कि सन् १८८७ का छपा हुआ मारिशस टापू का एक डाक टिकट खरीदने में आपने २१७८ रुपये खर्च कर डाले! महाराज "सप्तम एडवर्ड के ज़माने के डाक के टिकट" नामक विषय पर आपने एक छोटी सी पुस्तक भी लिख डाली है। कनाडा उपनिवेश में आप जब प्रवास को गये थे तब वहां के डाक के अधिकारियों ने टिकटों के विषय में आपकी सलाह ली थी। हास्यरसपूर्ण चित्रों का संग्रह करने के भी आप बड़े शौकीन हैं। निशाना लगाने में और मछलियां पकड़ने में भी आप बड़े प्रवीण हैं। बन्दूक की हिकमत में आप अपने देश में बहुत प्रसिद्ध हैं। विचार सौन्दर्य, विशाल बुद्धित्व और सहानुभूति से पूर्ण वक्तृता करने में आप बहुत प्रख्यात हैं।

महाराज का जब जन्म हुआ तब आपकी जन्मकुण्डली देखकर एक भविष्यवक्ता ने कहा था "संसार में जितने अत्यन्त चतुर और उत्कृष्ट राजा हो गये अथवा आगे होंगे उनमें से आप एक हैं।" हम कह सकते हैं कि यह भविष्य आज बिल्कुल ठीक प्रमाणित हो रहा है।







नौ सेना में प्रवेश करके महाराज ने साधारण नाविक से लेकर मुख्य कप्तान तक के भिन्न भिन्न छोटे बड़े काम किये। उस समय के भिन्न भिन्न अवसरों पर लिए हुए चार चित्र दिये हैं।

सम्राट और सम्राज्ञी का सब से नवीन फोटो।



## साम्राज्याभिषेकोत्सवगीत।

( [illegible] )

१

देश भारती भारत प्रभु का, भारत में अभिषेक हुआ ।
मंगल में मिल मंगल को सा, मंगल एक अनेक हुआ ॥
राजेश्वर घर धर्मराज का धराधर धर्म विवेक हुआ ।
मुकुट किरीटी पे किरीट का, समता पावर एक हुआ ॥
इन्द्रासन पर इट इन्द्र ने इन्द्रप्रस्थ पर प्यार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज पञ्चम ने, सुख-सागर सञ्चार किया ॥

२

सम्वत्सर वसु-राम-अङ्क-भू विक्रमीय अनुकूल हुआ ।
पौष सुभासित-पक्ष सप्तमी, मंगल मंगल-मूल हुआ ॥
चिर राजधानी दुलहिन का दुःख वियोग निर्मूल हुआ ।
पति-प्राप्ता [illegible] का [illegible] फल हुआ ॥
मिलने की चान्द्रकसज्जा ने अति सुन्दर शृंगार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज पञ्चम ने, सुख-सागर सञ्चार किया ॥

३

मुक्तामणि-मण्डित मण्डप में, सिद्ध अनुष्ठित काज हुआ ।
राजसूय सम में महेन्द्र का मान महोत्सवराज हुआ ॥
[illegible] महिमा महत्त्व की, मुग्ध महीप-समाज हुआ ।
उमगा परमानन्द प्रजा का, भव्य अभ्युदय आज हुआ ॥
सजला, सफला, सस्यश्यामला, वसुधा पे अधिकार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज पञ्चम ने सुख-सागर सञ्चार किया ॥

४

अजित अजातशत्रु स्वामी के [illegible] का [illegible] हुआ ।
[illegible] ॥
[illegible] सम्मेलन में [illegible] अलौकिक हर्ष हुआ ।
[illegible] ॥
[illegible] ने [illegible] सत्कार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज पञ्चम ने, सुख-सागर सञ्चार किया ॥

५

सुयश-विभूति महारानी का, पूजन पति के साथ हुआ।
विमला प्रीति, विशुद्ध प्रेम का, गौरव उन्नतमाथ हुआ॥
पालक पायसशक्ति प्रतापी, द्वीपसमूह सनाथ हुआ।
फूल फूल सब देश फलेंगे, पोषक हित का हाथ हुआ॥
दान दया से धन-कुबेर ने, पुनरुद्धार सुधार किया।
प्रभुता पाय जार्ज पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया॥

६

पुण्य-प्रकाश प्रजेश भानु का, भूतल पै भरपूर हुआ।
रही न रात अराजकता की, अशुभ अँधेरा दूर हुआ॥
विद्रोही छलबल बादल के, दल का चकनाचूर हुआ।
प्रतियोगी पौरुष कलेश का, कुटिल योग अक्रूर हुआ॥
मण्डलीक नृप तारागण को, तैजस तेज प्रसार किया।
प्रभुता पाय जार्ज पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया॥

७

नीच-विचार-निशाचर भागे, भ्रम-तुषार का नाश हुआ।
दल अन्धेर उलूक अन्ध का, उद्यम-हीन हताश हुआ॥
सामाजिक सद्गुण-कमलों का, श्री-सौरभित विकास हुआ।
न्याय नीति चकई चक नाचे, निर्मल यश आकाश हुआ॥
शंकर के अनुराग-रत्न का, पूरण भाव प्रचार किया।
प्रभुता पाय जार्ज पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया॥

श्रीनाथूराम शंकर शर्मा।

---

## सम्राट पञ्चम जार्ज



महाराज सदा राजा की हैसियत से किसी न किसी काम में लगे रहते हैं और उन कामों के अनुसार आप सदैव अपनी पोशाक भी बदलते रहते हैं। इस फोटो में महाराज ने जो पहनावा किया है वह किसी विशिष्ट कामकाज के लिए नहीं है। यह पोशाक आपकी निजी तौर पर घूमने के समय की है। इस वेश में आप बहुत कम देख पड़ते हैं।



# महारानी मेरी और उनकी सन्तति ।

महाराज जार्ज और महारानी मेरी के विवाह के समय प्रजा में [illegible] के मुख्य धर्माधिकारी ने यह प्रार्थना की थी कि, तुम्हारे कुटुम्ब में सदा शान्ति और समाधान रहा करे। तुम्हें परमात्मा उत्तम कुटुम्बसुख दे। यह [illegible] सम्पादन [illegible] है। [illegible] एक ही बात से पाठकगण समझ सकते हैं कि [illegible] महारानी की [illegible] कैसी उत्तम हुई है। अर्थात् इसमें [illegible] नहीं कि महारानी मेरी के [illegible] स्वभाव [illegible] और



महारानी मेरी की कुमारावस्था के भिन्न भिन्न चित्र।

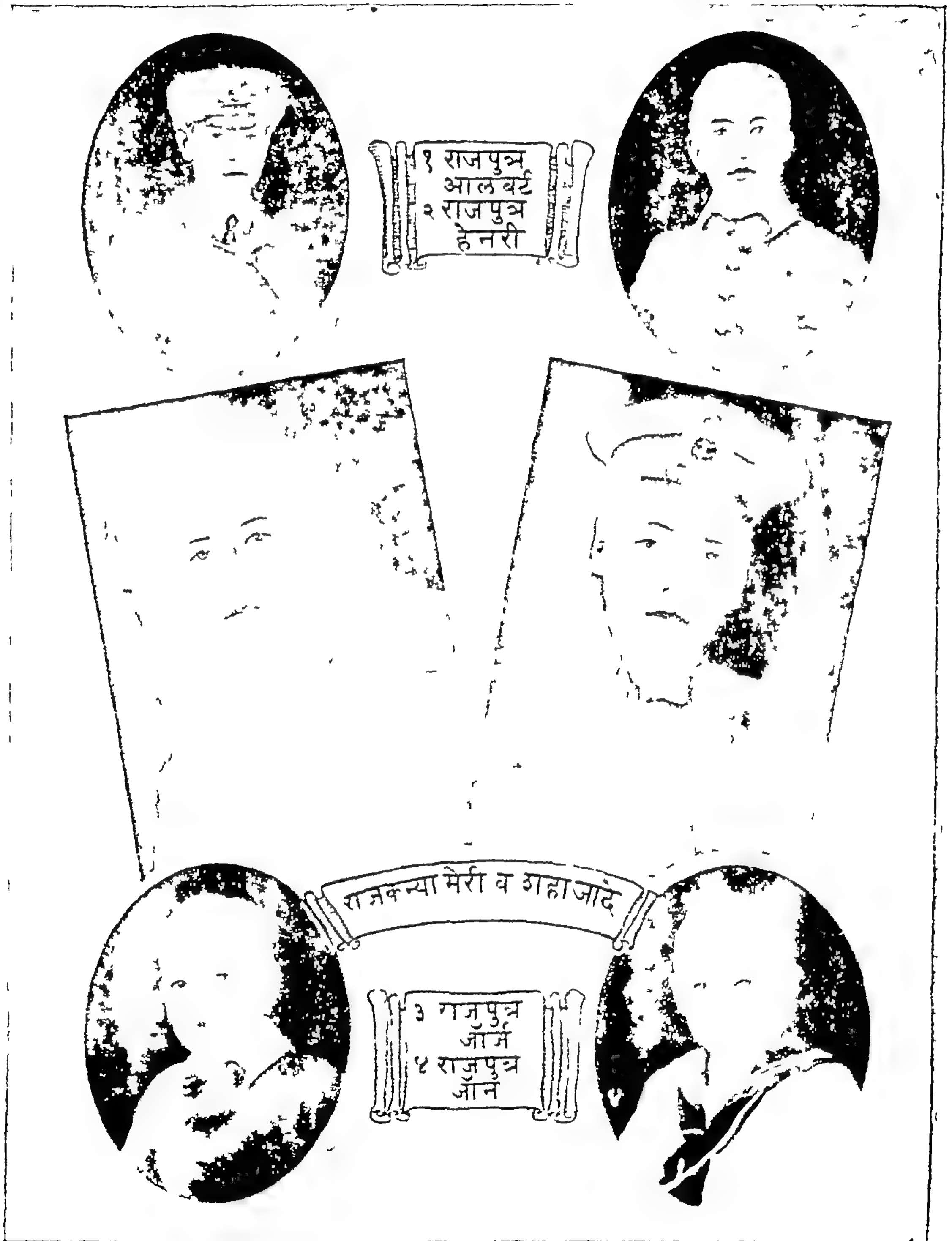


[illegible] प्रिन्स एडवर्ड और राजकुमारी [illegible]।

कमरे में आप स्वयं बैठती हैं उसमें आपके रचे हुए बहुत से चित्रों का संग्रह है। गत वर्ष आपने एक अनाथालय को अपने तैयार किये हुए एक सुन्दर जलरंग (Water-colour) चित्र की बिक्री का उत्पन्न दे दिया। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि अब भी आपको चित्रकला से बहुत प्रेम है। जिस समय आपका विवाह राजकुमार जार्ज (वर्तमान महाराज) के साथ होने की खबर मिली उस समय लोगों को बड़ा आनन्द हुआ। क्योंकि दूसरे जेम्स (१६८५—१६८८) के समय के बाद अँगरेजी राजकुमार का अँगरेजी वधू के साथ गँठजोड़ा होने का यह पहला ही अवसर था। विवाहोत्सव सेंट जेम्स के रायल चेपेल में हुआ। विवाह के अवसर पर वर-वधू ने सफेद साँटन के वस्त्र धारण किये थे और उनके हाथों में रुपे के तारों से गुँथे हुए गुलाब के सुन्दर गुच्छे थे। विवाहोत्सव की सब सामग्री खास ग्रेटब्रिटन और आयर्लेंड में ही तैयार की गई थी। सब सामान "स्वदेशी" था। महारानी साहब का झगा स्पिटल फील्ड्स में तैयार किया गया था और बड़ा सुन्दर था। विवाह के समय वर वधू का बर्ताव बहुत शान्त, गम्भीर और विनीत था। उस अवसर पर बायबल के जो मंत्र उच्चारण किये गये उन्हें वे दोनों ध्यान पूर्वक सुनते थे और उनके अर्थ पर भी उनकी पूर्ण दृष्टि थी। विवाह के उपलक्ष्य में इस दम्पति के पास करीब १५०० से ऊपर कीमती मंगल भेंट आई। विवाह के बाद दोनों ने मधुमास यार्क स्टेज में व्यतीत किया। तब से लेकर महारानी साहब ने अपने दायित्व के कार्य योग्य रीति से पूर्ण किये हैं। आपने अपने बच्चों के लालन पालन और शिक्षा पर पूर्ण दृष्टि रखी है। महाराज राजकाज के लिए जहाँ जहाँ गये हैं, महारानी साहब भी सदा उनके साथ रही हैं। आस्ट्रेलिया की संयुक्त पार्लिमेंट खोलने के समय भी रानी साहब अपने पति के साथ थीं। महारानी की माता श्रीमती डचेस आफ टेक बड़ी पुण्यशीला थीं। माता की तरह हमारी महारानी साहब का दानधर्म की ओर बहुत ध्यान है। छोटे छोटे बच्चों के लिए जो संस्थाएँ स्थापित हुई हैं उनकी सहायता महारानी साहब बड़ी उदारता से करती हैं। आपका मन मधुर बड़ा है, बुद्धि विशाल है और आपमें सौजन्य बहुत है। ऐसी माता से जन्मे हुए बालक भी अवश्य ही शीलवान और सदाचारी होने चाहिए।

महाराज के बड़े पुत्र प्रिंस आफ वेल्स का जन्म २३ जून १८९४ को हुआ। इससे बढ़ कर और कोई अवसर नहीं कि स्वर्गीय महारानी विक्टोरिया ने अपने बाद सिंहासनासीन होनेवाली तीन पीढ़ियों को अपने नेत्रों से देख लीं। वर्तमान प्रिंस आफ वेल्स के जन्मते ही सारे देश में बड़ा आनन्द मनाया गया। लोगों ने इस उत्सव में अनेक भेंट भेजी। स्वयं महारानी विक्टोरिया ने भी इस बालक के लिए सोने का मुलम्मा किया हुआ एक पालना दिया। राजकुमार के नामकरण संस्कार के लिए क्रिश्चियन लोगों की पवित्र भूमि पलेस्टाइन की जार्डन नदी का जल मँगाया गया था। यह संस्कार देखने के लिए यूरप के कई राजपुरुष आये थे। बालक का नाम राजकुमार एडवर्ड रखा गया।

राजकुमार एडवर्ड की प्रकृति बालपन ही से सुदृढ़ है। छोटे बच्चों को होने वाले सब रोगों से आपका शरीर अलिप्त है। बाइसिकल और घोड़े पर चढ़कर घूमना आपको बहुत पसन्द है। महाराज एडवर्ड ने आपको एक गाड़-




राजसन्तति।

सिटर इनाम में था उस पर आपकी बड़ी प्रीति रहा। राजपुत्र एडवर्ड को स्काटलैंड का बड़ा अभिमान है। आपकी दादी स्काटिश थीं, इसी कारण आपका ... स्काटलैंड के अबर्डीन परगने में आप बहुधा जाते रहते हैं।

आप हुल्लड़ से दूर रहना पसन्द करते हैं। सैंड्रिंगहम राजमहल (महाराज एडवर्ड का निवासस्थान) में रहते हुए आप बच्चों के साथ बहुधा खेलते हैं।

आपकी शिक्षा का भार पहले मैडम ब्रिका और फिर मिस्टर हन्सेल के अधिकार में था। फ्रेंच और जर्मन भाषाएँ आपको बाल्यकाल ही से अच्छी आती हैं। इतिहास विषय आपको सब से अधिक प्रिय है। आसबर्न और डार्ट माउथ में आपको नौसेना की शिक्षा मिली है। आपका हृदय उदार है। सब काम आप बड़ी स्फूर्ति से करते हैं। सारांश, इसमें कोई सन्देह नहीं कि भविष्य में आप तो उत्तरदायित्व का भार शिर पर लेंगे उसके लिए आप सब प्रकार से योग्य हैं।

राजकन्या मेरी का जन्म सन् १८९७ में हुआ। इन्हीं साल महारानी विक्टोरिया के राज्य की डायमण्ड जुबिली थी। राजकुमारी मेरी की शिक्षा महारानी मेरी की स्वयं देख रेख में अच्छी तरह हो रही है। राजकन्या को भाषण करना सरती है, पोस्ट आफिस की सेविंग बैंक में आपके नाम का एक खाता खुला है। आप भी अपनी माता के अनुसार उदार स्वभाव की हैं। आप सदा माता के साथ रहती हैं। अतएव यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आप आगे चलकर कितनी सद्गुणी होंगी।

कुमार राजपुत्र अल्बर्ट का जन्म सन् १८९५ में हुआ। आपको भी जल-सैनिक शिक्षा मिलती है। फुटबाल के खेल में आप भी बड़े तेज हैं। महाराज जार्ज अपने राजपुत्र अल्बर्ट के साथ शौक से खेलते रहते हैं।

इनके सिवाय इस राजदम्पति के और भी तीन छोटे पुत्र हैं। राजपुत्र हेनरी सन् १९०० में, राजपुत्र जार्ज १९०२ में और राजकुमार जॉन १९०५ में उत्पन्न हुए। सब बालक सुन्दर और सुशील हैं। परमात्मा सब को दीर्घायु करे।

महाराज जार्ज को जिस प्रकार वन्य प्रदेशों में पैदल घूमने और शिकार खेलने का बड़ा शौक है उसी प्रकार आपके बड़े बेटे युवराज एडवर्ड (वर्तमान प्रिन्स आफ वेल्स) को भी इन बातों का बड़ा शौक है। इस दृश्य में प्रिन्स एडवर्ड अपने गुरु के साथ जंगल में शिकार खेल रहे हैं।

## गुरु-गुण-गण-गान।

जन्म-मृत्यु-सन्देह त्याग जिसने किया,
मृत्यों को भी महाचतुर जिसने किया।
करता जो नीचों का भी धिक्कार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। २७।
रखता जिसको हर प्रसंग का ज्ञान है
पर ज्ञातापन का न जिसे अभिमान है।
जग का सारा सुख जिसको निस्सार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। २८।
सेवन करता जो नित ही एकान्त है,
कठिन कार्य से कभी न होता श्रान्त है।
जिसके करतल सब ग्रन्थों का सार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। २९।
सद्गुण-प्रावृष और पद्म-आगार है,
नियामक श्री रूपतत जिसका निर्धार है।
जिसका गुप्त गुप्ति धारा-स्रोत का हार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३०।
सब जनों औ सन्त-मण्डलों का पता--
नित्य लगाता है भूतल में जो रतन।
जिसमें जग का कार भी न विकार है
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३१।
नप-स्वप्न में जो घबड़ाता है नहीं
सावधानता जो दिखलाता है नहीं।
हानि में जो करता न कभी उपचार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३२।
जिसकी कृति सुपरिष्कृत और उदार है
सदा सुचिन्तन जो करता मधुमास है।
काम क्रोध का किया सदा संहार है
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३३।
सम्मा जिसका दृश्य न कोई जानता
तथा न जिसके मन का पाता है पता।
परब्रह्म में करता जो व्यवहार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३४।
पवित्रता में जो वैश्वानर रूपट है,
दिनकर-सा जिसका सुप्रताप प्रचण्ड है।
सुर-गुरु की सी जिसकी बुद्धि अपार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३५।
सहज वचन ही जिसका प्रस्तर-रेख है,
जो प्रयत्न से मिटा सके विधि-लेख है।
माता-सम दिखती जिसको पर-दार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३६।
अभय-दान सब जीवों को देता सदा,
धूल-समान जिसे दिखती सब सम्पदा।
करता जो द्विज-सन्त-अतिथि-सत्कार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३७।
सब जीवों को समझे आत्म-समान है,
दीनों को जो देता विद्या-दान है।
सर्व विषय लखकर जो लेता सार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३८।
सत्कर्मों से तृप्ति न जिसको है कभी
तथा दमन करता है जो इन्द्रिय सभी।
सूक्ष्म और सात्विक जिसका आहार है
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ३९।
निज भार्या को जिसने साध्वी बना लिया,
दया-धर्म-चातुर्य-शान्ति-युत है किया।
(माता-सम जो करती सब का प्यार है)
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४०।
संकट में भी जो निज गुण तजता नहीं
आदि अन्त को सोच कार्य करता सही।
मुख्य कार्य जिसका परमार्थ-प्रचार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४१।
ऐसा कठिन स्त्रियों के शान्ति-शौर्य से--
निज विदुषी भार्या के शुचि सहयोग से--
करता जो उनका भी बेड़ा पार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४२।
साधन-सम्पादन में जिसका यत्न है
सन्त-मालिका का जो अनुपम रत्न है।
परहित करके जो न करे उपकार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४३।
सन्त-समागम करने में जो लीन है
जो पुरुषोत्तम अति मर्यादा-शील है।
नीति-धर्म की जिसकी सदा पुकार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४४।
निज-गुण बतलाने में अति संकोच है,
पर-गुण प्रकटाने में जिसे न सोच है।
*छन्द-सदन के लिए सदा तयार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४५।
सर्व काल सहि पत्नी रहती संग है,
ब्रह्मचर्य-व्रत तो भी बना अभंग है।
नम्र से भी जो कोमल सर्व प्रकार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४६।
क्षय कर ली है जिसने अपनी वासना,
ईश्वर ही की प्राप्ति जिसे है कामना।
स्थिरता में जो ध्रुव का ही अवतार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४७।
नारद मुनि-सा मननशील है जो सदा,
हरि-कीर्तन में भी रहता है अग्र।
निजानन्द का जो मानो आकार है
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४८।
रज-तम-सत्व-गुणों से भी है जो परे,
विधि सम सब समान समझ चन्दन धरे।
जो हरि-भक्त-प्रभु इष्ट का अवतार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ४९।
मोर-नीर-सम है जिसकी रुचि भिन्नता
जिसको है पर ध्येय मुक्ति साधुता।
ऐसा जिसके सद्गुणों का विस्तार है,
नमस्कार उस गुरु को बारम्बार है। ५०।
जो करता नित यह गुरु गुण-गण गान है,
तथा सदा जो करता उसका ध्यान है।
वह अवश्य होता भवसागर पार है,
नमस्कार उसको भी बारम्बार है। ५१।

* गुरु-कुल ... ... ... ... ... ... ... और ... ... है। ...

# दिल्ली का राज-दरबार।



वेद में 'सप्तसिन्धु' नाम से जिसकी महिमा गाई गई है, पुराणों में जिस सरस्वती नदी और नैमिषारण्य का बारम्बार उल्लेख हुआ है, और महाभारतीय युद्ध से संसार में जिस कुरुक्षेत्र की महिमा छा रही है उसके चारों ओर के भाग का महत्त्व भारतवर्ष के इतिहास में आज तक स्थिर है। इस देश के इतिहास का मार्ग बदल देनेवाली राज्यक्रान्तियाँ, लड़ाइयाँ और नाना प्रकार के परिवर्तन इसी भाग में हुए, अनेक प्रसंगों पर भारत का वैभव भी इसी भूमि में एकत्रित देख पड़ा। इन्द्रप्रस्थ, अर्थात् दिल्ली को यदि आर्यभूमि का हृदय कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय और अश्वमेध आदि दिग्विजयी यज्ञ-समारम्भ और राज्याभिषेक यहीं हुए, और भारत के अन्तिम आर्य राजा महाराज पृथ्वीराज चौहान ने भी यहीं राज्यवैभव भोगा। गोरी घराने से लेकर मुगल घराने के अखीर तक अकबर आदि मुसलमान बादशाहों ने इसी भाग में बादशाहत की और मराठों ने चौथाई स्वत्व—राज्य यद्यपि नहीं तथापि सत्ता का—उपभोग यहीं किया, परन्तु सन् ५७ के बलवे में बड़े पराक्रम से यह पुरातन नगरी अँगरेज राज्यकर्ताओं ने अपने हस्तगत कर ली। इसके बाद उन्होंने जितने राज उत्सव किये वे सब इसी प्राचीन नगर में हुए। इस नगर का सब से नवीन इस महीने में जो राज-दरबार हुआ वह, कई दृष्टियों से, पूर्व के सब उत्सवों की अपेक्षा अधिक महत्व का और आश्चर्यजनक हुआ। आज हम अपने पाठकों को इसी अपूर्व दरबार का यथाक्रम विस्तृत वर्णन सुनाते हैं —

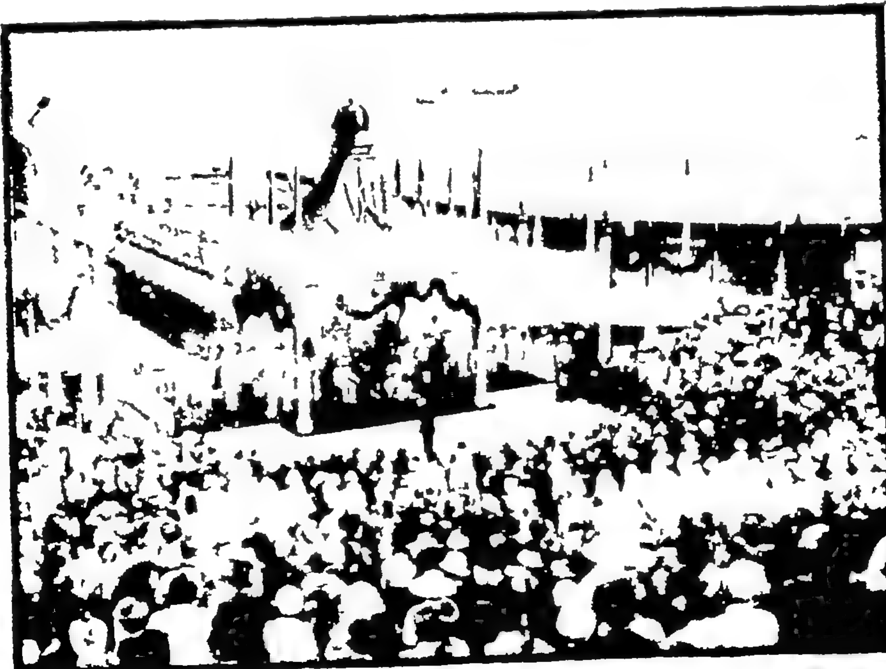
महाराज पञ्चम जार्ज ने महारानी मेरी और अपने सहचरों के साथ ११ नवम्बर सन् १९११ को लन्दन शहर से भारत के लिए बड़ी धूमधाम के साथ प्रयाण किया। मार्ग में कई स्थलों में स्वागत सम्मान पाते हुए महाराज का मदीना जहाज अपने साथी चार क्रूजरों सहित, २ दिसम्बर को लगभग साढ़े नव बजे तोपों की गड़गड़ाहट के साथ आनन्दपूर्वक बम्बई बन्दर में आ पहुँचा। बम्बई नगरी महाराज का स्वागत करने के लिए पहले ही से सजी हुई थी। महाराज जिस राजमार्ग से निकलनेवाले थे उस पर जगह जगह सुन्दर द्वार रचे गये थे। चारों ओर गोरी पुलिस का कड़ा पहरा था। महाराज का जहाज बन्दर में आने के आध घंटे बाद वाइसराय लार्ड हार्डिंग और बम्बई के गवर्नर लार्ड क्लार्क, और दो तीन अन्य अँगरेज महाराज के दर्शन के लिए जहाज पर गये और थोड़ी देर के बाद लौट आये।



सम्राट सम्राज्ञी का बम्बई-बन्दर पर आगमन।

## बम्बई में सम्राट

महाराज और महारानी करीब चार बजे जहाज से उतरनेवाले थे। इसलिए बड़े बड़े राजा, सरदार, माननीय लोग, अधिकारी गण, पदवीधर और लक्ष्मीपुत्र इत्यादि राजदर्शन की उत्सुकता से दो तीन घंटे पहले ही वाटरफ्रन्ट में एकत्र हो गये थे। पौने चार बजने के करीब बम्बई के गवर्नर साहब और वाइसराय साहब वाटरफ्रन्ट में आ उपस्थित हुए। इसके थोड़ी ही देर बाद तोपों की गड़गड़ाहट से महाराज और महारानी के जहाज पर से उतरने की सूचना मिली। वाइसराय साहब ने आगे बढ़कर सम्राट और सम्राज्ञी का स्वागत किया तथा कुछ बड़े बड़े अधिकारियों और भद्र पुरुषों को महाराज के सामने उपस्थित कर के उनका परिचय कराया। इसके बाद महाराज, महारानी और अपने साथियों के साथ, वाटरफ्रन्ट में अपने उच्चासनों की ओर आये। राजाओं ने तालियाँ पीट कर आपका स्वागत किया। इस समय महाराज के प्रफुल्ल मुख से नम्रता और सहानुभूति प्रकट हो रही थी। महाराज ने 'एडमिरल' के सफेद वस्त्र धारण किये थे। महारानी ने 'बिस्कुट' के रंग की पोशाक पहनी थी और वैसे ही रंग की टोपी, जिस पर फूलों का मुकुट था, धारण की थी। महाराज और महारानी के आसन पर विराजमान हो जाने पर महाराज की दाहिनी तरफ वाइसराय और महारानी की बाँईं तरफ बम्बई के गवर्नर खड़े हो गये। इसके बाद गवर्नर साहब का इशारा पाकर सर फीरोजशाह मेहता उच्चासन की सीढ़ियों के पास आये और अपनी गम्भीर और मधुर वाणी में महाराज के



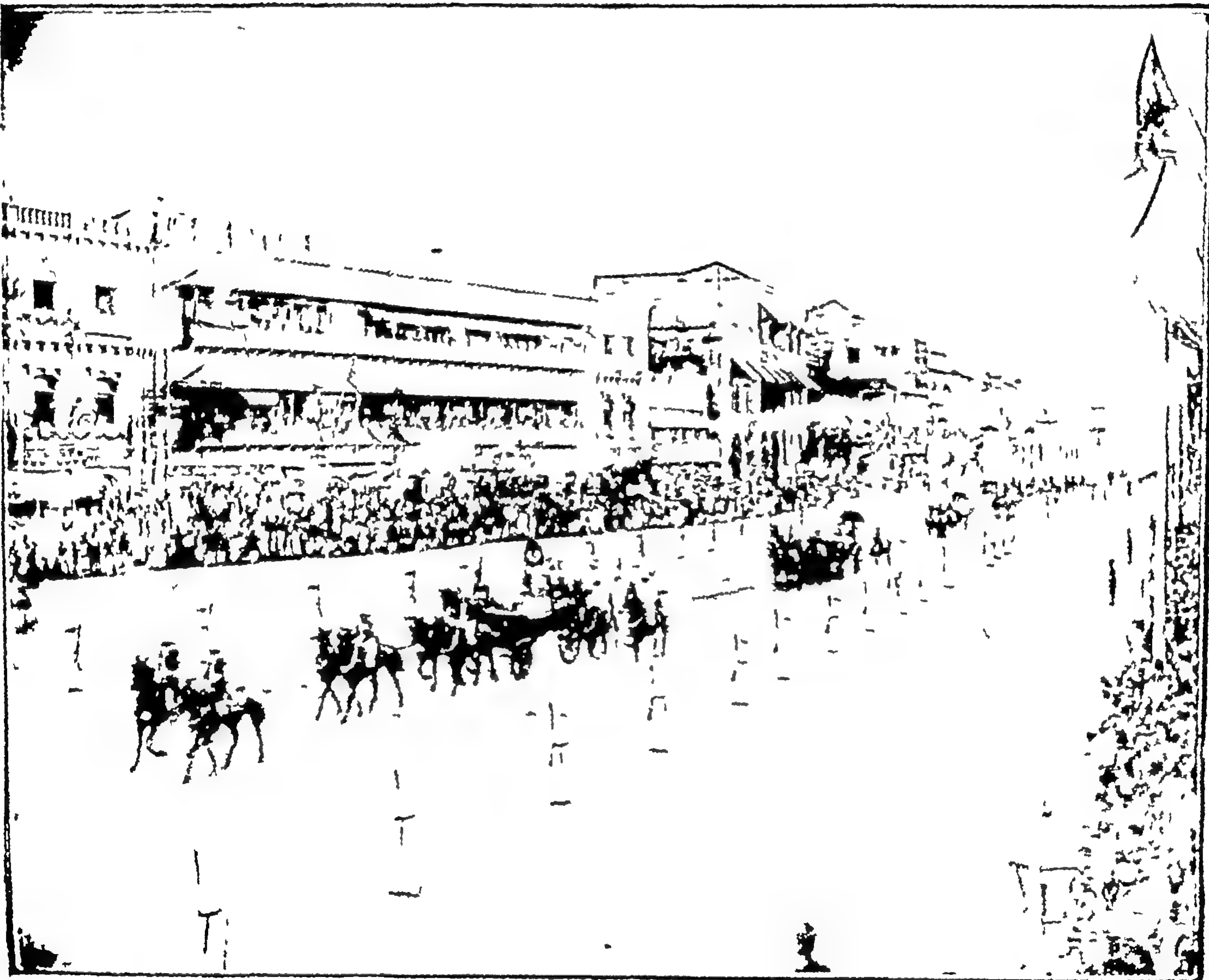
सर फीरोजशाह मेहता बम्बई-म्युनिसिपेलिटी का मानपत्र सम्राट को सुना रहे हैं।

सम्मुख बम्बई-कार्पोरेशन का मानपत्र पढ़ सुनाया। महाराज ने भी उसके उत्तर में अपना सहानुभूति-दर्शक और प्रेमपूर्ण भाषण किया।

इसके बाद बड़ी धूमधाम से सम्राट और सम्राज्ञी की सवारी निकली। जिस सड़क से महाराज की सवारी निकली उसके दोनों ओर के ऊँचे ऊँचे मकानों के छज्जों पर रंग बिरंग वस्त्र धारण किये हुए स्त्री पुरुषों की शोभा अनुपम थी। सारी प्रजा महाराज की जयजयकार कर रही थी। रास्तों पर जो अनेक सुशोभित फाटक तैयार किये गये थे उनमें [illegible] का फाटक बम्बई के उच्च व्यवसाय का पूर्ण परिचायक था। साढ़े पाँच बजे के करीब महाराज की सवारी अपोलो बन्दर पर लौट आई।

उस दिन रात को समुद्र के सभी जहाजों पर और बम्बई शहर में बहुत अच्छी रोशनी की गई। बड़े बड़े कारखानेवालों ने बिजुली के दीपकों से महाराज के लिए अनेक प्रकार के स्वागतसूचक वाक्य स्थान स्थान में बना रक्खे थे। जाने का दृश्य भी अद्भुत था। इस प्रदर्शिनी में महाराज के पधारते ही उपस्थित हजारों एकत्र हुए लड़कों ने तालियों की प्रचण्ड गड़गड़ाहट से उनका स्वागत किया। उस समय भी तैयार कराई हुई पारसी गुजराती आदि लड़कियों ने मनोहर गीतों से महाराज को प्रसन्न किया। महाराज और महारानी प्रदर्शिनी देखकर फिर अपने सर्वोत्तम जहाज को लौट गये। उस दिन रात को बड़ी भारी आतिशबाजी की धूम रही।

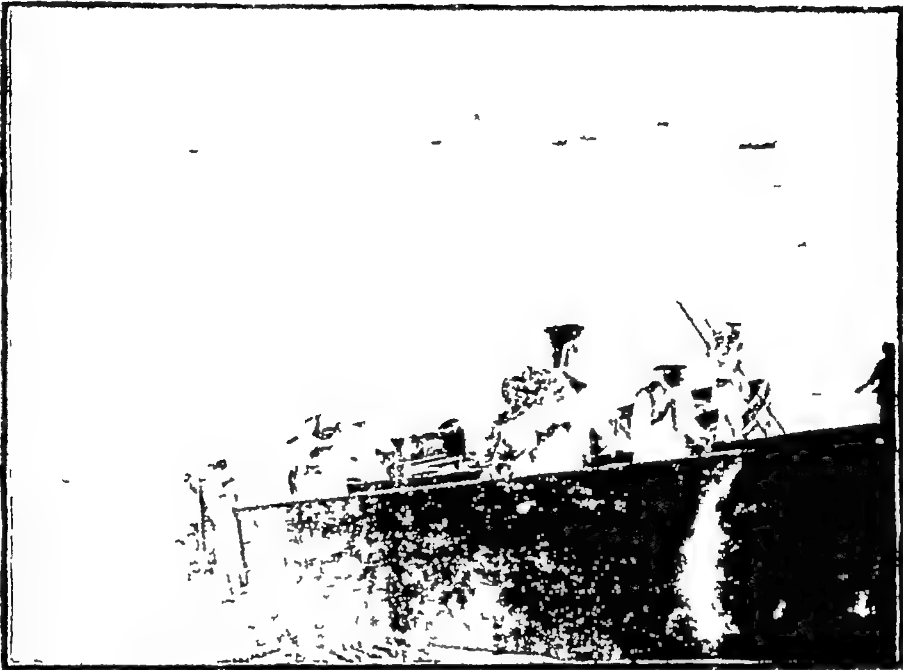
४ तारीख को सम्राट पञ्चम जार्ज महारानी मेरी के साथ घारापुरी की गुफाएँ देखने को गये। वहां एक विचित्र घटना हो गयी। महारानी मेरी एक बन्दर को चना डाल रही थीं कि इतने ही में एक बन्दर महारानी साहब की साड़ी की झालर में हाथ डालकर उसे खींचने लगा। यह देखकर राजकर्मचारी दौड़े और बन्दर ने अपना हाथ निकाल लिया। महारानी बिलकुल नहीं घबड़ाई किन्तु बन्दर की यह चेष्टा देखकर कौतूहल से वे हंस रही थीं।



बम्बई में सम्राट और सम्राज्ञी का जुलूस।

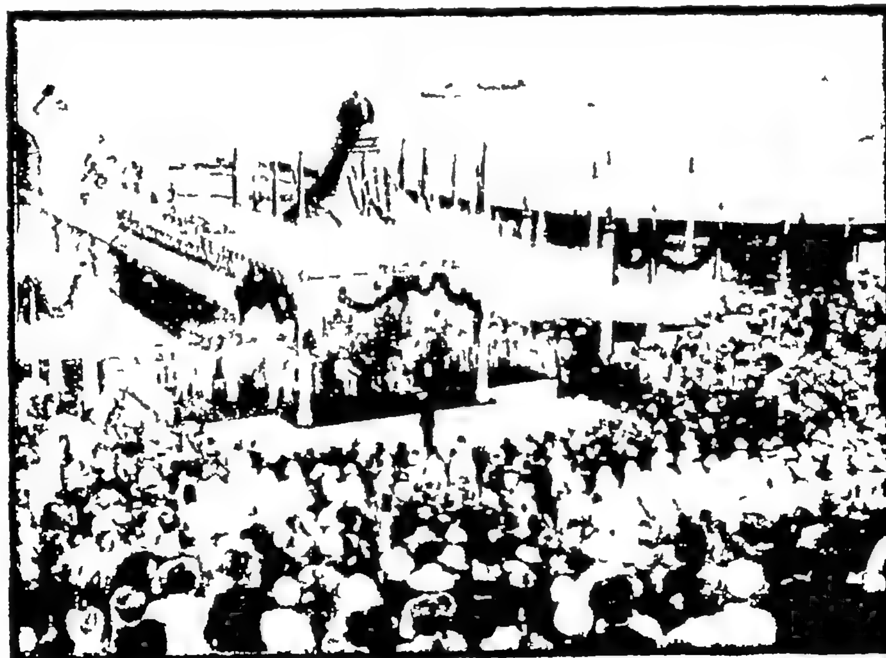
# दिल्ली का राज-दरबार।

वेद में ' सप्तसिन्धु ' नाम से जिसकी महिमा गाई गई है, पुराणों में जिस सरस्वती नदी और नैमिषारण्य का वारम्वार उल्लेख हुआ है, और महाभारतीय युद्ध से संसार में जिस कुरुक्षेत्र की महिमा छा रही है उसके चारों ओर के भाग का महत्व भारतवर्ष के इतिहास में आज तक स्थिर है। इस देश के इतिहास का मार्ग बदल देनेवाली राज्यक्रान्तियाँ, लड़ाइयाँ और नाना प्रकार के परिवर्तन इसी भाग में हुए, अनेक प्रसंगों पर भारत का वैभव भी इसी भूमि में एकत्रित देख पड़ा। इन्द्रप्रस्थ, अर्थात् दिल्ली को यदि आर्यभूमि का हृदय कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय और अश्वमेध आदि दिग्विजयी यज्ञ-समारम्भ और राज्याभिषेक यहीं हुए, और भारत के अन्तिम आर्य राजा महाराज पृथ्वीराज चौहान ने भी यहीं राज्यवैभव भोगा। गोरी घराने से लेकर मुगल घराने के अखीर तक अकबर आदि मुसलमान बादशाहों ने इसी भाग में बादशाहत की और मराठों ने चौथाई शतक—राज्य यद्यपि नहीं तथापि सत्ता का—उपभोग यहीं किया, परन्तु सन् ५७ के बलवे में बड़े पराक्रम से यह पुरातन नगरी अँगरेज़ राज्यकर्ताओं ने अपने हस्तगत कर ली। इसके बाद उन्होंने जितने राज उत्सव किये वे सब इसी प्राचीन नगर में हुए। इस नगर का सब से नवीन इस महीने में जो आंग्ल-राज-दरबार हुआ वह, कई दृष्टियों से, पूर्व के सब उत्सवों की अपेक्षा अधिक महत्व का और आश्चर्यजनक हुआ। आज हम अपने पाठकों को इसी अपूर्व दरबार का यथाशक्य विस्तृत वर्णन सुनाते हैं—



सम्राट सम्राज्ञी का बम्बई-बन्दर पर आगमन।

महाराज पञ्चम जार्ज ने महारानी मेरी और अपने सहचरों के साथ ११ नवम्बर सन् १९११ को लंडन शहर से भारत के लिए बड़ी धूमधाम के साथ प्रयाण किया। मार्ग में [स्थ]लों में स्वागत सन्मान [होते] हुए महाराज का जहाज अपने साथी चार क्रूजरों सहित, २ दिसम्बर को लगभग साढ़े नव [बजे] तोपों की गड़गड़ाहट के साथ आनन्दपूर्वक बम्बई बन्दर में जा पहुँचा। [य]ह नगरी महाराज का स्वागत करने के लिए पहले ही से सजी हुई थी।



सर फीरोजशाह मेहता बम्बई-म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र सम्राट को सुना रहे हैं।

महाराज जिस राजमार्ग से निकलनेवाले थे उस पर जगह जगह सुन्दर द्वार बने गये थे। चारों ओर गोरी पुलीस का कड़ा पहरा था। महाराज का जहाज बन्दर में आने के बाद बड़े लाट वाइसराय लार्ड हार्डिंग और बम्बई के गवर्नर लार्ड क्लार्क, और दो तीन अन्य अँगरेज़ महाराज के दर्शन के लिए जहाज पर गये और थोड़ी देर के बाद लौट आये।

## बम्बई में सम्राट

महाराज और महारानी करीब चार बजे जहाज से उतरनेवाले थे। इस लिए बड़े बड़े राजा सरदार, माननीय लोग, अधिकारी गण, पदवीधर और लक्ष्मीपुत्र इत्यादि राजदर्शन की उत्सुकता से दो तीन घंटे पहले ही नाटकगृह में एकत्र हो गये थे। तीन चार बजने के करीब बम्बई के गवर्नर साहब और वाइसराय साहब नाटकगृह में आ उपस्थित हुए। इसके थोड़ी ही देर बाद तोपों की गड़गड़ाहट से महाराज और महारानी के जहाज पर से उतरने की सूचना मिली। वाइसराय साहब ने आगे बढ़कर सम्राट और सम्राज्ञी का स्वागत किया तथा कुछ बड़े बड़े अधिकारियों और अन्य पुरुषों को महाराज के सामने उपस्थित कर के उनका परिचय कराया। इसके बाद महाराज, महारानी और अपने साथियों के साथ, नाटकगृह में अपने उच्चासन की ओर आये। लोगों ने तालियाँ पीट कर आपका स्वागत किया। इस समय महाराज के प्रफुल्ल वदन से नम्रता और सहानुभूति टपक रही थी। महाराज ने ' अडमिरल ' के सफेद वस्त्र धारण किये थे। महारानी ने 'बिस्कुट' के वर्ण की पोशाक पहनी थी और वास की टोपी, जिस पर फूलों का मुकुट था, धारण की थी। महाराज और महारानी के आसन पर विराजमान होने पर महाराज की दाहिनी तरफ वाइसराय और महारानी की दाहिनी तरफ बम्बई के गवर्नर खड़े हो गये। इसके बाद गवर्नर साहब का इशारा पाकर सर फीरोजशाह मेहता उच्चासन की सिढ़ियों के पास जाकर अपनी गम्भीर और जोरदार वाणी से महाराज के

सम्मुख बम्बई-कार्पोरेशन का मानपत्र पढ़ सुनाया। महाराज ने भी उसके उत्तर में अपना सहानुभूति-दर्शक और प्रेमपूर्ण भाषण किया।

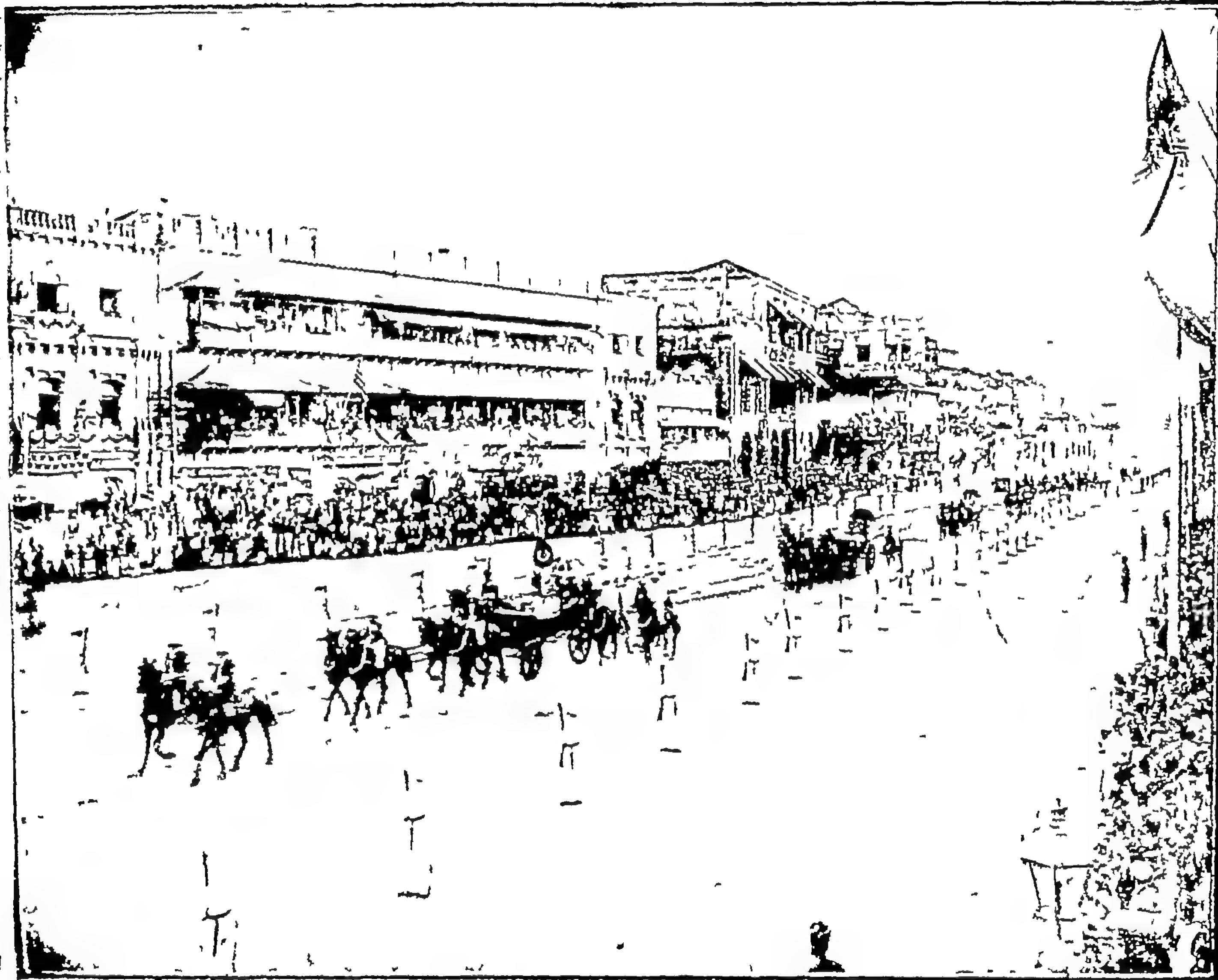
इसके बाद बड़ी धूमधाम के साथ महाराज और महारानी की सवारी निकली। जिस सड़क से महाराज की सवारी निकली उसके दोनों ओर के ऊँचे ऊँचे मकानों के छज्जों पर रंग बिरंग वस्त्र धारण किये हुए स्त्री पुरुषों की शोभा अनुपम थी। सारी प्रजा महाराज का जयजयकार कर रही थी। राजमार्ग पर जो अनेक सुशोभित फाटक तैयार किये गये थे उनमें कपास का फाटक बम्बई के उच्च व्यवसाय का पूर्ण परिचायक था। साढ़े पाँच बजे के करीब महाराज की सवारी अपोलो बन्दर पर लौट आई।

उस दिन रात को समुद्र के सारे जहाजों पर और बम्बई शहर में बहुत अच्छी रोशनी की गई। बड़े बड़े कारखानेवालों ने विद्युत् के दीपकों से महाराज के लिए अनेक प्रकार से स्वागतसूचक वाक्य स्थान स्थान में बना रक्खे थे। नाना प्रकार की चित्र विचित्र दीपावलियों से शहर और समुद्र किनारा अनुपम शोभा दिखा रहा था।

दूसरे दिन ता० ३ दिसम्बर रविवार को दोपहर के समय महाराज और महारानी के सम्मानार्थ गवर्नमेंट-हाउस में उपहार-समारम्भ हुआ। बम्बई के अनेक माननीय लोगों को इसमें शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सायंकाल के समय महाराज प्रार्थना के लिए गिरजे में गये। बिशप साहब ने 'इँगलैंड का भारत-सम्बन्धी कर्तव्य' विषय पर धर्मोपदेश दिया। इसके बाद महाराज मदीना जहाज पर लौट गये।

सोमवार ता० ४ दिसम्बर को साढ़े नौ बजे के करीब महाराज प्राचीन बम्बई की प्रदर्शिनी देखने को गये। इस प्रदर्शिनी में अँगरेजी राज्य के पूर्व के बम्बई का दृश्य दिखाया गया था। इसके सिवाय बम्बई प्रान्त के कलाकौशल-सम्बन्धी भी कई दृश्य थे। पूना जिले के तलेगाँव दाभाड़े के पैसा फंडवाले काँच के कारखाने का दृश्य भी अद्भुत था। इस प्रदर्शिनी में महाराज के पधारते ही छब्बीस हजार एकत्र हुए लड़कों ने तालियों की प्रचण्ड कड़कड़ाहट से उनका स्वागत किया। रंग रंग की पोशाक धारण की हुई पारसी, गुजराती आदि लड़कियों ने मनोहर गीतों से महाराज को प्रसन्न किया। महाराज और महारानी प्रदर्शिनी देखकर फिर अपने मदीना जहाज को लौट गये। इस दिन रात को जगह जगह आतिशबाजी की धूम रही।

५ तारीख को सम्राट् पञ्चम जार्ज महारानी मेरी के साथ धारापुरी की पहाड़ी गुफाएं देखने को गये। यहाँ एक विचित्र घटना हो गयी। महारानी मेरी एक बन्दर को चारा डाल रही थीं कि इतने ही में वह बन्दर महारानी साहब की टोपी की झालर में हाथ डालकर उसे खींचने लगा। यह देखकर रक्षकगण दौड़े और बन्दर ने अपना हाथ निकाल लिया। महारानी बिलकुल नहीं घबड़ाईं, किन्तु बन्दर की यह चेष्टा देखकर कौतूहल से वे हँस रही थीं।



बम्बई में सम्राट और सम्राज्ञी का जलूस।

उसी दिन रात को साढ़े दस बजे के बाद सम्राट ने सम्राज्ञी और अपने सरदारों के साथ, अपनी स्पेशल गाड़ी से

## दिल्ली को प्रयाण

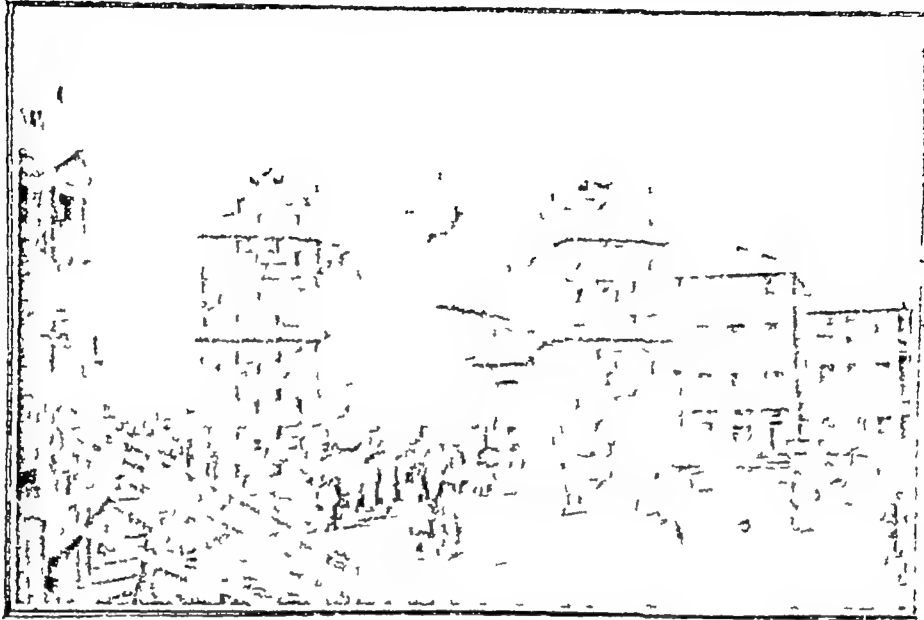
किया। इस स्पेशल गाड़ी में कुल दस डब्बे थे। उसमें महाराज और महारानी के बैठने तथा सोने के लिए अलग अलग स्थान, स्नानगृह, नौकरों के लिए स्थान, रसोईघर और भोजनगृह आदि सब सुभीते के स्थान थे। विद्युत् के द्वारा प्रकाश और वायु मिलने का प्रबन्ध था। सम्राट और सम्राज्ञी के कमरे सब प्रकार की सुखदायक सामग्री से सजे हुए थे।

इधर दिल्ली में महाराज के स्वागत की तैयारी बड़ी धूमधाम से हो रही थी। वाइसराय साहब सम्राट के पहले दिल्ली में आ उपस्थित हुए थे। सम्राट की स्पेशल ट्रेन आने के पहले ही भारत के राजा, मान्य पुरुष और वाइसराय

सलीमगढ़ स्टेशन पर स्वागत के लिए उपस्थित थे। स्टेशन की शोभा भी निराली ही थी।

## सम्राट का दिल्ली में आगमन।

ठीक दस बजे महाराज की स्पेशल स्टेशन पर आ पहुँची। सम्राट और सम्राज्ञी के गाडी से उतरते ही गवर्नर जनरल और उनकी पत्नी ने राजदम्पति का स्वागत किया। इधर किले से १०१ तोपों की सलामी शुरू हुई। लार्ड हार्डिज की कन्या मिस डायमण्ड हार्डिज ने सम्राज्ञी को एक पुष्पगुच्छ दिया। इसके बाद कई भव्य सज्जनों की महाराज से भेंट कराई गई। इसी राज्या में से उदयपुर के महाराज आदि सम्राट के सन्मुख गये और सम्राट ने उनसे दो चार शब्दों में वार्तालाप किया। सन् ५७ के बलवे के समय के वृद्ध सिपाहियों में से एक अँगरेज और दो भारतीय सिपाही सम्राट से मिले। कहते है कि सम्राट जार्ज ने उनसे हाथ मिलाया और प्रेमपूर्ण वार्तालाप किया, इसके बाद



रुई का फाटक (बम्बई)

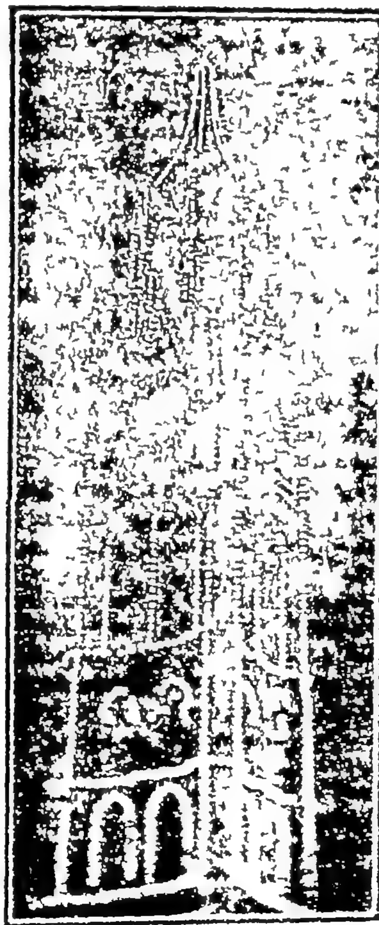
## राजाओं का स्वागत-समारम्भ

हुआ। यह समारम्भ भावलपूर के नवाब के दिये हुए रूपे के खम्भोंवाले, उत्तम कलाबत्तू के कामवाले, अत्यन्त शोभावान और भव्य शामियाने में होनेवाला था, परन्तु इसके पहले मंगलवार के दिन आग लगने से वह शामियाना भस्म हो चुका था, अतएव उसी समय खडे किये हुए एक तम्बू में यह समारम्भ हुआ। आगे बैंडवाले, उनके पीछे हेरल्ड, एडिकाग, सम्राट के सेवक, लार्ड और लेडी हार्डिंज, लार्ड क्रू, फिर सम्राट और सम्राज्ञी—इस क्रम से जलूस स्टेशन से उक्त तम्बू पर आया। सम्राट और सम्राज्ञी सुशोभित उच्चासन पर स्थित हुए। भारत के राजा महाराजा आदि दरबारी पोशाक पहने हुए और अलंकारों से विभूषित उस स्थान में पहले ही से जमा हो गये थे। निजाम, गायकवाड, मैसूर, और काश्मीर के महाराज तथा अन्य राजाओं की सम्राट से भेंट हुई। भावलपुर के नवाब अल्पवयस्क है। उन्हे देखकर उस समय सम्राज्ञी मेरी ने मुसकरा दिया। इस पर एक ऍगलो इंडियन पत्र कहता है कि कदाचित् यदि उक्त बाल नवाब को कुछ डर लगता होगा तो महारानी की इस मुसकराहट से दूर हो गया होगा। यह बात पहले ही प्रकट कर दी गई थी कि सम्राट किसीसे नजर नजराने नहीं लेंगे तथापि उक्त समय में एक राजा साहब की राजभक्ति में इतनी बाढ आ गई कि वह आज्ञा भूल कर उन्होंने अपने कमर की जरीदार कलाबत्तू के काम की बहुमूल्य शाल निकाल कर सम्राट के चरणों में रख दी और इस अभिमान से, कि अब हमारा कर्तव्य पूर्ण हुआ, बडे गहरे डग रखते हुए अपनी जगह पर आकर खडे हो गये। अस्तु। इस प्रकार राजाओं की भेंट हो जाने पर

## सम्राट का भारी जलूस

निकला। महाराज जाज कुम्मैद रंग के अश्व पर सवार हुए, और महारानी छै घोडों की "लैंडो" नामक गाडी में बैठी। तोपों की सलामी के साथ सवारी का क्रम इस प्रकार बना — आगे एडिकाग, ग्वालियर के महाराज, बीकानेर के महाराज और रामपुर के नवाब, इनके पीछे सम्राट और लार्ड क्रू, फिर महारानी साहब और आपकी गाडी की दाईं ओर जोधपुर के सर प्रताप सिंह थे। इनके बाद क्रमश 'इम्पीरियल कैडेटकोर' के रजपुत्र, भिन्न भिन्न राजा लोग, इत्यादि थे। चर्च किंग वे जुम्मा मसजिद आदि में होता हुआ सुप्रसिद्ध चांदनी चौक में पहुँचा। मकानों की अट्टालिकाएँ और ऊँचे आले लोगों के समाज से पूर्ण दिखाई देते थे, पर्दनशीन और पर्दे की ओट में सवारी देख रही थीं। यहां इतनी गल्ला तग था कि लोग बढे हुए थे, और प्रेक्षक लोगों का समाज अधिक था, अतएव सम्राट बिलकुल लोगों के समीप ही से निकले। एक एंग्लोइंडियन लेखक कहता है कि यह जनसमूह के इतने समीप कभी भी सम्राट का जाना सम्भव नहीं था।

यह एक महत्व की बात है कि इस दरबार में भारतीय प्रजा के प्रतिनिधियों का भी दरबार के सरकारी कार्यक्रम में प्रवेश था। यह बात पूर्व के दो दरबारों में नहीं थी। इससे जान पडता है कि मध्यम दर्जे के लोगों का भी गौरव स्वीकार कर के सरकार राजकीय महत्वाकांक्षाओं का आदर करना चाहती है।



दीपावलियों का एक दृश्य (बम्बई)

## भारत के प्रतिनिधियों का मानपत्र

इसी बार पहले पहल दिल्ली में सम्राट के सन्मुख आया। एक सुन्दर खुले नाटकगृह में वाइसराय के कौंसिल के सभासद और अन्य प्रान्तों के अधिपति तथा लोकप्रतिनिधि जमा हुए। इसके बाद महाराज के हेरल्ड, तीन अश्वारोही और फिर स्वयं महाराज आये। महारानी की गाडी की बाट जोहते हुए महाराज खडे रहे। महारानी के आ जाने पर वाइसराय की कौंसिल के बाहस प्रसिडेन्ट मि० जे० एल० जेकिन्स ने मानपत्र पढा। उसका भावार्थ यह है कि, 'हम लोग भारतीय लोगों की ओर से आप का हृदय से स्वागत करते है। इस प्राचीन और ऐतिहासिक नगर में पहले अनेक बड़े बड़े राजा महाराजा हो गये, पर आपके समान एकछत्र राज्य किसीका नहीं था। अतएव आपका यह आगमन अपूर्व और सस्मरणीय है। भारतीय प्रजा में राजभक्ति का गुण स्वाभाविक है। इस प्रकार की राजभक्त और निष्काम प्रजा आपके सम्पूर्ण साम्राज्य में और कहा नहीं मिल सकती।" इस पर

## सम्राट का उत्तर

इस प्रकार है— "राजभक्ति और कर्तव्य तत्परता दर्शक जो मानपत्र आप लोगों ने अभी दिया उसके लिए हम महारानी सहित आपको हृदय से धन्यवाद देते है। इस मानपत्र के शब्द हमारे अन्तःकरण में बहुत दूर तक पहुँच गये है। इस मानपत्र की भाषा में भारतीय प्रजा के उस प्रेम और अभिनन्दन का स्मरण आता है जो उसने हमारे राज्यारोहण के समय प्रकट किया। भारतीय लोगों की ओर से आप लोगों ने जो हमारा स्वागत किया उससे हम बहुत प्रसन्न हुए है। और आप के दिये हुए मानपत्र के शब्दों में ही यदि कहना है तो हम इस प्रकार अपना हृदय प्रकट करते है कि, "शान्ति, वैभव और समाधान के मार्ग से भारत की बराबर उन्नति होती रहे—इस इच्छा के समान उत्कट और निकट इच्छा हमारे हृदय में दूसरी कोई भी नहीं है।"

महाराज का भाषण समाप्त होने पर बैंड शुरू हुआ, राष्ट्रगीत का गान

हुआ। महाराज की सवारी कैम्प को चली गई। दोपहर के समय फिर

## राजाओं की भेट

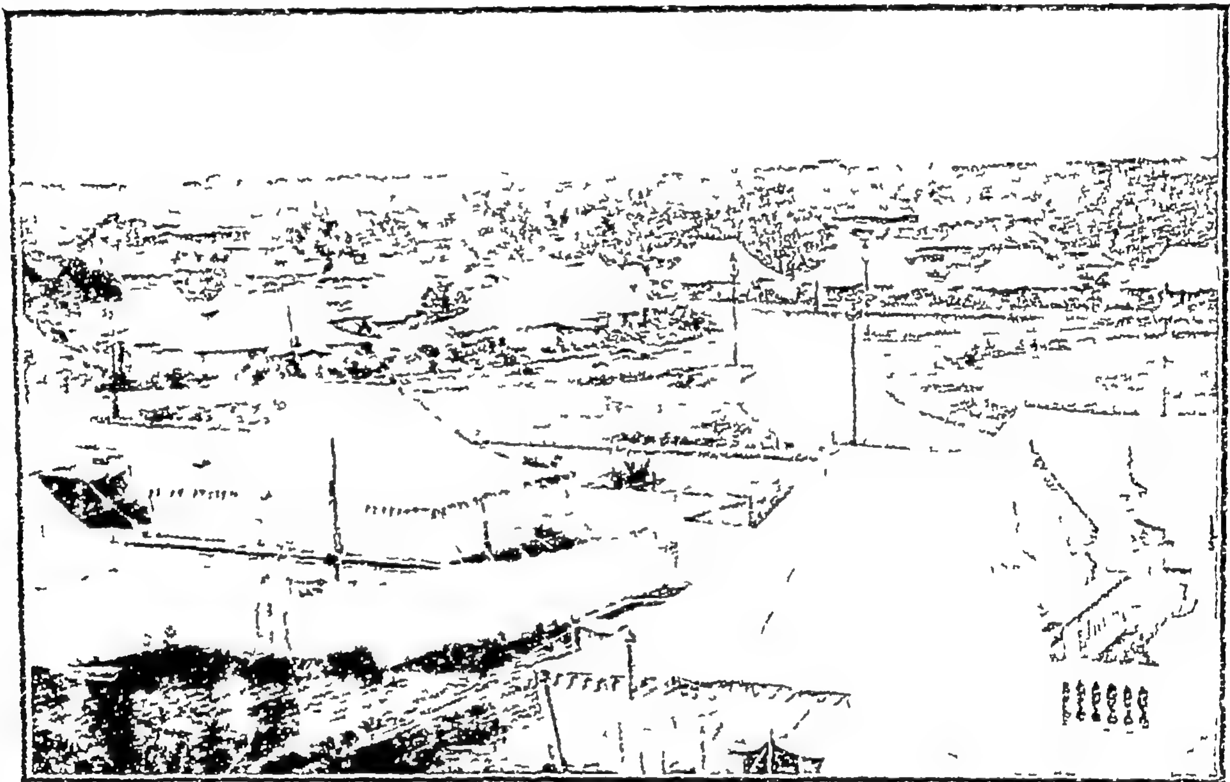
हुई। निजाम, मैसूर बड़ोदा, उदयपुर, बीकानेर, जयपुर, किशनगढ़, टाँक बूँदी कोटा, अलवर, सिरोही, जैसल्मेर, डूँगरपुर, इत्यादि राज्यों के अधिपति क्रमशः सम्राट से मिले, और सम्राट ने प्रत्येक से थोड़ी देर तक वार्ता कर के प्रेम प्रकट किया। इधर महारानी साहब सर जान हिवेट के साथ किले की इमारत देखने गई थीं।

शुक्रवार ता० ८ दिसम्बर को सुबह महाराज के पास आये हुए और कुछ राजाओं की भेट हुई। त्रावनकोर, कोचीन काश्मीर गवालियर, इन्दौर रीवा उरछा धार, देवास पटियाला भावल्पुर नाभा भूटान सिक्किम किलात आदि के राजाओं और भूपाल की बेगम ने महाराज से भेट की। इधर सम्राज्ञी मेरी कुतुबमीनार आदि देखने गई थीं।

दिल्ली में जुम्मा मसजिद और किले के बीच में जो मैदान है उसमें कुल १५००० लोगों के चन्दे से जमा हुए ५००००० रुपये मूल्य का

## स्वर्गीय महाराज एडवर्ड का स्मारक

बननेवाला है। इस स्मारक में महाराज की ब्रंज धातु की मूर्ति खड़ी की जायगी। यह मूर्ति अभी तैयार नहीं हुई। तथापि ८ दिसम्बर को दोपहर के समय बड़ी धूमधाम के साथ सम्राट जार्ज के यशस्वी हाथ से स्मारक के चबूतरे की नींव का पत्थर रखवा दिया गया। स्मारक की कार्यकारिणी सभा की ओर से लार्ड हार्डिज ने सम्राट के सन्मुख एक मानपत्र पढ़कर सुनाया। उसका सारांश यह है कि 'महाराज एडवर्ड के राज्य में भारतीय प्रजा ने बहुत सुखशान्ति प्राप्त की। उनके स्मारक में यह मूर्ति स्थापन कर के प्रजाजन अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इस स्मारक में हजारों श्रीमान और गरीब राजभक्त लोगों ने चन्दा दिया है।' इस मानपत्र पर सम्राट का उत्तर इस प्रकार है —आपने जो मानपत्र पढ़ सुनाया उससे मेरा अन्तःकरण भर आया है। मेरे परम पूज्य पिता ने हम सब पर जो उपकार किये हैं उनका स्मरण इस समय जाग्रत हो उठा है। हमारे कुटुम्ब के प्रथम पुरुष वही हैं जो भारत में आये और उन्हीं की आज्ञा से अभी कुछ वर्ष पहले मैं इस गौरवपूर्ण और विलक्षण देश में आया। अहा! उस समय कौन जानता था कि उनके स्वर्गवास पर इतनी जल्दी हम लोगों को शोक करना पड़ेगा! यह जानकर मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है कि हमारी भारतीय प्रजा में से हजारों गरीब और श्रीमान लोगों ने इस स्मारक में योग दिया है। स्वर्गवासी महाराज के हृदय में भारत-विषयक जो अत्यन्त प्रेम वास करता था उसका ऐसा भक्तिपूर्ण प्रत्युत्तर उनके भारतीय बालकों की ओर से मिल रहा है, इस पर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है" इत्यादि



सम्राट और सम्राज्ञी का कैम्प–(दिल्ली)

स्मारक की नींव डालने की विधि समाप्त होने पर सम्राट अपने कैम्प को पधारे। सध्या समय फिर कुछ राजाओं की भेट हुई। रात को सम्राट के कैम्प में भोजन समारम्भ हुआ। कई राजा और 'माननीय' लोगों को इस समारम्भ में शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

शनिवार ता० ९ को सुबह फिर कई राजाओं ने सम्राट की भेट की। इस अवसर की भी एक विचित्र बात प्रसिद्ध हुई है। जयपुर के महाराज ने अपनी भेट के समय अपनी तलवार सम्राट के चरणों के पास रख दी और स्वयं नीचे न बैठकर वैसे ही खड़े रहे। सम्राट ने जब कहा कि 'कुर्सी पर बैठो' तब राजा साहब ने उत्तर दिया कि "मुगल बादशाहों के सामने हमारे पूर्वज बैठते न थे, फिर आप तो सब से बड़े मुगल बादशाह से भी श्रेष्ठ हैं, आपके सामने मैं कैसे बैठूँ?" अन्त में जब सम्राट जार्ज ने कुर्सी पर बैठने के लिए राजा साहब से बहुत ही आग्रह किया तब आप कुर्सी पर बैठ गये। दोपहर को सम्राज्ञी के पास

## भारतीय महिलाओं का डेप्युटेशन

आया। सम्राज्ञी ने उसका स्वागत कर के उसके मानपत्र का स्वीकार किया। इस अवसर पर मुगलों के समय का एक बहुमूल्य रत्नालंकार तथा एक रत्नों और हीरों का कंठा भारतीय स्त्रियों की ओर से सम्राज्ञी को अर्पण किया गया। इसका प्रयत्न पटियाला के महारानी ने किया था। इस समारम्भ में पटियाला, कपूर्थला, भोरभुज, विजयानगरम आदि की रानियाँ, जंजीरे की बेगम, लेडी हरनामसिंह, लेडी ताता, लेडी मेहता, मिसेस् सिंह, मिसेस दादाभाई, मिसेस् मुधोल्कर आदि स्त्रियाँ उपस्थित हुई थीं। कहते हैं कि इन स्त्रियों के तरह तरह के रंग बिरंग वस्त्रों और मूल्यवान अलंकारों की ओर महारानी का ध्यान गया था। परन्तु सम्राज्ञी इस स्त्रीमण्डल में सिर्फ इस काम भर के ही लिए रही थीं। पहले लेडी हार्डिंज ने स्त्रियों की तरफ से मानपत्र पढ़ सुनाया। इसके बाद महारानी पटियाला ने उपर्युक्त आभूषण सम्राज्ञी को अर्पण किये। आभूषण एक ओर रख कर सम्राज्ञी ने अपना पहले ही से तैयार किया हुआ भाषण पढ़ सुनाया।

## सम्राज्ञी का भाषण

इस प्रकार था —आप लोगों ने जो स्वागत किया उसकी मनोवृत्ति इतनी सुन्दर है कि उसका मेरे मन पर बहुत परिणाम हुआ है। इस स्वागत के लिए मैं आप लोगों को हृदय से धन्यवाद देती हूँ। आशा है कि मेरा यह धन्यवाद और सहानुभूति आप लोग हमारे साम्राज्य के सब भगिनीवर्गों पर प्रकट कर देंगी। इस बात का वर्णन इतिहास में मिलता है कि भारतीय स्त्रियाँ अपने गौरव से घर के कितने सुन्दर काम करती हैं। अब पर्दे के भीतर ही भीतर भारतीय महिलाओं में जो उत्क्रान्ति हो रही है उसे सुनकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। मुझे विश्वास हो गया है कि आप लोग अपने बच्चों को उत्तम शिक्षा देने की

इच्छा रखती हूँ। आप लोगों के दिये हुए इन आभूषण में सदा बहुमूल्य समझूँगी, और इन्हें जब मैं पहनूँगी तब—बीच में हजारों मील लम्बा चौड़ा समुद्र भले ही फैला रहे, तथापि—मेरा विचार भारत के घरों की ओर दौड़ आवेगा, और आप लोगों के कोमल हृदय ने जो प्रेम मेरे विषय में दिखलाया है उसका स्मरण होगा। ये आभूषण साम्राज्य के अधिकारियों को पीढ़ी दर पीढ़ी मिलते रहेंगे, और वे इन्हें बड़ी आदर की दृष्टि से देखेंगे, क्योंकि इँगलिश रानी की भारतीय महिलाओं से जो पहली भेंट हुई है उसके स्मारक में ये आभूषण उनके सन्मुख रहेंगे। महाराज के विषय में और मेरे विषय में भारतीय भगिनियों ने जो अभिनन्दन और सदिच्छा प्रकट की है उसके लिए मैं फिर एक बार धन्यवाद देती हूँ।"

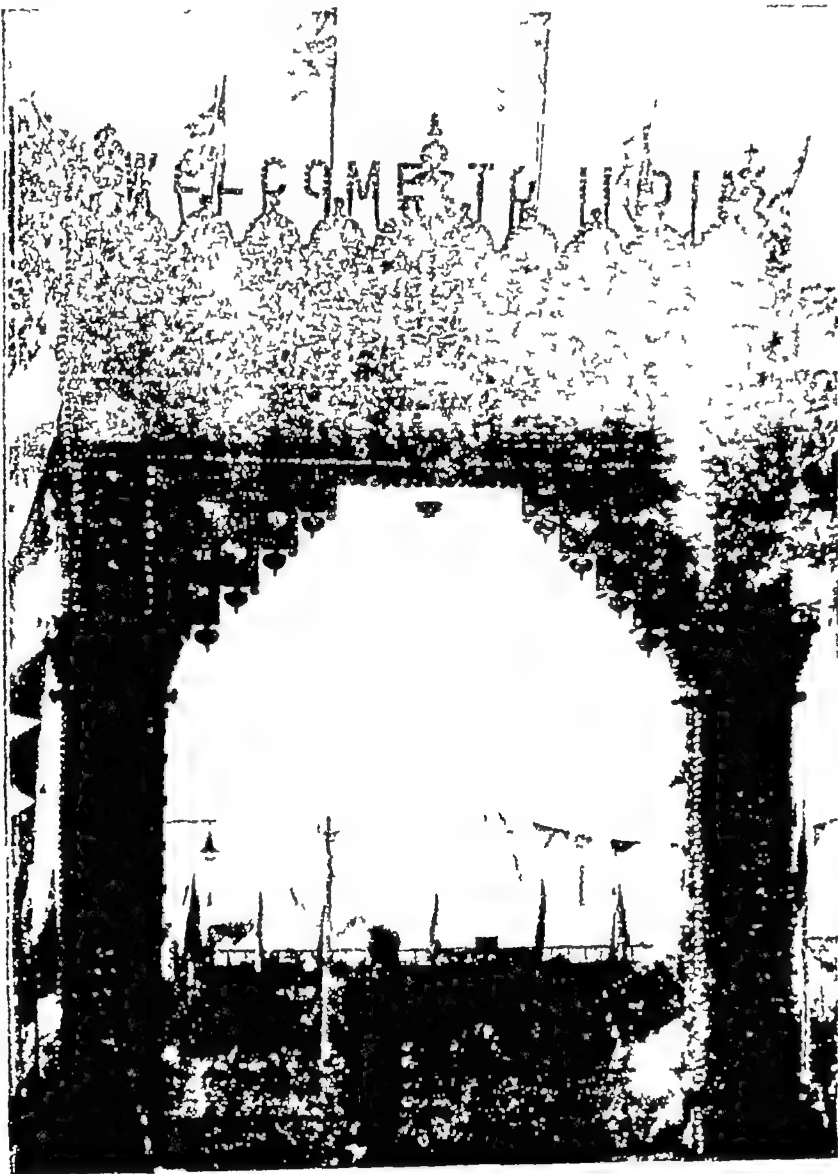
भाषण समाप्त होने के बाद प्रत्येक भारतीय रमणी ने अपने अपने समाज के नियमानुसार विनीत होकर सम्राज्ञी को नमस्कार किया। सम्राज्ञी ने भी सब से हाथ मिलाया और अन्त में एक बार झुक कर सब को सलाम करते हुए वे अपने कैम्प को चली गईं।

दोपहर को सम्राट और सम्राज्ञी सोरजरा के फुटबाल और पोलो के खेल देखने को गईं। रात को भोजन के बाद 'पोलोग्राउंड' पर महाराज 'टट्टू' नामक फौजी खेल देखने गये। इस खेल में हाथ में मशालें लिए हुए इधर उधर दौड़ना और नाचना होता है, इधर अँगरेजी बाजे बजते रहते हैं, बीच बीच में बड, ड्रम तथा अन्य कुछ बाजे एक पलटन बजाती है और फिर दूसरी पल्टनें भी उसी प्रकार बजाती हैं।

१० दिसम्बर को रविवार था। इस दिन सम्राट सिर्फ विश्रान्ति लेते हैं। अतएव उस दिन कोई कार्यक्रम नहीं रक्खा गया था। सायंकाल में ईश्वरोपासना हुई। उस समय सम्राट भी उपस्थित थे। इस अवसर पर आठ हजार ब्रिटिश सोलजर आये थे।

११ सितम्बर को सम्राट ने ९ फौजी पल्टनों को झंडे दिये। जिनमें से सात पलटनें अँगरेजी और दो भारतीय लोगों की थीं। भारतीय दो पल्टनों को झंडे देते हुए सम्राट ने कहा कि "पल्टनों के झंडे कितने ही युगों तक युद्ध में योद्धा लोगों के एक जगह एकत्र होने के केन्द्रस्थान माने जाते थे। उन्हें देखकर प्राचीन योद्धाओं के शौर्य कार्यों का स्मरण होता था। आशा है कि इन झंडों को देखकर तरुण योद्धाओं को नवीन पराक्रम दिखलाने और अपने राजा की भक्तिपूर्वक सेवा करने की स्फूर्ति आवेगी, और तुम ऐसे कोई कार्य, कि जिनसे तुम्हारे पूर्वजों के अभिमाननीय कार्यों में कालिमा लगती हो, न करके सदा उनका बड़प्पन कायम रक्खोगे।" इसके बाद दोपहर को सम्राट सम्राज्ञी के साथ 'पोलो' का खेल देखने गये। विजयी पक्ष को सम्राज्ञी के हाथ से एक 'कप' प्राप्त करने का सौभाग्य मिला।

जिस दरबार का प्रबन्ध करने के लिए सरकार के बड़े बड़े अफसर आज इतने दिनों से श्रम उठा रहे थे, जिस दरबार के लिए भारतीय सरकार ने प्रजा के लाखों रुपये खर्च कर डाले, जिस के लिए देश देश के लोग दिल्ली में दौड़ आये उस



नक्काशदार एक सुन्दर फाटक-(दिल्ली)

## दिल्ली दरबार का दिन

ता० १२ दिसम्बर को आ पहुँचा। इसके पहले दिन रात को कृष्ण मेघों से आकाश आच्छादित हो गया था। इस कारण सब के मन में इस प्रकार की चिन्ता का सञ्चार हो गया था कि कहीं दरबार के अवसर पर ही जलवृष्टि होकर रंग में भंग न हो जाय। पर परमात्मा की कृपा से, और सम्राट के प्रताप से, मेघ तितर बितर हो गये और दरबार के समय आकाश बिल्कुल स्वच्छ हो गया। दरबार के कैम्प में सुबह से ही गड़बड़ उठ गई। राजा महाराजा और सर्वसाधारण लोगों के हृदय में यह धकधक मची थी कि अब कैसे जायँ, कैसे बैठें, ऐसा न हो कि बीच में हम से कुछ न बन पड़े और हम गड़बड़ी में पड़ें। अस्तु। दरबार के लिए जो

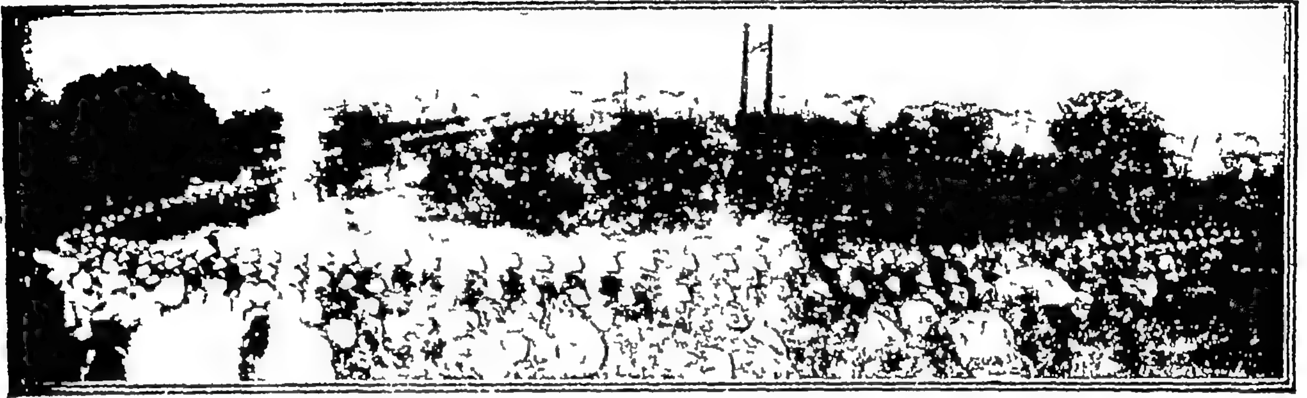
## एम्फी थियेटर

तैयार हुआ था वह बहुत ही विस्तीर्ण और भव्य था। वह कुछ अर्द्धाकार बना हुआ था और बैठने की जगह क्रमशः ढाल रक्खी गई थी। दक्षिण की ओर खुदावदार काठ की एक सुन्दर इमारत थी। उस पर छोटे छोटे गुम्बज थे और इसके पास ही पर्दानशीन स्त्रियों के बैठने का स्थान था। उत्तर की ओर पूर्ण अर्द्ध वृत्ताकार ढालू स्थल बनाया गया था। बस्ती बीच में रह भाग कर के छै हजार लड़कों और आठ हजार प्रेक्षकों के लिए जगह तैयार की गई थी। कुल नाटक-गृह के सामने बड़े वृत्त का व्यास छै सौ गज था। दरबार में विशेष मान के प्रेक्षक बारह हजार आये, बीस हजार फौज इसी मैदान में रही और पचास हजार लोगों को इसी में सुभीता हुआ। नाटकगृह के दक्षिण ओर मध्यबिन्दु के पास संगमरमर पत्थर के चबूतरे पर एक सुन्दर उच्चासन तैयार किया गया था। इसके खम्भे और गुम्बज सुनहरी थे। यहीं सम्राट और सम्राज्ञी के सिंहासन थे और यहाँ से दरबार के शामियाने तक जाने आने का मार्ग था।

पहले ड्रम और बिगुल बजाती हुई सेना सवार होकर आई। इस सेना ने किंग्स वे से लेकर प्रिंसेस रोड तक की जगह घर ली थी। सेना दरबार के मैदान में आ दाखिल हुई। बालंटियरों की पल्टन महाराज के सिंहासन से कुछ ही दूर जाकर खड़ी हुई। इसके बाद विद्यार्थी लड़के अपनी जगह पर आकर बैठे, और हजारों लोगों ने आकर अपनी जगहों पर अधिकार किया।

इसके बाद भिन्न भिन्न जगहों के, तरह तरह के वस्त्र पहने हुए, अनेक अलंकार धारण किये हुए और नाना प्रकार के शिरोभूषण पहने हुए राजा लोग आये। इसके बाद भिन्न भिन्न प्रान्तों के अधिपति अँगरेज अपने अपने परिवारों के सहित आकर अपने अपने स्थानों में स्थित हुए। इसके बाद भारत के स्टेट सेक्रेटरी लार्ड क्रू और सम्राट के साथी आये। तत्पश्चात् भारत के गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग अपनी पत्नी सहित आ उपस्थित हुए। इनके आते ही सब दर्शकों ने खड़े होकर तालियाँ पीटीं। इसके बाद सम्राट और सम्राज्ञी का आगमन हुआ। आपके साथ कुछ सैनिक, बाडीगार्ड और इम्पीरियल कैडेटकोर के लोग थे। सम्राट और सम्राज्ञी के ऊपर सुनहले छत्र रक्खे गये थे। आपके आते ही तोपों की सलामी शुरू हुई और बड़ा एकत्रित हुए हजारों प्रेक्षक एकदम

खड़े हो गये, और सब ने नम्रतापूर्वक सम्राट को सलाम करके जयजयकार किया। नाटकगृह के सब से पीछे की ओर एक ऊंची टेकडी पर दिल्ली के सर्वसाधारण लोग आकर बैठे थे। जिधर लड़के बैठे हुए थे उधर से सम्राट दरबार के शामियाने की ओर गये। बाजेवालों ने बाजा की धूम मचा दी और लार्ड हार्डिंज ने आगे बढ़कर सम्राट का स्वागत किया। उरछा के वीरसिंह, भरतपुर के महाराज कृष्णसिंह, भूपाल की बेगम साहबा के नाती कादर जाफर खां, जोधपुर के महाराज विजयेशसिंह, ईडर के हिम्मतसिंह और बीकानेर के महाराज कुमार ने सम्राट का झगा उठाया था। सम्राज्ञी के झगे के सिरे पाली थाना के ठाकुर और रीवा के महाराज-कुमार ने उठाया। सम्राट और सम्राज्ञी ने इस आवसर पर अपने दरबारी झगे और राजमुकुट धारण किये थे। सम्राट का मुकुट हीरा, माणिक और इन्द्रनील मणियों से सुशोभित चमचमा रहा था। सम्राज्ञी के सफेद साटन के वस्त्र जिन पर कलबत्तू के बेलबूटे कढ़े हुए थे,



सम्राट और सम्राज्ञी के जलूस का कुछ भाग ( दिल्ली )।

निराली शोभा दे रहे थे। आपके मुकुट की शोभा भी अपूर्व थी। सम्राज्ञी ने हीरा और माणिक के कड़े भी धारण किये थे। सिंहासन पर बैठने के पूर्व सम्राट और सम्राज्ञी ने झुक कर उस प्रचण्ड जनसमुदाय का सन्मान स्वीकार किया। सम्राट की आज्ञा पाकर ड्रम और बैंड की ध्वनि के साथ

दरबार का प्रारम्भ

हुआ। तुरन्त ही सम्राट और सम्राज्ञी खड़ी हो गईं। पीछे से सेवक लोग उनके सिर पर सुन्दर छत्र रखे हुए थे और चित्रविचित्र मयूरपुच्छों की मुठल और शुभ्र चवर चल रही थीं। सम्राट की दाहनी ओर कुछ पीछे हटकर लार्ड



लार्ड हार्डिंज का कैम्प ( दिल्ली )।

हार्डिंज खड़े थे और उनके पीछे सम्राट के मुसाहिब ( Pages ), दूसरे साथी, आदि कुछ लोग थे। सब को यह उत्कंठा लगी हुई थी कि देखें सम्राट अब क्या बोलनेवाले हैं। इतने ही में अपनी प्रभावशालिनी और उच्च वाणी से सम्राट ने अपने व्याख्यान का प्रारम्भ किया। यह सब प्रचण्ड जन-समूह बिल्कुल शान्त होकर

सम्राट का भाषण

ध्यानपूर्वक सुन रहा था। उनके भाषण का सारांश इस प्रकार है—धन्यवाद और सन्तोष की सच्ची मनोवृत्तियों से प्रेरित होकर आज हम आप लोगों के सामने खड़े हुए हैं। यह वर्ष हमारे और महारानी के लिए यद्यपि उत्सव पूर्ण और सुखकारक हुआ है, तथापि श्रम भी खूब हुआ है। गत बार जब हम भारत में आये तब घर की तरह हमारा प्रेमपूर्ण आगत स्वागत किया गया, अतएव बड़े उत्साह और आशा से इस बार हम यहां आये। गत जुलाई महीने के अपने सन्देश में हमने जो अपनी मनीषा प्रकट की थी वह आज पूर्ण हुई है। आज यह प्रकट करने की मेरी उत्कट इच्छा है कि भारतीय प्रजा के सम्बन्ध में हमारे हृदय में कितना प्रेम भरा है और भारतीय साम्राज्य का कल्याण और सुख हमें कितना प्रिय है। दूसरी यह इच्छा भी है कि विलायत में हमारे राज्यारोहणोत्सव के समय जो लोग नहीं उपस्थित हो सके वे भी यहां हाजिर हो सकें। आज यह विस्तृत जनसमुदाय, जिसमें राजा महाराजा और उच्च अँगरेज अधिकारियों से लेकर सामान्य प्रजा तक शामिल है, देखकर हम और महारानी को असीम आनन्द हो रहा है। हमें सन्मान देने अथवा राजभक्ति प्रकट करने की इन सब की जो सदिच्छा है उसका मैं सन्तोषपूर्वक स्वीकार करनेवाला हूं। इस ऐतिहासिक प्रसंग पर हममें और भारतीय राजाओं तथा अन्य लोगों में, सहानुभूति भावना और प्रेमल सदिच्छा से, जो ऐक्यभाव उत्पन्न हो रहा है उसके विचार ने मेरे हृदय पर गहरी छाप बैठा ली है। इस मनोवृत्ति के निदर्शन में हमने यह निश्चय किया है कि इस अवसर पर कुछ विशिष्ट राजकीय दान देकर यह राज्यारोहणोत्सव विशेष सुशोभित और संस्मरणीय किया जाय। वे राजकीय दान आज मैं गवर्नर जनरल के द्वारा प्रकट करनेवाला हूं। अन्त में, इस बात पर हम बड़ा आनन्द हो रहा है कि हमारे पहले के साम्राज्याधिपतियों ने, आप लोगों के अधिकार अबाधित रखने के विषय में जो प्रतिज्ञाएं की थीं उन्हें आज फिर आप लोगों के सन्मुख दुहराने का अवसर मिला है। परमात्मा हमारी प्रजा का सदा रक्षण करे और उसके सुख तथा वैभव की वृद्धि के लिए जो मैं पराकाष्ठा का प्रयत्न करूंगा उसमें हमें वह सहायता दे। यहां जो राजा लोग और प्रजागण उपस्थित हैं उन्हें हम अपना प्रेमपूर्वक करते हैं।'

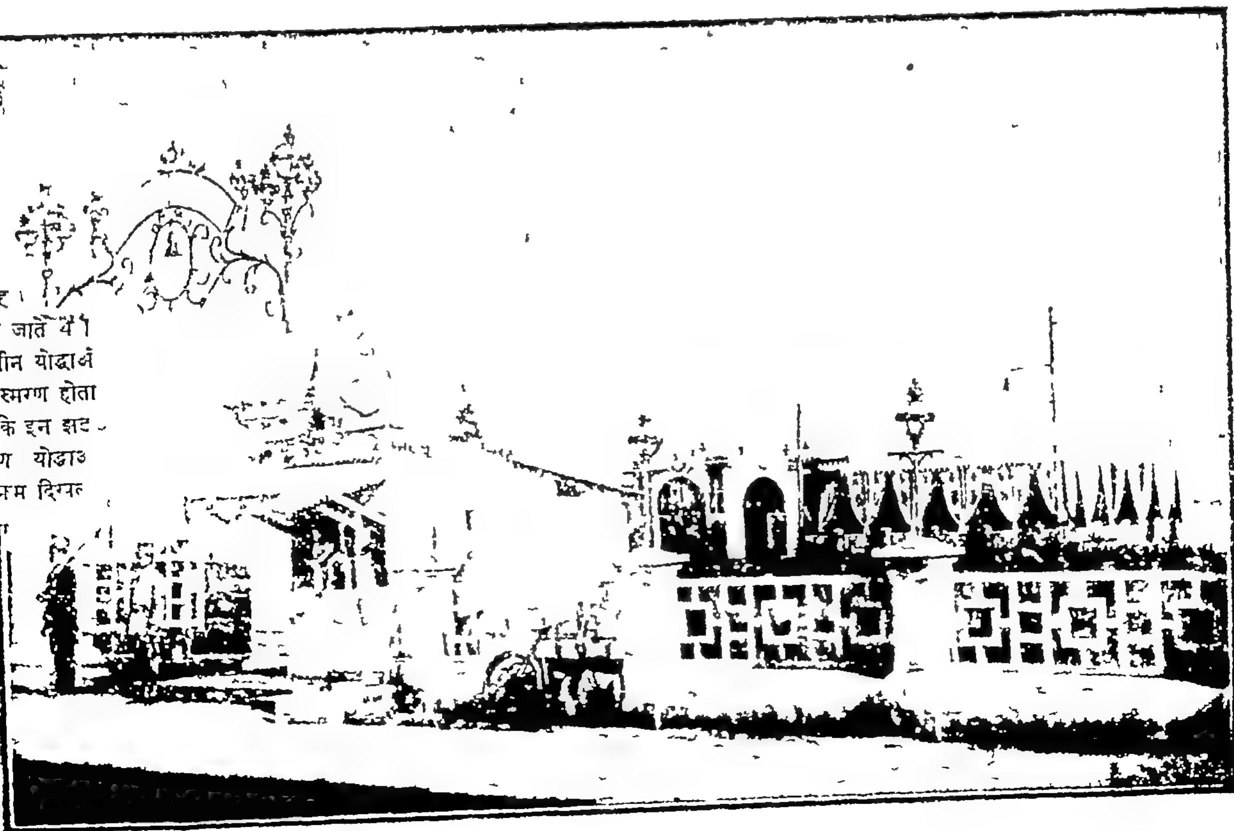
महाराज का भाषण समाप्त होने पर क्षणभर नाटकगृह में स्तब्धता ही रही, पर तुरन्त ही सब लोग खड़े होकर तालियाँ पीटने लगे। इस शब्द से आकाश गूँजने लगा। इसके बाद सम्राट के विषय में अपनी राजभक्ति और

स्वामिनिष्ठा व्यक्त करने की विधि

शुरू हुई। पहले गवर्नर जनरल सिंहासन के सामने आये और तीन बार क्रमशः थोड़ा थोड़ा आगे बढ़कर नम्रतापूर्वक सम्राट की अधीनता स्वीकार की। उनके बाद कमांडर इन्-चीफ्, गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी सभा के सभासद, अपनी अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल क्रमशः निजाम, गायकवाड़ इत्यादि राजा लोग, प्रान्तीय गवर्नर और प्रतिनिधि लोग, आदि सभी ने क्रमशः सम्राट के



ने
दिये
अँगरे
लोग
पल्
मा
ने
मु
जगह।
माने जाते थे।
प्राचीन योद्धाओं
का स्मरण होता
है कि इन शट
तरुण योद्धाओं
पराक्रम दिखा
राज



निजाम-सरकार का कैम्प।

सम्मुख आकर अ
विधि कोई एक
बाद सम्राट और
साथ 'पेवेल्यियन
उच्च सिंहासन
अधिकारियों ने
की ओर बढ़कर
सम्राट की आज्ञा
पर जनरल पेटन ने

पढ़, सुनाया।
लिया जाना है।
की बाहर एक सौ
शुरू हुए। इधर
का अभिवादन
विधि समाप्त होने

राज

प्रकट करने के लि
बढ़े और उन्हों
विज्ञप्ति पत्र पढ़
ने स्वयं अपने
राजधानी-परिवर्तन
प्रकट की। ये रा
जयपत्र दिये जाते
उत्तर देने का आ

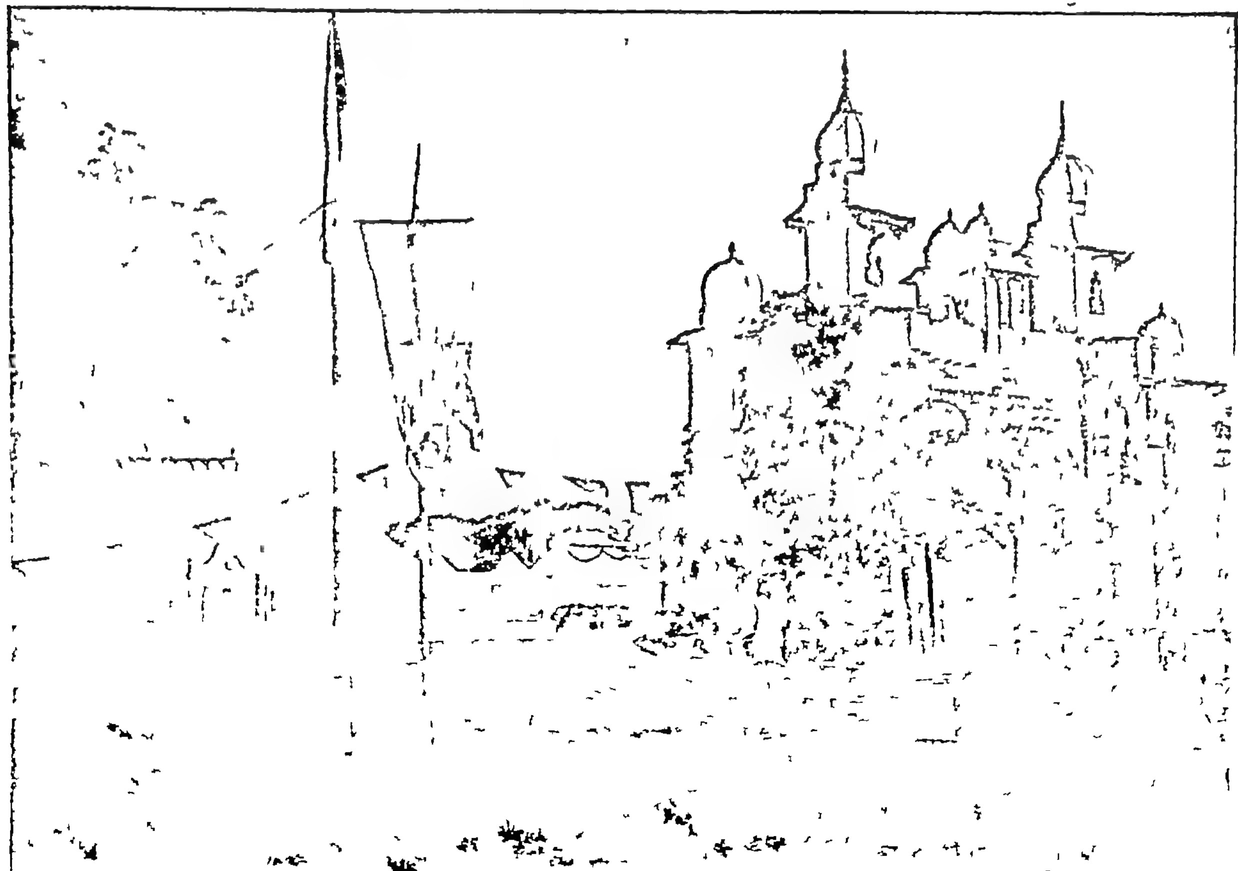
स्वीकार की। यह
होती रही। इसके
अपने सहचरों के
ओर जाकर अपने
जमान हुए। हेरल्ड
तीन बार नाटकगृह
गया। इसके बाद
हेरल्ड ब्रिगेडि-
धारुढ थे, सम्राट का

पत्र

दी-अनुवाद अन्यत्र
न के समाप्त होते
पों का सलामी
लोगों ने सम्राट
शुरु किया। यह
म्राट की आज्ञा से

दान

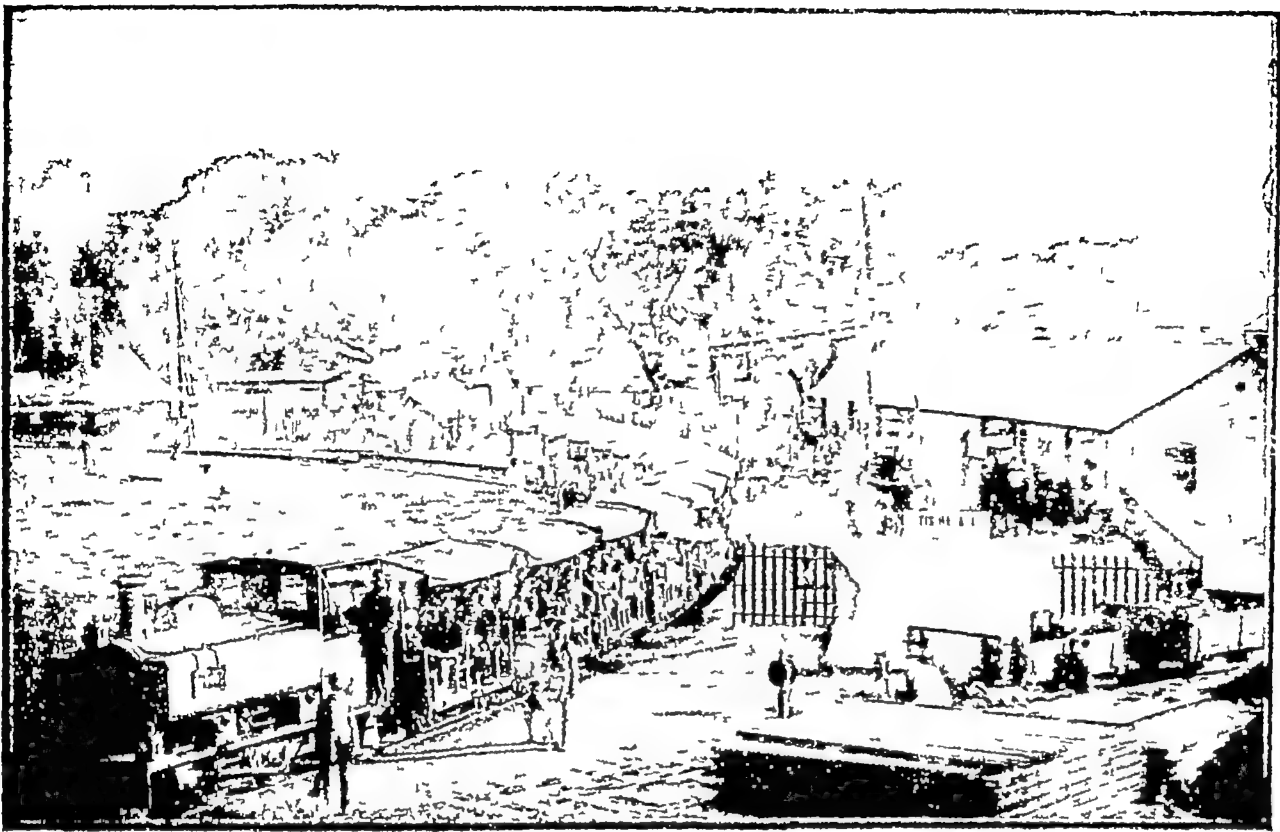
हार्डिंज आगे
र्कीय दाना का
इसके बाद सम्राट
यगभग-सुधार,
दि की सूचना
नविषयक वचन
यहां फिर
नहीं।



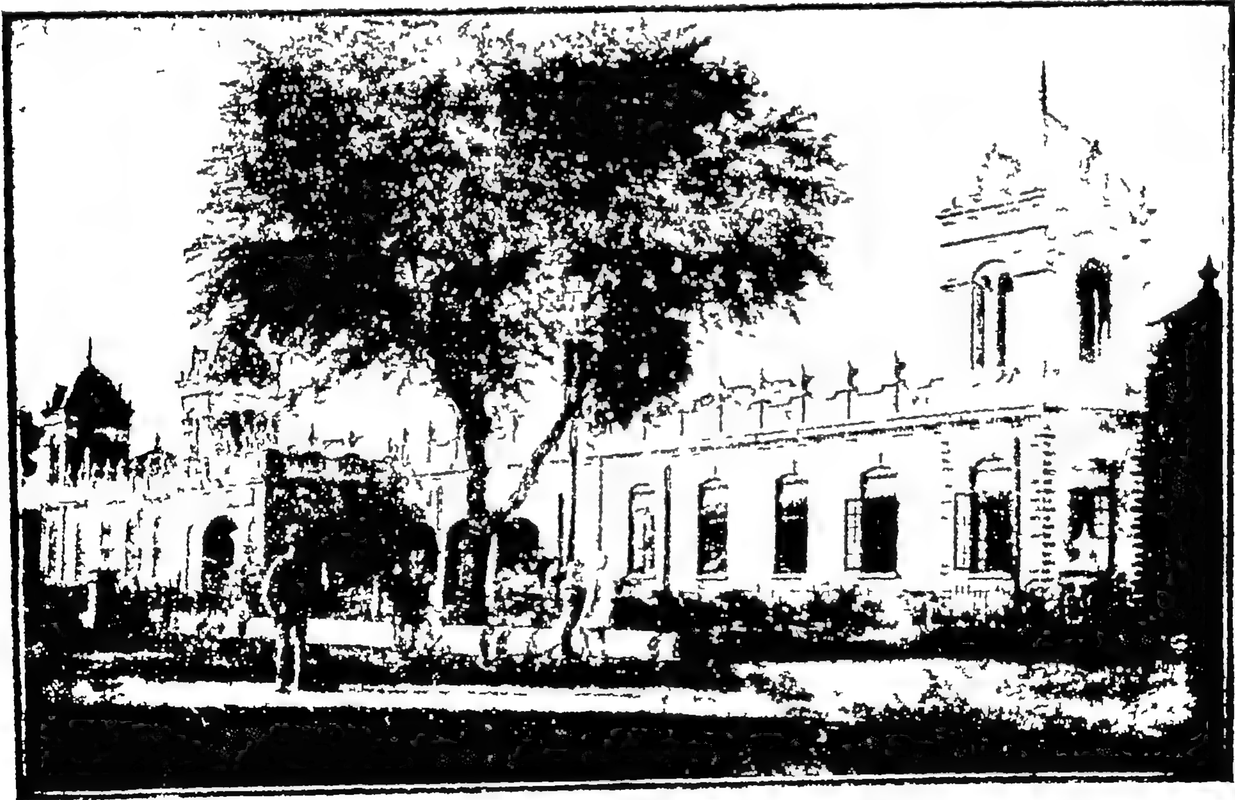
बड़ोदा-सरकार का कैम्प।

दरबार के दिन रात को सम्राट के कैम्प में वृहत् भोजन समारम्भ हुआ। अनेक राजा-महाराजा और सन्माननीय लोगों को इसमें शामिल होने का सौभाग्य मिला। उस प्रसंग पर लार्ड हार्डिंज ने स्वामिभक्तिपूर्ण एक वक्तृता दी।

दोपहर को सम्राट की सेवा में, एक दिल्ली की म्युनिसिपैलिटी और दूसरा बम्बई प्रान्त की ओर से, मानपत्र समर्पित किया गया। दिल्ली-मुनिसिपैलिटी का मानपत्र स्वीकार करते हुए सम्राट ने इस आशय का उत्तर दिया —



दिल्ली-दरबार-लाईट रेलवे।



दिल्ली दरबार-पोष्ट-ऑफिस।

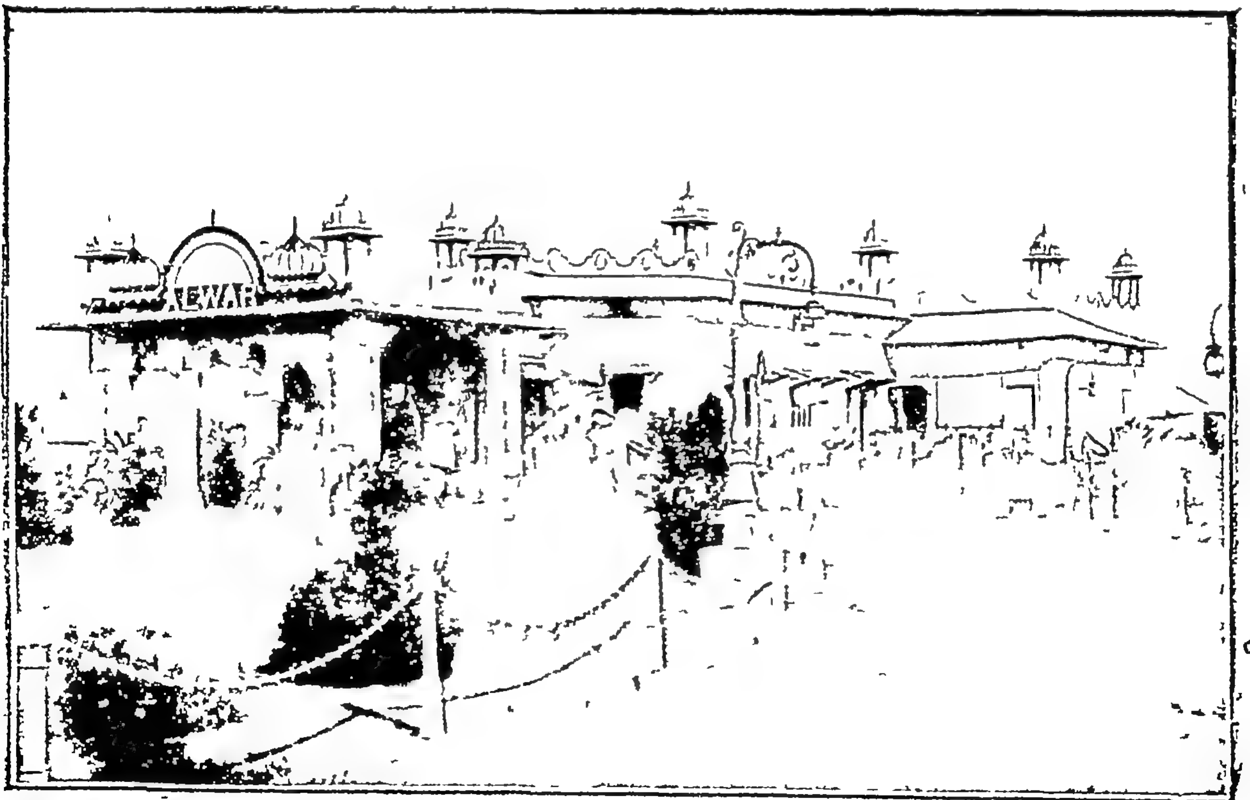
दरबार के दूसरे दिन, १३ दिसम्बर को सुबह सम्राट ने सैनिक लोगों और वालटियरों का अभिवादन स्वीकार किया। इधर सम्राज्ञी ने सर्किटहाउस में करीब सवा सौ रानियों का अभिवादन स्वीकार किया। रानियों में ...गम, बड़ोदा की महारानी और राजकुमारी इन्दिराराजा भी थीं।

" भारत के अधिकांश लोग कृषि पर अवलम्बित रहते हैं। इस वर्ष पानी न बरसने के कारण पहले अकाल का बड़ा डर था, पर अब अकाल की व्याप्ति मर्यादित हो गई है, इसके अतिरिक्त रेल और नहरों के कारण वर्तमान समय में प्राचीनकाल के समान अकाल फैलने का डर भी नहीं रहता। हमारे आगमन

के उपलक्ष में आप लोगों ने अपने शहर की जो शोभा बढ़ा रखी है उसे देख कर हम बड़े प्रसन्न हुए। पूर्वकाल में जो बड़े बड़े राजा और महाराजा इस भूमि पर हो गये उनके वैभवचिन्ह, एक विध्वंसक काल से बचकर भी, अब



पटियाला के महाराज का कैम्प-(दिल्ली)




अलवर के महाराज का कैम्प-(दिल्ली)

तक यहां फैले हुए हैं। इस प्रकार का महत्व रखकर ही अब दिल्ली राजधानी चुनी गई है, इत्यादि।

तीसरे पहर दिल्ली के किले में गार्डन पार्टी हुई। सम्राट और उनके चुने हुए पाहुनों के लिए दीवान-ए-खास में चाय पानी का प्रबंध किया गया था। बाकी पाहुनों का प्रबन्ध किले के बगीचे में लगे हुए तम्बुओं में किया गया था।

गार्डन पार्टी समाप्त होने के बाद सम्राट और सम्राज्ञी दरबारी पोशाक पहन कर और मुकुट धारण करके किले के 'सामान' बुर्ज पर गये। इसी जगह बैठकर सब मुगल बादशाह प्रजा को दर्शन देते थे। किले के नीचे यमुना नदी तक विशाल मैदान में हजारों लोग राजदम्पति का दर्शन करने के लिए जमा हुए थे। यहां

### बादशाही मेला

है। इस मेले में सब धर्मों और सब जातियों के लोग हाथ में झंडे पताके लिये हुए सम्राट के सामने फिर रहे थे। बाजेवाले बाजा बजा रहे थे। सब

लोग सम्राट को हाथ जोड़कर नमस्कार करते जाते थे। सम्राट भी नम्रतापूर्वक सब का नमस्कार स्वीकार करते थे। मेले में दिन को आतिशबाजी, अश्वविद्या कौशल के दृश्य, तलवार के खेल, बलूची लोगों का नाच, आदि नाना प्रकार के खेल सम्राट को प्रसन्न करने के लिए हो रहे थे। ६ बजे शाम को सम्राट अपने कैम्प में चले आये और मेला भी समाप्त हुआ। कहते हैं कि इस मेले में करीब ढाई लाख लोग जमा हुए थे।

रात को सम्राट के कैम्प में फिर भोजनोत्सव हुआ। गवर्नर जनरल, सेंधिया, कपूरथला, बर्दवान आदि के राजा, वाइसराय-कौंसिल के सभासद, इत्यादि इस अवसर पर उपस्थित थे।

१४ तारीख को सम्राट और सम्राज्ञी, गवर्नर जनरल, और अपने भारतीय एडिकांग महाराज ग्वालियर और महाराज बीकानेर के साथ सेना की जाँच करने गये। उसी दिन रात को सरकारी शामियाने में

## पदवीदान–समारम्भ

हुआ। दरबार में पदवियाँ पानेवालों की संख्या बहुत थी, इस कारण इस उत्सव में उपस्थित होने के लिए चुने हुए लोग-निमंत्रित हुए थे। रात को बिजली की चमचमाती हुई रोशनी में यह उत्सव हुआ। पहले पहल सम्राट ने सम्राज्ञी को 'ग्रैंड क्रास आफ द स्टार आफ इंडिया' से विभूषित किया। इस पर सम्राज्ञी सम्राट के सामने कुछ नम्र हुईं, सम्राट ने उनके कंधों पर झगा रखा और पदवी के अन्य चिन्ह उन्हें दिये। इसके बाद भिन्न भिन्न राजाओं और अन्य बड़े लोगों को पदवी विभूषित करने की विधि हुई। भूपाल की बेगम और भावनगर की महारानी को इस अवसर पर सम्मान मिला। सम्राट ने लेडी हार्डिंज को भी 'कैसर ए हिन्द' के सुवर्णपदक से भूषित किया। साढ़े नौ बजे से लेकर साढ़े ग्यारह बजे तक यही विधि होती रही। बीच में एकाएक बाहर एकदम गड़बड़ी मची, सीटियों की आवाज सुनाई देने लगी। इसमें शामियाने में बैठे हुए ... लोगों ने तत्काल समझ लिया कि दरबार कैम्प में कहीं न कहीं आग

### आग लगी

है। उस समय तम्बू के लोगों का मन घबड़ा उठा और क्षण भर के लिए हलचल मच गई। परन्तु सम्राट बराबर अपने काम में लगे हुए थे, और सम्राज्ञी भी शान्त बैठी थीं। अतएव कोई भी अपनी जगह पर से नहीं हिले। इतने ही में खबर भी मिल गई कि कोई सन्देह की बात नहीं है। सरकारी शामियाने से तीस ही गज के फासिले पर लार्ड क्रू के प्राइवेट सेक्रेटरी का तम्बू भस्म हो गया और उसके साथ बहुत से कागज पत्र भी जल गये।

१५ दिसम्बर को सम्राट और सम्राज्ञी ने अपने करकमलों से दिल्ली की नवीन राजधानी की नींव रखी। इसके बाद पुलीस की जाँच करके कुछ पुलीस के अफसरों को पदक देकर उनका सम्मान किया गया। दोपहर को सम्राट और सम्राज्ञी घुड़दौड़ देखने गये और विजय पाने वालों को सम्राज्ञी ने पारितोषिक दिये।

१६ दिसम्बर को दोपहर के समय सम्राट और सम्राज्ञी ने सब राजाओं से विदा लेकर

### दिल्ली से प्रयाण

किया। बड़ी धूमधाम के साथ सम्राट की सवारी किले की ओर गई। किले में पहुँचते ही बैंड बजने लगे और तोपों की सलामी हुई। इस स्टेशन पर गवर्नर जनरल, बड़े बड़े अंगरेज अधिकारी, कुछ राजा लोग आदि उपस्थित थे। लार्ड हार्डिंज, ग्वालियर महाराज और सर प्रतापसिंह आदि कुछ चुने हुए लोगों से दो चार शब्द बोलकर सम्राट अपनी स्पेशल में बैठे, और किले के ऊपर से तोपों की सलामी के साथ उनकी गाड़ी रवाना हुई। कुछ मिनटों बाद महारानी मेरी की स्पेशल ट्रेन लेकर आगरे की ओर चली और तीसरी एक गाड़ी से लार्ड हार्डिंज और क्रू भी अपने परिवारों के साथ दिल्ली से विदा हुए।

महाराज कोल्हापुर का कैम्प–(दिल्ली)

---

# भिन्न भिन्न भाषाओं की कविता का बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव।

(१)

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरा।
चक्षुःपथादपगता विषादप्यधिकायते ॥
—राजर्षि भर्तृहरि।

Of joys departed
Not to return, how painful the remembrance!
—BLAIR.

जब लौं है आँखों में नारी। तब लौं है अमृत सी प्यारी ॥
जब वह लोचन-ओट सिधारी। तब विष की हो गई पनारी ॥
— पं० कामताप्रसाद गुरु।

(२)

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वासिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥
—महाकवि कालिदास–मेघदूत।

To short absence I could yield
For solitude sometimes is best society
And short retirement urges sweet return
—PARADISE LOST—

ऐसा मानो मत "विरह में स्नेह भी हीन होता,"
इच्छा-वस्तु प्रिय न मिलते किन्तु सो पीन होता।
—हिन्दी मेघदूत।

# रामराज्याभिषेक।

## प्रस्तावना

श्रीरामचन्द्र महा दुष्ट राजा रावण को पराजित कर के, जब अयोध्या को लौटे तब भरत ने उनसे राज्यस्वीकार करने के लिए प्रार्थना की। श्रीराम ने आदरपूर्वक भरत की विनती मान्य की और अभिषेक की तैयारी होने लगी। प्रधानों ने पहले भरत के जटा निकलवा कर उन्हें मंगलस्नान करवाया। उसी प्रकार लक्ष्मण के भी जटा निकाल कर मंगलस्नान कराया। श्रीराम की सब 'वानर-सेना' को स्नान आदि कराये गये। इसके बाद श्रीराम को दिव्यासन पर बिठा कर कुशल नापितों के द्वारा उनका भी जटाभार निकाला गया और उत्तम सुगन्धित द्रव्यों का उबटन लगा कर मंगलस्नान कराया गया। इधर कौसल्या ने सीता को और सब वानर स्त्रियों को स्नान करवाया, तथा सब को उत्तमोत्तम वस्त्रालंकार पहनाये। राम, लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न आदि ने भी चमचमाते हुए वस्त्रालंकार पहने। इसके बाद शत्रुघ्न की आज्ञा से सारथी सुमन्त सब रत्नों से मढ़े हुए आठ घोड़ों का सुन्दर और विशाल राजरथ नन्दिग्राम में, जहां श्रीराम आकर उतरे थे ले आया। श्रीराम उस रथ पर अपनी परम पवित्र पत्नी सीतादेवी के साथ आरूढ़ हुए। उनके पीछे लक्ष्मण शत्रुघ्न आदि तथा उन सब की स्त्रियां सुग्रीवादि सैनिकगण तथा उनकी स्त्रियां और अन्य नागरिक स्त्री पुरुष थे। इस प्रकार नन्दिग्राम से यह

## जलूस

बड़ी धूमधाम के साथ अयोध्या नगरी को चला। स्वयं भरत घोड़ों की लगाम पकड़े हुए श्रीराम का रथ हांक रहे थे। शत्रुघ्न ने महाराज रामचन्द्र पर छत्र रक्खा था, लक्ष्मण पंखे से हवा कर रहे थे, राक्षसों के राजा बिभीषण चामर डालते थे। ऋषि समुदाय और मरुद्गणों के साथ देवता लोग महाराज रामचन्द्र की स्तुति कर रहे थे। महा तेजस्वी सेनाधिपति सुग्रीव शत्रुंजय नामक पर्वततुल्य हाथी पर आरूढ़ हो कर चल रहे थे। अंगद हनुमान आदि अन्य सैनिक वीर सजे हुए नौ हजार हाथियों पर बैठे हुए थे। शंखों का नाद, जनसमूह की हर्षध्वनि और नगाड़ों की ध्वनि से आकाश गूँज रहा था। इस प्रकार की धूमधाम से लाखों मनुष्यों से भरी हुई और हजारों तोरणों से सजी हुई अयोध्या नगरी में श्रीरामचन्द्र ने प्रवेश किया। सारी प्रजा महाराज रामचन्द्र का जयजयकार करने लगी। नगरी की स्त्रियां अपने अपने महलों की अटारियों और छज्जों पर से अपने महाराज पर फूलों की वर्षा कर रही थीं। श्रीरामचन्द्र नम्रतापूर्वक सब नागरिक जनों का अभिनन्दन स्वीकार कर रहे थे। बाजवी लोग नाना प्रकार के वाद्य बजा रहे थे। महाराज रामचन्द्र के आगे अक्षत, सुवर्ण, गाय और द्विजों के साथ कन्याएँ तथा हाथ में मोदक लिए हुए पुरुष चल रहे थे। इस प्रकार सवारी राजमहल में पहुँची। श्रीरामचन्द्र ने सब को उत्तम महलों में ठहराने के लिए भरत को आज्ञा दी। भरत ने यथायोग्य सब को सुन्दरपूर्ण स्थलों में उतारा। इसके बाद

## राज्याभिषेक की तैयारी

होने लगी। भरत ने सुग्रीव को चार रत्नजटित सुवर्ण कलश देकर प्रार्थना की कि — 'अब आप अपने चार बलशाली सैनिकों को भेजकर सायंकाल के भीतर ही चारों समुद्रों का जल मँगाइये, क्योंकि समुद्रजल के बिना राज्याभिषेक नहीं हो सकता।' यह सुनकर सुग्रीव ने चार शूरवीर वानरों को स्वर्ण घट देकर समुद्रोदक लाने की आज्ञा दी। सेनाधिपति की आज्ञा पाते ही वे गजतुल्य महात्मा वानर शीघ्रगामी गरुड़ की तरह सत्वर ही आकाश पथ से दौड़े और चारों समुद्रों का जल ले आये। धैर्यवान् सुषेण सर्व रत्नों से विभूषित जल से परिपूर्ण कलश पूर्वसमुद्र से ले आया। ऋषभ नामक वीर वानर दक्षिणसमुद्र से शीघ्र ही जल ले आया। उसका सुवर्णमय कलश रक्त-चन्दन और कर्पूर से व्याप्त था। इसके बाद वायु के समान गतिवाला गवय नामक योद्धा रत्नजटित कुम्भ में पश्चिम महासागर का शीतल उदक ले आया। सर्व सद्गुणसम्पन्न, गति में गरुड़ और वायु की बराबरी करनेवाला, धर्मात्मा वायुपुत्र हनुमान उत्तरसमुद्र से कलश भर लाया। इसी प्रकार अन्य योद्धा वानर गंगा, यमुना, आदि पांच सौ पवित्र नदियों का उदक कलशों में भर लाये। नाना प्रकार की औषधियां तथा राज्याभिषेक की अन्य सब सामग्री भी सिद्ध की गई। इस प्रकार सब तैयारी हो जाने पर वसिष्ठ आदि ऋषि मुनि राजमहल के उस स्थल में आये जहां मनु से लेकर अब तक के सब इक्ष्वाकु-वंशी राजाओं का राज्याभिषेक हुआ था। इसके बाद ब्राह्मणों सहित प्रयत्न-शील वृद्ध वसिष्ठ मुनि ने,



महाराजाधिराज, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी
आदर्श-राजा ( The Ideal King )

## राज्याभिषेक-विधि

करने के लिए, महाराज रामचन्द्र को, महारानी सीतादेवी के सहित, एक रत्नमय सिंहासन पर बैठाया। तत्पश्चात् अष्टवसुओं ने जिस प्रकार इन्द्र का अभिषेक किया उसी प्रकार वसिष्ठ, विजय, जाबालि, कश्यप, कात्यायन, गौतम और वामदेव ने, निर्मल और सुगन्धित उदक से, पुरुषश्रेष्ठ महाराज रामचन्द्र का अभिषेक किया। प्रथमतः ऋत्विज, ब्राह्मण, कन्या और मंत्री से अभिषेक कराकर फिर शूरवीर और आनन्दित योद्धाओं से भी उन्होंने राम का अभिषेक कराया। उसी प्रकार सब देवताओं और चार लोकपालों के हाथ से सब प्रकार के औषधिरसों से भी वसिष्ठप्रभृति ने राम का अभिषेक कराया। इसके बाद वसिष्ठ ने उस सुवर्णमय सभास्थान में, जो बड़ी बड़ी मूल्यवान् वस्तुओं से सुशोभित और नाना प्रकार के उत्कृष्ट रत्नों से भूषित था, तेजस्वी महाराजाधिराज रामचन्द्र को, विधिपूर्वक, रत्नमय सिंहासन पर बैठाया। इसके बाद ब्रह्माजी का निर्माण किया हुआ वह रत्नजटित तेजोमय किरीट, जिसे मनु से लेकर सब इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने अभिषेक के समय धारण किया था, वसिष्ठ ऋषि ने रामचन्द्र के शिर पर रक्खा। उस समय सारे जनसमूह ने जयजयकार किया और सहसा मंगलवाद्य बजने लगे। ऋत्विजों ने श्रीराम को वस्त्रालंकार पहनाये। शत्रुघ्न ने श्वेत छत्र राम पर रखा। सेनाधिपति महाबली सुग्रीव एक चामर डालने लगे और लंकापति बिभीषण चन्द्रतुल्य दूसरी चामर डालने लगे। इन्द्र की आज्ञा से वायु ने सौ कमलों से युक्त और कान्तिमान एक सुवर्णमय माला राजाधिराज रामचन्द्र को अर्पण की। इसके सिवाय सर्व रत्नों से युक्त और हीरों से सुशोभित एक मोतियों का हार भी उस समय उसने राजा रामचन्द्र को भेट में दिया— राम-राज्याभिषेक के समय देवता और गन्धर्व गान करने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, और चारों ओर प्रजाजनों में आनन्द छा गया। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र ने अपने

## राजकीय दान

में पहले द्विजों को लाखों अश्व, दूध देनेवाली गौवें और सैकड़ों वृषभ दिये। इसके सिवाय तीस करोड़ स्वर्णमुद्रा भी ब्राह्मणों को अर्पण किये। नाना प्रकार

के बडे बडे मूल्यवान् भूषण और वस्त्र भी उन्हें दान में दिये। प्रजाधिपति राम ने अपने सेनाधिपति सुग्रीव को एक ऐसी दिव्य माला दी जिसकी कान्ति सूर्यकिरणों के समान थी। वह रत्नमयी माला सुवर्ण से गुँथी हुई थी। वैदूर्यमय, मनोहर और चन्द्रकिरणों के समान आल्हादकारक बाहुभूषण श्रीराम ने अगद को दिये। महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्र ने अपनी प्रिय महारानी सीता देवी को एक ऐसा मोतियों का अनुपम हार दिया जिसमें उत्कृष्ट रत्न गुँथे हुए थे और जिसकी प्रभा चन्द्रकिरणों के समान थी। इसके सिवाय उन्होंने निर्मल और दिव्य दो वस्त्र तथा अन्य शुभ आभूषण भी महारानी सीता को अर्पण किये। इतने ही में, सीता ने अपने गले में पहने हुए हार के आँकडे पर हाथ रख कर कुतूहल से सब वीर वानरों की ओर देखकर फिर श्रीराम की ओर देखा। श्रीरामचन्द्रजी उनके हृदय की बात जानकर प्रेमपूर्वक बोले — "हे सुभगे! हे सुन्दरी! जिस पर तू प्रसन्न हुई है उसे यह हार अब तू अर्पण कर दे।" यह आज्ञा पाते ही सीता ने हनुमान् को अपने पास बुलाया और यह कहते हुए कि "तुम में बल, बुद्धि, तेज, धैर्य, विनय, नय और पराक्रम सदा वास करते हैं", सीतादेवी ने वह हार अपने गले से निकाल कर हनुमान के गले में पहना दिया। उस समय सब समाजना ने हनुमान का जयजयकार किया। अस्तु। उक्त वीरों के सिवाय जाम्बवान्, नल, नील, द्विविद, मैंद आदि सब वीरों को प्रजाधिपति रामचन्द्र ने अमूल्य रत्नालंकार और इष्ट भोग्य पदार्थ देकर योग्यतानुसार उनका सत्कार किया। बिभीषण को लंकापुरी का राज्य पहले ही अर्पण कर दिया था।

### उपसंहार

इस प्रकार शत्रुओं को ताप देनेवाले महा कीर्तिमान और अत्यन्त उदार महाराज श्री रामचन्द्र, दुष्टों का निग्रह करते हुए, बडे आनन्द से प्रजा का पालन करने लगे। 'रामराज्य' की प्रजा का सुख कौन वर्णन कर सकता है! श्रीराम ने दस भूरि दक्षिण अश्वमेध कर के अक्षय कीर्ति प्राप्त की। आदर्श राजा श्रीरामचन्द्र ने दस हजार दस सौ वर्ष अनुपम रीति से राज्य किया।

---

# डा० सुन्यत्सेन।

( चीनी राज्यक्रान्ति के नेता। )



डाक्टर सुन्यत्सेन का जन्म होनोलोलू नामक गाँव में हुआ। इस समय आपकी उम्र ४९ वर्ष की है। आपके बालपन और युवावस्था का वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है, पर इतना प्रकट हुआ है कि सन् १८७७ से लेकर १८८१ तक, पाँच वर्ष, हांगकांग शहर में आपने डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की है, और फिर कैंटन नदी के उद्गम पर बसे हुए मेकाओ टापू में सन् १८९२ ई० तक आप डाक्टरी का व्यवसाय करते रहे हैं। मेकाओ टापू आज तीन साढे तीन सौ वर्ष से पुर्तगाल के अधिकार में है, पर बस्ती वह मुख्य कर चीनी लोगों ही की है। कुछ लोग 'पोर्चगीज' कहलानेवाले है, पर वास्तव में उन्हें 'यूरेशियन' ही समझना चाहिए। पोर्चगीज अधिकारी उस टापू में डाक्टरी की पोर्चगीज ही पदवी प्राप्त किये बिना डाक्टरी का व्यवसाय नहीं करने देते थे, अतएव डा० सुन्यत्सेन को भी अपने व्यवसाय में बहुत कठिनाइयां उठानी पडीं। कुछ चीनी अधिकारियों की सहायता से उन्होंने अपना व्यवसाय प्रारम्भ किया था, पर पोर्चगीज अधिकारियों ने उनकी एक भी न चलने दी। पहले यह निर्बन्ध किया गया कि डा० सुन्यत्सेन पोर्चगीज लोगों को औषधि ही न दें, इसके बाद यह भी हुक्म जारी किया गया कि उनके लिखे हुए 'प्रिस्क्रिप्शन' ( औषधिपत्र ) में लिखी हुई औषधियां कोई तैयार ही न करे, और अन्त में स्पष्ट कह दिया गया कि डा० सुन्यत्सेन इस टापू में डाक्टरी का व्यवसाय न करें। इस कारण उनको बहुत संकट और हानि उठानी पडी और वे कैंटन में चले गये।



डॉ०सुन्यत्सेन।

मेकाओ टापू में रहते हुए ही आपको चीन देश की दु:खद दशा और नवीन उदय होनेवाले 'तरुण चीन' के हेतु, महत्वाकांक्षा तथा कार्यक्रम का ज्ञान हुआ, और इस बात की ओर उनका ध्यान गया। चीन पर माञ्चू लोगों का जुल्म, दीन-दुर्बलों का कष्ट और अपमान, दासत्व शृंखला में जकडी हुई चीनी प्रजा की पौरुष-हानि आदि बातों का ज्ञान होने पर कौन बुद्धिमान् सहृदय और तेजस्वी चीनी चुप बैठ सकता है! जिस धर्म, न्याय और नीति की बात को बुद्धि स्वीकार करती है और जिस पवित्र कर्तव्य के लिए अन्त:करण प्रेरणा करता है उसमें डा० सुन्यत्सेन के समान पुरुष पीछे कभी नहीं हट सकता था। उन्होंने निश्चय किया कि जब तक मैं जीता हूं तब तक, चीन का अभ्युदय होने के लिए, माञ्चु लोगों के कठोर अत्याचार से अपने देशभाइयों को अवश्य मुक्त करूंगा। अपने इस निश्चय के अनुसार कार्य करके तरुण चीनियों के अभीष्ट को सिद्ध करने का श्रेय आज उन्होंने प्राप्त किया है। वे इस मोह में कभी नहीं पडे कि धन एकत्र करें, बडे अधिकारियों से नम्र होकर रहें, अथवा सुखसन्तोष से समय बिता कर अपने पुत्रपौत्रों के लिए भी प्रबन्ध कर लें। स्वीकृत कार्य को सफल करने में उन्होंने अपने कुटुम्ब के अथवा अपने स्वत: के सुख की ही नहीं, किन्तु प्राणों की भी परवा नहीं की। चीनी लोगों की दुर्दशा का वर्णन उन्होंने सारे चीनी राष्ट्र को समझा दिया और इस दुर्दशा से बचने के लिए जिन उपायों की योजना उन्हें उचित जान पडी वे उपाय भी उन्होंने लोगों को बतला दिये। अविश्रान्त प्रयत्न करके उन्होंने हजारों लोगों को देशहित के पवित्र कार्य में प्रवृत्त किया। दासत्व की शृंखला में जकडे हुए हजारों लोगों को उन्होंने स्वतंत्रता का मार्ग दिखलाया। सैकडों तरुणों को कर्तव्य की योग्य दिशा दिखला कर उन्होंने आत्मत्याग करना सिखलाया। गाँव गाँव में जाकर, भिन्न भिन्न लोगों में प्रवेश करके, डा० सुन्यत्सेन ने चीन के अभ्युदय की हलचल मचाई। परन्तु माञ्चू लोगों को भला यह बात कैसे सहन हो सकती थी! जिन चीनी लोगों को राजकर्ताओं की ओर से राजनैतिक पुस्तक पढने की भी मनाई है, जिन चीन के लाखों लोगों को अन्य देशों के नहीं किन्तु स्वयं अपने देश के भी भूगोल पढने का निषेध हो, जिन चीनियों को अपने देश के कानून पढने की भी मनाई हो और जो चीनी लोग सैनिक शिक्षा की पुस्तक पढने के कारण फांसी पर लटकाये जाते हों वही गुलाम चीनी लोग यदि परकीय राज्य की परतन्त्रता से मुक्त होने का प्रयत्न करें तो यह बात माञ्चू लोग कैसे सहन कर सकते हैं! वे सन्तप्त हो उठे और नवीन हलचल करके अधिकारियों की सत्ता में विघ्न डालनेवाले डा० सुन्यत्सेन के समान नेताओं को नाश करने के लिए चीन की जुल्मी सरकार सज्ज हुई। डा० सुन्यत्सेन ने ईसाई धर्म स्वीकार किया है, एक बार वे लंडन में प्रार्थना के लिए मन्दिर को जा रहे थे कि मार्ग में चीन की ओर से वकालत करनेवाले अधिकारियों ने उन्हें पकडकर जेल में डाल दिया। यह बात सन् १८९६ की है। राज्यक्रान्ति करनेवालों के भयंकर अगुआ समझकर डाक्टर साहब पकडे गये थे। चीनी अधिकारी चुपचाप चीन में लाकर उनका शिरच्छेद करना चाहते थे। पर उनके इँगलैंड के परम मित्र डा० कैंटली ने उनके छुडाने का बडा प्रयत्न किया, गुप्त पुलीसवालों की विनती करके उनका पता लगाया और अन्त में बडी कठिनाई से इँगलैंड के फारेन आफिस की ओर से उनकी मुक्तता कराई गई। माञ्चू अधिकारी डा० सुन्यत्सेन को पकडकर फाँसी देने के लिए कई वर्षों से प्रयत्न कर रहे हैं। चीनी अफसरों ने यह भी जाहिर किया है कि उनका सिर काटकर ला देनेवाले पुरुष को ५०००० पौंड का इनाम मिलेगा। तथापि डाक्टर साहब अपने प्राण हथेली पर रखे हुए चीन में तथा अन्यत्र अपना अंगीकृत कार्य सफल करने के लिए धैर्य के साथ प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसा कौन सहृदय पुरुष है जिसके हृदय में, आपकी यह कर्तव्यशक्ति देखकर आपके विषय में आदर न उत्पन्न होता हो? अपना वेष बदलकर, इधर उधर घूमते हुए वे सदा अपना काम करते रहते हैं। एक बार आप "ओकामुरा एंड को, जनरल मर्चेन्ट्स एंड कमिशन एजन्ट्स" का भिन्न भिन्न व्यापारी माल लिये हुए चीनी लोगों में बेचते फिरते थे, आखों में नीला चश्मा लगाये हुए थे, पर

आपका वेष इतना परिवर्तित था कि कोई नहीं जान सका कि ये डा० सुन्यत्सेन ही हैं, और इस रूप में अपना मत फैला रहे हैं। कभी कभी तो आप अपना रूप यहां तक बदल लेते हैं कि रातदिन साथ रहनेवाले उनके मित्र भी उन्हें नहीं पहचान सकते। इसी तरह रहकर आप अपनी हलचल का सर्वव्यापी प्रचार कर देते हैं।

डा० सुन्यत्सेन का कद मामूली है, शरीर सुदृढ है, वर्ण पीला है, स्वभाव शान्त और गम्भीर है। इँगलैंड में डा० कॅटली से उनकी गम्भीर मित्रता है। उन्हींके यहां आप ठहरते हैं। अन्य लोगों से आप तटस्थ बर्ताव रखते हैं। आप बहुत बोलते नहीं। यूरप में रहते समय आप बहुधा अँगरेजी पहनावा करते हैं। आपकी भाषा सादी है, व्याख्यानशैली सरल है। उनका शरीर सौन्दर्य अथवा उनकी व्याख्यानशैली देखकर लोग उन पर मोहित नहीं हुए हैं, किन्तु उनके स्वार्थत्याग, स्वदेशाभिमान, धैर्य, क्षमता, विलक्षण व्यवहारचातुर्य, इत्यादि गुणों को ही देखकर लोग उनकी ओर झुके हैं। उनके शब्दों में सजीवता रहती है, उनके आचार, विचार और उच्चार में एकता रहती है, इसी कारण इतना जनसमूह उनके वश में है—और उसके द्वारा वे चाहे जो कर सकते हैं। जिस पुरुष के विषय में लोगों का यह विश्वास है कि यह जो कुछ कह रहा है उसमें इसके व्यक्ति विषयक स्वार्थ का लेश नहीं है और सत्य देशदशा का वर्णन कर रहा है, इसके दिखलाये हुए मार्ग से यदि हम जायँगे तो हमारे बालबच्चों का और सारे देश का हितही है—उस पुरुष की ओर भला जनसमुदाय क्यों न झुकेगा ? डाक्टर साहब अँगरेजी फ्रेंच और जापानी भाषा भी बोलते हैं।

डा० सुन्यत्सेन के इस क्रांतिकारक पक्ष में अब लाखों चीनी मिल गये हैं, और जापान के अभ्युदय से, तथा रूसी सेना पर छोडी हुई तोपों की गडगडाहट से जागृत हुए चीनी नवयुवक इस हलचल के मुखिया हैं। ये तरुण पाश्चात्य विद्याओं से सुसस्कृत हुए हैं, पेरिस और लडन आदि देख आये हैं, अमेरिका में प्रवास करके वहा के अर्वाचीन सुधार और राजनीति का अभ्यास कर आये हैं, अतएव परकीय माचु अधिकारियों की अत्याचारपूर्ण सत्ता इन्हे पसन्द नहीं है—ये लोग चीन को बिलकुल स्वतत्र करना चाहते हैं। यद्यपि अब भी, 'यूनाइटेड स्टेट्स्' के एक एक भाग को जितनी स्वतत्रता है अथवा कनाडा या आस्ट्रेलिया इँगलैंड से जितने स्वतत्र हैं उतने ही अथवा उससे भी अधिक चीनी प्रान्त स्वतत्र हैं। वाइसराय लोग सिर्फ रिपोर्ट और खजाना माचू राजा के पास भेज देते हैं। इस प्रकार चीन के भिन्न भिन्न प्रान्त एक तरह से स्वराज्य ही भोगते हैं। तथापि चीन के नवयुवक अब एक पार्लिमेन्ट स्थापित करके माचू लोगों का उच्चाटन करना चाहते हैं और राजसत्ता लोगों के हाथ में देना चाहते हैं। कहते हैं कि यदि परराष्ट्र इस बीच में नहीं पडेंगे तो चीनी तरुण पक्ष का सब काम सिद्ध हो जायगा।

एक सज्जन से चीन की दुर्दशा बतलाते हुए डा० सुन्यत्सेन ने कहा—चीन में माचू लोग बहुत होंगे तो दस लाख से अधिक नहीं हैं और चीनी लोगों की सख्या चालीस करोड हैं, तथापि चीन की छोटी बडी आधी नौकरिया मानो माचू लोगों ही के ठेके में हैं। प्रत्येक प्रान्त का गवर्नर अपने प्रान्त में मनमाने कायदे जारी करता है—आज कल चीन में कायदों का निश्चित रूप ही नहीं। गवर्नर जो कुछ करे वही ठीक है—उस पर कुछ सुनाई नहीं। ये गवर्नर लोग, तथा उनके अधीनस्थ कर्मचारी, लोगों पर झूठे अपराध लगाकर, उन्हें पच मे डालकर, अनेक प्रकार का कष्ट देते हैं और धन ऐंठते हैं। जिसे पकड लिया उसको अपराध स्वीकार ही करना चाहिए, चाहे किया हो, चाहे न किया हो, अन्यथा दो तीन दिन तक उसे कष्ट देकर चौथे दिन, उसकी कोई भी विनती न सुनते हुए, सजा दे ही देते हैं। अपराधी को कष्ट देने के लिए नाना प्रकार के यंत्र उन्होंने एकत्र कर रखे हैं और उनके द्वारा उन बिचारों पर वे राक्षसी अत्याचार करते हैं। देहान्त दण्ड देना तो उनके लिए मामूली बात सी हो गई है। ये अफसर लोग समझते हैं कि अपराधी को देहान्त ही दण्ड देना अच्छा है, क्योंकि इससे जेल का उसका खर्च बचता है और कोई झगडा नहीं रहता। किसी किसी को अचानक पकड कर [illegible] भ डाल देते हैं और उसके कुटुम्ब में उसकी खबर भी नहीं लगने देते। [illegible] अन्धेर मचा है। घोर अन्याय और घोरतर अत्याचार हो रहा है। लोग जर्जर हो रहे हैं। देश भर इस विवंचना में पडा है कि परमात्मा, यह समय कब जायगा—यह अत्याचार कब बन्द होगा। अब हमारी गुप्त मडलियों की शाखाएँ चीन भर में फैल गई हैं। इन मडलियों के नवयुवक सभासदों ने बुद्धिमान, धैर्यवान् और सहृदय मनुष्य तैयार कर दिये हैं। ये लोग राज्यक्रान्ति होते ही राज्यकार्य का सब भार तुरन्त ही अपने हाथ में ले लेंगे और सब काम सिद्ध करेंगे। प्राय बहुत से सैनिकगण हमारी हलचल से सहानुभूति रखते हैं। रक्तपात करने की हमारी बिलकुल ही इच्छा नहीं है। तथापि, हमने यह निश्चय कर लिया है कि हम अपने चालीस करोड देशभाइयों को वर्तमान क्रूर और अत्याचारपूर्ण राज्यप्रबन्ध से मुक्त कर के उन्हें न्यायी और दयालु राज्यपद्धति की शीतल छाया का सुख दिला देंगे। अच्छा होगा, यदि हमारे इस कार्य में कोई विघ्न न डाले। परन्तु यदि कोई विघ्न डालेगा तो फिर हमारे सामने जो शस्त्र आ जायगा उसीको हाथ में लेकर हम अपना कार्य सिद्ध किये बिना नहीं मानेंगे।" ये डॉ० सुन्यत्सेन के वचन अब प्रसिद्ध हुए हैं।

डाक्टर साहब का अगाध वाचन, भारी विद्वत्ता, उच्च सच्चाई, दृढ देशभक्ति, असामान्य कर्तृत्वशक्ति, सादी रहन सहन और उच्च कर्तव्य देखकर एक लेखक ने उन्हें 'चीन का मेजिनी' और दूसरे ने 'चीन का गेरीबाल्डी' कहा है। अब चीनी लोगों में स्वदेशभक्ति और स्वदेशाभिमान का नवीन सचार हुआ है। अब परकीय लोगों से वे अभिमानपूर्वक कहने लगे हैं कि 'चीन चीनी लोगों के लिए है।' आलस्य छोडकर अब चीनी लोगों ने वीरता धारण की है और जापान के अभ्युदय से उद्दीपित हुआ यह राष्ट्र अपनी अभ्युन्नति के लिए अब जोरशोर से हलचल करने लगा है। इस नवीन लहर का जोर इतना है कि चीनी स्त्रिया भी इस देशकार्य के लिए आत्मत्याग करने के लिए आगे बढी हैं। अतएव इस समय ऐसा कुछ रग ढग देख पडता है कि चीन देश—यह एशिया का दूसरा राष्ट्र—डा० सुन्यत्सेन के समान देशभक्त के नेतृत्व में अब अपना सच्चा महत्व प्रकट करेगा।

---

# श्रीरामराज्य।

(१)
श्री वृद्धि पै है, ऋतु मोदकारी,
भाती लता, पुष्प खिले हुए हैं।
लदे हुए हैं तरु सत्फलों से,
सुहा रही शस्यमयी धरा है।

(२)
"क्या रोग होता ? रहता कहा है ?"
कोई नहीं मानव जानते हैं।
देखो जहा, स्वस्थपना वहा है,
आनन्द सर्वत्र भरा हुआ है।

(३)
होती कहीं भी नहिं बाल-मृत्यु,
पाती न वैधव्य कहीं स्त्रिया हैं।
दुर्भाग्य का नाम कहीं नहीं है,
सर्वत्र सौभाग्य बना हुआ है।

(४)
स्वधर्म में हैं रत वर्ण सारे,
अच्छी व्यवस्था सब आश्रमों की।
सम्पूर्ण हैं मानव हृष्ट पुष्ट,
सद्भाव छा आपस में रहा है।

(५)
ससार के जीव सभी सुखी हैं,
अत्यल्प भी दुःख नहीं किसीको।
देखो जिसे, होकर मोद मग्न—
छटा अनोखी दिखला रहा है।

(६)
न भूप के दर्शन में किसीको—
बाधा, किसी भाति न रोक टोक।
इच्छा जिसे है वह आ रहा है,
स्वकीय वृत्तान्त सुना रहा है।

(७)
भूपाल को खेद नहीं समाता,
कर्तव्य से त्यों न दया चुकाती।
आराधना तो करते प्रजा की—
स्त्री को तजे भी न इसे व्यथा है।

(८)
"नृपाल होना जब नीच पापी—
होता प्रजा-पीडन भी तभी है।
अप्रेम से प्रेम-वियोग से त्यों"—
सिद्धान्त माना जग में गया है।

(९)
"नरेन्द्र जो नित्य न देखता हो—
स्वय, प्रजा के सब कामकाज—
हैं नर्क सारे उसके लिए ही"—
महीप का हार्द यही बना है।

(१०)
अज्ञान आलस्य अनर्थ आदि—
हेरे हुए भी मिलते नहीं हैं।
उद्योग, उत्साह, सुकर्म, शान्ति,
विज्ञान विद्या, बल छा रहा है।

(११)
हो ध्यान में लीन बना रहा था—
यों पद्य-माला, सुग पा रहा था,
आके तभी यों निजवृत्ति बोली—
"बता सके ! क्या यह गा रहा है ?"

(१२)
"हे चित्तवृत्ते ! कुछ शान्त हो जा,
न छेड आके मुझको अभी तू,
आनन्द मेरे मन छा रहा है,
श्रीराम का राज्य सुहा रहा है"।

श्रीगिरिधर

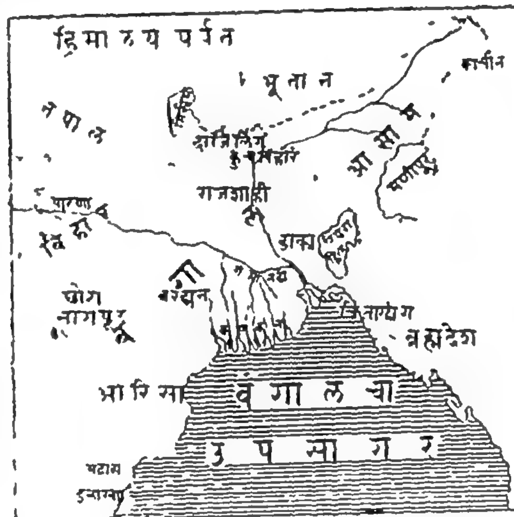


# राजकीय दान।



## महाराज की आज्ञा से भारत के वाइसराय लार्ड हार्डिंज ने राजकीय दानों का जो खलीता दिल्ली-दरबार में पढ़ा उसका सारांश इस प्रकार हैः—

"हम यह स्वीकार करते हैं कि भारतीय साम्राज्य के उत्पन्न से शिक्षा की उन्नति में खर्च होना सब से अधिक आवश्यक है। इस विषय में जो प्रशसनीय याचना की गई है उसके अनुसार भारत-सरकार अब से इस बात पर अवश्य ध्यान रखेगी कि भारत की शिक्षा यथाशक्य सब के लिए सुलभ और व्यापक की जाय, और इसी उद्देश्य से सर्व साधारण जनसमूह की शिक्षा के लिए एकदम पचास लाख रुपये अधिक खर्च करने का हमने निश्चय किया है। इसके सिवाय आगामि वर्षों से इस संख्या में और भी बहुत सी उन्नति करने का भारत-सरकार ने निश्चय कर लिया है। भारत के सैनिक विभाग के अफसरों और सिपाहियों तथा जिन्हें सैनिक 'इस्टमिट' से वेतन दिया जाता है ऐसे सब विभागों के नौकरों में से जिनका वेतन ५० रुपये से ऊपर नहीं है उन्हें अर्ध मास का वेतन पारितोषिक में दिया जायगा। अब से भारतीय सेना के 'रायल नेटिव आफिसर्स' और 'रिजर्विस्टस' लोगों को भी 'विक्टोरियन क्रास आफ वेलर' नामक पदक मिलने में कोई अड़चन नहीं होगी। अगले दस वर्षों में 'आर्डर आफ ब्रिटिश इंडिया' के पहले वर्ग के सभासदों की संख्या में बावन सभासदों की वृद्धि होगी और इस दरबार के उपलक्ष में पहले वर्ग में पन्द्रह तथा दूसरे वर्ग में उन्नीस नवीन स्थान उत्पन्न किये जायँगे। अब से 'फ्रांटियर मिलिटरी कोर' और 'सैनिक पुलीस' को उपर्युक्त वर्गों में जाने का अधिकार रहेगा। भारतीय महाराजाओं की सेना में जिन एतद्देशीय नौकरों ने बहुत वर्षों तक सन्माननीय नौकरी करके प्रसिद्धि प्राप्त की है उन्हें अब माफी जमीन अथवा नकद इनाम दिया जायगा। 'इण्डियन आर्डर आफ मेरिट' के नौकरों की विधवा स्त्रियों को अभी तक सरकार तीनही वर्ष विशेष "अलौन्स' देती थी, पर अब से ऐसी स्त्रियों को जीवन भर—अथवा दूसरा विवाह करने तक—यह 'अलौन्स' दिया जायगा। 'सिविल' नौकरों में जिन लोगों का वेतन ५०) रु० से अधिक नहीं है उन्हें भी आधे महीने का वेतन इनाम दिया जायगा। दीवानबहादुर, सरदार बहादुर, खानबहादुर, रायबहादुर, रावबहादुर, खांसाहब, रायसाहब, रावसाहब, इत्यादि, पदवियां जिन्हें मिली हैं, अथवा जिन्हें आगे मिलेंगी उन्हें आदर और सन्मान के चिन्हों में भिन्न भिन्न बिल्ले दिये जायँगे और महामहोपाध्याय तथा शम्सुल्उल्मा की पूज्य पदवियां जिन्हें मिली हैं अथवा जिन्हें मिलेंगी उन्हें प्रति वर्ष कुछ न कुछ पेन्शन प्राचीन विद्या के उत्तेजनार्थ, दी जायगी। इस दरबार के स्मरणार्थ और प्रशंसनीय नौकरी के लिए पुरस्काररूप वायव्य सीमा के प्रान्त में और बिलूचिस्तान में कुछ लोगों को उनके जीवन भर के लिए, अथवा उनके लड़कों की जिन्दगी तक भी, बिना लगानी जमीन दी जायगी। नवीन राजा के गद्दी पर बैठते समय भारतीय राज्यों को सरकार के लिए जो नजराना देना पड़ता था वह अब नहीं देना पड़ेगा, और काठियावाड़—गुजरात के 'नॉन्—ज्यूरिसडिक्शनल इस्टेट्स' अथवा मेवाड़ के भूमिया राजाओं से सरकार को जो पाना है वह माफ किया जाता है। 'इम्पीरियल सर्विस' फौजी लोगों के लिए 'आर्डर आफ ब्रिटिश इंडिया' में से कुछ नवीन 'सुपर्न्युमररी' जगहें बनाई जायँगी। अपराध और अनुचित व्यवहार के लिए नियमानुसार दण्ड भोगते हुए कुछ कैदी छोड़ दिये जायँगे, और दीवानी के जिन कैदियों का ऋण थोड़ा है तथा जो ढिठाई के कारण कैदी नहीं हुए हैं, किन्तु सच्ची गरीबी के कारण ही बन्दी हुए हैं, वे छोड़ दिये जायँगे और उनका कर्ज सरकार अदा कर देगी। ये सब प्रकार के दान जिन शर्तों पर दिये जाते हैं वे पीछे प्रकट की जायँगी।"



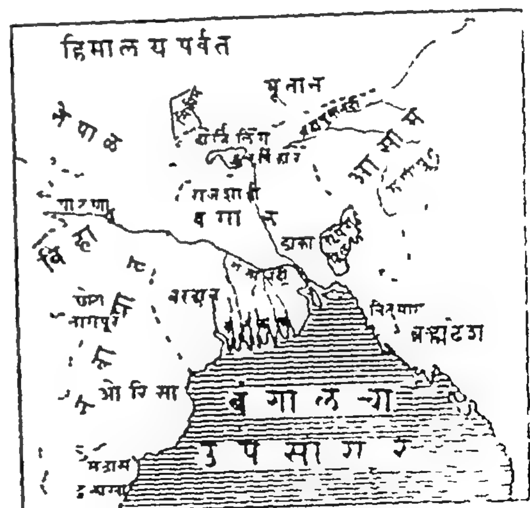

न० १ लार्ड कर्जन के पूर्व का बंगाल।

वास्तव में दरबार का कार्यक्रम यहां से समाप्त होगया था, पर थोड़ी ही देर के बाद महाराज स्वयं हाथ में एक कागज लेकर आगे बढ़े। इस पर लोगों ने यह समझा कि महाराज स्वयं यह कागज हम लोगों को पढ़ सुनावेंगे, पर यह बात किसीने भी नहीं समझी थी कि इस कागज में क्या है। कुछ देर तक लोगों का मन चक्कर में पड़ गया। महाराज ने यह सन्देश पढ़ सुनाया—

"गवर्नर जनरल—इन कौंसिल से चर्चा करके मेरे प्रधानों ने जो सम्मति दी है उसके अनुसार हम प्रसन्नतापूर्वक अपनी प्रजा पर प्रकट करते हैं कि भारतीय सरकार का निवास कलकत्ते से उठाकर प्राचीन शहर दिल्ली में लाने का हमने निश्चय किया है। जब भारतीय सरकार का निवास कलकत्ते से दिल्ली आवेगा तब इस परिवर्तन के ही परिणाम में हमने निश्चय किया है कि यथा-सम्भव शीघ्रही बंगाल प्रान्त के लिए एक गवर्नर, बिहार, छोटा नागपुर और उड़ीसा के लिए एक नवीन गवनर, और आसाम के लिए चीफ कमिश्नर की जगह मुकर्रर की जाय। अब भारतीय सरकार स्टेट—सेक्रेटरी—इन—कौंसिल की सम्मति से उपर्युक्त बातों के लिए, राज्यकार्य के लिए आवश्यक जो परिवर्तन अथवा प्रत्येक प्रान्त की जो नवीन सीमाएं मुकर्रर करेगी उन्हीं पर अमल किया जायगा। हम हृदय से चाहते हैं इस परिवर्तन से भारत का राज्यकार्य वर्तमान समय की अपेक्षा विशेष अच्छी रीति से किया जाय, जिससे हमारी प्रिय प्रजा अधिक सुखी और वैभवसम्पन्न हो।"




न० २ लार्ड कर्जन का बंगभंग।




न० ३ सम्राट का बंगभंग-सुधार और बिहार की नवीन व्यवस्था।



# सरदार बाजी प्रभु देशपांडे।





संध्याकाल का रमणीय समय था। आदित्यराज श्वेत साफा छोड़कर, लाल साफा बाँधकर अपने घर जा रहे थे। सचमुच प्रातःकाल और सायंकाल की वेला प्रत्येक मनुष्य को अत्यन्त आनन्ददायक होती है। प्रत्येक मनुष्य के मुख पर इस समय कुछ न कुछ नवीनता देख पड़ती है। ऐसे समय में अबुल फजल अकेला ही छज्जे पर खड़ा था। परन्तु पिता की मृत्यु से उसका मुख उदासीन और काला सा हो गया था। वह क्षणभर में क्रोध से लाल हो जाता और क्षण ही भर में ज्वालामुखी की तरह चिल्लाने लगता, उसकी यह चमत्कारपूर्ण दशा देखकर लोग घबड़ा जा सकते थे। "अरे हरामखोर शिवाजी! तूने अच्छी दगाबाजी की। अरे, मेरे पिता को, जो हाथी के समान बलवान था, तूने बात की बात में मार डाला! याद रख कि यह अबुल फजल भी कुछ कम नहीं है। तेरे कलेजे का खून पिऊँगा। जब तेरा सिर काटकर बादशाह के पैरों पर रक्खूँगा तभी पिता के ऋण से मुक्त होऊँगा। अच्छा! अब आप कहते हैं 'यदि हमारे बादशाह को यह मालूम होता कि वह धोखेबाज तुम्हें मार डालेगा तो उन्होंने तुम्हें कभी न भेजा होता।'" इसी प्रकार अबुल फजल बक रहा था कि इतने ही में जीने से पैरों की आवाज आई और एक हुजरा सिद्दी साहब के आने की खबर देकर चला गया। सिद्दी जोहार भीतर आया। अबुल फजल ने बड़े आदर के साथ उसे अपनी गद्दी पर लाकर बिठलाया और स्वयं भी उसीके पास बैठ गया। दो चार शरबत के प्याले उड़ाकर हुक्का पीने के बाद अबुल फजल ने पूछा "सिद्दी साहब! आपके साथ चलने के लिए बादशाह ने क्या मुझे हुक्म दिया है? बतलाइये। शीघ्र ही बतलाइये। क्या बादशाह ने मुझे यह मान दिया है कि मैं उस दुष्ट कावबाज के कलेजे का खून पीकर उसका सिर बादशाह के चरणों पर रक्खूँ?" इसके बाद सिद्दी जोहार ने दरबार का समाचार बतलाया। अबुल फजल को जब यह मालूम हुआ कि बादशाह ने उसे शिवाजी को पराजित करने के लिए सिद्दी जोहार के साथ भेजा है तब उसे बड़ा आनन्द हुआ। अबुल फजल ने सिद्दी जोहार को अपने ही यहाँ रख लिया और वह यह सलाह करने लगा कि शिवाजी को कैसे पकड़ना चाहिए, उसे कैसे पराजित करना चाहिए, तथा उसे जीता पकड़कर किस प्रकार कैद करना चाहिए। वे दोनों सारी रात भर जागते रहे तथापि उनकी मसलहत खतम नहीं हुई।

गंगो एक ब्राह्मण था और हुसेन नामक एक मुसल्मान उसका गुलाम था। हुसेन ने अपने मालिक की सेवा बड़ी निष्ठा के साथ की, इस कारण मालिक उस पर प्रसन्न हुआ और हुसेन को सुलतान का पद मिल गया। हुसेन ने अपने राज्य का नाम "ब्राह्मणी राज्य" रक्खा था। हुसेन के बाद ब्राह्मणी राज्य के पाँच टुकड़े हो गये। उन्हींमें से एक बीजापुर का राज्य था। ब्राह्मणी राज्य ने दक्षिणी भारत का बहुत सा भाग घेर लिया था। और इधर दिल्लीश्वर औरंगजेब ने अपनी सत्ता का प्रचार अधिकाधिक करने का क्रम शुरू किया था। बेगम मुम्ताजमहल के मरने से अत्यन्त दुःखी होकर शाहजहाँ ने एक प्रकार अपने हाथ से राज्यसूत्र छोड़ ही दिये थे। शाहजहाँ के चार लड़के थे। चारों के स्वभाव भिन्न भिन्न थे। एक क्रोधी था तो दूसरा विषयी और मद्यपी था। तीसरा यदि धूर्त, कपटी और विश्वासघातकी था तो चौथा मूर्ख ही था। उनमें से औरंगजेब ने अपने बाप को कैद कर लिया और अपने भाई दारा, शुजा और मुराद का नाश करके स्वयं गद्दी पर बैठ गया। वह समझता था कि जब तक हिन्दुओं को मुसल्मानी दीक्षा न दी जायगी तब तक उसका राज्य दृढ़ नहीं होगा। इसी कारण औरंगजेब ने एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार लेकर हिन्दुओं को मुसल्मान बनाने का क्रम जारी किया था। चारों ओर से मुसलमानों के घिर जाने के कारण हिन्दुओं के कष्ट की सीमा नहीं थी। छत्रपति शिवाजी के समान तेजस्वी यदि उस समय न अवतीर्ण हुए होते तो हिन्दुओं का बीज भी बाकी रहा होता या नहीं, इसमें शंका ही है। शिवाजी अपने जातिबान्धवों की यह दुर्दशा नहीं देख सके। उन्होंने किसान और मावले लोगों को एकत्र किया और उनकी सहायता से एक के बाद एक मुसल्मानी राज्यों को अपने अधिकार में करने लगे। तोरणा-किला जीतने के बाद बारह वर्ष तक शिवाजी का किसीने मुकाबिला नहीं किया।



स० बाजी प्रभु देशपांडे।

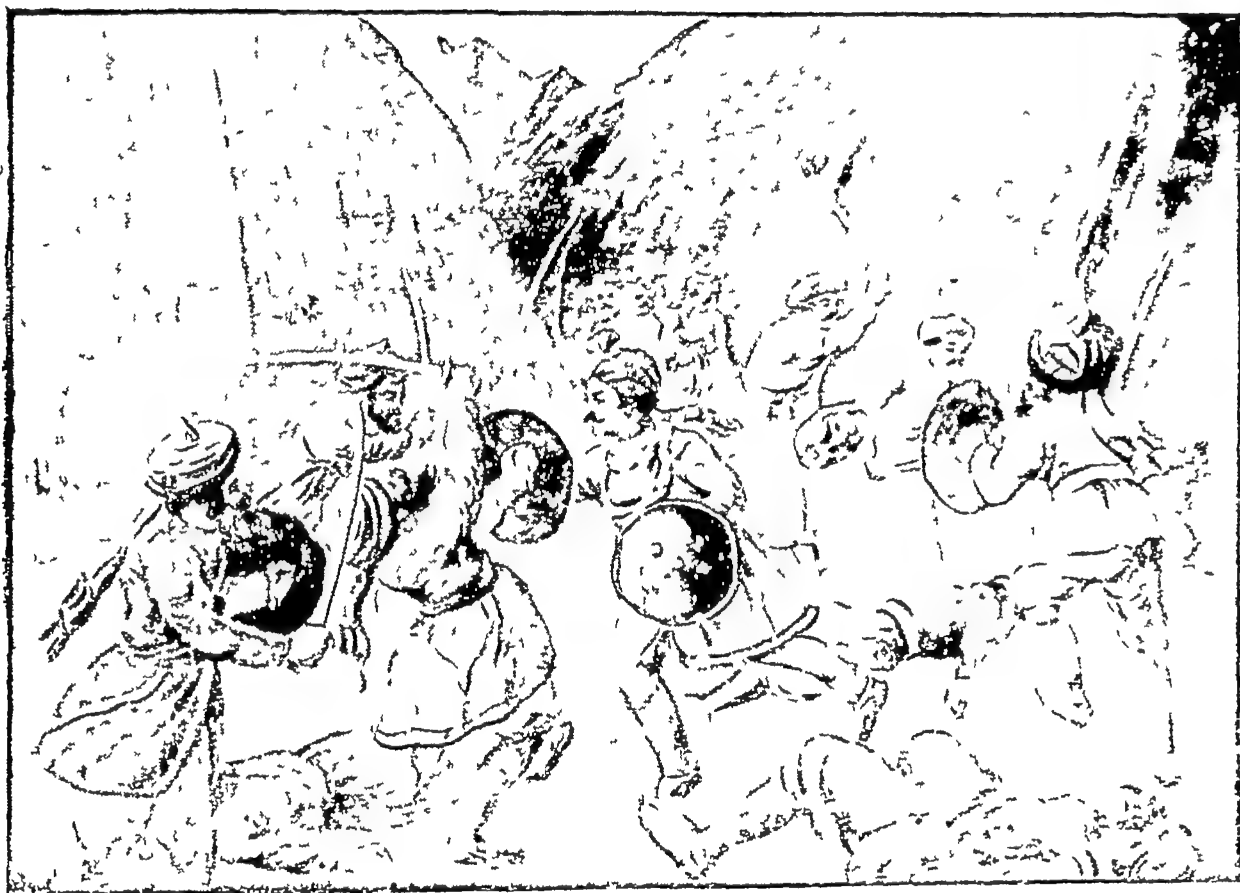
बीजापुर का बादशाह डरता था कि यदि शिवाजी की उपेक्षा की जायगी तो यह हमारी बादशाहत भी ले लेगा। इसी लिए उसने महापराक्रमी अफजलखाँ को शिवाजी को पकड़ने के लिए भेजा। खाँ साहब अपनी शक्ति का बड़ा भारी घमंड रखते थे। आप यह प्रतिज्ञा करके शिवाजी के प्रतापगढ़ पर आये कि "शिवाजी को अभी जीता पकड़ लाता हूँ।" पर आप अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सके, अतएव बादशाह को मुख न दिखाते हुए प्रतापगढ़ में ही समाधिस्थ हो गये।

सिद्दी जोहार कैसा हुआ वीर था! वह कभी किसी भी युद्ध से हारकर न लौटा था। इस बार बादशाह ने उसीको शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिए भेज दिया। अबुल फजल भी उसके साथ ही था। बड़ी भारी सेना साथ लेकर दोनों सरदार शिवाजी की तलाश में पन्हालगढ़ की तलहटी में आये। सिद्दी जोहार को ज्योंही यह बात मालूम हुई कि शिवराज इस समय किले में ही हैं त्योंही उसने, क्षणभर का भी विलम्ब न करते हुए किले को घेर लिया। बाहर की रसद भीतर नहीं जाने दी। ज्यों ही यह खबर किले के भीतर पहुँची कि शत्रुओं ने किले को घेर लिया त्योंही वहाँ बड़ा कोलाहल मचा। सभी लोग इस विवंचना में पड़ गये कि हमारे प्रभु अब सुरक्षित बाहर कैसे निकल सकेंगे। सिद्दीजोहार की वीरता मराठों को अच्छी तरह मालूम थी। प्रत्येक यही समझने लगा कि अब हमारे प्रभु पूर्णतया शत्रुओं के पंजे में आ गये। परन्तु शिवराय को अपनी जान की क्या परवा थी! वे इस विवंचना में थे कि शत्रुओं का नाश कैसे किया जाय। शिवाजी यह अच्छी तरह जानते थे कि जब तक हम बाहर न निकलेंगे तब तक शत्रुओं का पराजय न होगा। उन्होंने अपने सहायक जान के लिए जान देनेवाले सरदार अपने पास बुलाये। शिवाजी यह जानते थे कि शत्रु चाहे जो करें, पर किले में प्रवेश नहीं कर सकते। सब सरदारों का यह विचार हुआ कि शिवराय पास ही के रांगणा नामक किले में चले जायँ। बाजी प्रभु देशपांडे प्रथम श्रेणी के विश्वासू सरदार थे। ऐसे कठिन प्रसंग में बाजी प्रभु ने शिवाजी के साथ जाने का हठ किया। शिवाजी ने भी उनका निग्रह देखकर कुछ नहीं कहा और उन्हें साथ ले लिया। थोड़ीसी सेना के साथ रात के समय शिवाजी ने पन्हाले का किला छोड़ा। इधर सिद्दी मराठों की कावेबाजी अच्छी तरह जानता था। इस लिए वह रात को कभी सोता ही न था। जिस समय शिवाजी ने पन्हाले का किला छोड़ा उस समय सिद्दी अपने डेरे में जाग रहा था। मराठों के निकलने की आवाज उसके कानों में पड़ी। उसने गहरी नींद में पड़े हुए अबुलफजल को उठाया और वहीं भारी सेना लेकर वह मराठों को पकड़ने के लिए दौड़ा। शिवाजी और बाजी प्रभु को देख पड़ा कि शत्रुओं ने हमारा पीछा किया है, अतएव वे वहीं घाटी में ठहर गये। यह बात दोनों ने समझ ली थी कि शत्रुओं की इतनी भारी सेना के सामने हम लोग नहीं टिक सकते। पर बाजी प्रभु को विश्वास था कि यदि इसी घाटी में शत्रुओं को रोक लेंगे तो महाराज सुरक्षित रांगणा पर निकल जायँगे। अतएव उन्होंने महाराज के चरण पकड़कर कहा—"महाराज, आप यहाँ से निकल जायँ। एक एक क्षण युग युग के समान बीत रहा है। मैं अपनी थोड़ीसी सेना के साथ यहाँ रहता हूँ और शत्रुओं को घाटी नहीं थमने दूँगा, चाहे मेरे प्राण भले ही चले जायँ।" परन्तु शिवराज इस बात के लिए तैयार नहीं होते थे। उन्होंने बाजी के गले में लिपटकर गद्‌गद कंठ से कहा—"बाजी तुम सब को छोड़कर मैं यहाँ से कैसे जाऊँ? तुम मेरे लिए मरो और मैं अकेले प्राण लेकर भाग जाऊँ—यह कहाँ का न्याय है?" इस पर स्वामिभक्त बाजी प्रभु ने प्रार्थना करके कहा—"महाराज, आप क्या कहते हैं! हम मर जायँ तो अच्छा पर हमारा पालन करनेवाला न मरे!" "फिर मैं तो आपका एक तुच्छ सेवक हूँ। हमारी सब की चैन आपही की सुरक्षा पर है। अब अधिक बात करने का यह समय नहीं है—इसलिये वे शत्रु आ पहुँचे!", यह सुन कर शिवाजी लाचार हो गये और बाजी के गले से हाथ निकाल लिये। "रांगणा में पहुँचते ही तुम्हारी मदद के लिए सेना भेजता हूँ। तुम्हें इस बात के जानने के लिए, कि मैं किले में सुरक्षित पहुँच गया, मैं किले में पर स्वतन्त्र तोपों की पाँच फैर करूँगा।" इतना कहकर शिवराज अपने शरीररक्षक [illegible] लोग साथ [illegible] चल दिये। अब बाजी प्रभु के जी में जो आया [illegible]

के दो भाग करके उसे घाटी के दोनों ओर खड़ा कर दिया। यह देखकर, कि अब चौथाई घड़ी में ही शत्रु घाटी धँस जायँगे, बाजी ने भारी गर्जना करके अपने सैनिकों में आवेश आने के लिए इस प्रकार कहा—"मेरे प्राणप्रिय सैनिको! यह तो तुमने समझ ही लिया होगा कि आज अपने ऊपर कितनी भारी जवाबदारी है। तुम्हारी स्वामिभक्ति की परीक्षा होने का यही समय है। यवन लोग चाहे देखने में तुमसे मोटे ताजे क्यों न हों, पर शूरता में तुम्हीं उनसे अधिक हो। यह बात आज अच्छी तरह दिखला दो कि मराठे लोग जिस धनी का नमक खाते हैं उसकी नौकरी भी ईमान से बजाते हैं, यह बात स्पष्ट दिखलाने का यही समय है। यवनों को इस बात का अनुभव आज हो जाना चाहिए कि एक बार सिंह को पकड़ना सहज है पर महाराज को पकड़ लेना वैसा सहज काम नहीं है। आज संसार को यह अच्छी तरह बता दो कि महाराज की सेवा कितनी कठिन होती है। आज यदि विजयश्री हमारे गले में जय-माल पहना देगी तो हम लोगों के स्वामी हमारे लिए कोई बात उठा नहीं रक्खेंगे। वे हम लोगों पर इनामों की वर्षा करेंगे। अथवा इधर हम लोग यदि स्वामिकार्य के लिए रण में पतन भी हो जायँगे तो हमें मोक्षप्राप्ति होगी। 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' हमारी कीर्ति अजरामर रहेगी। हमें अपने लड़केवालों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इस बात पर विश्वास रक्खो कि हमारे प्रभु कभी उनकी उपेक्षा न करेंगे। उठो, कमर कसो। अपने पराक्रम से शत्रुओं की आँखें चकाचौंध में डाल दो। हमारे सामने इन तुच्छ यवनों की क्या गणना है! यह देखो शत्रुदल आ गया। तुम सब के आगे यह बाजी छाती ठोंककर घाटी के मध्यभाग में जाकर खड़ा रहता है।" इतना कहकर वह वीररत्न इस प्रकार घाटी में कूद पड़ा जैसे भेड़ों के झुंड में बाघ आ कूदता है। इस भाषण से मावले मराठों के शरीर में वीरश्री सञ्चार कर गई, उनका रक्त खोलने लगा, उनकी भुजाएँ फड़कने लगीं, उनके अँगरखों के बन्द तड़ तड़ टूटने लगे। मावलों ने अपनी ढालें निकालकर बाएँ हाथ में पकड़ लीं और बड़े कायदे के साथ घाटी में जा खड़े हुए। अबुलफजल ने बढ़कर पहला हमला किया। परन्तु मावलों की शमशेर के सामने उसकी एक नहीं चली। बाजी प्रभु असामान्य योद्धा था। वह यवनों को क्या समझता था! उसने अपनी रक्तप्यासी तलवार से सैकड़ों यवनों को कटस्नान कराया। अबुलफजल ने जब देखा कि मराठों के सामने उसकी एक भी नहीं चलती तब वह पीछे लौटा गया। सिद्दी ने उसकी खूब निर्भर्त्सना की और बड़े आवेश से वह स्वयं आगे बढ़ा। इस बार बाजी के दो एक वार लगे। तथापि उन्होंने उस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इस हमले में बाजी के भी कई लोग काम आये। यवनों के मुर्दों से वह घाटी भर गई। दूसरा हमला भी लौटा दिया। इसके बाद बाजी स्वस्थ एक शिला पर बैठ गये। तीन घंटे तुमुल युद्ध हुआ, तथापि शिवाजी महाराज के पहुँचने की तोपों की आवाज सुनाई नहीं दी।

बाजी यह विचार करही रहे थे कि अब क्या किया जाय, कि इतनेही में यवनों ने तीसरा हमला कर दिया। इस बार बाजी प्रभु के दस बीस घाव लगे। पर उन्होंने यवनों को एक डग भर भी आगे बढ़ने नहीं दिया। दाहने हाथ में वार लगते ही बाजी के हाथ की तलवार गिर पड़ी। अब बाजी ने समझा कि शत्रु घाटी अवश्य ही पार कर जायँगे। वे बड़े दुःख से बोले—'शिवराज! अन्त में शत्रु क्या तुम्हें पकड़ ही लेंगे? ओ! क्या आप किले में सुरक्षित नहीं पहुँचेंगे!" दाहने हाथ का घाव बाँधने के लिए मौका ही न था, शरीर से रक्त की धाराएँ बराबर बह रही थीं, खड़े रहने भर के लिए भी शरीर में शक्ति नहीं थी तथापि बाजी का अपने शरीर की तरफ ध्यान ही कब था? उनका सारा ध्यान रागणा-किले की ओर था! बाजी ने बाएँ हाथ में तलवार ली और गिरते पड़ते उठने लगे, फिर नीचे गिरे, इतनेही में दनादन तोपों की आवाज उन्हें सुनाई दी। "मैंने अपना कर्तव्य किया। मैंने अपने स्वामी का प्राण बचा लिया। अब इस देह का चाहे जो हो जाय। सिद्दी जोहार, जा, खुशी से जा। अब तेरा रास्ता साफ है मैंने अपने प्रभु को सुरक्षित पहुँचा दिया।" इतना कहकर वे धरती पर गिर पड़े। शरीर की प्राण-ज्योति निकल गई। मावले लोग बाजी का शव एक ओर उठा ले गये। बाजी का असीम पराक्रम देखकर यवन वीरों ने दाँतों तले उँगली दबाई। उनके मन में बाजी प्रभु के विषय में आदरभाव आ गया। ऐसे वीर के शव को भेटने के लिए सिद्दी वीर ने अपने दोनों हाथ आगे फैलाये, पर अपवित्र हो जाने के भय से वह पीछे हट गया। उसने अपने पैरों के पठानी जोड़े निकालकर उस शव को त्रिवार प्रणाम किया, प्रदक्षिणा की। वह घुटना टेककर नीचे बैठ गया और उसका रमणीय हास्य वदन ध्यानपूर्वक देखने लगा। "बाजी, तूही सच्चा शूर है! तूही सच्चा स्वामिभक्त है! तू जैसा अपने मालिक का प्यारा था वैसाही तू अब अपने परमेश्वर का भी प्यारा हुआ!" इतना कहकर उस यवन वीर ने अपनी सेना लौटाई और विषण्ण-वदन होकर वह बीजापुर को लौट गया। यवन सेना के जाते ही सब मराठे वीर बाजी प्रभु के आसपास जमा हुए और उनका एक एक गुण याद करके जोर जोर से आक्रोश करने लगे। महाराज को यह दुःखद समाचार बतलाने के लिए दो चार मावले रागणा किले की ओर चले। यह खेदजनक समाचार सुनकर शिवाजी महाराज को अतिशय दुःख हुआ। "बाजी, तू अब मुझे कहाँ मिलेगा? मेरे प्राण बचाने के लिए तूने अपने प्राण दे दिये! बाजी, तेरे समान वीररत्न ने मुझे ऐसे समय पर त्याग दिया, अब मैं कैसे टिक सकूँगा!" इस प्रकार एक दो नहीं अनेकों बाजी के सद्गुण अपने आसपास जमा हुए लोगों को बतला बतलाकर शिवराज चिल्ला चिल्लाकर रोने लगे। धन्य वे स्वामी और धन्य वे सेवक! बाजी प्रभु की याद शिवाजी जन्मभर नहीं भूले!

———



तुम सब के आगे यह बाजी छाती ठोंक कर घाटी के मध्यभाग में जाकर खड़ा रहता है!

# कलकत्ते की कन्वेन्शन।



प० विशन नारायण दर।
( इस कन्वेन्शन के सभापति )

सूरत में कांग्रेस की असली सूरत बदल कर कन्वेन्शन बन गई। यह कन्वेंशन प्रति वर्ष कहीं न कहीं हुआ करती है। इस वर्ष वह कलकत्ते में हुई। इस के सभापति पण्डित विशन नारायण दर ने इस वर्ष जो वक्तृता दी वह सचमुच ही मदरास, लाहौर और प्रयाग की कन्वेन्शन के सभापतियों की वक्तृताओं से अधिक प्रभावशालिनी उदात्त, विचारपूर्ण थी। यह वक्तृता अत्यन्त निस्पृह और पुरानी कांग्रेस के आसन को शोभा देने लायक थी। तथापि कई दृष्टियों में यह अपूर्ण थी। 'स्वदेशी' इत्यादि विषयों का उसमें नाम भी न था। कन्वेन्शन के प्रस्ताव प्राय पुराने ही थे परन्तु कई प्रस्तावकर्त्ता नवीन और अप्रसिद्ध थे। 'कांग्रेस' की घटना और नियमों के सम्बन्ध में आज कई वर्षों से उसके नेताओं में वादविवाद हो रहा है, इस साल भी इसका कोई फैसिला नहीं हुआ। कन्वेन्शन हो चाहे कांग्रेस हो, बिना नियमबद्ध हुए वह स्थिर नहीं रह सकती। सभी लोग उसे नियमबद्ध करना चाहते हैं— और प्रयत्न भी करते हैं, पर आश्चर्य है कि नेता लोग एकमत नहीं हुए। प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी नेता कहलानेवालों में इस नियमबद्धता पर कठोर वादविवाद हुआ, और उसमें डा० मलिक और माननीय भूपेन्द्रनाथ वसु में खटे मीठे प्रश्नोत्तर हुए। सूरत के झगड़े के बाद 'क्रीड' को तोड़कर दोनों पक्षों का मेल कराने के लिए जो बाबू भूपेन्द्रनाथ वसु सर फीरोजशाह के पैर पड़ते थे, और सर फीरोजशाह जिन भूपेन्द्र बाबू की प्रार्थनाओं को तृणवत् भी महत्व नहीं देते थे वही भूपेन्द्र बाबू आज डा० मलिक के प्रश्नों को ठुकरा कर रख देते हैं। समय की बलिहारी है! हम चाहते हैं कि अहम्मन्यता और अधिकारप्रियता की पिशाचिनीरूप रेखा में पड़कर हमारे कांग्रेस के नेता कट न जायें, कांग्रेस की नियमबद्धता के विषय में वे शीघ्र ही एकमत हो जायें और अगले वर्ष से सारे राष्ट्र की सच्ची 'राष्ट्रीय सभा' फिर होने लगे। इसीमें भारत का कल्याण है।

# आधिराजिक घोषणापत्र।

" श्रीमान् महाराजाधिराज पञ्चम जार्ज भारतेश्वर

जो कि हमने अपने शासनकाल के प्रथम वर्ष में सन १९१० की १९ वीं जुलाई और ७ वीं नवम्बर के अपने आधिराजिक घोषणापत्रों के द्वारा अपनी यह मनीषा प्रकट और प्रकाशित की थी कि सर्व शक्तिमान परमेश्वर के अनुग्रह और कृपा से हम अपने राज्यारोहण का महोत्सव सन १९११ की २२ वीं जून को करेंगे,

और जो कि सर्वशक्तिमान परमेश्वर के अनुग्रह और कृपा से वह महोत्सव गत २२ वीं जून गुरुवार के दिन हम सिद्ध कर सके हैं,

और जो कि हमने अपने शासनकाल के पहले वर्ष में, २२ वीं मार्च सन १९११ के अपने आधिराजिक घोषणापत्र के द्वारा अपनी यह इच्छा और मनीषा प्रकट की थी कि हम स्वयं अपने उन सब प्रेमी प्रजाजनों पर, जो हमारे भारतवर्ष के राज्य में हैं यह प्रकट करें कि वह महोत्सव इस प्रकार सिद्ध किया गया है, और हमारे गवनर, लफ्टिनन्ट गवनर तथा हमारे अन्य अधिकारी और हमारे संरक्षित देशी राज्यों के राजा और धनी मानी और हमारे भारतीय साम्राज्य के सब प्रान्तों के प्रतिनिधि हमारे सम्मुख उपस्थित हों,

अतएव अब हम अपने इस आधिराजिक घोषणापत्र के द्वारा यह प्रकट करते हैं कि हमारे राज्यारोहण की विधि हो गई, और अपने महाराजाधिराज और राजराजेश्वर के नाते से, अपने सब अधिकारियों और सब राजाओं तथा धनी मानी लोगों और सब जातियों को, जो इस अवसर पर यहां एकत्र हैं, अभिवादन करते हैं, और हम उन सब को यह आश्वासन दिलाते हैं कि हमारे हृदय में भारतीय साम्राज्य विषयक गम्भीर प्रेम है। हम इस साम्राज्य के कल्याण और उत्कर्ष की सदा चिन्तना करते रहते हैं— और ऐसी ही सदा करते रहेंगे।

यह घोषणापत्र हमारे शासनकाल के दूसरे वर्ष में, १२ दिसम्बर सन १९११ ई० को, दिल्ली की हमारी राजसभा में प्रकाशित किया गया।

परमात्मा महाराजाधिराज भारतेश्वर की रक्षा करे!



त्रावनकोर के महाराज।



भूपाल की बेगम साहबा।

# साहित्य-चर्चा ।

## १ ग्रन्थसाहित्य ।

१ **अमेरिका-पथ-प्रदर्शक**—लेखक श्रीयुत सत्यदेव। मूल्य पाँच आने। मिलने का पता—सत्यग्रन्थमाला-आफिस, कलकत्ता। जिस "सत्यग्रन्थमाला" की कई महीनों से समाचारपत्रों में चर्चा हो रही थी उसकी यह प्रथम संख्या प्रकाशित हो गई है। इस पुस्तक में अमेरिका जानेवाले विद्यार्थियों के लिए सब प्रकार की जानकारी की गई है। व्यापार और मजदूरी के काम के लिए जाने वाले को भी साधारण सूचनाएँ हैं। ग्रन्थकर्त्ता ने प्रवासी के रूप में अमेरिका जाने और वहां रहकर अपना काम सिद्ध करने के विषय में सब बातें बड़ी योग्यतापूर्वक समझा दी हैं। पुस्तक के आदि में 'मैं कैसे अमेरिका पहुँचा' नामक विषय में ग्रन्थकर्त्ता ने अपने अद्भुत साहस और कर्त्तव्यशक्ति का परिचय दिया है। सारांश, पाताल लोक में विद्या और धन कमाने के हेतु से जानेवाले सज्जनों के लिए यह पुस्तक जैसी उपयोगी है वैसी ही अन्य लोगों के लिए मनोरंजक भी है। बीच बीच में लेखक के स्वदेशविषयक प्रेम और स्वदेशाभिमान की छटा से पुस्तक का महत्त्व और भी बढ़ गया है। इस पुस्तक का नाम यदि "पाताल-पथ प्रदर्शक" रक्खा जाता तो कैसा होता?

२ **गायत्री भाष्य**—पं० जगन्नाथ मिश्र-कृत। पं० हरिहर आचार्य दीक्षित द्वारा प्रकाशित। बिना मूल्य वितरित। मिलने का पता—गोरखा-ग्रन्थ प्रचारक मंडली एम० हिल पोस्ट, बम्बई। इस पुस्तक में गायत्री के ३८ प्रकार के अर्थ बड़ी विद्वत्ता के साथ किये गये हैं। पुस्तक के उत्तरार्द्ध में छै राजनैतिक अर्थ भी हैं। **राज्याभिषेक** के समय दण्ड धारण करने में राजा लोगों को इस अर्थ पर **गायत्री मन्त्र** पढ़ना चाहिए—

"हम राज्य का अधिकार चाहनेवाले क्षत्रिय लोग (**देवस्य**) राजा के (**तत्**) उस (**वरण्येम्**) श्रेष्ठ (**भर्ग**) तेज और पराक्रमरूपी दण्ड को (**धीमहि**) धारण करते हैं, [किस लिए?] (**भूर्भुव स्व**) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यादिकों को (**सवितु**) अपने अपने वर्णाश्रमधर्म में लगाने के लिए, (**य**) जो दण्ड (**न**) हम राजाओं की (**धियः**) बुद्धि को (**प्रचोदयात्**) प्रजापालनादि धर्ममार्गों में प्रेरणा करता है।"

अस्तु। इसी प्रकार से भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के दर्शक गायत्री के अर्थ इस पुस्तक में दिये हैं। पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। मंडली का उद्देश्य स्तुत्य है। श्रीमान् लोगों को इस परोपकारिणी और धार्मिक मंडली की सहायता करनी चाहिए।

३ **सान्द्योपासक**—लेखक बाबू ब्रजनन्दनसहाय मूल्य ।।।) आने। मिलने का पता—खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर। यह एक गद्यकाव्य करुणरसात्मक उपन्यास है। इसमें शुद्ध प्रेम अथवा ईश्वरभक्ति की स्वतन्त्र रीति से बहुत ही उत्तम मीमांसा की गई है। कथानक की रचना अत्यन्त भावपूर्ण है। कल्पनाएँ सुन्दर हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह पुस्तक अपने ढँग की अनूठी ही है। वर्णनशैली प्रौढ़ तथा रोचक है। प्रूफ-संशोधन की त्रुटियाँ बहुत हैं। पुस्तक की प्रत्येक कल्पना के प्रारम्भ में जो आंग्ल कवियों की भावपूर्ण सूक्तियाँ दी हुई हैं उनका अर्थ भी यदि दे दिया जाता तो और भी उत्तम होता। पुस्तक साहित्य-प्रेमियों के लिए संग्रहणीय है।

४ **तृतीय वैद्यक सम्मेलन** और उसका **कार्य-विवरण**—सम्पादक पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल। मूल्य ।।।) आने। मिलने का पता—आयुर्वेद महामण्डल, प्रधान कार्यालय, प्रयाग। चित्रमयजगत की गत संख्या में पाठक जिन कविराज महाशय का सचित्र जीवनचरित पढ़ चुके हैं उन्हींकी अध्यक्षता में गत दिसम्बर मास में जो वैद्यक सम्मेलन हुआ उसीका यह सविस्तर विवरण है। इसमें मामूली कार्य-विवरण के अतिरिक्त सभापति महाशय का संक्षिप्त भाषण, द्वितीय साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष पं० गोविन्द नारायण मिश्र की वैद्यक-सम्बन्धी वक्तृता तथा भिन्न भिन्न वैद्य विद्वानों के लिखे हुए बारह निबन्ध भी दिये हुए हैं। मिश्रजी की छोटीसी, पर सारयुक्त वक्तृता वैद्यक-ज्ञान से भरी हुई है। एक जगह आपने कहा है'—"यथार्थ में वैदिक समय कोई समय ही नहीं है। वेद अनादि हैं, तब उनका समय कहना ही मूर्खता (!) है।" यद्यपि आधुनिक विद्वान वेद को अनादि नहीं मानते, तथापि यदि हम वेदों को अनादि मान भी लें तो भी "वैदिक समय" कहना क्या मूर्खता है? क्या जिस समय आर्यावर्त के सम्पूर्ण आर्य वेद की आज्ञाओं पर चलकर, सुखी और सन्तुष्ट थे वह "वैदिक समय" नहीं है? इसी अर्थ में प्राय आधुनिक विद्वान "वैदिक काल" या "वैदिक समय" का उपयोग करते हैं। न जाने किस आधार पर मिश्रजी ने उक्त मत कह डाला है! अस्तु। आनन्द की बात है कि अब भारतीय वैद्य फिर से जाग्रत हुए हैं। आशा है कि वे फिर से अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करेंगे। यह रिपोर्ट वैद्य महाशयों को अवश्य देखना चाहिए। निबन्ध बहुत उपयोगी हैं।

## २ मासिक साहित्य ।

१ **नागरी-प्रचारक**—सम्पादक और प्रकाशक पं० रूपनारायण पाण्डेय। वा० मूल्य सिर्फ १) रुपया। मिलने का पता—मैनेजर नागरी-प्रचारक, लखनऊ। आर्यभाषा में यह पत्र भी अपने ढँग का निराला ही है। इसमें साहित्यचर्चा की अच्छी विपुलता रहती है। समालोचना करने की इसकी शैली प्रशंसनीय है। कार्तिक के नम्बर में 'द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' की अच्छी मीमांसा की गई है। 'समालोचना' और 'विविध विषय' की टिप्पणियों के अतिरिक्त 'ईश्वरवाद' और 'वेदान्त' नामक लेख भी विचारपूर्ण हैं। आर्यभाषा में यह सब से सस्ता, और साहित्य की दृष्टि से उपयोगी, पत्र है।

२ **साधु**—सम्पादक श्रीमन्त मथुरादास जी गुरु श्री आत्मारामजी। वा० मू० २)। पता—साधु-कार्यालय, बड़ोदा। इस पत्र में वैष्णव-सम्प्रदाय के अनुकूल, धार्मिक नैतिक, शिक्षाप्रद लेख प्रकाशित होते हैं। प्रति संख्या में किसी न किसी साधु महात्मा का चित्र रहता है। वैष्णव महात्माओं के जीवनचरित भी इसमें कभी कभी निकलते हैं। इसे देखकर हम आशा कर सकते हैं कि वर्तमान साधु-नाम-धारी, पर साधु-कर्त्तव्य-च्युत, लोगों का अवश्य सुधार होगा।

३ **स्वदेश-बान्धव**—सम्पादक कुँ० हनुमन्त सिंहजी, सह० सम्पा० पं० पन्नालाल जी। वा० मू० १।।)। पता—मैनेजर स्वदेशबान्धव, आगरा। इसमें शिक्षा सामाजिक सुधार, स्त्रियोपयोगी, इत्यादि अनेक विषयों के उपयोगी लेख निकलते हैं। कविताएँ भी छोटी छोटी और अच्छी निकल जाती हैं। इसके लेखक कोई कोई नवीन और उत्साही मालूम होते हैं। साहित्य-विषयक लेख भी इसमें प्राय आते हैं।

४ **जासूस**—सम्पादक बाबू गोपालराम, गहमर जिला गाजीपुर। वा० मू० २) रुपये। यह पत्र १२ वर्ष से बराबर निकल रहा है। इसमें प्राय प्रति मास ५०।६० पेज का एक जासूसी उपन्यास पूरा निकल जाता है। यदि कोई उपन्यास विशेष रोचक और बड़ा हुआ तो वह कई महीने भी चलता है। बनारसी उपन्यासों की तरह इसमें तिलिस्म और ऐयारी के बेढंगे और अस्वाभाविक किस्से नहीं निकलते। इसके उपन्यासों में मानवी जीवन की प्राकृतिक और कौतूहलवर्धक घटनाओं का वर्णन रहता है। जासूस लोग जिस चतुराई और कार्यदक्षता से मामले का पता लगाते हैं उसका रोचक वर्णन इसके उपन्यासों में रहता है। भाषा बोलचाल की और सरल होती है। पत्र का नियमित रूप से निकलना भी उल्लेखनीय है। बाबू गोपालरामजी आर्यभाषा में जासूसी उपन्यासों का अच्छा साहित्य तैयार कर रहे हैं।

५ **भारतोदय**—महाविद्यालय सभा, ज्वालापुर का मुखपत्र। सम्पादक पं० पद्मसिंह शर्मा, सह० सम्पादक महाशय भीमसेनशर्मा। यह "एक सामाजिक, धार्मिक और शिक्षाविषयक मासिक" है। इसके आवरणपृष्ठ पर यह श्लोक है—

निगमयता लेखललामसञ्चय—
प्रकाशितं येन कृतोऽनिनिश्चय।
गहीतमद्धर्मविशेषसंश्रय—
धर्मास्ति सोऽयं भुवि "भारतोदय"॥

अतएवही इसके लेख धर्मभावपूर्ण और रुचिकर होते हैं। कार्तिक की संख्या में स्वामी दर्शनानन्दजी का 'गुरुकुल तालीम से जगत का कल्याण' नामक शिक्षाविषयक और श्रीयुत वासुदेव शर्मा का 'हमारी परतन्त्रता' नामक सामाजिक लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक हैं। उपाध्याय हरिपदजी का 'शरत्सुषमा' नामक संस्कृत कविता और 'शङ्कर' कवि का 'अन्योक्ति से उत्कृष्टता' नामक कविताएँ भी उल्लेख योग्य हैं। वैदिक-धर्म-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर नूतन कविताओं से सुशोभित इस पत्र के चिरजीवी होने के अर्थ परमात्मा से प्रार्थना करते हुए हम भी उसीके स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं—

सकल सुजनहृद्विनोदहेतु—
नवनवत्त विशेष शास्त्रिसाग
निगम विहितधर्ममार्गसेतु—
श्रियमिह तनुतु "भारतोदयो" ऽयम्॥

## साप्ताहिक साहित्य ।

१ **सद्धर्मप्रचारक**—आर्यभाषा में जितने साप्ताहिक पत्र निकलते हैं उन सब में हम अग्रस्थान इसीको देते हैं। इसकी विचारशैली अपूर्व और अद्वितीय है। इसकी सम्पादकीय टिप्पणियों और मुख्य लेखों में मौलिकता (Originality) कूट कूट कर भरी रहती है। इसके नवीन सम्पादक का नाम अभी हाल ही में प्रकट हुआ है, तथापि इसकी विचारशैली और सम्पादन-पद्धति से हम बहुत समयपूर्व समझ गये थे कि ये लेख किसी नवीन विचार वाले और गुरुकुल के किसी परिणतप्राय ब्रह्मचारी के मस्तिष्क से निकले हुए होने चाहिए। यह पत्र समाज पर निरभिमान रहकर उसकी समीक्षा करता है। प्राचीनतर गुरु-कुल-शिक्षा-प्रणाली और वैदिकधर्म का प्रचार करके आर्यमाता का प्राचीन वैभव पुन स्थापित करना इसका मुख्य उद्देश्य है। हमारी सम्मति है कि आधुनिक वैदिक काल के विज्ञान, साहित्य, इतिहास इत्यादि का राष्ट्रीय भाषा (आर्यभाषा) और नागरी लिपि के द्वारा प्रचार करने से उक्त उद्देश्य अवश्य पूर्ण होगा। तथास्तु। इस पत्र के सम्पादक ब्रह्मचारी इन्द्र महाशय स्नातक हैं। साहित्य-संसार में हम अपने इस बन्धु का बड़े आदर और प्रेम से स्वागत करते हैं। इस पत्र का वार्षिक मूल्य सर्वसाधारण से २।।) और विद्यार्थियों से १।।, रुपया है। कागज, आकार छपाई आदि भी सब पत्रों से अच्छी है। मिलने का पता—गुरु-कुल कांगड़ी, हरद्वार।

२ **हितवार्ता**—यह पत्रिका भी राजनैतिक विचारों में अपने ढंग की अनूठी ही है। 'हिन्दी-केसरी' के बाद जो सज्जन राजनैतिक लेखों के पढ़ने को तरसते हैं उनकी लालसा, किसी अंश में, यह पत्रिका पूर्ण कर सकती है। सद्धर्मप्रचारक के बाद साप्ताहिक पत्रों में हम इसीको आदर देते हैं। इसके सम्पादक हमारे परम मित्र पं० बाबूराव पराड़कर महाशय महाराष्ट्र हैं। आप बड़ी योग्यता के साथ इस पत्रिका का सम्पादन करते हैं। यह कलकत्ते से निकलती है और वार्षिक मूल्य २) है।

३ **भारतमित्र**—यह पत्र भी अब आगे बढ़ रहा है। जब से इसका सम्पादन भार पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के कन्धों पर आया है तब से इसमें अनेक सुधार हो रहे हैं। राजनैतिक विचारों में अब यह भी औरों से अच्छा है। यह अब दिल्ली दरबार के उपलक्ष में दैनिक रूप से भी निकलने लगा है। हम इसके साहस को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते हैं। दैनिक लेख और टिप्पणियाँ विचारपूर्ण होती हैं। यह भी कलकत्ते से निकलता है। साप्ताहिक का वा० मू० [illegible]) और दैनिक का १०) बहुत ही उचित है। इसके दैनिक संस्करण की रक्षा करना प्रत्येक मातृभाषाहितैषी का धर्म है।

## चित्रमयजगत और हमारे सहयोगी ।

चित्र और लेखों से सजा हुआ यह मनोमोहक मासिक पत्र पूना के चित्रशाला प्रेस से निकलता है। इसके मालिक महाराष्ट्र सज्जन हैं और सम्पादक पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी जी एक अच्छे कवि हैं। यह अपने ढंग का एक निराला ही मासिकपत्र है। इसके विषय में इतनाही कहना यथेष्ट है कि जो लोग मासिकपत्र पढ़ने तथा चित्रों की अनोखी छटा देखने के पक्के शौकीन हैं वे नमूना देखने पर इसे मँगाये बिना नहीं रहेंगे, इत्यादि, इत्यादि।
—बिहार-बन्धु, बाँकीपुर, २३ दिसम्बर १९११।



री कु।

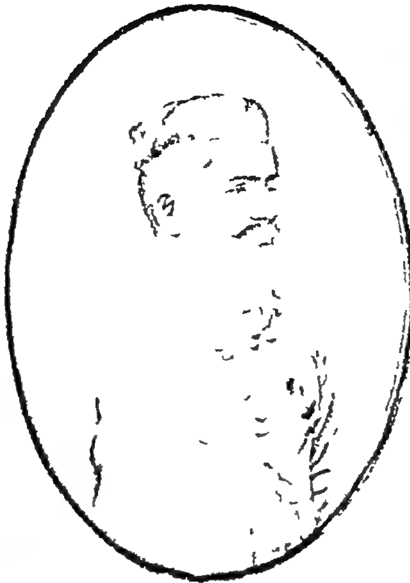
महाराज पञ्चम जार्ज और महारानी मेरी ( युवराज, अन्य राजपुत्र और र

हार्डिंज।

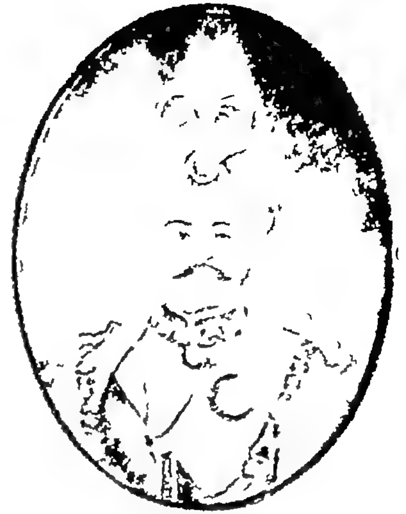
## दिल्ली–दरवार में गये हुए, भारत के कुछ मुख्य मुख्य राजा।



श्रीमान् निजाम, हैदराबाद।



श्रीमान् सयाजीराव गायकवाड, बड़ोदा।



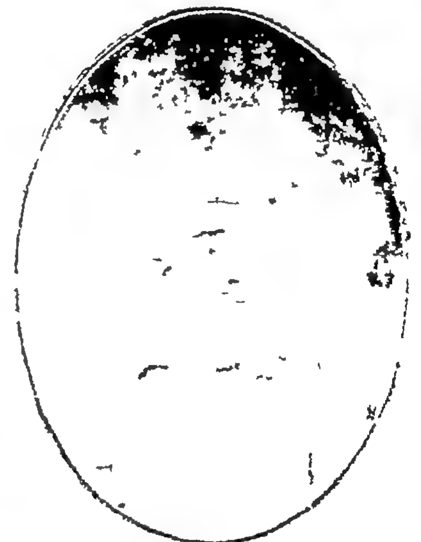
श्रीमान् श्रीकृष्ण वाडियार, मैसूरनरेश।



महाराज सर चन्द्रशमशेर बहादुर राना, नेपाल के मुख्य प्रधान।



श्रीमान् माधवराव सेंधिया, ग्वालियर।



श्रीमान् तुकोजीराव होलकर, इन्दौर।



सर प्रताप [illegible] इन्द्रमहीन्द्र बहादुर, काश्मीर।



महाराजाधिराज देपासिंह बहादुर, पटियाला।



श्रीमान् शाहू छत्रपति, कोल्हापुर-नरेश।



वर्ष २ ] पौश सम्वत् १९६८ विक्रमी—जनवरी, सन् १९११ ईसवी। [ अंक १

# रामकृष्ण वाक्सुधा। (विन्दु ६)

एक शिष्य:—महाराज परमेश्वर के निर्माण किये हुये इस जगत् में बुरे मनुष्य क्यों होते हैं? सच तो यह है कि इस जगत में बुरा कुछ भी होना ही क्यों चाहिए?

महाराज:—परमेश्वरी सृष्टि की 'विचित्रता' ही साधारण लक्षण है। इस लिए उसमें जैसे बुरा है वैसे ही भला भी है। देखो, सृष्ट वस्तुओं के भी, प्राणी, वनस्पति, उद्भिज आदि अनेक भेद हैं। फिर पशुओं में देखो जिस प्रकार कुछ सीधे और निरुपद्रवी हैं उसी प्रकार कुछ बाघ के समान क्रूर और अन्य प्राणियों की हिंसा करके अपनी उपजीविका करनेवाले हैं। कुछ वृक्षों में उत्तम-बिलकुल अमृत के समान मधुर-फल लगते हैं और कुछ में प्राणघातक विषैले फल लगते हैं। उसी प्रकार मनुष्य भले भी होते हैं, बुरे भी होते हैं, पुण्यवान् होते हैं पापी होते हैं, जैसे न्यायी और भक्तिमान् होते हैं वैसे ही कुछ ऐसे भी होते हैं जो संसार में पूर्णतया रममाण हुए होते हैं। मनुष्य के चार वर्ग किये जा सकते हैं—१ बद्ध (जो संसारशृंखलाओं से बिलकुल जकड़े रहते हैं), २ मुमुक्षु, ३ मुक्त, ४ नित्यमुक्त।

[illegible] यह बुरा क्या होना चाहिए? क्या सब मनुष्य समान हैं?

नित्यमुक्त—जैसे कि नारद आदि, जगत के कल्याण के लिए ही—लोगों को सत्यमार्ग का उपदेश करने के लिए ही—ऐसी विभूतियों का अवतार होता है।

बद्ध—द्रव्य, मान, पदवियां, इन्द्रियसुख, सत्ता इत्यादि संसार की तुच्छ और क्षणभंगुर बातों में ही उनका चित्त लगा रहता है। वे ईश्वर को भूल जाते हैं और उसका विचार भी कभी उनके मन में नहीं आता।

मुमुक्षु—'कामिनी और काञ्चन' की जोड़ी ही जिसका आधार है—ऐसे, इस संसार से छूटने के लिए जो असीम प्रयत्न करते हैं। पर जिसके लिए वे इतना प्रयत्न करते हैं वह—मुक्ति—प्राप्त होना उनमें से थोड़े ही लोगों के भाग्य में बदा होता है—(यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः—भ० गी०)

मुक्त—'द्रव्य और दारा' में से जो किसी पर भी आसक्ति नहीं रखते। महात्मा लोग इसके उदाहरण हैं। जिनके मन में ऐहिक वस्तुओं के विषय में आसक्ति का गंध भी नहीं रहता। परमेश्वर के निर्मल चरणों का ही वे निरन्तर ध्यान करते रहते हैं।

मान लो, किसी तालाव में जाल पड़ा हुआ है। कुछ मछलियां मछुवारे के दादा को चुनौती देती हैं और वे सावधान रहकर कभी उस जाल में नहीं फँसती। पर ऐसी मछलियां हाथ की उँगलियों पर ही गिनने भर को होती हैं कह सकते हैं कि नित्यमुक्तों और मछलियां इन में समता है।

परन्तु बहुत सी मछलियाँ जाल में पड़ ही जाती हैं। उनमें से कुछ ऐसी होती हैं जो मुक्तता के लिए, अपने से जितना प्रयत्न हो सकता है, करती हैं। वे मुमुक्षु हैं। पर इनमें से शायद ही एक आध मछली जाल से निकलकर पानी में जाने की सफलता पा सकती है। ऐसी मछलियाँ बहुधा देखी गई हैं। "अरे! अरे! वह देखो एक बड़ी मछली निकली जाती है!" इस प्रकार मछवाहे और अन्य लोग चिल्लाते ही रहते हैं, पर वे एकदम उछलकर निकल जाती हैं।

ऐसी ही मछलियाँ बहुत होती हैं जो जाल से नहीं निकल सकतीं और आश्चर्य की बात तो यह है कि जाल से निकलने की उनकी इच्छा ही नहीं होती। जाल में पड़े ही पड़े तालाव के नीचे के कीचड़ में अपना सिर डालकर वे चुपके पड़ी रहती हैं, और फिर यह भी समझती हैं कि हम बिलकुल सुरक्षित और सुखपूर्वक हैं, अब हमें डरने की कोई आवश्यकता नहीं। क्या करें बिचारी! इस बात का उन्हें स्वप्न में भी भान नहीं रहता कि थोड़ी ही देर बाद मछुवाहा मछलियों से भरा हुआ जाल जमीन पर खींचनेवाला है। ऐसी मछलियों से बद्धों की उपमा दे सकते हैं। वे यह समझते रहते हैं कि अपनी घर-गृहस्थी के कीचड़ में-प्रपञ्च में-हम बिलकुल निर्भय हैं पर खेद की बात है कि संसार के जाल में वे पूर्णतया जकड़े पड़े रहते हैं, और इस कारण आयुरूपी पानी से जरा भी छूटने का उन्हें मौका आ जाता है और वे तुरन्त ही जमीन पर खींच लिये जाते हैं तथा उनका प्राणनाश होता है।

संसार में "द्रव्य और दारा" दो बातें बद्धता का कारण होती हैं। संसारी लोगों के—बद्धों के—हाथ पैर जकड़े हुए होते हैं वे नख से शिखा पर्यंत संसारकर्दम में फँसे रहते हैं। वे समझते रहते हैं कि तालाव के नीचे के कीचड़ में—द्रव्य और दारा में—हमें शान्ति, स्वास्थ्य और निर्भयता का लाभ होगा। पर उन्हें इस बात की कल्पना भी नहीं होती कि आत्मा के पतन के यही (धन और दारा) कारण होते हैं। ऐसा कोई बद्ध पुरुष जब मृत्यु के द्वार पर आता है तब उसकी भार्या उससे कहती है—"आप तो चले पर मेरे लिए क्या कहते हो? आपने अपने बाद के लिए मेरी क्या तजवीज कर रखी है?" पत्नी ईश्वर का नाम भी नहीं लेती। उस आसन्नमरण हुए बद्ध का मन भी गृहस्थी की ओर ऐसा कुछ झुका रहता है कि उसकी कोठरी के दीपक का प्रकाश यदि कुछ अधिक हुआ तो उसकी आँखें निकल आती हैं और—अपनी ओर से बड़ा जोर करके वह यों चिल्ला उठता है—"अरे, कोई है? यहां दिये में इतनी बाती क्यों लगा दी है? व्यर्थ के लिए तेल जला जाता है।"

बद्ध के मन में ईश्वर का विचार भी नहीं आता। उसे जब समय खाली मिलता है, अथवा जब उसे कोई काम नहीं होता तब या तो वह कोरी बातें मारा करता है अथवा "मरतारो वनियाँ बाँट तौलता है" की कहावत के अनुसार कोई न कोई निरुपयोगी काम किया करता है। और जब कोई पूछ बैठता है तब उत्तर देता है—"अजी, हम से तो खाली नहीं बैठा जाता। इस लिए अपना कुछ न कुछ कर रहा हूं।" और जब उसका समय काटे नहीं कटता तब वह ताश या शतरंज खेला करता है। (महाराज के इस व्याख्यान के

समय कोठरी में इतनी स्तब्धता थी कि सुई गिरने तक की आवाज नहीं सुनाई दे सकती थी।)

एक शिष्य:—महाराज, ऐसा संसारी मनुष्य कैसे तर सकता है? उसके लिए कोई साधन है?

श्रद्धा का बल।

श्रीरामकृष्ण —जरूर! उसे सत्समागम ढूँढते रहना चाहिए, कुटुम्ब की उपाधि छोड़कर परमेश्वर का चिंतन न करने के लिए बीच बीच में उसे एकान्तवास का सेवन करना चाहिए, विवेक का अभ्यास उसको करना चाहिए, जगज्जननी की, अन्त करणपूर्वक, उसे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए— "हे माता, मेरे हृदय में भक्ति और श्रद्धा उत्पन्न कर।" जहा एक बार तुम्हारे शरीर में श्रद्धा भिन जायगी वहीं समझ लो कि अब तुम्हारा काम हो गया। अहाहा! श्रद्धा से अधिक और कुछ नहीं!

(केदार से) श्रद्धा के सामर्थ्य की आख्यायिकाएं तूने सुनी होंगी? रामचन्द्र ईश्वरी अवतार थे। पर (लका और आर्यावर्त के बीच में) समुद्र पर उन्हें पुल बाधना पड़ा। और हनुमान सिर्फ उनका भक्त था; पर राम-नाम की महिमा पर बड़ी श्रद्धा थी। उसने सिर्फ राम के नाम का जप किया, और क्या हुआ, देखो! एकदम उसने उसी समुद्र का उल्लघन कर लिया! सिर्फ श्रद्धा का सामर्थ्य लोगों के प्रत्यय में आने के लिए ही स्वय प्रभु को सेतु बांधना पड़ा; और उसीके नाम की महिमा पर श्रद्धा रखनेवाले उसके भक्त को समुद्र पार करने के लिए सेतु-एतु की कुछ भी जरूरत नहीं पड़ी। (महाराज और सब शिष्य हँसने लगे)।

एक बार एक मनुष्य को समुद्र पार जाना था। तब एक रामभक्त ने एक पत्ते पर राम-नाम लिखा और उसे उस मनुष्य को देकर कहा,—"भैया, डरने की कोई बात नहीं; श्रद्धा रख और समुद्र पर चलते हुए पार निकल जा; पर यह बात ध्यान में रखना कि तू अपनी श्रद्धा में जरा भी चल-विचल न होने देना। यदि उसमें कुछ भी गड़बड़ हुआ तो तू अवश्य डूब मरेगा।" उस मनुष्य ने वह पत्ता अपने वस्त्र में बांध लिया और समुद्र पर चलते हुए वह अपना मार्गक्रमण करने लगा। जाते जाते उसे यह उत्कठा हुई कि देखना चाहिए इस पत्ते में क्या लिखा है। उसने वह पत्ता खोला और उसमें बड़े बड़े अक्षरों में लिखा हुआ राम उसने पढ़ा। इसके बाद वह आप ही आप कहने लगा—"अरे! बस, यही, राम का नाम!" इस प्रकार श्रद्धा का लोप होतेही वह पानी के भीतर डूब मरा!

परमेश्वर में मनुष्य की अचल श्रद्धा भर होने दो, कि बस मैं विश्वासपूर्वक कहता हू कि फिर उसके लिए मुक्ति दूर नहीं है, फिर चाहे उसके हाथ से ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या आदि महापातक भी क्यों न हुए हों! "परमात्मन्! अब फिर मैं ऐसा कभी न करूँगा।" इतना बस उसे कहना चाहिए और उसका पवित्र नाम लेना चाहिए।

इतना कहकर महाराज गाने लगे —

नाम महिमा।

लेते हुए नाम शुचि तेरा, आवे मुझे मरण माता!
देखू फिर तो मुक्ति क्यों नहीं मै तुरन्त जग से पाता!
यदि वाणी तव नाम जपे तो नहीं पाप का भय भारी।
सिर्फ नाम के जपने से है व्यथा दूर होती सारी।

इसके बाद अपने सामने बैठे हुए नरेन्द्र के सम्बन्ध में महाराज बोले —

नरेन्द्र और नित्य मुक्तों के लक्षण।

यह लड़का देखो कितना सीधा, निरभिमानी और सादी चाल का है। उपद्रवी लड़का जब अपने बाप के सामने आता है तब तो बड़ा सीधा बन जाता है और जब बाहर इधर उधर दौड़ता और खेलता रहता है तब बिलकुल ही दूसरा बन जाता है। ऐसा लड़का नित्यमुक्तों के वर्ग का होता है।

वे (नित्यमुक्त) ससारबन्धनों में नहीं फँसते। जरा वे कुछ बड़े हुए कि उनके मन में जागृति उत्पन्न हो जाती है और वे एकदम ईश्वर की ओर झुक जाते हैं। मनुष्य को सन्मार्ग दिखलाने के लिए ही ससार में वे अवतार लेते हैं। ऐहिक बातों पर उनका प्रेम ही नहीं होता—द्रव्य और दारा की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता।

'होम' नामक एक पक्षी का वेद में उल्लेख है। वह ससार की गड़बड़ से-उपसर्ग से-बहुत ऊचे आकाश में, बादलों के उस पार, रहता है। उस जगह उसकी मादी अडा देती है, अड़ा तुरत ही पृथ्वी की ओर गिरने लगता है। पृथ्वी तक आने ही में उसे इतने दिन लग जाते हैं कि वह बीच में फूट भी जाता है और उसका बच्चा निकलता है। वह अन्तर इतनी दूर है कि वह रास्ते ही में अड़े से बाहर निकलकर फिर नीचे आने लगता है; अन्त में नीचे आते ही उसके पख निकल आते हैं और उसकी आखें भी [illegible]ती हैं।

इस प्रकार जब उसकी आखें खुल जाती हैं तब कहीं उसे यह ज्ञान होता है कि मेरा भयकर वेग से पतन हो रहा है और पृथ्वी का स्पर्श होते ही मेरा कपालमोक्ष हो जायगा। इस प्रकार जब उसके मन में आता है कि पृथ्वी पर गिरकर मै चूर हो जाऊगा तब वह भयभीत होता है और अपनी मा, जो बादलों से भी ऊपर रहती है, उसे ढूँढने के लिए वह फिर ऊपर जाने लगता है।

प्यारे बच्चो! वह उस पक्षी की मादी जगज्जननी ही है। यह इन्द्रियगम्य सृष्टि के उस पार अनन्त के पास ही रहती है। (अनन्त के पास ही उसका निवास है—अनन्त मै और उसमें भिन्नता नहीं)। उसके लड़कों में जो महात्मा—पुण्यात्मा—होते हैं वही उसके समीप रहते हैं (उन्हें अवश्य ही उसका वियोग बिलकुल सहन नहीं होता), जब तक उनकी आखें नहीं खुलतीं और वे अपने पखों से नहीं उड़ सकते तभी तक उन्हें यह जीवन एक कूटक प्रश्न सा जान पड़ता है। जहा एक बार उनकी आखें खुल गईं कि बस फिर उन्हें अपने सामने मुह पसारे खड़ी हुई मृत्यु—द्रव्य, मान, इन्द्रियोपभोग इत्यादि विषयों के स्पर्श मात्र से होनेवाला नाश—बिलकुल स्पष्ट देख पड़ने लगती है। आखें खुलते ही वे अपना आचरण बदल देते हैं और ईश्वराभिमुख हो जाते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में यह ज्ञान आने लगता है कि उस जगन्माता के बिना इस ससार में और कुछ भी सत्य नहीं है, हमारी उत्पत्ति, स्थिति और लय केवल उसीके अधीन है, तथा ज्ञान और अपने जीवन का एक मात्र वही आधार है।

इस समय नरेन्द्र कोठरी के बाहर गया।

केदार, राणकृष्ण, एम० और अन्य बहुत से लोग महाराज के पास कोठरी ही में बैठे थे। महाराज हँस हँसकर नरेन्द्र के विषय में बोल रहे थे।

महाराज (शिष्यों से)—तुम्हीं देखो, प्रत्येक बात में नरेन्द्र सब से आगे रहता है। गायन, वादन, लेखन, वाचन, चाहे जिसमें देख लो। उस दिन केदार का और उसका वाद हो रहा था। पर केदार के मुख से शब्द न निकलने पाता था कि बस वह उसे मानों उखाड़ ही डालता था (महाराज और अन्य सब हँसते हैं)।

(एम० से) तर्कशास्त्र पर क्या कोई अँगरेजी में पुस्तक है।

एम०:—हा, महाराज, उसे लॉजिक कहते हैं।

महाराज:—अच्छा, उसके विषय में मुझे कुछ बतलाओ।

अब तो एम० के जी पर ही आ बना। तथापि धैर्य धरकर बोला—लॉजिक (अँगरेजी तर्कशास्त्र) के एक भाग में यह कहा है कि किसी सर्वमान्य सिद्धान्त पर से किसी विशिष्ट वर्ग के विषय में अथवा व्यक्ति के विषय में अपने सिद्धान्त कैसे स्थिर करना चाहिए। उदाहरणार्थ —

सब मनुष्य मरणाधीन हैं,
पडित मनुष्य हैं,
इस लिए पडित भी मरणाधीन हैं।

उस के दूसरे भाग में यह कहा है कि एक एक विशिष्ट व्यक्ति के लक्षणों पर तर्क बाधते हुए साधारण सिद्धान्त किस प्रकार निश्चित करना चाहिए। उदाहरणार्थ —

यह कौवा काला है,
यह कौवा काला है,
वह तीसरा कौवा भी काला है, आदि, आदि,
इस लिए सभी कौवे काले होते हैं।

सिर्फ एक एक व्यक्ति के लक्षण देखकर उन पर से उस वर्ग के विषय में, उपर्युक्त रीति से, सामान्य सिद्धान्त स्थिर करने में बहुत बार चूक हो जाने की सम्भावना रहती है; क्योंकि किसी किसी देश में सफेद कौवे भी कदाचित् होंगे।

* * * * * *

जान पड़ता था कि उपर्युक्त भाषण की ओर श्रीरामकृष्ण का कुछ बहुत ध्यान न था। मानों यह भाषण उनके कानों में भरता ही न था। इस कारण तद्विषयक सम्भाषण का आपही आप अन्त हो गया।

सभा विसर्जन हुई शिष्य मडली इधर उधर बाग में फिरने लगी; एम० अकेला ही पचवटी के समीप घूमता था (महात्मा रामकृष्ण ने दक्षिणेश्वर के मन्दिर के आसपासवाले बाग में बरगद, पीपल, निम्ब, आवला और बेल के वृक्ष एक ही जगह, खास तौर पर, लगवाये थे। और उस स्थल का उन्होंने पचवटी नाम रक्खा था। उसी जगह बैठकर उन्होंने अनेक साधन किये। फिर आगे चलकर बहुधा वे अकेले ही अथवा अपने शिष्यवर्ग के साथ वहा घूमने आया करते। वृन्दावन की यात्रा के समय वे वहा की पवित्र धूल अपने साथ ले आये थे और उस पचवटी मे डलवाया था।)

सध्याकाल के पाच बजे, उस समय महाराज की कोठरी के उत्तर ओर आने पर एम० को एक विचित्र दृश्य देख पड़ा। उसने क्या देखा कि महाराज स्वस्थ खड़े हैं, १ नरेन्द्र एक भक्तिपूर्ण पद गा

रहा है, अन्य तीन चार शिष्य आसपास खड़े हैं, महाराज बीच में हैं।

उस गान से एम० का भान बिलकुल जाता रहा। इतनी मधुर और सुन्दर आवाज उसने आजन्म नहीं सुनी थी। महाराज की ओर देखकर तो एम० इतना आश्चर्यित हुआ कि उसके मुख से शब्द भी न निकलने लगा। महाराज निश्चल खड़े थे, उनके नेत्र एकटक थे; और यह भी कहना कठिन है कि उनका श्वासोच्छ्वास चलता था या बन्द था।

एक शिष्य ने एम० से बतलाया कि ब्रह्मानन्द का अनुभव कराने वाली इस अवस्था को समाधि बोलते हैं। एम० ने ऐसी स्थिति प्रत्यक्ष कभी नहीं देखी थी और न सुनी ही थी। उसके मन में ये विचार आने लगे -" क्या यह सम्भव है कि ईश्वरी विचारों से मनुष्य बाह्य सृष्टि को भूल जाय? जिसकी यह दशा होती है-जो समाधिस्थ होता है-उसकी श्रद्धा, उसकी ईश्वरभक्ति भला कैसी होनी चाहिए!" नरेन्द्र यह पद गा रहा था --

पद।

भज ले मन बार बार विश्वजीवना रे! भज० ॥ ध्रु० ॥
अपगत-मल अतुल कीर्ति, सच्चिद्घन रम्य मूर्ति,
योगिन की हृदय-स्फूर्ति, भक्तरंजना रे! भज० ॥ १ ॥
प्रीति धरे कान्ति खुले, कोटि चन्द्रहू न तुले,
रूपश्री हरि चपले, रोमहर्षणा रे! भज० ॥ २ ॥

यह अन्त की पंक्ति गाते समय महाराज की वृत्ति बिलकुल तन्मय हो गई। उनका शरीर सचमुच रोमांचित हो उठा। उनसे नेत्र आनन्दाश्रुओं से भर आये। उनके मुख पर जो मन्दस्मित की लहरें विलसती थीं उनसे स्पष्ट देख पड़ता था कि परमेश्वर का मनोहर रूप देखकर उनके अन्तःकरण में आनन्द के कैसे उच्छ्वास उठ रहे थे। हा, कोटि चन्द्रों की प्रभा को भी लजानेवाले मनोहर और दिव्य रूप का दर्शनसुख वे अवश्य ही अनुभव कर रहे होंगे! ईश्वरी साक्षात्कार जिसे कहते हैं वह क्या यही है? यदि यही है तो जिस मनुष्य को यह साध्य हुआ है उसकी भक्ति, उसकी श्रद्धा, उसका अभ्यास और उसका तप भला कैसा भारी होना चाहिए!

गाना फिर प्रारम्भ हुआ —

मन में पूजहु सुचरण, मधुर रूप धरहु नयन,
होउ महानन्दपूर्ण, मेटि यातना रे! भज० ॥ ३ ॥

अहाहा! उनका वह मन्द और मनोहर स्मित फिर झलझलाने लगा! देखो, उनका शरीर कितना निश्चल है! उनके नेत्र अर्धोन्मीलित हैं; दृष्टि बिलकुल शून्य है! जान पड़ता है, उन्हें किसी न किसी अद्भुत और दिव्य वस्तु का-इन्द्रियातीत वस्तु का-दर्शन हो रहा है और आनन्दसागर में वे तैर रहे हैं!

पद समाप्ति पर आया। नरेन्द्र अन्तिम पंक्ति गाने लगा —

ध्यावहु सच्चिदानन्द, छोड़हु सब विषय मन्द
गावहु सुठि भक्तिछन्द, नित्य सज्जना रे! भज० ॥ ४ ॥

* * * * * * *

एम० विचारपूर्ण होते हुए घर को लौटने लगा। वह समाधि का और ब्रह्मानन्द का चित्र उसके मन में बराबर फिर रहा था। उसने जो भक्तिरसपूर्ण सुन्दर पद सुना था उसके उच्छ्वास, रास्ते में चलते हुए, आपही आप उसके हृदय से बाहर निकल रहे थे—

ध्यावहु सच्चिदानन्द, छोड़हु सब विषय मन्द,
गावहु सुठि भक्तिछन्द, नित्य सज्जना रे! भज० ॥ ४ ॥

## सच्चा तत्वज्ञानी।

एक अजापालक नगरों से दूर जा बसा था वन में।
मोह, क्रोध और क्लेश आदि का लेश न था उसके मन में॥
वेश बुढ़ापे का था उसका श्वेत हुए थे सारे केश।
निज अशेष जीवन-अनुभव से उसे मिला था ज्ञान विशेष ॥१॥
गर्मी हो चाहे सर्दी सो निज कर्तव्य न तजता था।
मत्सर औ अभिमान छोड़ वह सदा राम को भजता था॥
आलस लोभ दुर्गुणों की भी हवा उसे थी लगी नहीं।
सुख को छोड़ कभी चिन्ता तो उसके मन में जगी नहीं ॥ २ ॥
इन्हीं गुणों से देश देश में फैल गया था उसका नाम।
बड़े बड़े विद्वान् ढूँढ़ते आते थे उसका शुभ धाम॥
एक बार उससे मिलने को आया एक तत्वज्ञानी।
नम्रभाव से अजापाल-प्रति बोला वह ऐसी बानी —॥ ३ ॥
" बतलाइये दया कर मुझको पाया कहाँ ज्ञान-भाण्डार।
मनन किया है सदा आपने क्या भगवद्गीता का सार?
अथवा वेद-शास्त्रों का कुछ तुमने है अभ्यास किया?
तुलसी, केशव, सूर आदि के ग्रन्थों से या ज्ञान लिया?" ॥४॥
" कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि के काव्यों का रस-सार।
मुझे जान पड़ता है तुमने सभी चखा है बारम्बार॥
रीति-रिवाज तथा जन-परिचय पाने को क्या देश-विदेश—
तुमने भ्रमण किया है? मुझको बतलाओ सब हाल विशेष"॥५॥
तत्वज्ञानी की बातों पर हुआ उसे आश्चर्य महान्।
अति विनीत हो उससे फिर यों बोला धनगर ज्ञान-निधान —
" दयाशील सर्वज्ञ! अभी जो नाम आपने बतलाये;
जीवन भर में कभी नहीं वे मेरे सुनने में आये!" ॥ ६ ॥
" उन महान ग्रन्थों में जो जो भरा हुआ होगा विज्ञान;
इस अज्ञान दीन जन को वह कैसे मिलता कृपानिधान!
देश विदेश भ्रमण करने को नहीं गया मैं कभी कहीं,
यही अरण्य विश्व है मेरा, फिरता हूँ मैं सदा यहीं ॥ ७ ॥
" मानव-जाति स्वयं दूषित है उसके ग्रन्थ विकारी हैं,
प्रकृति सत्य गुण से भूषित है, जिसके सब अनुसारी हैं।
ज्ञान मुझे जो कुछ आया है, सभी सृष्टि से पाया है,
प्यारी ईश्वर की जाया यह मम गुरुआनी माया है ॥ ८ ॥
मधुमक्खी निशिदिन श्रम कर के मधु एकत्रित करती है,
आपस में हिल-मिल रहती है कभी न अनहित करती है,
पर कंजूसी का दुर्गुण है इसमें एक बड़ा भारी,
शरद चले जाने पर होता वही इसे है दुखकारी ॥ ९ ॥
" विधि निषेध से उत्तम शिक्षा मैंने उससे पाई है,
इसी लिए मधुमक्खी मेरे मन में अति ही भाई है।
चींटी और चींटों से मैंने संग्रह का उपदेश लिया,
उनकी दूरदर्शिता पर भी मैंने पूरा ध्यान दिया" ॥ १० ॥
" कृतज्ञता का मार्ग मुझे मेरे कुत्ते ने बतलाया।
चतुराई से सोना भी उसने ही मुझको सिखलाया॥
व्यर्थ वचन मेरी जिह्वा से भूल न कभी निरसता है।
बादल बहुत गरजता है जो वह क्या कभी बरसता है?"॥११॥
" अति परिचय हो जाने से फिर रहता नहीं प्रेम का तत्त्व।
रोज उदय होने से देखो सूरज का है नहीं महत्त्व॥
व्यर्थ यत्न करने से जग में मिलता है क्या कोई फल?
बीज पत्थरों पर बोने से फलता है क्या कोई फल?" ॥ १२ ॥
" थोड़ा थोड़ा करने पर है बड़ा कार्य भी सर जाता,
बिन्दु बिन्दु जल के पड़ने पर सरवर भी है भर जाता॥
सारस, पिड़की औ कपोत पक्षी का प्रेम सिखाते हैं।
क्षण भर उसको अलग न करना यह आदर्श दिखाते हैं?" १३
" मेरी भेड़ें निज बालों से करती हैं उपकार बड़ा,
सब को गरम पुनीत बसन दे हरती है अति शीत कड़ा॥"
' अपने तनु को भी कष्टित कर करो सदा तुम पर-उपकार
यह शिक्षा अपनी भेड़ों से पाता हूँ मैं बारम्बार' ॥ १४ ॥
" अजासमूह लखो मम कितना करता जगत्-भलाई है,
जीवित रहकर घृत, मट्ठा औ देता दूध मलाई है॥
इतना ही क्यों, प्राणदान कर भरते हैं औरों का पेट,
अस्थि चर्म भी, भला जानकर करते हैं औरों को भेंट" ॥ १५॥
" इतने पर भी नर-समाज की लखकर भारी निठुराई,
मेरा हृदय फटा जाता है; पर क्या मेरा वश भाई!
अजा-जाति से भी मैंने यह शिक्षा बहुत बड़ी पाई —
मर कर भी उपकार करो; पर मनुजजाति है अन्यायी" ॥ १६ ॥
इतनी बातें सुन धनगर की बोल उठा तत्वज्ञानी —
" जैसा नाम सुना था मैंने तुम वैसे ही हो मानी,
मेरा आना हुआ सार्थक, इसमें कुछ सन्देह नहीं"
तेरे सम इस जग में ज्ञाता विरले होंगे कहीं कहीं" ॥ १७ ॥
" प्रायः पंडित जन हैं अब तो मत्सर ही के दास बने,
कोई समझे हैं जगती पर हम से ज्ञानी नहीं घने,
किसी किसीको तुच्छ भासते हैं सारे जग के प्राणी,
ऐसे ही विद्वान यहाँ पर देखे मैंने अभिमानी" ॥ १८ ॥
" सिर्फ पुस्तकी विद्या के ही बल पर यदि बनते ज्ञानी;
तो अनुभव को नहीं पूछते बड़े बड़े विद्यादानी॥
परामर्श ईश्वर की माया से लेता है जो कुछ वर्ष,
निजाचरण से सदर्प जग को वही दिखाता है आदर्श" ॥१९॥
सत्य शोध केवल ग्रन्थों से कभी नहीं मिल सकता है,
सच्चा ज्ञानी वही समझ लो सृष्टि ज्ञान जो रखता है॥
ईश्वर-निर्मित क्षुद्र वस्तु भी जो बहु भाँति परखता है,
कौतूहल-वश, कौतुक लखकर, वह विद्यारस चखता है ॥२०॥

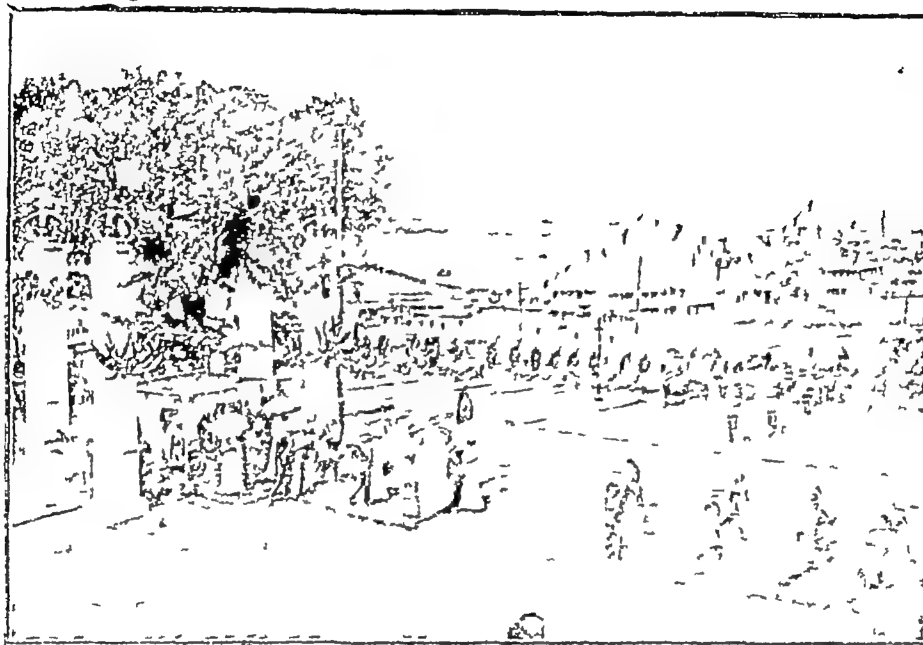
# सम्राट् और सम्राज्ञी का कलकत्ते में आगमन। ( गताङ्क से आगे )

अन्य स्थानों की तरह कलकत्ते में भी बड़ी धूमधाम के साथ सम्राट् का स्वागत किया गया। १ जनवरी १८१२ को प्रातःकाल सम्राट् घोड़ेपर सवार होकर घूमने के लिए गये और शाम को महारानी के साथ

पोलो की बाजी

देखने के लिए गये। अन्त का चक्कर होने तक खेल देखनेके बाद आप मोटर में बैठकर गवर्नमेंट हाउस की ओर चले। कलकत्ते के हजारों लोगों ने तालियां बजाकर सम्राट् पर अपना प्रेम प्रकट किया। पोलोग्राउंड की ओर जाते हुए और वहां से लौटते समय सम्राट् ने इँगलैंड में आते जाते समय की अपेक्षा विशेष बन्दोबस्त नहीं कराया था। आप निष्प्रतिबन्ध रीति से घूमे। इँगलोइंडियन लेखकों ने इस बात पर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया है। अस्तु। रात को भोजन का उत्सव हुआ।

दो जनवरी के दिन कलकत्ते के परेड ग्राउंड पर ८००० गोरी और ३००० काली फौज



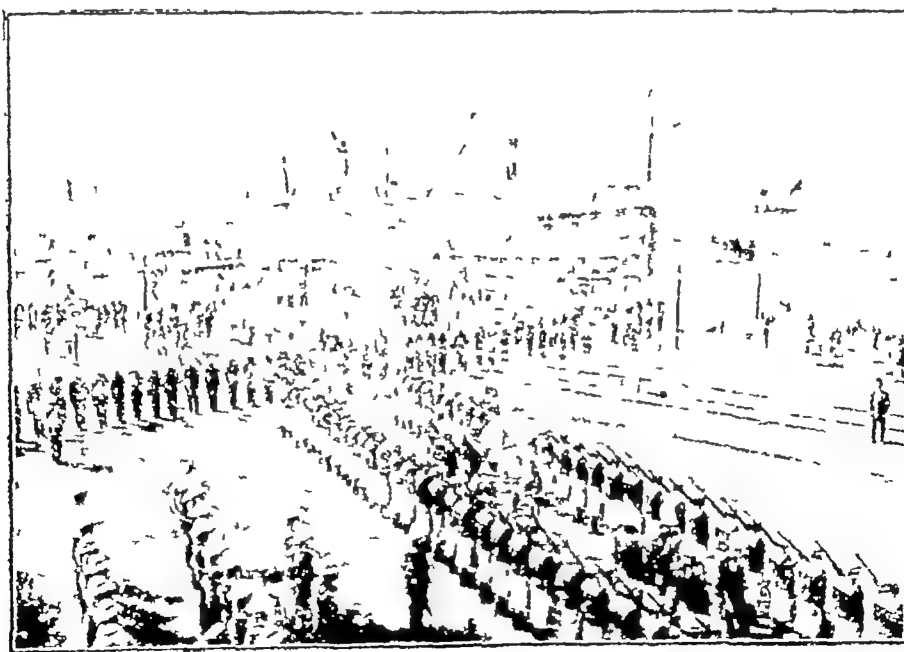
प्रिन्सेप्स घाट का दृश्य।

प्रोक्लामेशन परेड

के लिए जमा हुई। जलसेना, तोपखाना, पैदलसेना, घोडसवार, वालंटियर, वाय स्कौट्स आदि के प्रतिनिधि इस फौज में थे। सम्राट् अपने सहचरों के साथ परेड देखने के लिए आये। तोपों कि सलामी और बन्दूक की फैर होने के बाद सम्राट के आगे से सारी पैदल सेना निकली, इसके बाद घोडसवार दौडते हुए निकले, फौजी बाजा बजा और सिपाहियों ने अपनी टोपियां हाथों से उपर उठा कर सम्राट् के नाम पर तीन बार जयजयकार किया। दो पहर को गवर्नमेन्ट हाउस के अहाते में

उपवन भोजन

हुआ। लगभग तीन हजार मेहमान जमा हुए थे। स्वयं सम्राट् भी सायंकाल तक उपस्थित थे। कितने ही मेहमानों के साथ आपने हिन्दी (राष्ट्रभाषा) में बड़े प्रेम के साथ बातचीत की। सायंकाल को 'लेवी' का उत्सव हुआ। सरकारी अधिकारी और अन्य लोग मिलकर करीब १००० महाशय इस उत्सव में आमन्त्रित हुए थे। साढ़े दस बजे राततक उनसे भेट की विधि होती रही।



गार्ड आफ आनर्स की सम्राट् की ओर से जाँचा।

तीन जनवरी को सुबह सम्राट् घोड़ेपर बैठ कर रेसकोर्स की तरफ घूमने के लिए गये दो पहर को पोलो का खेल देखने गये। इस खेल में दसवां हुजार्स, स्कौट्स सेनाओं में बाजी लगी थी। स्कौट्स की जीत हुई। सम्राट् के हाथ से इस सेना को सोने का प्याला दिलाया गया। तीसरे पहर सम्राट् और सम्राज्ञी

घोड दौड

देखने गई। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के अँगरेज अपनी स्त्रियों के साथ, राजा लोग, अन्य धनवान् व्यापारी इत्यादि टिकट लेकर घुड़दौड देखने गये थे। बंगाली लोगों की भी बड़ी भीड थी। लार्ड हार्डिंज आदि ने सम्राट् का स्वागत किया। एक मील पांच फर्लांग की दौड के लिए १८ घोडे उमेदवार थे। इन में से मि०जे०सी० गल्स्टान के घोडे ने बाजी मारी। इन महाशय को सम्राट् ने एक प्याला भेट किया। इस के बाद आप महारानी के साथ अपने निवासस्थल को पधारे। पीछे से प्रसिद्ध हुआ है कि सम्राट् कलकत्ते की घुडदौड में बाजी जीतने वाले को प्रति वर्ष १०० गिनी का एक प्याला दिया करेंगे।

उसी दिन रात को गवर्नमेंट हाउस और मैदान के बीचवाले मैदान में फौजी

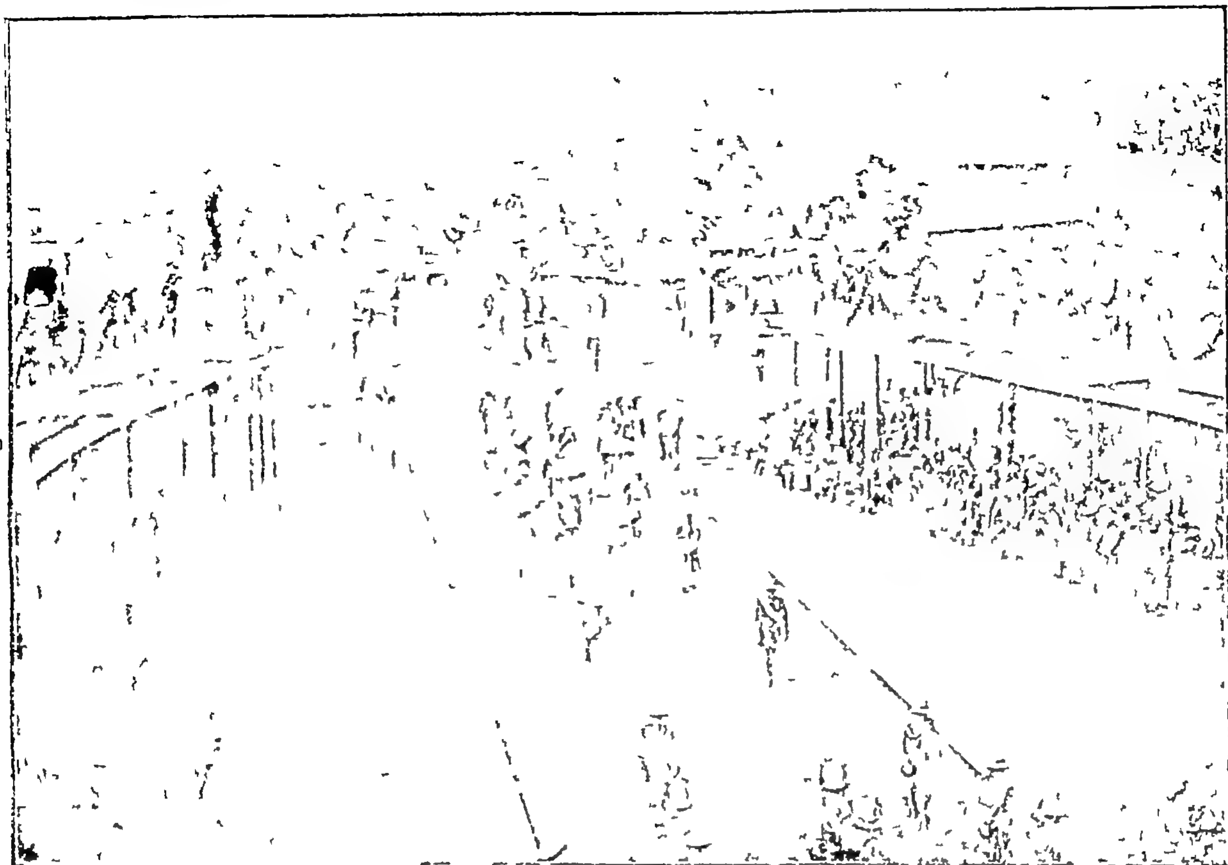
'टटटू' का खेल, रोशनी और आतिशबाजी

छुड़ाई गयी। सम्राट् के लिए एक ऊंचा सुन्दर चबूतरा तैयार किया गया था। सम्राज्ञी के साथ आप उसी पर विराजे थे। प्रेक्षकों के लिए भी स्टैण्ड बनाये गये थे, पर इस मौके पर इतनी भीड हुई थी कि स्टैंडों की तो क्या कथा—उनके आसपास का स्थान, समाज के सारे रास्ते और सारा मैदान जन समूह से व्याप्त था। अनुमान है कि लगभग पाँच लाख लोग होंगे। इतने बड़े समाज में पुलीस के सिपाहियों का होना न होना बराबर ही था, किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं हुई उत्सव कुशल से होगया, एक इँगलोइंडियन लिखता है कि ऐसा दृश्य सारे एशिया महाद्वीप में कभी नहीं देखा गया।

८ जनवरी को महाराज जार्ज सुबह घोडे पर बैठ कर घुड़दौड़ के मैदान की ओर घूमने चले गये और महारानी मेरी कलकत्ते का पदार्थसंग्रहालय देखने गईं। दो पहर को आप गवर्नर जनरल के साथ महारानी विक्टोरिया का स्मारकभवन जिसकी नींव का पत्थर ७ वर्ष पहले आपही ने रक्खा था और अभी तैयार हो रहा है देखने के लिए गये। वहां से फिर कलकत्ते का पदार्थ संग्रहालय देखने गये। संग्रहालय के अध्यक्ष सर आशुतोष मुकर्जी और ट्रस्टी लोगों ने आपका स्वागत किया। संग्रहालय देखकर आप गवर्नमेंट हाउस को लौट आये। तीसरे

हर आप महारानी के साथ टोलीगज मे घोड़ों की प्रदर्शिनी

इस समय पर तीन चार सौ स्त्रियों की भेट कराइ गइ । इसमें बहुत सी भारतीय महिलाएँ भी थीं। पदवीदान का उत्सव भी उसी समय हुआ।



सम्राट् और सम्राज्ञी का अर्धवृत्ताकार सभामडप में प्रवेश ।



कलकत्ता म्युनिसिपालिटी के अध्यक्ष सम्राट् और सम्राज्ञी को मानपत्र अर्पण कर रहे है ।

देखने गये। कुदार की बाजी खतम होने पर महारानी के साथ न इनामें दिलाई गई। रात को सम्राट् और सम्राज्ञी न आपना कोट किया।

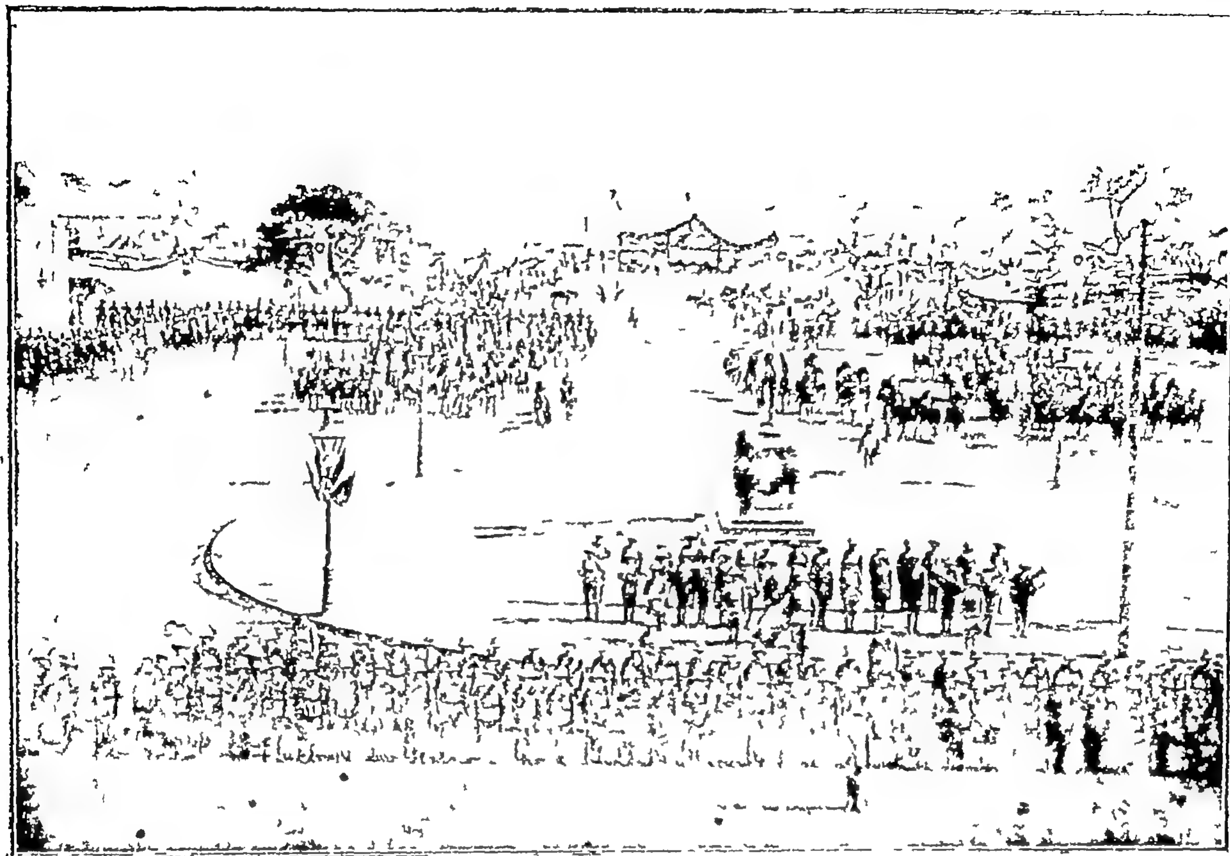
तारा दो पहर सम्राट घाट पर सवार होकर हवा खान को गये। दो पहर को बड़े लाट और महारानी के साथ चादपाल घाट न स्थान पर

बैठ कर राजगंज गये और जूट-मिल्स देख आये। वहा एक मारवाडी लडकी की तरफ से महारानी को एक गुलदस्ता अर्पण किया गया। इसके बाद महाराज जार्ज और महारानी मेरी

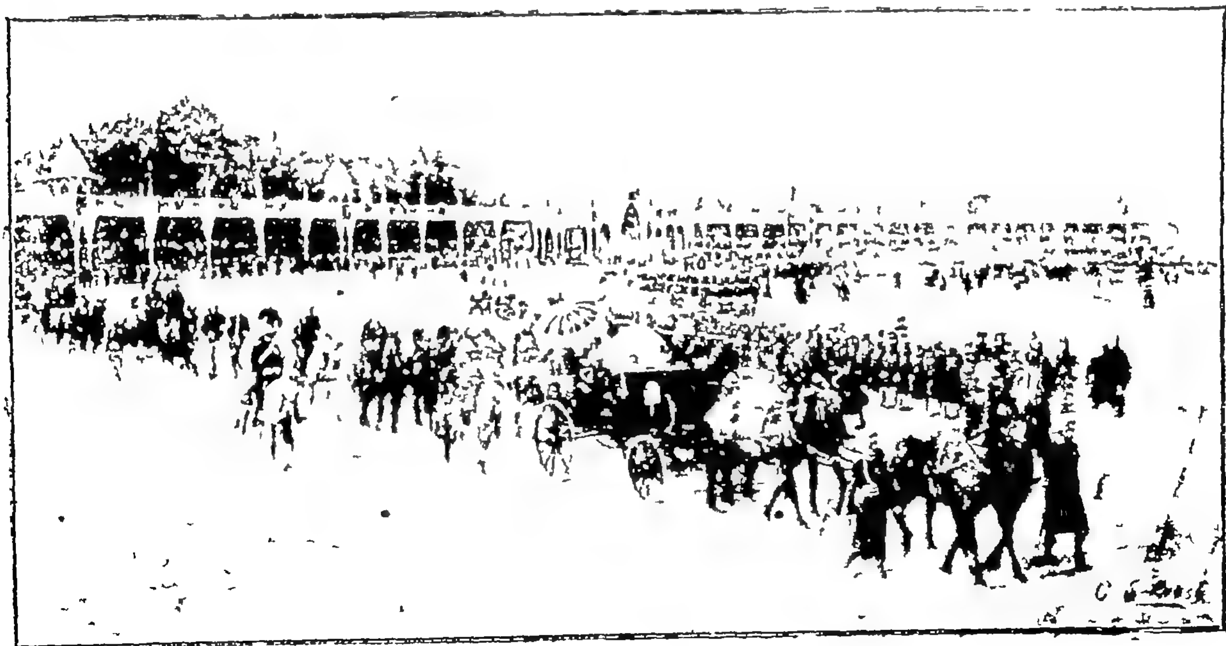
## प्राचीन दृश्यों का जलूस

देखने गईं। सर प्रद्योतकुमार ठाकुर और नाटोर के जगदीन्द्र राय ने महा

सम्राट् के स्पर्श करने पर वह द्रव्य लौटा लिया गया। इसके बाद बडे २ लोगों ने सम्राट् से भेट की, तत्पश्चात् प्राचीन काल के 'नवरोज' और 'दशहरे' के जलूसे का दृश्य सम्राट् के सामने निकाला गया। नवरोज का जलूस अकबर बादशाह के जमाने में निकलता था। इस जलूस का सारा प्रबन्ध मुर्शिदाबाद के नवाब ने किया था। नौबत के घोडे और ऊट, सोने के हौदोंवाले हाथी,



कलकत्ते में जलूस की तैयारी।



जलूस का दृश्य

राज और महारानी पर छत्र रखे थे, तथा मोरभुज के महाराज कुमार और मुर्शिदाबाद के मुर्शिदजादा चँवँर वारते थे। बगाल के ले० गवर्नर, मुर्शिदाबाद के नवाब, बरदवान के महाराज, डा० रासबिहारी घोष, महाराज दरभंगा आदि ने अगवानी की। इसके बाद पेवेलियन में गवर्नरजनरल के स्वागत करने पर बगाल, बिहार और आसाम के प्रान्तों की ओर से मुर्शिदाबाद के नवाब एक थाली में १०१ मुहरे रख कर सम्राट् के सामने ले गये।

बडे हरे और सफेद झडे, भालेवाले, परशुधर, खड्गधर, ढाल और नफीरीवाले, रूपे के सुन्दर रथ आदि बातों के कारण इस सवारी की शोभा अपूर्व थी। दशहरे का जलूस भी उसी धूमधाम से निकला। धार और किशनगढ के ठुमक चाल चलनेवाले घोडे और हाथियों के रथ आदि कई बातों की विशेषता थी। इसके बाद हाथ में ढाल तरवार लिये हुए उडीसा के पाइक लोगों का नाच सम्राट् ने देखा। पहले ये लोग फौज में नौकरी करते थे,

अब इन्हें राजमहल और खजाने की रक्षा का काम करना पड़ता है। सम्राट् के सामने जलूस के आतेही सब लोग ' महाराज की जय ' कह कर चिल्लाते थे।

इस मौके पर भी लोगों की विलक्षण भीड़

हुई थी। चुने हुए लोगों को एम्पी थियेटर में स्थान मिला था। पर मैदान में चारों तरफ और सम्राट् के आने जाने के मार्ग पर भी लोगों की भारी भीड़ लगी थी। घुड़दौड़ की जगह में, जहांसे न जलूस ही दिखता था और न सम्राट् ही के दर्शन होते थे वहां भी, हजारों आदमियों का जमाव था। जलूस समाप्त होने पर, गवर्नमेन्ट हाउस को लौटते हुए सम्राट् अपनी गाड़ी उसी ओर से ले गये जिस ओर के लोगों ने आपके दर्शन नहीं पाये थे और दर्शन के लिए बड़े उत्सुक थे। सम्राट् के पुलीस का कोई विशेष बन्दोबस्त नहीं रखने दिया था। उनके साथ थोड़े से खास खास लोग थे। नाना प्रकार की चेष्टाओं से लोगों ने आपका स्वागत सत्कार किया। कहते हैं कि सम्राट् अपने सिंहासन के पास जिस भूमि से चले थे उस भूमि को पवित्र समझ कर कई लोगों ने उसका चुम्बन भी किया। रात को गवर्नर जनरल ने सम्राट् के सम्मानार्थ गवर्नमेन्ट हाउस में

अँगरेज़ी नाच का उत्सव भी कराया था। उसमें सम्राट् भी सम्राज्ञी के साथ उपस्थित हुए थे। सम्राट् लेडी हार्डिंज के साथ और लार्ड हार्डिंज सम्राज्ञी के साथ नाचे।

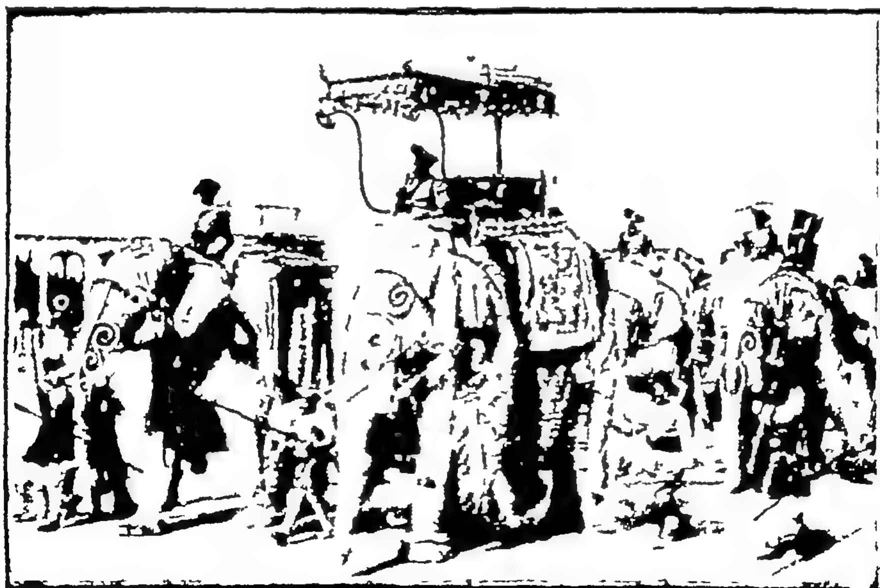
३ जनवरी को महारानी साहब ' यंग वूमेन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन 'नामक संस्था देखने गईं और उसके लिए खेल की जगह तैयार करने का ५०००) रु का दान दिया। इसके बाद आपने और भी कई संस्थाएं देखीं। सम्राट् ने गवर्नमेंट हाउस में कलकत्ता-युनिवर्सिटी के डेप्युटेशन से भेट की। युनिवर्सिटी के वाइस चेन्सलर सर आशुतोष मुखर्जी ने मान-पत्र पढ़ा, उसमें अँगरेज़ी राज्य में शिक्षा सम्बन्धी उन्नति का विवरण था। इस मानपत्र के उत्तर में

सम्राट् का महत्त्वपूर्ण भाषण

इस प्रकार हुआ —" छै वर्ष पहले इस युनिवर्सिटी ने मुझे ' डाक्टर आफ ला ' की सन्मान पूर्ण पदवी दी थी। उस मौके का स्मरण आकर मुझे इस समय बड़ा आनन्द हो रहा है, तथा इस समय जो मुझे यह अवसर मिला है कि मैं भारत वर्ष की उच्च शिक्षा के विषय में अपने अन्तःकरण की सहानुभूति प्रकट करूं उस पर भी मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है। यूरोपियन और भारतीय संस्कृति तथा महत्वाकांक्षा के ऐक्य पर ही भारत का कल्याण बहुत कुछ अवलम्बित है, और मैं आशा रखता हूं कि उस काम में भारत वर्ष के विश्वविद्यालय अवश्य सहायता करेंगे। शिक्षा का क्षेत्र अधिक विस्तृत करके उसका दर्जा बढ़ाने के लिए भारत के विश्वविद्यालयों ने जो उपाय समय समय पर लिये उनकी ओर सहानुभूति पूर्वक मेरा ध्यान था। परन्तु अभी बहुत कुछ करना है। विशेष महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक शिक्षा और कलाकौशल की शिक्षा देने का प्रबन्ध जब तक न किया जायगा और जब तक विद्यार्थियों को ऐसे साधन न उपलब्ध कर दियेंगे कि जिनसे वे नये नये आविष्कार कर सकें तब तक, मैं नहीं समझता कि ये कोई युनिवर्सिटियाँ पूर्णता को प्राप्त हुई हैं। इसके सिवाय एक बात और भी है कि अपनी प्राचीन विद्या की रक्षा करके तुम्हें पाश्चात्य शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और तुम्हें उत्कृष्ट पवित्रता और सत्यता की भी आवश्यकता है क्यों कि इनके बिना विद्या की बहुत कीमत नहीं होती। तुमने अभी कहा ही है कि हम अपने उपर की जवाबदारी पहचानते हैं। तुम्हें अपने कार्य में तुरन्त सफलता प्राप्त हो। तुम अपने उद्देश्य उच्च रखो, और उनकी सिद्धि के लिए अखण्ड प्रयत्न भी करते रहो, परमात्मा तुमको सफलता अवश्य देगा। छै वर्ष पहले मैंने इंग्लैंड से तुम्हारे पास सहानुभूति का सन्देशा भेजा था, आज मैं तुम्हें आशाका उपदेश करता हूं। नवजीवन के चिन्ह और उसकी हलचल आज हम चारों ओर देख पड़ रही है। शिक्षा ने तुम लोगों में पहले ही आशा उत्पन्न कर दी है, तथा अधिक अच्छी और उच्च शिक्षा से और अधिक आशा उत्पन्न होगी। हमारी इच्छा है कि देश में सर्वत्र स्कूल और कालेजों का जाल फैल जाय और उनमें से राजभक्त तथा उपयोगी नागरिक बाहर निकलें, और शिक्षाप्रचार से हमारी भारतीय प्रजा के घर अधिक प्रकाशमान बनें, तथा उनके कष्ट भी उन्हें सुख मालूम होने लगें। शिक्षा से मेरी इच्छा परिपूर्ण होगी, और भारत की शिक्षा का विचार हम सदा अपने हृदय में रक्खेंगे। आपने जो यह मुझे विश्वास दिलाया कि मेरे और मेरे वंश पर आपकी श्रद्धा है, ग्रेट ब्रिटन और भारत की एकता के बन्धनों की दृढता आप चाहते हैं और ब्रिटिश सत्ता के नीचे होनेवाले लाभ आप महत्त्वपूर्ण समझते हैं, इस पर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। आपने जो राजनिष्ठ और कर्तव्यनिष्ठ मानपत्र मुझे दिया उसके लिए मैं आपको धन्यवाद



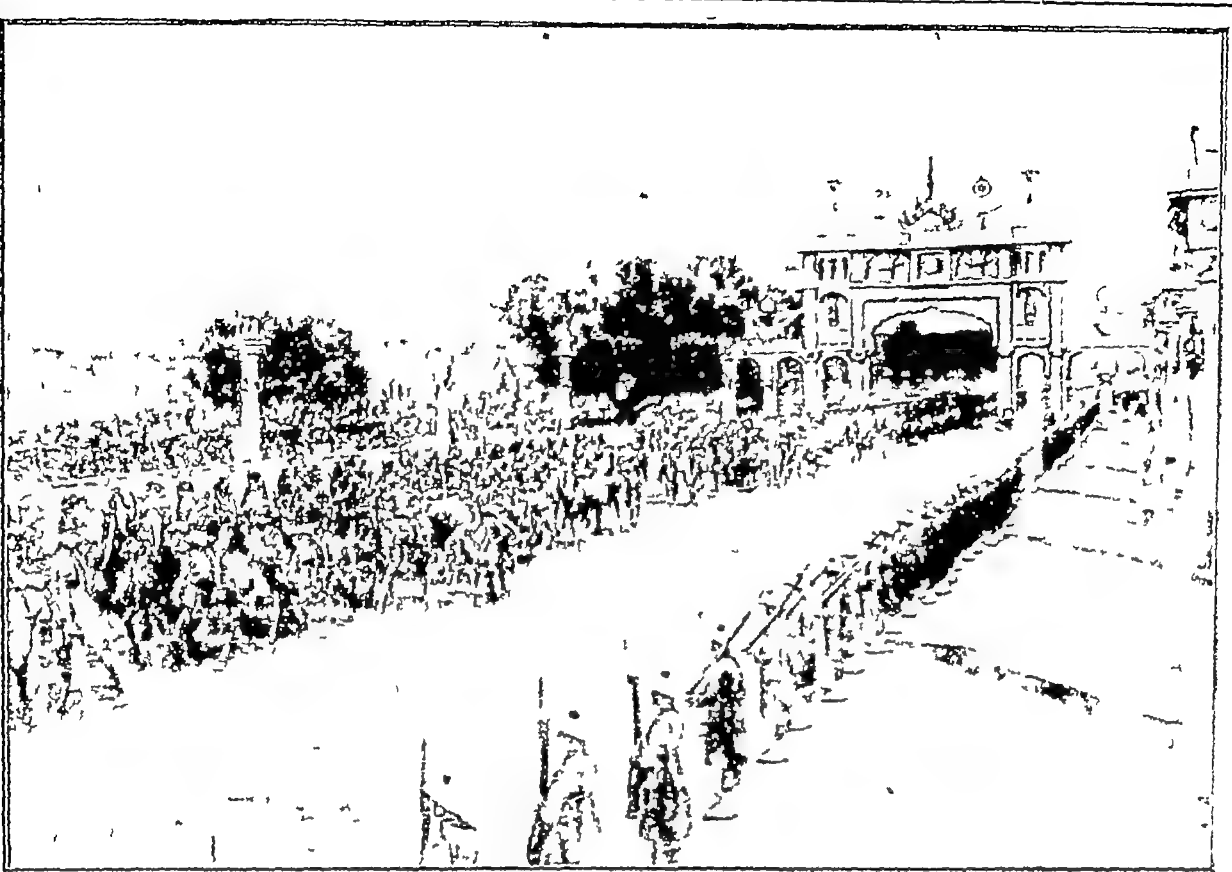
जलूस की धूम देख कर सम्राट् प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं।



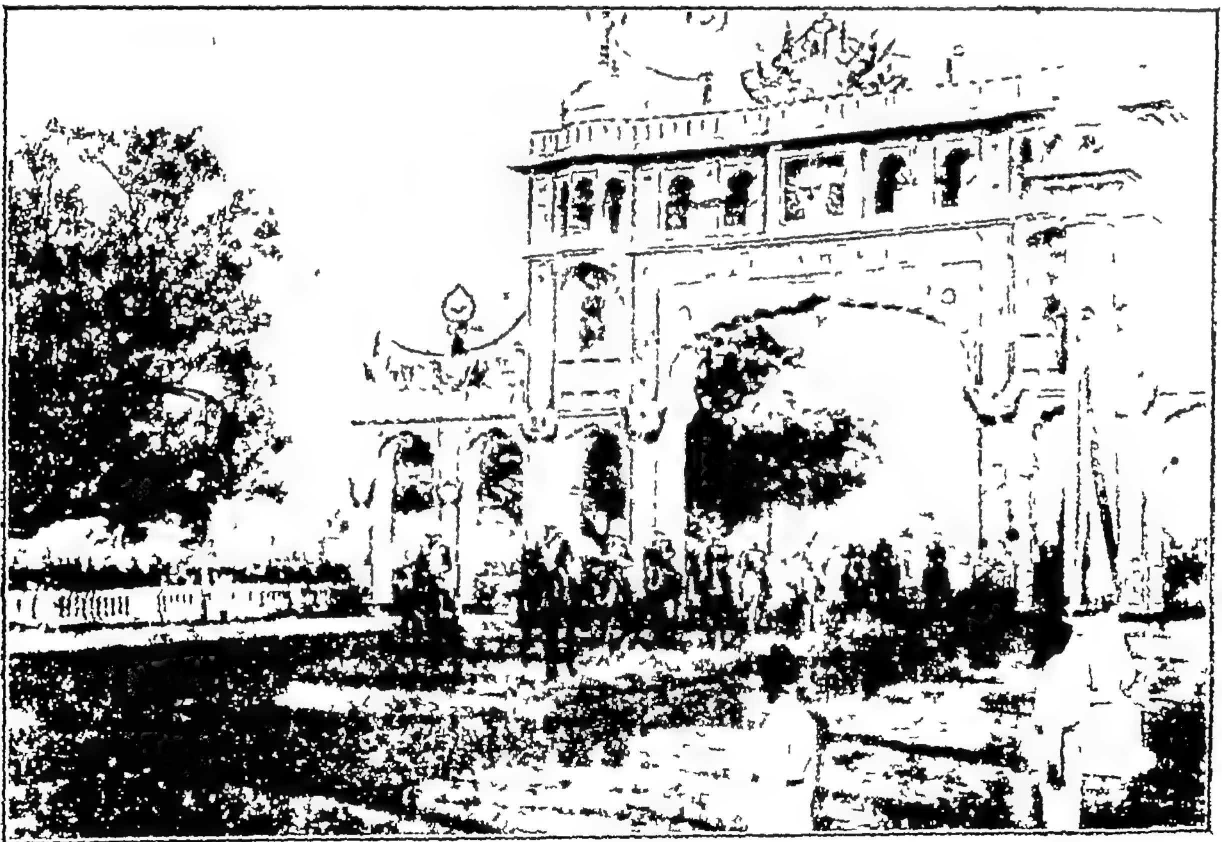
जलूस के आगे चलते हुए राजाओं के हाथी।

देता हूं।"

सम्राट् का भाषण खतम होने के बाद युनिवर्सिटी के फेलो लोगों ने



रेड–रोड पर बड़े लाट के शरीररक्षक सम्राट् के स्वागत के लिए खड़े हैं।



रेड–रोड का सुन्दर फाटक।

उनका अभिवादन किया। युनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर सर आशुतोष से सम्राट् ने हाथ मिलाया और अपना तथा महारानी का हस्ताक्षर युक्त फोटो युनिवर्सिटी के लिए भेंट किया। शिक्षित लोगों पर सम्राट् के इस भाषण का बहुत प्रभाव हुआ। कई लोगों के नेत्र अश्रुपूर्ण होगये और एक महाशय तो एकदम बोल उठे कि "अबसे भारत में अराजकता का उत्पन्न होना बिलकुल असम्भव है।"

दो पहर को ' सेंट विन्सेंट्स् होम ' और ' सेंट कैथाराइन्स होम ' देखकर सम्राट् और सम्राज्ञी ' स्टीपल् चेस ' अर्थात् बीच में आनेवाली रुकावट लांघ कर पार जाने की बाजी देखने को

आठ जनवरी को सम्राट् कलकत्ते से रवाना हुए। चलते समय भारत के मुख्य बडे महाशय और खास खास सरकारी अफसर सम्राट् से मिलने गये थे। गवर्नमेन्ट हाउस से ' प्रिन्सेप्स घाट ' तक दुतर्फा पैदल और सवार खडे



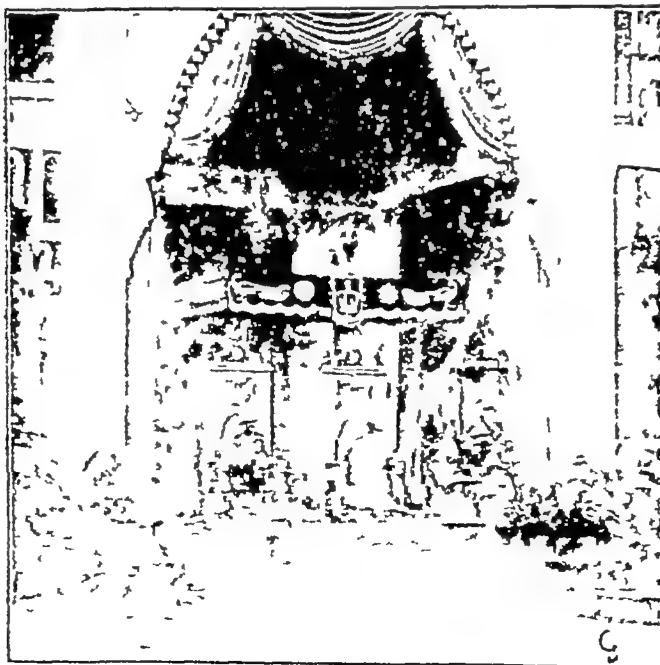
सम्राट् और सम्राज्ञी की सवारी सुशोभित भव्य मण्डप के पास आती है।

टोलीगंज गई। इस समय भी बडी भीड हुई थी। घुडदौड देखनेवालों की सिर्फ मोटरगाडियां आठ सौ बाहर खडी थीं, इनके सिवाय अन्य सवारियों की संख्या, उनसे आये हुए लोगों की संख्या तथा पादचारी लोगों के जमाव आदि की कल्पना पाठकगण स्वयं कर सकते हैं। रात को महारानी के साथ सम्राट् बडे लाट की मेहमानी को गये। इसके बाद उन्होंने ' गवर्नमेंट हाउस ' के गुम्बज पर से कलकत्ते की

रोशनी

देखी। एडन गार्डन्स, रेड-रोड, चौरंगी, एस्प्लेनेड की इमारतें, सरकारी दफ्तर, बडे बडे व्यापारियों की कोठियां और दुकानों पर दर्शनीय रोशनी की गई थी। ईस्ट इंडियन रेलवे कंपनी की इमारतों के आगे दीपपंक्तियों में एक इंजिन दिखलाया गया था, और इस इंजिन के पहिये फिरते थे। इसे देखकर बडा आनन्द आता था। रोशनी देखने के लिए सडकों पर लोगों की इतनी भीड हुई थी कि जानेवालों को भीड में निकलने में बडी देर लगती थी।

सात जनवरी को रविवार होने के कारण सम्राट् मन्दिर में प्रार्थना के लिए गये और फिर उस दिन बारकपुर में जाकर बडे लाट के बागीचे में विश्रान्ति ली। शाम को गवर्नमेंट हाउस में लौट आये। रात को पुलिस के कुछ कर्मचारियों को पदक बांटे।



सम्राट् और सम्राज्ञी उच्च सिंहासन पर जाकर बैठते हैं।

किये गये थे। इनके पीछे लोगों की भीड सम्राट् के दर्शन के लिए खडी थी। प्रिन्सेप्स घाट पर बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल की ओर से सम्राट् को मानपत्र दिया गया। उसके उत्तर में

सम्राट् का व्याख्यान

हुआ। आपने अपना लिखा हुआ यह व्याख्यान पढ सुनाया —" महारानी और मैं आपके मानपत्र से बहुत आनन्दित हुआ हूं। आप लोगों के ये शब्द कुछ कोरे शब्द ही नहीं हैं। यहां हमारा जो उत्साहपूर्ण स्वागत हुआ और कलकत्ता तथा बंगाल के सब लोगों ने प्रेमपूर्वक हमारा जो सम्मान किया उस से इन शब्दों की सत्यता स्पष्ट और यथोचित सिद्ध होगई है। गत आठ दिनों में, हृदय आन्दोलित करनेवाला जो अनुभव हम प्राप्त हुआ है उसका हम जन्म भर बडे अभिमान और सहृदयता के साथ स्मरण करेगा। निष्ठा और प्रेम के दर्शक ये चिह्न आपके भाइयों के हृदय में रहनेवाली मनोवृत्तियों के ही बाहरी चिन्ह हैं। इस विषय में आपने अपने मानपत्र में जो विश्वास दिखाया है उससे मुझे बडा समाधान हुआ है। हमारे आगमन के उपलक्ष में जो चमत्कारपूर्ण और ममतामयी दृश्य दिखलाये गये हैं वे हम कभी न भूलेंगे। जाते समय हमें प्रजा के समर ' हृदय भर कर बाहर झलकनेवाले प्रेम और कृतज्ञता का दान दे रहे हैं। विश्वास रखिये कि अपने लिए और अपने लडके बालों के

लिए इसके अधिक मौल्यवान् और कुछ भी हम नहीं माग सकते हैं। हमारा हृदय इस समय इतना भर आया है कि हमारे स्वागत के लिए और हम अपने घर की तरह रहने के लिए आपने जो कुछ किया है उसपर कृतज्ञता प्रकट करना असम्भव सा हो गया है। अब जाते जाते परमात्मा से हमारी इतनी ही प्रार्थना है कि बगाल की सब जातियाँ और सब धर्मों के लोक, सहानुभूति और बन्धुप्रेम के बन्धनों से एक होकर, ईश्वर के दिखाये हुए मार्गपर चलते हुए, अपने सौख्य के लिए, समाधान के लिए और सारी मानवजाति के कल्याण के लिए सदा प्रयत्न करते रहें।" व्याख्यान खतम होने पर सब को नम्र होकर सलाम करके सम्राट् 'हौडा' नामक नाव पर सवार हुए और हौडा स्टेशन की ओर चले। घाट की सिढिया पर बगाली लोगो का बडा जमाव हुआ था। नदी के किनारे की सारी जगह मनुष्या से भरी हुई थी। स्टेशन पर स्थानिक अधिकारियों से विदा होकर सम्राट् सम्राज्ञी के साथ अपनी स्पेशल गाडी से बम्बई को रवाना हुए।

बगाल के राजा लोग सिंहासन के पास जाकर सम्राट् और सम्राज्ञी का अभिवादन करते हैं।



महमानी के दिन सम्राट् खुले मन से सब से कुशल प्रश्न पूछ रहे हैं।



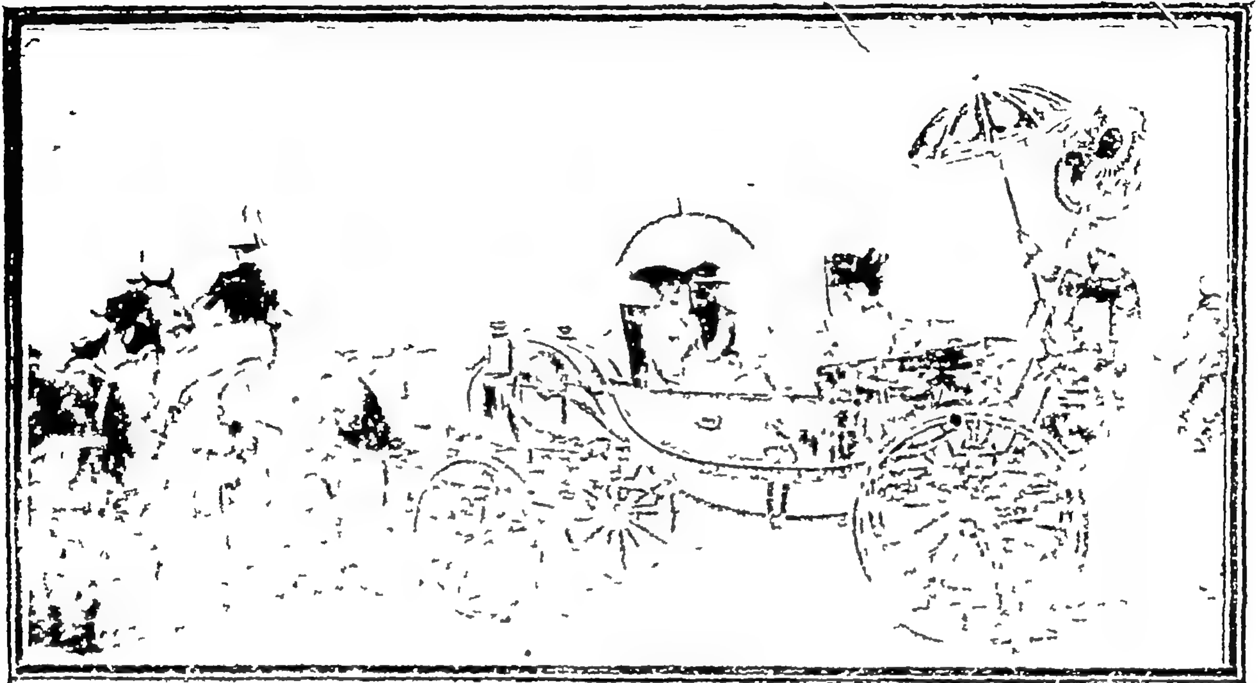
टोलीगज की अश्वप्रदर्शिनी के समय सम्राज्ञी पारितोषक बाँट रही हैं।

९ जनवरी के सवा दो बजे सम्राट् की स्पेशल नागपुर पहुँची। वहा के मुख्य मुख्य सरकारी अफसरा और रईसा ने सम्राट् का स्वागत किया। इसके बाद मोटर में बैठकर सम्राट् नागपुर का किला देखने गये। मार्ग में सुन्दर

फाटक बनाये गये थे और लोगों की भी बहुत भीड जमा हुई थी। किले में बडे बडे अँगरेज और 'दरबारी' लोग जमा हुए थे। देशी स्त्रियां भी बहुत सी थी। यहां कुछ लडकियों ने सम्राट् को पुष्पगुच्छ अर्पण किये। किला देख लेने के बाद, सम्राट् किले तट पर मण्डप में आकर बैठ गये। यह योजना इस लिए की गई थी कि जिससे किले के नीचे मैदान में जमा हुए लोग आपके दर्शन कर सकें। इसके बाद सम्राट् फिर स्टेशन पर आकर अपनी स्पेशल से बम्बई को चल दिये।

१० जनवरी को सम्राट की सवारी बम्बई पहुंच गई। इस बार फिर बम्बई नगरी ने रम्य रूप धारण किया था। स्टेशन से सम्राट् का जलूस बडी

हम आपके विशेष ऋणी हुए है। गत सुखमय सप्ताह में यह एक ही बात हमारे लिए खेदजनक हुई कि हम इससे अधिक दिन रहकर प्राचीन मदरास प्रान्त और आदरशीलता से आमन्त्रण देनेवाले उदार राजा लोगों की रियासतों में हम नहीं जा सके। विचारपूर्ण तत्परता और प्रेमपूर्ण आदरबुद्धि से सुख-दायक किये हुए हमारे भारतीय अनुभवों की स्मृति हम बहुत काल तक बनी रहेगी। जगत् के अन्य भागों में रहनेवाली अपनी लक्षावधि प्रजा के हित और कल्याण की जितनी हम चिन्ता रहती है उतनी ही चिन्ता इस बडे भाग के लोगों के विषय में भी हम रहेगी। सब जातियां और सब धर्मों के लोग हृदय से हमारा स्वागत करने में जिस प्रकार एकजीव होगये उसी प्रकार यदि



पारितोषिक बाँट कर कैंटेस आफ शाफ्टसबरी के साथ सम्राज्ञी का प्रयाण।





कलकत्ते की आतिशबाजी।

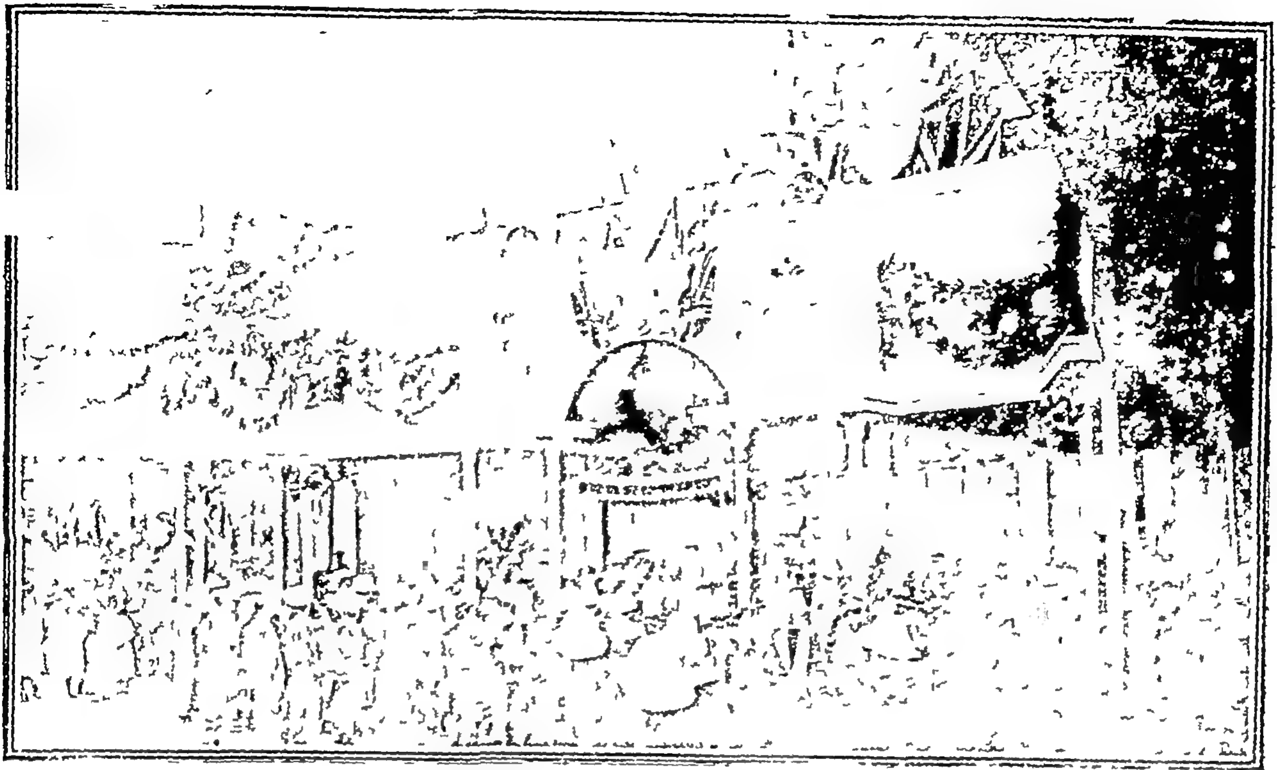
धूम से अपोलो बन्दर के एम्फी थियेटर को पहुंचा। वहां पर बम्बई की लेजिस्लेटिव कौंसिल की तरफ से सम्राट् को मानपत्र दिया गया। उसके उत्तर में

### सम्राट् का भाषण

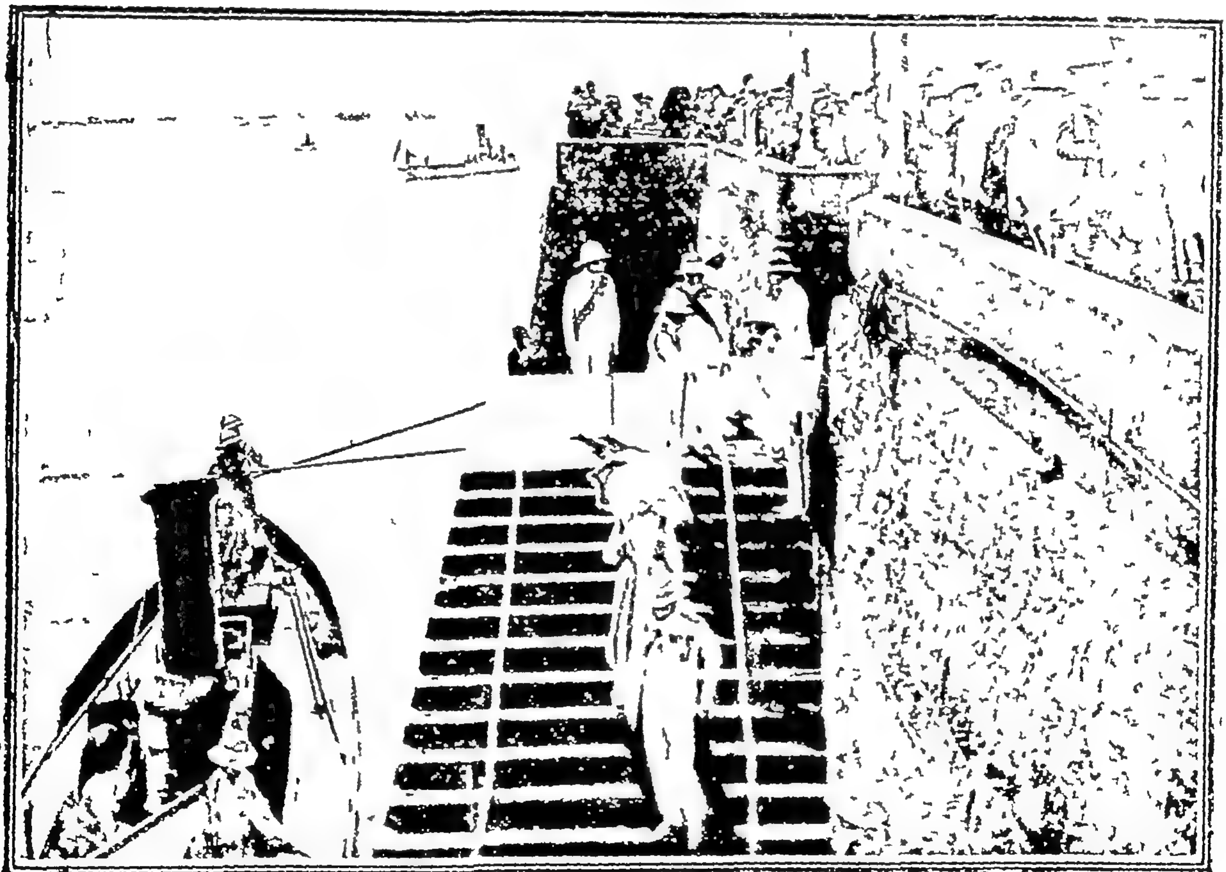
इस प्रकार हुआ :—"आप लोगों ने अपने मानपत्र में मेरी बिदाई के विषय में और मेरा प्रवास सुखपूर्ण होने के लिए जो हृदयपर प्रभाव डालनेवाले शब्द कहे हैं उन्हें सुनकर हमारी मनोवृत्ति ऐसी होरही है जो सन्तोष और खेद से मिश्रित है। आपने जो यह आशा प्रकट की है कि हमारे आगमन से भारत का भारी लाभ होगा, इससे मानो हमारे हृदय की इच्छा पूर्ण हुई है और

वे अपने निजी और सार्वजनिक जीवनक्रम में भी एकता और सद्बुद्धि से रह सकेंगे तो हम समझेंगे कि हमारे भारतागमन का बहुत अच्छा फल हुआ। अब हम बडे प्रेम से आप से बिदा चाहते हैं। भारतीय साम्राज्य के कल्याणार्थ —उसे वैभव और शान्ति का सुख प्राप्त होने के लिए—हम और हमारे वंशज हृदय से प्रयत्न करेंगे। परमात्मा उन्हें सदैव सहायता दे।"

व्याख्यान समाप्त होने पर कुछ बडे बडे लोग सम्राट् से मिले। इसके बाद सम्राट् बन्दर और मुख्य धक्के खडे हुए और सब प्रजा को सलाम करके बन्दर की ओर चल दिये। लोगों ने तालियां पीटीं। सम्राट अपने सहचारियों के साथ नाव में बैठ कर मदीना जहाज पर गये। इस समय बन्दर पर



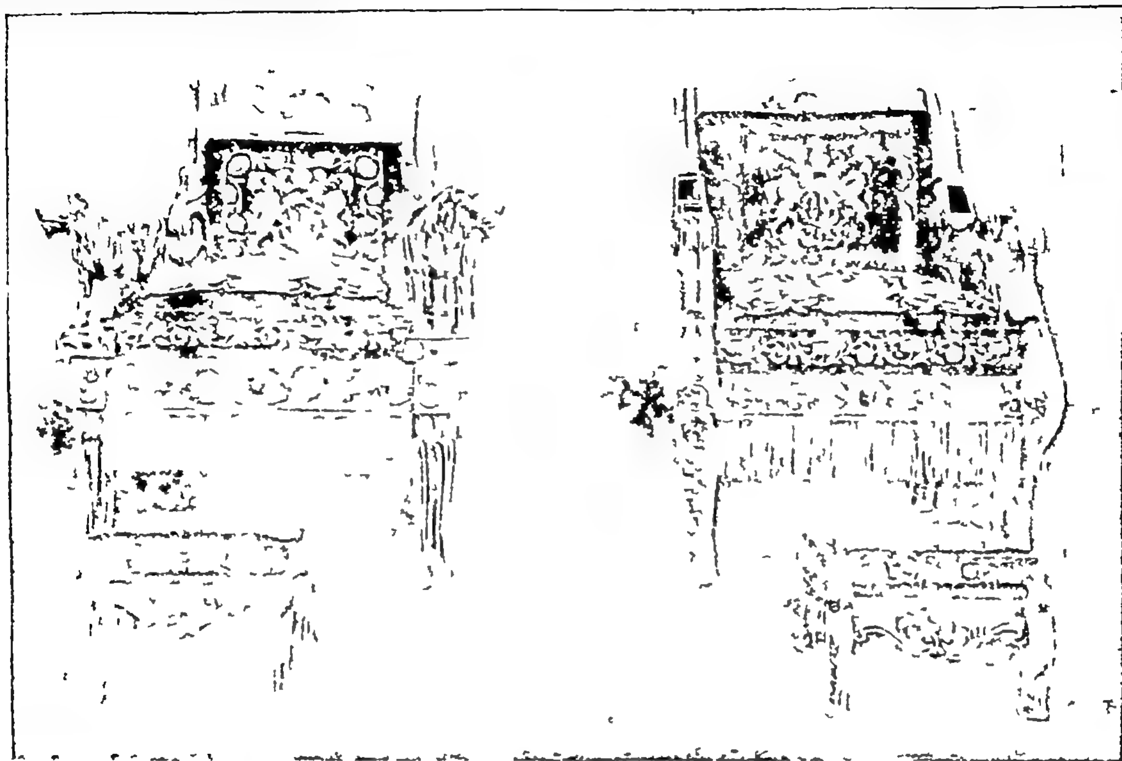
बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल की ओर से सम्राट् को मानपत्र देने का उत्सव।



सम्राट् और सम्राज्ञी का अपोलो बन्दर से प्रयाण।

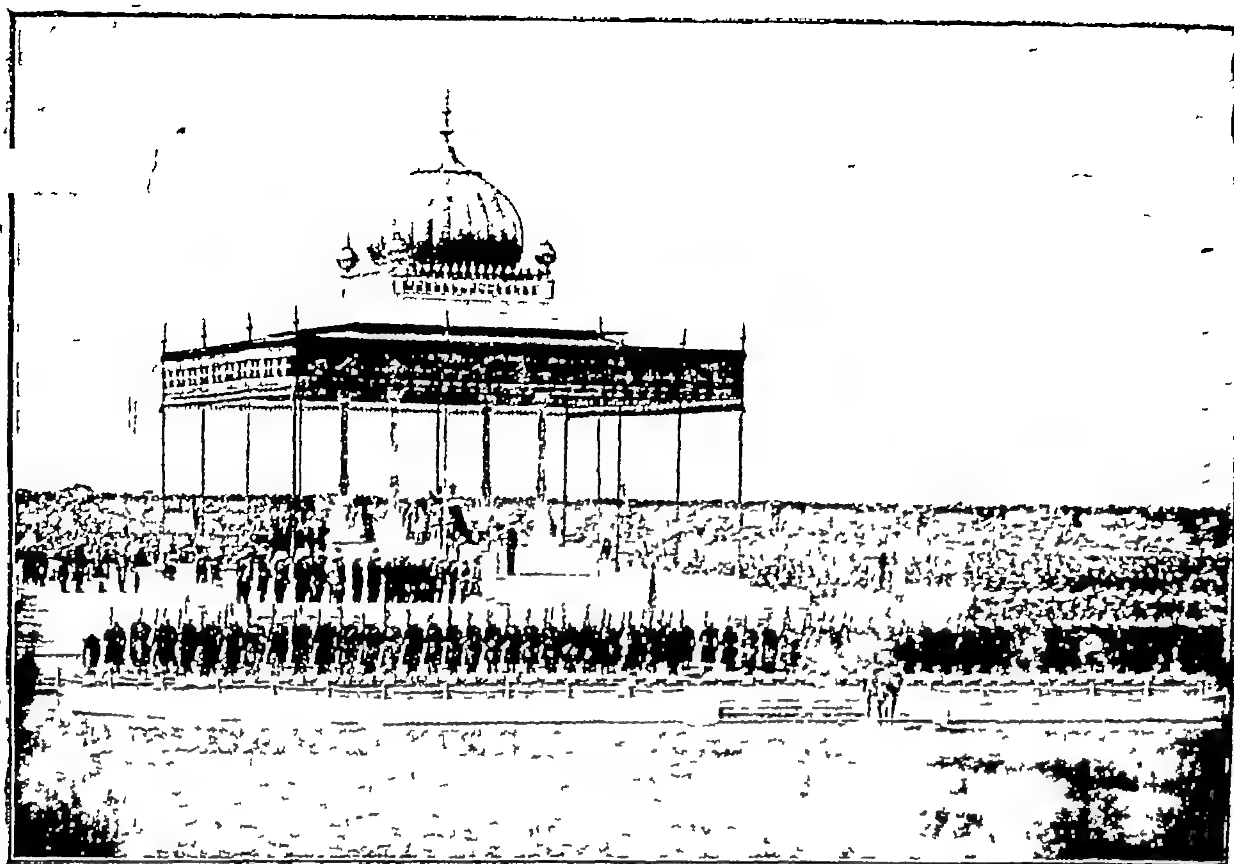
लगा हुआ झंडा नीचे कर दिया गया। तोपों की सलामी हुई और राष्ट्रगीत की तान सुनाई देने लगी। बड़े लाट, बम्बई के गवर्नर, आ आगाखा, महाराज बूंदी आदि कई बड़े लोग मदीना जहाज पर गये थे। वहां भोजन समारम हुआ। सम्राट् ने कुछ लोगों को पदक आदि दिये। वहां से सब लोगों के लौट आने पर १०१ तोपों की सलामी के साथ सम्राट् का जहाज स्वदेश के लिए रवाना हुआ।

# दिल्ली का राजदरबार ।

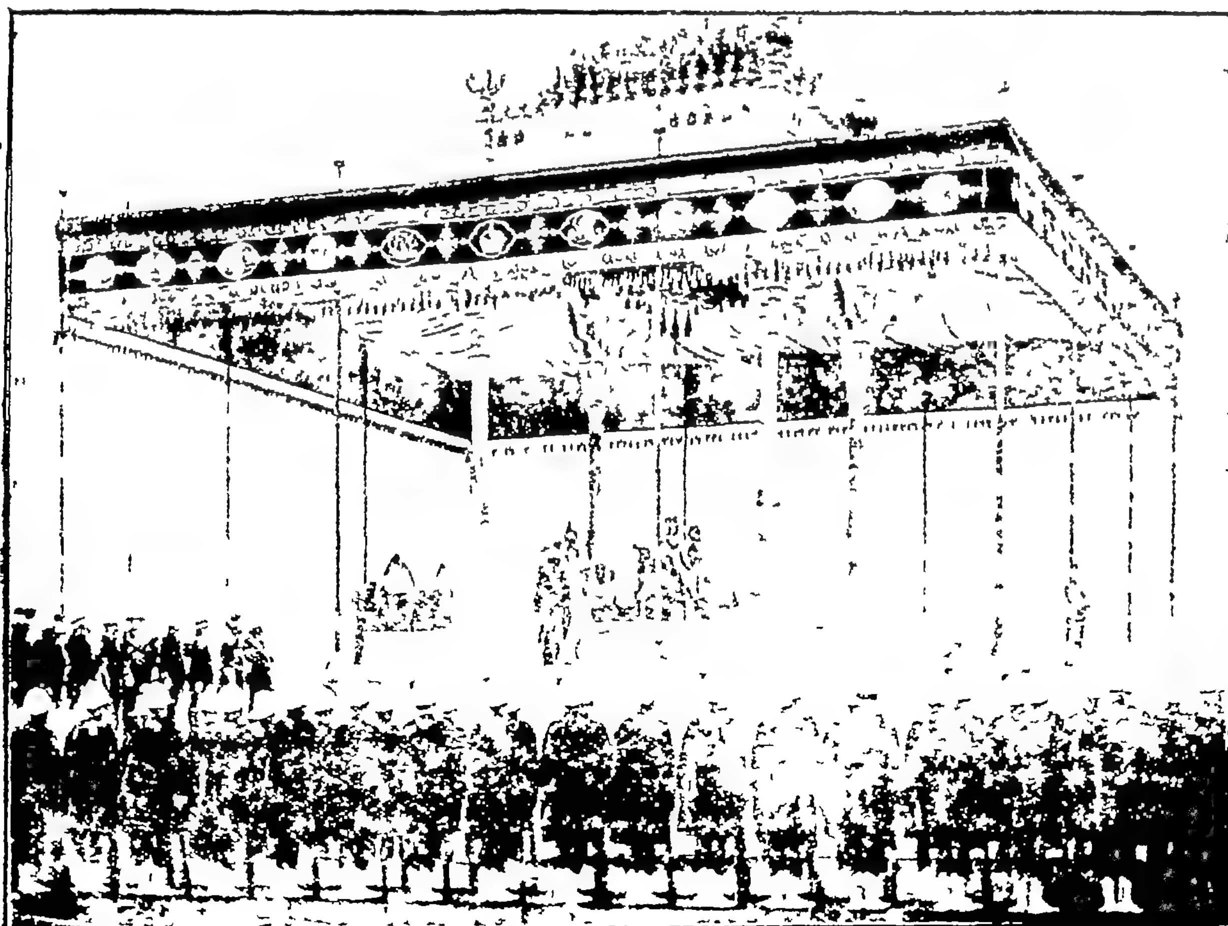


दरबार में सम्राट् का सिंहासन । दरबार में सम्राज्ञी का सिंहासन ।

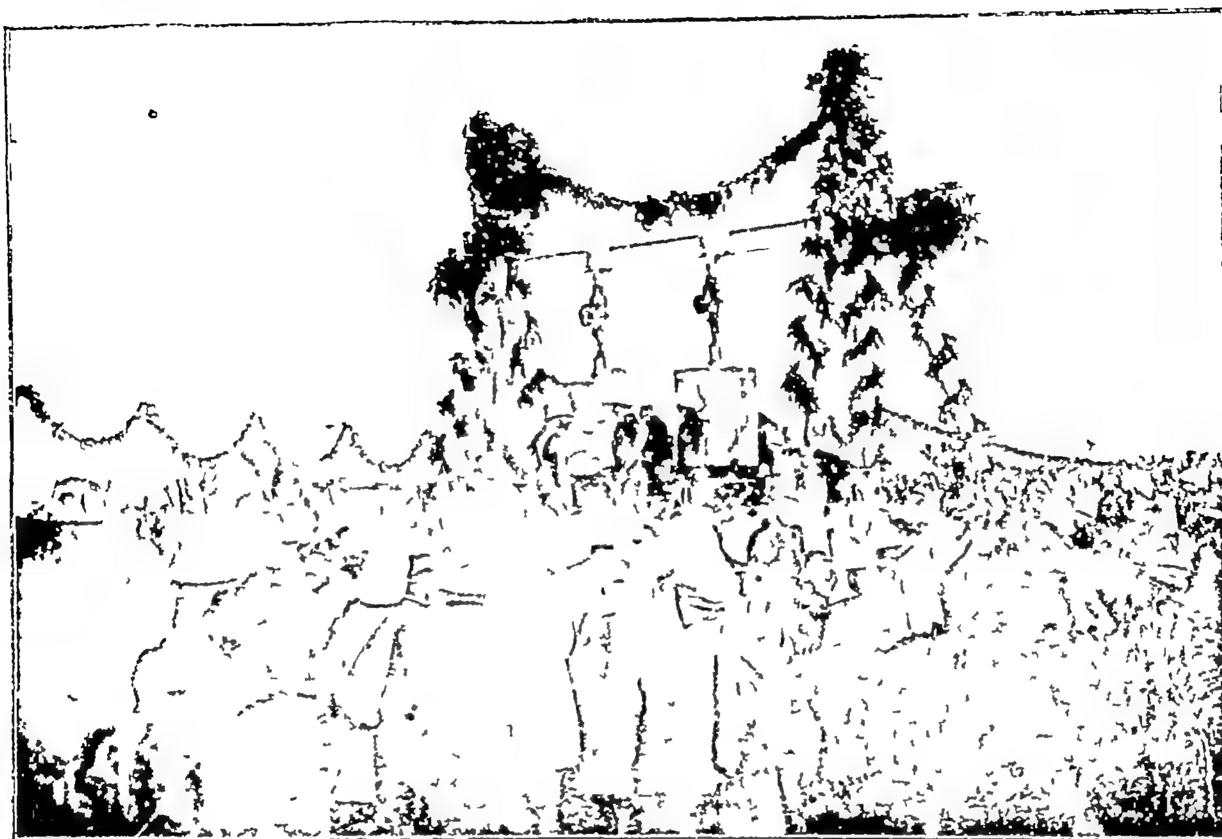
दरबार के शाही शामियाने में सम्राट् की आज्ञा से हेरल्ड आधिराजिक घोषणापत्र पढ़ रहे हैं ।



दरबार के भव्य मण्डप में सम्राट् और सम्राज्ञी के बैठने का उच्च स्थल।



दरबार के समय सम्राट् की आज्ञा से लार्ड हार्डिंज राजकीय दान प्रकट कर रहे हैं।

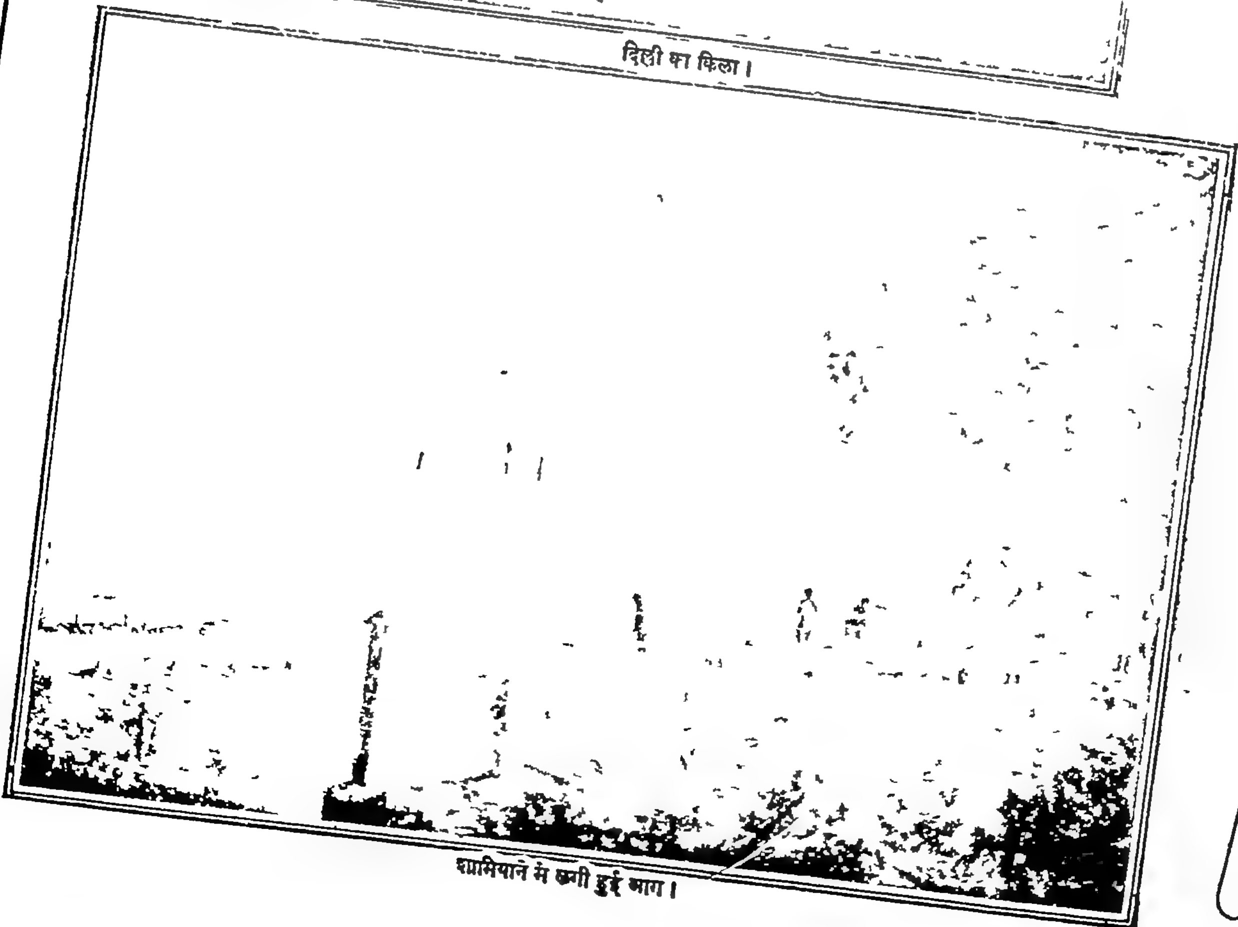


सम्राट् नवीन दिल्ली की नींवँ का पत्थर रख रहे हैं।

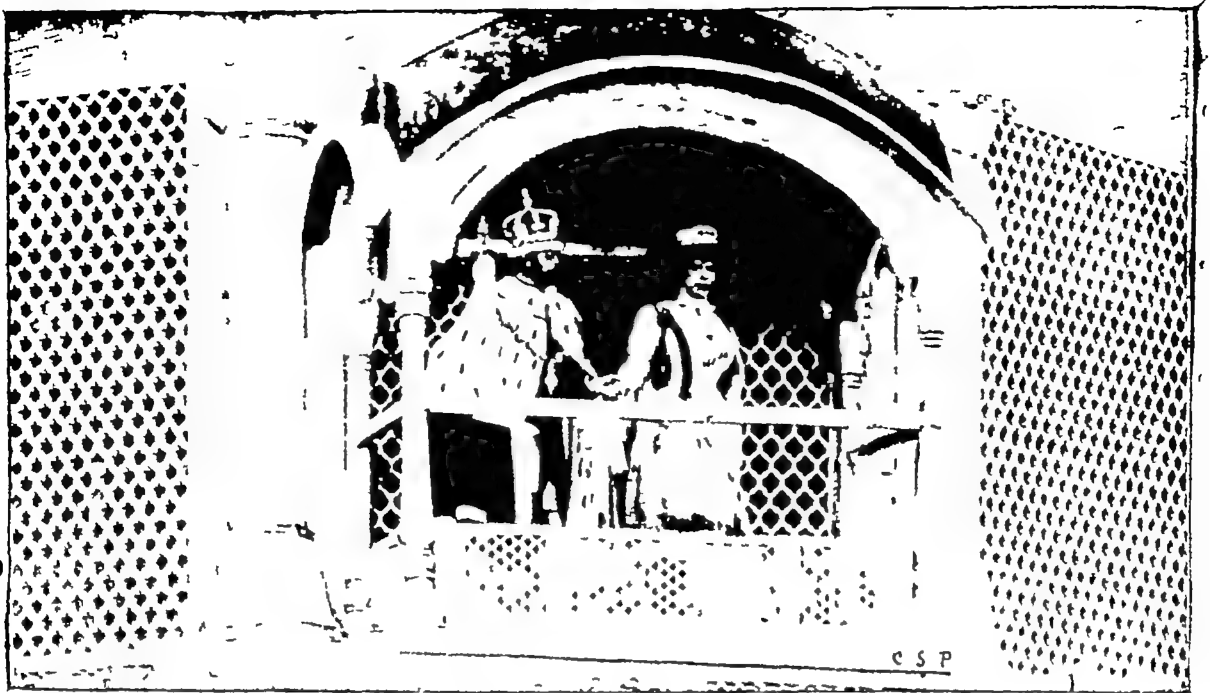


सम्राट दिल्ली के किले में बैठकर यमुना के किनारे होते हुए खेल देख रहे हैं।

दिल्ली का किला।



शामियाने में लगी हुई आग।



दिल्ली में शाहजहां के राजमहल में मासुमन बुर्ज पर बैठ कर सम्राट् और सम्राज्ञी जनसमूह को दर्शन देकर सब का अभिवादन स्वीकार कर रहे हैं।



सम्राट् और सम्राज्ञी की स्पेशल गाड़ी।



सन् १९०४ में प्रिन्स आफ वेल्स की हैसियत से सम्राट् भारत में आये थे उस समय के जयपुर के शिकार का दृश्य।

# नेपाल में सम्राट् का शिकार खेलना।



(बीचवाले हाथी पर सम्राट् बैठे रहे हैं। उनके बाएं ओर के हाथी पर नेपाल के मुख्य प्रधान राना चन्द्र समशेर बैठे हैं। सब हाथी उत्तम प्रकार से शृंगार किये हुए हैं। इस शिकार में कुल ३९ बाघ, १८ गेंडे और ४ भालू मारे गये। इनमें से स्वयं सम्राट् ने २४ बाघ और एक भालू मारा। एक बार तो सम्राट् ने एक दुनली बन्दूक से एक बाघ और एक भालू दोनों को एकदम मारा।)

नेपाल के मुख्य प्रधान चन्द्र शमशेरजंग ने एक मास पहले से ही सम्राट् के लिए शिकार खेलने की अच्छी तैयारी कर रखी थी। १८ दिसम्बर को सम्राट् और उनके लवाजमे को सुकीमार नामक मुकाम में ले जाने के लिए भिकनाथोरी में कुल ४० मोटरगाड़ियाँ तैयार थीं। नेपाली लोग बाघ और गेंडा आदि का शिकार करने में बहुत ही पटु हैं। बाघ और गेंडों की चहल से नेपाली लोग चट जान लेते हैं कि जंगल में अमुक ओर वे जानवर हैं। जंगल में जिस तरफ

बाघ और ग । का ठाना ग अपने तक ग नाते है, उस तरफ, शिकार के पहले । भैंस अथवा बैल बाँध रखते हैं। उस भैंसा या बैल को यदि । जानवर खा जाता है तो उन लोगों को निश्चय हो जाता है कि इसी तरफ आसपास कहीं न कहीं वह छिपा पड़े हैं। इसके बाद सैकड़ों हाथियों से जंगल के उस भाग में घेरा डाल देते हैं। इस कारण से जानवर अवश्य ही हाथियों के इस घेरे में फँस जाते हैं। फिर जिस झाड़ी अथवा गुल्म में उन जानवरों के फँसने का



जंगल में एक बार का शिकार—हाथियों का घेरा।

सम्भव होता है उसी तरफ दो अच्छे लड़नेवाले हाथी, वाघ को हुसका कर निकालने के लिए, छोड़े जाते हैं। इस कारण कभी कभी वाघ का सब कुटुम्ब का कुटुम्ब एकदम निकलकर अनायास ही हाथियों के उस घेरे में पड़ जाता है। ऐसे समय में हाथियों और वाघों में, बड़े आवेश के साथ, एक खासी लड़ाई हो जाती है। इस लड़ाई के देखने में बड़ी बहार होती है। गैंडे का शिकार बड़े भारी हाथीपर बैठ कर बन्दूक के द्वारा करना होता है। गैंडे का शिकार करना बड़ी चतुरता का काम है। उसके आक्रमण की झोंक पहचान कर ही निशाण मारना पड़ता है। हाथी की सूंड पर से नीचे शिर लटका कर गैंडे वार बचाते हुए निशाना लगाना पड़ता है। और यदी कहीं वह निशाना गया तो प्राणों पर ही आ बनती है। गैंडे के शरीर में चाहे जितनी गोलि घुस जायँ, परन्तु वह मरता नहीं, ठीक उसके मस्तक में ही गोली मारनी है, और इसी लिए गैंडे का शिकार अनुभवी तथा चतुर शिकारी के नहीं हो सकता।



सम्राट् हाथी पर जिस हौदे में बैठे थे वह हौदा बेत से सुन्दर बुना हुआ था और दो स्प्रिंगों पर रखा था। हौदे से बन्दूक चलाने के लिए उसमें एक ओर लोहे का डंडा लगा हुआ था



सन् १९०५ में महाराज जब प्रिंस आफ वेल्स की हैसियत से भारत में आये थे तब दक्षिण हैदराबाद में आपने जो शिकार किया उसका द्रश्य।



चार वाघ और एक भालू का शिकार।

# भारतवासी राजेरजवाडे और सरदार लोग।



श्री चिंतामणराव आप्पासाहब, सांगली के महाराज।



श्री परशुरामराव पटवर्धन, जमखंडी।



श्री बालासाहब मिरजकर।



श्री माधवराव पटवर्धन, मिरजमला।



श्री शंकरराव पंडित पंतसचिव, भोर।



श्री बालासाहेब पंतप्रतिनिधि, आंध।



श्री माधवराव पंतअमात्य, बावडा।



श्री बाबासाहेब घोरपड, इचलकरंजी।



राजे [illegible] घोरपडे, मधोल।



श्री [illegible] नाइक निम्बालकर, फलटण।



श्री पिराजीराव घाटगे, कागल (ज्येष्ठ शाखा)।



[illegible] भीमराव नागोजीराव [illegible], कोल्हापूर



राजे [illegible], [illegible]।



नवाब [illegible], [illegible]।



देवास के महाराज (Senior)।



सरदार [illegible] माधवराव विंचूरकर, नासिक।


जैपूर के साम्प्रत क महाराज, सर माधवसिंग।


कुचबिहार के महाराज।


काशी के महाराज।


पालिठाणा के ठाकुरसाहब।


मुर्शिदाबाद के नवाब, सर वसीफ अली मिर्जा।


गीधौर के महाराज।


राजा फ्रान्सिस क्षेविअर शियाम रीख, बिजनोर।


मोरभुंज के महाराज श्रीरामचन्द्र भंज्देव।


राजा उदाइप्रसादसिंगराय, भींगा।


दिनापूर के महाराज गिरजानाथ।


राव नरहरसिंग, वेडला संस्थान के महाराज।


सर भवानीसिंग बहादुर, आल्वार संस्थान के अधिपति।


राजा रणजितसिंहजी, नवानगर के जामसाहब।


भोपाल के शहाजादा, साहबजादा महमद हमीदुल्ला।


राजा भजनारायणराय, गोरखपूर क महाराज।


राजा प्रतापबहादुरसिंग, कुरवार–सुलतानपूर


राजा उदाजीराव पवार, धार के अधिपति ।


राजकोट के ठाकुरसाहब ।


गोंडाल के ठाकुरसाहब ।


गोंडाल की महारानी नन्दकुँवरबा ।


न्यास के राजासाहब, (जुनीअर) ।


लिमडी के ठाकुरसाहब ।


रवा के महाराज ।


सीरमूर के महाराज अमरप्रकाशसिंह ।


त्रावणकोर के महाराज बालरामवर्मा ।


सीतामौ के राजासाहब ।


राजा सर उमरावसिंहराव, सैलाना ।


बिलासपुर के अधिपति ।


सिरोहि के महाराव ।


महाराजाधिराज [illegible] बहादुर [illegible] ।


[illegible] ।


महाराज [illegible], दतिया-नरेश ।


टेहरी के राजासाहब सर कीरतीशाह।


राजा अर्जुनसिंघजी बहादुर, नरसिंगगढ़।


खम्बायत के नवाब।


सचीन के नवाबसाहब।


बंगानेर के महाराज।


लाहरू के नवाबसाहब।


इमामबक्षखाँ, खैरपूर के नवाबसाहब।


राधनपूर के नवाब।


करौली के महाराजा।


राजा सर राजगोपालकृष्ण, व्यंकटगिरी के अधिपति।


राजा रामप्रतापसिंह बहादूर, मण्डा।


पिठापुरम् के महाराज।


राजा फत्तेसिंग पवार, सुहागपूर


राजा बहादूर रघुनाथ सिंघदेव, गंगपूर।


महाराजा सर भवानीप्रसादसिंह, बलरामपूर।


ना० राजा वेंकट वसुदेवराजा, कालेगोंड।


राणा श्री अमरसिंहजी, बांकानेर के महाराज।


राजा त्रिभुवनदेव, मयूरभंज के एक महाराज।


छत्तरपूर के महाराज।


सर गंगासिंग बहादूर, बिकानेर के महाराज।


सुरप्रसाद महन्त, ढेंकानल के महाराज।


धरणी धर जहागीरदार।

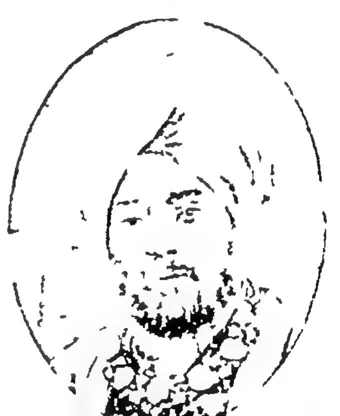

महाराव सर उमेदसिंहजी, कोटा के अधिकारी।


श्रीमन्त रामराव अमृतराव ढफले, जत।


सर [illegible]सिंह, रेवा के राजासाहब।


श्रीछत्रसिंहजी गंभीरसिंहजी, राजपिपला के महाराज।


वीरेन्द्र किशोरदेव, हिन्डोल के महाराज।


रिपुदमनसिंह मालव बहादुर, नाभा के नये महाराज।


महाराव सर [illegible] बहादुर, मजूरभन्ज के महाराज।


महाराज श्री उमेदसिंह साहब, जोधपूर।


[illegible] खाँ, [illegible]स्थान के अधिकारी—बादशाह।


[illegible] के नवाब।


महाराव, बुन्दी के महाराज।


राजा वीरभद्रराय, कुरुदम के जमींनदार।


महाराजाधिराज सर फत्तेसिंगजी बहादूर, उदेपूर।


नामदार आगाखाँ।


नामदार दिवाणबहादूर रघुनाथराव।


ना० सरदार नौरोजी पदमजी, पूना म्युनिसीपॅलिटी के अध्यक्ष।


सर गुरुदास बानरजी।


शेख अबदुल जाफर–बुडान म्युनिसीपॅलिटी के अध्यक्ष।


व्ही पी माधवराव, म्हैसूर के गत दिवाण।


लिमचीन स्टांग।


ना० सय्यद अली इमाम, श्रेष्ठ कौंसिल के कार्यकारी समासद।


पंडित मोतीलाल नेहरू, यू पी कायदे कौन्सिल के मेम्बर।


श्री हरचन्दराई विशीनदास, कराची।


ना गरूड, बम्बई–कायदेकौंसिल के समासद।


सर पी एम् मेहेता।


ना उमार हायदरखाँ, हरदुब नं० १।

# गवर्नर, ले० गवर्नर, कमिश्नर और अन्य अधिकारि वर्ग।

जनरल सर मूर क्र, जी सी एस आई भारत वर्ष के सेनाधिपति।

लेडी के।

सर थामस गिब्सन कारमायकेल, के सी आई ई बंगाल के नये गवर्नर।

लेडी कारमायकेल।

सर जान ह्यूट, ले० गवर्नर, यू पी और दिल्ली दरबार के अध्यक्ष।

लेडी ह्यूट।

सर फ्रेडरीक ड्यूक, के सी आई ई. ले० गवर्नर, बंगाल।

लेडी ड्यूक।

सर लुइ डेन, पंजाब के ले० गवर्नर।

आ० सर एच् क्राडाक, मध्यप्रान्त के चीफ कमिश्नर।

मि जे बायर, नागपुर के कमिश्नर।

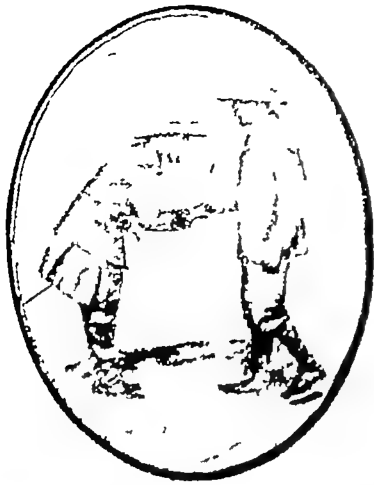
सर चार्ल्स स्टुअर्ट बेल, इस्टर्न बंगाल के गवर्नर।

मा० जे एम् होम्स, सी, टी, एस कमिश्नर, यू पी

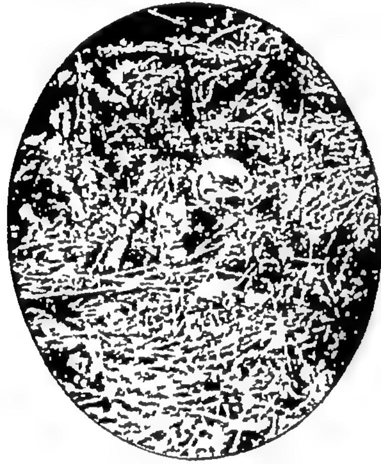
मा० सर जेम्स मेस्टन, यू पी के ले० गवर्नर।

मा० [illegible] चीफ कमिश्नर।

मा० [illegible]



नेपाल के मुख्य प्रधान चन्द्र समशेर बहादुर और सम्राट् की भेट।



नेपाली जगल का बाघ सम्राट् के हाथी पर आक्रमण करने को आ रहा है।



नवाब हाजी मुहम्मद इस्माइलखां, अलीगढ़। आपको दिल्ली दरबार के उपलक्ष में नवाब की पदवी दी गई।

## नेपाल के महाराज ने सम्राट् को ये जानवर भेट किये।





लड़नेवाले बकरों की जोड़ी (ये बकरे इतने बलवान है कि इनको पकड़ने के लिए दो पहलवान लगाये गये, तथापि ये उनसे नहीं पकड़े जा सके।)



अलबीमो चिनफारा (एक प्रकार की नेपाली गाय)।



शिकम प्रदेश का बारहसिगा।



तिब्बत का मेस्टिफ नामक कुत्ता।



हिमालय का झब्बू बैल।

# भगिनी निवेदिता।



भला यह कौनसी वस्तु है जो हमारे इस मृत्युलोक में चिरस्थायी है ! उत्पत्ति के पीछे लय, उदय के पीछे अस्त, जन्म के पीछे मृत्यु लगेही हुए हैं। इस नियम के अनुसार मृत्यु मनुष्य के सिर पर नित्यही नाच रहा है। लाखों मनुष्य रोज जन्मते हैं और लाखोंही नित्य काल के गाल में चले जाते हैं। पर कुछ मनुष्य—कुछ नहीं, संसार के अधिकांश मनुष्य—जहां एक बार मरे कि फिर सदा के लिए लुप्त हो जाते हैं, उनके पीछे किसीको उनकी याद भी नहीं आती, उनका कोई नाम तक नहीं लेता। इसके विरुद्ध इस नश्वर जगत में कुछ विभूतियां ऐसी होती हैं कि उनका यह पञ्चभौतिक देह चाहे भलेही मर जाय, पर वे स्वयं सदा के लिए नष्ट नहीं होते। वे अपने दिव्य चरित्र के अविनाशी स्मारक पहलेही से रच रखते हैं। इस कारण वे कीर्तिरूप से इस अशाश्वत संसार में भी अजर और अमर बने रहते हैं। हमारी चरित्रनायिका भगिनी निवेदिता इसी श्रेणी में है।

परहित-साधन जिनका प्रधान व्रत है, जनसेवा ही जिनका धर्म है, अशिक्षितों को विद्यादान करने, दीन दुखियों और अनाथों की सहायता करने में ही जो अपना जीवन सफल समझते हैं—नहीं, नहीं जो निरपेक्षता के साथ अपना जीवन इसी काम के लिए निवेदन कर देते हैं—ऐसे पुण्यश्लोक मनुष्यों में भगिनी निवेदिता अत्यन्त श्रेष्ठ थी। विलायत में जन्म लेकर और यहां आर्य धर्म की तेजस्विता से मोहित होकर इस परम साध्वी ने आमरण ब्रह्मचारिणी रहकर आर्यभूमि के दुःखी और आर्त जनों की जो सेवा की उस पर ध्यान जाते ही मन विस्मय और कौतुक से भर जाता है और सहसा, आपही आप यह आत्माधिक्कारोद्गार मुख से निकल पड़ता है कि हाय ! हम आर्यभूमि को, केवल प्रसव वेदना देने के लिए जन्मे और उसकी छाती पर भाररूप होकर खेल रहे हैं ! हा ! जिस आर्यमाता ने हमें अपने पेट से जन्म दिया है—जो आर्यमाता हमारा सब प्रकार से लालन पालन करती है उसके प्रति हमारी ऐसी अक्षम्य कृतघ्नता ! !



भगिनी निवेदिता।

अस्तु। जब हम भगिनी निवेदिता के पिता के चरित्र पर विचार करते हैं तब हमें मालूम होता है कि एक साधु ने जो यह कहा है कि "शुद्ध बीज के पेट में स्वादु और सुन्दर फल रहते हैं" सो बिल्कुल ठीक है। इसी न्याय के अनुसार योग्य पिता से इस योग्य कन्या का निपजना स्वाभाविक ही है। भगिनी निवेदिता के पिता धर्मोपदेशक और सुवक्ता तथा सुशिक्षित थे। परन्तु अपनी भौतिक उन्नति की ओर बिल्कुल ध्यान न देते हुए उन्होंने मैंचेस्टर के दीन दुःखी लोगों की सेवा करने के लिए अपना जीवन दे दिया था। ऐसे परोपकारव्रत की यह परोपकारी कन्या २८ अक्टूबर सन १८६७ में उत्पन्न हुई। बाल्यपन में भगिनी निवेदिता का नाम मिस मार्गरेट ई नोबल था। लड़कपन से ही इनकी धर्म की ओर प्रवृत्ति थी। इनके पिता का एक मित्र हमारे भारतवर्ष में धर्मोपदेशक था। वह एक दिन उनके पिता से मिलने के लिए गया। कन्या मार्गरेट की धर्मलालसा देखकर वह बड़ा चकित हुआ। उसने उस होनहार कन्या को आशीर्वाद देकर कहा कि आगे कभी न कभी इस सुलक्षण कन्या पर भारतवर्ष की सेवा की जवाबदारी आ पड़ेगी। और यह योगायोग तो देखिए कि सचमुच ही उनकी भविष्यवाणी सत्य निकली ! मार्गरेट के पिता भी अपनी सद्गुणी कन्या के भावी जीवन की उज्ज्वलता पहले ही से समझ चुके थे। अतएव मृत्यु के समय उन्होंने अपनी पत्नी से यह कहा था कि, "यह कन्या कभी कोई बड़े महत्व का कार्य करने के लिए जायगी, उस समय तुम इसके कार्य में विघ्न न डालना।"

मार्गरेट की शिक्षा अच्छी तरह हुई थी। आगे चलकर शिक्षणशास्त्र ही उनका प्यारा विषय हो गया। उस समय लण्डन शहर में उक्त विषय में उनकी बराबरी करनेवाले बहुत कम थे। यही नहीं, बल्कि लंडन की शिक्षा विषयक हलचल थोड़े ही दिनों में इन्हीं पर आ रही। विशेषतः उन्होंने, छोटे छोटे बच्चों को सरल और मनोरञ्जक रीति से शिक्षा देने पर विचार किया और इस विषय का निश्चय करने में उन्होंने अपना अपूर्व बुद्धिसामर्थ्य दिखलाया, पर उनके उस उत्तम ज्ञान का फल लण्डन शहर को नहीं मिलना था। उनके ज्ञानसूर्य के किरणों का प्रकाश लण्डन शहर पर अच्छी तरह पड़ने न पाया था कि आर्यमाता की पुकार उनके कानों में पड़ी। सारे संसार की धर्मपरिषद होने के बाद अमेरिका में दो वर्ष तक आर्यधर्म का प्रचार करके श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द सन् १८९५ ई० में लण्डन को पधारे। वेदान्तधर्म के समान महत्वपूर्ण और मनोरम विषय और विवेकानन्द के समान तेजस्वी, दिव्य और वक्तृत्वपूर्ण वाणी ! फिर क्या कहना ! ! लण्डन नगर में धूम मच गई। उस समय अनेक लोग स्वामीजी के शिष्य बन गये। उन्हींमें हमारी चरित्रनायिका मिस मार्गरेट भी थीं। आर्यभूमि और आर्यधर्म पर उनकी निरपेक्ष और निस्सीम भक्ति देखकर स्वामी विवेकानन्दजी ने भारतवर्षीय स्त्रियों की शिक्षा और अनाथसेवा का कार्य उन्हें सौंप दिया, और उन्होंने भी अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की। उनकी माता को कन्यावियोग से अत्यन्त दुःख हुआ, पर अपने पति की अन्तिम आज्ञा ध्यान में लाकर उसने भी अपनी कन्या को प्रेमपूर्वक लोकसेवा के लिए बिदा किया। उस दिन से अपनी कन्या की 'भक्तिदात्री' आर्यभूमि पर उसे भी प्रेम हो गया। विलायत गये हुए भारतीय सज्जनों के लिए 'विम्बल्डन' का उसका घर बहुधा स्वगृह का सा अनुभव दे रहा था।

मिस मार्गरेट नोबल सन १८९८ में पहले पहल कलकत्ते आईं। पर उस समय उनके स्वीकृत कार्य का प्रबन्ध ठीक ठीक नहीं जमा। उसी वर्ष के मई महीने से लेकर अक्टूबर तक उन्होंने स्वामीजी के साथ वायव्य-प्रान्त, कुमाऊं, काश्मीर, इत्यादि प्रदेशों में भ्रमण किया। इसके बाद सन १८९९ में वे गुरु के साथ स्वदेश लौट गईं। १९०२ तक वहीं रहीं। बाद को फिर अपना नियमित कार्य हाथ में लेने के लिए अपनी मानी हुई मातृभूमि में लौट आईं।

कलकत्ते आने पर आर्य स्त्रियों की दुर्दशा देखकर उनका चित्त बहुत व्याकुल हुआ। इसलिए इन स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करने का व्रत उन्होंने धारण किया। केवल वक्तृत्व के जोर पर, पोशाक बदलकर, बाह्य विचार फैलाकर, अथवा निज घरों में निरर्थक चिल्लाकर ही वे चुप नहीं रहीं—किन्तु उन्होंने यह निश्चय किया कि जिनके लिए हमें उद्योग करना है उन्हींके समान प्रथम हमें बनना चाहिए उन्हींमें से एक होकर हमें प्रयत्न करना चाहिए। अपनी कुल सम्पत्ति का त्याग करके और ब्रह्मचारिणी का कठोर-व्रत-पालन करने के लिए तो और भी कठोर—जीवनक्रम उन्होंने शुरू किया। उन्होंने कलकत्ते के उत्तर भाग में बसुपारा लेन में एक झोपड़ी भाड़े में लिया, और वहीं के आर्य स्त्रियों में बिल्कुल हिलमिल रहने का प्रयत्न करने लगीं। पहले पहल उन्हें जो कष्ट हुआ उसका वर्णन नहीं किया जाता ! उन्हें घर के अपने काम काज के लिए कोई नौकरानी भी नहीं मिलती थी ! पहले पहल कुछ दिनों तक उन्हें मार्जन करने का मौका ही

नहीं मिला, फल मूल खाकर ही वे अपने कष्टमय दिन आनन्द से काटने लगीं। जिन लोगों से उन्होंने सहायता के लिए याचना की उन लोगों ने भी अपना सन्देह स्पष्ट रीति से व्यक्त किया। लोग उनसे मिल्जुलकर चलने के लिए तैयार ही न थे! पर थोड़े ही दिनों में उनके सब बन्धुवर्गों को अपनी इस भगिनी—मार्गरेट— की भक्ति और कार्यनिष्ठा की दृढता पर विश्वास हो गया। प्रेम का आकर्षण ही ऐसा है, सेवा का गुण ही ऐसा है, कि आबालवृद्ध सब स्त्रिया धीरे धीरे उनपर भक्ति करने लगीं। पहले पहल छोटे छोटे बच्चे उनके माया पाश में फँसे और जैसे वे अपनी माता से ढिठाई का बर्ताव करते थे वैसेही इस भगिनी से भी करने लगे। मिस मार्गरेट ने उन्हें अपने पास रखकर और अपने प्रेम की अपूर्व वस्तु देकर उन्हें पढाने के लिए बालोद्यान पद्धति (किंडरगार्टन सिस्टेम) की एक पाठशाला खोली। इसके बाद स्वाभाविक ही उन बच्चों की माताएँ उनकी ओर आकर्षित हुई। तब उन्होंने प्रौढ स्त्रियों के लिए भी एक वर्ग खोल दिया। अनाथ और विधवा स्त्रिया उनके पास शिक्षा पाने के लिए आने लगीं। उनके लिए धीरे धीरे उस पुण्यशील गली में उन्होंने 'भगिनी आश्रम' स्थापित किया। अध्यापिकाएँ तैयार करना उनका हेतु था।

जिस गली में उन्होंने घर लिया था वह बहुत मैली कुचैली और आरोग्य विघातक थी। पर यह बात वहा के लोगों के ध्यान में भी कभी नहीं आती थी। पर मिस मार्गरेट को इस पर बहुत खेद हुआ, उन्होने वहां रहनेवाले लोगों को स्वच्छता रखने के लिए बहुत उपदेश किया। परन्तु जब उन्होंने देखा कि हमारे उपदेश की ओर इनका कुछ भी ध्यान नहीं जाता तब उन्होंने स्वय अपने हाथ में झाडू लेकर सफाई करना शुरू किया। इस पर लोग स्वय लज्जित हुए और स्वच्छता की ओर वे ध्यान रखने लगे। उन्हीं दिनों कलकत्ते में प्लेग दैत्य का प्रादुर्भाव हुआ। लोग भय से व्याकुल हो उठे। अनेक गाडियों और नौकाओं पर से लोग अन्य गावों को जाने लगे। उस समय मिस मार्गरेट ने तरुण बगाली स्वयसेवकों का समूह एकत्र करके, उनकी सहायता से, कलकत्ते के उत्तर भाग में अच्छी स्वच्छता कर ली। शहर का यह भाग अत्यन्त गन्दा था। उन्होंने अनेकों प्लेगाक्रान्त रोगियों की सेवा की, कितने ही प्लेगपीडित बालकों की मातृप्रेम से शुश्रुषा की। उस समय की उनकी जनसेवा पर विचार करने से मन विस्मय और कौतुक से मुग्ध हो जाता है। जिनके स्पर्शही से स्वय मृत्यु हो जाने का डर रहता है उनकी इस प्रकार सेवा करना कितने साहस का काम है! पर जिनका हृदय ईश्वरभक्ति से पूर्ण रहता है— जनसेवा ही जो अपना सच्चा धर्म समझते हैं, रोग भला उनका क्या कर सकता है! इस प्रकार मिस मार्गरेट ने जब आत्मनिवेदन कर दिया तब उन्हें लोग 'निवेदिता' कह कर पुकारने लगे।

जरासा भी दूसरे का दु ख देखकर भगिनी निवेदिता का हृदय पिघल उठता था। एक समय उन्होंने अपनी नौकरानी को शीत से कापते हुए देखा। बस, उसी क्षण उन्होंने अपना गर्म कपडा निकालकर उसे पहना दिया और आप स्वय शीत का क्लेश भोगने लगीं। भगिनी निवेदिता के जीवन में इसी प्रकार के सैकडों उदाहरण पाये जाते हैं।

इन सब प्रकार के श्रमों का परिणाम उनकी प्रकृति पर हुआ। दिन दिन उनका शारीरिक स्वास्थ्य बिगडने लगा। अन्त में वे बहुत ही बीमार हो गईं। उनके जीने की आशा भी न रही थी। पर आर्यभूमि के सौभाग्य से वे बच गईं। सब डाक्टरों ने उन्हें सलाह दी कि अब से ऐसा परिश्रम न करना चाहिए। पर उसका कोई उपयोग नहीं हुआ। थोडे ही दिनों में यह बात हमारी इस भगिनी के कान में पडी कि बारीसाल प्रान्त में अकाल ने बडी धूम मचा रखी है। लोगों का दु ख सुनकर भला उन्हें चैन कैसे पड सकती थी! सैकडों लोग बडे बडे चन्दे इकठे करने लगे। पर भगिनी निवेदिता ने इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया। किन्तु बारीसाल की प्रत्यक्ष दशा देखकर स्वय अपने हाथों से दुष्काल पीडितों की सेवा करने के लिए वे वहा चली गईं। वे बरसात के दिन थे। सारे मार्ग पानी और कीचड से भरे हुए थे। पर उसी दशा में कितने ही दिनों नगे पैरों गावँ गावँ घूमकर उन्होंने दीन दुबलों की सेवा चाकरी की। उन्होंने अपनी "पूर्व बगाल का अकाल और बाढ" नामक ग्रन्थ में इस प्रान्त की उस भयकर अवस्था का बहुत अच्छा चित्र खींचा है। इस बार उन्होंने जो कष्ट सहकर दीनदुखियों की सेवा की उसका वर्णन पढकर भक्ति से आप ही आप उनके सामने सिर नवाना पडता है। घटपटादि शाब्दिक वेदान्त की चक्की पीसते बैठने में धन्यता माननेवालों को इस सच्ची वेदान्तिन रमणी का वृत्त विशेष मनन करने योग्य है। हम वेदान्त 'बोलना' छोडकर जिस दिन उस का 'आचरण' करने लगेंगे उसीको सुदिन समझना चाहिए!

हमारे देश की विधवाओं की दशा बहुत ही शोचनीय है। वे अपनी विरक्तता के दिन सिर्फ अपने पेट भरने के लिए किसीके घर का काम काज करने में काटती हैं और कदाचित् पद पद पर क्लेश और अपमान सहती रहती हैं। इसकी अपेक्षा, यदि लोकसेवा करने में अपना समय काटने का वे निश्चय किया करें तो देश के अनेक दु खों के दूर करने का पुण्य उन्हें प्राप्त होगा' इतना ही नहीं बल्कि उस पवित्र कार्य से उनके दु सह जीवन का जो शान्ति मिलेगी वह अवर्णनीय है।

अस्तु। भगिनी निवेदिता की 'अह'—भावना बिलकुल ही निर्लीन हो गई थी। उनके उपर्युक्त लोकोत्तर कार्यों का परिमल यूरप और अमेरिका तक फैल गया। बडे बडे लोग उनके दर्शन के लिए उक्त देशों से आने लगे। भगिनी निवेदिता के दर्शन से और कार्य से तो उन्हें आनन्द होता ही था, किन्तु आर्यभूमि के प्रति भी उनकी पूज्यबुद्धि हो जाती थी।

इस भरतभूमि पर भगिनी निवेदिता का असाधारण प्रेम था। यह देश उन्हें अपना ही मालूम होता था। इस देश की आवश्यकताओं अथवा आर्य स्त्रियों के सम्बन्ध में वार्तालाप करते समय "भारतीय लोगों की आवश्यकताए" अथवा "भारतीय स्त्रिया" आदि परकीयता के शब्दप्रयोग न करते हुए वे सदा "हमारी आवश्यकताएँ" अथवा "हमारी स्त्रिया" कहा करती थीं। कलकत्ते की जिस गली में वे रहती थीं वह गली तो उन्हें इतनी प्रिय हो गई थी कि उसे छोडकर दूसरी जगह जाने में उन्हें बडा दु ख होता था। बरसात के कष्ट सहकर बारीसाल के अकालग्रस्तों की सेवा करने के बाद कलकत्ते आकर वे बहुत बीमार हो गईं। उस समय उनके विलायत के और यहा के हितचिंतकों ने उस मैली गली को छोडकर दूसरी जगह रहने के लिए बडा आग्रह किया, पर उन्होंने एक नहीं सुनी और यही उत्तर दिया कि "मैं इसी गली की पोष्य कन्या हू, अतएव अपनी इस माता को छोडकर अब मैं कहीं भी रहने न जाऊगी"।

इस बीमारी के अच्छे होने पर न्यूयार्क और लडन की दो ग्रन्थ प्रकाशक मडलियों की प्रार्थना से उन्होंने भारत के विषय में दो बडे बडे ग्रन्थ लिखने का प्रारम्भ किया। कई बार बीमार होने से उनका शरीर कुछ तो यों ही निर्बल हो गया था, तिस पर भी अध्यापन आदि कार्यों में वे परिश्रम करती ही रहती थीं, अब ग्रन्थलेखन का परिश्रम उसमें और भी बढ गया। इन कारणों से उनकी प्रकृति एकदम बिगड गई। तब अपने बन्धुवर्ग के आग्रह से हवा बदलने के लिए वे दार्जिलिंग चली गईं। वहा जाने पर उनका स्वास्थ्य ठीक करने के लिए कई अनुभविक और विद्वान् डाक्टरों ने तन मन से उपचार किया, पर ईश्वर को कुछ और ही मजूर था, सब मानवी प्रयत्न विफल हुए, और उनका निर्मल जीवात्मा १३ अक्टूबर १९११ को परमात्मा में विलीन हो गया। दार्जिलिंग जाने के कुछ दिन पहले बौद्ध धर्मपुस्तकों से चुन चुनकर उन्होने एक प्रार्थनापुस्तक प्रसिद्ध की थी। और ससार भर के अपने बन्धुवर्गों को भेट के तौर पर उसकी एक एक कापी भेज दी थी। कौन कह सकता है कि इस पुस्तक के रूप से जगत् को उन्होंने अपना अन्तिम सन्देशा ही नहीं भेजा! रुग्ण शय्या पर पडे हुए उन्होंने बराबर उसका पारायण जारी रक्खा था, और अपना ध्यान तथा अपने कान उसी पर लगा रक्खे थे। इससे सहज ही पाठकों को मालूम हो जायगा कि भगवत्प्रेम से उनका हृदय कैसा भर गया था।

हम ऊपर कह चुके हैं कि इस देश की स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करके उनकी उन्नति करने के लिए ही उन्होंने अपना सब समय अर्पण कर दिया था। स्त्रीशिक्षा के सम्बन्ध में विशेष कर भारतीय स्त्रियों की शिक्षा पर उन्होंने समाचारपत्रों और मासिकपत्रों में अनेक लेख भी लिखे हैं। वे लेख उन लोगों के पठन और मनन करने योग्य हैं जो लोग अपनी स्त्रियों को अँगरेजी पद्धति पर शिक्षा देने के पक्षपाती हैं। भगिनी निवेदिता जैसी लेखनपटु थीं वैसी ही व्याख्यान देने में भी अलौकिक थीं। हमारे देश की विद्यमान और भावी दशा के सम्बन्ध में जो लेख उन्होंने अनेक पत्रों में लिखे उन्हें जो कोई आखें खोलकर पढेगा उसको वे अवश्य ही अच्छे मार्गदर्शक होंगे।

सिस्टर निवेदिता स्वय निर्धन ही थीं, इँगलैड की एक मानी हुई माता—धर्ममाता से उन्हें कुछ द्रव्य की सहायता मिलती थी, इसके सिवाय अपने लेखन व्यवसाय से वे कुछ प्राप्त करती थीं। इतनी प्राप्ति से वे स्वय अपनी सादी चाल से रहकर अपनी स्थापित की हुई पाठशाला का भी खर्च चलाती थीं। इसके सिवाय अपने आवश्यक खर्च में भी कुछ कम करके वे भूखों को अन्न और उघडों को कपडा देती थीं। उन्होने तीन चार सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। भगिनी निवेदिता की इच्छा से अब इन पुस्तकों का उत्पन्न उनकी स्थापित की हुई स्त्रीपाठशाला में खर्च हुआ करेगा। उनकी लिखी हुई पुस्तक, जो प्रकाशित होनेवाली है, जान पडता है, बहुत ही लोकप्रिय होंगी।

इस अपने प्रिय देश के सम्बन्ध में उन्होने सिर्फ दयामिश्रित शाब्दिक सहानुभूति के कर्ण मधुर फौवारे कभी नहीं छोडे, क्योकि उनके मन में इस देश के विषय में परकीयता की गन्ध भी न थी। वे हममें से ही एक बन गई थीं— वे इस देश के लोगों में पूर्णतया मिल गई थीं— और इसी कारण इस देश में रहनेवाले अनेक अगरेज लोग उनका उपहास करते, पर भगिनी निवेदिता ने कभी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। "पीछे लोग क्या कहते हैं"

इसका विचार करने के लिए उन्होंने कभी अपने काम में विराम नहीं किया। स्पष्ट ही है, कि विमलभाव के साथ स्वीकृत कार्य से जिनकी वृत्ति तादात्म्य पा जाती है उसके मन में कुत्सित अतएव अज्ञान जनों की निंदा का भय कैसे प्रवेश कर सकता है ?

स्त्री शिक्षा प्रचार के साथ साथ भारत में एकराष्ट्रीयता करने का पवित्र व्रत भी उन्होंने स्वीकार किया था। उनका मत था कि "देशहितैषिता ही धर्म है और बुद्धि की जिस दशा से अपने अज्ञान और दीन हीन भाइयों के हितार्थ आत्मत्याग करने की स्फूर्ति उत्पन्न होती है वही ज्ञान है।" व अपनी स्फूर्तिदायक वाणी से अपने ये विचार तरुण बंगालियों के सामने सदा प्रकट करती थीं। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बंगाल में जो अधिक जागृति देख पड़ती है उसका बहुत सा श्रेय सिस्टर निवेदिता की वक्तृता को भी दिया जा सकता है।

यद्यपि वे रामकृष्ण मिशन का कार्य पूर्ण करने में लगी थीं, तथापि बौद्ध धर्म पर भी उनकी बड़ी भक्ति थी। वे बौद्ध धर्म को आर्य धर्म से भिन्न नहीं मानती थीं। उनका कथन है, "रामकृष्ण मिशन जिस प्रकार आर्य धर्म के अन्तर्गत है उसी प्रकार बौद्ध धर्म भी उसमें अन्तर्गत है। मैं अपने गुरु को जिस प्रकार सर्वश्रेष्ठ साधु मानती हूं उसी प्रकार बुद्ध के शिष्य उन्हें सर्वश्रेष्ठ साधु मानते, और उनके उपदेशानुसार चलते थे। उस समय आर्य साधुओं में बुद्धदेव बहुत ही श्रेष्ठ थे। उनके अनुयायी आर्यसमाज, अर्थात् हिन्दु समाज से कभी अलग नहीं हुए। उनका आचरण अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक शुद्ध और पवित्र था।"

भारत की प्रत्येक पौराणिक वस्तु सिस्टर निवेदिता को बहुत ही पूज्य और प्रिय मालूम होती थी। जब कि वे बुद्ध गया में रहती थीं तब एक दिन सायंकाल को वे अपने साथियों से बोलीं, "आओ चलें हम सब लोग आज सुजाता के घर का स्थल देख आवें। अब वहां प्राचीन कुछ अवशिष्ट नहीं है, तथापि उस जगह की हरी घास भी पवित्र है। सुजाता सचमुच पुण्यवान् थी! उसने योग्य समय में महाराज बुद्ध की सेवा की। बुद्ध जी जब क्षुधा से व्याकुल हुए तब उसने उन्हें अन्नदान किया।" एक बार जब वे खुदाबख्श की लाइब्रेरी देखने गईं तब वहां उन्हें शाहजहां के हस्ताक्षर दिखाए गए। उन हस्ताक्षरों के स्पर्श करने की उन्होंने अनुमति चाही। अनुमति मिलने पर उन अक्षरों पर भगिनी निवेदिता ने अपना हाथ रक्खा और क्षणभर के लिए नेत्र बन्द कर के वे ध्यानस्थ सी हो गईं। इसी तरह नालन्द की एक प्राचीन ईंट और सारनाथ के पुराने पत्थर का एक टुकड़ा भी वे अपने साथ ले आईं और उन दोनों वस्तुओं को उन्होंने बड़ी भक्ति से अपने वाचनमन्दिर में रक्खा।

यह देखकर कि भारतीय लोग प्रत्येक बात में परकीयों का अनुकरण करते हैं, वे बहुत दुःखित होती थीं।

शिक्षा विषय पर उन्होंने एक बार कहा – "भारत के सामने आज जो सब से महत्व का प्रश्न विचार करने के लिए उपस्थित है वह शिक्षा का है! सच्ची शिक्षा–राष्ट्रीय शिक्षा–कैसे दी जाय? युरोपियनों की निस्तेज प्रतिमाएँ न बनाकर तुम आर्यमाता के सच्चे सुपुत्र प्राचीन राजर्षियों और ब्रह्मर्षियों के समान तेजस्वी पुत्र– कैसे तैयार करोगे? अन्तःकरण की शिक्षा, आध्यात्मिक शिक्षा, मस्तिष्क की शिक्षा, सारांश उच्च प्रकार की धार्मिक और नैतिक शिक्षा तुम्हें आवश्यक है। अर्वाचीन सभ्यता और प्राचीन भारतीय सभ्यता पर पूर्ण विचार कर के तुम्हें शिक्षा दी जानी चाहिए। आक्सफर्ड और केम्ब्रिज के छात्रालयों और कालेजों की सिर्फ नकल करने से तुम्हारे देश को कुछ भी लाभ नहीं होगा, प्रत्युत, इस देश की स्वाभाविक दशा ही कुछ ऐसी है कि, पश्चिमी देशों की नकल से उत्पन्न हुए युनिवर्सिटियों के चाकों में तुम्हारे बालकों की बुद्धि और आत्मप्रत्यय का ऐसा चकनाचूर उड़ जायगा कि फिर तुम्हारी जाति का पता भी नहीं चलेगा। ऐसे छात्रालयों में उनकी बुद्धि का स्वाभाविक और पूर्ण विकास कभी नहीं होगा।"

एक बार नवयुवकों को सम्बोधन कर के वे बोलीं – प्यारे तरुण पुरुषो! किसी बात में भी तुम परकीयों से पराजित मत हो। कोई भी उद्योग हो, जिसे तुमने हाथ में लिया है, उसमें सब से आगे बढ़ने का प्रयत्न करो। परकीयों के पीछे मत पड़ो और न उनका अनुकरण करो।"

हमारी स्त्रियों के सम्बन्ध में एक बार उन्होंने कहा – तुम्हें अपनी स्त्रियों के सुगृहिणी, सुपाचिका और सुधात्री बन जाने ही पर सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। ये सब गुण अच्छे हैं, पर यह उन्नति की पराकाष्ठा नहीं है। यदि तुम अपनी स्त्रियों को सच्ची सहधर्मचारिणी बनाना चाहते हो तो तुम उन्हें वह योग्यता प्रदान करो जिससे वे तुम्हें तुम्हारे प्रत्येक कार्य में सहायता दे सकें। भारतीय समाज में स्त्रियों पर पुरुषों का जो अनुचित प्रभुत्व और निष्ठुरता हो रही है उसे सोच कर मैं स्तम्भित ही हो जाती हूं। यह अत्यन्त भयंकर है। इस शोचनीय दशा से स्त्रियों का बुद्धिसामर्थ्य नष्ट हुआ जाता है। बहुत बार मेरे मन में ऐसा आता है कि यदि भारतीय स्त्रियां मन की कुछ कम कोमल होतीं और कुछ कम अच्छी होतीं तो इससे भारतीय पुरुष जाति का सच्चा कल्याण हुआ होता।"

समाज सुधार के विषय में एक बार उन्होंने कहा – "हमारे समान जब कोई मनुष्य तुमसे कहता है कि तुम्हारे देशसुधार और राष्ट्रोन्नति के ये मार्ग हैं और तुम इस मार्ग से जाओ तब तुम कहते हो कि यदि हम ऐसा करेंगे तो लोग हमसे रोटी बेटी का व्यवहार न करेंगे। पर इस पर मेरा यह उत्तर है कि इस प्रकार के जिन लोगों को तुम डरते हो वे मानवी प्रगति के भारी शत्रु हैं, उन्हें तुम अशिक्षित, नीच और देशद्रोही समझो। अतएव ऐसे लोगों ही के साथ भोजन आदि का व्यवहार रखना तुम्हें लाञ्छनास्पद मानना चाहिए। तुम्हें यह अच्छी तरह जानना चाहिए कि ऐसे लोगों में विवाह शादी करने से अपना भी रक्त दूषित होता है!"

भगिनी निवेदिता ने जब यह देखा कि हम जीजान तोड़ कर अपने इन सब भाइयों को सदुपदेश कर रही हैं और इनके मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, चिकने घड़े पर पानी डालने के समान हाल होता है, तब उनका हृदय एक दिन बहुत व्याकुल हुआ। उस दिन रात भर उनके आंसू नहीं बन्द हुए। उस समय उन्होंने अपने मुख से जो दुःख के वचन निकाले उन्हें यहां उद्धृत करके हम यह लेख पूरा करते हैं –"हम सफलता नहीं हुई, हमारा यह देश अपनी कुम्भकर्णी निद्रा से कुछ जगा नहीं, इसमें फिर कुछ चेतना उत्पन्न नहीं हुई। सब लोग मेरा कहना भर तो सुन लेते हैं, पर अपने पूर्वक्रम में रत्ती भर भी फर्क करना मानो उन्हें शपथ है! हमारे हाथ से कुछ कार्य नहीं हुआ। आर्यभूमि का सच्चा तेज– जिसने किसी समय इसे सारे जगत् का भूषण और एशिया महाद्वीप का प्राण बना रक्खा था वह ज्वलन्त तेज– अभी तक फिर नहीं आया। जिस चेतनाशक्ति ने हमारे पूर्वजों का वैभव बढ़ाया, जिस शक्ति ने किसी समय मानवी सुधार और मानवी ज्ञान की वृद्धि के लिए हमारे पूर्वजों को प्रसिद्ध कर रक्खा वह शक्ति– वह चेतनाशक्ति–क्या अब कभी इस राष्ट्र में उत्पन्न होगी? वह तेज, वह चैतन्य, अब क्या फिर लौटेगा?"

---

# स्वामी रामतीर्थ ।

(Great men are the living fountain which it is good and pleasant to be near, the light which enlightens, which has enlightened the darkness of the world, and this not as a kindled lamp merely, but rather as a natural luminary shining by the gift of the heaven, a flowing light fountain of native original insight and heroic nobleness; in whose presence souls feel all is well with them.)



स्वामी रामतीर्थ ।

इसमें कुछ भी संशय नहीं कि सन्तों के चरित्रों में अमृतरस से भी अधिक मिठास रहता है। जितनाही उसका गान किया जाय उतना ही थोड़ा है। सतचरित्र गान करते हुए मन कभी तृप्त ही नहीं होता ! ज्यों ज्यों अधिक चखते हैं त्यों त्यों अधिक मिठास मालूम होता है। अतएव आज हम एक ऐसे महात्मा का संक्षिप्त जीवन-चरित अपने प्यारे पाठकों को सुनाते हैं जिसने अपने तेज से, इसी देश को नहीं किन्तु, जापान और अमेरिका आदि स्वतन्त्र देशों को भी चकित किया है। ऐहिक वासनाओं के जाल से छूटकर सच्चे कर्तव्य का ज्ञान कैसे प्राप्त करना चाहिए ? जीवन का सच्चा सार्थक किसमें है ? मतमतान्तरों के झगड़े में न पड़कर, मन की समता कायम रखते हुए, अपना मार्ग अचूक रीति से किस प्रकार ढूँढ़ लेना चाहिए ? आदि अनेक प्रश्नों का हल करना ही महात्मा लोगों के जीवन का मुख्य उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य उपर्युक्त महात्मा ने बड़ी खूबी के साथ पूर्ण किया है।

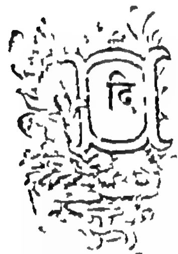
जो वीरों की भूमि है, पुरुषार्थ का प्रदेश है, जो भूमि कुरुक्षेत्र के अस्तित्व से भारतभूमि का महत्व दिखलाती है, हिमालय के वृक्षों से, ऋषियों के उच्छ्वासन से खेलती हुई पवित्र वायु जहां प्रथम संचार करती है उस पांचाल प्रदेश में गुजरानवाला जिले के मरालीवाला नामक गावँ में स्वामी रामतीर्थ का जन्म हुआ ! कोई कोई इन्हें महात्मा तुलसीदास जी के ही वंश में उत्पन्न हुआ मानते हैं। वेदान्त को घटपट के तर्कट से छुड़ा कर अध्यात्मिक कायदों की प्रस्थापना करनवाला यह मनु, यह तेजोभास्कर, यह आर्यभूमि का पुण्य, सन् १८७३ के ८ अक्तूबर के दिन, फलित हुआ ! यह आर्य भूमि का अहोभाग्य ही समझना चाहिए ! फिर इसकी उन्नति की दृढ़ आशा हम क्यों न करें ? स्वामीजी का मूल नाम गोस्वामी तीर्थ राम था। कहते हैं कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात !" इसी के अनुसार इस बालक के अलौकिक गौरव का सूक्ष्म प्रवाह बचपन ही से झिरपने लगा था ! प्रातःकाल ही का सूर्य क्यों न हो, पर उसका तेज थोड़े ही छिप सकता है ! जब इनकी प्राथमिक शिक्षा मरालीवाला में पूर्ण हो चुकी तब इनके पिता हीरानन्दजी ने आगे की शिक्षा पाने के लिए गुजरानवाले को भेज दिया। रामतीर्थजी की माता बालपन ही में मर गई थी; इस लिए उनके उन्नत होने में माया के विघ्न विशेष आने की सम्भावना नहीं थी। गुजरानवाला में आतेही उनके भावी जीवनक्रम की नींव जमने लगी ! भौतिक शिक्षा प्राप्त करने के साथ ही साथ आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने का भी उन्हें अच्छा मौका मिला ! गुजरानवाला में उस समय धन्ना भगत नामक एक सत्पुरुष रहते थे। रामतीर्थजी अपने गावँ मरालीवाला से आकर इन्हीं धन्ना गुरू के पास रहने लगे ! प्रथम तो रामतीर्थ स्वयं ही लोकोत्तर बुद्धि का, असामान्य शान्तवृत्ति का, पूर्ण पवित्र आचरण का, शुद्ध शील का और निस्स्वार्थ प्रेमी बालक था, फिर उसमें भी उसे धन्ना गुरू के समान सन्त का सहवास मिल गया ! फिर यह कुन्दन क्यों न सुन्दर देख पड़े ? कोहनूर तो यह पहले ही से था और फिर कुन्दन से जड़ा गया ! रामतीर्थजी का जीवन यहीं से परिवर्तित होने लगा ! सन्तों का सहवास ! अरे, सन्तों का सहवास क्या नहीं कर सकता ? नीच जीव भी सन्तों के सहवास से शुद्ध होते हैं—पतित लोग पावन होते हैं ! फिर स्वामीजी के समान अद्वितीय पुरुष का तेज यदि सारे संसार में छा रहा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? रामतीर्थजी, अपना स्कूल का अभ्यास करने के बाद जो समय मिलता उसमें धन्ना गुरू के पास बैठकर उनके उपदेश सुना करते थे ! इन्हीं उपदेशों से उनका मन आध्यात्मिक मार्ग में तैयार हुआ ! बाद को प्रवेशिका की परीक्षा उत्तीर्ण हो जाने पर धन्ना गुरूजी ने उन्हें कालेज में शामिल होने के लिए लाहोर भेज दिया। पिता की विशेष सम्मति न थी। पर परमेश्वर की इच्छा दूसरी थी ! देखो कैसी विचित्रता है ! जान पड़ता है कि ईश्वरी इच्छा से प्रेरित होकर धन्ना गुरुजी ने उन्हें इसी लिए लाहोर भेजा कि जिससे स्वामीजी अमेरिका को पावन करके उसे सच्चे धर्म का ज्ञान करा दें और जो लोग भौतिक सुख के मद में अंधे हो रहे हैं उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाश से चकाचौंध में डाल दें ! कालेज में जाने पर वे अपना अभ्यास तो ठीक ठीक करतेही थे, इसके सिवा वे धन्ना गुरू का उपदेश भी भूले न थे ! पश्चिमी सुधार की भड़कीली सभ्यता का गर्व उन्हें जीत नहीं सका ! वे यथाक्रम अपनी सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए और बी० ए० की परीक्षा में तो वे सारी पंजाब-युनिवर्सिटी में प्रथम रहे ! बाद को एम० ए० की परीक्षा देकर फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में अध्यापक की नौकरी कर ली ! गणितशास्त्र उनका प्यारा विषय था और यही विषय लेकर वे एम० ए० में उत्तीर्ण हुए थे ! कुछ दिन उत्तम शिक्षक बनकर उन्होंने नौकरी की, इसके बाद उनकी इच्छा हुई कि अब 'रैंगलर' हो आना चाहिए; पर ईश्वर की इच्छा दूसरी ही थी—वह चाहता था कि अंकों को तोड़मोड़ करनेवाले रैंगलर रामतीर्थ को कहीं किसी कालेज में सड़ते रहने की अपेक्षा इसे वेदान्त का ऐसा रैंगलर बनानाही उत्तम होगा जो, एक युनिवर्सिटी में नहीं, किन्तु संसार की युनिवर्सिटी में, कुछ लोगों को नहीं, किन्तु सारे जगत् को सच्चे तत्व का ज्ञान करा दे ! और ऐसाही हुआ ! रैंगलर का परवाना उन्हें नहीं मिला ! इस काम में उनकी निराशा अवश्य हुई, पर निराशा से ही चित्त अन्तर्मुख होता है, अतएव, तब से आत्मसंशोधन की ओर उनका ध्यान और भी अधिक लगा। उनकी सम्मति थी कि हमारे लोग, दूसरों पर अवलम्बित रहकर उत्तम भोजन चाहे न करें, किन्तु अपने कष्ट से धन प्राप्त करके, सादगी के साथ रहकर, सूखी रूखी रोटी ही का भोजन करें ! इसके अनुसार थोड़ासा धनसंग्रह करके उन्होंने अपना रास्ता साफ किया ! सन् १८९९ के अन्त में वे नगराज, पिता हिमालय की ओर चलते हुए ! इस समय उनकी अवस्था सिर्फ २६।२७ वर्ष ही की थी और उनके दो लड़के तथा एक लड़की थी ! एक वर्ष की ही अवधि में हृषीकेश के पास, ब्रह्मपुरी के वन में, स्वामीजी को आत्म दर्शन हुआ ! और जो लाहोर के प्रिय शिष्यों का गुरु, धन्ना गुरू का चेला, कालेज के प्रोफेसरों और प्रिन्सिपालों का प्यारा शिष्य इसके पहले प्रोफेसर रामतीर्थ एम० ए० के नाम से प्रसिद्ध था वह अब आगे चलकर, सिर्फ लाहोर ही में नहीं किन्तु सारे जगती-तल पर स्वामी रामतीर्थ एम० ए० के नाम से सब के सम्मुख उपस्थित हुआ। सब का गुरू बना ! सबों ने—क्रिश्चियनों ने, मुसलमानों ने, जापानियों ने—उसे अपना कहा ! जिस माता के गर्भ से यह हीरा उत्पन्न हुआ उसकी कुक्षि को धन्य है, धन्य है !

स्वामी होने पर स्वामी रामतीर्थ भारत में बहुत दिन नहीं रहे। सन् १९०२ के प्रारम्भ में वे सफर के लिए निकले और तीन वर्ष

तक इजिप्त, जापान और अमेरिका आदि देशों में घूमकर उन्होंने वेदान्त सूर्य के किरण प्रसूत किये। लोगों में चैतन्य भर दिया। और पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द की ही तरह अलौकिक यश सम्पादन करके अपने नाम का जयजयकार सुनते हुए, सहस्त्रों लोगों के मस्तकों को अपने चरणकमलों की धूल से पावन करते हुए, अगस्त सन १९०६ में, इस आर्यभूमि को लौट आये। इस प्रवास में उन्होंने ऐसा कुछ अप्रतिम कर्तव्य कर दिखाया कि जिसका वर्णन करने के लिए एक अलग ग्रन्थ लिखना पड़ेगा। भारतवर्ष की ओर उन्होंने सारे जगत का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने सम्पूर्ण संसार को यह सन्देशा सुना दिया कि —"भौतिक सुख से तुम चाहे जितना मतवाले हो जाओ, अहम्मन्यता तुम्हारी चाहे जितनी बढ़ जाय; पर आर्यराष्ट्र मरा नहीं—और नहीं कभी मरेगा। वह जीवित है। सारे जगत् को बाट देखना पड़ा अवश्य है। ध्यान में रक्खो कि हम एक बात में सब से पहले हो आगे हैं।" और उन्होंने पश्चिमी लोगों के मुख से इस प्रकार के पश्चात्ताप के वचन कहला लिये कि "सब्य जगत ज्ञान का मार्ग भूला हुआ है क्या कि इस ज्ञानक्षेत्र में आज तक एक भी रामतीर्थ नहीं पैदा हुआ!" पर, प्रभो! तेरी महिमा भी अतर्क्य है! स्वामीजी के स्वदेश में पधारने के बाद ही सितम्बर का महीना व्यतीत हुआ और अक्तूबर की पहली आई! दिशाएं धुँधली देख पड़ने लगीं! तारागण टूटने लगे! बिजली कुसमय में चमकने लगी! आकाश फटने लगा! तम सकुलता अधिक घिरने लगी! घुग्घुओं का घूत्कार दिन में सुनाई देने लगा! पन्द्रह सोलह तारीख तक किसी न किसी तरह दिन कटे! सत्रहवीं तारीख आई और देखते क्या हैं कि एक हाथ दूसरे पर रक्खा हुआ है, दोनों हाथ छाती पर हैं, आसन लगा हुआ है, प्रणव का उच्चार करते समय उनका मुखकमल जैसा सदा रहता था वैसा ही इस समय भी है—इस प्रकार, स्वामी 'राम' के निर्जीव कलेवर का अभद्र दृश्य आर्य-राष्ट्र को निज नेत्रों से देखना पड़ा! पाताल प्रदेश की भूमि-विह्वलता सम्पूर्ण आर्यमाता—फूट फूट कर रोने लगी! केलिफोर्निया चीखकर धरती पर गिर पड़ी! सेन्फ्रान्सिस्को को तार पढ़ते ही मूर्छा आगई! इमर्जेन्ट हैड रुण्ड आंसू बहाने लगे! अमेरिका के अकेडमी आफ सायन्स का भवन भयानक सा भासने लगा! सारा संसार सिसक सिसक कर रोने लगा!! इस प्रकार १७ अक्तूबर सन् १९०६ को स्वामी राम का पञ्चभौतिक शरीर जल का जल में मिल गया, पर आपकी कीर्ति कौमुदी तब तक इस संसार में अजेय बनी रहेगी जब तक वेदान्त का नाम 'अमर' रहेगा!

---

# दिल्ली का इतिहास।



दिल्ली की स्थापनाः—सारे भारतवर्ष में किंवहुना सारे पृथ्वीतल पर दिल्ली ने जितनी राजकीय क्रान्तियां देखी हैं उतनी शायद ही किसी शहर ने देखी होंगी। पश्चिमी राष्ट्रों की राजकीय क्रान्तियों के प्रसिद्ध स्थान एथेन्स, रोम, कार्थेज, पेरिस, आदि हैं। उसी प्रकार एशिया महाद्वीप के बाबिलोन, बगदाद, परसपोलिस, नानकिंग, पेकिंग इत्यादि शहर राजकीय दृष्टि से महत्व के हैं। परन्तु इन सब शहरों ने उत्कर्ष और अपकर्ष के सुख-दुःख का अधिक से अधिक एक ही दो बार अनुभव किया है। परन्तु दिल्ली शहर ने ऐसे स्थित्यन्तर कितनी बार देखे, इसका पूरा पूरा पता इतिहासकारों को भी नहीं लगता। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का जिस काल से लेकर विश्वसनीय ज्ञान उपलब्ध होता है उस काल से लेकर आज पर्यन्त किसी समय भी ऐसा नहीं हुआ कि दिल्ली नगर का वैभव पूरा लोप हो गया हो, अथवा आर्यावर्त को उसका पूर्ण विस्मरण हो गया हो। "नीचै र्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" के न्याय से अनन्तकाल की इस प्राचीन राजधानी की उन्नत-अवनत-अवस्था बराबर हो ही रही है। सारांश जिस प्रकार आर्य धर्म आज तक अनेकों प्रकार के धक्कों से पार पड़कर 'सनातन' नाम धारण करके अटल हो रहा है उसी प्रकार यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं कि दिल्ली नगर भी भरतखण्ड की 'सनातन राजधानी' है।

दिल्ली को यह महत्व प्राप्त होने का कारण उसका विशिष्ट स्थल-माहात्म्य ही है। भारत के उत्तर में हिमालय के समान दुर्लंघ्य पहाड़, पूर्व एवं दक्षिण तथा पश्चिम की ओर अपार सागर होने के कारण इस देश पर स्थल-मार्ग से परचक्र का आक्रमण होने के लिये सिर्फ एक ही मार्ग है—और मलाबार के किनारे पर पश्चिमी व्यापारियों के जहाज आ लगने के पहले इस देश पर जितने लोगों ने आक्रमण किया वे सभी खैबर की घाटी से हो कर आये। खैबर घाटी पार करके और पंजाब की पांच नदियां पार करने के बाद फिर यमुना नदी तक सब सपाट प्रदेश है। यहां यमुना के किनारे प्राचीन इन्द्रप्रस्थ अथवा अर्वाचीन दिल्ली नगर बसा है। इतएव उसके उत्तर की ओर पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में यमुना नदी, दक्षिण में राजपूताना का वालुकामय प्रान्त है—और है। पश्चिम की ओर रणभूमि के योग्य सपाट मैदान भी है। भारतवर्ष जीतने के मनोरथ से प्रवृत्त होने के लिए पहला द्वार खैबर की घाटी है और लाहौर शहर उसका महाद्वार है। उसके आगे का सपाट प्रदेश राजाङ्गण है। दिल्ली शहर दालान है और पीछे के मकान पूर्व भाग के अन्य प्रान्त मध्यभाग और अन्तर्भाग आदि हैं। इस कल्पना पर ध्यान रखने से यह प्रश्न सहज ही हल हो जाता है कि घर के स्वामी की बैठक दिल्ली ही में क्यों है और घर के स्वामित्व के लिए जो लड़ाइयां हुईं वे कुरुक्षेत्र ही में क्यों हुईं। इन रीति से यह स्थान सब प्रकार से सुभीते का देखकर ही प्राचीन काल के भूपतियों ने इन्द्रप्रस्थ नगरी में ही अपने सिंहासन की स्थापना की।

पाण्डवों के समय के पहले बहुत वर्षों तक हस्तिनापुर में राजधानी थी परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने जब से इन्द्रप्रस्थ को अपने मयासुर-निर्मित राजभवन और राजसूय यज्ञ की सुन्दरता तथा पवित्रता से पूर्ण किया तबसे हस्तिनापुर फीका पड़ गया। बाद को कुछ काल तक पाण्डव वनवास में रहे, इस कारण यद्यपि इन्द्रप्रस्थ की शोभा क्षीण अवश्य हो गई, तथापि भारती युद्ध में दुर्योधन आदि कौरवों का निपात करके धर्मराज के सिंहासनासीन होने पर इस नगरी का भाग्य फिर अवश्य ही उदय हुआ होगा। महाराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक इन्द्रप्रस्थ में न होकर हस्तिनापुर ही में हुआ और इसके बाद उनके वंश में राजा परीक्षित के समय में भी हस्तिनापुर ही राजधानी का शहर था। तथापि अर्जुन ने यादव वंशी अनिरुद्ध के लड़के वज्र को द्वारका से लाकर इन्द्रप्रस्थ नगरी में उसका राज्याभिषेक करके सौराष्ट्र का राज्य उसे सौंप दिया। इसके बाद इस नगर का स्वामित्व यादववंशियों के हाथ से निकलकर कुरुकुल के हाथ में कब से और किस कारण से गया इसका पता नहीं लगता। तब से लेकर अर्वाचीन काल तक का इन्द्रप्रस्थ का इतिहास प्रायः लुप्तप्राय हो गया है।

परन्तु इन्द्रप्रस्थ नगरी को पौराणिक काल में जो महत्व प्राप्त हुआ था वह केवल वहां के बाह्य सौन्दर्य पर से नहीं प्राप्त हुआ था। प्रत्येक आर्य को, 'इन्द्रप्रस्थ' नाम कान में पड़ते ही, जो अभिमान मालूम होने लगता है उसका कारण यह नहीं है कि वहां मयसभा की अद्भुत कारीगरी का दृश्य था, अथवा इस अभिमान का कारण वहां के राजसूय यज्ञ आदि के समारम्भों का वर्णन भी नहीं है, किन्तु इसका कारण कुछ और ही है। इन्द्रप्रस्थ और उसके आसपास का प्रदेश, आर्यावर्त के अत्यन्त पूज्य युधिष्ठिर, आदि राजर्षियों का निवासस्थान था, और निमित्तमात्र से महायोगी श्रीकृष्ण, नारद मुनि और भीष्माचार्य, इत्यादि ने यहां उन्हें धर्मोपदेश किया। इन्हीं कारणों से इन्द्रप्रस्थ नगरी अद्यापि सब का चित्त आकर्षण कर रही है। इसी स्थल में महायोगीश्वर श्रीकृष्ण-द्वारा प्रतिपादित की हुई गीता मनुष्यमात्र को अपना कर्तव्यकर्म करने के लिए अनन्त रीति से प्रोत्साहित कर रही है—और करती रहेगी। नारदमुनि ने 'कच्चित' प्रश्न से धर्मराज को जो राजनीति का उपदेश किया है और भीष्मपितामह ने शरपञ्जर में पड़े हुए निर्माणकाल में जो राजधर्म का उपदेश किया है उनका विस्तारभय से हम यहां सिर्फ उल्लेख मात्र ही करते हैं। इन उपदेशों की योग्यता ऐसी ही है, कि चाहे जो समय हो राजनैतिक क्षेत्र में पड़नेवाले प्रत्येक पुरुष को इन उपदेशों का पारायण कर लेना चाहिए। प्रजा के प्रति राजा का कर्तव्य क्या है, प्रजा को राजा से कैसा बर्ताव करना चाहिए, लोगों की स्थिरता और चञ्चलता के क्या कारण हैं, उनके लक्षण क्या हैं, इत्यादि अनेक महत्व के प्रश्नों पर उनमें मार्मिकता के साथ ऊहापोह किया गया है अतएव राजधर्म का यह एक विमल आदर्श ही बन गया है। इस आदर्श के अनुसार बर्ताव करनेवाले अनेक राजा इसी इन्द्रप्रस्थ के आसपास हो गये हैं इसी लिए इस कुरु-क्षेत्र को इतना महत्व और पवित्रता प्राप्त हुई है। परन्तु भरतखण्ड के आज तक के इतिहास पर से स्पष्ट जान पड़ता है कि केवल सत् नृपतियों के निवास के कारण प्राप्त हुई पवित्रता पर्याप्त नहीं है उसमें दुष्टों के शासन का मेल मिले बिना भारतीय वर्णन पूरा नहीं होता—यही समझकर जान पड़ता है कि ईश्वर ने यह कुरुक्षेत्र-भूमि 'विनाशाय च दुष्कृताम्' बना रक्खी है। ऋग्वेद के प्रख्यात राजा सुदास ने इन्द्र और वरुण की कृपा से इसी कुरुक्षेत्र में दस अनार्य राजाओं को पूर्ण रूप से ... आर्यों का धर्मोत्थान निर्णय किया। मदोन्मत्त राजा वेन को पाप का प्रायश्चित्त यहीं मिला। सुरथेन्द्र-नन्दिनी ने

रजा विश्वामित्र की खबर यहीं ली। पितृवध के कारण क्रुद्ध होकर परशुराम ने इसी जगह क्षत्रियकुलों का विध्वन्स करके उनके रक्त से पाँच तालाब भर दिये। रामायणकाल में जब मधु दैत्य का पुत्र लवणासुर गोब्राह्मणों को अत्यन्त पीडित करने लगा तब श्रीरामचन्द्र ने अपने भाई शत्रुघ्न के द्वारा लवणासुर का वध कराकर शत्रुघ्न को इसी प्रदेश में मथुरा नगरी में स्थापित किया। श्रीकृष्ण ने बालपन में यहीं से पासही महा गर्वान्ध कालिया नामक नागराजा का गर्व चूर करके उसे देशनिकाले की सज़ा देकर यह प्रान्त निर्भय कर डाला। अभूतपूर्व भारती युद्ध में दुर्योधन आदि दुष्टों के रक्तस्राव से यहीं भूमि 'कौसुम्भरक्त रञ्जित' हो गई। तक्षक-द्वारा अपने पिता का घात होने के कारण क्रुद्ध हुए जनमेजय ने इसी क्षेत्र में सर्पसत्र करके 'इन्द्राय तक्षकाय स्वाहा' करने तक की नौबत ला दी। सारांश, श्रीकृष्ण परमात्मा ने "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥" यह सिर्फ घोषणापत्र पढ़ने के लिए इस स्थल की योजना नहीं की थी; किन्तु जान पड़ता है कि पौराणिक काल में प्रकट रीति से उक्त प्रतिज्ञा पालन करने की जगह भी यही ठहराई थी।

ऐसा कुरुक्षेत्र का और उसके केन्द्रीभूत इन्द्रप्रस्थ का पौराणिक काल का माहात्म्य है। इसके बाद आधुनिक काल में ज्यों ज्यों सनातन आर्यधर्म को ग्लानि होने लगी त्यों त्यों सनातन राजधानी इन्द्रप्रस्थ का भी महत्व लोप होने लगा। तथापि यवनों के बादशाह जगज्जेता सिकन्दर को राजा पोरस ने वहीं रोक रक्खा, इस लिए वह पूर्व के उपजाऊ प्रान्त की ओर नहीं बढ़ सका। इसी प्रकार महा प्रतापी राजा विक्रमादित्य ने कोरूर की लड़ाई में शक लोगों को नीचा दिखाया और उनके पंजे से इस पवित्र भूमि को छुड़ाया। इस कारण और पाँच सात सौ वर्ष दिल्ली पर आर्यों का राज्य बना रहा। अन्त में मुहम्मद गोरी ने सन् ११९३ में धोखे से पृथ्वीराज को पराजित करके दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया और तभी से आर्यों की यह सनातन राजधानी म्लेच्छों के हाथ में चली गई।

दिल्ली का अर्वाचीन वृत्तान्तः—सन् १२०६ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के गुलाम कुतुबुद्दीन ने दिल्ली को अपना निवासस्थान स्थिर किया। तब से लेकर औरंगजेब के मरण-काल तक अर्थात् सन् १७०७ ई० तक, अर्थात् पाँच सौ वर्ष, निर्विवाद रीति से दिल्ली का आधिपत्य पठान और मुगलों के हाथ में था। इन पचशत संवत्सरों में भी दिल्ली शहर पर अनेक बार परकीयों के और स्वयं आर्यों के भी आक्रमण हुए। सन् १३९८ में तैमूर लंग ने दिल्ली पर अधिकार करके कुछ दिनों तक वहां अपने वजीर खिजरखां को रख दिया था। फिर हुमायू के शासनकाल में भी सन् १५४० से १५५५ तक मुगलों की सत्ता का ह्रास होकर पठानों का अमल जारी हुआ था और अन्त में हेमू नामक हिन्दू सरदार के हाथ में सब सत्ता आ गई थी। परन्तु ऐसे फुटकल अपवाद छोड़कर दिल्ली का आधिपत्य मुसलमानों ही के हाथ में था। इन पांच शतकों में दिल्ली शहर के बहिरंग में अन्तर पड़ गया और वह अत्यन्त दर्शनीय बन गया। किसी शहर के भी पौराणिक काल के वर्णन की अतिशयोक्ति यदि निकाल डाली जाय तो दिल्ली शहर की बराबरी का सब दृष्टियों से शोभायमान शहर दूसरा शायद ही मिलेगा। अन्य कई शहरों में कदाचित् एक एक इमारत अप्रतिम दिखलाई जा सकेगी। परन्तु प्रेक्षणीय स्थलों का इतना समुच्चय अन्य कहीं शायद ही मिलेगा। इन दर्शनीय स्थानों में महाराज अशोक का शिलालेख, राजा धव का लोहस्तम्भ, महाराज पृथ्वीराज का रायपिथोरा किला, प्राचीन जैन-मन्दिर और जयसिंह-वेधशाला, इत्यादि काम आर्यों के वैभव दर्शक हैं। कुतुबमीनार, काली मसजिद, सलीमगढ़, हुमायू का मकबरा, मोती मसजिद, जुम्मा मसजिद, दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, इत्यादि अत्यन्त चित्ताकर्षक और दर्शनीय इमारतें मुसलमानी शासन की निदर्शक हैं। इस प्रकार करोड़ों रुपये खर्च करके भिन्न भिन्न बादशाहों ने यद्यपि प्राचीन इन्द्रप्रस्थ नगरी को बाह्यांग-सुन्दर किया, तथापि यह कहने में कोई प्रत्यवाय नहीं कि प्राचीन आर्य राजाओं के समय की उस नगरी की अन्तरंग शोभा प्रायः लुप्त ही हो गई। कुतुबुद्दीन से लेकर औरंगजेब तक, अर्थात् कुल मुसलमानी बादशाहत के पाँच सौ वर्षों में, छत्तीस बादशाह दिल्ली के तख्त पर आरूढ़ हुए। पर यदि यह देखा जाय कि इन छत्तीस में नाम लेने योग्य कितने हुए तो प्रायः निराशा ही होती है। उनमें भी अलाउद्दीन खिलजी, मुबारक खिलजी, मुहम्मद तुगलक और औरंगजेब के समान बादशाहों के क्रूर और अमानुषी कृत्यों का हाल जानकर तो शरीर पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बाकी बचे हुए बादशाहों में से सोलह बादशाह सिर्फ गिनती गिनाने भर के लिए हुए। बादशाही तख्त पर उनका आना और जाना बराबर हुआ। प्रजा को उनके सुख दुःख का कुछ अनुभव नहीं हुआ। इसके सिवाय अन्य सत्ताधारी बादशाहों में तेरह बादशाह कुछ अच्छे हुए। उनके हाथ से प्रजा वैसी त्रस्त और संतप्त नहीं हुई। तथापि [illegible] ही की अकालिक मृत्यु के कारण और अन्य कितनों ही पर कुछ दूसरे संकट आ पड़ने के कारण उनके हाथ से प्रजाहित के कोई बखानने योग्य कार्य नहीं हो पाये। अब बचे तीन बादशाह। उनके नाम क्रमशः फीरोजशाह तुगलक, शेरशाह सूर और अकबर हैं। इन तीनों के शासनकाल में अवश्य ही प्रजा के कल्याण के लिए कुछ उपयोगी काम हुए और इनके जमाने में प्रजा सुखी थी। फीरोजशाह तुगलक ने लोकोपयोग के लिए पाठशालाएं, धर्मशालाएं, दवाखाने, कुएं, तालाब और पुल बँधवाये। इसके सिवाय उसने जो नहरें बनवाईं उनसे उसका नाम चिर-स्मरणीय हो गया। उसकी बनवाई हुई यमुना नदी की एक नहर अब भी जारी है। नहरें बनवा कर खेती की वृद्धि करने का प्रबन्ध पहले पहल इसी बादशाह ने किया। इसमें कोई शक नहीं कि फीरोजशाह को अपनी प्रजा के कल्याण का ध्यान था। तथापि अपने धर्म का उसे भी दुरभिमान था और इसी कारण पहले जो जजिया कर ब्राह्मणों के लिए माफ कर दिया था वह फिर उन पर लाद दिया। इस कारण बुढ़ापे में उसके राज्य में झगड़े उपस्थित हुए। दूसरा लोकहितदक्ष बादशाह शेरशाह सूर है। जमीन की माप करके प्रजा से निश्चित लगान लेने की पद्धति पहले पहल इसीने शुरू की, वही फिर आगे अकबर ने सब जगह के लिए निश्चित कर दी। शेरशाह ने बंगाल से सिंध तक प्रवास के लिए सुखकर मार्ग तैयार करवा दिया। प्रजा के उपयोग के लिए घोड़ों की डाक स्थापित की। जगह जगह अन्नसत्र स्थापित करके प्रवासियों के लिए सुभीता कर दिया। अपने राज्य में तौल और माप सब जगह एक पद्धति से जारी किये। रुपये का सिक्का इसीने पहले पहल चलाया। यह बादशाह यदि अल्पायुषी न हुआ होता तो इसके हाथ से प्रजाहित के और भी काम हुए होते।

इसके बाद का लोककल्याणकर्त्ता बादशाह अकबर ही है। इसका चरित्र लोगों को मालूम ही है, अतएव इसके विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। अकबर के पहले चार सौ वर्ष तक अफगानों ने भारतवर्ष पर राज्य किया। परन्तु राज्यकर्त्ता को अपने अधिकार का शाश्वतपन कभी नहीं मालूम हुआ और प्रजा को भी उस राज्य के विषय में अपनत्व नहीं मालूम हुआ। परन्तु अकबर ने पूर्व के बादशाहों की भूलें अपने ध्यान में रखकर प्रजा के साथ ममता और निष्पक्षपात का बर्ताव किया, राज्यकार्य, व्यापार, धर्म, इत्यादि विषयों में जित लोगों को जेता लोगों के समान ही अधिकार दिये और प्रजा के सुख की अभिवृद्धि की। इन कारणों से लोगों के मन में बादशाह के विषय में इतनी पूज्यबुद्धि उत्पन्न हुई कि सब भारतीय लोगों के मन में 'दिल्ली-राजधानी'-विषयक पूज्यबुद्धि आज तक स्थिर रही है। धर्म के विषय में अकबर ने जो समबुद्धि दिखलाई वह तो उस समय को देखते हुए अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। धार्मिक विषयों की चर्चा करने के लिए वह प्रति गुरुवार को सभा करता और उसमें मुहम्मदी, भारतीय, पारसी और क्रिश्चियन धर्मों के अनुयायियों के व्याख्यान सुनता था। इस सभा में भिन्न भिन्न धर्मों के जो प्रख्यात अग्रणी वाद के लिए जमा होते वही अकबरी दरबार के नवरत्न हैं। अस्तु। 'राजा, लोगों की रक्षा करके उन्हें सन्मार्ग में लगाने के लिए, परमेश्वर का नियत किया हुआ हमारा प्रतिनिधि है।' यह अपने कर्तव्य की उच्च कल्पना अपनी दृष्टि के सामने रखकर अकबर बर्ताव करता था, इसी लिए उसका नाम अजरामर हो रहा है।

दिल्ली से मराठों का सम्बन्धः—जब से मुसलमानों ने दिल्ली में अपना राज्य स्थापित कर लिया तब से राजपूत वीरों ने उन्हें हटाने के लिए अनेक बार प्रयत्न किये, पर उन्हें सफलता नहीं हुई। चित्तौरगढ़ और उदयपुर के महारानाओं को तो अपनी स्वतन्त्रता और अपने कुल की पवित्रता स्थिर रखना ही करीब करीब दुरापास्त हो गया। तथापि मेवाड़ के इस पवित्र और शूरवीर राजघराने ने अन्त तक अपना बाना नहीं छोड़ा। राना सांगा, महाराज प्रतापसिंह और जयपुर के राजसिंह ने मुसलमानों से लड़ने की पराकाष्ठा कर दी। तथापि यह स्पष्ट देख पड़ने लगा कि राजपूतों में मुसलमानों की सत्ता निर्मूल करने का सामर्थ्य नहीं रहा। ऐसे समय में एक ऐसा कारण हो गया कि जिससे दक्षिण के राजपूतों, अर्थात् मराठों का ध्यान इस सनातन राजधानी की ओर आकर्षित हुआ। औरंगजेब 'दक्खन' पर अपना पूरा अधिकार करना चाहता था। पर उसके रास्ते में शिवाजी एक बड़ा भारी कांटा था। इस कांटे को निकाल डालने के उद्देश से उसने अनेक प्रकार की धूर्तता करके शिवाजी को दिल्ली में बुलाया और अपने दरबार की तड़क भड़क से उन्हें चकाचौंध में डालने का प्रयत्न किया। पर छत्रपति शिवाजी कोई सामान्य पुरुष नहीं थे जो औरंगजेब के झपके में आ जाते। उन्होंने चुपके से बादशाह का और उसके दरबारी सरदारों का पानी तौल लिया और औरंगजेब की आखों में धूल झोंककर दक्षिण में आ दाखिल हुए। इतना ही नहीं किन्तु तुरत ही सिंहगढ़ पर चढ़ाई करके दिल्लीपति को यह जतला दिया कि बादशाही झपके से हम कितने चकाचौंध में पड़ गये हैं। शिवाजी महाराज के इस दिल्ली-प्रयाण से, भरतखण्ड की इस पुरातन राजधानी की ओर

मराठे राजपूतों का चित्त आकर्षित हुआ, और उन्हें विश्वास हो गया कि दिल्ली-पद प्राप्त हुए बिना यह भी नहीं कहा जा सकता कि हमारी सत्ता की पूर्ण बाढ़ हुई—फिर उस सत्ता की शाश्वतता का तो नाम ही न लो। परन्तु इसके बाद करीब अर्ध शतक तक मराठे अपना रुख दिल्ली की तरफ नहीं झुका सके। औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली में गड़बड़ मची और मराठों को वहां के राजकाज में हाथ डालने का मौका मिला और उन्होंने 'स्वराज्य,' 'चौथाई' और सरदेशमुखी की 'सनदें' मांग लीं। इसके बाद सन १७३८ ई० में पहले बाजीराव ने, मुसलमानी सत्ता के मूल पर ही घाव करने का जो मराठों का विचार था, उसका 'श्रीगणेश' कर दिया और उसीको आदर्श मानकर सन् १७६० ई० में सदाशिवराव भाऊ साहब ने दिल्ली का तख्त विध्वंस कर डाला। इसमें कोई शक नहीं कि भाऊ साहब के इस कृत्य का परिणाम बहुत ही भयंकर हुआ और उसका प्रायश्चित्त सब महाराष्ट्र को और मराठों की सत्ता को मिला। तथापि मुसलमानी सत्ता का अन्त करने के लिए रघोबादादा की विद्युल्लता के समान क्षणिक चमकनेवाली विजयी दौड़ जितनी कारणीभूत हुई उसकी अपेक्षा भाऊ साहब का, प्रारम्भ में निष्फल ठहरा हुआ यह यत्न ही अधिक कारणीभूत हुआ। क्योंकि रघोबादादा के दो विजयी हमलों से मुसलमानों के अधिराज्य की जो जड़ तिलभर भी कम नहीं हुई थी वह, दिल्लीपति के सिंहासन पर भाऊ साहब का घन पड़ते ही चकनाचूर हो गई। अस्तु। भाऊ साहब के पानीपत की लड़ाई में पराजित होने के कारण कुछ दिन तक दिल्ली का स्वामित्व मराठों के हाथ में लेने का काम शिथिल पड़ गया। परन्तु भाऊ साहब को इस चढ़ाई में सदा उनके साथ रहनेवाला एक मराठा वीर (महादजी सेंधिया) आगे बढ़ा और उसने शिवाजी महाराज के मन का विचार, सौ सवा सौ वर्ष बाद, पूर्ण किया। तथापि महादजी सेंधिया ने दिल्ली का जो बन्दोबस्त किया वह उतना साफ न था, इस कारण नाना फड़नवीस के समान चतुर राजनीतिज्ञ को वह पसन्द नहीं आया। पर इस काम के लिए उन्हें महादजी के ही मुख की ओर ताकने के सिवाय और कोई चारा नहीं था, इस कारण अन्त में महादजी की उक्त व्यवस्था उन्हें मंजूर करनी पड़ी। नाना के कहने के अनुसार यह दुबला सौभाग्य बहुत दिन टिकना असम्भव था और अन्त में वैसा ही हुआ। सन १८०३ में दिल्ली अंग्रेजों के अधिकार में चली ही गयी।

दिल्ली राजधानी:—यहां तक इस सनातन राजधानी का जो वृत्तान्त दिया उससे हमारे पाठक समझ गये होंगे कि दिल्ली प्रान्त की [illegible] इसके अधिकार में है। दिल्ली पर अनादिकाल से जो [illegible] और जो स्वप्न-समान [illegible] उनसे उक्त विचार निश्चित ही लोगों के मन में आता है। परन्तु यदि वास्तव में देखा जाय तो दिल्ली [illegible] नहीं है किन्तु वह बड़ी मानिनी थी। [illegible] मानिनी स्त्रियां [illegible] उनके विषय में [illegible] है। मानो दिल्ली भी [illegible] है कि हमारा पति स्वयं पराक्रम करनेवाला हो। [illegible] गुण के अभाव की [illegible] उनको वह भयंकर रीति से [illegible]। राजपूत [illegible] के पीछे [illegible] अपने पतियों का [illegible] नहीं किया। परन्तु [illegible] पृथ्वीराज का [illegible] किया। [illegible] इस कारण किसी एक की सत्ता [illegible] स्थिर नहीं रही। तैमूरलंग ने उसके [illegible] उसे [illegible] करने का प्रयत्न किया पर इसने उसकी भी दाल नहीं गलने दी। अन्त में मुगल खानदान के पराक्रमी पुरुष बाबर ने इसका पाणिग्रहण किया। उसने [illegible] की लड़ाई में पराक्रम दिखलाया और यह शपथ की कि अब से मद्य का स्पर्श भी न करूंगा। इस प्रकार अपनी शूरता और आत्मसंयमन आदि गुण प्रकट करके उसका प्रेम सम्पादन किया। इसके बाद उसका दुर्बल लड़का हुमायूं कन्नौज की लड़ाई में शेरशाह से हार कर लौट आया। इस कारण दिल्ली-दुलहिन ने उसे निकाल दिया और पन्द्रह वर्ष तक उसका मुखावलोकन नहीं किया। हां, अकबर बादशाह के अनेक गुणों पर लुब्ध होकर उसने करीब आधे शतक तक, सुखसमाधान से उसका सहवास किया। जहांगीर की वृत्ति में आलस्य और सुखलोलुपता देख पड़ते ही उसने उसे अलग कर दिया। शाहजहां बादशाह अपने पूर्ववय में अपूर्व पराक्रमी था, इस लिए उस पर उसकी कृपा थी, और शाहजहां ने भी उसे अच्छी तरह अलंकारों से भूषित किया। परन्तु केवल दिखाऊ बाहरी तड़क-भड़क से उसका मन सन्तुष्ट नहीं हो सकता था, इस कारण शाहजहां को अपने वीर्यलोप का प्रायश्चित्त मिला। औरंगजेब में कुछ अच्छे गुण अवश्य थे, किन्तु राजपूतों से युद्ध में हार कर ज्यों ही वह लौटा त्यों ही दिल्ली-रमणी ने अपने स्वभाव के अनुसार, कठिन रीति से परीक्षा लेने के लिए उसे दक्षिण को रवाना कर दिया। वहां धनाजी और संताजी आदि मावलों ने ही औरंगजेब को खूब छकाया। यह देखते ही, उसका पुनर्दर्शन तो दूर ही रहा, किन्तु दिल्ली ने उसे नर्मदा पार होकर आर्यावर्त में (अपने घर के आंगन में) भी नहीं घुसने दिया। इस प्रकार मुसलमानी बादशाहों की परीक्षा हो चुकने पर उसने मराठों की ओर दृष्टि फेरी। शूरवीर प्रथम बाजीराव यदि और कुछ दिन जीते रहते तो इस रमणी ने उनके गले में जयमाला डाल दी होती। परन्तु उनकी एकाएक मृत्यु के कारण यह योग ही नहीं आया। इसके बाद बाजीराव के भतीजे ने उसके साथ विवाह करने का पण किया। परन्तु पानीपत के घनघोर संग्राम में वह निखट्टू ठहरा। अन्त में महादजी सेंधिया के गले में उसने माला पहनाई। पर महादजी पेशवाओं के अधीन थे, और पेशवे सितारे के राजाओं के अधीन थे, इस कारण उसे ऐसा दूर का दाम्पत्य पसन्द नहीं आया और उसने मराठों का नाम ही छोड़कर अन्त में अंगरेजों का आश्रय लिया। तथापि, अपने सदैव के प्रण के अनुसार, उसने निश्चय किया कि इन को भी परीक्षा लिये बिना स्वामित्व स्वीकार नहीं करूंगी। अफगानिस्तान में धक्का खा जाने के कारण और रामनगर तथा चिलियांवाला की युद्ध-वार्ताओं से इनके पराक्रम के विषय में भी उसका मन सन्दिग्ध हुआ और इस लिए उसने स्वयं ही इनकी एक बार कठिन परीक्षा लेने का निश्चय किया। इस परीक्षा का जलसा [illegible] सन १८५७ ई० में लगभग २० सितम्बर तक स्वयं दिल्ली ही के किले में हुआ। उसमें ब्रिटिश सैन्य के उत्तीर्ण होते ही सब शंकाओं का निरसन हो गया और इस सनातन राजधानी ने अंगरेजों की प्रभुता स्वीकार की। पर इसका ध्यान दिल्ली से उठकर अन्य स्थानों की ओर [illegible] रहा। सिर्फ कहने भर के लिए, किसी तड़क-भड़क-दार उत्सव के समय में ही उसे इसकी याद आती रही। जान पड़ता है कि यह बात इसे पसन्द न थी; इसी लिए अन्त में इस मानिनी ने [illegible] के द्वारा १२ दिसम्बर १९११ को अपने [illegible] प्रकट करवाया।

दिल्ली के विषय में [illegible] परदेशी राजाओं की यह [illegible] परम्परा हमने पाठकों से निवेदन कर दी। यह बात सब विद्वान् मानते हैं कि इतिहास पुराणों के अनुभव से [illegible] का चातुर्य [illegible], उससे साधन है। इस लिए प्रत्यक्ष ज्ञान की सिद्धि के लिए उनकी पूर्वपरम्परा का ज्ञान लेना आवश्यक है। अस्तु। यह दिल्ली का इतिहास समाप्त करते हुए हम आशा करते हैं कि [illegible] लेकर आज तक जितने बादशाह [illegible] दिल्ली पद पर आरूढ़ हुए [illegible] की तरह वर्तमान महाराज पंचम जार्ज भी प्रजा-हित में [illegible] भारतवासियों को आनन्दित करेंगे। अब, अन्त में हम, उस परम पिता परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं कि हमारे महाराज को वैसा करने के लिए सुविचार दे और उन्हें सदा आरोग्य रखकर चिरायु करे।

---

# महाराज श्री-श्रीनिवासप्रसादसिंह।



काशी और पटने के बीच एक महा प्रदेश "भोजपुर" है। यह प्रदेश विहार में है। शाहाबाद जिले में बक्सर से चार कोस पूर्व भोजपुर नामके दो नगर हैं। एक 'पुराना भोजपुर' दूसरा "नया भोजपुर"। इन दोनों में केवल आधे कोस का अन्तर है। यद्यपि इन दोनों की अवस्था अब अच्छी नहीं है और ये नगर कहलाने योग्य भी अब नहीं हैं तथापि वहाँके ऊंचे ऊंचे राज भवनों के खँडहर उनकी प्राचीनता तथा महत्ताका परिचय आज भी दे रहे हैं। इन्हीं दोनो नगरों में क्रमश भोजपुरेश महाराजों की राजधानी थी। इसी कारण इनका समस्त प्रान्त ही "भोजपुर" नाम से प्रसिद्ध हो गया। डेढ़ सौ वर्षों से उक्त महाराजों की राजधानी "डुमरांव" है। यह नगर भोजपुर से एक कोस दक्खिन है। यहा दो सुहावने वन, अगणित अत्युत्तम पुष्पवाटिकाएँ, अनेक देवमंदिर, बहुतसे जलाशय, एक पहाड़ी छोटी नदी, एक बहुत बड़ा हासपिताल, एक हाई इंगलिश स्कूल, एक लाइब्रेरी, एक सदाव्रत, और दो धर्म शालाए राजकीय है। नागरिक लोगों के भी उच्च भवन, पुष्पवाटिका, पाठशाला, देवमंदिर, जलाशय आदि अनेक वस्तुएँ देखने के योग्य है। डुमरांव नगर छोटा है पर बहुत सुहावना है।

यहा के महाराज विक्रमादित्य के वंशधर है और उज्जैन (उज्जयिनी) नगर से आये हैं इस लिए ये लोग 'उज्जैन" कहलाते हैं। उक्त वीर विक्रमादित्य परमार थे, ये लोग भी परमार (पम्मार) कहे जाते है। धारा नगरी के ऐतिहासिक प्रसिद्ध "भोज देव" इनके पूर्व पुरुष थे। इन लोगों ने उनकी भक्ति से आल्हादित होकर उनके स्मारक, स्वरूप भोजपुर नगर बसाया। ये लोग "भोजराज" भी कहलाते है।

डुमराव के अन्तिम राज्याधिकारी महाराज सर राधाप्रसादसिंह के सी आई ई थे। उनने बड़ी योग्यता के साथ प्रजा का पालन और गवर्नमेन्ट को प्रसन्न किया। महाराज की दो महारानिया थीं। पहली, महाराज बड़हर (जिला मिर्जापुर) की पुत्री, तथा दूसरी जिला बलिया बाँसडीह ग्राम के परमप्रतिष्ठित रईसकी पुत्री थीं। पहली महारानी को कोई सन्तति न हुई। उनका शरीरान्त मध्यावस्था में हो गया। दूसरी महारानी श्री "वेणीप्रसाद कुमारी" जी की दो पुत्रिया थीं। प्रथम पुत्री का विवाह माँडा के महाराज श्री रामप्रतापसिंहजी के साथ हुआ। द्वितीय पुत्री का विवाह रीवां के वर्त्तमान महाराज बान्धवेश व्यङ्कटरमण रामानुजप्रसादसिंहजी के साथ हुआ।



महाराज श्री श्रीनिवासप्रसादसिंहजी।

सन् १८६४ ई में महाराज राधाप्रसादसिंह का देहान्त होगया। महाराज के लिखे हुए "विल" के अनुसार डुमराव की राजगद्दी, उक्त महाराज की द्वितीय धर्मपत्नी "वेणीप्रसाद कुमारी" जी को मिली। महारानी ने बड़ी उत्तमता के साथ १४ वर्ष राज्य किया।

महाराज अपने "विल" में महारानी को "दत्तक पुत्र" लेन का अधिकार दे गये थे। विल में लिखा था—डुमरांव, बक्सर और जगदीशपुर ये तीनों राजकुल मेरे अत्यन्त समीपीय, तथा आत्मीय गात्र है। इस कारण महारानी इन तीनों राजकुलों में जिसको सुयोग्य समझें उसको "दत्तक पुत्र" बनाकर राज्य दे दें। इसी विल के अनुसार सन् १६०७ ई० ता० १० दिसम्बर को महारानी ने जगदीशपुर के परम प्रतिष्ठित रईस महाराज कुमार बाबू भागिरथप्रसादसिंहजी के पौत्र, महाराज कुमार बाबू गयाप्रसादसिंहजी के पुत्र, और महाराज कुमार बाबू नरसिंहप्रसाद सिंह (दादूजी) जी के लघुभ्राता चिरजीवी बाबू जगबहादुर सिंह को, बगाल गवर्नमेन्ट की आज्ञा लेकर, गवर्नमेन्ट कर्मचारी—शाहाबाद के जज, बक्सर के माजिस्ट्रेट, आरा के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट, तथा स्वकीय अनेक सम्बन्धी, महाराज माँडा, म० कु० बाबू रघुवीरप्रसादसिंह डुमरांव आदि, एव अपने प्रधान कर्मचारी दीवान बाबू शिवशरणलाल बी ए बी एल आदि के सामने वेद विहित विधि से 'दत्तक पुत्र बनाया (गोद लिया)। और नवीन नाम "श्रीनिवासप्रसादसिंह" रक्खा।

महारानी के स्वर्गवास होने के बाद राज्य "कोर्ट आफ वार्डस' के आधीन हो गया। वर्तमान महाराज के गार्डियन म० कु० बाबू गयाप्रसादसिंहजी और स्वास्थ्य निरीक्षक भूतपूर्व सिविल सर्जन, श्रीयुक्त बाबू विपिन बिहारी गुप्तजी नियत किये गये।

महाराज श्रीनिवासप्रसादसिंह जी आज कल राजसी सज धज के साथ रांची में विराज रहे है। आपकी अवस्था इस समय आठ वर्ष की है। इस छोटी अवस्था मे भी आप कभी कभी ऐसी बातें कह देते है जिनसे पूर्व जन्म के शुभ संस्कार का अनुमान होता है। अभी आपकी हिन्दी और अंग्रेजी की प्रारम्भिक शिक्षा हो रही है। आशा है कि ब्रिटिशगवर्नमेन्ट के उत्तम निरीक्षण से आप वयस्य होने पर आदर्श महाराज होंगे। जगदीश्वर से मेरी प्रार्थना है कि उक्त महाराज चिरजीवी होकर भोजपुर की प्रजाओं का पालन करें।

आक्षयवट मिश्र

# बादशहा का दैनिक कार्यक्रम।




बादशाह और महारानी का कलकत्ते में लिया हुआ फोटो।

हमारे प्राचीन कथा-पुराणों और इतिहासों—से इस बात का पता लग सकता है कि हिन्दुस्तान के प्राचीन राजाओं और महाराजाओं की दिनचर्या किस प्रकार थी—वे अपना समय प्रतिदिन किस तरह व्यतीत किया करते थे। वर्तमान समय में हमारे पाठकों को यह बात जानने की बहुत इच्छा होगी कि

सुधार के शिखर पर पहुंचे हुए यूरपखंड के अत्यंत प्रसिद्ध और वैभवशाली इंग्लैण्ड देश के राजा ( और हिंदुस्थान के बादशाह ) पंचम जार्ज का दैनिक कार्यक्रम किस प्रकार का है—वे प्रति दिन कौन कौन काम किया करते हैं, उनका निजी बर्ताव कैसा है और उनके निजी कामों का प्रबंध किस भांति होता है। इस विषय में स्वयं बादशाह की सम्मति से हाल ही में एक लेख प्रकाशित हुआ है, उसीके आधार से नीचे लिखी कुछ बातें हम प्रकाशित करते हैं।



**लॉर्ड स्टैंफोर्डम।**
( बादशाह के अत्यन्त विश्वासपात्र निजी कारबारी। )

### पंचम जार्ज का 'कोर्ट'।

बादशाह पंचम जार्ज के कोर्ट के, सरकारी तौर पर, तीन विभाग किये गये हैं। इन विभागों का प्रबंध लार्ड स्टुअर्ड, लार्ड चेम्बरलैन, और मास्टर आफ दि हार्स नाम के तीन अधिकारियों के हाथ में है। यथार्थ रीति से देखा जाय तो खुद बादशाह के निजी आदमियों के प्रबंध का एक निराला ही विभाग हो सकता है, परंतु सरकारी तौर पर ऐसा नहीं किया जाता। इस चौथे विभाग के अधिकारी बादशाह के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। सम्प्रति अर्ल आफ चेस्टरफील्ड 'लार्ड स्टुअर्ड' का काम करते हैं, अर्ल स्पेन्सर 'लार्ड चेम्बरलैन' का काम और अर्ल आफ ग्रेनार्ड 'मास्टर आफ दि हार्स' का काम करते हैं। सर आर्थर बिग्गे को 'लार्ड स्टफोर्डम' कहते हैं—यही बादशाह के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। बादशाह के 'कोर्ट' के उपर्युक्त तीनों विभागों के अफसर सरकारी तौर पर नियत किये जाते हैं। इन पदों पर बडे बडे लोगों में से ही कोई पुरुष नियत किया जाता है। जब कभी बादशाह कोई सरकारी आज्ञा देना चाहते हैं तब वह 'लार्ड चेम्बरलैन' के हस्ताक्षर से प्रकाशित की जाती है। कभी कभी ऐसे हुक्म 'अर्ल मार्शल आफ इंग्लैण्ड' (जो कोर्ट के कोई अफसर नहीं हैं ) के हस्ताक्षर से भी जारी किये जाते हैं। जब कभी बादशाह स्वयं अपना संदेसा लोगों को भेजना चाहते हैं, या जब कभी वे किसी मामले में निजी तौर पर कुछ उत्तर देना चाहते हैं, तब उसका मसविदा 'प्राइवेट सेक्रेटरी' द्वारा तैयार किया जाता है और बादशाह की सम्मति मिलने पर वह बाहर भेजा जाता है। उदाहरणार्थ दरबार, लेवी, बाल वगैरह विषयों के हुक्म, लंडन के सेंट जेम्स नामक राजमहल में 'लार्ड चेम्बरलैन' के आफिस से, जारी होते हैं, और निजी तौर पर किसीसे मिलने, कहीं भोजन आदि के लिए जाने, शिकार के समय किसीको अपने साथ चलने का निमंत्रण करने आदि का प्रबंध प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा किया जाता है। 'कोर्ट' संबंधी बहुतेरा सब प्रबंध प्राइवेट सेक्रेटरी ही के द्वारा हुआ करता है।



**अर्ल आफ चेस्टरफील्ड।**
( बबर्चीखाने के बडे अफसर। )

### बादशाह का आफिस।

यह आफिस लंडन में बकिंगहाम नामक राजमहल की पहली अटारी पर है। इसके सामने एक मनोहर बाग है। आफिस का कमरा बहुत बडा, हवादार, प्रकाशमय, स्वच्छ और सुंदर है। बादशाह के लिखने का टेबल यहां रखा रहता है। इसके दूसरी ओर के कमरे में लार्ड स्टफोर्डम के लिए एक डेस्क रखा रहता है। बादशाह के असिस्टन्ट सेक्रेटरी और इस विभाग के अन्य अफसर भी यहीं रहते हैं। काम पडने पर ये लोग बादशाह के पास बुला लिये जाते हैं।



**अर्ल स्पेन्सर** ( लार्ड चेम्बरलैन। )

### बादशाह की डाक।

यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि बादशाह की डाक बहुत बडी रहती है। निजी और सार्वजनिक चिट्ठियां, समाचारपत्र, पुस्तकें आदि, लंडन के जनरल पोस्ट आफिस से, एक निराली थैली में बंद करके ताला डाला बादशाह के पास भेज दी जाती हैं। जब बादशाह बकिंगहाम महल में रहते हैं तब उनके डाक की थैलियां, सायंकाल के भोजन के समय, वहां जा पहुंचती हैं। थैली खोलकर बादशाह स्वयं सब डाक देख लेते हैं, किसी पत्र पर कुछ चिन्ह कर देते हैं, अत्यंत महत्त्व के पत्रों का उत्तर उसी समय दिया जाता है, और जिन पत्रों का उत्तर वे स्वयं कुछ विचार करने के बाद देना चाहते हैं उन्हें अपने बक्स में बंद कर देते हैं। अन्य बचे हुए पत्र वे अपने सेक्रेटरी को दे देते हैं। बादशाह प्रातःकाल बहुत जल्द उठते हैं। सबसे पहले वे पत्रों के उत्तर लिखते हैं। इसके बाद सबेरे के भोजन का समय होता है और इसी समय बादशाह के डाक की दूसरी बडी थैली आ पहुंचती है। इस थैली को उनके प्राइवेट सेक्रेटरी खोलकर सब पत्र बाहर निकालते और भिन्न भिन्न विषयों के पत्रों को भिन्न भिन्न थैलियों में बंद करते हैं। उदाहरणार्थ सार्वजनिक कार्य संबंधी निमंत्रण पत्र, किसी संस्था के लिये द्रव्य की सहायता मांगनेवाले पत्र, निजी पत्र, हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्ड्स के सरकारी रिपोर्ट वगैरह सब अलग अलग छांटकर उनमेंसे जो अत्यंत महत्त्व के होते हैं वे अलग अलग थैली में बंद कर दिये जाते हैं। इसी तरह अन्यान्य देशों के राजाओं के पत्र, भिन्न भिन्न स्थानों के वकीलों के भेजे हुए रिपोर्ट, मंत्रियों के पत्र आदि सब छांटकर दूसरी संदूक में बंद किये जाते हैं। इस संदूक पर एक छेद है जिसमें बाहर से पत्र आदि डाल दिये जा सकते हैं, परंतु ताला खोले बिना संदूक के भीतर के कागज बाहर नहीं मिल सकते। इस संदूक की एक कुंजी स्वयं बादशाह के पास, दूसरी कुंजी लार्ड नोलिस के पास और तीसरी कुंजी प्राइवेट सेक्रेटरी लार्ड



**मिस्टर आस्किथ—प्रधान मंत्री और उनके कुटुम्बी जन।**
खडे होनेवालों की लाइन—दाहिनी ओर से बाईं तरफ—१ मिसेस आस्किथ, २ मिस्टर आस्किथ, ३ मि फॉक्लासन।
बैठनेवालों की लाइन—बाईं ओर से दाहिनी ओर—१ मास्टर अन्तोनी आस्किथ कनिष्ट पुत्र, २ मिसेस आस्किथ की बडी बहन। )



**अर्ल आफ ग्रेनार्ड**
( अश्वशाला के मुख्य अधिकारी। )

स्टफोटम के पास है। चुने हुए ये सब पत्र और लिखे हुए बादशाह को जो काम करना है उसका संक्षिप्त ब्योरा एक कागज पर लिखकर बादशाह को सौंप दिया जाता है। बहुतेरे पत्रों के उत्तर बादशाह स्वयं अपने हाथ से लिखते हैं, कुछ पत्रों के उत्तर वे अपने मुख से कहते जाते हैं और कोई सेक्रेटरी उन्हें लिखता जाता है। बादशाह पञ्चम जार्ज पत्र लिखने या लिखवाने में कुछ धीमी चाल के मालूम होते हैं। अमुक शब्द लिखा जाय या न लिखा जाय, अमुक तौर पर लिखें या न लिखें, अमुक बात का उल्लेख करें या न करें—यही बातें वे बहुत समय तक विचार करते रहते हैं। इस कारण पत्र व्यवहार में उनका बहुत समय व्यतीत हो जाता है। प्रत्येक शब्द के अर्थ पर और उससे पढ़नेवाले के मन पर होनेवाले परिणाम पर वे बहुत सोचा करते हैं। इस तरह खूब सोच समझकर शब्दों का उपयोग करने की उनकी आदत है। जो लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते कि हमारे शब्दों का, सुननेवाले या पढ़नेवाले पर क्या परिणाम होगा उन्हें हमारे बादशाह की इस आदत से कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहिये। कहा भी है कि "बिना बिचारे जो करै (या कहै) सो पाछे पछताय।" अस्तु, बादशाह के लिखे हुए पत्र या उनकी नकलें हिफाजत से सन्दूक में रख दी जाती हैं। कुछ दिनों के बाद ये पत्र विंडसर महल के निजी आफिस में सुरक्षार्थ भेज दिये जाते हैं। पत्र लिखने और लिखवाने का काम हो जाने पर बादशाह पहले दिन के



सर डब्ल्यू कैरिंगटन।
[ बादशाह का निजी सिविल खर्च के अफसर। ]

### पार्लमेंट के कामों की रिपोर्ट।

पढ़ते हैं। जब वे किसी एक विषय के सम्बन्ध में कुछ विशेष हाल जानना चाहते हैं तब उसका पूरा ब्योरा तुरत ही मंगवा लेते हैं, या जब कभी वे अपने प्रधान मंत्री या 'फारन मिनिस्टर' से किसी बात की सलाह करना चाहते हैं तब तुरत ही यह प्रबंध हो जाता है कि अमुक स्थान में अमुक समय पर वे लोग उपस्थित हों। इस काम में रत्तीभर शिथिलता उन्हें सहन नहीं होती। जब दुनिया के किसी भाग में कुछ झगड़ा या लड़ाई होने की खबर मिलती है तब वे उस भाग का एक बड़ा नक्शा मंगवाकर एक स्थान पर रख देते हैं जहां वे उसे हरदम जब चाहें तब देख सकें। बादशाह को

### फोटो का शौक

भी बहुत है। लंदन में उनका निजी फोटोशाला है। वहां वे नित्य एक बार अवश्य जाया करते हैं। फोटोशाला के मुख्य अधिकारी ...



किंग जार्ज घोड़ेपर बैठकर हवा खाने जा रहे हैं।



विसकाउंट नौलिस।
( बादशाह के निजी सेक्रेटरी। )

है। उनके बादशाह सिंहासन पर आरूढ़ हुए तबसे उन्होंने बहुत सी मोटर गाड़ियां भी खरीदी हैं। पार्लिमेंट खुलने के समय या ऐसे ही अन्य समय इंग्लैंड के बादशाह एक प्राचीन सुन्दर रथ में बैठकर जाया करते थे। इस रथ में घोड़े लगाए जाते थे। परन्तु अब इस रथ का उपयोग बहुत कम होता है। वह सरकारी रथ रथशाला से हटाकर गाड़ियां दुरुस्त करने के कारखाने में रख दिया गया है। महारानी मेरी जब किसी उत्सव में हवा खाने को जाती हैं या 'वेस्ट एन्ड' को और कुछ सामान खरीदने जाती हैं तब उनकी गाड़ी में घोड़े ही लगाए जाते हैं। स्वयं बादशाह हर दिन घोड़े पर बैठकर हवा खाने जाया करते हैं। कुछ घोड़े अस्तबलों के लिए भी रखे गये हैं। बादशाह अपने

### आयव्यय की जांच

बहुत सावधानी से किया करते हैं।



सर चार्लस फ्रेडरिक।
( घरेलू काम काज के अधिकारी। )

वे बादशाही कुटुम्ब के विवक्षित भाग के आयव्यय की जांच हर महीने एक बार अवश्य किया करते हैं। अपने कुटुम्ब की सारी बातों पर वे बहुत सूक्ष्म रीति से ध्यान दिया करते हैं। इस बात पर उनका विशेष कटाक्ष रहता है कि तरुण 'प्रिंस ऑफ वेल्स' बादशाही सिविल लिस्ट और आयव्यय के सम्बंध में सारी बातों से परिचित हो जायँ।

### मंत्री आदि लोगों से मिलना।

ऊपर लिखा आए हैं कि बादशाह सबेरे बहुत जल्द उठते हैं। दो पहर होने के पहले ही वे अपना सब काम काज पूरा कर डालते हैं। दो पहर को वे अपने मंत्रियों से या विदेशी वकीलों से मिलते हैं। उस समय जो सेक्रेटरी उपस्थित रहता है वह मुलाकात की सब बातें लिख लेता है, यदि कोई सेक्रेटरी न हो तो स्वयं बादशाह अपने हाथ से सम्पूर्ण बात चीत का सारांश लिख रखते हैं। इसकी नकल बादशाह के निजी दफ्तर में रख दी जाती है। वे इस बात पर सदा ध्यान दिया करते हैं कि इंग्लैंड के साथ विदेशों का सम्बंध किस तरह है।

### बादशाह और उनका कुटुम्ब।

तीसरे पहर का भोजन करने के बाद वे कुछ समय तक आराम करते हैं और कुछ समय अपनी रानी, कन्या, पुत्र आदि के समागम में व्यतीत करते हैं। प्रति दिन सबेरे कम से कम आधा घंटे तक तो वे अपने पुत्र और कन्या के साथ अवश्य ही रहते हैं। उस समय वे कभी लड़कों के कमरे में या बाहर खुले मैदान में रहते हैं। दो पहर के बाद का यह मन्द समय बादशाह स्वयं 'अपना' समझते हैं—अर्थात् यह समय वे जो चाहें उस तरह अपने कुटुम्ब जनों के साथ व्यतीत करते हैं। जब वे कोई काम नहीं करते हैं तब यह समय महारानी के साथ बात चीत करने या कुछ पढ़ने में व्यतीत किया जाता है। जब कोई उत्सव नहीं होता है तब वे दोनों उत्सव



कर्नल सर एफ पोनसोनबी।
( निजी खजानची। )

में ही रहते हैं। कभी कभी बादशाह उस कमरे में जाते जहां अनेक चित्र टंगे हुए हैं और अद्भुत पदार्थों का संग्रह किया गया है। वहां जाकर कुछ समय तक वे अपना मनरंजन करते हैं। जो लोग सरकारी तौर पर मिलने आते हैं उनसे बादशाह आफिस ही में मिलते हैं, परन्तु जब उनके मित्र गण आते हैं तब वे अपने निजी कमरे में उनसे बातचीत करते बैठे रहते हैं। जार्ज बादशाह अपने पिता की नाईं चुरुट बहुत नहीं पीते। कहते हैं कि इसका कारण यह है कि महारानी को तमाखू की बास नहीं सुहाती। बादशाह दोपहार को कभी चाय नहीं लेते। तीसरे पहर का भोजन हो जाने पर रात्रि के भोजन समय तक बीच में वे कुछ खाते भी नहीं। रात्रि का भोजन प्रायः आठ बजे हुआ करता है। जब कभी बादशाह नाटक का खेल देखने जाते हैं तब भोजन एक घंटे पहले ही हो जाता है। प्रिंस आफ वेल्स की अवस्था में वे पार्लिमेंट में नित्य जाते और वहां दिल लगाकर सब बातें सुनते थे। परन्तु अब 'राजा' होने के कारण वे ऐसा नहीं कर सकते। अब सिर्फ पार्लिमेन्ट के रिपोर्ट और दैनिक समाचार पत्रों के लेख पढ़कर ही वे सब हाल जान लिया करते हैं। सायंकाल का एक घंटा अपने देश की दशा संबंधी बातें सुनने में व्यतीत किया जाता है। और फिर रात को उन बातों पर खूब विचार किया जाता है। रात्रि के सब काम पूरा करके वे मध्य रात्रि के पहले अपने शयन-गृह में जाते हैं।



पंचम जार्ज।
(इग्लैन्ड में इनके बराबरी का निशानेबाज दूसरा नहीं है। आप फुरसत के समय हाथ में बंदूक लेकर जंगल में सदा घूमते रहते हैं।)



(बादशाह को घुड़दौड़ का भी बहुत शौक है। आप न्यूबरी और बालेन्स की घुड़दौड़ देखने जा रहे हैं।)

### बादशाही मर्जी।

इंग्लैन्ड की बाकायदा राज्यपद्धति के अनुसार बादशाह सब काम काज किया करते हैं। अपने मंत्रियों की बातें ध्यानपूर्वक वे सुन लिया करते हैं। जब उन्हें कोई प्रस्ताव करना होता है तब वे उसकी सूचना अपने मंत्रियों को देते हैं और उस विषय पर उनके साथ चर्चा करते हैं। यदि उनके विचार मंत्रियों को पसंद नहीं होते तो वे कभी आग्रह नहीं करते। यद्यपि वे जानते थे कि ट्रिपोली में युद्ध क्यों और कैसे हुआ और यद्यपि उन्हें इस बात पर बहुत आश्चर्य मालूम हुआ कि इटली ने एकदम युद्ध आरंभ कर दिया, तथापि उन्होंने कहा कि 'यह हमारा निजी मत है—ऐसा न समझना चाहिये कि यह हमारा सरकारी मत है।' वे इस बात को बिलकुल पसंद नहीं करते कि हर काम में "बादशाही मर्जी" का दखल बना रहे। अपने निजी कारबार में भी वे दुराग्रही नहीं हैं। इस पर से यह न समझना चाहिये कि यदि कोई आदमी उनकी आज्ञा उल्लंघन करे तो वे चुप रह जाते हैं—कुछ करते नहीं। हाल्ही की बात है कि बादशाह ने अपने एक अफसर से कुछ लिखने को कहा और जो जो बात लिखने की थीं वे सब अच्छी तरह समझा दी गईं, परन्तु इस आदमी ने समय बचाने के लिए अपने ही मन से उस लेख में कुछ 'सुधार'—अदल-बदल—कर लिया। जब बादशाह ने देखा कि यह लेख हमारी आज्ञा के अनुसार नहीं लिखा गया है तब उन्होंने वह कागज फाड़कर रद्दी की टोकरी में फेंक दिया और बड़ी गंभीरता से कहा "मिस्टर, यदि कोई हर्ज न हो तो यह काम अब हमारी इच्छा के अनुसार कर लिया जावे।" नियत समय पर और शीघ्रता से सब काम करना बादशाह को बहुत पसंद है। जब कोई आदमी अपने काम में ढीलापन, बेपरवाही या टालमटोल करता है तब उन्हें यह बात बिल्कुल अच्छी नहीं लगती।

### बादशाह और विदेशी राज्य।

रशिया के जार, जर्मनी के कैसर, इटली, स्पेन, ग्रीस और नार्वे के राजा तथा अन्य देशों के राजा लोगों के साथ बादशाह का पत्रव्यवहार बहुत होता है। उन्हें यह जानने की बहुत इच्छा होती है कि सुधारे हुए सभ्य देशों में—विशेषतः जिनका इंग्लैन्ड से संबंध है उन देशों में—क्या क्या हो रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य के विषय में वे सदा ही कुछ न कुछ बात अपने सेक्रटरी से पूछा करते हैं। ये शीघ्र ही विदेश यात्रा के लिए जानेवाले हैं।

---



श्रीकृष्ण-शिष्टाई।

चित्रमय जगत

वर्ष ३ ]  पौष सम्वत् १९६९ विक्रमी—जनवरी सन् १९१३ ईसवी।  [ अंक १

## परम पिता का आदेश।

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः
  समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा
  नाभिमिवाभितः॥

अथर्व० का० ३ सू० ३० मं० ६।

सम सम सब का हो अन्न औ नीर-पान
  सब मनुज जग में जोड़ता हूं समान।
मिल कर तुम पूजो ईश को लोग सारे
  जिस विधि पहिये की नाभि में सर्व आरे॥

---

# चित्तशुद्धि।

Blessed are the pure in heart for they shall see God. This sentence alone would save mankind if all books and prophets were lost.

Swami Vivekananda.

एक महात्मा का अनुभवयुक्त वचन है कि, "यदि चित्त शुद्ध है तो शत्रु मित्र हो जाते हैं, व्याघ्र, सर्प, आदि दुष्ट जीव भी प्यार का बर्ताव करते हैं, विष अमृत हो जाता है, दुःख सुख का फल देता है, अग्निज्वाला शीतल हो जाती है। उसका वह शुद्ध अन्तःकरण सारे जीवों के अन्तःकरण से मिल कर एक हो जाता है।" परन्तु परमात्मा की कृपा से ही चित्तशुद्धि प्राप्त होती है।

वनस्पतिशास्त्र का एक नियम है कि बीज की जड़ जिस प्रमाण से नीचे जायगी उसी प्रमाण से उस बीज की बाढ़ या फलरूपता होगी। यह नियम प्रत्यक्ष दर्शनीय और अनुभवनीय है, अतएव इसकी सत्यता के लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। हम बाग-बगीचों में हवा खाने के लिए सदा जाया करते हैं, वहां देखिये कि जिस वृक्ष की जड़ें नीचे तक गई हैं दूर तक फैली हैं वही वृक्ष विस्तृत है और उसी वृक्ष में अन्य वृक्षों से अधिक दृढ़ता है। इसके विरुद्ध जिसकी नीचे तक भीतर नहीं फैली उस वृक्ष का विस्तार भी उतना बड़ा नहीं और उसकी दृढ़ता भी कम है। सृष्टि के आदर्श के ऐसे अनेक सत्य रोज के व्यवहार में देखते हैं और उन्हें प्रत्येक मनुष्य समझ सकता है। इन सत्यों का इस विषय से जितना और जैसा सम्बन्ध है उतना ही और वैसा ही सम्बन्ध आत्मिक उन्नति के काम में, सामाजिक तत्त्व में राष्ट्रीय उन्नति में और सांसारिक सुखप्राप्ति करने के मार्ग में चित्तशुद्धि का है। चित्तशुद्धि से मार्ग के अनेक विघ्न नष्ट हो जाते हैं। और चित्तशुद्धि से प्रत्येक कार्य सम्पादन करने के मार्ग पर बिजली का प्रकाश पड़ता है। मन जितना ही अधिक निर्मल होगा उतना ही मानसिक अथवा आत्मिक उन्नति का मार्ग अधिक सुलभ होगा। निष्पाप, निष्कलंक, पवित्र और प्रसन्न अन्तःकरण ही आत्मिक उन्नति साध सकते हैं। ऐसे अन्तःकरणों पर ही परम पिता परमात्मा की कृपा पड़ते होती है। ऐसे अन्तःकरणों के प्रकाश में ही राष्ट्रीय उन्नति का मार्ग प्रकाशित होता है। और ऐसे ही शुद्ध अन्तःकरण सुखदुःख के द्वन्द्वों से निर्वाह पाकर सदा यशस्वी होते हैं। अतएव चित्तशुद्धि की अत्यन्त आवश्यकता है।

बीज जैसा बुराभला होगा वैसा ही बुराभला अनाज पैदा होगा। जमीन यदि कसदार होगी, खूब कमाई गई होगी तो उस जमीन में अनाज भी उत्तम और कसदार पैदा होगा और जमीन यदि ऊसर होगी तो उसमें चाहे जितना उत्तम बीज बोया जायगा, परन्तु अनाज अच्छा नहीं पैदा होगा। व्यवहार में यदि यह नियम हम स्वीकार करते हैं तो फिर उच्चतम विषय में इससे इन्कार कैसे कर सकते हैं? सृष्टि गुरुओं के गुरुओं की गुरु है। आज तक जितने तत्त्वज्ञानी हो गये हैं और आगे होंगे उन सभी को इस सृष्टि ने अपनी व्याख्यानशाला में उपदेश दिया है और आगे भी इसी प्रकार देती रहेगी। सृष्टि का उपदेश काल देश और कारण से बद्ध नहीं है। वह त्रिकालाबाधित है और उसके नियम व्यवहार की ही तरह उच्चतम विषयों में भी मानने ही चाहिए। जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में है। बस, यही नियम समझना चाहिए।

इस धर्मभूमि में जितने धर्मवीर और राष्ट्रवीर हो गये उन सब ने चित्तशुद्धि का मार्ग पहले पकड़ा है। तुलसीदास, कबीरदास, रामदास, नानकगुरु इत्यादि धर्मवीरों और राणा प्रताप, शिवाजी महाराज इत्यादि राष्ट्रवीरों ने अपने अपने चित्त की भूमि पहले तैयार की। इतिहास उपलब्ध है और चाहे कोई उसे ऊपर ऊपर उड़ाने का प्रयत्न करे, तथापि उन वीरों के परिश्रम को देख कर उसे दांतों तले उंगली दबानी ही पड़ेगी। साहित्य-सेवा और चित्तरंजन के नाते से यह काम अत्यन्त ही मनोरंजक है और परमेश्वर करावेगा या वैसा अवसर आवेगा तो यह काम फिर किसी मौके पर उपस्थित किया जायगा परन्तु आज मुख्य विषय चित्तशुद्धि का है और इसीका विचार करना है।

श्रीसमर्थ रामदासस्वामी ने "मन के श्लोक" नामक एक पुस्तक मराठी में, भुजंगप्रयात वृत्त में, संग्रह की है। उसके कुछ श्लोकों का समश्लोकी और समवृत्त अनुवाद हमारे पाठक पिछले अंकों में पढ़ चुके हैं। इन श्लोकों की स्फूर्ति के इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं तब मालूम होता है कि श्रीसमर्थ ने अपनी चित्तशुद्धि के लिए ही यह भारी प्रयत्न किया था। बुद्धि में अन्तर्मुखता आये बिना अन्तःकरण के पटल खुले नहीं होते और अन्तःकरण के पटल खुले बिना आत्मानुभूति नहीं होती। अन्यत्र अपनी बुद्धि अन्तर्मुख करने के लिए कितने कष्ट कितने शारीरिक दुःख, कितने संकट और कितनी मानसिक यातनाएं उन्हें भोगनी पड़ीं, इसकी कल्पना भी सहृदय ही कर सकते हैं। हमारे स्वभाव में कौन कौन से दुर्बल मनोविकार हैं? कौन कौन सी वासनाएं मन को खींचती हैं? आत्मा की स्वतन्त्रता कब और कैसे गिर पड़ती है? आत्मिक उन्नति के मार्ग में विघ्न डालनेवाली वृत्तियां कैसी उपजती हैं या उनकी बाढ़ क्यों होती है? इत्यादि अनेक प्रकार की बातों का विचार करके रोग की जांच दृढ़ता से करके निदान करके उस रोग हटाने के लिए उन्होंने कितने कष्ट किये होंगे इसका मानसशास्त्र की दृष्टि से और तत्कालीन परिस्थिति से तादात्म्यता करके यदि कोई कुछ भी विचार करेगा तो चित्तशुद्धि का महत्त्व उसके ध्यान में आ जायगा और उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहे बिना न रहेंगे।

"हे रामचन्द्र! यह मेरा चंचल मन तेरे बिना नहीं रहता, तेरे बिना मैं इसे सहन नहीं कर सकता हूं"।

अथवा —

"मन की चचलता दूर होती नहीं, स्वजनों का मोह घेरे हुए है ! हृदय का निश्चय ठीक नहीं रहता, इसी लिए, हे भगवन ! मैं दीन-वाणी से आपको पुकारता हूँ !"

अथवा —

"हे रघुनाथजी, इस दीन के जन्मजन्मान्तर का अहकार विनाश कीजिए !"

अथवा —

"हे महाराज, जल्दी दौड़ो, जल्दी दौड़ो ! अब कहा तक आप हमारी परीक्षा लेंगे ? प्राण जाते हैं ! अब भी आपको न जाने क्यों दया नहीं आती ! भगवन, शीघ्र ही आइये !"

इस प्रकार जब वे मनोभाव से गद्‌गद् होकर जब वे प्रार्थना करते होंगे तब उनके अन्त करण के पड़दे ढीले होकर किस प्रकार गिर पड़ते होंगे उसका स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नहीं। मन के शुद्धीकरणार्थ उन्होंने कितनी तपस्या की उसका चित्र खीचने की शक्ति उन्हींके समान समर्थों में हो सकती है ! २४ वर्ष उन्होंने शुद्धीकरण का हल जोता और इस प्रकार से अन्त करण को घिस घिस कर उसमें पारदर्शकत्व लाये तब कहीं उन्हें "अह ब्रह्मास्मि" का अनुभव हुआ ! विशेष खुलासा करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु श्रीरामदासस्वामी के समय की दशा कैसी थी ? उनका स्वभाव कैसा होगा ? मानवी स्वभाव-धर्म के अनुसार परिस्थिति का परिणाम उनके मन पर कैसा कैसा होते गया और उस परिणाम के कारण आत्मिक उन्नति में कैसे कैसे विघ्नों का आना अपरिहार्य था ? अपने मन को वे कैसे खींचते थे ? अपने स्वभाव की परीक्षा उन्होंने कैसे की थी ? भिन्न भिन्न प्रसगों से निराशा कैसे आती थी ? उसका प्रतिकार करने के लिए उन्होंने मन को कैसे समर्थ किया ? इत्यादि प्रश्नों* का स्पष्टीकरण यदि प्रत्येक मनुष्य श्रद्धापूर्वक, परन्तु विचार से, करने लगेगा तो उस विचार की प्रत्येक लहर से उसके मन की ग्रन्थिया छूट जायगी ! वृत्ति में अन्तर्मुखता आवेगी ! और क्षणभर, निस्सन्देह उसे मालूम होगा कि मानो हम स्वर्गसुख की माधुरी ही चख रहे हैं ! धन्य ! धन्य वह क्षण !

महाराष्ट्र-साधुवर्य तुकाराम ने भी अपनी आत्मस्थिति का जो वर्णन किया है और मनादि इन्द्रियों को जो उपदेश दिया है उन्हें देखने से जान पड़ता है कि उन्होंने भी चित्तशुद्धि के लिए बड़ा परिश्रम किया था। वे कहते हैं —

हे नारायण, यह मेरा मन बड़ा ही चचल है; पलभर भी स्थिर नहीं रहता, अब आप देरी न कीजिये ! जल्द दौड़िये ! मैं दीन अत्यन्त दु खी हूँ ! इन्द्रियों के वश होकर मेरा चित्त डवाँडोल हो रहा है ! मेरा कोई वश नहीं चलता, आपके भरोसे पर हूँ।"

यही साधु आत्मस्थिति का वर्णन करके कहते हैं, "इस मन को यदि रोकता हूँ तो यह और भी अधिक धड़पड़ करता है और मन मानी ओर कूदता है" एक जगह कहते हैं, "अरे बदमाश मन तुझसे क्या कहूँ !" इसी प्रकार चित्तशुद्धि के लिए वेगपूर्वक घर्षण करके जब अन्त करण का पारदर्शकत्व प्राप्त कर दिया तब तुकाराम महाराज देखिये क्या कहते हैं —

"वृक्षवल्ली और वनचर हमारे साथी हैं, पक्षी भी सुस्वर से प्रार्थना करते हैं, अतएव हमें एकान्तवास ही रुचता है, गुणदोषों का हमें स्पर्श भी नहीं। आकाश हमारा मडप है, और पृथ्वी हमारा आसन है; हमारा मन वहा रममाण होकर क्रीड़ा कर रहा है। कथा और कमडलु देह के उपचार हैं। वायु अवसर जतलाती है। यथारुचि हरिकथा का भोजन हम सेवन करते हैं !"

ये तुकाराम महाराज के अनुभव की बातें हैं, इसी लिए वे कहते हैं कि पहले मन प्रसन्न करो !

ये तो दो सौ वर्ष पहले की बातें हुईं, पर कलकत्ते के पूज्यपाद श्रीरामकृष्ण परमहस ने आत्मिक उन्नति के लिए, अनुकूल स्वभाव बनाने के लिए-चित्तशुद्धि के लिए-कैसे कैसे उपयोग किये, सो सभी को मालूम हैं। मोह और लोभ का भास न लगने के लिए एक हाथ में सोने का टुकड़ा और दूसरे हाथ में मिट्टी का ढेला लेकर सोने को मिट्टी और मिट्टी को सोना कहने का जब वे अभ्यास करते तब उसका प्रभाव उनके मन पर क्या होता था, सो सभी जान सकते हैं। उत्कट भक्ति से आतुर होकर जब वे यह कहते कि, "हे माता, अब तू मुझे कब दर्शन देगी ?" तब उनकी मानसिक स्थिति का प्रतिबिम्ब कितना सुन्दर पड़ता होगा। चित्तशुद्धि का यह अभ्यास तो देखिये ! यह व्यावहारिक योगसाधन कितने ऊचे दर्जे का है ? फिर अद्‌भुत सामर्थ्य उनमें क्यों न उत्पन्न हो ? दिव्य दृष्टि से दूर दूर के अन्त करण जानने की शक्ति उनमें क्यों न आवे ? समतोल रहने की कला जिससे सध गई समझ लो कि वह चित्तशुद्धि का काम कर चुका। चित्तशुद्धि ही की आवश्यकता है। चित्तशुद्धि की पेटिका में सुखसर्वस्व के रत्न भरे हुए हैं। अतएव यह पेटिका हमें अपने हाथ में कर लेनी चाहिए।

ध्यान में रखिये कि चित्तशुद्धि की किश्त भरे बिना उच्चतम साध्य की बीमा कम्पनी के सभासद आप कदापि नहीं हो सकते। यह अवघड घाट पार किये बिना आप देवता के दर्शन कर नहीं सकते।

चाहे क्षुद्र कार्य हो, चाहे उच्च हो, उसके सिद्ध करने का गुरु मत्र चित्तशुद्धि है ! चित्त शुद्ध हुए बिना कार्य सिद्ध किया ही नहीं जा सकता। जरा गभीर विचार कीजिए। कार्य पर आपका मन जितना ही प्रतिबिम्बित होगा उतना ही आपका कार्य सिद्ध होगा। ध्यान में रखिये। जैसा दाम वैसा काम। आपका दाम और उससे होनेवाला काम-ये दोनों समप्रमाण में हैं-विषम में नहीं !

"मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयो।"

यह सूत्रमय वचन आज कितने ही शतकों से चिल्ला चिल्ला कर यही तत्व प्रतिपादन कर रहा है। मन की शक्ति ज्यों ज्यों बढ़ेगी, उसके पड़दे ज्यों ज्यों गिरेंगे, मैल ज्यों ज्यों दूर होगा त्यों त्यों उन्नति का कार्य सुलभ होगा।

उस सर्व प्रकाशक को पाने ही के लिए आत्मानुभूति की आवश्यकता है। आपको उजेला चाहिए ? यह सच है, अधेरे में वस्तु दिखती नहीं। फिर कमरे के द्वार बन्द करने से और खिड़कियों के पड़दे डाल देने से प्रकाश भीतर कैसे आवेगा ? द्वार खोलिये, खिड़कियों की झापें खोल दीजिए, पड़दे उठा दीजिए, फिर देखिये प्रकाश भीतर आता है या नहीं ! स्वभावरूप कमरे की, अच्छी तरह आखें खोल कर परीक्षा कीजिए, यह देखिये कि कौन कौन सी दुर्बल मनोवृत्तिया लिपट रही हैं, इस तरफ ध्यान दीजिए कि कितने दोषों का कूड़ाकचरा लगा हुआ है, सावधान बुद्धि से इस बात का विचार कीजिए कि मनोवृत्तियों में किस किस प्रसग पर कैसा कैसा परिवर्तन होता है, बस, ऐसा करने से कार्यसिद्ध होने में विलम्ब नहीं लगेगा। सूक्ष्म दृष्टि से आखेट का प्रदेश, दरीखोरिया तक, देखकर, रास्ते बन्द करते हुए, भीतर प्रवेश करके, बड़ी दक्षता से, सारे सावजों को बाहर की ओर घेर लाइये ! जब तक इन चचल मनोवृत्तियों के सावज बाहर की ओर घेर कर नहीं लाये गये तब तक आप चाहे बन्दूकें दागिये, चाहे तोपें उड़ाइये, पर वे बाहर नहीं आ सकते। वे हाथ से निकल जायँगे अथवा इस प्रकार छिप कर बैठ रहेंगे कि आप क्षणभर के लिए ऐसा समझ लेंगे कि जैसे वे भग गये हों ! पर सावधान रहिए, ये सावज बड़े ही होशियार हैं ! साराश, अपनी भूलें और अपने दोष जिसे मालूम होने लगे वही मार्ग पर लगा ! और इसी लिए चित्तशुद्धि की आवश्यकता है !

भाइयो ! आप यह न समझिये कि आत्मिक उन्नति करनेवालों को ही चित्तशुद्धि की आवश्यकता है और अन्य लोगों को नहीं। ध्यान में रखिये कि चित्तशुद्धि से ही हम इह लोक को स्वर्गधाम बना सकते हैं। हमारा चित्त यदि शुद्ध रहेगा, कुविचारों की हवा यदि उसमें न लगेगी, दुर्बल, क्षुद्र अतएव त्याज्य मनोविकारों के वश में यदि हमारा चित्त न आवेगा तो इस जगत् के न जाने कितने ही विघ्नों का किला ढह पड़ेगा ! सारे दु ख गलित होकर नष्ट हो जायँगे और किसी मनोहर, रम्य उपवन के समान-फूले हुए उपवन के समान-यह ससार मनोहर देख पड़ने लगेगा ! परन्तु सिर्फ चित्तशुद्धि के अभाव में, नाना प्रकार के विषम भावों के कारण, हम इस जगदुद्यान को कितना नष्ट कर रहे हैं। शहा हा ! भिन्न भिन्न मनोवृत्तियों को अविचार से अपने हृदय में लगा कर हम अपना घर नानाविध सकटों से कैसा भर रहे हैं और हम स्वय अपने सुख सुमन अनजानपन से कुचल रहे हैं ! क्या यह बात कभी किसीके ध्यान में आती है, क्या हम जानते हैं कि हमारे विचार से ही हमारा आत्मा बनता है और हमारे ही दुष्ट तथा घातक विचारों का जल पीकर हमारा सौख्य फल कड़ुआ हो रहा है ? क्या हम जानते हैं कि दूसरे का बुरा चेतने से उसका कटु फल हमें ही चखना पड़ता है ? क्या हम समझते हैं कि यह ससार कुछ हमारी मौरूसी जमीन नहीं है, अनेक स्थलों में से यह भी एक नश्वर स्थल है ? क्या यह बात ध्यान में रख कर हम चलते हैं कि यह देह क्षण भगुर है, न जाने कब काल हमें अपने गाल में दबा लेगा और हम सब को मरना है ? अहा ! इतनी बातें यदि यहा होने लगें तो हमारे जगत् से अधिक सुखदायक इन्द्र की अमरावती भी नहीं हो सकती। ससार क्या स्वर्गभुवन नहीं हो सकता ? हा, हो क्यों नहीं सकता ! कैसे ? चित्तशुद्धि के प्रभाव से !!

षड्विध शत्रुओं के टेनिसकोर्ट में हमने अपने चित्त को गेंद बना कर छोड़ दिया है। चित्तशुद्धि के क्वारन्टाइन में हमने अभी अन्त करण की तलाशी नहीं ली, निस्वार्थबुद्धि का फिनाइल और शुद्ध प्रेम का प्युरीफाइग सोल्यूशन हमने अभी तक भीतर नहीं डाला। इन्द्रियां अभी स्वच्छन्द वर्ताव कर रही हैं। चित्तशुद्धि का उच्च झगा शरीर में न पहनते हुए विषम कल्पना के मैले अंगरखे से ही हम दरबार हाल में प्रविष्ट होना चाहते हैं, इसी लिए हमारा कल्याण नहीं होता ! यह कितनी बड़ी भूल है ? यह अज्ञान तो देखिये !

* श्रीसमर्थ रामदासस्वामीकृत "दासबोध" का हिन्दी अनुवाद चित्रशाला प्रेस से मगाइये। इसमें दिये हुए समर्थ के चरित से और स्वय इस ग्रन्थ से आप बहुत अच्छी तरह इन "प्रश्नों का स्पष्टीकरण" कर सकेंगे। सम्पादक।

कहिए, राष्ट्रीय सभा के मंडप में आप प्रवेश करना चाहते है? तो फिर प्रतिनिधि की फीस दिये बिना अथवा दर्शक की फीस दिये बिना आप भीतर कैसे जा सकते है? पहले चित्तशुद्धि कीजिए और फिर बाद को, दरबारहाल में आइये।

इससे ध्यान में आ सकता है कि आत्मिक उन्नति ही के लिए नहीं, किन्तु राष्ट्रीय उन्नति के लिए भी चित्तशुद्धि की आवश्यकता है। अनेक व्यक्तियां मिलने से राष्ट्र बनता है, और इस लिए ऐसी अनेक व्यक्तियों के एकीभवन पर, प्रेमैक्य पर, राष्ट्र की उन्नति निर्भर रहती है। अहङ्कार से उत्पन्न होनेवाली जड़ कल्पनाओं को दूर हटा कर निस्वार्थबुद्धि से, निस्तुल्य प्रेम से और समतुल्य सम भावना से जब तक अनेक व्यक्तियां काम न करने लगेंगी तब तक राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती और इस लिए ऐसी व्यक्ति निर्माण करने के लिए भी चित्तशुद्धि की अत्यन्त आवश्यकता है। चित्तशुद्धि के बिना ऐसी वृत्ति निर्माण ही नहीं होती। शील बनाना पड़ता है और ऐसा शील जब बनता है तभी कार्यशकट धड़ाके के साथ आगे दौड़ने लगता है। स्वामी विवेकानन्द मेघगर्जना से प्रकट करते हैं कि, "जिसने अपना आत्मा पूर्णशुद्ध, पूर्णपवित्र किया है वही मनुष्य अन्य लाखों उपदेशकों से अधिक काम कर सकता है।"

कभी कभी स्वभाव की विषम भावनाओं के कारण और कितने ही बार परिस्थिति की प्रतिक्रिया से स्वभाव में अशुद्ध भाव उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है और होता भी है! पर उन्हें यदि उसी समय मार डाला, अपने ही स्थान (Stand point) से उनका विचार न करते हुए, दूसरी दृष्टि से यदि हम उनका विचार करने लगें और यह समझ कर यदि हम अपना संशोधन करने लगें कि जिसके विरुद्ध परिस्थिति अथवा विषम टीका का फल हमें चखना पड़ता है वह स्थिति हमारे चित्त के बिन्दुमात्र कुविचार का बढ़ा हुआ वृक्ष तो नहीं है—तो वे अशुद्ध भावनाएं फिर उत्पन्न नहीं हो सकतीं। वास्तव में ऐसी चित्तशुद्धि हम नहीं करते हैं और इसी कारण परस्पर-द्वेषभाव, अहङ्कार का बर्ताव, असमाधानवृत्ति, परोत्कर्षा-सहिष्णुता इत्यादि अनेक असमभावनाएं उत्पन्न होती हैं और इसके बाद ही कार्य की सुबकता नष्ट होती है, अतएव चित्त का समाधान यदि हम करें तो कितनी कार्यक्षमता हमारे शरीर में आ सकती है? आइये, हम चित्तशुद्धि से अपने चित्त को ऐसा वाटरप्रूफ बनावें कि जिससे दुःख, नैराश्य, संकट, मानापमान, अहङ्कार, लोभ, ममता, मोह, इत्यादि दुष्ट विचारों की वर्षा हमारा कुछ न कर सके। आइये, स्वामी रामतीर्थ की राष्ट्रीय तपस्या की व्याख्या ध्यान में रख और चित्तशुद्धि करें। ज्यों ज्यों चित्तशुद्धि होती जायगी त्यों त्यों नवीन शक्ति निपजने लगेगी, नवीन जीवन बहने लगेगा, नवीन मधुर आजस्विता निर्माण होगी, विश्वव्यापी प्रेम के सुमन खिलने लगेंगे और फिर राष्ट्रीय उन्नति के लिए अनुकूल मार्ग आप ही आप तैयार हो जायगा। आइये, चित्तशुद्धि होने के बाद उच्चतम कार्यक्षमता का जीवन प्रवाहित होने लगेगा और वह जीवन बहने पर फिर सब मनोरथ पूर्ण होंगे। जहां आज तक पैर जमे नहीं वहां भी नवीन जीवन निर्माण होगा। और वह जीवन फिर नष्ट नहीं हो सकता है।

Truth crushed to earth
Shall rise again

अतएव चित्तशुद्धि की आवश्यकता है।

अच्छा, अब यह भी एक ओर रख दो, आत्मानुभूति की दिव्य सुगन्ध सूंघना आपके भाग्य में हो चाहे न हो, उसके लिए आप तैयार हो चाहे न हो, राष्ट्रकार्य की परवा करने की सुबुद्धि आप में हो चाहे न हो, तथापि अपने निज के सौख्य के लिए तो आप अवश्य ही लालच है और वह सौख्य भी यदि आप विपुलता से चाहते हों तो भी इस संसार में आपको किसी न किसी तरह चित्तशुद्धि कर लेनी ही चाहिए। चित्त शुद्ध हुए बिना गृहसौख्य का मधुर आस्वाद आप ले ही नहीं सकते। एक कहावत है कि एक बुड्ढी औरत एक दिन खेत में जाकर रो रही थी। पास ही एक गाय खड़ी थी। गाय ने उससे पूछा, "बहन तुम क्यों रोती हो?" सिसकते सिसकते औरत ने उत्तर दिया, 'क्या बतलाऊं बहन मैं अब इतनी बुड्ढी हुई, पर मुझे नहीं याद है कि मैंने ऐसा कभी किया हो कि नहीं कहीं लड़के, मुझसे न पूछते हुए ही, अपने लड़के को गाड़ी में लेकर, चले गए। मुझे उसकी निदिया तक बाड़ालिन ने नहीं लेने दी।'" इतना कहते कहते उसका कंठ भर आया और वह अधिक जोर से रोने लगी। इस पर गाय कहती है 'बुड्ढी इसमें तेरे रोने की बात सी बात हुई? लड़का है तो तेरी ही प्रार्थना से आया। वह तू ही तो है? फिर यदि तूने अपने से नहीं पूछा तो इसमें बुराई क्या? और रोने का कौन सा कारण हुआ? अरे, तुम मनुष्यों का यही हाल है। तुमसे तो हमीं अच्छे। लड़के में जब तक स्वावलम्बन नहीं आता तभी तक हम उन पर दृष्टि रखते हैं, उसको सम्हालते हैं, चाटते हैं, उसे यदि कोई पकड़ता है तो सींग मारते हैं। पर उसके बड़े होने पर हमें उसकी ऐसी चिन्ता नहीं रहती। हम ऐसा क्यों समझें कि वे हमारे मन के अनुसार ही चलें? क्या हम ईश्वर हैं?' गाय इस प्रकार कह रही था, उधर तन पर बैठी हुई चिड़िया ने भी उसीका समर्थन किया और दोनों उस बुड्ढी की नादानी पर खेद करने लगीं। बुड्ढी के अन्तःकरण में प्रकाश पड़ा और फिर कभी वैसा दुःख उसे नहीं हुआ! बात तो छोटी सी है पर तत्व देखिये। इसी प्रकार अन्य विषयों में भी, चित्तशुद्धि के अभाव के कारण गृहसौख्य मिट्टी हो जाता है। गार्हस्थ्य सुख का सच्चा स्वाद शुद्ध चित्त वाले स्त्रीपुरुषों को ही मिल सकता है। बाकी लोगों को सिर्फ नाममात्र का गृहसौख्य रहता है। पतिपत्नी-सम्बन्ध जब चित्तशुद्धिजन्य प्रेम से एकत्र होता है तभी गृहसौख्य की सच्ची माधुरी मिलती है। संशयित वृत्ति से, अज्ञान से, अशुद्ध भाव रख कर जब घर के लोग एक दूसरे के छिद्रान्वेषक बनते हैं और गालीगलौज का हंगामा जब शुरू होता है तब क्या उस घर में सुखदेवता रह सकते हैं? अस्तु हां। शुद्ध प्रेम का भोजन करके जिन्हें स्वर्गीय आनन्द भी तुच्छ लगना चाहिए वहीं एक दूसरे से टक्कर खाकर जब अपना घर नरक से भी दुःखदायक बना लेते हैं तब सुख के तारे कैसे चमक सकते हैं? आनन्द के कुसुम क्यों न कुम्हला जायें? अतएव, गृहसौख्य पाने के लिए भी चित्तशुद्धि की आवश्यकता है। यही क्यों विषम भाव जब मनुष्य के मन को बिगाड़ देगा तब क्या वह सुख का सच्चा स्वाद पा सकेगा? इस लिए वैयक्तिक सुख के लिए भी चित्तशुद्धि की जरूरत है।

अस्तु नाना प्रकार की आपत्तियों से आज कल मानवी जीवन का उपमर्द हो रहा है और नवीन पन्थराज की परन्तु सुधरी हुई प्राचीन परम्परा और नवीन भौतिकत्व का मेल यदि न हुआ तो यह आग और भी भड़क जायगी। ऐसे समय में शुद्ध चित्त रख कर निष्पाप, निष्कलंक और पवित्र आचरण का मार्ग यदि हम चलने लगेंगे तो हमारी उन्नति अवश्य ही होगी। इसके सिवाय हमारे अन्य बन्धुओं को भी सहायता मिलेगी। चित्तशुद्धि को कोई कोई अजगरवृत्ति या पंगुपन कहते हैं, पर यह बड़ी भारी भूल है। वास्तव उज्ज्वल कार्यतत्परता और शुद्ध प्रेम ही चित्तशुद्धि है। चित्तशुद्धि से शरीर में कार्यतत्परता अधिक आती है, कर्मयोग की ज्योति उमड़ती है, कर्तव्य का विचार आता है और षड्विध शत्रुओं का नाश होता है। चित्तशुद्धि से होनेवाले आनन्द की कल्पना कैसे अंकित की जाय? शब्द पंगु हैं, अतएव शब्दों के द्वारा उसका अंकित करना असम्भव है। हृदय-यमुना के तट में नाचते हुए गिरिधारी लालिया का ध्यान मनन करके निस्पृह, निष्काम वृत्ति से जब हम नाचने लगेंगे तब एक ही क्यों—सारे धर्मदेवता, सत्य देवता और प्रेमदेवता हमारे सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जायंगे। ब्रह्मानन्द का अमृत रस अन्तःकरण में भिरने लगेगा। आइये। उस आनन्द की कल्पना अनुभव से ही हो सकती है।

मानवी स्वभावधर्म ऐसा पाया जाता है कि उसे सब कुछ तो चाहिए, परन्तु श्रम करने को तैयार नहीं, देवता तो बनना चाहता है पर छाती तपने की शक्ति नहीं। परन्तु ऐसे निरुद्यमपन से कोई कार्य हो नहीं सकता। परिश्रम का द्रव्य दिये बिना माल मिल नहीं सकता। इस लिए आइये, अब अपना चरित्र बनावें, चित्तशुद्धि करें, अन्तःकरण को तपावें और सुलावें। बाहरी उपायों से भीतरी रोग दूर होना असम्भव जान पड़ता है। जब तक हम अन्तःकरण सुधारने का प्रयत्न नहीं करते तब तक वेदश्रुति का क्या उपयोग है? स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, [illegible] इतने ही से समाधान न होता हो तो स्वामी रामतीर्थ का यह कथन सुनिये —

[illegible]

सारांश जब तक आप स्वयं अपने आपको उपदेश न करेंगे तब तक दूसरे बड़े बड़े उपदेशकों के उपदेश से भी आपको कुछ लाभ नहीं हो सकता। स्वयं अपने गुणावगुण की समालोचना करते हुए अपने चित्त को सदा शुद्ध करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।



लक्ष्मी।

( १ )

कमल-नयन की है यह नारी।
परम सुन्दरी सिन्धुकुमारी ॥
रमा, इन्दिरा, हरिप्रिया, कमला।
हिरण्मयी, श्रीलक्ष्मी, विमला ॥

( २ )

मोती की माला पहने है।
मोती के ही सब गहने हैं ॥
मोती जड़ी किनारीवाली।
इसने साड़ी सजी निराली ॥

( ३ )

यह सरोज पर खड़ी हुई है।
अद्भुत शोभा बनी हुई है ॥
फैल रही द्युति चन्द्रानन की।
खिले पद्म हैं, छवि है सर की ॥

( ४ )

अति सुन्दर गर्दन टेढ़ी कर,
दोनों पाखें कुछ फैला कर,
बतकें कैसी तिरतीं तिरतीं!
इधर उधर सर में हैं फिरतीं!!

( ५ )

बाहर निकल रहा सित गज वर,
लिये सूंड में माला सुंदर ॥
इसे भक्ति से पहनाने को,
छटा मनोरम दिखलाने को ॥

( ६ )

मन्द मन्द यह है मुसकाती।
कमल करों में लिये सुहाती ॥
अभय दान देती सुख पाती।
मन चाहा वर दे हरषाती ॥

( ७ )

सारे जग की रक्षा करती।
दुख-दारिद्र सभी के हरती ॥
निशदिन इसका काम यही है।
जगजननी विख्यात यही है ॥

( ८ )

किसको नहीं लुभाती है यह?
किसके मन नहिं भाती है यह?
जो जो रम्य दृश्य हैं जग में,
लक्ष्मी ही तो है उन सब में ॥

( ९ )

इसकी कृपादृष्टि हो जिस पर,
होता है श्रीमन्त वही नर।
मूरख में भी यह मति ला दे,
झट-पट उसके दोष मिटा दे-॥

( १० )

सारी बिगड़ी बात बना दे,
जग में निर्मल कीर्ति बढ़ा दे,
महिपालों से मान दिला दे,
हाथी, घोड़े द्वार बंधा दे ॥

( ११ )

रूठ जाय यह कभी किसीसे,
घर-घर भीख मंगा दे उससे!
पढ़ना लिखना सभी भुला दे,
मान घटा दे मजे चखा दे!!

( १२ )

मैं तुझको नमता हूं माता!
हाथ जोड़ कर शीश झुकाता ॥
दयादृष्टि कर इस भारत पर,
सुख सम्पत इसके घर-घर भर!!

( १३ )

नया वर्ष हो सब सुखदाई!
पावे जन धन धान्य बड़ाई!!
ईति-भीति, दुख, रोग, नहीं हो!
सभी सुखी हों सभी सुखी हों!!

श्रीगिरिधर शर्मा।

---

# मिताहार।

आहार-फिर चाहे वह किसी प्रकार का हो-प्रत्येक जीव के लिए आवश्यक है। उसके बिना शरीर का पोषण हो नहीं सकता। उसी पर आरोग्यता का निर्भर है। जीवनसृष्टि में जिसके लिए रात दिन प्रयत्न हो रहा है वह आहार भी सृष्टि की अन्य अनेक बातों की तरह नियमबद्ध है। उसमें यदि जरा भी अन्तर पड़ा कि, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करनेवाले शरीरारोग्य में भी विकार होने लगता है और इससे बड़ी हानि होती है।

आहार करने में मितपन चाहिए। इससे हानि नहीं होती, शरीर हलका रहता है, प्रत्येक काम करने में उत्साह आता है, आरोग्यता रहती है। भोजन में यदि सदा मितपन रखा जाता है तो शरीर का भद्दापन दूर होता है और उसमें कस आता है। भोजन ऐसा होना चाहिए कि जिससे सब खाद्य पदार्थों का पचन हो और वह सब रसरूप से रक्त में भिद जाय। खाये हुए पदार्थों का जब अच्छी तरह पचन नहीं होता तब उसका बहुत सा भाग अपक्व दशा में रह कर मल के साथ बाहर निकल जाता है, अथवा आमस्थिति में वैसा ही अन्तड़ियों में रहता है। ऐसी दशा में भोजन करना न करना बराबर है। आहार में सदा योग्य प्रमाण से षड्स (पोषक पदार्थ) रहने चाहिए और मिताहार करने का व्रत पालन करना चाहिए।

बहुधा देखा जाता है कि लड़के को भूख न होते हुए भी उसकी मा उसके मुहँ में भोजन घुसेड़ती रहती है और वह अगर ओक देता है तो ऊपर से पीठ में वह एक घुम्मा लगा देती है। माता का यह सद्धेतु रहता है कि हमारा लड़का बहुत सा खावे और आरोग्य तथा बलवान् रहे और इसी सद्धेतु के कारण वह लड़के के खाने में जबरदस्ती करती है। पर उनके ध्यान में यह बात नहीं आती कि उनके इस सद्धेतु से सृष्टिनियमों में कदापि अन्तर नहीं आ सकता। अतएव यह बात उन्हें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि बिना भूख अथवा पेट भर जाने पर यदि लड़के के पेट में अन्न घुसेड़ा जायगा तो उससे लड़के को हानि हुए बिना कदापि नहीं रहेगी।

यह छोटे लड़कों का उदाहरण बड़े मनुष्यों के लिए भी लग सकता है। वे स्वयं विचारवान् होकर भी जान बूझ कर सृष्टि

नियम भंग करते हैं, अतएव उन्हें भी इस विषय में सावधान रहना चाहिए। निमन्त्रण वगैरह में, जहां समवयस्क लोग भोजन के लिए बैठते हैं, बहुधा लोग अधिक खा जाते हैं। जिसकी पचनशक्ति प्रबल होती है उस पर यदि ऐसा प्रसंग आया तो उसको शायद इससे एकआध बार विकार न होगा, तथापि, चूंकि वह जान बूझ कर मिताहार का नियम तोड़ता है, इस लिए कभी न कभी उसे अवश्य उसका प्रायश्चित्त मिलेगा।

अमिताहार के कारण आमाशय पर सदा की अपेक्षा काम का बोझा बहुत पड़ता है और इस कारण अनेक प्रकार के रोग होने की सम्भावना रहती है। अमिताहार से जो अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं उनमें आमाशय और अन्न के चालक अथवा वाहक ( Motor ) और स्पर्श ( Sensory ) ज्ञानतन्तु विकृति होना मुख्य विकार है। बद्धकोष्ठता सदा रहती है। पित्तविकार होते ही हैं। जिन्हें बहुत खाने की आदत है उनका चेहरा मलीन रहता है और मुख पर तथा शरीर के दूसरे भागों पर मल की फुड़िया उठती हैं, उनके श्वास में दुर्गन्ध आती है और वह निर्बल तथा मन्द होता है।

जिन पदार्थों में पोषक द्रव्य योग्य प्रमाण से नहीं रहते ऐसे पदार्थों का अमिताहार होने से पेट में पीड़ा उठती है, अस्वस्थता आती है और मृत्यु होती है।

अधिक भोजन करने से पाचक रस ( Gastric juice ) का आहार पर जो परिणाम होना चाहिए वह देर से होता है और आमाशय तथा अन्तड़ियों में जो पचनक्रिया होती है उसके होने में इतना समय लगता है कि दूसरी बार खाने पर भी पहले आहार की पचनक्रिया जारी ही रहती है। इस कारण अन्न वैसा ही अपक्व दशा में रहता है। आहार की पचनक्रिया जिस भाग में होती है उस भाग को कुछ न कुछ देर स्वस्थता मिलनी ही चाहिए। अमिताहार के योग से उस भाग में पचनक्रिया जारी ही रहती है। इस कारण वहां अन्न भरा रहता है और उस भाग को विश्रान्ति नहीं मिलती। इससे उस भाग की नैसर्गिक क्रियाशक्ति क्रमशः कम होती जाती है और इससे प्रत्येक रोग के होने की सम्भावना रहती है। और शरीर निर्बल होता जाता है। जो सदा अमिताहार करते हैं, जिनकी नैसर्गिक क्रियाशक्ति कम होती जाती है और जो सदा मिलावटी, बनावटी और अनियमित प्रमाण के पोषक पदार्थों वाला अन्न खाते हैं उनके शरीर में रोगजन्तु बढ़ते जाते हैं।

अमिताहार का अन्न आमस्थिति में रहता है और शरीरपोषण में उसका किसी प्रकार का उपयोग नहीं होता। चूंकि ऐसे अन्न पर पाचक रस का परिणाम नहीं होता, इस कारण वह सड़ जाता है और उससे एक प्रकार का विषारी पदार्थ बनता है। उससे आम वात, सन्धिवात मूत्रपिंडविकार अकालीन जरा, इत्यादि अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं।

उपर्युक्त वृत्तान्त से इतना ध्यान में आ जायगा कि जो मिताहारी हैं उनकी पचनक्रिया योग्य रीति से होती रहती है। इस कारण उनका खाया हुआ अन्न आमस्थिति में नहीं रहता। उनकी सारी इन्द्रियों की क्रिया योग्य रीति से होती रहती है। इस कारण सब अन्नमार्ग व्यवस्थित रहता है। ऐसी दशा में किसी प्रकार का भी रोगजन्तु शरीर में यदि चला जाता है तो उसे उसका पोषक पदार्थ और रहने के लिए जगह नहीं मिलती इस लिए वह मर जाता है और उससे किसी प्रकार की हानि होने का डर नहीं रहता।

शरीर से आरोग्य रहने के लिए मिताहार होना अत्यावश्यक है। यह होने के लिए एक ही उपाय है वह यह कि जहां यह मालूम हो कि पेट अभी कुछ खाली बना है कि थाली छोड़कर उठ जाना चाहिए। इस बात के लिए यथासम्भव सब को प्रयत्न करना चाहिए। यदि यह न हो सके तो कम से कम आठवाड़े में एक बार अवश्य ही "निराहार", "उपवास" अथवा "लंघन" कर डालना चाहिए। और यदि दिन में अमिताहार हो गया हो तो रात को कुछ न खाकर धीरे धीरे सिर्फ पानी पीना चाहिए। इससे भी बहुत लाभ होता है।

---

# स्वर्गीय पं० सखाराम गणेश देउस्कर।

कलकत्ते के सुप्रसिद्ध 'हितवार्ता' पत्र के सम्पादक पं० सखाराम गणेश देउस्कर का गत मास में देहावसान हो गया। ऐसा कौन सा साहित्यप्रेमी होगा जिसे कि आपकी अचानक मृत्यु से हार्दिक वेदना न हुई हो? श्रीयुत देउस्कर यद्यपि महाराष्ट्रीय थे, तथापि उनकी दो पीढ़ी बंगाल में ही हुईं, इस कारण उनकी जन्मभाषा बंगाली और दूसरी भाषा मराठी हो गई थी। देउस्कर जी पहले कुछ दिन बाबू कालीप्रसन्न काव्यविशारद के नेतृत्व में 'हितवार्ता' नामक बंगाली पत्र के द्वितीय सम्पादक हुए। बाद को बाबू कालीप्रसन्न की मृत्यु के बाद वे स्वयं मुख्य सम्पादक हुए। बंगाल प्रान्त में हितवार्ता पत्र का बड़ा मान है। ऐसे पत्र के मुख्य सम्पादक का मान प्राप्त करना सचमुच ही असामान्य बुद्धि का द्योतक है। देउस्करजी ने अपना यह कर्तव्य उत्कृष्ट रीति से बजाया। वे विद्वान, स्पष्टवक्ता और पूर्ण देशाभिमानी थे, बंगाली भाषा पर उनका अच्छा प्रभुत्व था, इस कारण उनके लेखों का बड़ा मान हुआ और बंगाली लोगों पर उनका अच्छा प्रभाव पड़ा। वे कट्टर स्वदेशभक्त थे अतएव बंगभंग के बाद, बंगाल की हलचल को उनकी सामर्थ्ययुक्त लेखनी से उत्तम सहायता मिली। दत्त, दादाभाई, डिग्बि प्रभृति महर्षियों के ग्रन्थों के आधार से इन्होंने "देशेरकथा" नामक वर्तमान दशा को दिखलानेवाली एक उत्कृष्ट पुस्तक लिखी। यह पुस्तक बंगाली लोगों में सर्वप्रिय हुई। थोड़े ही काल में उसकी चार आवृत्तियां निकल गईं। हिन्दी-भाषा में भी इसके दो अनुवाद निकले। परन्तु प्रेस ऐक्ट के अनुसार सरकार ने इस पुस्तक को जब्त कर लिया। देउस्करजी ने इस जब्ती पर हाईकोर्ट में अपील की; परन्तु आज तक फैसिला नहीं हुआ और अब तो उन सज्जन के न रहने के कारण इस प्रकरण का निपटारा होना असम्भव हो गया है। अस्तु।



श्रीयुत देउस्कर बड़े प्रभावशाली लेखक तथा सत्याग्रही थे। सूरत की राष्ट्रीय सभा के झगड़े के बाद 'हितवार्ता' पत्र के मालिक की ओर से देउस्करजी को अपने लेखों की नीति बदल देने के लिए सूचना मिली। परन्तु चूंकि वे समझते थे कि महात्मा तिलक का पक्ष न्याय का है; अतएव देउस्करजी ने तिलक की नीति पर टीका करने से इनकार किया और इसी कारण उन्होंने 'हितवार्ता' से अपना सम्बन्ध भी तोड़ लिया। इसके बाद वे बंगाल के राष्ट्रीय कालेज में मराठी भाषा और इतिहास के शिक्षक हुए। उन्होंने कई निबन्ध और पुस्तकें लिख कर बंगाली लोगों को महाराष्ट्र इतिहास से अच्छा परिचय करा दिया। बंगदेश में शिवाजी-उत्सव होने में इन्होंने बहुत श्रम लिया। इधर कुछ दिनों से देउस्करजी को 'हितवार्ता' पत्र का चालकत्व फिर मिल गया था, परन्तु अकस्मात् पत्नीविरह से उनकी प्रकृति बहुत अस्वस्थ हो गई थी; अतएव वे पहले की तरह अपना कर्तव्य बजाने में लाचार हुए। प्रकृति दिन पर दिन बिगड़ती गई और अन्त में उनका शरीरान्त ही हो गया।

देउस्करजी विशेषतः सरस्वती के भक्त थे अतएव लक्ष्मी उनसे पहले ही से दूर थी परन्तु सन् १९०८ में हितवार्ता का सम्बन्ध छूट जाने से और आगे फिर 'देशेरकथा' के जब्त हो जाने से तथा नेशनल कालेज से सम्बन्ध छूट जाने पर वे और भी तंग हो गये। उनके अभी एक अनब्याही लड़की भी है। उसके पालन-पोषण और शिक्षण की सारी ज़िम्मेदारी अब उनके मित्रों और शुभचिन्तकों पर ही आ पड़ी है। ८ दिसम्बर को कलकत्ते में बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती के सभापतित्व में उनकी मृत्यु पर शोकप्रदर्शनार्थ सभा हुई थी। इस सभा में देउस्करजी की लड़की का प्रबन्ध करने के लिए कुछ लोगों की एक कमेटी नियत की गई है। अब, अन्त में हम परमात्मा से यही चाहते हैं कि निर्मल बुद्धि से देश-सेवा करनेवाले देशभक्त देउस्करजी की अनाथ पुत्री को उचित सहायता मिले और उनकी आत्मा को परलोक में शान्ति मिले।

# मि० थियोडोर रूज़वेल्ट।

अमेरिका के "युनाइटेडस्टेट्स्" में लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति प्रचलित है। इस राज्यपद्धति में जो बुद्धिमान् और कर्तव्यनिष्ठ पुरुष अपने बुद्धिवैभव से, कर्तृत्वशक्ति से और लोकसेवा से प्रख्यात होकर युनाइटेडस्टेट्स् के अध्यक्षपद पर आरूढ़ हुए उनमें थियोडोर रूजवेल्ट प्रमुख गिने जाते हैं। आज हम उनका संक्षिप्त चरित्र अपने पाठकों को भेट करते हैं।



## जन्म और बालपन।

२७ अक्टूबर सन् १८५८ में थियोडोर रूजवेल्ट का जन्म हुआ। इनके पिता न्यूयार्क शहर के निवासी थे और अपने पुत्र पर उनका बड़ा प्रेम था। मि० रूजवेल्ट बालपन में बिलकुल निर्बल और कृश थे, आँखें खराब हो गई थीं और खांसी से बीमार रहते थे। "हाय-पाय लकड़ी, पेट धमकड़ी" वाली कहावत चरितार्थ होती थी। तथापि इस निर्बल शरीर का मन अवश्य ही बलशाली था, और इस बलशाली मनवाले बालक ने आगे चल कर अपने परिश्रम से अपनी शारीरिक शक्ति भी अच्छी बढ़ा ली, यहां तक कि आज उनकी गणना अत्यन्त बलवान् पुरुषों में की जाती है। उनके बालपन की एक कहावत से यह बात अच्छी तरह जान पड़ती है कि उस समय से ही उनका मन कितना बलशाली है। इनके लड़कपन में एक बार इनके पिता कहीं दूर प्रवास करने के लिए चले। उस समय घर के लोगों से बिदा होते समय उन्होंने अपने छोटे से 'टेड' से विनोदपूर्वक कहा, "टेड, तू अपनी मा को अच्छी तरह रख।" टेड ने "बहुत अच्छा" कह कर अपने पिता की आज्ञा स्वीकार की, और उस दिन रात को नित्य नियमानुसार टेड ने परमेश्वर की प्रार्थना की। प्रार्थना में टेड ने कहा, "भगवन्! दूर देश में प्रवास के लिए गये हुए मेरे पिता की रक्षा कीजिए, उसे अच्छी तरह रखिये।" इसके बाद फिर कहा, "और माता के विषय में कहिए तो उसको मैं सम्हालता रहूँगा।" यद्यपि उस समय उस छोटे से टेड में अपनी मा को सम्हालने का सामर्थ्य न होगा, तथापि इस कहावत से उसके मन का बल और मातृपितृ-सम्बन्धी प्रेम अवश्य ही प्रकट होता है।



थियोडर रूजवेल्ट ( अमेरिका के भूत पूर्व अध्यक्ष )।

## शिक्षा।

टेड पाठशाला का पाठ अच्छी तरह याद करके नहीं जाता था, परन्तु उसे पुस्तकावलोकन से बड़ा प्रेम था। अतएव उसने पहले कहानियों की पुस्तकें ही पढ़ीं और उत्तर और के समुद्री चोरों के अद्भुत कृत्यों की और विलक्षण शारीरिक सामर्थ्य की कहानियां पढ़ कर टेड को इच्छा हुई कि उन्हींके समान शारीरिक बल हमें भी प्राप्त करना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं हुआ कि यह बात उसके मन में आकर तुरन्त ही निकल गई हो। उसने भिन्न भिन्न खेल खेल कर, कसरत करके, व्यायाम से, अपनी निर्बलता दूर करने का प्रारम्भ किया। दौड़ना, कुश्ती लड़ना, 'बॉक्सिंग', 'पोलो', इत्यादि में निष्णात हो गया; और स्कूल की शिक्षा समाप्त करके कालेज में गया हुआ टेड शारीरिक बल में किसी भी हृष्टपुष्ट मनुष्य से कम न था। जंगल में फिरते हुए वृक्षलता और उन पर बैठ कर चहलपहल करनेवाले पक्षियों के सहवास में रहने का प्रेम टेड को लड़कपन से था, और हितोपदेश, पञ्चतन्त्र या इसापनीति की कहानियों के समान कहानियाँ अपने छोटे भाई-बहनों को वह सदा बतलाता रहता। उसकी कहानियों के पशुपक्षी मनुष्यों के समान बोलनेवाले होते थे और कहानियों के नायक कभी कमजोर नहीं रहते थे, किन्तु क्रिश्चियन-पुराणों के 'हर्क्युलिस' अथवा 'सेम्सन' के समान शक्तिशाली, पराक्रमी और महा बलवान होते थे। जब से टेड स्कूल में जाने लगा तब से उसने शारीरिक शक्ति का महत्व जाना और कसरत करके प्राप्त की हुई शक्ति का प्रत्यक्ष उपयोग भी उसे तभी से हुआ। उसके बाप ने उसे खलासियों के से कपड़े बनवा दिये थे। उन्हें पहन कर जब टेड स्कूल में गया तब कुछ चंचल लड़के उसे देख कर हँसे। यही नहीं, बल्कि वे उसकी हँसी करने लगे। उस समय टेड किसी डरपोंक लड़के की तरह भग नहीं गया, और न किसी पिनपिने लड़के की तरह उसने मास्टर से शिकायत की; किन्तु वह अपनी बाँहें चढ़ा कर रास्ते पर खड़ा हो गया और एक चंचल लड़के को खूब ही दुरुस्त किया, यहां तक कि उस दिन से फिर कभी किसीने उनसे हँसी नहीं की। प्रत्येक स्कूल में कुछ बदमाश लड़के होते हैं और वे लड़के छोटे छोटे, निर्बल, कोमल लड़कों को बहुत तंग करते हैं। कहीं पट्टी छीनते, कहीं पुस्तक ही खींचते, कहीं कोरे कागज या पेंसिल ही छीनते, कहीं सिर की टोपी ही उड़ा लेते, किसीको टांग में टांग लड़ा कर गिरा देते, कहीं किसीके जाते जाते एक चपत लगा देते ऐसा करनेवाले कुछ दुष्ट प्रवृत्ति के, जड़ बुद्धि के, और उतने ही जड़ शरीर के कुछ लड़के होते हैं। ऐसे ही एक और बदमाश लड़के से एक बार टेड का सामना हो गया। उस समय की बात है कि

इन दोनों के दो दो हाथ होने का निश्चय हुआ और सारे लड़के जमा हुए। टेड का प्रतिस्पर्धी टेड को जमीन में गिरा देने के लिए बिलकुल उतावला हो रहा था, और उसने प्रारम्भ के 'शेकहेंड' के समय में ही बाएं हाथ से टेड की कनपटी में एक चपत लगा दी। अवश्य ही इस कृत्य के लिए अन्य लड़कों ने उसे धिक्कारा, पर टेड शान्ति के साथ अपनी जगह में खड़ा ही रहा, वह अपनी जगह से हिला नहीं और न अपने प्रतिपक्षी पर हाथ उठाया। वह किंचित हँसा क्षणभर चुप रहा और फिर उसने अपने प्रतिस्पर्धी को सलामी दी और शेकहेंड के लिए फिर हाथ आगे बढ़ाया। तब वह प्रतिस्पर्धी प्रथम सकपकाया परन्तु फिर शेकहेंड होने के बाद जब कुश्ती शुरू हुई तब टेड ने उस बदमाश लड़के को खूब ही दुरुस्त किया। टेड ने उस बदमाश को ऐसा ठीक किया कि आठ दिन तक वह बिछौने से ही लगा रहा। कालेज छोड़ने के बाद भी उसने एक बड़े बदमाश को इसी रीति से पीट कर सभ्यता से चलने का महत्त्व उसे बतला दिया।

…में भाषण … हैं।

स्कूल या कालेज में रहते समय कोई नहीं जानता था कि ये इतने बड़े पुरुष होंगे। परन्तु केवल अपने साहस और परिश्रम के बल पर ये इतने विख्यात हुए। ग्रेजुएट होने के बाद सन् १८८० में रूजवेल्ट साहब यूरप की यात्रा को गये। उस समय वे जंगल में घूमते रहे, पहाड़ों पर चढ़ते रहे और दुष्ट घोड़ों पर सवार हो उन्होंने जंगल के पशुओं का शिकार किया। इसकी बातों का उल्लेख सभी से बड़ा दिलचस्प है। उन्होंने इस विषय में पुस्तकें भी लिखी हैं। इंगलैंड में स्वार और शिकार का बड़ा महत्त्व है—वहां के बहुत से लोग स्वार और शिकार में ही बड़ा पुरुषार्थ समझते हैं परन्तु इन्होंने इस बात की खूब ही हँसी उड़ाई है। इन्हें पशुओं के खेल और शिकार बहुत प्रिय रहे; और इन बातों में उन्होंने बहुत समय बिताया परन्तु राजनीति और युद्ध के विषय में इन्हें बड़ा प्रेम था और है। खेल खेल ही है और काम काम ही है। मि० रूजवेल्ट यह बात कभी नहीं भूले कि खेलने का महत्त्व, साधन की दृष्टि ही से है अतएव वह गौण है। और गम्भीर कर्तव्य एक ओर रख कर उन्होंने केवल खेल में ही अपनी आयु को खराब नहीं किया। इतिहास के पुस्तकें उन्होंने विद्यार्थी दशा में ही पढ़े थे। युद्धों के विस्तृत वर्णन पढ़ते समय भी वे कभी नहीं उकताए। उनकी छोटी छोटी बातें तक सब भी उनके ध्यान में थीं। किसी भी इतिहासप्रसिद्ध लड़ाई के मौके पर दोनों पक्षों की सेना कितनी थी, किस प्रकार लड़ी थी और इनके पास सेना की चाल कैसी कैसी हुई इत्यादि बातें वे सब भी दिन पूछ बतला सकते थे। उदाहरणार्थ पलोपोनेशियन युद्ध का सम्पूर्ण इतिहास किसी दुर्घटना से यदि आज नष्ट भी हो जाय तो रूजवेल्ट सिर्फ स्मरणमात्र से शुरू से अन्त तक उसका विस्तृत वृत्तान्त इस प्रकार लिख देंगे कि छोटी छोटी बातें भी न छूटने पावेंगी।

कालेज में रहते समय उन्हें भूगोल… विज्ञान… और प्राणिशास्त्र बहुत प्रिय था और अपना समय व्यर्थ न खोने का उनका निश्चय था। कालेज में वे बड़े अध्ययनप्रिय थे, और किसी विषय में सारा ध्यान लगा कर मन एकाग्र करने का उनका सामर्थ्य अपूर्व था। उनके एक मित्र ने उनकी इस वृत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है, "कोठरी में आते ही विद्यार्थियों से प्रेमपूर्वक नमस्कार करके वे टेबल पर रखी हुई कोई पुस्तक उठाकर एकान्त में पढ़ते रहते और उसमें इनका मन इतना एकाग्र होता कि फिर कुछ पूछिये ही नहीं। उस समय जान पड़ता कि चाहे कोई इनके कान के सामने बन्दूक क्यों न दाग दे, तथापि वे अपना ध्यान पुस्तक से नहीं हटावेंगे।" किसी भी विषय में इतना मन एकाग्र करने की शक्ति सामान्य पुरुष में नहीं हो सकती। महापुरुषों में यह विशेष गुण होता है और इसी लिए किसी न किसी विषय में वे पूर्ण ज्ञानी होते हैं। जो यह कहता है कि हम अमुक विषय अच्छा नहीं लगता या अमुक विषय हमारी बुद्धि में नहीं आता उसे समझ लो कि इसमें पौरुष नहीं और यह साधारण बुद्धि का ही मनुष्य है। क्योंकि सच्चे बुद्धिमान मनुष्य की बुद्धि चाहे जिस कठिन और अवघड़ विषय में प्रवेश कर सकती है। रूजवेल्ट साहब बुद्धि और मन को एकाग्र करके किसी विषय की पारदर्शिता प्राप्त करने में अद्वितीय हैं।



…के लिए … भाषण … हैं।

## देशसेवा।

सन् १८८२ से १८८४ तक की अवधि में वे 'न्यूयार्क लेजिस्लेचर' के दो बार सभासद हुए परन्तु वे सिर्फ नाम के सभासद या सिर्फ मान के 'माननीय' नहीं हुए। वे प्रत्येक बात को सब दृष्टियों से विचार करते, पहले अच्छी तरह जांच करके तब अपना मत निश्चित करते और योग्य बात मन में निश्चित हो जाने पर निर्भयता से उसे प्रकट करके उसे पूर्ण करने में अपनी शक्ति लगाते। इस कारण वे बनावटी देशभक्त और स्वार्थी लोगों के अप्रिय बन गये। परन्तु उन लोगों की हीन बुद्धि या दुष्ट कर्मों की उन्होंने पर्वा नहीं की। सन् १८८६ में न्यूयार्क नगर के 'मेयर' के पद के लिए उम्मेदवार हुए, पर इसमें उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८८९ से १८९५ तक उन्होंने वाशिंगटन के सिविल सर्विस कमिश्नर और १८९५ से १८९७ तक न्यूयार्क के पुलीस कमिश्नर का कर्त्तव्य उत्तम रीति से बजाया। इस पद पर रहते समय, प्रति दिन का पत्रव्यवहार और काम काज समाप्त होने पर, इंगलैंड के प्रसिद्ध योद्धा राजनीतिज्ञ, देशभक्त और लोकनायक ओलिवर क्रामवेल के चरित्र लिखने का कार्य उन्होंने कुछ दिन तक किया। चरित्र का विषय वे स्वयं मुख से बोलते जाते और लेखक उसे लिखता जाता। विषय बोलते समय यदि कोई पुलीस का कार्यकर्ता बीच में आकर द्वार खटखटाता तो उसे भीतर बुला कर उसका कहना सुन कर अपनी आज्ञा देते और चले जाने पर फिर चरित्र के विषय में प्रवेश करके पिछले क्रम के अनुसार पिछला वाक्य से वाक्य मिला कर इस प्रकार विषय बोलते मानो उस बीच में कुछ हुआ ही न हो। सन् १८९७ में वे असिस्टेंट … नौका … के … सेक्रेटरी नियत किये गये। इस पद पर रहते समय उन्होंने … पहले ही बतला दिया था कि स्पेन से युद्ध अवश्य होगा। १८९८ में वे क्यूबा के युद्ध में जाकर विजयी हुए और १८९९ में वे न्यूयार्क स्टेट के गवर्नर हुए। इस पद पर रहते समय उन्होंने 'टैक्स…' को कार्य में परिणत किया। … मजदूरों को रहने के लिए अच्छी जगह तथा … स्वतन्त्रता और … मिलने के लिए प्रयत्न किया और यह … लोगों के अन्याय का … अवसर … दिया।



… चित्र … हैं।

# मि० थियोडोर रूज़वेल्ट।

अमेरिका के "युनाइटेडस्टेटस्" में लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति प्रचलित है। इस राज्यपद्धति में जो बुद्धिमान और कर्तव्यनिष्ठ पुरुष अपने बुद्धिवैभव से, कर्तृत्वशक्ति से और लोकसेवा से प्रख्यात होकर युनाइटेडस्टेट्स् के अध्यक्षपद पर आरूढ हुए उनमें थियोडोर रूजवेल्ट प्रमुख गिने जाते हैं। आज हम उनका संक्षिप्त चरित्र अपने पाठकों को भेंट करते हैं।



## जन्म और बालपन।

२७ अक्टूबर सन् १८५८ में थियोडोर रूजवेल्ट का जन्म हुआ। इनके पिता न्यूयार्क शहर के निवासी थे और अपने पुत्र पर उनका बड़ा प्रेम था। मि० रूजवेल्ट बालपन में बिलकुल निर्बल और कृश थे, आँखें खराब हो गई थीं और खांसी से बीमार रहते थे। "हाथ पाँव लकड़ी, पेट घमकड़ी" वाली कहावत चरितार्थ होती थी। तथापि इस निर्बल शरीर का मन अवश्य ही बलशाली था; और इस बलशाली मनवाले बालक ने आगे चल कर अपने परिश्रम से अपनी शारीरिक शक्ति भी अच्छी बढ़ा ली, यहाँ तक कि आज उनकी गणना अत्यन्त बलवान् पुरुषों में की जाती है। उनके बालपन की एक कहावत से यह बात अच्छी तरह जान पड़ती है कि उस समय से ही उनका मन कितना बलशाली है। इनके लड़कपन में एक बार इनके पिता कहीं दूर प्रवास करने के लिए चले। उस समय घर के लोगों से विदा होते समय उन्होंने अपने छोटे से 'टेड' से विनोदपूर्वक कहा, "टेड, तू अपनी मा को अच्छी तरह रख।" टेड ने "बहुत अच्छा" कह कर अपने पिता की आज्ञा स्वीकार की, और उस दिन रात को नित्य नियमानुसार टेड ने परमेश्वर की प्रार्थना की। प्रार्थना में टेड ने कहा, "भगवन्! दूर देश में प्रवास के लिए गये हुए मेरे पिता की रक्षा कीजिए, उसे अच्छी तरह रखिये।" इसके बाद फिर कहा, "और माता के विषय में कहिए तो उसको मैं सम्हालता रहूँगा।" यद्यपि उस समय उस छोटे से टेड में अपनी मा को सम्हालने का सामर्थ्य न होगा, तथापि इस कहावत से उसके मन का बल और मातृपितृ-सम्बन्धी प्रेम अवश्य ही प्रकट होता है।

## शिक्षा।

टेड पाठशाला का पाठ अच्छी तरह याद करके नहीं जाता था, परन्तु उसे पुस्तकावलोकन से बड़ा प्रेम था। अतएव उसने पहले कहानियों की पुस्तकें ही पढ़ीं और उत्तर ओर के समुद्री चोरों के अद्भुत कृत्यों की और विलक्षण शारीरिक सामर्थ्य की कहानियां पढ़ कर टेड को इच्छा हुई कि उन्हीं के समान शारीरिक बल हम भी प्राप्त करना चाहिए। परन्तु ऐसा कहा जाता है कि यह बात उसके मन में आकर तुरन्त ही निकल गई थी। उसने भिन्न भिन्न खेल खेल कर तथा नाना प्रकार के व्यायाम से, शारीरिक [illegible] करने का प्रारम्भ किया। दौड़ना, घोड़ा लड़ना 'बॉक्सिंग', 'पोलो', इत्यादि में निष्णात हो गया; और स्कूल की शिक्षा समाप्त करके कालेज में गया तब वह शारीरिक बल में किसी भी हृष्टपुष्ट मनुष्य से कम न था। जंगल में फिरते हुए [illegible] लना और उन पर बैठ कर चहलपहल करनेवाले पक्षियों के सहवास में रहना [illegible] प्रेम टेड को लड़कपन से था और हितोपदेश, पञ्चतन्त्र या इसापनीति की कहानियों के समान कहानियाँ अपने छोटे भाई बहनों को वह सदा बतलाता रहता। उसकी कहानियों के पशुपक्षी मनुष्यों के समान बोलनेवाले होते थे और कहानियों के नायक कभी कमजोर नहीं रहते थे, किन्तु ग्रिशियन-पुराणों के 'हर्क्युलिस' अथवा 'सेम्सन' के समान शक्तिशाली, पराक्रमी और महा बलवान् होते थे। जब से टेड स्कूल में जाने लगा तब से उसने शारीरिक शक्ति का महत्त्व जाना और कसरत करके प्राप्त की हुई शक्ति का प्रत्यक्ष उपयोग भी उसे तभी से हुआ। उसके बाप ने उसे गलाशियों के से कपड़े बनवा दिये थे। उन्हें पहन कर जब टेड स्कूल में गया तब कुछ चंचल लड़के उसे देख कर हँसे। यही नहीं, बल्कि वे उसकी हँसी करने लगे। उस समय टेड किसी डरपोंक लड़के की तरह भग नहीं गया, और न किसी पिनपिने लड़के की तरह उसने मास्टर से शिकायत की, किन्तु वह अपनी बाहें चढ़ा कर रास्ते पर खड़ा हो गया और एक चंचल लड़के को खूब ही दुरुस्त किया, यहाँ तक कि उस दिन से फिर कभी किसीने उनसे हँसी नहीं की। प्रत्येक स्कूल में कुछ बदमाश लड़के होते हैं और वे लड़के छोटे छोटे, निर्बल, कोमल लड़कों को बहुत तंग करते हैं। कहीं पट्टी छीनते, कहीं पुस्तक ही खींचते, कहीं कोरे कागज या पेंसिल ही धूतते, कहीं सिर की टोपी ही उड़ा लेते, किसीको टाँग में टाँग लड़ा कर गिरा देते, कहीं किसीके जाते जाते एक चपत लगा देते ऐसा करनेवाले कुछ दुष्ट प्रवृत्ति के, जड़ बुद्धि के, और उतने ही जड़ शरीर के कुछ लड़के होते हैं। ऐसे ही एक और बदमाश लड़के से एक बार टेड का सामना हो गया। उस समय की बात है कि



थियोडर रूजवेल्ट (अमेरिका के भूत पूर्व अध्यक्ष)।

इन दोनों के दो दो हाथ होने का निश्चय हुआ और सारे लड़के जमा हुए। टेड का प्रतिस्पर्धी टेड को जमीन में गिरा देने के लिए बिलकुल उतावला हो रहा था, और उसने प्रारम्भ के 'शेकहेंड' के समय में ही बाएं हाथ से टेड की कनपटी में एक चपत लगा दी। अवश्य ही इस कृत्य के लिए अन्य लड़कों ने उसे धिक्कारा, पर टेड शान्ति के साथ अपनी जगह में खड़ा ही रहा, वह अपनी जगह से हिला नहीं और न अपने प्रतिपक्षी पर हाथ उठाया। वह किंचित हँसा, क्षणभर चुप रहा और फिर उसने अपने प्रतिस्पर्धी को सलामी दी और शेकहेंड के लिए फिर हाथ आगे बढ़ाया। तब वह प्रतिस्पर्धी प्रथम कचराया, परन्तु फिर शेकहेंड होने के बाद जब कुश्ती शुरू हुई तब टेड ने उस बदमाश लड़के को खूब ही दुरुस्त किया। टेड ने उस बदमाश को ऐसा ठीक किया कि आठ दिन तक वह बिछाने से ही लगा रहा। कालेज छोड़ने के बाद भी उसने एक बड़े बदमाश को इसी रीति से पीट कर सभ्यता से चलने का महत्त्व उसे बतला दिया।



रूजवेल्ट आवेश में भाषण कर रहे हैं।

स्कूल या कालेज में रहते समय कोई नहीं जानता था कि ये इतने बड़े पुरुष होंगे। परन्तु केवल अपने साहस और परिश्रम के बल पर ये इतने विख्यात हुए। ग्रेजुएट होने के बाद सन् १८८० में रूजवेल्ट साहब यूरप की यात्रा को गये। उस समय वे जंगल में घूमते रहे, पहाड़ों पर चढ़ते रहे और दुष्ट घोड़ा मार्ग पर लाकर उन्होंने जंगल के पशुओं का शिकार किया। ऐसी बातों का उन्हें तभी से बड़ा हौसला है। उन्होंने इस विषय में पुस्तकें भी लिखी हैं। इंगलेंड में स्यार के शिकार का बड़ा महत्त्व है—वहां के बहुत से लोग स्यार के शिकार में ही बड़ा पुरुषार्थ समझते हैं परन्तु इन्होंने इस बात की खूब ही हँसी उड़ाई है। इन्हें पुरुषों के खेल और शिकार बहुत प्रिय रहे; और इन बातों में उन्होंने बहुत समय बिताया परन्तु राजनीति और युद्ध के विषय में इन्हें बड़ा प्रेम था और है। खेल खेल ही है और काम काम ही है। मि० रूजवेल्ट यह बात कभी नहीं भूले कि खेलने का महत्त्व, साधन की दृष्टि ही से है, अतएव वह गौण है। और गम्भीर कर्तव्य एक ओर रख कर उन्होंने केवल खेल में ही अपनी आयु को खराब नहीं किया। इतिहास के युद्धवर्णन उन्होंने विद्यार्थि दशा में ही पढ़े थे। युद्धों के विस्तृत वर्णन पढ़ते समय भी वे कभी नहीं उकताए। उनकी छोटी छोटी बातें तक अब भी उनके ध्यान में हैं। किसी भी इतिहासप्रसिद्ध लड़ाई के मौके पर दोनों पक्षों की सेना कितनी थी, किस प्रकार खड़ी थी और इसके बाद सेना की चालें कैसी कैसी हुईं इत्यादि बातें वे अब भी बिन चूक बतला सकते हैं। उदाहरणार्थ पेलोपोनेशियन-युद्ध का सम्पूर्ण इतिहास किसी दुर्घटना से यदि आज नष्ट भी हो जाय तो रूजवेल्ट सिर्फ स्मरणमात्र से आदि से अन्त तक उसका विस्तृत वृत्तान्त इस प्रकार लिख देंगे कि छोटी छोटी बातें भी न छूटने पावेंगी।



रूजवेल्ट शिकार के लिए जा रहे हैं।

कालेज में रहते समय उन्हें सृष्टिशास्त्र, विशेषत वनस्पतिशास्त्र और प्राणिशास्त्र बहुत प्रिय था, और अपना समय व्यर्थ न खोने का उनका निश्चय था। कालेज में वे बड़े अध्ययनप्रिय थे, और किसी विषय में सारा ध्यान लगा कर मन एकाग्र करने का उनका सामर्थ्य अपूर्व था। उनके एक मित्र ने उनकी इस वृत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है, "कोठरी में आते ही विद्यार्थियों से प्रेमपूर्वक नमस्कार करके वे टेबल पर रखी हुई कोई पुस्तक उठाकर एकान्त में पढ़ते रहते और उसमें इनका मन इतना एकाग्र होता कि फिर कुछ पूछिये ही नहीं। उस समय जान पड़ता कि चाहे कोई इनके कान के सामने बन्दूक क्यों न दाग दे, तथापि वे अपना ध्यान पुस्तक से नहीं हटावेंगे।" किसी भी विषय में इतना मन एकाग्र करने की शक्ति सामान्य पुरुष में नहीं हो सकती। महापुरुषों में यह विशेष गुण होता है, और इसी लिए किसी न किसी विषय में वे पूर्ण ज्ञानी होते हैं। जो यह कहता है कि, हम अमुक विषय अच्छा नहीं लगता या अमुक विषय हमारी बुद्धि में नहीं आता उसे समझ लो कि इसमें पौरुष नहीं और यह साधारण बुद्धि का ही मनुष्य है। क्योंकि सच्चे बुद्धिमान् मनुष्य की बुद्धि चाहे जिस कठिन और अवघड़ विषय में प्रवेश कर सकती है। रूजवेल्ट साहब बुद्धि और मन को एकाग्र करके किसी विषय की पारदर्शिता प्राप्त करने में अद्वितीय हैं।

चुनाव के लिए रूजवेल्ट एक जगह भाषण करते हैं।

## देशसेवा।

सन् १८८२ से १८८४ तक की अवधि में वे 'न्यूयार्क लेजिस्लेचर' के दो बार सभासद हुए, परन्तु वे सिर्फ नाम के सभासद या सिर्फ मान के 'माननीय' नहीं हुए। वे प्रत्येक बात का सब दृष्टियों से विचार करते, पहले अच्छी तरह जाच करके तब अपना मत निश्चित करते और योग्य बात मन में निश्चित हो जाने पर निर्भयता से उसे प्रकट करके उसे पूर्ण कराने में अपनी शक्ति लगाते। इस कारण वे बनावटी देशभक्त और स्वार्थी लोगों के अप्रिय बन गये। परन्तु उन लोगों की द्वेप-बुद्धि या दुष्ट कर्मों की उन्होंने पर्वा नहीं की। सन् १८८६ में न्यूयार्क नगर के 'मेयर' के पद के लिए उम्मेदवार हुए, पर इसमें उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८८९ से १८९५ तक उन्होंने वाशिंग्टन के सिविल सर्विस कमिश्नर और १८९५ से १८९७ तक न्यूयार्क के पुलीस कमिश्नर का कर्तव्य उत्कृष्ट रीति से बजाया। इस पद पर रहते समय, प्रति दिन का पत्रव्यवहार और काम काज समाप्त होने पर, इंगलेंड के प्रसिद्ध योद्धा, राजनीतिज्ञ, देशभक्त और लोकनायक ओलिवर क्रामवेल के चरित्र लिखने का कार्य उन्होंने कुछ दिन तक किया। चरित्र का विषय वे स्वयं मुख से बोलते जाते और लेखक उसे लिखते जाता। विषय बोलते समय यदि कोई पुलीस का कार्यकर्ता बीच में आकर द्वार खटखटाता तो उसे भीतर बुला कर उसका कहना सुन कर अपनी आज्ञा देते और चले जाने पर फिर चरित्र के विषय में प्रवेश करके पिछले क्रम के अनुसार, किम्बहुना पिछले वाक्य से वाक्य मिला कर, इस प्रकार विषय बोलने लगते जैसे बीच में खंड पड़ा ही न हो। सन् १८९७ में वे जहाजी फौज की ओर से असि० सेक्रेटरी नियत किये गये। इस पद पर रहते समय उन्होंने बारह महीने के पहले ही बतला दिया था कि स्पेन से युद्ध अवश्य होगा। १८९८ में वे क्यूबा के युद्ध में जाकर विजयी हुए, और १८९९ में वे 'न्यूयार्क स्टेट' के गवर्नर हुए। इस पद पर रहते समय उन्होंने 'फैक्टरी लॉ' को कार्य में परिणत किया। गरीब मजदूरों को रहने के लिए अच्छी जगह तथा कुछ न कुछ स्वतन्त्रता और सुख मिलने के लिए प्रयत्न किया, और बड़े कहलानेवाले लोगों के अन्याय को पहले का सा अवसर मिलने नहीं दिया।

सन् १९०० में 'रिपब्लिकन्' पक्ष ने उन्हें 'वाइस प्रेसिडेन्ट' चुना; और सन् १९०१ में मि० मेकिन्ले के मृत्यु हो जाने पर ये स्वयं अध्यक्ष हुए।

अध्यक्षपद पाते ही उन्होंने अविश्रान्त-प्रयत्न करके स्वदेश का कार्य करना शुरू किया। उनका उद्योग, दूरदर्शिता, उत्साह, कार्य-कुशलता, निर्भयता, इत्यादि गुण बहुत प्रशसनीय हैं। रूजवेल्ट साहब को जिनके साथ मिल कर देशकार्य करना होता है उन्हें प्रसन्न रखने की युक्ति वे अच्छी तरह जानते हैं। 'रफ रायडर्स' नाम की एक पल्टन उनके अधिकार में थी, उसके सिपाही उनका बड़ा प्यार करने लगे। इस पलटन के सिपाही उन्हें देवता के समान मानते रहे। लड़ाई के समय अपने सिपाहियों के साथ रूजवेल्ट भी सदा कष्ट सहने के लिए तैयार रहते। जिस सिपाही को सर्दी अधिक सताती उसे वे स्वयं अपना ओवरकोट या कम्मल देने में कुछ भी हीनता नहीं समझते। वे अपने सुख की अपेक्षा अपने सैनिकों के सुख की ओर अधिक ध्यान रखते। उनके धैर्य और स्वार्थत्याग से उद्दीपित और उत्तेजित होकर सैनिकलोग स्पेनिश लोगों के गोलों की वर्षा में दृढ़ता के साथ लड़ते रहे। रूजवेल्ट का साहस उत्साह और उनकी आज्ञा का प्रभाव इतना था कि सैनिक लोग यह समझते कि उनकी आज्ञा मानने में प्राण भी चले जायँ तो कोई परवा नहीं। जब ये न्यूयार्क शहर के पुलीस कमिश्नर थे तब बदमाश लोग इनका नाम सुन कर ही कांपने लगते थे। परन्तु योग्य अधिकारियों को पारितोषक देकर उन्हें उत्साहित करने में भी ये एक ही थे।

मि० रूजवेल्ट में शौर्यमूलक शासन का उत्साह, समस्त राष्ट्र सम्बन्धी उत्साह और राजकीय या सामाजिक बातों का शान्ति रीति से विचार करने की प्रवृत्ति, रोमन शासन के समान साम्राज्य प्रेम और जान बर्न्स के समान मजदूर दल के सर्वसाधारण लोगों के-हित की चिन्ता पाई जाती है। लोकनायक में जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे सारे गुण उनमें हैं। अध्यक्ष के पद पर रहते समय उनका कार्यक्रम इस प्रकार था :—साढ़े आठ बजे सबेरे भोजन करने पर साढ़े नौ बजे आफिस के काम में लगना। प्रथम डाक खोल कर उसका प्रबन्ध करना। 'व्हाइट हौस' की डाक में प्रति दिन लगभग ५०० पत्र भिन्न भिन्न जगहों से आते हैं; उनमें से करीब ५० पत्रों का उन्हें स्वयं उत्तर देना पड़ता। दस बजे से बारह बजे तक लोगों के प्रतिनिधि अथवा 'सीनेट' के सभासदों के समान लोगों की भेंट करना और फिर एक घंटे भर मिलने के लिए आये हुए अन्य लोगों से बात चीत करना। डेढ़ बजे फिर भोजन करना परन्तु इस समय भी अच्छे शिष्ट लोगों को पंक्ति में बुला कर उनके सभाषण से लाभ उठाना। ढाई-तीन बजे के करीब फिर आफिस में आकर-चार कभी कभी पांच बजे तक-सरकारी काम काज देखना। इसके बाद टेनिस खेलने के लिए, घोड़े पर बैठ कर हवा खाने के लिए अथवा पैदल घूमने के लिए जाना, आठ बजे रात को भोजन करना और फिर साढ़े नौ बजे अथवा दस बजे रात को अपने निजी कमरे में जाकर दो घंटे तक कोई न कोई विषय लिखना। यह विषय वे मुख से बोलते जाते और उनका सेक्रेटरी लिखता जाता। कांग्रेस को संदेशा, सरकारी प्रकरणों का फैसिला स्मरण के लिए नोटस्, सार्वजनिक व्याख्यान, इत्यादि वे इसी समय में तैयार करते। यही उनका कार्यक्रम रहता। राजनीति, युद्धशास्त्र, शिकार, इत्यादि विषयों पर उन्होंने सुन्दर ग्रन्थरचना की है। एक दो चरित्र भी आपने लिखे हैं। अध्यक्ष के नाते से आपने जो कार्य किये उनसे उनके देश का बहुत ही हित हुआ है।

## स्वभाव।

आपको स्पष्टवक्तापन और सरल वर्ताव विशेष प्रिय है। एक बार उनके मनोरंजन के लिए किसी जगह के कुछ लोग कुछ करनेवाले थे। क्रिश्चियन धर्म के, जिस पंथ के वे हैं उस पंथ के, लोग वह बात रविवार के दिन करना निषिद्ध मानते हैं, तथापि वे लोग कहने लगे कि, "वह बात हम करेंगे और उसके विषय में हम किसीसे कुछ न कहेंगे।" इस पर रूजवेल्ट साहब ने साफ कहा कि, "प्रत्येक सकट या भय टालने की दो रीतियां हैं। एक रीति यह कि, जिस बात से सकट आने की सम्भावना हो उसे बिलकुल ही न करना, और दूसरी रीति यह कि सकट उत्पन्न करनेवाली बात छिपा रखना। इसमें पहली ही रीति सहज है, क्योंकि उसके अनुसार चलने से झूठ बोलने का मौका कभी नहीं आता।" यह सुन कर उन लोगों को अपना विचार छोड़ना पड़ा। एक बार एक नीग्रो गवैया को होटलवाले अपने घर में स्थान नहीं देते थे, तब उन्होंने उसे अपने निज के घर का एक अत्युत्तम कमरा रहने के लिए दिया; और उस हबशी का जो यह उन्होंने सत्कार किया उसका वृत्तान्त उन्होंने समाचार-पत्रों में प्रकाशित किया।

आफ्रिका प्रवास में रूजवेल्ट नेटिवों के सहित जंगल में घूम रहे हैं।

अमेरिका के राजकीय नेताओं को समाचारपत्रों के सम्वाददाता नाना प्रकार के प्रश्न करके बहुत सताते हैं। प्रत्येक छोटी छोटी बात पर बड़ी बारीकी के साथ प्रश्न करके उस विषय का सारा वृत्तान्त समाचारपत्रों में प्रसिद्ध करते हैं, फिर उस पर नाना प्रकार की शकाएं या तर्क कुतर्क प्रदर्शित करते हैं। इससे किसी किसी बात पर व्यर्थ ही बहुत सा शोरगुल मच जाता है और लोग सत्य बात को और का और ही कुछ समझ बैठते हैं। ऐसा ही हाल वहां सदैव हुआ करता है। अतएव वहां के नेताओं के सामने यह एक बड़ा प्रश्न सदा ही उपस्थित रहता है कि समाचारपत्रों के साथ कैसा सम्बन्ध रखना चाहिए। परन्तु रूजवेल्ट साहब ने निर्भयता और सरलता से सब कुछ बतला कर मुक्त होने का क्रम स्वीकार किया था। जब कि वे न्यूयार्क के गवर्नर थे तब समाचारपत्रों के लगभग तीस सम्वाददाताओं को, उनके प्रश्नों का, दिन में दो बार सरल और विस्तृत उत्तर देते थे-वे उकताते बिलकुल न थे, और ध्यान में रखने योग्य बात तो यह है कि उन्हें यह करने का मौका कभी नहीं आया कि उनके इस सुभीते का किसी पत्रसम्पादक ने दुरुपयोग किया हो।

यूनाइटेड स्टेट्स् के प्रेसिडेन्ट के पद पर रहते समय वे अपनी राजकीय नीति के विषय में लोगों का मत अनुकूल कर लेने के लिए दौरा करते और जगह जगह व्याख्यान दे कर अपनी नीति लोगों को मान्य कराते। इस काम में आपने बड़ा ही परिश्रम किया। सन् १९०५ में यों ही टेक्सस में जाने पर उन्होंने पहले दिन सात, दूसरे दिन तेरह और तीसरे दिन ग्यारह व्याख्यान दिये। चौथे दिन 'रफ रायडर्स' पलटन को सम्बोधन करके उन्होंने एक बड़ा व्याख्यान दिया। बाद को उसी दिन दावत के समय भी उन्होंने एक व्याख्यान दिया। पांचवें दिन ग्यारह व्याख्यान देकर फिर वे शिकार को गये। ऐसा श्रम करने का उनमें सामर्थ्य है। उनके अध्यक्ष रहते समय एक बार भी ऐसा नहीं हुआ कि अध्यक्ष की तबियत न ठीक होने के कारण युनाइटेड स्टेट्स् की केबिनेट की बैठक मुलतवी कर दी गई हो। रूजवेल्ट साहब की शारीरिक शक्ति और उत्साह देख कर एक अँगरेज राजनीतिज्ञ ने कहा, "अमेरिका में मैंने दो सृष्टिचमत्कार देखे, पहला निआगरा जलप्रपात और दूसरा थियोडोर रूजवेल्ट।" रूजवेल्ट के शरीर में इतनी शक्ति और सहनशीलता आने में उनका प्रति दिन का व्यायाम तो कारणीभूत हुआ ही है, परन्तु उनके खाने-पीने अथवा सोने का नियमितपन भी कई अशों में उसके लिए कारणीभूत हुआ है। नाव खेने का व्यायाम भी उन्हें बहुत पसन्द है। आप मद्यपान नहीं करते और न तम्बाकू या चुरुट ही पीते हैं।

प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट लोगों को खुश करने के लिए अपने सत्य मत को छोड़नेवाले नहीं; पर साथ ही वे एकदेशीय या दुराग्रही भी नहीं। वे यह नहीं समझते कि मैंने जो अपना मत मन में निश्चय कर लिया है वही पक्का है और अब दूसरे की बात सुन कर हमें क्या करना है? अध्यक्ष के पद पर काम करते समय वे अनेक भिन्न देशों के, भिन्न श्रेणियों के, भिन्न व्यवसायों के और भिन्न मतों के

लोगों से मिल कर अनेक विषयों की चर्चा करते रहते । राजकीय विषय में वे कट्टर सुधार वादी हैं और न्यूयार्क के धनिक महाशय मि० जे० पीरपॉट मार्गन से स्पष्ट भेट करने में वे नहीं डरे । एक महाशय उनसे कहने लगे कि ऐसे पुरुष की भेट करना लोगों को पसन्द नहीं होगा, अतएव आप मेरे घर में आइये और वहा उस पुरुष से भेट कीजिए । इस पर उन्होंने साफ कह दिया कि, "जब मुझे उनसे भेट करना ही है तब फिर इस प्रकार से छिप कर मै भेट नहीं करूगा । बिलकुल प्रकट रीति से सरकारी 'व्हाइट हाउस' में मै उनसे मिलूगा । जब तक मै अध्यक्ष हू तब तक मै चाहे जिसकी भेट करूगा । इतना ही नहीं, बल्कि प्रत्येक से मै स्पष्ट रीति से मिलूगा, गुप्त रीति से नहीं मिलूगा ।" ऐसा ही उन्होंने किया भी ।

सन १९०१ में रूजवेल्ट साहब के हाथ में राज्यसूत्र आने पर उन्होंने देखा कि जनहित की अपेक्षा स्वहित साधनेवाले भोदू देश भक्तों ने और बड़े लोगों ने सार्वजनिक विषयों मे बहुत अन्याय मचा रक्खा है और इसी लिए नहीं कि लोग अपना कर्तव्य नहीं करते, किन्तु परिस्थिति ही ऐसी है कि जिससे लोग अपना कर्तव्य करके स्वहित नहीं साध सकते, इस कारण उन्हें दुःख में दिन काटने पड़ते हैं । उन्होंने देखा कि लोक-प्रतिनिधि-सभा के नेता भी निजी लाभ साधने का प्रयत्न कर रहे है, अतएव जनहित की हानि हो रही है तब लोकहित के कारण प्राप्त किये हुए अधिकार के बल पर आगे बढ़नेवाले उन लोगों की उन्होंने खूब ही खबर ली । अपनी नीति प्रत्यक्ष रीति से लोगों पर प्रकट करके उसके विषय में उन्होंने उनकी सम्मति प्राप्त की । लोकमत अनुकूल कर लेने पर वे मंत्रिमंडल की अथवा कार्यकारीमंडल की सभा में इतने धैर्य, दृढता और सहानुभूति के साथ बोलते रहते कि अन्त में प्रतिनिधियों को उनका कहन मान्य ही करना पड़ता । आपका मत है कि राजकीय विषयों में नियमितपन और सख्ती चाहिए, ढील-ढाल अच्छा नहीं । एक बार जब उन्हें मालूम हुआ कि कुछ सैनिक अधिकारी अपना काम ठीक ठीक नहीं करते, आलस में समय व्यतीत करते हैं तब उन्होंने उन अधिकारियों को आज्ञा दी कि तुम्हें लगातार तीन दिन घोड़े पर बैठ कर, नब्बे मील घूम आना चाहिए । इस हुक्म की तामील तो हुई, लेकिन उन्होंने सुना कि उन अधिकारियों ने और उनकी स्त्रियों ने कुछ अप्रसन्नता प्रकट की । इस पर एक बार स्वयं अध्यक्ष साहब जो घोड़े पर सवार होकर सुबह निकले तो भोजन के वक्त तक वे १०० मील का चक्कर लगा आये । उस दिन बड़ी सर्दी पड़ी थी, पृथ्वी और वृक्ष बर्फ से ढक गये थे और पानी बरस रहा था । यह जान कर सब के मुहँ बन्द हो गये ।

## उनके मत ।

रूजवेल्ट साहब के मत पूर्ण विचार के बाद निश्चित किये हुए है । वे अपने मत प्रकट करने में डरते नहीं । केवल द्रव्य पर दृष्टि रख कर चाहे जो अधर्म अथवा अन्याय का आचरण करनेवाले धनवान, 'सुखीजीव' लोगों पर उनका बड़ा कटाक्ष रहता है । इस विषय में उन्होंने एक बार कहा "सर्वसाधारण लुटेरू अथवा गला काटनेवाले मनुष्य के दुराचरण का जितना बुरा प्रभाव समाज की नवीन पीढ़ी पर पड़ता है उससे भी अधिक बुरा प्रभाव धनवानों के दुराचरण का होता है, क्योंकि उनके जीवन की तड़कभड़क ही ऐसी होती है कि उससे लोगों की आंखें चकाचौंध में पड़ जाती हैं और उनके मन पर भयंकर संस्कार होते हैं । सदसद्विवेक-बुद्धि की जिनमें गन्ध भी होती वही धनवान् अपने देशबान्धवों को धोखा देकर, न्यायाधीशों को घूस खाना सिखला कर और कानून बनानेवालों के मुख लालच से बन्द करके धनवान बने होते हैं । धन के पीछे लगा हुआ अमेरिकन के समान नीच मनुष्य पृथ्वी की पीठ पर आपको कहीं नहीं मिलेगा । उसे कर्तव्य का भान नहीं रहता और न किसी उच्च तत्व की परवा रहती है । ऐसे नीच पुरुष सिर्फ इतना ही जानते हैं कि चाहे जिस बुरी भली रीति से धन कमाना चाहिए और फिर नीचता के काम में उसे खर्च करना चाहिए, अथवा अपने मूर्खशिरोमणि लड़कों के लिए ऐसा प्रबन्ध कर देना चाहिए कि जिससे वे आलस और व्यभिचार में अपना जीवन खराब करें 'अथवा अपनी लाड़िली लड़की के लिए कोई पाजी धनवान घर मोल ले देने में उस धन का व्यय करना चाहिए'! मेरी राय में ये लोग समाजहित का विध्वंस करनेवाले-समाज को दुष्ट प्रवृत्ति की ओर ले जानेवाले-भयंकर स्वरूप के अपराधी हैं !" वे और भी कहते हैं —"जिसके पास धन नहीं है उसे पहले अपना कुटुम्बविषयक कर्तव्य करके कुटुम्ब के पालन और सुख का प्रबन्ध करना चाहिए पर जिसके पास धन है उसे स्वदेश की सेवा करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए । सभी को काम करना चाहिए-उद्योगी रहना चाहिए और मेरी राय में धनवान लोगों को तो, वेतन न लेते हुए, स्वदेश की सेवा करनी चाहिए ।'

आप इस मत के नहीं हैं कि ऐहिक लाभ के लिए नीति को तिलांजलि देने में कोई हानि नहीं । इस विषय में आपका मत है कि 'शिष्टाचार, सदाचरण अथवा नीति के नियमों का उल्लंघन कदापि नहीं किया जा सकता, और हमें यह भी न भूलना चाहिए कि हम जिन तत्वों का मुहँ से उपदेश करते हैं वे तत्व कृति में लाने की जवाबदारी हमारे ऊपर है । राष्ट्र में चाहे उद्योगधंधे करने का सामर्थ्य हो, धनोत्पादन चाहे होता हो, बुद्धिवैभव भी चाहे प्रकट होता हो, यह सब कुछ चाहे हो, तथापि यदि राष्ट्र में धैर्य और सच्चाई तथा व्यवहारज्ञान की न्यूनता है तो ऊपर की सब बातें व्यर्थ है ।'

रूजवेल्ट साहब का मत है कि कर्तव्यकर्म करना चाहिए, फिर उसका फल मिले चाहे न मिले । उन्होंने एक बार कहा कि, "वर्तमान काल में होनेवाली बातों का जैसे हम सामना करते हैं वैसे ही भविष्यकाल में होनेवाली बातों का भी मुकाबिला करना हमारा कर्तव्य है; फिर उस भविष्यकाल में हमारे लिए चाहे जैसा सुख दुःख रखा हुआ हो, हमें उसकी परवा न करनी चाहिए । अपने ध्येय के प्रकाश की ओर दृष्टि रख कर, कर्तव्यमार्ग पर एक एक डग आगे बढ़ते रहना ही पुरुष का कर्तव्य है ।"

वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि शारीरिक सामर्थ्य और शूरवीरता हुए बिना संसार में काम नहीं चल सकता । उनका कथन है, कोई राष्ट्र व्यापार में अथवा उद्योग धंधों में चाहे जितना निपुण हो, अर्वाचीन शास्त्र ( विज्ञान ) और कलाओं में पारंगत हो, पर यदि शूरवीरता का गुण उसमें नहीं है तो समझ लेना चाहिए कि बलाढ्य राष्ट्रों की मालिका में बराबरी के नाते से बैठने का उसे कोई भी अधिकार नहीं । चाहे व्यक्ति हो, चाहे राष्ट्र हो, उसमें डरपोकपन होना एक अक्षम्य पातक है !" वे और भी कहते हैं, "जो डरपोक मनुष्य किसीकी मारी हुई थप्पड़ का बदला न देते हुए चुपचाप उसे सहन करता है वह तो तिरस्कार करने योग्य प्राणी है ही, परन्तु मिथ्यावादी मनुष्यों के उपहास से डर कर जो अपने सत्य मत पर नहीं डँटा रहता उस नवयुवक के समान तिरस्करणीय प्राणी अवश्य ही इस संसार में दूसरा नहीं ।" उनका मत है कि यूरोपियन लोगों को अमेरिका में सत्ता चलाने का अवसर न मिलना चाहिए । तथा, उनकी यह भी राय है कि, असभ्य देशों में सुधरे हुए राष्ट्र प्रसन्नतापूर्वक अपनी श्रेष्ठता स्थापित करें और उनमें सभ्यता का प्रचार करें ।

आपका मत है कि राजनीति का विचार, केवल जनहित की ओर दृष्टि रख कर, करना चाहिए, उसमें अहंकार, वृथाभिमान, पक्षपात, मत्सर, दुराग्रह या विकारों का प्रवेश न होने देना चाहिए । रूजवेल्ट साहब ने, अपने कथनानुसार, अपनी सदसद्विवेकबुद्धि का स्मरण करके ही आज तक अपना आचरण रक्खा है । आपका कथन है कि, "जो मनुष्य सिर्फ यह कहा करता है कि अमुक बातें इस प्रकार करनी चाहिए और इस प्रकार न करनी चाहिए उसके हाथ से कोई भी देशकार्य या उन्नति नहीं होती; किन्तु जो मनुष्य उन बातों का प्रत्यक्ष कर दिखलाता है-उन्हें कार्य में परिणत करता है-उसीके प्रयत्न से देशकार्य होता है ।" अपने इस कथन के अनुसार रूजवेल्ट साहब ने स्वयं अनेक सत्कर्म किये हैं और वे किस प्रकार करने चाहिए- सो विस्तारपूर्वक लिख भी रक्खा है ।

आपका कथन है कि, "तारकाओं की ओर-उच्च आशाओं की ओर-दृष्टि लगानेवाले मनुष्य हमें चाहिए; पर उन्हें यह न भूलना चाहिए कि हमारे पैरों को जमीन पर ही चलना है" वे कहते हैं कि योंही कल्पना के पंख लगा कर फर फराने में, संसार की वास्तविक स्थिति, कार्य का महत्व और अपनी दुर्बलता न भूल जाना चाहिए ।

## उनका गार्हस्थ्यजीवन ।

रूजवेल्ट साहब का गार्हस्थ्यजीवन बहुत ही सादा और प्रेमपूर्ण रहता है । वे अपने घर की देहली लांघ कर जब भीतर आते हैं तब सैनिक, राजनीतिज्ञ, सुधारक अथवा लेखक की हैसियत से नहीं आते किन्तु वह सारा आडम्बर बाहर छोड़ कर वे घर में बिलकुल सादगी और प्रेम से बातचीत तथा व्यवहार करते हैं । अपनी पत्नी और लड़कों पर उनका बड़ा प्रेम है । अपने लड़कों के साथ वे इतने प्रेम से बर्ताव करते हैं कि यद्यपि उनकी उम्र इतनी बड़ी है तथापि लड़कों को ऐसा ही मालूम होता है कि जैसे यह कोई अपना बड़ा भाई साथ खेलता हो । वे लड़कों को नाना प्रकार की कहानियां बतलाते रहते हैं और उनके साथ घुटनों के बल चलते हुए अनेक प्रकार के खेल खेलकर उनका मन प्रसन्न करते हैं । यही नहीं, बल्कि उनके मनोरंजन के लिए, आवाज अच्छी न होते हुए भी, वे गाने तक गाते हैं ।

## उनके वध का प्रयत्न ।

मनुष्य चाहे जितना सद्गुणी हो, चाहे जितना परोपकारी हो, चाहे जितना नम्र हो, चाहे जितना कर्तव्यनिष्ठ हो, परन्तु जान पड़ता है कि परमेश्वर ने ऐसी कुछ सृष्टि की रचना की है कि जिससे संसार में उसका शत्रु उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता । सद्गुणी मनुष्य का द्वेष करने के लिए दुर्जनों को इतना ही कारण बस होता है कि वह पुरुष सद्गुणी है । तथा लोकहितैकदक्ष पुरुष की लोकप्रियता से भी कितने ही दुर्जनों का सिर दर्द करने लगता है

फिर उसे "ढोंगी लोकप्रियता" कह कर वे उसके विरुद्ध कोलाहल करने लगते हैं। और कुछ लोग यह समझ कर कि देशाभिमान की हमारी कल्पना लोकनायक की कल्पना से नहीं मिलती, उसका द्वेष करने लगते हैं। वे यह विचार नहीं करते कि दूसरे के मत भी ठीक हो सकते हैं। ऐसे लोग सभ्य अमेरिका में सुधार के शिखर पर पहुँचे हुए यूनाइटेड स्टेट्स् में भी हैं। इन्हीं लोगों में से एक सिड़ी आदमी ने हाल ही में मि० रूज़वेल्ट के वध करने का प्रयत्न किया। मि० रूज़वेल्ट एक सभा को जाने के लिए चले और मोटर में बैठने ही वाले थे कि इतने ही में गाड़ी के आसपास एकत्र हुए लोगों में से एक आदमी आगे बढ़ा और करीब तीन फीट के अन्तर से उसने मि० रूज़वेल्ट पर गोली चलाई। यह गोली छाती में घुस गई, पर मि० रूज़वेल्ट नहीं डगमगाये। उन्होंने पीछे फिर कर देखा तो खूनी आदमी दूसरी गोली चलाना चाहता था। पर इतने ही में मि० रूज़वेल्ट के लेखक ने उसे पकड़ लिया और दूसरे एक मनुष्य ने उसके हाथ से रिवालवर छीन लिया। उसी समय वहां बहुत से लोग जमा हो गये, और खूनी मनुष्य का शरीर टुकड़े टुकड़े कर दिया गया होता परन्तु मि० रूज़वेल्ट ने मोटर में खड़े होकर और अपनी टोपी हाथ में लेकर लोगों को एक तरफ हट जाने का संकेत किया। हत्यारा उनके सामने लाया गया, तब अपने प्राण लेने की इच्छा रखनेवाले उस मनुष्य की ओर उन्होंने अच्छी तरह ध्यानपूर्वक गंभीरता से देखा और फिर कहा, "गरीब विचारा! इसका घात न करो, मैं अच्छा हूं।" इसके बाद वह पागल उनके सामने से हटा लिया गया। गोली मि० रूज़वेल्ट की छाती में घुसी हुई थी, परन्तु उनके कोट के पाकट में मोटे कागजों का एक बंडल था, उसको फोड़ कर गोली गई, इस कारण उसका जोर कम हो गया और मि० रूज़वेल्ट के प्राण बचे। परन्तु अपनी छाती की गोली दवाखाने में जाकर निकलवा डालने के पहले वे नियत किये हुए व्याख्यान के स्थान पर आये, यद्यपि उनमें क्षीणता आ गई थी, तथापि करीब एक घंटा उन्होंने व्याख्यान दिया। व्याख्यान में उन्होंने कहा, "इसकी मुझे कोई परवा नहीं जो मुझ पर गोली चलाई गई। एक आध खरगोश मारने के लिए भी इससे अधिक प्रयत्न करना होता है। यह सौभाग्य की बात है कि मेरे पाकट में आज के व्याख्यान के कागज थे। (कागज दिखला कर) देखिये, इन कागजों को फोड़ कर गोली छाती में जा घुसी है, नहीं तो उसने मेरे हृदय का ही भेद किया होता। परन्तु मेरा मन इस बात से भी अधिक महत्व वाली बात का विचार कर रहा है। सचमुच मेरे समान सुखी मनुष्य कोई न होगा। मेरी आशा सब आदमियों से ... आर लगी हुई है। मुझ पर जिसने गोली चलाई उस से मुझे ... नहीं, पर निस्सन्देह यह आदमी निर्बल हृदय का है। ... मि० टैफ्ट के अनुयायियों ने मेरे विषय में जो लेख लिखे हैं उनके कारण इस आदमी का मस्तक फिर गया होगा। निर्बल और दुष्ट वृत्ति के मनुष्यों के मन पर ऐसे लेखों का कैसा ही प्रभाव होता है पर यह अच्छा नहीं। यदि मेरे अनुयायियों में से कोई हमारे किसी प्रतिपक्षी पुरुष के विषय में व्यर्थ द्वेष उत्पन्न करने का प्रयत्न करे तो मैं उसके इस काम पर निषेध प्रदर्शित किये बिना कभी न रहूँगा।' इस प्रकार का भाषण करते हुए मि० रूज़वेल्ट ने अपना कोट कुछ एक ओर हटा कर अपना शर्ट (कमीज) लोगों को दिखलाया जिसमें कि लोहू का दाग पड़ा हुआ था। उस समय उनके विषय में लोगों का कितना प्रेम और आदर मालूम हुआ होगा इस की कल्पना पाठकों को ही करना चाहिए। सभा होने के बाद वे दवाखाने में गये और तब उनकी छाती में घुसी हुई गोली निकाल ली गई।

## उपसंहार।

यद्यपि मि० रूज़वेल्ट इस चुनाव में फिर प्रेसिडेन्ट नहीं चुने गये तथापि युनाइटेड स्टेट्स में सर्वत्र उनकी बड़ाई है और वे कर्त्ता देशभक्त समझे जाते हैं। अपने देश का और उसके स्वतन्त्रतादर्शक पताका का उन्हें बड़ा अभिमान है। वे कहते रहते हैं कि "अमेरिकन मनुष्य को सिर्फ स्वदेश के पताके के विषय में ही आदर और पूज्यबुद्धि रखनी चाहिए। इस पताके का मान पहला ही होना चाहिए, पर दूसरे किसी भी पताके के विषय में दूसरे दर्जे का आदर भी किसी अमेरिकन के हृदय में न होना चाहिए।' मि० रूज़वेल्ट स्वयं अत्यन्त आशावादी और प्रयत्नवादी हैं। वे बड़े कट्टर परिश्रमी हैं। उनका विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य में कुछ न कुछ अच्छाई रहती ही है। इस अच्छाई का उपयोग अपने देश का हित करने में करना चाहिए। मि० रूज़वेल्ट अपने पक्ष का मण्डन करना अच्छीतरह जानते हैं। वे स्वभाव में मित्र की तरह सौम्य और नम्र हैं। वे मन, वचन और कर्म से शुद्ध हैं। उनका सदुद्देश्य, प्रामाणिकता, उत्साह, प्रभाव, कर्तृत्वशक्ति और देशाभिमान इतना उच्च श्रेणी का है कि उनकी गणना आज सिर्फ अमेरिका में ही नहीं, किन्तु संसार के महापुरुषों में की जाती है।

---

## पद्य-सप्तक।

१

पा सौख्य, शान्ति, जिससे रहते प्रसन्न,
प्राणावलम्ब जिसका जल-वायु-अन्न॥
देता कृतघ्न बन जो उसको विसार,
है मातृ-भूमि-रिपु सो नर भूमिभार॥

२

संसार से विलग हो रहना सदैव,
कर्तव्य त्याग कर सो रहना सदैव,
है क्या यही मनुज का पुरुषार्थ सार?
संसार को न समझो मन में असार॥

३

जो चाहते न कर-पाँव कभी हिलाना,
जो चाहते न मन को हरि से मिलाना,
वे क्यों वृथा नर कहा कर हाय जीते!
भू-अन्न के रस सुधोपम व्यर्थ पीते!

४

है देह गेह रुज का, मल का अगार,
निःसार, भङ्गुर, तथा दुख-पाप-द्वार,
प्यारे, हितार्थ उसके नित हो निमग्न,
होना कभी निज प्रिय व्रत से न भग्न॥

५

तूने किया न किसको दुख! दग्ध होगा?
आजन्म सौख्य किसने जग बीच भोगा?
चिन्ता न भस्म करती किसका शरीर?
कर्तव्य से कब हुए च्युत किन्तु वीर?

६

तू आयु आज-कल ही कहते बिताता,
सत्कर्म हेतु मन में न विचार लाता।
है आ रहा निकट अन्तक ले विलोक,
होता तुझे भय तथापि न हाय! शोक!

७

हिंसा सदैव करते नर! हो न तुष्ट
होता न जान उससे निज देह पुष्ट।
है नाशवान् तनु तो फिर पुष्टता क्या?
होगी कराल इससे फिर दुष्टता क्या?

पांडेय लोचनप्रसाद।

## सुभाषित।

येनाचलेन सरसीरुहलोचनाया-
स्त्रातः प्रभूतपवनादुदये प्रदीपः।
तेनैव सोऽस्तसमयेऽस्तमय विनीतः
क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम्॥

भावार्थ।

कञ्जाक्षि के जिस सुअञ्चल से दिया की-
रक्षा हुई पवन से, पहली दशा में।
देखो दिया फिर विनाश किया उसीने,
होता सुमित्र रिपु है विधि-रुष्टता में॥

---

## "ऊट-प-टाँग"।

१

"ऊट प टाँग" शब्द का बहुधा लेखों में हो रहा प्रयोग।
पर इसकी उत्पत्ति अनोखी नहीं जानते हैं सब लोग॥
प्रिय पाठक! जो मधुर हास्य-रस-पान आपको प्यारा है।
तो सुनिये, वृत्तान्त सुनाया इसका जाता सारा है॥

२

मारवाड़ के एक निवासी करने लगे विदेश प्रयाण।
दलके पृथुल नितंब महोदर, हुआ विरह से व्याकुल प्राण॥
उनको एक व्यसन था भारी, रखते थे हुलास से प्रेम।
चुटकी सदा भरी रहती थी, सड-सड करने का था नेम॥

३

रँगे सचित्र द्वार के आगे, साधु, सुडौल, अदुखदाता,
बैठा एक खुदा-वाहन था, अरबी भाषा का ज्ञाता॥
चढ़ने लगे, हुलास याद कर नाक चुनमुना कर हुलसा।
देख हाथ पर डिबिया का गुल चमक पड़ा चित बुलबुल सा॥

४

बायाँ पग रिकाब में रखकर खड़े सुड़कने लगे हुलास।
लेने लगी उसास विरहिनी, धँसे ध्यान में भोगविलास॥
अरे! क्या हुआ? लटक पड़े जो, उछल ऊँट ने भरी छलाँग।
देख खिल-खिला पड़े पड़ोसी, देखो भाई "ऊट प टाँग"!!

श्रीरामनरेश त्रिपाठी।




मांदुरुड़ की मालागनि।

# विमलदेवी ।

१

बहुत प्राचीन काल में पचसर नामक एक नगर गुर्जरदेश की राजधानी था । वह अत्यन्त समृद्ध, धन-धान्यसम्पन्न और बहुत सुशोभित था । उसके वैभव की कथा आज तक लोग गाते रहते हैं । सारांश, वह नगर लक्ष्मी और सरस्वती का निवास-स्थल था ।

पचसर का अन्तिम राजा जयशेखर जैसा विद्या में निपुण वैसा ही पराक्रमी भी था । वह नीति से राज्य करता था, इस कारण उसके शासन काल में प्रजा सुखी और सन्तुष्ट थी । जयशेखर के एक बहन थी । उसका नाम था विमलदेवी । वह स्वभाव में शान्त, सुशील और रूप में अत्यन्त सुन्दर थी । वह रूपगुणों में जैसी अच्छी थी वैसी ही वह सरस्वती की भी उपासक थी । संस्कृतभाषा, काव्य कला, नृत्यगान, इत्यादि में तो वह पारंगत थी ही किन्तु अस्त्रविद्या भी वह अच्छी जानती थी ।

एक बार मुलतान का राजा अपनी रानी, पुत्र और कन्या को साथ लेकर, प्रभासक्षेत्र के दर्शनार्थ आया । उसके पुत्र का नाम सुरपाल और कन्या का नाम रूपसुन्दरी था । पुत्र अत्यन्त शूर और कन्या अपने नामानुसार बहुत ही लावण्यवती थी । प्रभासतीर्थ की यात्रा होने पर मुलतान का राजा पचसर के राजा जयशेखर से मिलने आया । जयशेखर ने बड़े उत्साह के साथ उन लोगों का आदर-सत्कार किया । सुरपाल और जयशेखर में तो परस्पर भाइयों का सा प्रेम हो गया । एक दिन, दो दिन, करते करते जयशेखर ने उन लोगों को अपने घर में एक महीना रख लिया । इस अवसर में सुरपाल का शौर्य-धैर्य देख कर विमलदेवी उस पर मोहित हो गई । और जयशेखर के गुणों पर रूपसुन्दरी भी लट्टू हो गई । कुछ दिन बाद मुलतान का राजा अपने परिवारसहित अपने देश को चला गया ।



पापी मुकुट तुम्हारे से धारण करने की हमारी बिल्कुल ही इच्छा नहीं ।

कुछ दिन व्यतीत होने के बाद जयशेखर ने एक भाट के द्वारा, रूपसुन्दरी के साथ विवाह करने के लिए, मुलतान के राजा से अपनी इच्छा प्रकट की । मुलतान के राजा और रानी ने बड़े आनन्द के साथ रूपसुन्दरी को जयशेखर को समर्पण किया । यह विवाह होने के बाद सुरपाल अपनी भगिनी के साथ पचसर को आया । और कुछ दिन व्यतीत हुए । बाद को सुरपाल ने अपने माँबाप की सम्मति से विमलदेवी का पाणिग्रहण किया । सुरपाल मुलतान के राजा का द्वितीय पुत्र था, इस कारण वह पचसर में ही सेनापति होकर बना रहा ।

२

महाराष्ट्र में कल्याणकटक नामक नगर में भूदेव नामक पराक्रमी राजा राज्य करता था । भूदेव ने नाना देश के राजाओं को जीत कर अपना कल्याणकटक सम्पत्ति से भरपूर कर दिया था । अश्व, गज, रथ, रत्न, इत्यादि जीते हुए राजाओं से, हरण की हुई सम्पत्ति से उसका वैभव खूब ही बढ़ा था । राजनगर के सब लोगों के घर नाना प्रकार के सुन्दर रंगीन चित्रों से सुशोभित किये गए थे । सारांश, उस समय की लंका की अपेक्षा इस नगर का वैभव किसी प्रकार कम न था ।

राजा भूदेव सिर्फ युद्ध-विशारद ही न था, किन्तु विद्या की ओर भी उसका अच्छा ध्यान था, व्याकरण और काव्यालंकार पर उसका विशेष जोर था । विद्वान लोगों का वह इतना आदर करता कि नदी का प्रवाह जिस प्रकार आप ही आप समुद्र की ओर दौड़ता जाता है उसी प्रकार विद्वान् लोग इस राजा की सभा की ओर आप ही आप चले आते थे ।

राजा भूदेव के सोलह सेनापति थे और वे सब अपने कर्तव्य में बड़े दक्ष थे । उन सब को उसने दिग्विजय के लिए चारों दिशाओं की ओर भेजा । वहाँ से वे विजयी होकर अगणित सम्पत्ति के साथ लौट आये । और दरबार में आकर उन्होंने राजा भूदेव से प्रकट किया कि सारे देश जीत लिये गये । सब राजाओं ने महाराज की अधीनता स्वीकार कर ली है ।

एक दिन राजा भूदेव दरबार में बैठा था । आसपास विद्वज्जन और सेनापति जमा थे । कविगण स्वरचित कविताद्वारा परस्पर में उत्तर प्रत्युत्तर देकर राजा का मनोरंजन कर रहे थे । उस कविसमुदाय में कामराज नामक एक कवि सारे कवियों में भूषण के समान सुशोभित था इतने ही में एक विदेशी कवि वहाँ आ पहुँचा ।

राजा ने उसका नाम पूछा । उसने उत्तर दिया —

'शंकर कवि' के नाम से मुझे जानत लोग ।
नव रस-सौरभ से सदनि, है अलि-सम मम योग ।

इस पर राजा ने पूछा कि आपका वृत्तान्त क्या है? तथा आपका कहाँ से और किस लिए आगमन हुआ?

शंकर कवि ने उत्तर दिया —

जन्मभूमि मम गुर्जरदेश । उसकी महिमा सुना विशेष ॥
चामर तृण तुषार चहुँ ओर । दर्शित सुमन गिरि तर ठौर ॥
उमड़ नद-नदियों का नीर । ... ... गम्भीर ॥
जन्मभूमि-गुण-गौरव गान-रत मनसिज नित ज्ञान ॥
नाम पचसर नगर अनूप । जहाँ रहा हमारा भूप ॥
रहत है उसमें विद्वान । विद्या विषयक मतिमान ॥
है वह अमरावती-समान । या नहीं उसका उपमान ॥
... मुकुट का ... । ... है नृपति प्रवीन ॥

नर, सरस्वी और उदार। राजनीति में है आगार॥
रानी 'रूपसुन्दरी' नाम सभी सद्गुणों की है धाम॥
उस देवी का प्यारा बंधु है 'सुरपाल' वीर गुणसिंधु॥
उसका दल का मैं कविराज। लिखा है विजय के काज॥
नृपति! आपका गुर्जरसमाज पाकर प्रमुदित हूँ मैं आज॥
आशा है रहता मैं वीर। आप समान ना कहिं और!

गुर्जरदेश की यह प्रशंसा सुन कर राजा भूदेव ने लज्जा से सिर नीचे कर लिया। कामराज और शंकर कवि का वाग्युद्ध हुआ। उस युद्ध में कामराज का अन्त में पराजय हुआ। तब शंकर हँस कर बोला —

अहा! 'काम' को भस्म कर शंकर आता आज।
यही सर्वथा उचित है, हुआ सिद्ध सब काज॥

राजा भूदेव ने अपने कंठ का बहुमोल हार शंकरकवि को प्रदान करके उसे विदा किया।

३

दरबार बरखास्त होने पर राजा भूदेव ने अपने सब सेनापतियों को एकान्त में बुलाया और उन्होंने यह जो झूठी ही खबर राजा से बतलाई थी कि, सारे देश जीत आये, उसके लिए राजा भूदेव ने उनकी बड़ी निर्भर्त्सना की। इसके बाद उसने उन्हें आज्ञा दी कि अब एक क्षण का भी विलम्ब न करते हुए तुम सब गुर्जरदेश पर चढ़ाई करो। सच बात यह थी कि राजा भूदेव के मीर नामक सेनापति का अर्बुदाचल के पास सुरपाल ने पराजय किया था। अतएव, अब राजा की आज्ञा होने पर मीर स्वयं मुख्य सेनापति बना और विशाल सेना के साथ युद्ध के लिए चला।

इतने अवकाश में शंकर कवि पचसर को वापस आया और उसने सम्पूर्ण वृत्तान्त जयशेखर से निवेदन किया। यह भावी युद्ध की वार्ता सुन कर राजा जयशेखर को परमानन्द हुआ। और अपने सेनापतियों को सुवर्ण-वलय और कर्णभूषण बाँटने का प्रारम्भ किया।

इधर राजा भूदेव का सेनासागर उमड़ता हुआ आगे बढ़ता आता था। इस सेना में असंख्य अश्वारोही, अगणित गजारोही, चार हजार रथी, चार हजार धनुर्धारी और अगणित फुटकर पादचारी थे। मार्ग में सैकड़ों गाँवें लूटते लूटते सेनापति मीर अन्त में पचसर से छै मील पर आ पहुँचा, और वहां डेरे डाल कर पड़ रहा, यह समाचार सुन कर राजा जयशेखर क्रोध से जल ही तो गया। गरीब बिचारे गाँववाले लोगों को रास्ते में लूट कर मीर ने जो अधर्म किया उसके लिए उसने उसे खूब ही तेज पत्र लिखा। मीर ने उत्तर में प्रकट किया कि आप यदि हमारे महाराज के अधीन होने के लिए तैयार हों तो मैं आपके राज्य से सेनासहित चला जाऊंगा।

इस समय सुरपाल कहीं अपने राज्य की सरहद की ओर गया था। वह लौटा आ रहा था कि रास्ते ही में उसे सेनापति मीर के आने का समाचार मिला। अतएव वह एकदम जाकर मीर पर टूट पड़ा। मीर उसके सामने नहीं टिक सका। हवा की तेजी में रेत-कणों का जो हाल होता है वही हाल उसकी सेना का हुआ और उसे जीवरक्षा के लिए संग्राम से भगना पड़ा। मीर बिलकुल दीनरूप धारण कर किसी न किसी तरह राजा भूदेव के पास तक पहुँचा तब राजा भूदेव स्वयं बड़ी भारी सेना लेकर गुर्जरदेश की ओर चला।

राजा भूदेव कुम्भारन भी आया। युद्ध प्रारम्भ हुआ। अनेक दिन तक युद्ध होता रहा, अन्त में राजा भूदेव ने पचसर नगर को घेर लिया। तथापि सुरपाल के अद्भुत कौशल से उस नगर के सामने उसकी दाल नहीं गली। यह देख कर सुरपाल का नाश करने के लिए भूदेव ने उसे इस प्रकार का पत्र लिखा —

सुरपाल तुम यदि हम सहायता करोगे तो बात की बात में जयशेखर का पराभव करके मैं तुम्हारे सिर पर राजमुकुट रखूँगा।

अपनी पत्नी का अभिप्राय लेने के लिए सुरपाल ने उसे यह पत्र दिखला कर कहा, "यह देख, इसके कहने के अनुसार यदि करूँ तो हम दोनों राजा रानी बनेंगे।" क्रोध से बिलकुल लाल होकर विमलदेवी ने उत्तर दिया "चूल्हे में जाय वह राज्य! पापी मुकुट मस्तक में धारण करने की हमारी बिलकुल इच्छा नहीं। मैं पतिव्रता हूँ पर मैं यह बात कभी नहीं भूलती कि पति से भी परमेश्वर श्रेष्ठ है!" पत्नी के मुख से ये वचन सुन कर सुरपाल ने उसे आलिंगन देकर कहा, "धन्य है तुझे! तेरे माबाप को धन्य है? तेरे समान सत्यशील और धार्मिक स्त्रियाँ भारतवर्ष में घर घर उत्पन्न हों! तेरे समान स्त्रीरत्न मुझे प्राप्त हुआ अतएव मैं भी धन्य हूँ।"

इसके बाद सुरपाल ने राजा भूदेव को लिखा- "यह देख कर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ है कि आपने पवित्र धर्मबुद्धि का त्याग करके पापबुद्धि का अंगीकार किया है।"

४

राजा जयशेखर और सेनापति सुरपाल ने नगर की रक्षा करने के लिए बड़े बड़े प्रयत्न किये। परन्तु शत्रुसेना की भारी मार के कारण शहर का कोट जगह जगह भग्न होने लगा। कुछ दिन में तो कोट का यह हाल हो गया कि स्पष्ट ऐसा जान पड़ने लगा कि अब थोड़े ही दिनों में शत्रुसेना शहर में घुस कर उसका विध्वंस करनेवाली है। बाहर से धान्य का पहुँच बन्द हो जाने के कारण भूखों से उस विशाल नगर को बहुत कष्ट होने लगा। अतएव राजा जयशेखर ने विचार किया कि अब समस्त सेना लेकर कोट के बाहर निकलना चाहिए और अन्तिम घोर युद्ध करके एक बार इसका निपटारा कर डालना चाहिए।



विमलदेवी को एकदम उठाकर, दर्शक मंडली की भीड़ हटाते हुये, विद्युद्वेग से वन की ओर चला गया।

अपना यह विचार उसने सुरपाल से बतलाया। उसकी अनुकूल सम्मति मिलने पर राजा ने कहा, "यदि हम लोगों का पराभव हुआ तो अन्तःपुर की स्त्रियों पर कठिन प्रसंग आवेगा। उनकी इज्जत जाने का अवसर आ जायगा। तिस पर भी रूपसुन्दरी गर्भवती है। अतएव रूपसुन्दरी और विमलदेवी दोनों को तुम कहीं दूर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दो।" इस सलाह के अनुसार उसी दिन रात को सुरपाल, रूपसुन्दरी और विमलदेवी को लेकर, नगर के बाहर निकला, और दूर पर जंगल में भिल्लों का एक गाँव था उसकी ओर गया। दूसरे दिन सुबह जयशेखर ने नगर का द्वार खोल कर सारी सेना के साथ शत्रु पर धावा किया। सुबह से शाम तक दोनों सैन्यों का तुमुल युद्ध हुआ। धीरे धीरे जयशेखर की प्रायः बहुत सी सेना मारी गई तथापि जो सेना रही थी उसके साथ जयशेखर

अत्यन्त पराक्रम से लड रहा था अन्त में सूर्यास्त के साथ ही गुजरात के तेजस्वी सूर्य जयशेखर के जीवन का भी अस्त हो गया। राजा भूदेव ने पचसर पर अपना अधिकार करके वहा के ऊचे दुर्ग पर अपना पताका फहराया।

५

इधर रूपसुन्दरी और विमलदेवी को साथ लेकर सुरपाल जगल को चला गया, यह समाचार दूसरे दिन शत्रु के युवराज कर्ण को मालूम हुआ। अतएव, वह थोडी सी सेना लेकर उसका पीछा करने के लिए चला। उधर रूपसुन्दरी और विमलदेवी को भिल्लों के गावें में रख कर सुरपाल पचसर की ओर लौट चला। इतने ही में रूपसुन्दरी और विमलदेवी के कान में यह बात पहुँची कि युवराज कर्ण को हमारे भगने की खबर मिल गई और वह यहा आता है, अतएव विमलदेवी ने एक भिल्ल से कहा कि रूपसुन्दरी को ले जाकर अरण्य में कहीं न कहीं शान्त स्थान में छिपा दे।

रूपसुन्दरी के जाने पर थोडी ही देर बाद युवराज कर्ण अपनी सेनासहित वहा आ पहुँचा और विमलदेवी की अलौकिक सुन्दरता देख कर वह पागल सा हो गया। वह उसे कैद करके नगर में लाया। और उसे प्रसन्न करने के लिए उसने अनेक प्रयत्न प्रारम्भ किये। उसने समझा कि कुछ दिनों के बाद इसका शोक आप ही आप कम हो जायगा और वह हमारे साथ विवाह करने के लिए राजी होगी। इसी हेतु से उसने यह झूठी ही खबर उड़ा दी कि सुरपाल मर गया।

इधर सुरपाल जब दूसरे मार्ग से पचसर को लौट आया तब उसे उस नगर की दुर्दशा मालूम हुई। उस समय वह वहा से वैसा ही लौट पड़ा और रूपसुन्दरी तथा विमलदेवी को जहा रख गया था वहीं आया। वहा आने पर उसे अपनी पत्नी के हरण किये जाने का समाचार मिला। अतएव कुछ भिल्लों को साथ लेकर वह सौराष्ट्र की ओर चला क्योंकि कर्ण उसी तरफ के एक नगर में ठहरा था।

सुरपाल की मृत्यु का समाचार सुन कर विमलदेवी ने सती होने का निश्चय किया। और अपना यह निश्चय उसने कर्ण से प्रकट किया। कर्ण, नाना प्रकार से उसे समझा कर इस काम से उसे पराङ्मुख करने का प्रयत्न करने लगा। उस साध्वी के साथ कर्ण का वह बर्ताव देख कर उसकी सेना के लोग भी उस पर अप्रसन्न हुए। अतएव, लाचार होकर, उसने नगर के बाहर एक चिता लगाने की आज्ञा दी। यह समाचार सुन कर उस नगर के तथा आस-पास पाच कोश के लोग उस सती का अन्तिम दर्शन करने के लिए जमा हुए।

विमल देवी चिता में प्रवेश करने के लिए तैयार हुई। दर्शकों में कर्ण की सेना के अनेक लोग थे। उन्होंने विमलदेवी के चरणों की वन्दना करके दुष्कर्मों के लिए उससे क्षमा मॉगी। कर्ण ने भी लज्जा से मुख नीचा करके उससे क्षमा की याचना की। चिता भक-भक जल रही थी। चिता की प्रदक्षिणा करके विमलदेवी अब उसके भीतर प्रवेश करने ही वाली है कि इतने में दर्शकसमुदाय से एक मनुष्य एकदम बाहर आया, और " विमलदेवी को एकदम उठा कर दर्शकमडली की भीड़ हटाते हुए, विद्युद्वेग से वन की ओर चला गया। '

पाठको ! क्या आप जानते हैं, यह मनुष्य कौन है ? यह पुरुष इस सती का प्यारा पति वही सुरपाल है, जो अपनी प्यारी पत्नी को खोजता हुआ इस नगर में आया था और दर्शकों की भीड़ में, अपनी पत्नी को इस प्रकार उठा ले जाने के लिए, ताके हुए खडा था। अस्तु। जगल की सीमा पर आकर सुरपाल उससे बोला, " प्रिये विमलदेवी ! डरना नहीं। शीघ्र ही इस घोड़े पर बैठो। पीछे शत्रु-सेना आ रही है। "

उस जगह दो अश्व तैयार थे। उन पर बैठ कर दोनों ने वायुवेग से अपने घोडे छोड़ दिये। पल भर में सुरपाल उस चितास्थल से विमलदेवी को उठा ले गया ! अतएव सारे लोग आश्चर्य से मुहँ बाये हुए खडे रहे। कुछ देर बाद स्वाभाविक ही उनके आश्चर्य का वेग कम हुआ। तब कर्ण की सेना तैयार होकर सुरपाल का पीछा करने लगी। बहुत दूर तक सैनिक लोग उसके पीछे दौड़े गये, पर उसका पता लगा नहीं। सुरपाल और विमलदेवी ने अनेक वन पर्वतों का उल्लघन किया। अन्त में एक निर्भय स्थान पाकर वहा वे ठहरे। तब विमलदेवी ने अपनी सारी कहानी सुरपाल से निवेदन की। उसे सुन कर सुरपाल ने कहा, " तेरे समान पतिव्रता स्त्री मुझे मिली, अतएव मैं सचमुच ही धन्य हू। " कुछ दिन उन्होंने वनवास ही में व्यतीत किये। बाद को एक भिल्ल के द्वारा उन्हें मालूम हुआ कि रूपसुन्दरी प्रसूत हुई और उसके पुत्ररत्न हुआ है।

यह सुसमाचार पाकर अनेक दुर्गम मार्गों से प्रवास करते हुए वे दोनों रूपसुन्दरी के पास आये। उस विपत्ति की दशा में भी, एक दूसरे को देख कर, वे परमानन्दित हुए। रूपसुन्दरी ने अपने पुत्र का नाम वनराज रखा था। उसे प्रेमपूर्वक आलिंगन करके विमलदेवी बोली, " बेटा, तेरे मुख का दर्शन मै कर चुकी, अब यदि मुझे मृत्यु भी आ जाय तो मैं सुख से मरुगी। तू अमर हो, और मेरे पिता के कुल की कीर्ति को उज्वल कर। यह आशीर्वाद उसने उस बाल वनराज को दिया।

वहा कुछ काल रहने के बाद, वहा की जलवायु से विमलदेवी की प्रकृति बिगड़ गई। उसका शरीर दिन दिन क्षीण होने लगा। अन्त में एक दिन अपने पति की जघा पर मस्तक रख कर विमलदेवी ने स्वर्ग को प्रयाण किया।

\+ \+ \+ \+

कालान्तर में रूपसुन्दरी के पुत्र ने अपने बाहुबल से अपने पिता का राज्य फिर प्राप्त कर लिया और बड़ा यश पाया।

---

## तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कलकत्ता।



प्यारे पाठको ! मातृभाषा की सेवा करनेवाले इन पवित्र आत्माओं के दर्शन कीजिए। देखिये इस जनसमूह में कौन कौन साहित्यवीर किस किस प्रान्त से एकत्र हुए हैं। ये सारे सज्जन इस समय एक ही भाव से प्रभावित हैं और वह भाव एक राष्ट्रीय भाषा का है। स्वेच्छासेवकों के उत्साह, प्रेम और पवित्र शान्ति से सुशोभित मुखश्री आप देखिये। परमात्मा करे यह समूह " दिन दूना रात चौगुना " बढ़ता रहे।

# डा० वुड्रो विल्सन्।

( अमेरिका के नवीन अध्यक्ष )



अमेरिका के नवीन अध्यक्ष ।

अमेरिकन लोग सुशिक्षित, सभ्य, स्वतंत्र वृत्ति के, आविष्कारक और कर्तव्यदक्ष हैं। इन बातों के लिए वे प्रसिद्ध हैं। और अमेरिका के यूनाइटेडस्टेट्स् में अमेरिकन लोगों ने जो सुधार किये हैं उनसे उनकी प्रगतिप्रियता प्रकट होती है। अतएव सुधरे हुए अथवा सुध

हनेवाले जगत् का उन लोगों की ओर स्वाभाविक ही ध्यान रहता है। यूनाइटेड स्टेट्स में लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति प्रचलित है; अतएव भिन्न भिन्न गुणी मनुष्यों को अपने गुण दिखला कर आगे बढ़ने में स्वहित अथवा परहित साधने में, विशेष अवसर मिलता है, और चूंकि अमेरिकन नेताओं को लोगों के सामने अपने गुणों को कसौटी में लगा कर दिखलाना पड़ता है, इस लिए साधारण मनुष्य की वहां दाल नहीं गल सकती। यूनाइटेडस्टेट्स के अध्यक्ष का पद चाहे जिस शिकारसी टट्टू को नहीं मिल सकता, और इस पद पर आरूढ़ होनेवाले मनुष्य बहुधा असाधारण ही होते हैं। ऐसे ही असाधारण पुरुषों में डॉ० वुडरो विल्सन को समझना चाहिए, आप अभी हाल ही में अमेरिका के अध्यक्ष चुने गये हैं। अतएव आपका सचित्र चरित्र आज हम इस अङ्क में अपने पाठकों को सुनाते हैं।

### पूर्ववृत्तान्त।

डॉ० विल्सन का जन्म सन् १८५८ में स्टंटन (वर्जीनिया) में हुआ। इनके विल्सन् आजा आयरिश और वुडरो आजा स्काच हैं। इनका घराना क्रिश्चियन प्रेस्बिटेरियन पन्थ का है। सन् १८७९ में, अर्थात् इक्कीस वर्ष की उम्र में आप ग्रेज्युएट हुए। इसके बाद आपने सुप्रसिद्ध 'जान हॉप्किन्स' और 'वर्जीनिया' की युनिवर्सिटियों में अध्ययन किया। पठनक्रम समाप्त होने पर आपने कानून का अभ्यास करके कुछ दिनों तक बैरिस्टरी का व्यवसाय किया, इसके बाद कई जगह आपने अध्यापन का कार्य किया और १८९० में आप प्रिन्सटन् में 'कानून और राजनीति' के महाध्यापक नियत हुए। इसके बारह वर्ष बाद आप 'प्रिन्सटन् युनिवर्सिटी' के अध्यक्ष हुए।

### युनिवर्सिटी-विषयक कार्य।

प्रिन्सटन-युनिवर्सिटी युनाइटेडस्टेटस् की दूसरी बड़ी युनिवर्सिटी है। इसके अध्यक्ष होने पर डॉ० विल्सन् ने इस बात के लिए बड़ा परिश्रम किया कि इस युनिवर्सिटी को जो एक 'क्लब' का स्वरूप प्राप्त हो गया है वह न रहे और यह वास्तविक विद्यापीठ हो जाय तथा इसमें ऐसी योजना की जाय कि जिससे इसमें विद्यार्थियों को श्रेष्ठ विद्या और सुधार की शिक्षा मिले। परन्तु धनिक और बड़े कहलानेवाले सुखी जीवों ने उनके इस परिश्रम में सफलता नहीं होने दी। उस समय डॉ० विल्सन् ने कहा, 'लोग कहते हैं कि इस देश के लोग समझते हैं कि धन की अपेक्षा सुधार और जनहित के विचारों की ओर हमारा अधिक ध्यान है, परन्तु इस समय तो यही देख पड़ता है कि यह आशा व्यर्थ है। आज कल हम सुधार अथवा प्रगति के विचारों से अधिक धन को ही मान देना चाहते हैं।" डॉ० विल्सन् उस पराभव से हताश नहीं हुए, किन्तु वे अपने तत्त्वों और मतों पर दृढ़ रहे। इसी लिए आज वे युनाइटेडस्टेटस् के सब से बड़े पद पर आरूढ़ हो गये हैं। प्रिन्सटन् युनिवर्सिटी में सुधार करने की इच्छा रखनेवाले विल्सन् साहब को जिन धनी लोगों ने "दरिद्री भिखारी, और मलीन" कह कर धिक्कारा था उनके स्वप्न में भी यह बात कभी न आई होगी कि वे इस ऊंचे दर्जे तक पहुँचेंगे। परन्तु इस जगत् में कितनी ही अनपेक्षित और विलक्षण बातें हो जाती हैं—काल से जो बदला लिए जाते हैं वे स्वप्नसृष्टि के चमत्कार से भी अद्भुत होते हैं—बस ऐसी ही यह भी एक बात प्रत्यक्ष हो गई है।

विल्सन् साहब को जब डाक्टर की बहुमानसूचक पदवी मिली तब उनके निबन्ध का विषय 'कान्ग्रेशनल गवर्नमेन्ट' था। उन्होंने अपने इस निबन्ध में इस बात का उत्कृष्ट विवेचन किया है कि कांग्रेस के प्रतिनिधियों के हाथ में राज्यकारभार के सूत्र होना योग्य है या नहीं। युनाइटेडस्टेट्स् में विद्यार्थियों को राजनीति सिखलाना अपराध नहीं समझा जाता, किन्तु यह विषय वहां अवश्य करके विद्यार्थियों को सिखलाया जाता है। डॉ० विल्सन प्रोफेसर रहते समय विद्यार्थियों को इस बात का खुलासा तो समझाते ही थे कि कानून और राजनीति का क्या सम्बन्ध है; किन्तु इसके अतिरिक्त वे राजनीति पर जोर देकर अपने विद्यार्थियों को यह बात भी अच्छी तरह बतला देते थे कि उच्च राजनीति कैसी होनी चाहिए—नीति और न्याय की दृढ़ नींव पर सच्ची राजनीति को खड़ा करना आवश्यक है। डॉ० विल्सन् का पठन अगाध था और उनकी विद्वत्ता बहुत बड़ी थी यही नहीं किन्तु उनकी वाणी और बुद्धि में ऐसा सामर्थ्य था कि जिस विषय को वे सिखाते उसे इतना मनोरञ्जक बना देते कि विद्यार्थियों को प्रतिपाद्य विषय में तल्लीन कर देते, और इसी कारण विद्यार्थियों को वे बहुत प्रिय हो गये। बड़े बड़े विषयों के भारी भारी सिद्धान्त अगम्य भाषा में बतला कर अपना काम समाप्त करनेवाले भारी विद्वानों में वे नहीं थे। उनका विषय उत्कृष्ट रीति से समझा हुआ होता था, उस विषय पर उनके मत दृढ़ निश्चित रहते थे उनकी विचारश्रेणी इतनी सरल और स्पष्ट होती थी कि वे अपने उन मतों का यथार्थत्व स्पष्ट करके बतलाते थे और इसी कारण उनके विद्यार्थियों को विद्या का सच्चा आनन्द मिलता और उनके अन्तःकरण में अपने गुरु के विषय में आदरबुद्धि उत्पन्न होती। प्रोफेसर रहते समय वे केवल अपने पूर्वसञ्चित ज्ञान पर ही निर्भर नहीं रहते, किन्तु वे अपना ज्ञान फिर अध्ययन करके सतेज करते। वे जब कोई विषय विद्यार्थियों को समझाते तब सिर्फ सिद्धान्त ही नहीं, किन्तु उनकी उपपत्ति, तत्सम्बन्धी साधक बाधक बातें उनके प्रमाण और विद्वानों के मत भी विद्यार्थियों को सुनने को मिलते थे। प्रोफेसर विल्सन रूक्ष ज्ञान की राशि विद्यार्थियों के सामने लाकर रखनेवाले भारवाहक कुली नहीं थे, किन्तु वे वास्तविक विद्याभिरुचि से और उच्च विचार से अथवा उदात्त ध्येय से प्रेरित हुए तेजस्वी अध्यापक थे, और इसी कारण उनकी शिक्षा से अध्ययन के साथ तत्वों का भी उत्कृष्ट ज्ञान होता था। उनका कथन है कि, "कोरी जानकारी करा देने से क्या लाभ हो सकता है? उस जानकारी की विविध बातों का वर्गीकरण करके उससे क्या सीखना है, यह बात यदि नहीं बतलाई गई तो उस ज्ञान की कोई कीमत नहीं।" कहते हैं कि उन्हें विषय का पूर्ण ज्ञान रहता था और उसे वे उदाहरणों से, कोटियों से और अस्खलित वाणी से समझा सकते थे, इसी कारण विद्यार्थी लोग उन्हें बहुत चाहते थे। जैसे कोई होशियार वकील अपना कथन जूरी के मन में बैठाने के लिए उसे सुबोध करके बतलाता है, स्वयं अपने ही विरुद्ध अनेक शङ्काएं निकाल कर फिर उनका निरसन कर दिखलाता है और जब तक जूरी लोगों की चेष्टा से उसे यह नहीं मालूम हो जाता कि अब जूरी हमारे मत की हो गई तब तक वह अपने विषय का भिन्न भिन्न प्रकार से, बराबर, समर्थन करते रहता है, ऐसा ही विल्सन साहब भी कालेज में करते थे। जब तक उन्हें यह न मालूम हो जाता कि अब विद्यार्थी पूर्ण रीति से अपना विषय समझ गये तब तक वे चुप नहीं रहते। सन १९०२ में वे प्रिन्सटन् युनिवर्सिटी के अध्यक्ष हुए, तब उन्होंने उस युनिवर्सिटी के पठनक्रम में परिवर्तन कराया। उन्होंने ऐसा प्रबन्ध प्रारम्भ किया कि जिससे विद्यार्थी लोग अपना अपना प्रिय विषय सीख सकें। कितने ही लोगों को उनके वे परिवर्तन पसन्द नहीं आये, तथापि उन्होंने अपने मतों को नहीं छोड़ा और सब बातें अपने मन के अनुकूल करा लीं।

### गवर्नर होना।

सन १९१० में डॉ० विल्सन न्यूजर्सीस्टेट के गवर्नर हुए। उस समय बड़ा विचित्र हाल हुआ। न्यूजर्सीस्टेट में कुछ बड़े लोगों ने सारी सत्ता अपने हाथ में ले रखी थी, वहां विवक्षित व्यक्तियों को अथवा किसी विशिष्ट वर्ग को प्रसन्न रखने के लिए जनहित का अपमान किया जाता था, और उस लोकसत्तात्मक राज्य में अनेक अनुचित व्यवहार हो रहे थे। परन्तु जब उन बड़े लोगों ने देखा कि एक चुनाव में हमारा पराजय होनेवाला है तब उन्होंने धूर्तता से यह निश्चय किया कि डॉ० विल्सन को उम्मेदवार बना कर आगे करना चाहिए, और चूंकि वे विद्वान् और सुधारवादी हैं, इस लिए उनका चुनाव जब कर लिया जाय तब उनको कठपुतले की तरह बना कर सारा कारबार अपने मन के अनुसार चलाना चाहिए। वे लोग समझते थे कि, "यह तो पुस्तकों का वीर है, व्यवहार की बातें क्या जानेगा? उससे हम लोग कहेंगे कि, ये बातें अमुक रीति से करनी चाहिए—उनका उसी तरह होना आवश्यक है—अन्यथा परिणाम अनिष्ट होगा।" ऐसा कहने से वह समझ जायगा और चूंकि उसे निज का कोई अनुभव नहीं है, अतएव बहुत सी बातें तो वह हम लोगों पर ही छोड़ देगा।" परन्तु उनका यह विचार डॉ० विल्सन ने मिथ्या बना दिया। सिनेटर स्मिथ नामक एक पुरुष की उस भाग में बड़ी प्रबलता थी। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जो मत (वोट्स्) मोल लेते फिरते हैं, अथवा ऐसा कहते हैं, कि अमुक बातें जिस तरह हम कहें उसी तरह करने कहो तो हम आप को इतने 'सालिड वोट्स्' मिला देंगे, अथवा वे लोग अज्ञान बहुजनसमाज की लाचार स्थिति का लाभ उठा कर 'चुनाव' के लोकसत्तादर्शक नाम पर 'नियत' करने की घटना करवा लेते हैं, तथा अपने हाथ में धन और सत्ता लाने की इच्छा रखते हैं। ऐसे मनुष्य अर्वाचीन काल में सभ्य देशों में भी पाये जाते हैं। उन्हीं में से उक्त सिनेटर स्मिथ भी एक मनुष्य था। यह आदमी उन बड़े लोगों का मुखिया था। अस्तु। उन बड़े लोगों ने जब डा० विल्सन को गवर्नरी के लिए उम्मेदवार के तौर पर आगे किया तब डाक्टर साहब को बड़ा आश्चर्य हुआ, पर वे डगमगा कर पीछे नहीं हटे। उन्होंने सिर्फ यही एक शर्त की कि, "मैं उम्मेदवार तो होता हूं परन्तु फिर स्मिथ को उम्मेदवार न होना चाहिए। मैं जब गवर्नर होऊंगा तब यदि स्मिथ 'सिनेटर' की जगह के लिए उम्मेदवार होंगे तो मुझे उनके विरुद्ध बोलना पड़ेगा। क्योंकि जो मत मेरे मन को दुस्सह जान पड़ते हैं वही मत मन स्मिथ साहब को प्रिय हैं।" इस पर उन लोगों ने कहा, "नहीं नहीं स्मिथ साहब कभी उम्मेदवार नहीं होंगे, उनकी तबियत भी तो नहीं अच्छी रहती। वे उम्मेदवार नहीं होंगे।" तब डा० विल्सन गवर्नर की जगह के लिए उम्मेदवार हुए और वे चुनाव में चुने भी गये। पर पीछे से स्मिथ साहब ने लोगों में प्रकट किया कि हमारी प्रकृति अब ठीक है। इसके बाद उन्होंने

सिनेटर होने का प्रयत्न भी शुरू किया। इस पर विल्सन साहब ने उन्हें साफ तौर पर लिख भेजा कि, "यदि मुझे गुरुवार की डाक से आपका यह पत्र न मिला कि मैंने अब सिनेटर होने का अपना विचार रहित कर दिया है तो मैं शुक्रवार को सुबह आपके विरुद्ध अपना मत प्रकट करूंगा।" परन्तु स्मिथ साहब ने इसका उत्तर वैसा तो नहीं लिखा किन्तु विनती करके प्रकट किया कि, "आप मेरे विरुद्ध अभी अपना मत न दीजिए-थोड़ा ठहरिये।" परन्तु डा० विल्सन् ऐसे पक्ष में नहीं आ सकते थे। उन्होंने तुरन्त ही अपने कथनानुसार अपना मत प्रकट कर दिया, यही नहीं, बल्कि जो शठ लोकमत का अपमान करके अपने हाथ में सत्ता लेना चाहते थे उनका ढोंग उन्होंने सार्वजनिक सभा में व्याख्यान देकर प्रकट कर दिया। 'प्राइमरी' में सच्चे लोकमत के अनुसार जेम्स ई० मार्टिन का चुनाव हुआ, परन्तु जब बड़े लोगों के डर से लेजिस्लेचर उसे स्वीकार करने में आगा-पीछा करने लगे तब उसके सभासदों को सम्बोधन करके डा० विल्सन बोले, "इन मूढ़ बड़े लोगों को देख कर तुम घबड़ाओ मत। तुम समझते हो कि इन मूढ़ों का यह यन्त्र एक किला है और उसमें सचमुच ही मनुष्य हैं और उसके पास तोपें हैं, परन्तु तुम समझ लो कि यह सिर्फ पत्तों की झोपड़ी है। ये मिट्टी के धोंधे 'सुखी जीव' केवल दिखाऊ सैनिक हैं और जिन्हें तुम तोप समझते हो वे सिर्फ खिलवाड़ हैं। अतएव घबड़ाओ मत! आगे बढ़ो। इस यन्त्र में एक धक्का लगाओ, यह तुरन्त ही टूट कर नीचे गिर जायगा।" लेजिस्लेचर ने सचमुच ही उसके धक्का लगाया और स्मिथ को सिर्फ चार मत मिले, तथा मार्टीन साहब को चालीस मत मिले।

डा० विल्सन् सिर्फ राजनीति के पुस्तकी पंडित नहीं हैं, वे बड़े बड़े राजकीय तत्व कथाओं में बतला कर "कथाओं का तत्वज्ञान कथाओं में" कहनेवाले तत्ववेत्ता नहीं हैं; अथवा परिस्थिति या अपने साथ काम करनेवाले सलाहियों के मतों के सामने सिर नीचा करने वाले ढीलेपोले राजर्षि नहीं हैं, यह बात उनके बर्ताव से, आगे चल कर, उन बड़े कहलानेवाले लोगों को मालूम हो गई। डा० विल्सन् ने यह सिद्ध कर दिखलाया कि, राजनीतिविषयक तात्विक ग्रन्थों के सुराज्य-सम्बन्धी तत्व कार्य में परिणत हो सकते हैं। उन्होंने लोगों को यह सिखला दिया कि मुलहरूपी चट्टान में अपने तत्वों का जहाज टूटने न देकर उसे अन्तिम मुकाम तक कैसे पहुँचा सकते हैं। तात्पर्य, बड़े लोगों ने जिन डा० विल्सन् को अपना बगलबच्चा बनाना चाहा था वे स्वयं उनके ही मालिक बन बैठे।

## उनकी राजनीतिपटुता।

डॉ० विल्सन् बड़े ही राजनीतिदक्ष हैं। युनिवर्सिटी के प्रेसिडेण्ट के नाते से उन्हें अनेक प्रकार के लोगों से पत्रव्यवहार करना पड़ा, इस कारण उन्हें अनेक व्यावहारिक बातों से जानकारी हो गई। संसार में भिन्न हेतु रख कर भाषा भिन्न कैसे बर्ती जाती है, देश हित के नाम पर स्वार्थ साध लेने का प्रयत्न, कितने ही सुशिक्षित कहलानेवाले विद्वान् भी, कैसे करते हैं, और धन के लिए विद्वत्ता बेच कर अपने द्रव्यदाताओं के लिए विशिष्ट मत प्रतिपादन करने वाली पुस्तकें लिखने में, अथवा व्याख्यान देने में कितने ही हीनवृत्ति के देशसेवक भी किस प्रकार तैयार रहते हैं, इत्यादि बातें डॉ० विल्सन् को अच्छी तरह मालूम हो गई हैं। इस कारण, कोई भी प्रकरण निपटारा के लिए उनके सामने आवे, उसके विषय में वे तुरन्त ही समझ जाते हैं कि उसका हेतु क्या है, अथवा उसमें सत्य झूठ क्या है। ढोंगी उद्देश्य दिखला कर, बेमेल विषयों के भार के नीचे सच्ची बातों को दबा कर यदि कोई झूठ बात प्रकट करने का प्रयत्न करे तो यह उनके सामने चल नहीं सकता। चाहे जितने गुन्ताड़े का विषय हो, वे तुरन्त ही समझ लेते हैं। उसके सारे पहलू उन्हें उसी वक्त सूझ जाते हैं और यह बात उन्हें तत्काल समझ पड़ती है कि भिन्न भिन्न मतों में कैसा विरोध है और सर्वमान्य तत्व कौन है। किसी प्रकरण के सुनने अथवा उसका बारीक तौर पर विचार करने में वे कभी घबड़ाते नहीं। और विशेषता यह है कि चाहे जितना काम हो, वे प्रत्येक बात की ओर सम्पूर्ण ध्यान रखने का प्रयत्न करते हैं। बड़े बड़े राजकीय तत्व प्रत्यक्ष व्यवहार में घटित कर दिखाने में वे बड़े प्रवीण हैं। जब उन्होंने यह नीति स्वीकार की कि बड़े लोगों की परवा नहीं करेंगे तब उन्होंने कहा कि, "बड़े कहलानेवाले लोगों की परवा न करते हुए देशकार्य किस प्रकार करना चाहिए, सो मैं विद्यार्थियों को बतलाता रहा हूं, और अब उन्हें यह दिखलाना कि, यह बात प्रत्यक्ष कृति में किस प्रकार लाकर दिखलाई जा सकती है, न्याय की ही बात है।" न्यूजर्सी स्टेट एक हीन स्थिति में रहनेवाला स्टेट था, 'सर्वसाधारण का सर्वसाधारण के द्वारा, सर्वसाधारण के लिए' राज्यकार्यभार चलाने का तत्व इस स्टेट में उपयुक्त नहीं होता था। सारी सत्ता विवक्षित प्रकार के बड़े लोगों के हाथ में चली गई थी और वे इस नीति से राज्यकार्य करते थे कि जिससे सर्वसाधारण के नाम पर ट्रस्टस का हित हो। यह हाल डॉ० विल्सन् ने बन्द कर दिया; और जनहित की दृष्टि से ही 'स्टेट' का कारबार चलाया गया। उन्होंने चुनाव का अधिकार फिर लोगों ही के हाथ में ला दिया, चालबाजी में होनेवाली तीन बातें बन्द कर दीं। शिक्षाविभाग और कानून में सुधार किया; और अन्य अनेक सुधार किये।

## उनका ग्रन्थकर्तृत्व।

डा० विल्सन बड़े भारी विद्वान हैं, व बड़े उत्कृष्ट लेखक भी हैं। उन्होंने इतिहास और राजनीति पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों के वृत्तान्त, विचारशैली और तत्व वर्णन ही प्रशंसा के पात्र हुए हैं। 'कांग्रेशनल गवर्नमेन्ट-ए स्टडी इन अमेरिकन पालिटिक्स', 'दि स्टेट-एलिमेन्टस आफ हिस्टारिकल एंड प्राक्टिकल पालिटिक्स', 'डिविजन एंड रीयूनियन', 'अन ओल्ड मास्टर एंड पालिटिकल एसेज', 'मीयर लिटरेचर एंड अदर एसेज', 'जार्ज वाशिंगटन', 'ए हिस्टरी आफ दि अमेरिकन पीपल', उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

## उनका वक्तृत्व।

डा० विल्सन अच्छे वक्ता हैं। कालेज में पढ़ाते समय वक्तृत्व कला का उनका अभ्यास हुआ और वे स्वाभाविक ही बोलनेवाले हैं उसमें भी ज्ञानसम्पन्न होने के कारण उनके भाषण में विशेष मोहकता आ गई है। विद्यार्थियों की वादविवादक सभाओं में और धार्मिक सभाओं में उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये हैं, और वे सब को बहुत ही प्रिय हुए हैं। उनकी आवाज मीठी है, वे बहुत जोर से नहीं बोलते; पर उनकी आवाज में ऐसा कुछ गुण है कि वह बहुत दूर तक सुनाई देती है। वे अपने व्याख्यान कभी लिख नहीं रखते। व्याख्यान की सिर्फ मुख्य मुख्य बातें नोट कर रखते हैं, और वह कागज लेकर वे भाषण का प्रारम्भ करते हैं। उनका पुस्तकावलोकन इतना हुआ है और उन्होंने इतना विचार किया है कि बोलने योग्य विचार सदा उनके सिर में तयार रहते हैं और चूंकि विचारों की उनके पास कमी नहीं हैं, इस लिए जहां वे बोलने के लिए खड़े हुए कि सुन्दर भाषा आप ही आप उनके मुख से निकलते आती है। देखा गया है कि बिलकुल तैयारी न करते हुए भी वे अत्युत्कृष्ट भाषण कर सकते हैं। उनका व्याख्यान सादा और सहानुभूतिपूर्ण होता है। उसमें पोले देशाभिमान के अथवा आत्मश्लाघा के वाक्य कभी नहीं आते। उनके भाषण सुनते सुनते लोग घबड़ाते नहीं, वे अपने तत्व श्रोताओं के मन पर बैठाने के लिए अनेक उदाहरण और कहानियां बतलाते हैं; कोई पौराणिक ऐतिहासिक अथवा कल्पित कहानी अथवा प्रत्यक्ष देखी हुई बातों का ठीक ठीक वर्णन करके उनसे वे अपने प्रतिपाद्य विषय का मन अच्छी तरह जमा लेते हैं। कोई कोई कहानियां वे इस कुशलता के साथ कहते हैं कि श्रोताओं को जान पड़ता है कि उन कहानियों के प्रसंग मानो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। उनके भाषण में कोटिक्रम बहुत रहते हैं और अपने प्रतिपक्षी की भूल वे इस प्रकार की हास्यास्पद भाषा में बतलाते हैं कि वह बहुत अच्छी तरह सब के ध्यान में आ जाती है। वे बड़े विनोदी हैं और सारा काम समाप्त करके घर आने पर दिन भर में देखी हुई, सुनी हुई अथवा अनुभव की हुई बातों का विनोदपूर्ण भाग वे अपने कुटुम्ब के लोगों से बतलाया करते हैं, और उसमें नकलें करके ऐसी कुछ मनोरंजकता लाते हैं कि घर के सारे लोग आनन्द से डोलने लगते हैं। उनके पास गुप्त कुछ नहीं रहता। ऐसा कोई विषय नहीं जो उन्हें प्रिय न हो। उनकी बुद्धि ऐसी व्यापक है कि वह प्रत्येक विषय का आकलन कर सकती है और उनकी वाणी में वह सामर्थ्य है कि वह प्रत्येक विषय को मनोरञ्जक रीति से बतला सकती है। भिन्न भिन्न कवियों की कविता, फुटबाल के सामने, संसार की राजकीय क्रान्तियां, व्यक्तिविषयक बातें, तत्वज्ञान के प्रचलित विचार, इत्यादि नानाविध विषयों पर वे भाषण करते रहते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि जो उल्लू की तरह मौन धारण करके बैठनेवाला हो वही मनुष्य राजनीतिज्ञ हो सकता है, पर डा० विल्सन् इस प्रकार के राजनीतिज्ञ नहीं हैं। उन्हें जो जो मालूम होता है वह सब वे खुले मन से-निर्भयता से-कह डालते हैं, और वे इस बात का साहस और सामर्थ्य रखते हैं कि हम लोगों को अपने मत पर ला सकेंगे।

## उनकी निर्व्यसनता और सादी चाल।

डा० विल्सन् जब कालेज में पढ़ते थे तब वे व्यायाम के लिए कसरत करते थे, और अब भी वे भिन्न भिन्न खेल खेलते हैं। पहले उन्हें बाइसिकल पर घूमना बहुत अच्छा लगता था, पर अब उन्हें पोलो का खेल विशेष प्रिय हो गया है। वे मद्य को छूते भी नहीं, चिरुट भी नहीं पीते। यही नहीं, किन्तु वे अपने घर में आये हुए मेहमान को भी मद्य पीने को नहीं देते। हां, पीनेवालों के लिये वे चिरुट अवश्य अपने घर में रख लेते हैं। वे मिताहार करनेवाले हैं और निद्रा लेने में वे कभी लापरवाही नहीं करते। उन्हें ऐसा मानसिक अस्वास्थ्य किसी बात से नहीं आता कि उनकी निद्रा उड़ जाय। चाहे घर में हों, चाहे प्रवास में हों, वे आवश्यक नींद लेने में कभी चूकते नहीं। वे सदा शरीर के विषय में सावधानी रखते हैं, इसी कारण उनका शरीर सुदृढ़ और बुद्धि सतेज है।

### उनका स्वभाव ।

वे बड़े उद्योगी और समय पर काम करनेवाले पुरुष हैं। चाहे जिस विषय पर चाहे जो पक्ष बोलता हो, वे उसे शान्ति के साथ सुन लेते हैं। यदि कोई उन्हें सलाह बतलाने या किसी प्रकार की सूचना करने आता है तो वे उस पर चिढ़ते नहीं। जनहित साधने के कर्तव्य के आगे वे अपनी हानि को कुछ भी नहीं समझते। विघ्नों के भय से वे अपना उचित कर्तव्य कभी नहीं छोड़ते। वे यश में आनन्दित और अपयश में हताश होनेवाले नहीं हैं; किन्तु वे अपने कर्तव्य में ही आनन्द माननेवाले हैं। वे सब से खुले मन का बर्ताव करते हैं, अतएव वे सब लोगों को अपने प्यारे आप्त से मालूम होते हैं। वे चाहे लिखते हों, चाहे व्याख्यान देते हों, चाहे घर में गप्पें मारते हों, चाहे खेलते हों—उनका मन सदा एकाग्र रहता है। उनकी परमेश्वर पर पूर्ण निष्ठा है, इस कारण जो प्रसंग उन पर आ पड़ता है उसका वे आदर के साथ स्वीकार करते हैं और उसमें यथासम्भव वे अपना कर्तव्य हृदयपूर्वक करते हैं; और बाकी परमेश्वर को सौंप कर मन स्वस्थ रखते हैं। उनमें स्वधर्म विषयक पूर्ण निष्ठा वास करती है और वे यह प्रतिपादित करते रहते हैं कि हमारे धार्मिक मत तत्वज्ञान और तर्कशास्त्र से भिन्न नहीं हैं। एक बार कालेज की वादविवादक सभा में ऐसा प्रसंग आया कि चिट्ठी डालने पर जो विषय निकले उसका समर्थन किया जाय, तब डाक्टर विल्सन के हिस्से में "नियन्त्रित व्यापारपद्धति" का समर्थन करना आया। परन्तु ये अनियन्त्रित व्यापारपद्धति के कट्टर पुरस्कर्ता थे। अतएव इन्होंने केवल वाद के लिए भी अपने सच्चे मत के विरुद्ध भाषण नहीं किया और वक्ताओं की लिस्ट में अपना नाम अलग करा लेने में जो हीनता बतलाई जाती है उसका स्वीकार किया। परन्तु अपनी सदसद्विवेकबुद्धि के विरुद्ध शब्दों की बड़बड़ करना इन्हें पसन्द नहीं आया।

### अध्यक्ष की जगह के लिए चुनाव ।

हाल ही में वे युनाइटेड स्टेट्स् के अध्यक्ष की जगह के लिए उम्मेदवार हुए। उस समय कितने ही लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। सब लोगों ने समझा कि, जब मि० रूज़वेल्ट अथवा मि० टेफ्ट के समान सुप्रसिद्ध और वर्तृत्ववान् राजनीतिज्ञ अध्यक्ष की जगह के लिए उम्मेदवार हैं तब इन्हें सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। परन्तु अन्त में चुनाव में सब से अधिक मत इन्होंको मिले और ये चुने गये। न्यूयार्क के मतपत्रों से जान पड़ता है कि डाक्टर विल्सन को ६, ६८,००० मि० रूज़वेल्ट को ४, ९३,००० और मि० टेफ्ट को ४,१६,००० मत मिले। उनके विषय में जो लोग कहते थे कि, 'यह तो पुस्तकी कीड़ा है। यह कहता है कि, मूल से लेकर सारा सुधार होना चाहिए—यह कल्पना के वायुमंडल में फिरनेवाला पागल है। अध्यक्ष होने में जिस राजनीति के अनुभव की आवश्यकता है वह इसमें कहां है?' उनके मुहँ अब बन्द हो गये हैं। डॉ० विल्सन के चुनाव में यह एक विशेषता है कि वह ढोंग रच कर नहीं हुआ। प्रतिपक्षियों पर गालियों की वृष्टि करना, राजनीति-विषयक बड़े २ तत्व थोथी प्रकट करना, पक्षाभिमान में आना, इत्यादि बातें उनके चुनाव में बिलकुल ही नहीं हुईं। वे स्वयं सर्व साधारण लोगों के सामने गये, और उन्होंने देश-हित-विषयक कार्य-क्रम उनके सामने प्रकट करके उनकी सदसद्विवेक बुद्धि को और विचारशक्ति को अपना कथन मान्य कराया। संसार में मिथ्यापन का बाजार इतना गरम हो रहा है कि सीधा और सरल व्यवहार अथवा स्पष्ट और सरल भाषण दुर्लभ मालूम होने लगा है। ऐसी दशा में सच्ची बातें खुले दिल से और सरलता के साथ प्रकट करके डॉ० विल्सन ने अत्यन्त अज्ञानी मनुष्य से लेकर बाल की खाल निकालनेवाले समालोचक मनुष्य तक, सब को, अपने मत मान्य करा दिये; और इस कारण वे चुनाव में विजयी हुए।

### उनकी जवाबदारी और उनका ध्येय ।

यद्यपि अमेरिका एक सभ्य देश है, युनाइटेड स्टेट्स् में उच्च प्रकार की लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति प्रचलित है और व्याख्यानों अथवा लेखों के द्वारा उसकी उच्च संस्कृति की चाहे जितनी तारीफ होती हो, तथापि मानवी स्वभाव की स्वार्थप्रियता वहां भी है, बात सिर्फ इतनी ही है कि, असभ्य देशों की स्वार्थप्रियता और इस स्वार्थप्रियता के स्वरूप भिन्न भिन्न हैं। यद्यपि लोगों को अपना मत देने का अधिकार रहता है तथापि उनके अज्ञान का अथवा उनकी दरिद्रता का लाभ उठा कर धूर्त धनवान उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार मत देने के लिए बाध्य करते हैं। किसीको धन से तो किसीको झूठे तर्कशास्त्र से दबा कर धूर्त लोग सभ्य देशों में भी अपना स्वार्थ साधते रहते हैं। बहुत लोग यह मानते हैं कि, चाहे धर्म हो, चाहे तत्वज्ञान हो, चाहे नीति अथवा न्याय का विचार हो, ये बातें पुस्तकों में लिखने के लिए अथवा व्याख्यानों में बतलाने के लिए ही हैं, कृति में लाने के लिए नहीं, "प्राक्टिकल पालिटिक्स" में वे लाई नहीं जा सकती। परन्तु आज कल सत्ता ट्रस्टों के हाथ में और ट्रस्ट सरदार पियरपाँट मार्गन, राकफेलर के समान धनवानों की मुट्ठी में है। इस कारण परमेश्वर के निर्माण किये हुए शारीरिक और मानसिक सुख के साधनों का विभाग युनाइटेड स्टेट्स् में पक्षपात और अन्याय से हो रहा है। वहां के न्यायालय और कायदा-कानून बनानेवाली सभाएं आज कल लक्ष्मी पुत्रों के इच्छानुसार चलनेवाली हो गई हैं। डॉ० विल्सन् ने प्रकट कर दिया है कि, "आज कल अमेरिका में लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति नहीं, उसका सिर्फ आभास है। कुछ थोड़े लोग गुप्त मन्त्रणाएं करके आज कल यह निश्चित कर रहे हैं कि अमेरिका के लोगों को क्या मिले और क्या न मिले। अतएव, पहिले ऐसा करना चाहिए कि लोगों को सच्ची दशा मालूम हो जाय और सच्चा लोकमत प्रकट हो जाय, और तदनुसार राज्यकार्यभार चलाया जाय।' इसमें कोई सन्देह नहीं कि डॉ० विल्सन इस काम में अविश्रान्त प्रयत्न करेंगे। प्लेटो की वर्णन की हुई आदर्शरूप लोकसत्तात्मकपद्धति में राजनीति का कर्तव्य तत्ववेत्ताओं को सौंपा गया है वही हाल आज अमेरिका में हुआ है और इससे जान पड़ता है कि, अमेरिकन लोग प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं।

डॉ० विल्सन जैसे विचारवान् हैं वैसे ही कर्तृत्ववान् भी हैं। प्रत्येक बात में उनका यह निश्चय रहता है कि, या तो सफलता प्राप्त करो या तो जल में मिल जाओ। वे जैसे विद्वान हैं वैसे ही व्यवस्था दक्ष हैं। वे ग्रीक तत्वज्ञान पढ़ते हैं तथा उन्हें शार्टहेंड की उपयुक्त कला भी आती है। वे चाहे कल्पना के वायुमंडल में घूमनेवाले हों, तथापि परिस्थिति को भूलनेवाले भी वे नहीं हैं। उनका निश्चय और उनकी कृति का स्वरूप यद्यपि प्रभावशाली है, तथापि उनका भाषण अथवा कार्य करने की प्रणाली, लोगों को खलनेवाली भी नहीं है। उनका प्रावल्य बहुत उच्च स्वरूप का है; और उनका उत्साह भी अपूर्व है। आढ्यता तो उनके शरीर में छू भी नहीं गई है। अध्यक्ष के पद पर चुने जाने के बाद तुरन्त ही वे एक फुटबाल का सामना देखने गये थे। वहां उनके लिए एक स्वतन्त्र और सन्मान की जगह तयार की गई थी। परन्तु जब उन्होंने देखा कि लोग अड़चन में खड़े हैं तब उन्होंने वहां सुखासन पर बैठना स्वीकार नहीं किया। किसी सर्वसाधारण मनुष्य की तरह वे भीड़ में घुस पड़े; और अन्य नागरिकों की तरह खड़े होकर उन्होंने खेल देखा। ऐसे अध्यक्ष अमेरिकन लोगों को मिले हैं, अतएव सब ज्ञाताओं का यही कथन है कि इनके जमाने में अमेरिकन लोगों की अधिक उन्नति हुए बिना नहीं रहेगी।

### उनका मनोदार्य दर्शानेवाली बात ।

डॉ० वुड्रो विल्सन सिर्फ उदार मत की गप्पें मारनेवाले नहीं हैं, यह सिद्ध करनेवाली एक बात अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। फिलिपाइन के द्वीप युनाइटेड स्टेट्स् के अधिकार में गये हुए अभी बीस वर्ष भी नहीं हुए; और उन्हें स्वराज्य के अधिकार दिये हुए तो अभी १० वर्ष भी पूरे नहीं हुए। परन्तु डॉ० विल्सन का मत है कि अब उन पर अपनी सत्ता का बोझ स्थिर रखना योग्य नहीं; और उन्होंने अभी हाल में यह प्रकट भी किया है कि, फिलिपाइन के लोगों को शीघ्र ही पूर्ण स्वतन्त्रता देने का हमारा विचार है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी यह धैर्यपूर्ण कृति, उनके हेतु को, मतों को, अथवा उनकी प्रतिष्ठा को शोभा देने योग्य है।

---

### सिद्धोद्गार ।

( गजगीत । )

कुछ नहीं, कुछ में समाया कुछ नहीं ।
कुछ न कुछ का भेद पाया कुछ नहीं ॥
एकरस कुछ है, नहीं कुछ दूसरा ।
कुछ नहीं बिगड़ा, बनाया कुछ नहीं ॥
कुछ न उलझा कुछ नहीं के जाल में ।
कुछ पड़ा पाया, गमाया कुछ नहीं ॥
बन गया कुछ और से कुछ और ही ।
जान कर कुछ भी जनाया ? कुछ नहीं ॥
कुछ न मैं, तू कुछ नहीं, कुछ और है ।
कुछ नहीं अपना, पराया कुछ नहीं ॥
निधि मिली जिसको न परमानन्द की ।
उस अबुध के हाथ आया कुछ नहीं ॥
यह वृथा अनमोल जीवन खो रहा ।
प्रेमधन जिसने कमाया कुछ नहीं ॥
अब निरन्तर मन 'शंकर' से कहा ।
पर सखी 'अनमेल माया कुछ नहीं' ।

श्री नाथूराम शंकर शर्मा ।

# बालकन-युद्ध ।

चार वर्ष पहले जब तुर्किस्तान में राज्यक्रान्ति हुई और सुलतान अब्दुलहमीद के पदच्युत होने पर जब तुर्की साम्राज्य को तरुण तुर्कों ने सनदी राज्यव्यवस्था का स्वरूप दिया तब तुर्की साम्राज्य के हाथ पैर तोड़ने की क्रिया बन्द हो गई थी और सब को मालूम हुआ था कि अब तुर्कों के पुराने शरीर में नवीन जोश अवश्य आवेगा। परन्तु इस कथन के अनुसार कि, परमेश्वरी घटना के सामने मानवी उद्योग निरुपयोगी होते हैं तरुण तुर्कों के सारे उद्योग इस समय निष्फल हो गये हैं। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में मुसलमानों ने भूमध्य सागर के किनारे के आफ्रिका और यूरप के प्रदेश पर अधिकार जमाया, सत्रहवीं शताब्दी में फैलाये हुए हाथ पैर फिर सिकुड़ गये अठारहवीं शताब्दी में शक्ति क्षीण होती गई, और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मरणोन्मुख राष्ट्रों की लिस्ट में तुर्किस्तान की भी गणना होने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तुर्की सत्ता के नीचे जितना प्रदेश था उसका आधा भी उस शतक के अन्त में तुर्कों के हाथ में नहीं बचा। इजिप्त अँगरेजों ने ले लिया रोमानिया, बल्गेरिया, सार्विया, मांटेनिग्रो और ग्रीस स्वतंत्र हो गये। इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर के टुकड़े टुकड़े हो गये, तथापि सारी उन्नीसवीं शताब्दी में तुर्कों का हृदय कोई तोड़ नहीं सका। वह हृदय का घाव इस बालकन-युद्ध में खुल गया है और उससे रक्त बहने लगा है। इस युद्ध से यूरप के तुर्कों को तो अर्धचन्द्र मिला ही सा है, किन्तु इस विषय में अब शंका हो रही है कि एशिया में स्मर्ना की नवीन राजधानी के पुराने दवाखाने में जब यह घायल हृदय आ पड़ेगा तब भी रक्तस्राव बन्द होकर रुधिराभिसरण से तुर्कों को नवीन दम मिलती है या नहीं। यूरप में और आफ्रिका में यद्यपि हाथ पैर तोड़े जा रहे थे, तथापि यूरोपियन राष्ट्रों के आपसी वैमनस्य के कारण और मत्सर के कारण जिस प्रकार यूरप में भी, उन्नीसवीं शताब्दी में तुर्कों का जीव बचा रहा उसी प्रकार कदाचित् बीसवीं शताब्दी में पहले पच्चीस तीस वर्ष यदि यूरोपियन फूट ने तुर्की सत्ता को एशियाखंड में प्राणदान दिया तो कदाचित् तरुण तुर्कों के प्रयत्न के कारण, निदान एशियाखंड में, तुर्की राज्य के कैंचल डालने की सम्भावना है। तुर्कों के इस अधःपात के लिए जो अनेक युद्ध कारणीभूत हुए उनमें बालकन युद्ध विशेष चमत्कारिक, विलक्षण और आकस्मिक दशा का है, अतएव इस युद्ध ने यूरप और एशिया को एक प्रकार की नींद से अचानक जगाया है। युद्ध की कथाएं सदा ही रम्य होती हैं, उसमें भी जिस युद्ध के कारण भूमध्यसागर के पूर्व किनारे के देश पर-अर्थात् इटली, बालकन राज्य, आस्ट्रिया, तुर्किस्तान और इजिप्त प्रदेशों पर-और अरबी समुद्र के किनारेवाले अरबस्तान, ईरान और भारतवर्ष, इत्यादि देशों पर विशेष प्रभाव पड़नेवाला है उस बालकन युद्ध की कथा इन देशों के लोगों को सिर्फ रम्य ही नहीं, किन्तु यदि हितसम्बन्धी भी जान पड़े तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। यह युद्ध भारतीय लोगों के लिए भी एक प्रकार से हितसम्बन्धी है इस कारण इस युद्ध का वृत्तान्त, विपुल चित्रों के सहित, आज हम अपने पाठकों को भेंट करते हैं।



नाजिम पाशा—तुर्कों के मुख्य सेनाधिपति।

तुर्की सत्ता की बाढ़, तुर्की सत्ता का ह्रास और तुर्की सत्ता का पुनरुज्जीवन, इन तीनों बातों से भारत का विशेष निकट-सम्बन्ध आता है। यूरप और एशिया के तुर्कों के पराक्रम और बोलबाल के कारण अरबी समुद्र पर मुसलमानों का यहां तक अधिकार जमा कि भारतवर्ष के हृदयस्थल में-अर्थात् गंगा-यमुना के किनारे-वैभवशाली हिन्दू राज्यसत्ता के मराठों के सुखसमाधान में रहते हुए पश्चिमी भारत का किनारा, अर्थात् गुजरात और महाराष्ट्र का पश्चिमी भाग, आर्यों से दूषित समझा जाता था और इस कारण इस पश्चिमी किनारे के भारतीय लोग भारत के मध्यभागवाले स्वतंत्र लोगों की दृष्टि में पतित समझे जाते थे। यही कारण है कि हिन्दू शास्त्रकारों का मत नौकानयन के विरुद्ध पड़ा। बंगाल का उपसागर गंगा-यमुना-किनारे के भारतीय साम्राज्यों के पास नहीं। मालवा प्रान्त और राजपूताने में उदय पाये हुए भारतीय राजाओं के लिए भी बंगाली उपसागर दूर ही पड़ा। दक्षिण में पैठन, कर्नाटक और विजयानगर में बड़े-बड़े हुए भारतीय साम्राज्यों के लिए भी बंगाल के उपसागर की पहचान दूर ही ठहरी। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के पहले उदय पाये हुए सब भारतीय राजघराने समुद्री व्यवहार के लिए और व्यापार के लिए अरबी समुद्र से ही संलग्न हुए थे, और भूमध्यसागर का पूर्वी भाग जिन लोगों के हाथ में था उन्हीं लोगों के हाथ में यह अरबी समुद्र भी था—यह आज तक का इतिहास है। ग्रीस और रोम के प्राचीन साम्राज्यों के हाथ में भूमध्यसागर का पूर्वी भाग किसी समय था, उन्हीं के हाथ में उस समय अरबी समुद्र का भी व्यापार था। बाद को मुसलमानी धर्म और सत्ता की बाढ़ के साथ अरबी समुद्र मुसलमानों का हुआ, और तब से नौकानयन, समुद्री व्यापार, समुद्री सत्ता, इत्यादि सब के कलसूत्र अविधों के हाथ में गये और सर्वसाधारण हिन्दू लोग समझने लगे कि समुद्र से सम्बन्ध रखना मानो परधर्म के पंजे में जाना है। मुसलमानों ने पहले भारत पर अरबी समुद्र के द्वारा अपना मोर्चा फिराया, और इसके बाद वायव्य दिशा की उनकी चढ़ाइयों में विशेष जोर आया। यूरोपियन और मुसलमान दोनों को अरबी समुद्र के द्वारा ही पहले भारतलक्ष्मी का दर्शन हुआ। यह बात सच है कि मध्य एशिया के मुसलमानों के विजय के

कारण और साम्राज्य के विस्तार के कारण भारत के वायव्य ओर की घाटियों से उन्होंने भारत में प्रवेश किया। परन्तु, इसमें सन्देह नहीं कि, तुर्की साम्राज्य की भूमध्य सागर और अरबी समुद्र पर की सत्ता के कारण ही गुजरात और दक्षिण में मुसलमानी अमल के पैर विशेष जल्दी से पड़े। अरबी समुद्र की ज्यों ज्यों वृद्धि होती गई त्यों त्यों पश्चिमी भारत से उनका सम्बन्ध अधिकाधिक दृढ़ होता गया। यूरप में तुर्की साम्राज्य की कला उतरने लगी, उसके साथ ही अरबी समुद्र पर का मुसलमानों का अधिकार भी कम हुआ, और पोर्तगीज, डच और बाद को अँगरेज लोगों के, पहले तो व्यापारी जहाज और फिर युद्ध के जहाज अरबी समुद्र पर विचरने लगे। अर्थात् भारतवर्ष के इतिहास पर भी तुर्कों के इस ह्रासकाल का इस प्रकार से परिणाम हुआ। भूमध्य सागर पर तुर्की साम्राज्य का जो परिणाम हुआ वही अरबी समुद्र पर भी हुआ, और पर्याय से सारे भारतवर्ष पर भी वही परिणाम हुआ। तुर्की लोगों से लड़ने के लिए स्पेन, फ्रान्स, इटली, आस्ट्रिया, आदि क्रिश्चियन राष्ट्रों ने सैकड़ों वर्ष समुद्र पर और जमीन पर भिन्न भिन्न प्रकार के उद्योग किये किंबहुना तुर्कों का पराजय करने के उद्योग में उक्त राष्ट्रों का शरीरबल और बुद्धिबल खर्च हुआ। भूमध्य सागर से जितने जितने राष्ट्रों का साक्षात सम्बन्ध आता है उतने सारे राष्ट्र—अर्थात् स्पेन, फ्रान्स, इटली और आस्ट्रिया के राष्ट्र—सोलहवीं सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में तुर्कों से भिड़न में चूर थे। इन्होंने इस काम में सारा सामर्थ्य खर्च किया और इस कारण तुर्कों के साथ ही ये राष्ट्र भी तुरन्त ही एक प्रकार से उखड़ गये। यही कारण हुआ जो सोलहवें सत्रहवें और अठारहवें शतकों में ये राष्ट्र थके हुए देख पड़ते हैं। अच्छा, उसी समय, भूमध्य सागर से सम्बन्ध न रखनेवाले यूरोपियन राष्ट्रों की क्या दशा हुई।

केवल भूमध्य सागर से सम्बन्ध न रखनेवाले और अटलांटिक महासागर से गहरा सम्बन्ध रखनेवाले राष्ट्रों का इस समय उदय हुआ है। ऐसे राष्ट्र पोर्तगाल, हालैंड और इंगलैंड हैं। स्थल-युद्ध से अपना सम्बन्ध छोड़ कर, भूमध्य सागर का एक प्रकार से बहिष्कार करके, सामुद्रिक बहादुरी में और साथ ही व्यापारी व्यवसाय में वैभवशाली होने की महत्वाकांक्षा उत्पन्न होने के लिए यूरप में उस समय यदि कोई जगह योग्य ठहरी होती तो वह तुर्कों की मुठभेड़ के अखाड़े से दूर रहने वाला प्रदेश ही ठहरा होता। पोर्तगाल देश में ऐसी महत्वाकांक्षा का बीज पहले बोया जाना और तुर्कों से सम्बन्ध रखनेवाले भूमध्य सागर का बहिष्कार करके पश्चिम ओर ही पोर्तगीजों के जहाजों के मुख एक समान ही फिर जाना भी इस तुर्की धूमधाम का ही एक प्रकार का परिणाम है। हम हिन्दुस्तानियों के लिए अरबी समुद्र घर का और पास का है परन्तु उस समुद्र में तुर्कों ने जब हमें रोका तब नौकागमन को पाप समझ कर हम जमीन पर के ही घोंसलों में छिप बैठे। भूमध्य सागर में तुर्कों ने जब यूरोपियनों को रोका तब यूरोपियनों की बुद्धिमत्ता और साहस में अटलांटिक महासागर में शाखा फूटी। और तभी से साम्प्रत की यूरोपियन विद्याओं और कलाओं का प्रारम्भ हुआ। इसमें कोई आश्चर्य नहीं जो इन विद्याओं का बीज पहले अटलांटिक महासागर के किनारे के यूरोपियन प्रदेशों में उगा। क्योंकि अन्य सारे भागों पर तुर्की सत्ता की छाया पड़ने के कारण तुर्की विद्याओं और कलाओं के पौधों के सिवाय अन्य किसी भी विद्या का बीज पूर्व यूरप में उगना उस समय सम्भव न था। आज कल की यूरोपियन विद्या और कला अटलांटिक महासागर के ही किनारे पर पहले क्यों पैदा हुई और तुर्की सत्ता की छाया के भी बाहर रहनेवाले इंगलैंड देश में विशेष जोर से क्यों बढ़ी, इसके कारण, तुर्की साम्राज्य की वृद्धि और ह्रास के इतिहास में, दृष्टि पड़ते हैं। भूमध्य सागर के पूर्वभाग और अरबी समुद्र के केन्द्रस्थान में बसे हुए तुर्कों के हाथ में इजिप्त, इटली, ग्रीस एशियामाइनर, ईरान और भारत के प्राचीन वैभव के सारे मर्मस्थान चले जाने के कारण उनके साथ ही वे पुराने राष्ट्र धक्के खाते आये हैं। जिन्हें हम आज कल यूरोपियन कलाकौशल और सभ्यता कहते हैं उनका जन्म और उदय तुर्कों की सत्ता से बाहर हुआ है। भूमध्य सागर के पूर्वभाग के और अरबी समुद्र पर के देशों को इस कलाकौशल और सभ्यता का पूर्ण लाभ मिलने में, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दो सौ वर्ष, केन्द्रस्थान में बसी हुई तुर्की सत्ता का प्रतिरोध हुआ था। प्रतिरोध करनेवाली इस दृढ़ सत्तारूपी चट्टान का आधे से अधिक भाग उन्नीसवीं शताब्दी में गिरा दिया गया था। परन्तु मूल नींव में आज तक धक्का न लगा था। अब बालकन युद्ध के कारण यह नींव ही उलट पड़ी है। एशिया की तुर्की सत्ता का इसके आगे कुछ भी हो, पर यूरोपियन कलाकौशल से अरबी समुद्र के किनारे के प्रदेशों के पूर्णतया सलग्न होने में प्रतिरोध करने का सामर्थ्य अब तुर्कों के हाथ में बिलकुल नहीं रहा। और अरब, ईरान, इत्यादि प्रदेशों के दस पांच वर्ष में यूरोपियन कलाकौशल से—अर्थात् कारखाने, रेलगाड़ियां, तारायंत्र, विमान, इत्यादि उद्योगों से—पूर्णतया सलग्न होने पर, भारत का स्वरूप अधिकांश में बदलनेवाला है। बालकन युद्ध का भारतवर्ष से, और विशेषतः गुजरात और महाराष्ट्र प्रान्तों से, बहुत ही पास का सम्बन्ध है, इस कारण, आशा है, इस युद्ध की लड़ाइयों ने राजकीय परिस्थिति में जो फेरफार किया है उसका वृत्तान्त हमारे पाठक सावधान चित्त से पढ़ेंगे।



बलगेरिया का राजा फर्दीनन्ड ।

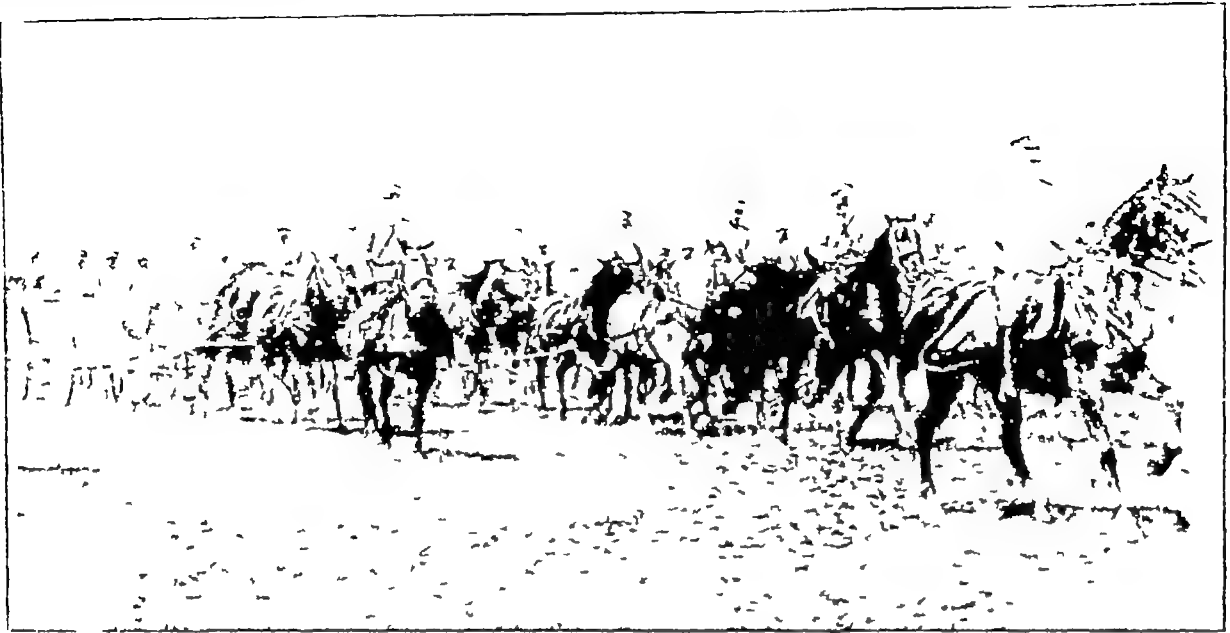
अच्छा अब हम इस बात का विचार करते हैं कि बालकन युद्ध शुरू होने के पहले तुर्किस्तान और भूमध्यसागर की कैसी दशा थी। यूरोपियन राजनीतिज्ञों के ध्यान में आया कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तुर्की साम्राज्य मरणोन्मुख हुआ है। उस समय यह चर्चा यूरप में शुरू हुई कि तुर्कों के मृत शरीर का आपस में कैसा निपटारा किया जाय। तुर्की राजनीतिज्ञों के ध्यान में भी उसी समय

आ गया कि बीमार के आसपास जो गीध जमते हैं सो कुछ उसका समाचार लेने के लिए नहीं, किन्तु मांसभक्षण के लिए जमते हैं! तुर्कों की बुद्धि में यह बात आ चुकी; पर शरीर रोगग्रस्त हो गया है, संधियों में जड़ता आ गई है, और नवीन रक्त उत्पन्न करने की और घुमाने की ताकत पेट और हृदय में रही नहीं है। ऐसी दशा में बुद्धि बिचारी क्या करे! कोई चतुर और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ राज्य का सुधार करने के लिए फ्रांस और इंगलंड इत्यादि देशों से बड़ी बड़ी रकमें कर्ज में मँगाता और उस द्रव्य का विनियोग नाचरंग और चैनचान में किया जाता। यह तुर्कों का उन्नीसवीं शताब्दी का इतिहास है। निम्न श्रेणी के लोग अज्ञान में पड़े घोर रहे हैं, थोड़े बुद्धिमान लोग सिर्फ औपधोपचार में दंग हो रहे हैं, परन्तु अर्धदग्ध सारे दरबारी—तुर्की सत्ता के प्राण व्याकुल हो रहे हैं, तो भी—पेरिस और लंडन के ऐशआराम के नवीन नवीन रंगों में दंग हो रहे हैं! सेनाविभाग के नाम पर बड़ा भारी कर्ज लिया जाता और उसका विनियोग तोप, बन्दूक और अन्य युद्ध सामग्री खरीदने में नहीं किया जाता—किन्तु विलासिनियों के वस्त्राभूषणों के खरीदने में खर्च किया जाता। यही स्वरूप तुर्कों के दैवदुर्विलासों का उन्नीसवीं शताब्दी में देख पड़ता है। तरुण तुर्कों को यह स्थिति असह्य हुई और यह बात उनके ध्यान में आ गई कि जब तक चैनी मनुष्यों को दूर करके नवीन लोगों के हाथ में राज्यकार्यभार न जायगा तब तक तुर्कों की कुशल नहीं। तरुण तुर्कों ने राज्यकार्यभार की अंधाधुंधी नष्ट करने के लिए चार वर्ष पहले राज्यक्रान्ति करके कास्टाटिनोपल में तुर्की पार्लीमेन्ट स्थापित करके राज्यसत्ता अपने हाथ में ली और तब से तुर्की साम्राज्य का मरण टलने के चिन्ह देख पड़ने लगे। परन्तु आसपास के गीधों को यह बात चुपके कैसे सहन हो सकती थी? रूस की सैकड़ों वर्ष की इच्छा कि भूमध्यसागर में स्वैर संचार करने को मिले, पर उसमें तुर्कों का प्रतिरोध! उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में नेल्सन ने फ्रान्स की नौसेना का पराभव किया। इसके बाद भूमध्यसागर की नौसैनिक सत्ता इँगलैंड के हाथ में गई और तब से डिस्राइली पक्ष के अँगरेजी राजनीतिज्ञों की यह नीति हुई कि रूस के समान जबरदस्त राष्ट्र को भूमध्यसागर में प्रवेश करने नहीं देंगे। इँगलेंड और रूस के इस वैमनस्य के कारण तुर्किस्तान का बचाव उन्नीसवीं शताब्दी में दो तीन बार हुआ। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, रूसजापान-युद्ध हुआ और रूस की नौसैनिक शक्ति उतर गई, और स्थल में जबरदस्त रूस को नीचे उतार कर जापान ने उसे इँगलेंड के कंधों पर खेलनेवाला बना दिया। इससे रूस और इँगलैंड का गुट्ट बन गया। रूस का सैनिक तेज हलका अवश्य हो गया, पर जर्मनी और आस्ट्रिया का सैनिक पलरा रूस के हलकेपन के साथ ही अधिक भारी हो गया, जर्मनी में नौसैनिक सत्ता की महत्त्वाकांक्षा उत्पन्न हुई, और जर्मनी के गुट्टवाले आस्ट्रिया और इटली के राष्ट्रों को भी भूमध्यसागर में—श्रेष्ठता के गर्व से नहीं, तथापि समानता के गर्व से—अपनी नौसेना फिराने की महत्त्वाकांक्षा उत्पन्न हुई। तरुण तुर्कों के राज्यक्रान्ति करते ही आस्ट्रिया ने बोसनिया और हर्जगोविना के तुर्की जिले अपने अधिकार में कर लिए। कारण सिर्फ इतना ही कि, जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली की यह इच्छा प्रबल हुई कि, चूंकि वे जिले आड्रियाटिक समुद्र के किनारे के हैं और आड्रियाटिक समुद्र पर इटली और आस्ट्रिया को छोड़ कर अन्य किसी की भी नौसैनिक सत्ता न रहना चाहिए! आड्रियाटिक समुद्र उनकी सीमा का समुद्र किया जा समझिये; उसकी रक्षा किये बिना भूमध्यसागर की नौसैनिक सत्ता में कौन हाथ डालने लगा? भूमध्यसागर की सत्ता के लाभ से आस्ट्रिया ने चार वर्ष पूर्व तरुण तुर्कों का पहला टुकड़ा लिया। इधर बीच में मुराको का मामला बहुत बढ़ गया और "यथार्थ [illegible]" के न्याय से जर्मनी के मुँह पर हाथ फेरकर फ्रान्स को मुराको में अपनी सत्ता स्थापित करनी पड़ी। सब लग कर पश्चिमी भूमध्यसागर में फ्रान्स की श्रेष्ठता इस प्रकार से कुछ अधिक हो रही है और मुराको के झगड़े मिटाने में अभी फ्रान्स फँसा है जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली की त्रिकुटी ने पूर्वी भूमध्यसागर पर अपनी श्रेष्ठता अधिक बढ़ाने का उपक्रम किया। एक वर्ष पहले इटली ने भूमध्यसागर के दक्षिणी किनारेवाले त्रिपोली प्रदेश पर एकाएक धावा करके युद्ध प्रारम्भ किया और तब से इस बालकन युद्ध के प्रसंग का आरम्भ हुआ। इटली के युद्ध के कारण तुर्कों का बार बार मन ही बिगड़ गया। उन्नीसवीं शताब्दी में तुर्की राजनीतिज्ञ यह युक्ति करते थे कि यूरोपियन राष्ट्रों को आपस में एक दूसरे के विरुद्ध करके वे अपना बचाव कर लेते थे परन्तु तरुण तुर्कों के जमाने में यह युक्ति नहीं रही यह बात इटली के युद्ध से सब छोटे बड़ों के ध्यान में आ गई। तरुण तुर्कों ने प्रारम्भ में ही जो बड़ी भारी भूल की वह यही है। उन्नीसवीं शताब्दी में जिस युक्ति से तुर्की राष्ट्र मरते मरते बचा वही वृद्धों की युक्ति युवकों ने अकाल में छोड़ दी! अपने आस पास के गीधों में से किसी न किसी के आश्रय में रहना, और उस आश्रय के बल पर अन्यों को दूर रखना—यही उन्नीसवीं शताब्दी के तुर्कों की मुख्य राजनीतिज्ञता थी। जिसका आश्रय लिया जाता वह ज्यों ही प्रबल होने लगता त्यों ही धीरे से उसके प्रतिस्पर्धी के पक्ष के नीचे जा कर उसका आश्रय लेना—यह वारांगना की सी नृप-नीति बलहीन स्थिति में बहुत ही उपयोगी होती है। परन्तु किसी राष्ट्र का भी जीवनसाधन अथवा अभ्युदय इस युक्ति से सदा ही नहीं सधता, और कर्त्ता पुरुषों को तो इस युक्ति का वारवार उपयोग करने में लज्जा आती है। तरुण तुर्कों ने तुर्किस्तान में नवीन ज्योति जगाई, पुरानी कुरीतियों को समूल उखाड़ डाला, तब फिर उन्हें वारांगना के दाव पेंच कैसे प्रिय होते? अपने पैरों पर और अपनी शक्ति पर खड़े रहने की प्रबल इच्छा होना उनके लिए स्वाभाविक है! तरुण तुर्कों के पहले यूरप में यह समझा जाता था कि तुर्की दरबार अमुक राष्ट्र के पक्ष के नीचे का है। आज इस राष्ट्र का अठवाड़ा तो कल उस राष्ट्र का अठवाड़ा, ऐसा ही फेरफार हुआ करता; क्योंकि चाणाक्षता से यह देख कर कि यूरोपियन राष्ट्रों में प्रबल कौन है



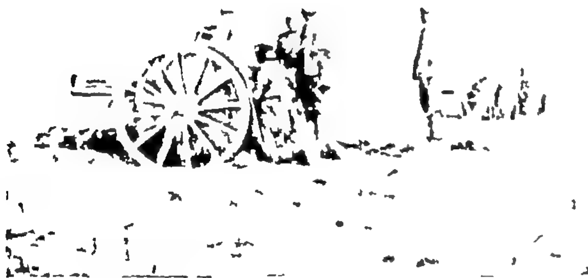
मान्टेनिग्रो का राजा पहिला निकोल्स।

तुर्की दरबार अपना आश्रयस्थान बदलता रहता। इस प्रकार से बचाव के लिए आश्रय लेना मानो आज का मरण कल पर टालना है। परन्तु अनुकूल काल की बाट जोहते हुए केवल जीवित रहने के लिए ऐसे अनुजीवीपन का आश्रय लेना पड़ता है। तरुण तुर्कों ने



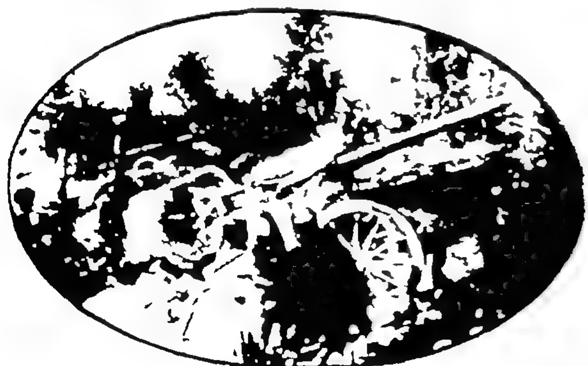
बल्गेरिया का तोपखाना लड़ाई के लिए सज्ज।

समझा कि अब हम अपना शरीर आरोग्य करने के सच्चे मार्ग में लगे हैं, अतएव अब हमें गुप्त आश्रय की क्या आवश्यकता है। शरीर में शक्ति आने और केवल टालने के पहले ही तरुण तुर्कों ने पहले के सम्बन्धियों का आश्रय छोड़ दिया। यूरोपियन राष्ट्रों के



बल्गेरिया की तोप—इस प्रकार की ७८ तोपों के साथ बल्गेरिया ने लड़ाई में लगाये थे।

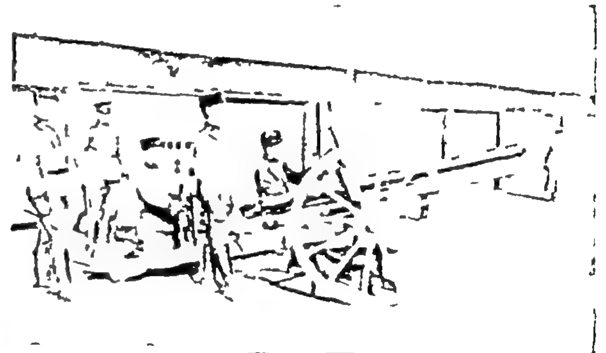
दो पक्षों में से किसी न किसी एक पक्ष में तरुण तुर्कों को पहले शामिल होना चाहिए था; और उसकी रक्षा में निःशंक रह कर अपने ही बल की वृद्धि पर विशेष ध्यान रख कर तुर्कों की प्रबलता उन्हें बढ़ानी चाहिए थी। एक बात की ओर ध्यान रखते हुए



माण्टिनिग्रो की तोप।

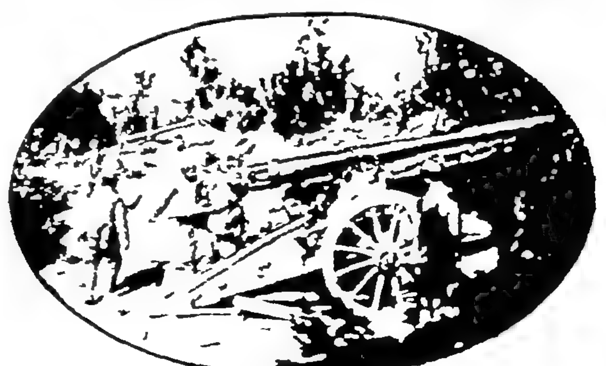
दूसरी की ओर बिलकुल ही ध्यान न रखना ठीक नहीं। उन्नीसवीं शताब्दी में तुर्कों का जो ह्रास हुआ उसका कारण यही है कि उन्होंने धाराङ्गना की तरह दूसरे के आश्रय पर अवलम्बित रह कर अपनी शक्ति की वृद्धि की ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया।

तरुण तुर्कों ने अपनी शक्ति बढ़ाने की ओर पूर्ण ध्यान दिया, परन्तु पास पड़ोसवालों के अन्योन्य आश्रय के सम्बन्ध की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। जब कि सारे मुसलमानी राष्ट्रों का गुट्ट बनने के दिन आना सिर्फ मन के मोदक खाना था, तब तरुण तुर्कों ने जो क्रिश्चियन राष्ट्रों का आश्रय बिलकुल छोड़ दिया, यह उन्हों ने राजनीतिज्ञों की दृष्टि से बड़ी भारी भूल की। जब तक सारे मुसल्मानी राष्ट्रों का गुट्ट न बन जाता और संसार की पीठ पर नवीन मुसल्मानी शक्ति न छा जाती तब तक पुराना आश्रय छोड़ देना किस



सर्विया का तोपखाना—सर्विया के पास इस प्रकार की •० तोपें हैं।

काम का? तरुण तुर्कों ने न जर्मनी का आश्रय लिया और न इंगलैंड का आश्रय स्वीकार किया! आश्रय किसी को मुफ्त में नहीं मिलता, आश्रय के लिए किसी समय मानहानि सहनी पड़ती है तो किसी समय द्रव्यहानि उठानी पड़ती है। अस्तु। राजनीतिज्ञ-समाज में



माण्टेनिग्रो की तोप।

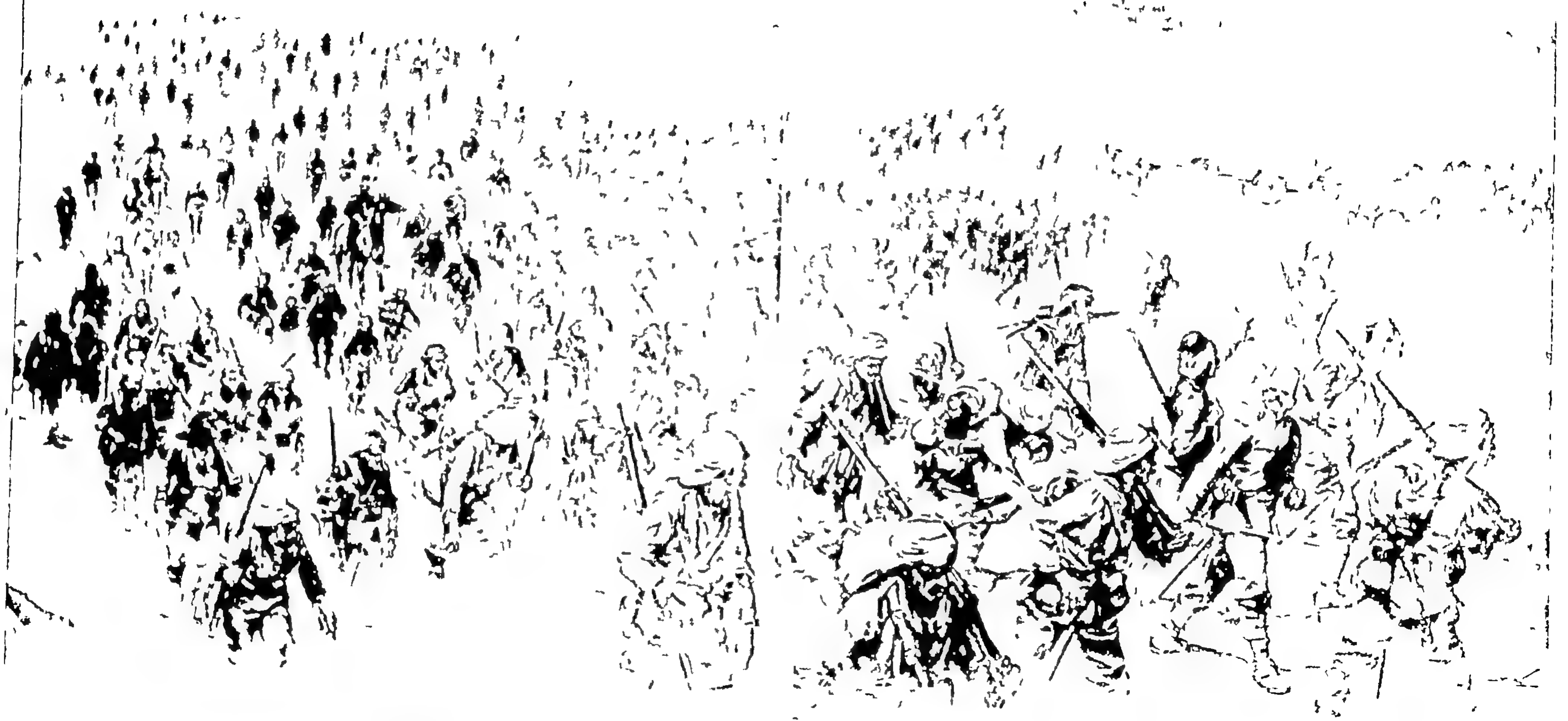
जब तुर्किस्तान की यह दशा देखी गई कि यह राष्ट्र अकेला ही है उसे किसी का आश्रय नहीं, तब इटली ने त्रिपोली पर हमला किया, यह हमला इतनी निर्लज्जता के साथ किया गया कि उस कोई दिन दहाड़े किसीके मकान पर डाका डाल दे! तथापि उस समय

कोई भी तुर्किस्तान की मदद के लिए नहीं दौड़ा। तरुण तुर्कों का अपने पड़ोसियों के साथ लापरवाही का बर्ताव भी इसका कारण हुआ। वर्षभर इटली से लड़ाई हुई, इस वाहियात लड़ाई में तुर्कों का धन और शक्ति खर्च हो गई। और एक वर्ष हो गया; तथापि अपनी भूल तुर्कों के ध्यान में नहीं आई। उन्होंने अपनी पहले की ही लापरवाही बनी रखी। तुर्कों को न तो रूस का सहारा, न जर्मनी का आश्रय और न इँगलैंड की सहानुभूति। ये लोग अकेले दूसरों से लड़ने की इच्छा रखते हैं। यह बात ज्योंही स्वतन्त्र राज्य बालकन के ध्यान में आई त्योंही उनकी महत्वाकांक्षा उत्तेजित हो उठी। तरुण तुर्कों ने दो तीन वर्ष सुधार अवश्य किया पर इटली के युद्ध से वे बलहीन हो गये। अर्थात् बालकन रियासतों ने मन में यह समझा कि सैनिक सामर्थ्य की दृष्टि से तुर्कों ने सुधार के मार्ग से जितना कमाया उतना ही इटली के युद्ध में गमाया। इसके सिवाय बालकन लोगों ने यह भी देखा कि अब तुर्की दरबार को किसी का आश्रय भी नहीं है और हमारा पक्ष पहले से अधिक बलवान् है। इटालियन युद्ध के प्रारम्भ होते ही बालकन रियासतों ने बालकन युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। इटालियन युद्ध का दूसरा एक यह परिणाम हुआ कि तुर्की दरबार को, त्रिपोली का उदाहरण सामने रख कर, एशिया के-अर्थात् एशियामाइनर और लाल समुद्र के समुद्रकिनारे पर के-बन्दरों और मर्मस्थानों को सैनिक दृष्टि से मजबूत करने का बड़ा भारी प्रयत्न करना पड़ा। इस उद्योग से एशियामाइनर और लाल समुद्र की फौजी छावनियों में विशेष दृढता अवश्य आई, परन्तु इससे योरोपियन तुर्किस्तान के-अर्थात् कान्स्टेन्टीनोपल, आड्रियानोपल, सालोनिका इत्यादि जिलों के-फौजी बन्दोबस्त में कुछ ढील हुई, और इस ढील के कारण बालकन रियासतों को युद्ध की तैयारी करने में विशेष प्रोत्साहन मिला।

लड़ाई के प्रारम्भ में यह प्रकट हुआ था कि तुर्की साम्राज्य करीब करीब दस लाख सेना युद्धक्षेत्र में सहज ही जमा कर सकेगा; और बल्गेरिया, सर्विया, मौन्टनिग्रो और ग्रीस की चौकड़ी को पांच लाख से अधिक सेना रणभूमि में लाने की शक्ति नहीं। ऐसी दशा में पहले पहल विद्वानों की समझ थी कि उक्त चौकड़ी अपनी चपलता दिखला कर सरहद पर की कुछ छावनियां चाहे अचानक ले लेवे, तथापि अन्त में तुर्कों की मुख्य सेना से सामना होने पर चौकड़ी अच्छी तरह रगड़ी जायगी। तरुण तुर्कों ने सेना के खर्च में अंधाधुंधी नहीं होने दी थी। युद्ध का सामान ठीक ठीक और पर्याप्त एकत्र किया गया था और सेना की व्यवस्था तथा शिक्षा जर्मनी की रीति पर रखी गई थी। इस कारण चौकड़ी ने जिस समय तुर्किस्तान को युद्ध के लिए ललकारा उस समय इँगलैंड के सैनिक मंडल में इस प्रकार की होड़ें लगाई गईं कि तुर्किस्तान, सहज ही लीला से, बात की बात में, इस चौकड़ी को तोड डालेगा! परन्तु अन्त में यही देख पड़ा कि इटालियन युद्ध के कारण इस चौकड़ी से भिड़ने के लिए तुर्की दरबार की योग्य तैयारी न थी। तुर्किस्तान के पास दस लाख सेना अवश्य थी, परन्तु यह सेना योरोपियन तुर्किस्तान, एशियामाइनर, लालसागर और त्रिपोली के विस्तृत प्रदेशों पर बँटी हुई थी। स्वयं योरोपियन तुर्किस्तान में पांच छै लाख से अधिक सेना न थी। इसके सिवाय योरोपियन तुर्किस्तान में मैसिडोनिया और अल्बेनिया के प्रान्त बहुत ही विस्तृत थे। इस कारण मैसिडोनिया की बड़ी बड़ी छावनियों में बहुत सी सेना आवश्यक थी। इस सेना में यह शक्ति नहीं थी कि वह स्वयं शत्रु की भी सरहद पर जा कर उसका सामना करे। मैसिडोनिया की उक्त बड़ी बड़ी छावनियों को छोड़ कर यदि सेना सरहद की ओर जाती तो यह भय था कि बलवाई प्रजाजन कहीं उन छावनियों पर भी अपना अधिकार न कर लें! मैसिडोनिया में जगह जगह जो सेना पड़ी हुई थी वह ग्रीस और सर्विया की सरहद पर की लड़ाइयों में निरुपयोगी हो गई। इस सेना की यह दशा हुई कि जैसे शत्रु जब स्वयं अपने ही दरवाजे पर आकर भिड़ता हो तो कुछ लड़ाई हो सकती हो, और अन्य समय कैद में पड़े हुए की तरह चुप बैठे। यह बात नहीं हुई कि मैसिडोनिया की क्रिश्चियन प्रजा ने खुल्लमखुल्ला कोई बड़ा भारी बलवा किया हो, किन्तु पांच सात हजार लोगों ने ही छोटासा दंगा किया। परन्तु, चूंकि सारी क्रिश्चियन प्रजा तुर्की अमल का जुआ अलग कर देने के लिए उत्सुक थी, इस कारण ये पांच सात हजार लोग ही मैसिडोनिया की प्रत्येक छावनी में तुर्की सैन्य को जगह जगह अटका रखने में समर्थ हुए। मैसिडोनिया की प्रजा असन्तुष्ट और बलवाई निकली और अल्बेनिया की प्रजा ने तटस्थ वृत्ति का स्वीकार किया, इस स्थिति का सर्विया, ग्रीस और मान्टेनिग्रो की सेना के विजय के लिए बहुत ही उपयोग हुआ। बल्गेरिया, सर्विया, मान्टेनिग्रो मैसिडोनिया, अल्बेनिया और योरप के तुर्कों की बस्ती का मुख्य स्थान आड्रियानोपल जिला की भौगोलिक स्थिति देखने से ज्ञात पड़ता है कि बाल्कन पर्वत की मुख्य श्रेणी और उसकी शाखाओं से आड्रियानोपल का जिला उत्तर की ओर घिरा हुआ है और इस पहाड़ी प्रदेश के आने जाने के सारे मार्ग तटबन्दी के किलों से रुके हुए हैं। बल्गेरिया से निकल कर इन बालकन पहाड़ों से आड्रियानोपल पर से, रेलगाड़ी की एक शाखा कान्स्टेंटिनोपल में आ मिलती है, आस्ट्रिया से आनेवाली रेलगाड़ी का एक मार्ग सर्विया से मैसिडोनिया में उतर कर सालिनोका बन्दर में जा मिलता है। आस्ट्रिया, जर्मनी, इत्यादि मध्य यूरप में जाने के लिए यही मार्ग है और इस मुख्य मार्ग का मुख सलिनोका बन्दर है। सलिनोका बन्दर में उतर कर मैसिडोनिया से उत्तर को जा कर मध्य यूरप अथवा पश्चिम यूरप की ओर जानेवाले बड़े रास्ते प्राचीन काल में थे और उन्हीं रास्तों के साथ साथ इस समय रेलगाड़ी के रास्ते तैयार हुए हैं। एशियामाइनर में जब ईसामसीह ने ईसाई धर्म स्थापित किया उसके बाद उसके प्रमुख चेलों ने यूरप में ईसाई धर्म का जो प्रथम प्रवेश किया वह इस सालिनोका बन्दर से ही हुआ। सालिनोका बन्दर, और उस बन्दर से उत्तर की ओर जाने वाले मार्ग, मध्य यूरप के लिए अत्यन्त महत्व के हैं। आस्ट्रिया के समान यूरप के मध्यवर्ती राष्ट्र को यह महत्वाकांक्षा रहना कि, ये बन्दर और ये रास्ते अपने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अमल के नीचे रहने चाहिए, स्वाभाविक बात है, और इसी महत्वाकांक्षा के कारण सर्विया, मान्टेनिग्रो और मैसिडोनिया का निराला ही प्रबल राष्ट्र न होने देने की सावधानी आस्ट्रिया के राजनीतिज्ञ रख रहे हैं।

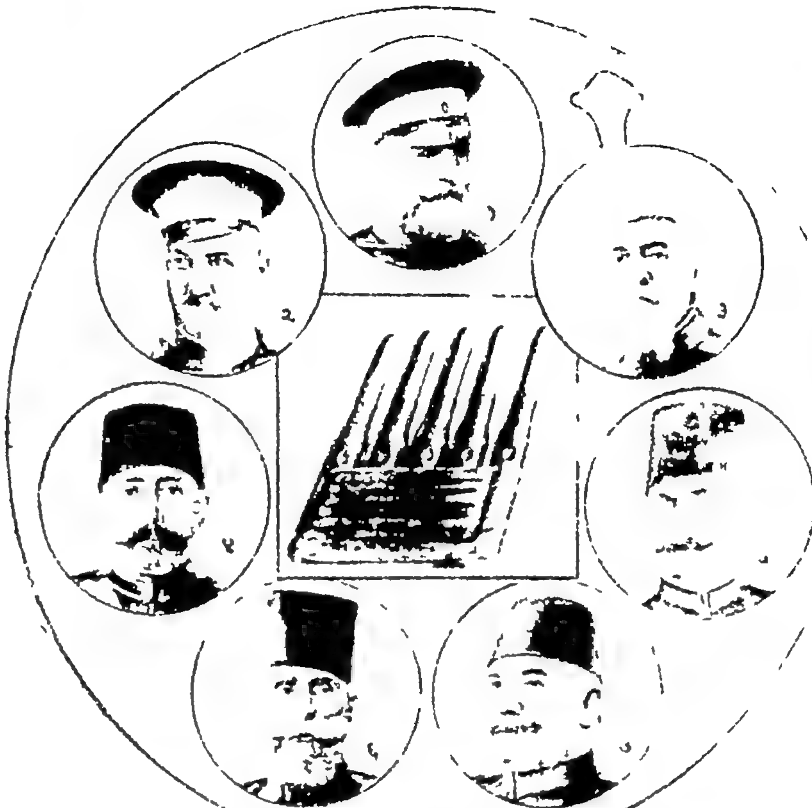


सर्विया का राजा "किंग पीटर"।



लुलेबर्गस की लड़ाई में तुर्की सेना की दुर्गति और उसका भगना ।

अस्तु सालीनोका से एक शाखा जिस प्रकार सर्विया की ओर जाती है उसी प्रकार दूसरी एक शाखा [illegible] की ओर मेसिडोनिया के बीच से स्कुटारी जिला की ओर जाती है और तीसरी एक शाखा समुद्र के किनारे किनारे पूर्व की ओर जा कर एड्रियानोपल पर से कान्स्टेन्टीनोपल की ओर जानेवाली रेलगाड़ी से मिलती है। चूंकि इस रेलगाड़ी के रास्तों से सेना की मुख्य हलचल होनी चाहिए और रेलगाड़ी का बहुत सा भाग मैसिडोनिया की प्रजा के चंगुल में पड़ गया है, इस लिए सर्विया मान्टेनिग्रो अथवा ग्रीस की सरहद पर आप ही आप सेना जमा करके शत्रु के देश पर हमला करना तुर्किस्तान के लिए कठिन हुआ। इधर चौकड़ी के विचार एक वर्ष भर से व्यवस्थित हो रहे थे, कौन प्रथम किस ओर से हमला करे और ये हमले किन मर्मस्थानों की ओर रहें, इत्यादि बातें उन्होंने पहले ही एकमत से निश्चित कर ली थीं। इसके सिवाय उनके ये विचार भी निश्चित हो चुके थे कि शत्रु के मर्मस्थान कौन से हैं, उन पर हमला करने के लिए तोपों इत्यादि की सामग्री कैसी और कितनी चाहिए, मार्गसम्बन्धी और घासदानासम्बन्धी कौन कौन से विघ्न हैं और वे किस प्रकार दूर किये जा सकते हैं। यह सब पूर्व की तैयारी करके, चौकड़ी का षड्यन्त्र अच्छी तरह रच कर उन्होंने युद्ध का आरम्भ किया। युद्ध की ललकार इस्तंबोल किले में तुर्कों के दरबार में पहुँचने भी न पाई थी कि नवम्बर के प्रारम्भ में मान्टेनिग्रो के राजा और राजपुत्र ने सरहद लांघ कर तुर्की छावनी पर तोप दागी और बालकन प्रदेश की क्षुब्ध स्थिति को युद्ध का स्वरूप आने की पहली वार्ता यूरपखण्ड को एकाएक दे दी। चौकड़ी का निश्चय हुआ कि आड्रियानोपल जिले पर और आड्रियानोपल शहर पर धावा करके बलगेरिया कान्स्टेन्टीनोपल की ओर नीचे उतरे, सर्विया आधा भाग आड्रियानोपल के मुहरे से और आधा भाग मैसिडोनिया के मध्य के मुहरे से भेजे और ग्रीस सालिनोका बन्दर पर धावा करके आगे सर्वियन फौज में मिलने के लिए मैसिडोनिया के मध्यप्रदेश में प्रवेश करे। ग्रीस की सरहद लांघ कर सालिनोका की ओर आनेवाली ग्रीशन सेना को किसी समय तुर्कों ने ऐसा छकाया था कि ग्रीशियन लोग एथेन्स की ओर भाग गये थे। तब से कोई बारह चौदह वर्ष तक यूरप में यह चाल पड़ गई थी कि जब कभी किसीको



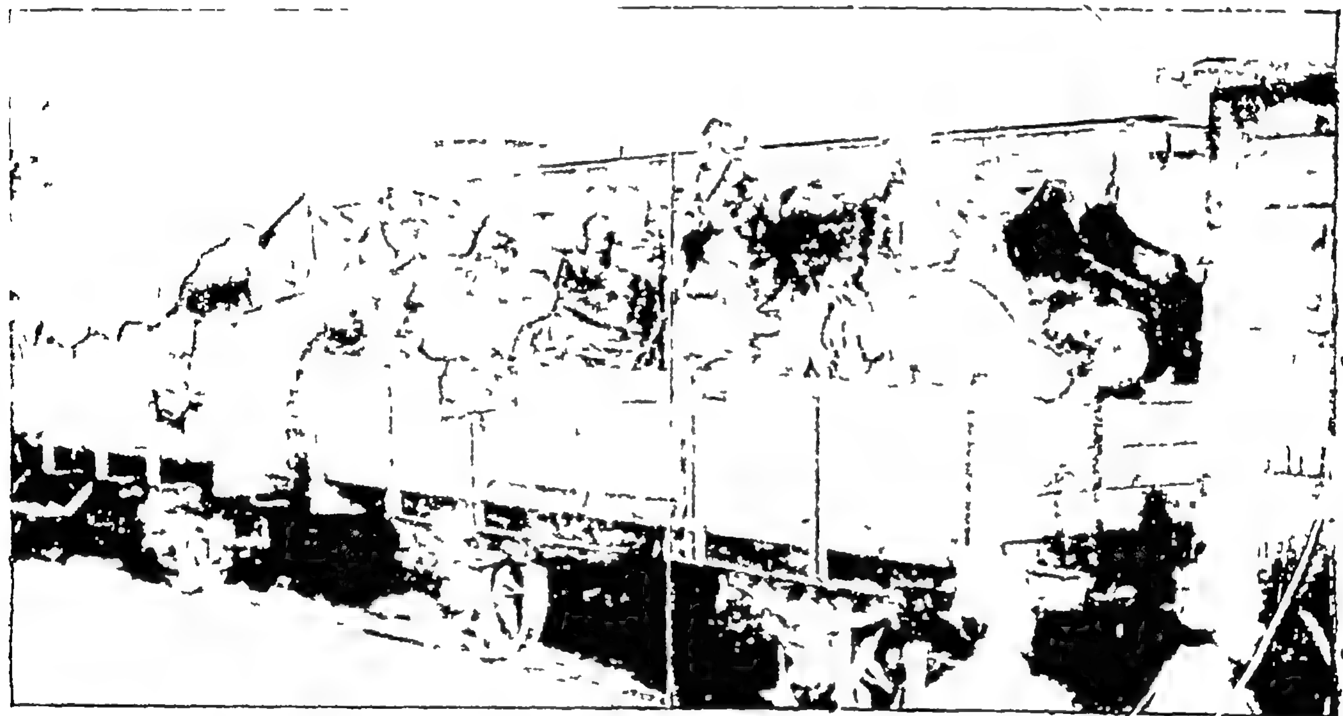
तुर्की और सर्वियन मुख्य सेनानायक और युद्ध-विभाग के प्रधान— १ ज० पटनीक, सर्विया के प्रधान २ ज० जीवकोवी, सार्वियन सेना के कमाण्डर ३ ज० [illegible], सर्विया के दूसरे कमाण्डर ४ अलीरजा पाशा, पश्चिम ओर की तुर्की सेना के कमाण्डर ५ अब्दुल्ला पाशा, आड्रियानोपल के सेनानायक ६ मुहम्मद टोपकैट सरहद के सेनापति ७ नाजिम पाशा, तुर्की युद्ध-विभाग के मुख्य प्रधान।

[illegible] की उपमा दी जाती [illegible] सेना के साथ [illegible]। पर इस बालकन युद्ध में [illegible] ग्रीशियन सेना का पराजय [illegible] शाखा के साथ ग्रीशन सेना ने अप्रतिम [illegible] और सालोनोका [illegible] ग्रीशन सेना के [illegible] में पड़ा। ग्रीशन सेना ने साहस [illegible] कर जब सालिनोका के मुहरे में आ कर हमला का प्रारम्भ किया तब दो तीन छोटी छोटी जगहों में तुर्कों ने उसे रोका परन्तु, चूंकि इस रोक में विशेष जोर नहीं था, इस कारण लड़ाई के प्रारम्भ में ही तीन आठवाड़े के भीतर ही ग्रीशियन सेना सालिनोका की तटबन्दी के पास जा पहुँची। उस समय यूरप में सैनिक विद्वानों का मत यह प्रकट हुआ था कि तुर्की सेनानायक ग्रीशन सेना को नष्ट करने के लिए सरहद से दूर पर भुला कर लिए जा रहे हैं और घर छोड़ कर जब यह सेना चक्कर में पड़ जायगी तब तुर्की फौज इसका सत्यानाश किये बिना न मानेगी। बालकन युद्ध में यूरोपीय विद्वानों के मत जितने निरुपयोगी ठहरे हैं उतने और किसी युद्ध में नहीं। ग्रीशन सेना जो आगे बढ़ी सो इस लिए नहीं कि तुर्कों के खोदे हुए गढ़े में गिर कर मृत्यु से भेंट की जाय किन्तु विजय से तुर्की साम्राज्य के दूसरे नम्बर के शहर और बन्दर पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ी। सालोनोका की तटबन्दी के आस पास एक अठवाड़े तक घनघोर युद्ध होता रहा, और अन्त में पन्द्रह हजार तुर्की सेना को ग्रीस के शरण में जा कर सालिनोका शहर और किला ग्रीशन राजपुत्र के हवाले करके, अपने प्राण बचाने पड़े। सालिनोका बन्दर के हमलों के समय ग्रीशन नौसेना ने भी महत्व का कर्तव्य कर दिखलाया। सालिनोका बन्दर में उस समय तुर्कों के दो तीन युद्धपोत थे किले की तटबन्दी से बन्दर की योग्य सरक्षा की गई थी, और नवीन प्रकार की तोपों के कारण शत्रु के जहाजों को बन्दर में घुसना कठिन था, इस विषय में कि, शत्रु का जहाज क्या बन्दर के निकट आता है, रात दिन सख्त जाँच हो रही थी, तिस पर भी ग्रीशन नौसेना के एक टारपीडो ने प्राण हथेली पर रख कर रात को एकदम बन्दर में प्रवेश किया और तुर्कों के मुख्य युद्धपोत पर हमला करके उसे समुद्र में डुबा दिया, तथा शूरता और फुर्ती से फिर बन्दर के बाहर निकल कर सालिनोका के आस पास का किनारा ग्रीशन नौसेना के



मान्टेनिग्रो के तीन राजपुत्र जो लड़ाई के मुहरे पर थे— १ युवराज डानिलो, ये मान्टेनिग्रो के मुख्य सेनाधिपति थे २ प्रिन्स पीटर, तोपखाने पर कैप्टन थे, ३ प्रिन्स मीरको, ज० मार्टीनोविच के सहायक।

स्वैरसञ्चार के लिए मुक्त कर दिया! ग्रीशन नौसेना के खलासियों का यह साहस का काम देख कर सारे यूरप ने आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबाई, और तब से तुर्की नौसेना के हृदय में ग्रीशन नौसेना की शंका पैठ गई! शूरता के काम में जो ग्रीशन लोग दस वर्ष पहले अयोग्य ठहर चुके थे वही आज दृढ़ता और साहस में सब से आगे निकल गये। इस उदाहरण में "मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्" वाला परमेश्वरी कृपा का साक्षात्कार-सब हताश और निर्बल लोगों को-अच्छी तरह से देख पड़ा है। ग्रीशन नौसेना तुर्की नौसेना की अपेक्षा, जहाज़ों की संख्या, दृढ़ता और तोपों की दृष्टि से, बहुत ही कम थी और नौसैनिक विद्वानों ने युद्ध के प्रारम्भ में यह भविष्य-कथन कर दिया था कि तुर्की नौसेना ग्रीशन सेना के साथ ही ग्रीशन नौसेना को भी जलसमाधि देगी, स्वयं तुर्की दरबार भी ऐसा ही समझता था। बालकन युद्ध जब प्रारम्भ हुआ तब इटली के युद्ध की समाप्ति न हुई थी, इटली की नौसेना तुर्की समुद्र में चक्कर काट रही थी, इस कारण डार्डनेलिस की सामुद्रधुनी के भीतर मारमरा के समुद्र में और बास्फोरस की सामुद्रधुनी के उस तरफ़ काले समुद्र में तुर्कों ने अपनी नौसेना बन्द कर रक्खी थी। इटली की नौसेना के सामने तुर्की नौसेना बहुत ही छोटी और बलहीन थी, अतएव इटालियन युद्ध के समय में तुर्की नौसेना का सुरक्षित स्थान में छिप बैठना कुछ अनुचित नहीं था। तुर्की दरबार ने इटली से जल्दी जल्दी में इस लिए सुलह की कि जिससे यह नौसेना उस जगह से बाहर निकल सके और ग्रीशन भूमि पर उतार कर, आड्रियानोपल पर हमला करनेवाली बल्गेरियन सेना को बल्गेरिया में ही रोक रखना चाहिए, प्रारम्भ में इस नौसेना ने एशियामाइनर की युद्धसामग्री और सेना योरप में पहुँचाने का कर्तव्य नहीं किया, ग्रीशन नौसेना से भिड़ कर एजन समुद्र निर्भय करके सालिनोका को सहायता पहुँचाने का कर्तव्य इस नौसेना को नहीं बतलाया गया। मारमरा के समुद्र में और काले समुद्र में छिप कर बैठी हुई यह नौसेना खुले मैदान पर नहीं छोड़ी गई; किन्तु उसी छिपी हुई जगह में, अर्थात् काले समुद्र में कर्तव्य पर भेजी गई। चूँकि बल्गेरिया को रोक रखने का काम इस नौसेना को पहले सौंपा गया था, इस कारण, आड्रियानोपल ज़िले में एशियामाइनर से आनेवाली सेना की भरती कम हुई। तुर्की दरबार ने पहले पहल यह सोचा था कि एशियामाइनर से जो सेना उठाई जाय वह बल्गेरिया की भूमि पर इस नौसेना से उतरे और आड्रियानोपल ज़िले की तुर्की सेना सरहद पर की तटबन्दी के भीतर बैठ कर बल्गेरिया को सरहद पर ही रोक रक्खे, इससे शत्रु के देश में नौसेना के द्वारा आप ही आप लड़ाई होने लगेगी। परन्तु तुर्कों के दुर्दैव से, वही तुर्की नौसेना, जिस पर उनका सारा पेंच निर्भर था-और जिसे मुक्त करने के लिए उन्होंने इटली से जल्दी जल्दी में सुलह कर ली-वही अँगरेज़ों की देखरेख में शिक्षा पाई हुई तुर्की नौसेना काले समुद्र में भी लड़ाई की कसौटी पर अयोग्य ठहरी! बल्गेरिया के किनारे पर यह नौसेना योग्य रीति से तोपों के गोले नहीं बरसा सकी और इस कारण यह



लड़ाई में भागी हुई तुर्की सेना [illegible] ढंग से घूमती है।

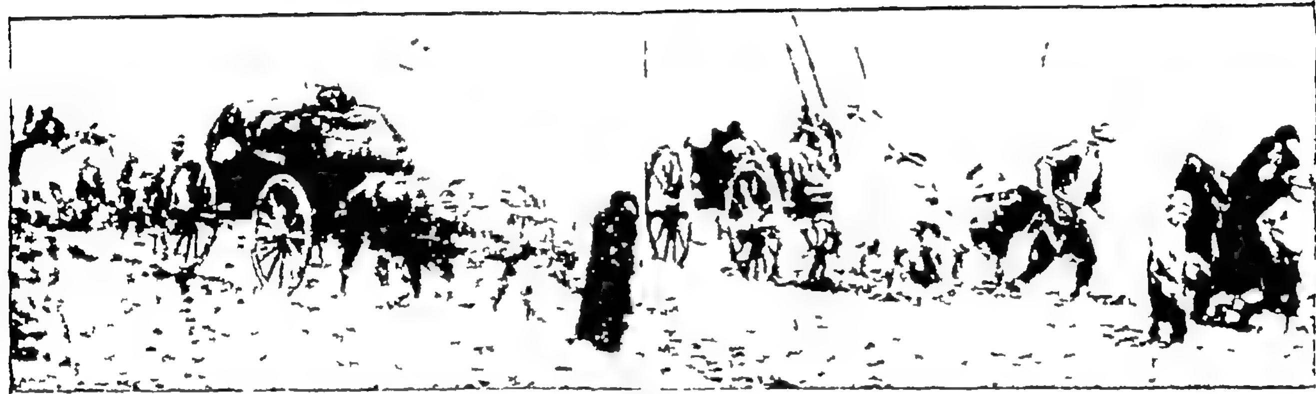
नौसेना से गोलन्दाज़ी करके जय प्राप्त कर सके। यह सुलह करके तुर्की दरबार ने नौसेना को अपना अस्त्र शत्रु पर फेंकने के लिए मुक्त किया। तुर्की नौसेना पर तुर्क उस समय बहुत ही निर्भर थे और युद्ध के दाँवपेंचों का अनुसन्धान लगाने में उन्होंने नौसेना को महत्त्व का कर्तव्य सौंपा था। मान्टेनिग्रो अथवा ग्रीस की सेना के पराक्रम की विशेष कीमत तुर्कों को मालूम नहीं हुई। तुर्कों को यह घमण्ड था कि पहले पहल इन क्षुद्रों ने यदि दो दिन गड़बड़ भी किया तो तीसरे दिन एक थप्पड़ से इनको नीचे बैठा देंगे। तुर्की दरबार इस घमण्ड में था कि सालोनीका तक ग्रीशन लोग चाहे आ भी पहुँचें, तथापि नौसेना की सहायता से स्वयं एथेन्स पर हमला करके "इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट" के न्याय से ग्रीशियन लोगों की ऐसी दशा कर डालेंगे कि वे सालोनीका के भी न रहेंगे और एथेन्स के भी न रहेंगे। तुर्कों ने ग्रीस और मान्टेनिग्रो के हमलों की ओर जान बूझ कर ध्यान नहीं दिया और इस दृष्टि से कि आड्रियानोपल पर धावा करके आनेवाली बल्गेरियन सेना का गर्व पहले तोड़ें, तुर्की सेनानायक ने तुर्की सेना और नौसेना की हलचलों का खेल खेलना प्रारम्भ किया। इटालियनों के हाथ से तुर्की नौसेना जो छुड़ाई गई सो ग्रीशन नौसेना से लड़ने के लिए। परन्तु ग्रीशन नौसेना पर धावा करने के लिए प्रारम्भ में इस नौसेना का उपयोग ही नहीं किया गया। युद्ध के प्रारम्भ में तुर्की सेनानायकों का मुख्य दाँव यह देख पड़ता है कि काले समुद्र से बल्गेरिया बन्दर पर हमला करके वहाँ तुर्की सेना बल्गेरिया की नौसेना बल्गेरियन भूमि पर तुर्की सेना नहीं उतार सकी। निर्भय समुद्र में यह मामूली बात भी जिस नौसेना की तोपों से नहीं हो सकी वह नौसेना खुले मैदान में नवीन प्रकार की ग्रीशियन नौसेना से कैसे भिड़ सकती थी? नौसेना के गोलन्दाज़ शौर्य में और अचूक निशाना लगाने में निर्बल निकले और तोपें भी ठीक नहीं चलीं! नौसेना की यह बलहीनता पहले ही पखवाड़े में तुर्कों के और बालकन चौकड़ी के ध्यान में आ चुकी; और यह बात सब के ध्यान में आ गई कि अब तुर्कों की नौसेना का मानो हाथ ही गिर पड़ा! नौसेना का हाथ इस प्रकार निरुपयोगी हो जाने के कारण बल्गेरिया को उलटे डाट बताने का दाँवपेंच निष्फल हो गया और ग्रीस तथा बल्गेरिया के सेनानायकों को यह विश्वास हो गया कि घर में बन्दोबस्त के लिए किसीको रखने की ज़रूरत नहीं। अतएव बल्गेरिया और ग्रीस का प्रत्येक सशस्त्र मनुष्य निर्भयतापूर्वक सालोनीका और आड्रियानोपल पर भेज दिया गया। ज़रा एक चाल चूक गई कि सारा दाँव गले पड़ता है। इसी प्रकार नौसेना की निर्बलता के कारण तुर्की सेनानायकों का युद्धव्यूह एकदम दहल पड़ा, इस कारण सेना की हलचल अव्यवस्थित हो गई और प्रत्येक बात बिगड़ने ही लगी।

नौसेना ने जिस प्रकार ऐसा धोखा दिया उसी प्रकार अल्बेनिया की स्थिति के विषय में भी तुर्की दरबार का अनुमान बिलकुल ही ग़लत निकला। युद्ध के प्रारम्भ में यह प्रकट हुआ था कि मांटेनिग्रो की क्या चिन्ता है? सिर्फ़ अल्बेनिया प्रान्त मान्टेनिग्रो को

बात की बात में आ जायगा। तुर्की दरबार यह समझता था कि आल्बेनिया के लोग शूर, साहसी और कट्टर हैं। इन लोगों को योग्य अधिकार और सुभीते देकर हमने पूरे तौर पर अपने पक्ष में कर लिया है। तुर्कों की यह समझ कि, हमारी नौसेना ग्रीशन नौसेना से लड़ कर जय प्राप्त करने में समर्थ है, जिस प्रकार "घोड़ा मैदान के पास आते ही भाग खड़ा" उसी प्रकार यह समझ भी कि, आल्बेनिया भी युद्ध के समय में हमारे पक्ष की ओर से लड़ेगा, बिलकुल भ्रामक निश्चित हुई। आल्बेनिया के शूरवीर लोग यदि सचमुच तुर्कों के पक्ष के होते तो उत्तर आल्बेनिया ने मान्टेनिग्रो पर हमला करके मान्टेनिग्रो को उसी दम रोक दिया होता और दक्षिण आल्बेनिया ने ग्रीस पर हमला करके सालिनोका पर के ग्रीशन हमलों को अच्छी शिथिलता ला दी होती। परन्तु आल्बेनिया के लोगों ने तटस्थवृत्ति धारण करके बालकन चौकड़ी को एक प्रकार की मदद ही दी। आल्बेनिया के लोग, जिस प्रकार शूरवीरता में प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार वे बड़े दूरदर्शी भी जान पड़ते हैं। उन्होंने इटली और आस्ट्रिया से पहले ही सन्धान लगा रखा था। बालकन युद्ध में तटस्थवृत्ति धारण करके इटली और आस्ट्रिया की सहायता से इसी आल्बेनिया ने छोटासा स्वतंत्र राज्य स्थापित किया है। मैसीडोनिया की क्रिश्चियन प्रजा की बलवाई वृत्ति पहले ही से तुर्की दरबार को मालूम है, अतएव ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उस विषय में तुर्की सेनानायक मौके पर धोका खा गये। पर हां, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि आल्बेनिया ने अवश्य ही मौके पर धोखा दिया। आल्बेनिया का और नौसेना का धोखा अचानक आ पड़ा, इस कारण सालिनोका पर ग्रीशियन सेना का और नौसेना का बल अनुमान से अधिक बैठा, और बल्गेरिया पर काले समुद्र से उलटे हमला करने का विचार बिलकुल नहीं चला। इस प्रकार दो बार धोखा होने के कारण युद्धारम्भ से सात आठ अठवाड़ों के भीतर ही तुर्कों की मुख्य सेना का पराजय हो गया और बल्गेरियन सेना आड्रियानोपल जिले को व्याप्त करके राजधानी कान्स्टेन्टी-नोपल शहर की तटबन्दी के उत्तर ओर पच्चीस तीस मील पर आ पहुँची। अस्तु, यहां तक हमने यह विचार किया कि बल्गेरिया को जो यह बड़ा भारी जय प्राप्त हुआ उसके लिए आसपास की स्थिति कैसी कारणीभूत हुई, तुर्की अनुमान कहां और कैसे गलत हुए और तुर्की सेनानायक के विचार किस प्रकार निष्फल हुए। अब हम आड्रियानो-पल जिले की लड़ाई की ओर झुकते हैं। आड्रियानोपल के मुहरे से जब बल्गेरिया सरहद को पार कर चुका तब छोटी छोटी छावनियां छोड़ कर दृढ़स्थान में रहने का तुर्कों का विचार था, इसके अनुसार सरहद पर के स्फुट स्थान तो उन्होंने पहली ही सलामी को छोड़ दिये। इसके बाद दो तीन छोटी छोटी लड़ाइयां हुई और आड्रियानोपल शहर के उत्तर ओर और पूर्व ओर की मुख्य तटबन्दी के आसपास बल्गेरियन सेना आ पहुँची। आड्रियानोपल शहर की तटबन्दी बहुत ही मज़बूत है। चौकड़ी का यह विचार था कि इस शहर पर उत्तर पूर्व ओर से बल्गेरिया को आना चाहिए और पश्चिम ओर सर्बिया को उतरना चाहिए, और इस रीति से तीन दिशा घेर लेने पर फिर दक्षिण को घेर कर आड्रियानोपल और कान्स्टेन्टिनोपल का सम्बन्ध तोड़ कर पूरा घेरा डाल देना चाहिए। उत्तर और पूर्व दिशाएं इस काम में महत्वपूर्ण थीं, अतएव उन पर अधिकार करने का काम बल्गेरिया को दिया गया। उत्तर की तटबन्दी तक आ पहुँचना बहुत कठिन नहीं पड़ा। पर पूर्ण अधिकार करने में अवश्य कठि-नाई पड़ी। और आज तक युद्ध की गर्जना सुनाई पड़ी थी उस समय कर्कखिलीज के किले के आसपास हुई। यह किला आड्रिया-नोपल के पूर्व ओर पचास साठ मील पर है और किला तथा किले के आसपास की टेकड़ियां बहुत ही मज़बूत बना दी गई थीं। जर्मनी की नवीन रीति की तोपें इस किले पर रखी गई थीं। और आड्रिया-नोपल से कर्कखिलीज तक सब जगह की सैन्यरचना ऐसी की गई थी कि उतनी जगह पर चाहे जो साधारण सेना आती, परन्तु उसे अपना शिर तुड़वा कर ही लौट जाना पड़ता। पर कर्कखिलीज के हमले के समय बल्गेरियन सेना ने अलौकिक साहस दिखलाया। तुर्की तटबन्दी पर बड़ी तोपों से सामना करने के लिए छोटे छोटे कामों में जिन जर्मन तोपों का उपयोग था उनको वे यहां नहीं लाये। चार पांच दिन के लिए रोटी और कारतूस पीठ पर बांध कर बन्दूकों में संगीन चढ़ा कर, रात दिन कुछ न देखते हुए, बल्गेरियन सेना तुर्कों की सैन्यरचना को तोड़ कर जाने के लिए उत्सुक हुई। चार दिन तक दिन रात लड़ाई होती रही। तोपों की लड़ाई तो एक ओर रही, बन्दूकों का भी उपयोग न होने लगा। और अन्त में हाथा हाथी में बल्गेरिया ने कर्कखिलीज की सैन्यरचना दो चार जगह तोड़ी। सैन्यरचना टूटी हुई देख कर तुर्की सेना के मुख्य जमाव ने बल्गेरियन मुख्य सेना पर, जगह छोड़ कर, रात को अचानक हमला करने का उद्योग किया। परन्तु इस हमले में तुर्कों को सफलता नहीं प्राप्त हुई किन्तु पराभूत होकर उन्हें तुरन्त ही पीछे लौटना पड़ा। पीछे लौटने पर वे क्या देखते हैं कि सैन्यरचना कई जगह टूटी गई है, इस कारण उस पीछे लौटने को उस समय कुछ कुछ भागने का स्वरूप प्राप्त हुआ। परन्तु तुर्की सेनापतियों ने शीघ्र ही इस गड़बड़ को बन्द किया और प्रबन्ध के साथ पीछे लौटना शुरू किया। और कर्कखिलीज की श्रेणी बल्गेरियन सेना के सिपुर्द करके, दो चार मंजल दक्षिण की ओर उतर कर आड्रियानोपल के आग्नेय की ओर लुलेबर्गास में पचास मील लम्बाई की दृढ़ छावनी डाल कर दो लाख तुर्की सेना फिर लड़ाई के लिए सज्ज हुई। कर्कखिलीज की लड़ाई में तुर्कों का पराजय अवश्य हुआ, पर उनका साहस नहीं टूटा। सेना की बिगड़ी हुई दशा को उन्होंने फिर व्यवस्थित किया। और लुलेबर्गास में वे चुप हो कर बैठ रहे। कर्कखिलीज में विजय पाने के कारण आड्रियानोपल की पूर्व दिशा बल्गेरिया के हाथ में गई और उसी दम उन्होंने दक्षिण दिशा को घेर कर आड्रियानोपल शहर की चालीस हजार तुर्की सेना को तुर्कों की मुख्य सेना से अलग किया। इधर लुलेबर्गास में तुर्की सेना पचास मील चौड़ाई का स्थल व्याप्त करके बैठी थी, परन्तु बल्गेरियन सेना ने उसे दम नहीं लेने दिया। नवम्बर की अट्ठाईसवीं से बल्गेरियन सेना ने इस नवीन जगह पर हमला करना शुरू किया; और फिर पांच दिन तक रात दिन, इस पचास मील चौड़ाई की सैन्यरचना पर बल्गेरियन सेना ने अपने को, कर्कखिलीस की ही तरह, डाल दिया। पाँच दिन के पूर्ण युद्ध के बाद तुर्की सेना का पूर्ण पराजय हुआ। तुर्की सेना इस प्रकार भगने लगी कि सिपाही अपने अफसर को नहीं पहचानता, साथी साथी को नहीं पहचानता, हाथ बन्दूक को न पकड़ता और पैर यह न देखता कि कुचलनेवाला आदमी जीवित है या मर गया। कान्स्टेन्टिनोपल की ओर सब भगे। जब तक पैरों में जीव रहता तब तक भगते और अन्त में थक कर मर कर गिर पड़ते। इस प्रकार मुर्दों से सारे रास्ते भर गये। गवँई गावँ के लोग छकड़ों में बालबच्चों को भर कर राज धानी की ओर चले। इस समय तुर्कों के मुख से यही वचन

जनरल सेवाफ, बल्गेरियन सेना के मुख्य सेनापति।

निकलते थे कि "हमें ऐसा युद्ध नहीं चाहिए, हम मुसलमानों को यूरप की भूमि नहीं चाहिए एशियामाइनर में जा कर हम सुख से रहेंगे।" इस रीति से पूर्ण पराजय होने पर तुर्क लोग जो भगे उसे यूरप के समाचारपत्रों ने "यूरप से मुसलमानों का उठ जाना" कहा है। कर्कंकिलीश और लुलेबर्गास की लडाइयों में तुर्की सैन्य की इतनी हड्डियां नरम की गईं कि बलगेरियन सेना यदि ऐसा ही पीछा करने आई होती तो राजधानी में प्रवेश करते हुए उसे कोई भी नहीं रोक सकता था। परन्तु लुलेबर्गास में बलगेरियन सेना की भी बडी हानि हुई। इसके सिवाय एक के बाद एक, दो बडी लडाइयों में परिश्रम करने के कारण बलगेरियन सेना थक गई और इस कारण दस बारह दिन तक फिर वे हमला नहीं कर सके। इस अवधि में कान्स्टेन्टिनोपल के उत्तर ओर पचीस मील पर चटलजा की टेकडी के आश्रय से नवीन बन्दोबस्त की जगह तुर्की सेनापति नाजिम पाशा ने निर्माण की और वहां रखी हुई बलगेरियन सेना को दिलासा और उत्साह दिया। बल्गेरियन सेनापति को तत्काल यह बात अच्छी तरह नहीं मालम हुई कि लुलेबर्गास में तुर्कों का हमने पूर्ण पराभव किया इस कारण तुर्कों का तुरन्त ही पीछा न करते हुए, महत्व के एक दो अठवाडे बलगेरियन सेना ने व्यर्थ खो दिये। अस्तु। एशियामाइनर से नवीन सेना लाकर चाटलजा का टापू तुर्कों ने विशेष बन्दोबस्त का किया, इस अवधि में बलगेरियन सेना ने कर्कंकिलीश अथवा लुलेबर्गास की तरह दृढ हमला चाटलजा पर न करते हुए आड्रियानोपल पर जोर से हमले करके उस शहर पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। बालकन युद्ध में तुर्कों का पक्ष



तुर्की सेना सामान की गाडियां जल्दी जल्दी से भगा रही है ।



लडाई में पूर्ण पराभव होने के कारण तुर्क हतदिल हो गए हैं ।

अगर यदि किसी ने सम्हाला है तो वह आड्रियानोपल की चालीस हजार सेना ने सम्हाला है। कर्कंकिलीश की लडाई के बाद घेरा डालनेवाली सेना ने मारके की जगहों पर अधिकार करके और बडी बडी तोपें लाकर, शहर और किले को जर्जर किया, तथापि इस सेना ने कुछ भी परवा नहीं की और अन्त तक दम न छोडते हुए आड्रियानोपल की रक्षा की। कर्कंकिलीश की तरह यह किला भी यदि चार पांच दिन के हमले में गिर गया होता तो घेरे में फंसी हुई लाख डेढ लाख बल्गेरियन सेना खाली हो जाती और चाटलजा की सैन्यरचना बल्गेरिया ने उसी दम तोड डाली होती। बल्गेरियन सेना जब चाटलजा में आ पहुँची तब एक अठवाडा छोटी छोटी लडाइयां हुईं और नवम्बर के तीसरे अठवाडे में सन्धि की बात-

चीत तुर्कों ने शुरू की। मुठभेड की दृष्टि से छै अठवाडों में ही यह बालकन युद्ध समाप्त हुआ।

युद्ध के प्रारम्भ में योरोपियन प्रमुख राष्ट्रों ने यह प्रकट किया था कि इस युद्ध में किसी पक्ष को भी किसी का देश हम नहीं लेने देंगे। परन्तु लुलेबर्गास की लडाई का वृत्तान्त प्रकाशित होने पर प्रमुख राष्ट्रों को तुर्कों के विनाश का विश्वास हो गया और रूस, फ्रान्स तथा इंगलेंड के जवाबदार राजनीतिज्ञों के मुख से यह वचन निकलने लगे कि अब विजय के पूर्ण फल बालकन चौकडी के हाथ में आने ही चाहिए। इंगलेंड के मुख्य प्रधान मि० आस्किथ ने तो यहां तक कहा कि नेपोलियन के पराक्रम से भी ऐसे चमत्कार और ऐसी उथलापथल यूरप में नहीं हुई, नेपोलियन से भी अधिक तेजी के साथ और विलक्षणता की पूर्णता से बालकन चौकडी ने यूरप के आग्नेय भाग में अद्भुत फेरफार कर दिया है और उन्नीसवीं शताब्दी की तुर्की साम्राज्यसम्बन्धी इंगलेंड की नीति बिलकुल बदल देनी पडी है। इसके सिवाय सन्धि की बातचीत के समय योरोपियन प्रमुख राष्ट्रों का मत यही देख पडा कि कान्स्टेन्टीनोपल राजधानी और सिर्फ उसके आसपास का कुछ प्रदेश तुर्क लोग अपने पास रख और यूरप के तुर्की राज्य का शेष भाग बालकन चौकडी के हवाले करके तुर्कों को एशिया के अपने राज्य की व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। यूरप के इस मत के अनुसार चलने में तुर्की प्रतिनिधियों ने पहले पहल बहुत टालमटूल की, और इस्तम्बोल से आज्ञा मंगाने में बहुत समय बिताया। तुर्किस्तान और बालकनप्रान्त, बालकनराष्ट्र और आस्ट्रियादि त्रिकूट और



तुर्की सेना पलायन कर रही है ।

यह त्रिकूट तथा फ्रान्स-रूस-इंगलेंड का गुट—इस प्रकार तीन भिन्न भिन्न गिरोह पहले पहले इस मामले में देख पडे। पर पिछले दो गिरोहों ने अपना आपस में निपटारा कर लिया, अतएव सिर्फ पहला ही पक्ष बाकी रहा। तुर्किस्तान ने पहले पहल सन्धि के विषय में बहुत बातें मांगी थीं। परन्तु अन्त में उसे बालकन प्रान्त की बहुत सी बातें मान्य करनी पडीं। तथापि अन्त में आड्रियानोपल शहर के विषय में झगडा पडा और यह मेलमिलाप होना कठिन हो गया, इस कारण ६ जनवरी को सन्धि की बातचीत मुलतवी कर दी गई। फिर १० दिन के बाद यूरोपियन राष्ट्रों ने भी तुर्किस्तान को धमकी का आज्ञापत्र लिख कर आड्रियानोपल शहर छोडने का एक प्रकार से हुक्म ही दिया। इस १९०८ की राज्य-

क्रान्ति से तरुण तुर्कों का जो पक्ष प्रबल हुआ था वह इधर कुछ दिनों से गिरता गया और वर्तमान युद्ध के पहले वृद्धपक्ष के हाथ में सत्ता गई थी। अतएव बालकन युद्ध का सारा अपयश इसी पक्ष के मत्थे मढ़ा गया और वह पक्ष फिर लोगों के मन से उतर गया और इसी कारण तरुण तुर्कपक्ष फिर प्रबल होने लगा। सेना में तो यह पक्ष विशेष प्रिय हो गया। वृद्धपक्ष का यह मत हुआ कि अब फिर लड़ाई न करना चाहिए; और सेना, तरुण तुर्क पक्ष और सर्वसाधारण तुर्की प्रजा तथा संसार के सारे मुसल्मानों का यह मत हुआ कि युद्ध फिर जारी करना चाहिए। ऐसी दशा में वृद्धपक्ष ने ज्यों ही यह स्थिर किया कि आड्रियानोपल शहर बालकन प्रान्त के हवाले करके सन्धि कर ली जाय त्यों हीं तरुण तुर्कपक्ष और सेना ने धावा कर दिया और प्रधानमन्त्री से, मन्त्रियों से इस्तीफा लिखवा लिया; यही नहीं बल्कि इस हंगामे में तुर्की सेना के मुख्य सेनापति नाजिम पाशा का भी, अच्छी तरह से, खून किया गया। नवीन प्रधानमन्त्री तरुण तुर्कों के दल का है और शक्तियों की अन्य बात स्वीकार करने को वह भी तैयार है, तथापि आड्रियानोपल शहर छोड़ने के लिए वह तैयार नहीं। तुर्किस्तान पर जो यह महत्संकट आया है उसे हलका करने में तरुण तुर्क नेताओं की की हुई इस क्रान्ति का कुछ बहुत उपयोग नहीं सम्भव है, परन्तु यह बालकन युद्ध चमत्कारमय है, अतएव अब तुर्कों की ओर से कोई चमत्कार होना हो तो कौन जान सकता है?





# दमयन्ती–विलाप।

१

बच्चों का प्रिय संग, भोग सुख का मनमाना,
मृदु फूलों की सेज, सुधा से व्यंजन नाना,
सखियों का सहवास, पिता–माता की माया–
सब तज पति के साथ उसे वन–वास सुहाया।

२

पर यह भी सुख रुचा न विधि को उस अबला का,
पति के पास विलोक कुटिल ने अनमल ताका।
निशा डाह उर धार त्याग पति ही को आई,
वन की घनता पाय वहां प्रभुता फैलाई।

३

उदासीन हो जीव–जन्तु सब बने अबोले;
पवन अचंचल हुई, पत्र भी नेक न डोले।
विकल प्रिया को धीर धरा पति ने चुप साधी;
पर दोनों की नींद और निशि बीती आधी।

४

तौभी पति के संग हुआ मग–श्रम सहकारी;
पिछली निशि में उसे नींद आई कुछ भारी।
दमयंती को हुई भूमि पथरीली धाई;
देख दीनता दया दुष्टता ने दिखलाई।

५

पर न लगे जल–भरे नैन चिन्ता में नल के,
ज्योंही पल–भर मुँदे, शोक के आंसू छलके।
कभी प्रिया की दशा, कभी अपनी जड़ताई;
बच्चों की छवि, कभी रही आखों में छाई।

६

चार घड़ी जब समय शेष रह गया निशा का,
नल ने देखा वदन–प्रभा से वदन प्रिया का।
श्रम, चिन्ता से प्रात–चन्द्र सम था मुख फीका,
नींद लगी थी घोर, खुला था हृदय सती का।

७

बार बार अवलोक प्रिया–मुख नल अकुलाये;
पर जी में झट कपट–भाव विधिप्रेरित धाये।
जो मैं इसको अभी छोड़ जाऊं इस वन में,
किसी भांति यह पहुँच जायगी पिता–भवन में।

८

यों विचार वह बैठ गये आकर पैताने,
भावों से भर चित्त न उनका रहा ठिकाने।
कभी प्रिया की ओर, कभी निज मग अवलोका;
वन को कभी विलोक उन्होंने मन को रोका।

९

फिर पत्तों की ठौर प्रिया की आधी साड़ी,
नल ने अपनी देह ढांकने को झट फाड़ी
कई बार फिर ताक प्रिया को बेसुध सोते,
कुछ डगरे कुछ फिरे, चले फिर व्याकुल होते।

१०

दौड़े ऊबड़ बाट अँधेरे में घबड़ाते
टीले, नाले, गड्ढे पार करते दुख पाते।
जाय कोस दो हुए सूर्य के दर्शन ज्योंही
फिर आये कुछ दूर सोच कुछ मन में त्योंही।

११

पर फिर भी कुछ सोच धरे फिरकर पग आगे
पल में पलट विचार चले वह सर्वस त्यागे।
याती-सम उस वस्त्र-खण्ड से ढाँके तन को,
निकल गये वह दूर पार कर भारी वन को।

१२

दमयन्ती को इधर हुआ यह स्वप्न भयानक,
घेर रहे हैं मुझे जंगली जीव अचानक।
त्योंही वह चिल्लाय प्राण-रक्षा को भागी।
चौंक अचानक उठी, घोर निद्रा से जागी।

१३

उर कर पति की ओर प्रिया ने करवट फेरी,
वह क्या जाने घात हुई थी जो विधि-प्रेरी!
पति को पास न पाय हुई अकुलाकर ठाढ़ी,
फिर वैसी रह गई देख कर आधी साड़ी।

१४

पागल सी वह लगी खोजने पति को वन में
करती कभी पुकार कभी कुछ कहती मन में।
जिनको पहले दैत्य समझ कर डर जाती थी,
अब निर्भय हो उन्हीं द्रुमों से बतराती थी।

१५

दौड़ी-धपी गिरी-पड़ी रोई चिल्लाई
पर न कहीं से किसी भाँति पति की सुधि पाई।
तब निराश हो बैठ रही वह एक शिला पर,
करने लगी विलाप रोय पति के गुण गाकर।

१६

काहे मुझको, नाथ, भला इस वन में छोड़ा!
देख कौन सा दोष सदा मुझसे मुँह मोड़ा!
हो मैं आधी देह लगी थी तुमको भारी,
सेवा को भी साथ न ली दुख में निज नारी!

१७

बिना तुम्हारे पार करूँ कैसे इस घन को!
समझाऊँ किस भाँति अकेली दुखिया मन को!
केवल निज दुख नहीं सोच है मुझे तुम्हारा
फिर बच्चों का सोच हरे है धीरज सारा!

१८

हे प्यारे पति-देव, तुम्हें कुछ सुधि है मेरी!
बिलख रही है कहाँ पड़ी चरणों की चेरी!
जो तुम वन में कहीं छिपे हो तो आजाओ
संकट में इस निराधार को धीर धराओ।

१९

अपने दुख की कथा, नाथ, मैं किसे सुनाऊँ!
किसके कर सन्देश तुम्हारे पास पठाऊँ!
यद्यपि हो तुम दूर पास हो तौभी मन में;
पर यह मन है दुखी लिये है तुम को वन में!

२०

हे विधि! दुख तो दिया, भला अब सुख कब देगा?
मेरा प्राणाधार मुझे किस घड़ी मिलेगा?
समा जाऊँ मैं अभी, भूमि, जो तू फट जावे
पर दमयन्ती जन्म जन्म नल को पति पावे।

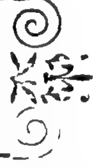
२१

करती आप विलाप आप ही धीरज धरती,
धर कर सीधी गैल गई वन जीती मरती।
पहुँची वन से पर एक ऋषि के आश्रम में,
मानो करुणा मिली शान्ति के प्रिय संगम में।

कामताप्रसाद गुरु।



# दिल्ली-नगर-प्रवेशोत्सव।



गत वर्ष भारत-सम्राट् पञ्चम जार्ज के राजसी दरबार का वृत्तान्त हमने विशेष अङ्क निकाल कर पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया था। उस चिरस्मरणीय दरबार में स्वयं सम्राट के मुख से प्रकट हुआ कि अब दिल्ली नगर ही भारत की राजधानी बनाया जाय। उसके अनुसार ही २३ दिसम्बर १९१२ के दिन हमारे लोकप्रिय वाइसराय लार्ड हार्डिंज ने राजकीय ठाट से दिल्ली राजधानी में प्रथम प्रवेश करने की योजना की थी। पिछले वर्ष के अभूतपूर्व उत्सव को देखते हुए इस बार का उत्सव अवश्य ही बिलकुल फीका देख पड़ा होता। तथापि, जब कि दिल्ली के समान अनेक महाराजाओं के ऐश्वर्य के केन्द्रस्थान में अपनी राजधानी रखना है तब फिर उस स्थित्यन्तर और पूर्वपरम्परा के अनुसार कुछ उत्सव होना आवश्यक और इष्ट होने के कारण इस नगरप्रवेशोत्सव की योजना की गई थी। और मानवी इच्छा के अनुसार तथा निश्चय के अनुसार यदि सारी बातें हुई होतीं तो लार्ड हार्डिंज का दिल्ली-नगर-प्रवेशोत्सव गत वर्ष के राजसी दरबार की अपेक्षा चाहे कुछ कम रहता, तथापि गर्जनशाली और लिटनशाही धूमधाम का और चिरस्मरणीय ही हुआ होता परन्तु एक दुष्ट घातकी के आसुरी अत्याचार के कारण एक और ही अनिष्ट प्रसंग आ पड़ा। सचमुच परमात्मा ने ही कुशल की जो लेडी हार्डिंज पूर्णतया और लार्ड हार्डिंज जी से बच गये। नहीं तो उस घातकी रुधिरप्रिय राक्षस के बमगोले से अवश्य ही मारे गये होते। सिर्फ इस घटना की कल्पना ही से सच्चे आर्य पुरुष के शरीर पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं ऐसी दशा में हम तो इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि वह ऐसा नराधम था कि जिसका हाथ इस दुष्ट कर्म के लिए चला। अस्तु। हाँ, जबतक ही ऐसा कृत्य करनेवाले नरपशु का पता लगा कर जब तक उसके इस पाप का उसे प्रायश्चित्त न मिल जायगा तब तक भारतीय प्रजा के मन से लज्जा और दुःख की छाया नष्ट नहीं हो सकती। नगरप्रवेशोत्सव के समान शुभ और आनन्ददायक दिन के इस घृणित कर्म ने सारे उत्सव को मिट्टी में मिला दिया। उसमें भी सौभाग्य की बात यही है कि 'जिसका परमात्मा रक्षक है उसका कोई भक्षक नहीं है''—अर्थात् ईश्वर की अगम्य लीला से लार्ड हार्डिंज बाल-बाल बच गये इसके सिवाय, इस अवसर पर लेडी हार्डिंज ने जो अलौकिक प्रसंगावधान और धैर्य तथा लार्ड हार्डिंज ने जो धैर्य, कर्तव्यतत्परता सर्वोदार्य और क्षमाशीलता व्यक्त की उससे उन पर भारतीय प्रजा अब पहले से भी अधिक प्रेम करने लगी है। यह बात जगह जगह की अत्याचारनिषेधक सभाओं से, वाइसराय की प्रकृति आराम होने के लिए दिखलाई हुई उत्सुकता से, और लेडीहार्डिंज को दिये हुए मानपत्र से, अच्छी तरह प्रकट होती है।

इस प्रकार से यद्यपि इस उत्सव के रंग में भंग हुआ, तथापि ब्रिटिश राज्यव्यवस्था का मुख्य आधार जो सरकारी प्रतिष्ठा है उसकी योग्य रीति से रक्षा की गई। क्योंकि लार्ड हार्डिंज को ज्योंही मालूम हुआ कि अब हमारी स्थिति ठीक नहीं है त्योंही उन्होंने अपने भाषण के कागज-पत्र सर गाय फ्लीटवुड विल्सन के सिपुर्द करके उत्सव के पूर्ण करने की सूचना दी; इस लिए, इतनी बड़ी दुर्घटना के होने पर भी सिवाय एक घंटे की देरी के और कोई भी उत्सव का कार्यक्रम नहीं बदला गया। यही नहीं, किन्तु वाइसराय साहब का हाथी दो बार बैठाया गया, उनकी जगमें खाली नहीं और हौदे से उतार कर उन्हें मोटर से तम्बू में ले गये, तथापि जुलूस की पांति वैसी ही रखी गई और फौजी सिपाही तो टस भर भी नहीं हिले। इसमें कोई शक नहीं कि इस सुप्रबन्ध का परिणाम प्रजा के मन पर हुए बिना कदापि न रहेगा।

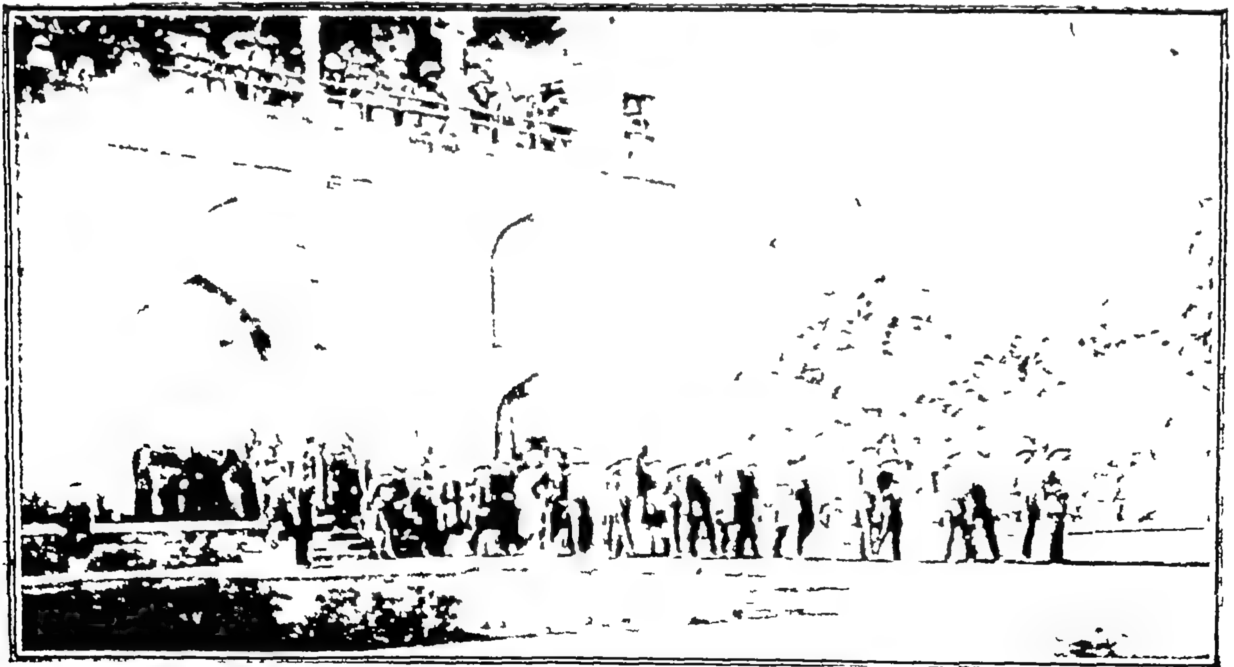
भारत के गवर्नर जनरल, वाइसराय लार्ड हार्डिज और लेडी हार्डिज को परमात्मा दीर्घायु करें।



कि, ऐसे अत्याचारों से किसीका कल्याण तो होता भी नहीं किन्तु उलटे देश की उन्नति के मार्ग में विघ्न उपस्थित होते हैं और फिर सन ५७ के बलवे का उल्लेख करके वे बोले कि यह मैं नहीं

पंजाब के राजा लोगों का जलूस ( कपूरथले के महाराज और पटियाला के महाराज के हाथी आगे हैं )।

समझता कि किसीकी इच्छा अब हो कि फिर वैसा समय उपस्थित हो। इसके बाद दिल्ली शहर का अधिकार भारत सरकार के हाथ में देने की औपचारिक विधि के उपलक्ष में वे बोले; "सन ५७



बड़े लाटसाहिब किले के सामने जलूस के साथ जा रहे हैं।

के बलवे में पंजाब ने जो राजभक्ति दिखलायी और इस शहर के प्राप्त करने में जो सहायता दी उसे ध्यान में रख कर उस समय के ग० ज० लार्ड केनिङ् ने यह शहर पंजाब-सरकार के अधिकार में दिया। सन् १८५७ के बलवे में सारे उत्तर-हिंदुस्थान में अकेले पंजाब के ही लोगों का सिर ठिकाने पर था। जम्बूकाश्मीर, नाभा, पटियाला, झींद, कपूर्थला, फरीदकोट, सिरमूर फुलकियन इत्यादि रियासतों की, योग्य समय पर, यदि सहायता न मिली होती तो सन ५७ के संकट से पार पड़ना असम्भव था। इस महत्वपूर्ण कर्तव्य के लिए सर्वथैव उचित पुरस्कार बलवे के बाद उन राजाओं को दिया गया। और ब्रिटिश राष्ट्र की कृतज्ञताबुद्धि इतनी है कि इसी कर्तव्य की याद करके गत वर्ष दरबार के समय कपूर्थला और फुलकियन राज्यों के अधिपतियों को विशेष सम्मान दिया गया। उस

ट के समय में न कि सिर्फ राजाओं ने ही सहायता की, किन्तु सर्वसाधारण जनसमूह ने भी राजभक्ति दिखलाई। सेना के खर्च के लिए छव्वीस लाख रुपये चाहिए थे। उसमें से १४ लाख तो काश्मीर और अन्य राज्यों ने ही दे दिये, तथा बाकी १२ लाख रुपये प्रजा ने एकत्र कर दिये। यह तो द्रव्य-द्वारा मदद हुई। इसके सिवाय दिल्ली के किले पर अन्तिम प्रबल हमला करने



आ-मर-गायफर्ल टयु" विसन दीवान-ए-आम-दरबार-हाल में वाइसराय साहब का भाषण पढ़ रहे हैं।

के लिए जिन सत्ताईस सौ लोगों का चुनाव किया गया उसमें तेरह सौ सिपाही पंजाब प्रान्त के ही थे। इस प्रकार से पंजाब के लोगों ने जो कर्तव्य बजाया उसका मानो चिन्ह ही, उन्हें सन् ५७ में दिल्ली शहर, दिया गया। उस समय से, जहां तक हो सका है, इस शहर के सुधार करने के प्रयत्न किये गये हैं। पानी की पहुँच, गन्दा पानी निकालने का नाला और सार्वजनिक उद्यान इत्यादि के

योग से शहर की स्वच्छता, शोभा और आरोग्यता बढ़ी है। पहले जो डेढ़ लाख आबादी थी वह अब सवा दो लाख हो गई है और सालाना आमदनी जो दो लाख थी अब तेरह लाख हो गई है। ऐसे शहर के अलग हो जाने से सभी का मन दुःखी हो सकता है, तथापि इसमें भी सन्तोष की बात यही है कि यह शहर अब साम्राज्य की राजधानी हो रहा है। आज कितने ही वर्षों से पंजाब की काट-छांट हो रही है। सन् १८७७ में काश्मीर अलग किया गया, सन् १८८६ में पंजाब सीमा प्रान्त अलग किया गया, सन् १९०१ में पश्चिम सीमा का स्वतन्त्र प्रान्त बनाया गया, और आज दिल्ली शहर की बारी है। तथापि सम्राट् की इच्छा के अनुसार यह शहर मैं अपने अधिकार में लेता हूं। दिल्ली शहरवासियों ने इस समय पंजाब सरकार के कार्यभार के विषय में जो आदरपूर्ण वचन कहे हैं, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। दिल्ली के निवासियों को यह न जान पड़े कि हम अचानक नवीन अधिकारियों के शासन में चले गये, इस लिए आपने जो बहुत करके पहले ही के अधिकारी स्थिर रखे हैं यह सचमुच ही प्रशंसनीय है। भारत की राजधानी की दृष्टि से अब इस नगर की सतत उन्नति हो।"



आ-गत गण [illegible] दरबार हो जाने पर, आपस में [illegible] कर रहे हैं।

सर लुई डेन का भाषण हो जाने पर वाइसराय की तरफ़ से उत्तर देने लिए सर गाय फ्लीटवुड विल्सन उठे और उन्होंने वाइसराय का भाषण पढ़ सुनाया। भाषण ख़तम होने के पहले ही लार्ड हार्डिंज की ओर से सन्देशा आया कि "मुझे कुछ विशेष चोट नहीं आई और अब मेरी प्रकृति ठीक है।' यह सन्देशा दरबार में पढ़ सुनाया गया। उस समय सब ने तालियां बजा कर

आनन्द व्यक्त किया।

### लार्ड हार्डिंज का भाषण।

वाइसराय का भाषण सर गाय फ़्लीटवुड ने पढ़ सुनाया। वह इस प्रकार था —"एक वर्ष पहले सम्राट् ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाने की इच्छा प्रकट की। उसी इच्छा के अनुसार आज मैं प्रकट करता हूं कि आज से दिल्ली नगरी भारत की राजधानी हुई। यह सच है कि राजधानी का नवीन भाग अभी बनाना ही है; तथापि मैं यह समझता हूं कि यह राजधानी का स्थलान्तर मानो भारतीय राष्ट्र की उत्क्रान्ति की एक महत्व की सीढ़ी है क्योंकि इस रदबदल से एक बात हमारी भारतीय प्रजा के ध्यान में साफ



दिल्ली की नवीन सेक्रेटेरियेट और कौंसिल होने की जगह।

तौर से आ गई होगी कि भारत की पूर्वपरम्परा में जो जो उत्कृष्ट भावनाएं हैं उन सब को हम स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। अतएव ऐसे ऐतिहासिक महत्व के उत्सव के समय जो दरबार होना है वह दीवान ए आम के समान प्रसिद्ध और भव्य जगह में ही होना उचित है। पहले दिल्ली के बादशाहों के दरबार इसी जगह हुआ करते थे, और इसी दीवानखाने में सिक्खधर्मवीर तेग़ बहादुर ने औरंगजेब से यह भविष्य कथन किया था कि तुम्हारा राज्य हरण करने के लिए पश्चिम ओर के लोग आ रहे हैं।

आज के उत्सव में दूसरी एक औपचारिक विधि होनेवाली है। चौवन वर्ष पहले उस समय के गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग ने



वाइसराय के बंगले का दृश्य पूर्व ओर से

बलवाइयों को जीतने के बाद दिल्ली शहर पंजाब सरकार के अधिकार में दिया। वह शहर आज पंजाब की प्रान्तिक सरकार से, राजधानी के लिए, बड़ी सरकार को लौटा लेना है। पहले सिक्ख युद्ध के बाद मेरे आजा और उस समय के गवर्नर जनरल ने जालन्धर-दुआब-प्रान्त पर शासन करने के लिए लार्ड लारेन्स की नियुक्ति की। उस समय से पंजाब प्रान्त भारतीय ब्रिटिश शासन का एक दृढ़ आधारस्तम्भ हुआ है। सन् ५७ के बलवे के संकट के समय पंजाब के कारण उत्तर भारत बचा, और इसी लिए पंजाब के अधिकारसूत्र नीचे रखते समय लारेन्स साहब ने ब्रिटिश अधिकारियों को यही अन्तिम उपदेश दिया कि, "इन लोगों से प्रेम का बर्ताव करो।

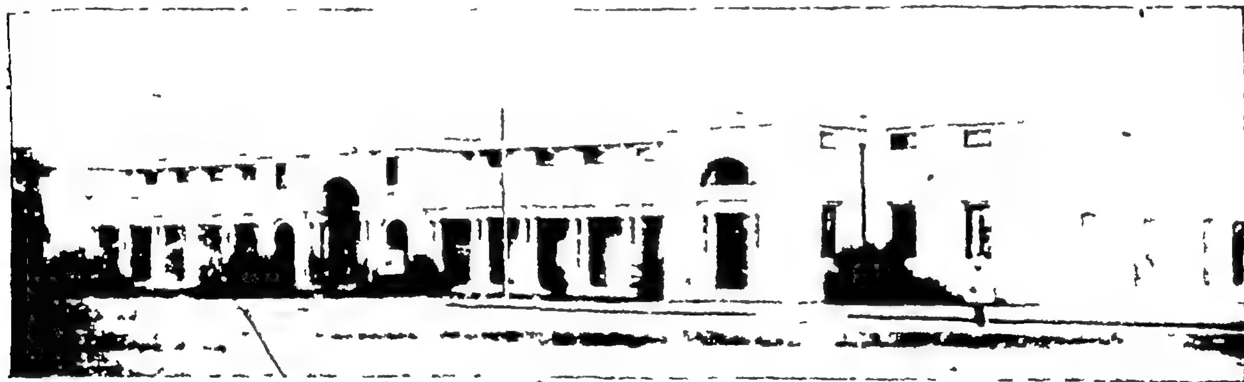
लारेन्स के जमाने से लेकर ठीक आज की मिती तक पंजाब सरकार ने दिल्ली शहर का शासन किस प्रकार किया, यह वृत्तान्त सर लुई डेन ने बतलाया ही है। यह बात ध्यान में र[illegible] कि पंजाब सरकार का हमारा सम्बन्ध अब आगे से हमेशा के [illegible] टूटनेवाला है, दिल्ली शहर की ओर से पंजाब सरकार का, [illegible] तक के कर्तव्य के लिए कृतज्ञतादर्शक जो बिदाई दी गई [illegible] यह स्पष्ट होता है कि पंजाब सरकार ने अपने अधिकारवाले [illegible] की सुदशा रखने के लिए कैसे कैसे प्रयत्न किये हैं। पंजाब प्रा[illegible] जो पचास वर्ष से अविच्छिन्न शान्ति छाई हुई है और यहां प[illegible] नहर की पद्धति जारी है, इसमें अन्य सम्पूर्ण प्रान्तों की अ[illegible] पंजाब की उन्नति अधिक हुई है और आगे भी होती जायगी, निश्चित है। पंजाब की योद्धा जातियों के शरीर का पौरुष उनकी दृढ़ता जब तक स्थिर है। तब तक पंजाब प्रान्त भारत [illegible] सुरक्षा का आगे भी ऐसा ही आधारस्तम्भ रहेगा जैसा कि [illegible] तक रहा है। ऐसे महत्व के प्रान्त पर शासन करना बड़ी जवा[illegible] का और अभिमानास्पद कार्य है। और लारेन्स साहब से आज तक जितने ले० ग० हुए उन सब ने वह काम उत्तम री[illegible] किया है, इसमें सन्देह नहीं। अब आगे से दिल्ली शहर [illegible] अधिकारकक्षा से बाहर जानेवाला है इस बात पर सर लुई [illegible] को खेद होना स्वाभाविक है। परन्तु सम्राट् जार्ज ने इस शहर को राजधानी की पदवी दी है उस पदवी का महत्व ध्यान में रखते यह सर्वथा अनुचित है कि यह शहर पंजाब प्रान्त ही में रहे, तिस पर भी दूसरे दर्जे का शहर बन कर, रहे, और इसी कारण भारत सरकार ने इसे अपने हाथ में लेने का निश्चय किया है।

जो लोग यह नहीं जानते कि दिल्ली नगर का प्राचीन वै[illegible] कितना बड़ा था वे लोग यह आक्षेप करते हैं कि कन्नौज, लाह[illegible] तक्षशिला, पटना, आगरा, कलकत्ता, इत्यादि नगरों को छोड़ दिल्ली ही क्यों राजधानी बनाई गई? दिल्ली शहर का, अत[illegible] प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक का, इतिहास

ऊपर के प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर है। पौराणिक काल के राजाधिराज युधिष्ठिर की राजधानी यहीं थी। फीरोजशाह तुगलक के लाये हुए राजा अशोक के दो स्तम्भ उस महा बलाढ्य और अत्यन्त न्यायी राजा के बड़प्पन की यहीं साक्षी दे रहे हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है जो दिल्ली शहर का सब प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं है। तथापि अनंगपाल से लेकर आगे के सब राजाओं का इतिहास मिलता है। उससे जान पड़ता है कि यहां पर तुअर, राजपूत और चौहान घरानों का राज्य था। पृथ्वीराज चौहान का जमाना यहां के हिन्दू राजवैभव की अन्तिम निशानी है। इसके बाद, कुतुबमीनार ने जिसका नाम अमर कर दिया है उस कुतुबुद्दीन के स्थापित किये हुए वंश का शासनकाल दृष्टि के सामने आता है। तुगलकाबाद किले के कारण गयासुद्दीन तुगलक के नाम का स्मरण होता है। फीरोजशाह तुगलक की पाच सौ वर्ष पूर्व की डायरी से मालूम होता है कि उसने फीरोजाबाद शहर नवीन ही बसाया और दिल्ली की पुरानी इमारतें दुरुस्त करवाई। उसके बाद शेरशाह सूर ने "पुराना किला" बनवाना शुरु किया और हमायू ने उसे पूरा किया। शाहजहां बादशाह का वैभव उसके नाम के 'शहाजहांबाद' शहर ने और जहां हम प्रस्तुत हैं उसे, तथा उसके समीप की अनेक भव्य इमारतों, ने स्थिर कर रखा है। इस संक्षिप्त वृत्तान्त से दिल्ली के पूर्वकालीन वैभव की सब को कल्पना होगी। परन्तु गत वर्ष हमारे परम पूज्य दयालु सम्राट ने इसे जो भारत की राजधानी बनाने का निश्चय किया सो इस शहर के इतिहास में अत्यन्त महत्व की बात है। इस चिरस्मरणीय बात का स्मारक अभी स्थापित करना है। अंगरेजी शासन का अभी तक कोई भी ऐसा स्मारक यहां पर नहीं जो भूतकालीन शासनकाल की भव्य इमारतों से अथवा किले से स्पर्धा कर सके। परन्तु ब्रिटिश राज्य की बड़ाई के



वाइसराय पर बम पड़ने के बाद चाँदनी चौक का दृश्य।



नवीन दिल्ली का गवर्नमेंट टेम्पररी आफिस (Temporary)

स्मारक दूसरे ही प्रकार के हैं। अभंग शान्ति और बढ़ता हुआ व्यापार तथा वैभव अँगरेजी शासन के लक्षण हैं। इसमें प्राचीन शासनकाल से तुलना करने योग्य अद्भुतत्व कुछ भी नहीं। तथापि इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, ब्रिटिश राष्ट्र को इस तुलना में न्यूनता नहीं मालूम होती किन्तु उलटे एक प्रकार का अभिमान ही मालूम होता है।

दरबार का काम समाप्त होने पर फिर जलूस लौटा और पहले निश्चित किये हुए मार्ग से निकला उसमें कुछ भी फेरफार नहीं किया गया। इस बात का भी दर्शकों के मन पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

## उपसंहार।

कलकत्ता के समान बन्दर और व्यापार का स्थान छोड़ कर दिल्ली के समान स्थल में राजधानी लाना मानो वैश्यवृत्ति छोड़कर क्षत्रियवृत्ति का ही अंगीकार करना है। अँगरेज लोग पहले पहल राज्य-स्थापन करने के लिए भारत में नहीं आये किन्तु व्यापार के लिए आये। बाद को ज्यों ज्यों राजकीय सत्ता उनके हाथ में आने लगी त्यों त्यों व्यापार की ओर से उनका ध्यान हटता गया। सन् १८३३ में जब उनके व्यापार का ठेका रद कर दिया गया तब से राजकाज की ओर वे अधिक ध्यान देने लगे। तथापि उनकी नैसर्गिक वृत्ति बदली न थी। सन् १८७७ के दरबार के समय यह वैश्यवृत्ति दूर होने के चिन्ह देख पड़ने लगे। तथापि सन् १९०३ के कर्जनशाही दरबार के होने तक यह नहीं कहा जा सकता था कि वह रद-बदल हमेशा के लिए हो गया। उस साल के राजसी ठाट के दरबार में इस वृत्ति अन्तर को मूर्त स्वरूप ही प्राप्त होना बाकी था। वह मूर्त स्वरूप, गत वर्ष में सम्राट ने, दिल्ली राजधानी बना कर, प्रकट कर दिया। बंगभंग का सुधार करना और प्रान्तिक स्वराज्य का ध्येय नेत्रों के सामने रखना इस स्थिति अन्तर की अंगभूत दो बातें हैं। और यही बातें इस नवीन वृत्ति के प्रथम दो मीठे फल हैं। अब जो यह विचार राज्यकर्त्ताओं के मन में आ रहा है कि दिल्ली राजधानी की रचना ऐसी की जाय जो अपने वैभव को शोभा दे—इस बात से भी यही प्रकट होता है कि उनकी वैश्यवृत्ति का लोप हो रहा है। इसके सिवाय आज तक यह विचार मन में आने का कोई कारण न था कि कोई कानून हाथ में लेते समय अथवा कोई राजकीय नीति निश्चित करते समय पहले के हिन्दू राजाओं अथवा मुसलमान बादशाहों ने ऐसी परिस्थिति में कैसा बर्ताव किया होता, परन्तु अब दिल्ली राजधानी से निकलनेवाले सम्पूर्ण हुक्म के समय यह तुलनात्मक दृष्टि रहेगी ही, और उससे यह आशा रखने में कोई हर्ज नहीं कि राजकीय नीति अब प्रजाहित की दृष्टि से अवश्य ही बदलेगी। ऐसे अनेक प्रकार के विचार इस राजधानी के स्थानान्तर में अन्तर्भूत हुए हैं। और इसी लिए लार्ड हार्डिञ्ज ने इस उत्सव को नवीन युग का आरम्भ कहा है। अब हमारी परमात्मा से यही प्रार्थना है कि यह नवीन युग राजा और प्रजा दोनों के लिए सुखदायी और कल्याणकारी हो।

# सन्धि-सन्देश ।

( १ )
पीताम्बर परिधान किये विद्युद्द्युति-धारी,
उच्चासन-आसीन पीन-घन शोभाधारी ।
अति गम्भीर-स्निग्ध और मधुर-स्वरकारी,
करने लगे पवित्र-कथामृत-वृष्टि-विहारी ॥
धृतराष्ट्र-सभा घनराजि सी सराबोर होने लगी ।
पर हा ! दुर्योधन की कुमति रस में विष बोने लगी ॥

( २ )
अच्युत का उपदेश मान दुर्योधन लेता
धर्म्मराज का प्राप्य उन्हें यदि वह दे देता ।
तो यह महा अनर्थ कभी सघटित न होता,
भारत निज सर्वस्व न दो ही दिन में खोता ॥
आहा ! उस महदुपदेश के कैसे पावन भाव हैं ।
सुनिए, श्रीहरि धृतराष्ट्र से करते क्या प्रस्ताव हैं —॥

( ३ )
" महाराज ! मैं आज यहा आया हूँ इससे,
भरत-वंश विध्वंस न होने पावे जिससे ।
न हो व्यर्थ संग्राम, शान्ति हो, सन्धि न टूटे,
भ्रातृ-भाव में वैर-बुद्धि की आग न फूटे ॥
भाई भाई मिल कर पुन प्रेमामृत से पुष्ट हों ।
अपने अपने अधिकार को पाकर सब सन्तुष्ट हों ॥

( ४ )
है सु-धर्म्म के लिए आपका वंश प्रशासित,
होता उसमें अनाचार है अति ही अनुचित ।
हों यदि उसके हेतु आप तो और बुरा है,
दुर्योधन पी रहा सुधा को छोड़ सुरा है !
पर महा-मोह-वश आप कुछ उसको समझाते नहीं ।
निज शोचनीय परिणाम का ध्यान कभी लाते नहीं ॥

( ५ )
जान-बूझ कर आप निरे अनजान बने हैं,
कुरुकुल पर छा रहे विपद के मेघ घने हैं ।
इसका उचित उपाय आप यदि नहीं करेंगे,
तो निश्चय ही बन्धु-करों से बन्धु मरेंगे ॥
अब भी न आप होंगे सजग तो पीछे पछतायँगे ।
सब दुर्बलता का आप पर दारुण दोष लगायँगे ॥

( ६ )
हो सकती है शान्ति आप चाहें तो अब भी,
रुक सकती है क्रान्ति आप चाहें तो अब भी ।
भ्रान्त-सुतों को शान्त कीजिए आप यहा पर,
शान्त करूँ विक्रान्त-पाण्डवों को मैं जा कर ॥
शासन-प्रचार के अर्थ अब इसमें ही कल्याण है !
अति अकल्याण है अन्यथा नहीं किसीका त्राण है ॥

( ७ )
सन्धि-स्थापित करें आप निष्कपट भाव से ,
बढ़े आप का विभव पाण्डवों के प्रभाव से ।
द्रोण, भीष्म-युत आप उन्हें यदि अपना लेंगे,
तो नर क्या, सम्मान आपको सुर भी देंगे ॥
उस दिव्य-दशा में आप को दुर्लभ कौन पदार्थ है ?
क्या अधिक लाभ के अर्थ भी त्याज्य न अल्प स्वार्थ है ?

( ८ )
मिल कर ही धर्म्मार्थ सदा शोभित होते हैं,
किन्तु अर्थ पर आप धर्म्म अपना खोते हैं !
है यह अनुचित और हानिकारक भी भारी,
होते हैं क्या लोभ-विवश बुध भी अविचारी !
हे भरतर्षभ ! सब सोच कर न्याय कीजिए आप ही ।
बस, रह जावेगा अन्यथा पीछे खरतर ताप ही ॥

( ९ )
अविचारी का भार धार सकती न धरा है,
विग्रह में विष और ऐक्य में अमृत भरा है ।
हार-जीत तो समर-भूमि का अटल नियम है,
जेता की भी किन्तु हानि होती क्या कम है ?
फिर यह तो बन्धु-विरोध है इसमें किसका क्षेम है ?
क्या पाण्डु-सुतों पर आपको नहीं ज़रा भी प्रेम है !

( १० )
प्रथम आपकी प्रीति पाण्डवों पर थी जैसी,
रखनी अब भी उचित आपको उन पर वैसी ।
पिता-हीन वे गये आपसे ही ये पाले,
है अनर्थ फिर आज व्यर्थ जो जायँ निकाले ॥
ये पिता पाण्डु-सम आज भी मान रहे हैं आपका ।
उन सबका न मुझसे यहाँ बनता कहे न आपका—॥

( ११ )
' तात, आपके सुकृत सहायक हुए हमारे,
पूर्ण किये आदेश आपके हमने सारे ।
झेले बारह वर्ष सदा दुस्सह दुख वन में,
एक वर्ष तक गुप्त भाव से रहे भुवन में ॥
अब पूर्व-प्रतिज्ञा सोच कर कृपा आप भी कीजिए ।
है प्राप्य हमें वात्सल्य से अर्द्ध भाग सो दीजिए ॥

( १२ )
आप पिता, हम पुत्र; आप गुरु, और शिष्य हम,
रक्षित हम पर भाव आप भी यही मनोरम ।
राज्य-नाश से व्यग्र हमारी रक्षा कीजे,
मार्ग-भ्रष्ट हम न हों, आप अवलम्बन दीजे ॥
हे तात ! न आने दीजिए आनेवाली आपदा ।
हम आज्ञाकारी आपके अनुगामी हैं सर्वदा ' ॥

( १३ )
कहा और भी धर्म्मराज ने मेरे द्वारा—
" आर्त्त हैं हम, न्याय कीजिए आप हमारा ।
शरणागत पापार्त्त धर्म्म को सुने न न्यायी,
होता है तो वही पाप उसको दुखदायी ॥
है रीति यही अब की कि वह स्वजनों को ही मारना ।
तट के तरुओं को मूल से ज्यों तट-नीर विदारना ' ॥

( १४ )
हे राजेन्द्र ! विचार देखिये आप स्वयं ही,
है कि नहीं ये वचन सिद्ध निष्पाप स्वयं ही ।
देख धर्म्म की ओर अभी तक धीर युधिष्ठिर,
बैठे हैं चुपचाप ताप पाकर भी फिर फिर ॥
है राज्य-दान से भिन्न अब उचित आपको और क्या ?
ये सुज्ञ सभासद भी सभी कह सकते हैं और क्या ? "

( १५ )
हुई महाध्वनि ' यही उचित है यही उचित है,
बस, इसमें ही उभय पक्ष का पूरा हित है " ।
बोले फिर भगवान वचन वर बोध-विधायक--
' सोच देखिए आप स्वयं ही हे नरनायक !
है पाण्डु-सुतों को आपने क्या क्या क्लेश नहीं दिया ।
विष दिया, जलाया और फिर उनको निष्कासित किया !

( १६ )
इतने पर भी कभी उन्होंने बुरा न माना,
अपने को सुत और आपका सेवक जाना ।
राजसूय के समय नृपों को कर द बना कर—
किया उपस्थित उन्हें आपके सम्मुख लाकर ॥
पर तो भी उन पर आपका अत्याचार घटा नहीं !
उस कपट-जाल को देख कर किसका हृदय फटा नहीं ?

( १७ )
उन अपनों को आप समझते रहे पराया,
बल से जब कुछ बना न, छल से उन्हें हराया !
राज-पाट से ही न तृप्ति करके तृष्णा की,
सभा-मध्य की गई महा दुर्गति कृष्णा की !
हा ! कहते भी उस बात को स्वयं सूखता है गला ।
जड़ हो जाती है जीभ भी और हृदय जाता जला ॥

( १८ )
सीमा आखिर एक क्षमा की भी होती है,
प्रतिहिंसा का बीज अन्त में वह बोती है ।
अब भी पर अप्रीति आपसे उन्हें नहीं है–
इसका हेतु अशक्ति और कुछ भीति नहीं है ।
अविकृत अजातरिपु आप पर रखते अब भी भार हैं ।
सेवा कराइये या समर वे सब को तैयार हैं ॥

( १९ )
उभय पक्ष का क्षेम चाहता हूँ मैं, इससे—
शान्ति कीजिए आप, न हो यह विग्रह जिससे ।
हुआ न यदि अब मेल किसीकी कुशल नहीं है,
जीवन-मरण-विधान हमारा आज यहीं है ॥
है सन्धि न होने से निरा अन्धकार परिणाम में,
सब शूर वीर इस देश के हत होंगे संग्राम में ॥

( २० )
हे हे प्रज्ञाचक्षु ! देश की रक्षा कीजे,
दीजे उचित निदेश विश्वभर में यश लीजे ।

यह स्वत्वों का विषय नहीं सामान्य कभी है
शान्त भाव से निबट जाय कल्याण तभी है ॥
पड़ जाय न जिससे दक्षिण भावी सन्तति दाह में।
बह जाय न भारतवर्ष यह रण के रुधिर-प्रवाह में" ॥
(२१)
प्रभु का यह उपदेश न दुर्योधन को भाया,
उलटा उसने रुष्ट उन्हीं को दोष लगाया।



सुन उसके दुर्वचन सात्यकी क्रुद्ध हुआ अति
उठ बैठा वह खड्ग खींच कह-" रह रे दुर्मति " ॥
पर हाथ पकड़ हरि ने उसे वार नहीं करने दिया।
रविवर्मा ने इस चित्र में यही दृश्य दर्शित किया ॥

श्रीमैथिलीशरण गुप्त।

# साहित्य-चर्चा।

## ग्रन्थ-साहित्य।

१ **भाग्यवती** —लेखक पं० श्रद्धारामजी, प्रकाशक उक्त पं० जी की विधवा पं० महतावकुमारि, हरिज्ञान मन्दिर, लाहौर। (पृष्ठ संख्या १००+१८। मूल्य ।।।) आ०। इस पुस्तक के प्रचार से स्त्रियों की अनेक कुरीतियाँ मिट सकती हैं और उनमें सुनीति का प्रचार हो सकता है। पुस्तक का मूल्य यद्यपि अधिक मालूम होता है, तथापि इसकी आमदनी उत्तमोत्तम धार्मिक और नैतिक कार्यों में खर्च की जाती है, अतएव प्रत्येक पढ़ी-लिखी स्त्री को इस पुस्तक से लाभ और धर्म का फल उठाना चाहिए। पुस्तक के अन्त में १८ पृष्ठों में उक्त पं० का जीवनचरित भी दिया है।

२ **नागरीलिपि-पुस्तक** —(चार भाग) लेखक पं० गोविन्द भट्ट, मुख्याध्यापक, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार। मूल्य प्रत्येक पुस्तक का -) आना। इन चारों पुस्तकों में क्रमशः पाद, मात्रा, अक्षर शब्द और वाक्यों के ढांचे दिये हुए हैं। इन पर अभ्यास करने से बालक अवश्य ही सुलेखक बन सकते हैं। आप भी सुन्दर लेखन के लिए प्रसिद्ध ही हैं। आपने शब्दों और वाक्यों का भी ऐसा चुनाव किया है कि सुन्दर लेखन के साथ साथ बालक सदाचरण-तत्त्व भी जान सकता है। नागरी हितैषियों को आपका उत्साह बढ़ाना चाहिए।

३ **षोडशी** —अनुवादक श्री[illegible]नाथदास। प्रकाशक इण्डियन प्रेस, प्रयाग। पृष्ठसंख्या [illegible]। मूल्य एक रुपया। इस पुस्तक में सोलह आख्यायिकाओं का संग्रह है। बंगाल के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुक्त प्रभात कुमार मुखोपाध्याय के पुस्तक का यह अनुवाद है। कहानियाँ सभी रोचक और उपदेशप्रद हैं। पुस्तक स्त्री पुरुष बाल वृद्ध सब के पढ़ने योग्य है। मनोरंजन के साथ साथ शिक्षा-लाभ करने का यह अच्छा साधन है।

४ **तीन लाख अस्सी हजार** —लेखक श्रीयुक्त [illegible] लाल जौहरी (सुधाकर) [illegible] सी० पी०। पृष्ठसंख्या [illegible]। मूल्य दो आने। यह गल्प बहुत ही उत्तम मनोमोहक और शिक्षाप्रद कहानी है। इसमें धन का बुरा परिणाम दिखलाया गया है।

सज्जनों की जितनी ही प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस रिपोर्ट के देखने से मालूम होता है कि वहां के सज्जनों ने कोई [illegible] साल की मुद्दत में ही आलाभवन की अच्छी उन्नति कर ली है। भवन में ३० मासिक और साप्ताहिक, पत्र आते हैं। नियमित सभासदों की संख्या [illegible] है। भवन में १०[illegible] पुस्तकें मौजूद हैं। इस सफलता के लिए हम इसके अवैतनिक प्रबन्धकर्ता [illegible] महाशय का अभिनन्दन करते हैं। साहित्य-प्रेमियों को पुस्तक तथा धन के द्वारा भवन की सहायता करना चाहिए। [illegible] के विद्याप्रेमियों का उद्योग अन्य ग्रामवालों के लिए अनुकरणीय है।

## सामयिक साहित्य।

१ **गृहस्थ** —(बंगला मासिकपत्र) यह पत्र कई वर्ष से अपनी मातृभाषा की अच्छी सेवा कर रहा है। माघ मास से इसकी पृष्ठसंख्या भी बहुत बढ़ गई है। इस में प्रतिमास इस विषय में हिन्दुओं की जाति, प्राचीन और आधुनिक धनवृद्धि के उपाय हिन्दू-साहित्य प्रचार, समालोचना, वैज्ञानिक अनुसन्धान, नाट्य शिक्षा, ज्योतिष और [illegible] इत्यादि विषयों पर गवेषणापूर्ण निबन्ध निकलते हैं। प्रायः सामयिक विषयों पर यह पत्र सामयिक आलोचना करता है। प्रो० विनयकुमार सरकार, श्रीयुक्त [illegible] मुखोपाध्याय आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वान इसके लेखक हैं। हिन्दी-भाषा के मासिक पत्रों के लिए यह अनुकरणीय आदर्श है। हम दिन दिन इसकी उन्नति चाहते हैं।

**प्रभा** —हमारे पाठकों को यह जानकर बड़ा आनन्द होगा कि आगामि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से प्रभा नामक एक उच्च श्रेणी की सचित्र मासिक पत्रिका खण्डवा (म०प्र०) से निकलनेवाली है। अभी तक जितने मासिकपत्र हिन्दी में निकलते हैं उन सबों से इसका [illegible] होगा। इसके लेख पठनीय रहा करेंगे। धार्मिक, नैतिक, और सामाजिक सभी विषयों पर इसमें उत्तम लेख निकलेंगे जो कि सब साधारण लोगों के एक नवीन हैं। जातीय शक्ति की सेवा के [illegible]। इसके सम्पादक और प्रबन्धकर्ता [illegible] और 'साधुचरित' हैं।

**प्रेम** —श्रीमान राजकुमार महेन्द्र प्रताप सिंह के सम्पादन

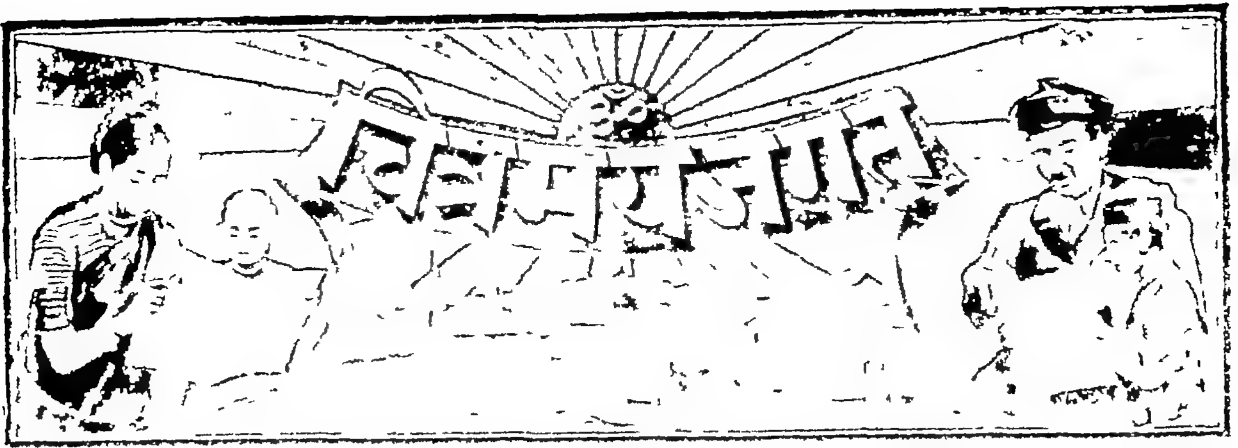
## पंजाब में नागरी-प्रचार।

पंजाब प्रान्त भारत के सब प्रान्तों से अधिक महत्वपूर्ण है। आर्यों के प्रारम्भिक इतिहास से लेकर आज तक भारत में जितनी बड़ी बड़ी क्रान्तियाँ हुई हैं सब का उत्थान प्रायः पंजाब प्रान्त में ही हुआ है। आज भी पंजाब प्रान्त विद्या, बुद्धि और बल में किसी प्रान्त से कम नहीं है। मुसल्मानी शासनकाल में यही प्रान्त राजकर्ताओं का मुख्य स्थान था। इस कारण मुसल्मानों के रीति रिवाज भाषा, लिपि, इत्यादि यहां हिन्दुओं (आर्यों) को भी स्वीकार करनी पड़ी—अब आर्यसमाज की कृपा से वहां के हिन्दुओं के रीति-रिवाज और भाषा में बहुत सुधार हो गया है तथापि फारसी लिपि वहां अब भी बहुत प्रचलित है। आनन्द की बात है कि अब पंजाब के सज्जनों का ध्यान इस ओर भी विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। पंजाब के बड़े बड़े उर्दू समाचारपत्रों में भी अब नागरी लिपि और हिन्दीभाषा की समय समय पर चर्चा हुआ करती है। परन्तु इतने ही से काम नहीं चलेगा किन्तु 'प्रकाश' 'हिन्दोस्तान', 'आर्यगजट' इत्यादि समाचार-पत्रों को चाहिए कि वे निरन्तर अपने पाठकों को हिन्दीभाषा और नागरी-लिपि का महत्त्व समझाते रहें और अपने अपने पत्रों में कुछ भाग नागरी लिपि का भी रक्खा करें। इस प्रकार क्रमशः [illegible] नागरी के प्रचार में हो जाने पर आगे चल कर वे 'सद्धर्म प्रचारक' की तरह अपने पत्रों को बिलकुल नागरी में भी कर सकेंगे।

हिन्दी-साहित्यसम्मेलन की ओर से इस समय पं० शिवनन्दनजी शर्मा और श्रीयुत सत्यदेव नागरीप्रचारार्थ [illegible] मास से पंजाबप्रान्त में दौरा कर रहे हैं। आशा है कि इन महात्माओं के उद्योग से पंजाब की नागरी-प्रचारिणी सभाओं में भी जीवन का संचार होगा। पंजाब के प्रतिष्ठित सज्जनों को उचित है कि उक्त सज्जनों को उनके कार्य में पूरी पूरी मदद देकर अपने कर्तव्य का पालन करें।

## कानपुर में साहित्य-चर्चा।

कानपुर शहर युक्तप्रान्त का सब से बड़ा व्यापारी और धनसम्पन्न नगर है। परन्तु साहित्य के मैदान में अभी तक यह बहुत पीछे है। धन्य कहना पं० मनोहर



वर्ष ३ ] माघ और फाल्गुन-सम्वत् १९६९ विक्रमी—फरवरी और मार्च सन् १९१३ ईसवी। [ अङ्क २–३

## परम पिता का आदेश।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

अथर्व० का० ३ सू० ३० म

अनुव्रत पितु का हो पुत्र कल्याण कारी।
शुचि मन, सुत का हो मातु से, क्षेम कारी।
मधुर वचन बोले स्वामि से नित्य नारी,
सुन कर जिस से हो शान्ति-सन्तोष भारी ॥

# कर्मयोग-रहस्य।

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

यह तो प्रायः सभी पढ़े लिखे लोग जानते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता के कुल अठारह अध्याय और ७०० श्लोक हैं। साधारण तौर पर लोग समझते हैं कि इन अठारह अध्यायों में छः छः अध्यायों का एक एक षट्क है। इस प्रकार के कुल तीन षट्क हुए। इनमें कर्म उपासना और ज्ञान इन तीन विषयों का प्रतिपादन किया गया है। तथापि अच्छी तरह जो कोई इस ग्रन्थ को पढ़ेगा उसे यह मालूम हुए बिना न रहेगा कि यद्यपि इस ग्रन्थ के कर्म, उपासना, ज्ञान–ये तीन ही सम समान भाग मान गये हैं, तथापि इस ग्रन्थ में बहुधा कर्मयोग पर ही विशेष जोर दिया गया है—अर्थात् कर्म प्रतिपादक [illegible] हैं उतने ज्ञान अथवा उपासना का प्रतिपादन करने वाले श्लोक या वचन नहीं हैं। यही नहीं कि कर्म प्रतिपादक वचनों की सिर्फ संख्या ही अधिक हो किन्तु उन पर जोर भी बहुत अधिक दिया गया है। ज्ञान और उपासना का महत्त्व बतलाने वाले वचन भी इस ग्रन्थ में हैं, तथापि वे इतने जोर के अथवा आग्रह के [illegible] [illegible] हैं। कोई कहे कि गीता में कर्म उपासना और ज्ञान का महत्त्व एक एक षट्क में [illegible] [illegible] [illegible] अधिक ही माना गया [illegible] [illegible] [illegible]

केसरी, [illegible] [illegible] [illegible] सर्वसम्मतमुक्तिर्भवति न जन्मशतेन
( अर्थात् ज्ञान के बिना शत जन्मों में भी मोक्ष नहीं मिल सकता ) की गर्जना कर रहे हैं—और इधर मोक्षप्राप्ति के लिए कर्म एक निकृष्ट सीढ़ी होने पर भी सब जगद्गुरुओं के भी परात्पर गुरु परमात्मा, भगवान् कृष्ण अपने अर्जुन के समान अत्यन्त प्रियतम शिष्य को ज्ञान और उपासना से भी अधिक कर्म का ही महत्त्व बतला रहे हैं—यह क्या बात है?

इस पर शायद कोई कहेगा कि जैसे कोई व्याख्याता अपने व्याख्यान का पूर्वरंग बहुत बढ़ाता जाता है और फिर अवकाश की न्यूनता रहने से उत्तरंग किसी न किसी तरह खींच लाता है उसी प्रकार गीता में भी कर्मयोग का प्रतिपादन प्रारम्भ में ही होने के कारण, विस्तृत हुआ है और आगे युद्ध की जल्दी होने पर अगला भाग, अर्थात् ज्ञान और उपासना, संक्षेप में कह दिया गया है। परन्तु हमारी सम्मति में महायोगेश्वर श्रीकृष्ण के समान चतुर और पूर्ण उपदेष्टा पर यह असावधानी का दोष लगाना बड़ी धृष्टता होगी। इसके अतिरिक्त गीता के वाक्यों पर जब हम विशेष ध्यान देते हैं तब जान पड़ता है कि तृतीयाध्याय के प्रारम्भ में ही कुशाग्रबुद्धि शिष्य अर्जुन ने [illegible] [illegible] इस प्रकार से उत्कण्ठापूर्वक डाट कर पूछा कि, भगवन् आपको यदि कर्म की अपेक्षा ज्ञान अधिक सम्मत है तो फिर मुझे युद्धरूप इस घोर कर्म में क्यों लगाते हो? ज्ञान की तो प्रशंसा करते हो और कर्म का आश्रय लेने का उपदेश करते हो—यह आपका गड़बड़ कुछ मेरी समझ में नहीं आता। इसका खुलासा करो और ज्ञान या कर्म, जिससे मेरा कल्याण हो वही एक निश्चय करके बतलाओ।' इस प्रकार डाट कर और स्पष्ट रीति से यद्यपि अर्जुन ने प्रश्न किया तथापि भगवान् कृष्ण ने जान-बूझ कर जो उत्तर दिया उसमें भी 'नियतं कुरु कर्म त्वम्' ( सतत ) [illegible] [illegible] तुम सदा नियत कर्म ही करते रहो। यही स्पष्ट उत्तर दिया। अर्थात् ज्ञान की अपेक्षा भगवान् ने कर्मयोग का ही आदेश अधिक जोर से किया है। यह स्पष्ट है। तथापि देखा ये जाता यही है कि मुमुक्षुओं का जब ज्ञान ही अन्तिम साध्य है तब भगवान् श्रीकृष्ण के समान निष्णात और ज्ञानवान् शिक्षक ने ज्ञान की अपेक्षा कर्म ही को इतनी प्रधानता क्यों दी?

हमारी अल्प बुद्धि के अनुसार भगवान् के इस कार्य का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि सच्चे गुरु उपदेष्टा का पहला लक्षण यह है कि शिष्य का अधिकार देख कर उसे उपदेश करना चाहिए। कहते हैं कि जिस को दान करे—जिसके लिए जो योग्य हो—उसको वही देना चाहिए और जो जिसे पचे वही खाना चाहिए। बस इसी न्याय के अनुसार अर्जुन के समान शास्त्रोक्त क्षत्रिय वीर के लिए जो उपदेश करना है वह ऐसा ही होना चाहिए जिसको वह अपनी परिस्थिति में स्वीकार कर सके—वही काम का सकता है। [illegible] प्रकार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की उम्र [illegible] [illegible] और परिस्थिति ध्यान में रख कर आचार्य की रचना करना [illegible] [illegible]

सरल और सुखदायक मार्ग बतला देगा? कल्पना करो कि हमारे घर में कहीं कुछ बिगड़ गया है और हमने अपने किसी शिल्पी मित्र के पास जाकर यह समाचार बतलाया। शिल्पी ने कहा, एक युक्ति है, उस घर को जला दो और फिर उसी जगह अथवा और कहीं नवीन घर बनाओ! अब बतलाइये, इस युक्ति को लेकर हम क्या करें? अथवा दूसरा उदाहरण—हमारी उँगली में फोड़ा हुआ है, हम अपने किसी मित्र डाक्टर के पास गये। डाक्टर ने कहा उँगली काट डालो, सब ठीक हो जायगा! अब कहिए ऐसी चतुरता से हमें क्या लाभ? यथासम्भव उँगली की रक्षा रखते हुए, सिर्फ व्याधि दूर होने के लिए, जो वैद्य उपाय बतावेगा वही हमें—हमें क्या, सब को—पसन्द आवेगा। आज कल भी यद्यपि कुशल सर्जन चीर फाड़ करके कितने ही रोगों का परिहार करते हैं, तथापि रोगी, जहां तक हो सकता है, पहले सर्जन के पास नहीं जाता। इसी प्रकार "निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम्" यह यद्यपि भवभजन का उपाय है और ठीक भी है, तथापि जो यह उपदेश करेगा कि "घर बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं, घर में ही रह कर सत्कर्माचरण करो, वही उपदेशक लोगों को अधिक प्रिय होगा। पथ्य से मार डालनेवाले वैद्य की अपेक्षा मुर्दे का काम न बन्द करते हुए आराम कर देनेवाला वैद्य लोगों को अधिक प्रिय होता है और उसकी दवा चाहे कुछ महँगी भी हो, तथापि लोग खुशी से खरीदते हैं। यह न्याय कुशल उपदेशक सदा ध्यान में रखते हैं। कहावत है कि, "यादृगस्तादृशेषु" अथवा वाग्भट्ट ने कहा है कि, "यस्य यस्य हि यो भाव तस्य तस्य हित नर । अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवश नयेत्" साराश, लोगों के अनुसार कार्य कर के उन्हें अपने वश में करना चाहिए। यह वशीकरण की युक्ति क्या भगवान् श्रीकृष्ण के समान चतुर को सिखाने की जरूरत थी? उनमें वह स्वाभाविक ही थी; और यही बात गीता का निरीक्षण करने पर अनुभव में आती है। अर्जुन शोक-मोहाकुल होते हुए धनुष्यत्याग करके जब विषण्ण होकर बैठ रहे तब भगवान् ऐसी ही युक्ति से उन्हें मार्ग पर लाये। यहा तक कि अर्जुन ने अपनी खुशी से "करिष्ये वचन तव" कबूल कर लिया। "तरति शोकमात्मवित्"—"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशु" इत्यादि सैकड़ों वाक्य कर्म के प्रतिकूल होते हुए भी भगवान् ने कर्म का ही स्वीकार करने के लिये बड़े आग्रह के साथ अर्जुन से कहा। एक जगह तो यहां तक कह दिया कि यदि तुम मेरे कहने के मुताबिक युद्ध न करोगे तो "विनङ्क्ष्यसि" तुम्हारा सत्यानाश होगा। भगवान् कृष्ण के समान चतुर पुरुष, और यह सर्वसिद्धान्त विरुद्ध कथन—सो भी इतने आवेश के साथ! इसे क्या कहना चाहिए? इस कथन को भ्रमात्मक कहें या भगवान् का मस्तक फिरा हुआ समझें? एक नवप्रसूत स्त्री को वायुरोग हो गया और एक धन्वतरि के समान वैद्यराज कहता है कि इसे पहले अमरूद, खीरे, शरीफे, इत्यादि देने चाहिए—सो लावो। घड़े का ठढा पानी पीने के लिए लाओ। अब कहिये इसे क्या कहें? इसका उत्तर इतना ही है कि उस चतुर वैद्य की उसके साथ ही ऐसी कोई योजना होगी कि जिससे अमरूद और खीरों का बाधक धर्म दूर होता होगा, और यही बात सच है। अब भगवान् कृष्ण की कृति का भी इसी दृष्टि से समर्थन करना चाहिए।

## कर्म का महत्व।

प्राणिमात्र को, कम से कम ससारी जीव को, कर्म विरहित रहने के लिए कहना मानो मछली को पानी के बाहर जीने के लिए कहना है। अर्थात् मछली के बीमार होने पर पानी में ही उसकी स्थिति रख कर, उसे आराम करनेवाला वैद्य जिस प्रकार होशियार माना जायगा उसी प्रकार मानवी जीवों की कर्मों में स्थिति रख कर उन्हें मुक्तिमार्ग दिखला देनेवाला ही सद्गुरु मानवी जीवों को अधिक प्रिय होगा; और इसी कारण भगवान् श्रीकृष्ण का यह गीतारूप वाक्य उत्तर ध्रुव से लेकर दक्षिण ध्रुव तक भिन्न भिन्न जातियों के, भिन्न भिन्न वर्णों के, भिन्न भिन्न अधिकारों के और भिन्न भिन्न धर्मों के भी लोगों को आदरणीय हुआ है। हमें यहा पर यह स्पष्ट बतला देना चाहिए कि यह कर्मयोगरूपी जो अजीब दवा गीता में परमात्मा ने हम जीवों को बतला दी है उसे बतलाने में एक परमात्मा ही समर्थ है। जीवों में यह सामर्थ्य ही नहीं है। कोई कहेगा कि इसमें कठिन क्या है? इसका उत्तर यही है कि जैसे आग में रह कर शरीर को जलने न देना और पानी में रह कर भीगने न देना करीब करीब असम्भव ही है उसी प्रकार कर्म में रह कर और कर्माचरण करते हुए कर्म की बाधा न होने देना भी सचमुच ही विचित्र बात है। हमने पानी और अग्नि के जो ऊपर दृष्टान्त लिये हैं उसका कारण यह है कि दाहकता जैसे अग्नि का स्वभावसिद्ध अव्यभिचारी धर्म ठहरा उसी प्रकार सुखदुःख, शोकमोह और अन्त में अनेक प्रकार के बन्धन उत्पन्न करना भी तो कर्म का मूल स्वभाव ही ठहरा। अत एव जलता हुआ अगार हाथ में लेना और उसकी दाहकता भासने न देना जिस प्रकार साधारण वैज्ञानिक का काम नहीं है उसी प्रकार कर्म का बाधकत्व नाश करना भी प्राकृत बुद्धि से परे है।

परन्तु परम कारुणिक परमात्मा [illegible] जीवों का [illegible] अलौकिक क्या रखा? उसकी दया [illegible] जाग्रत है, [illegible] उत्सुक है। परमात्मा ने [illegible] कि [illegible] में पड़ कर शोक-मोह के सकट सह रहे [illegible] प्रकार [illegible] उस [illegible] ने अलौकिक बुद्धिमत्ता प्रकट करके उस स्थिति में [illegible] मोहातीत होने का मार्ग दिखला दिया। [illegible] सामान्य [illegible]—यह विष का अमृत करना'। और यह करना परमात्मा ही जानता है। "कर्तु, अकर्तु, अन्यथा कर्तु" यह जिसका सामर्थ्य है वही ऐसी युक्ति की योजना कर सकता है।

अस्तु; परमात्मा की योजकता अथवा उसकी बुद्धि की मीमांसा करना यद्यपि हमारी शक्ति से बाहर है, तथापि केवल कौतुक के लिए, उसीकी प्रेरणा से, इसका थोड़ा विचार कर देखना चाहिए। कर्म से कर्मातीत होना मानो मरे हुए प्राणी को सोमल से जीवित करना ही है। परन्तु कुछ कुशल वैद्य जैसे यह किया जानते हैं और सोमल के घातक गुण किसी सस्कार से निकाल कर उसे अत्यन्त गुणकारक बना लेते हैं उसी प्रकार परमात्मा ने ऐसे नीच कर्म का नीचता बड़ी युक्ति से, प्रमाण से, और डौल से, निकाल डाला है। चतुर और अन्य पुरुष की दृष्टि में जो अन्तर है सो यही है। ससार में अनेक वस्तुएं साधारण दृष्टि को बड़ी घातक देख पड़ती हैं और साधारण बुद्धि के लोग उनकी अवहेलना भी करते हैं। परन्तु कुशाग्र बुद्धि के पुरुष उन पदार्थों की योग्य मीमांसा करके उनके ग्राह्य और त्याज्य भागों का पृथक्करण करते हैं, तथा त्याज्य भाग छोड़ कर बची हुई वस्तुओं से लाभ उठा लेते हैं। सोमल का उदाहरण ऊपर दिया ही गया है। वैद्यशास्त्र के ग्रन्थ पढ़ने से—फिर चाहे वे देशी वैद्यक के हों, चाहे विदेशी के हों—जान पड़ता है कि बड़े बड़े वैद्य रत्नों का जो चमत्कार हुआ है सो, जिनके नामस्मरण के साथ ही भय उत्पन्न होता है उन विषों और उपविषों के बल पर ही हुआ है। सचमुच ही यदि सर्प में विष न होता और चचलता उसमें यदि कुछ कम होती तो कितनी ही विलासी युवतियों ने उसे अपना कठहार बना लिया होता, और जिनमें विष के परिहार करने का अथवा विष से बाधित न होने का सामर्थ्य है उन महादेवजी ने स्पष्टतया सर्प को अपना कण्ठभूषण बनाया भी है और उनके भाई लक्ष्मीपति विष्णु ने तो परों का गद्दा छोड़ कर शीतल और चिकने सर्प पर ही लेटना स्वीकार किया है। इसी न्याय से परमात्मा ने भी, स्वय अजन्मा और अकर्मा रहते हुए, यह बात [illegible] भर मानो एक ओर रख कर, सामान्य दृष्टि के लिए जो बाधक [illegible] कर डरानेवाला है उसी कर्म को, बड़े उत्साह के साथ स्वीकार किया है और अपने प्रियतम शिष्य तथा सुहृद् अर्जुन से आग्रहपूर्वक कहा है "कुरु कर्मैव तस्मात्त्व । कर्मज्यायो ह्यकर्मण" (इस लिए तू कर्म ही कर, क्योंकि अकर्म से कर्म ही अच्छा) और उन्हें विश्वास दिलाने के लिए वे अपनी ओर सकेत करके कहते हैं, "न मे पार्थास्ति कर्तव्य त्रिषु लोकेषु किंचन । नानवाप्तमवाप्तव्य वर्त एव च कर्मणि" (भैया इस त्रैलोक्य में मेरे ऊपर किसीने यह भार नहीं रखा कि तू अमुक एक कार्य कर इसके सिवाय मुझे प्राप्त करने योग्य कोई वस्तु भी नहीं तिस पर भी मैं जो घड़ी भर भी खाली नहीं बैठता, इसका मतलब क्या है?) मैं जो सकलाप्तकाम [illegible] उसकी तो यह दशा है; फिर, हे अर्जुन तुम्हारे समान ससारी यदि हाथ पर हाथ रख कर चुप बैठ रहेगा तो काम कैसे चलेगा? यही नहीं किन्तु भगवान् यहा तक कहते हैं, "शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मण" (तुम कर्म छोड़ दोगे तो जीना भी कठिन होगा।)

इस प्रकार, अर्जुन की स्थिति का स्वरूप उसके आगे रख कर, अपना उदाहरण देकर, नाना युक्तियों से, भगवान् कृष्ण अर्जुन को कर्म में ढकेल रहे हैं। कहावत है कि महापुरुष अपने समान ही अपने शरणागत को भी बनाते हैं। प्रभु 'करके भी अकर्ता' है, उसी प्रकार अर्जुन भी 'करके अकर्ता हो' यही प्रभु का हेतु है और गीता के उपदेश में यही कुशलता है। और 'शुभाशुभफलै मोक्ष्यसे कर्मबन्धनै', "कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति स", "कृत्वाऽपि न निबध्यते" इत्यादि वाक्यों से प्रभु यह दिखलाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि अर्जुन में भी हमारी ही तरह "करके भी अकर्तापन" किस प्रकार आ सकता है। ठीक ही है, जो सद्गुरु शिष्य को तत्काल अपने समान बना सकता है उसे अन्य मार्ग कैसे रुच सकता है? क्योंकि अन्य मार्ग दिखलाना मानो वचना करना ही है। परन्तु ये बातें प्राकृत पुरुषों की हैं। सद्गुरु की प्रतिष्ठा ही दूसरी है। परमात्मा के समान सद्गुरु जिसे अपनी शरण में लेता है फिर वह चाहे कोई भी हो ("स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा," "अपिचेत्सुदुराचारो०") जब तक उसे आत्मस्वरूप में नहीं मिला लेता तब तक यह कदापि नहीं समझता कि मैंने अपना कर्तव्य किया। और इसी लिए प्रत्यक्ष शकरावतार जगद्गुरु ने अपने सुप्रसिद्ध शतश्लोकी ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कहा है, "दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातु । स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्य स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारम्"— अर्थात् सद्गुरु के लिए पारस की भी उपमा लग नहीं सकती, क्योंकि पारस लोहे को सोना बनाता है; परन्तु प्रति पारस नहीं बनाता, किन्तु सद्गुरु अपने शिष्य को

प्रति सद्गुरु ही बना देता है। यह उदारता तो देखिये! इस योग्यता का भी कहीं ठिकाना है! यह वात्सल्य ही अपूर्व है! पिता तो अपने रत्नभाण्डार की कुंजी अपने आत्मबिम्ब (पुत्र) को ही सौंपता है; परन्तु सद्गुरु राजा-रङ्क, आप पर, बालवृद्ध, इत्यादि सब भेद दृष्टि छोड़ कर प्रत्येक जीव को अपने आत्मभाण्डार की कुंजी दे देता है। ऐसा परमोदार और परकार्यरत महात्मा वञ्चक कभी नहीं हो सकता। ऐसा सद्गुरु यदि अर्जुन के समान प्रिय शिष्य से जब कि वह हाथ पर हाथ रक्खे विषण्ण और तटस्थ बैठा है प्रवाह में–कर्मरूप प्रवाह में–कूद पड़ने के लिए, आग्रहपूर्वक, कहता है तो अवश्य ही वह उस दुकान की गरज से नहीं कहता। प्रवाह तो बहुत प्रबल है और कूदनेवाला तो तैरना जानता नहीं, फिर वह पार कैसे हो? पर इससे समझना चाहिए कि जो कूदने के लिए उससे कहता है उसने भी तो कोई उपाय सार ही सोच लिया होगा। इसी न्याय से, ऊपर ऊपर देखने से, कर्म जो जीवों को जन्ममरण के चक्र में डालता है, उसके प्रवाह में जब भगवान अर्जुन को खींचे लिये जा रहे हैं तब, अब यह देखना चाहिए कि भगवान ने ऐसा कौन सा उपाय कर रक्खा है कि जिससे अर्जुन कर्मप्रवाह में पड़ कर भी उसके भवर में नहीं पड़ सकता, अथवा गोता नहीं खा सकता।

कोई कहेगा कि भगवान की करनी का न्याय करने बैठना हमारी योग्यता के बाहर की बात है। उनके कथन को सुन कर उनके मुताबिक चलना ही हमारी मर्यादा है। यह उत्तर जीवों को शोभने योग्य ही है। सचमुच उनका इतना ही अधिकार है कि वे भगवान के नियमों का पालन करें परन्तु परमेश्वर न्यायी और लोकबन्धु है; अतएव लोगों के लिए वह जो नियम बनाता है उनके विषय में प्रत्येक न्यायी राजा की तरह, उसकी यह स्पष्ट इच्छा–नहीं नहीं स्पष्ट आज्ञा भी–है कि लोग उन नियमों का तत्व समझ लें और फिर उनके अनुसार बर्ताव करें। भगवान कहते हैं कि मेरी कृति अथवा मेरे वचन बाबावाक्य प्रमाण के न्याय से जीवों को बिलकुल न मान लेना चाहिए; किन्तु उनको अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए (जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।) अर्थात् परमात्मा का (मेरा) जो कर्म है उसे जीवों को खूब छानबीन करके समझ लेना चाहिए; इस प्रकार समझ लेने से उनका पुनर्जन्म न रहेगा। अर्थात् प्रभु को यह इष्ट ही इष्ट पड़ता है कि हमारी कृति और हमारी आज्ञाओं का अच्छी तरह परख लेना चाहिए, भगवान की इसी आज्ञा के अनुसार अब हम इस बात का विचार करेंगे कि भगवान ने अर्जुन को जो यह कर्मयोग बतलाया वह उसके स्वभावानुसार बन्धक न होकर तारक क्यों हुआ।

भगवान ने सम्पूर्ण गीता में और विशेष कर प्रथम षट्ध्यायी में कर्म पर जितने भाषण किए हैं उन सब का एकत्र विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अर्जुन यदि चार या पांच शर्तों का पालन करके धर्माचरण करता तो कर्मबाधक न होगा, किन्तु तारक होगा। वे शर्तें ये हैं। जो कर्म करना हो वह निरहंकारता से, आसक्ति और फलाकांक्षारहित होकर ब्रह्मार्पण रूप से करना चाहिए और वह कर्म विहित होना चाहिए। इस प्रकार की ये चार अथवा पांच शर्तें हैं। अब हम यह देखते हैं कि ये शर्तें हमारे व्यवहारी न्याय से भी विचारपूर्ण और इष्टार्थपोषक किस प्रकार हैं। पहली शर्त यह समझिये कि जो कर्म करना हो वह विहित अथवा शास्त्र का कहा हुआ होना चाहिए। अतएव जीवों को विहित कर्मानुष्ठान बतलाना मानो अन्ध-पङ्गुओं को मार्ग राजमार्ग दिखलाना है और ऐसे मार्ग के बिना जीवों का कष्ट ही कष्ट होगा। क्योंकि भगवान कहते हैं, "किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः" "गहना कर्मणो गतिः" अर्थात् जीव यदि केवल अपनी ही बुद्धि के बल पर कर्म का रास्ता साफ करने लगें तो बड़े बड़े चतुरों की भी दाल नहीं गल सकती। ऐसी दशा में सब प्रकार से साफ किया हुआ मार्ग ही सर्वसाधारण लोगों को सुगमकर और सुखाम होगा। और इसी कारण परमात्मा ने जीवों के अधिकारानुसार वर्णाश्रमधर्मरूप से यह कर्म की सड़क निकाल दी है। इस सड़क को पकड़ कर चलने से जीव चिर सुख इष्टस्थल को पहुँचेगा। यह स्पष्ट ही है। अब भगवान् को यह समझा देने की भी दरकार नहीं कि यह रास्ता ऐसा क्यों निकाला, परन्तु हमें इस पर सन्देह भी नहीं। इस कारण परमात्मा के शासन पर विश्वास रख कर और यह जान कर कि, जो सड़क निकाली है वह हमारे हित की है और उचित भी है, हमें विहिताचरण का निडर होके शास्त्र के निर्देश की ओर चलना चाहिए।

## दूसरी बात–निरहंकारता।

भगवान् कहते हैं कि विहित कर्म भी निरहंकार बुद्धि से होना चाहिए। कारण अहंकार से करना एक तो अन्याय की बात है और दूसरे उससे कोई लाभ भी नहीं। देखिए भगवान् [illegible] इस ओर से स्पष्ट कहते हैं कि ऐसा जीवों के हाथ से जितना कर्म होता है उसका सब आलय से देखिये तो, प्रकृति के सत्वरजस्तमात्मक गुणों की ओर से होता है, परन्तु ये मूढ़ जीव यह कह कर कि, 'मैंने किया, मैंने किया,' अहंकारवश होकर उसका कर्तृत्व अपने ऊपर लाद लेते हैं। अवश्य ही यह काम अन्याय और मूर्खता का भी है। एक कहावत है कि जब लड़का अपने बल चलता है तब उसे कनिया लेने की क्या जरूरत? बस, इसी तरह प्रकृति के गुण जब आप ही आप अपने सब काम करते रहते हैं तब उनका बोझा अपने ऊपर लेना क्या जीव का पागलपन नहीं है? खैर पागलपन एक बार सहन किया जा सकता है, पर उसमें जो अन्याय है वह कैसे सहन हो? और करनेवाले को चाहे सहन भी हो गया, तथापि दूसरा कैसे उसे पचने देगा? अन्याय कैसा? अच्छा, देखिये, भगवान श्रीकृष्ण के समान समर्थ हमसे साफ तौर पर कह रहा है कि सारी क्रियाएं प्रकृति के गुण से होती हैं और वर्तमान समय के विज्ञानवेत्ताओं ने भी यह स्वीकार किया है कि शरीर में इन्-वालंटरी, अर्थात् अनैच्छिक क्रिया व्यापार है–अर्थात् सारी क्रिया किसी दूसरे की जायदाद है। वह दूसरे की मिहनत का फल है। उस पर स्वयं अपनी छाप मारना मानो स्पष्ट परद्रव्यापहार करना ही है। पड़ोसिनी का बच्चा यदि कोई अपने नाम पर लेना चाहे तो अवश्य ही लोग उसकी निन्दा करेंगे, क्योंकि यह अन्याय ही है। वह ईश्वर ही को कैसे पसन्द आ सकता है? कम से कम जिसका सच्चा माल है वह हमें क्यों और कैसे पचने देगा? बात तो स्पष्ट ही है कि दूसरे के माल को हम कितना ही अपना अपना कह कर उसे छाती से छिपावें तथापि उसका सच्चा मालिक हमें ढूंढ़ लेगा और हमें पीट कर वह अपना माल अवश्य ही छीन लेगा। तो फिर इस प्रकार का तमाशा करने में क्या मजा आई? इस प्रकार, इस कृति में एक तो पागलपन और दूसरा अन्याय भी है, यह बात सिद्ध है। तीसरे इसमें हानि भी बहुत है। देखिये, संसार में नित्य–नहीं नहीं क्षण क्षण पर–दुःख और शोक की अनेक बातें होती रहती हैं। परन्तु सच तो यह है कि जहां हमारे 'अहं-मम'-का सम्बन्ध नहीं पहुँचता वहां के सुख दुःख की बाधा हमें बिलकुल नहीं होती। परन्तु यह ममत्वसम्बन्ध चाहे थोड़ा ही क्यों न हो, जहां पहुँचा वहां के सुखदुःख का प्रभाव हमारे ऊपर तुरन्त ही पड़ता है। देह के सुखदुःख जो जीव को बाधा करते हैं उसका भी कारण देहसम्बन्धी ममत्व ही है। इस प्रकार का ममत्व, अर्थात् उसका मूलभूत जो अहंत्व अथवा अहंकार है वही सब अनर्थों का बीज है और इसी बात ध्यान में रख कर सदा तत्पर परमात्मा अर्जुन से कहता है कि विहित कर्म भी अहंकार छोड़ कर ही करना चाहिए तभी वह बाधा नहीं करेगा।

इन तीन बातों को छोड़ कर अहंकारत्याग का और चौथा भी एक हेतु है। वह यह कि अहंकार, यह बड़ा बदमाश है, और जब तक यह इस देह से दूर नहीं किया जायगा तब तक, चाहे साधु काम को ही आप आरम्भ क्यों न कीजिए, तथापि इस धाम में शान्ति नहीं आ सकती, और इसी लिए पहले इसे दूर हटाना चाहिये। अहंकार ऐसा बदमाश है–सो उसका चेहरा अच्छी तरह देखने से मालूम हो जायगा। 'अ-ह-कार' में तीन पद हैं। पहला 'अ'। इसका अर्थ है [illegible]। दूसरा 'ह'। यह [illegible] है और 'कार' का अर्थ [illegible] है। अर्थात अहंकार वह [illegible] है जो [illegible] है। पाण्डवों के समय में पौण्ड्रक वासुदेव, जिस प्रकार मूर्खता से यह प्रकट करता कि, श्रीकृष्ण की जगह मैं ही वासुदेव हूं, उसी प्रकार यह अहंकाररूप बदमाश अपने ही को परमेश्वर कहलाता है। ([illegible]) और सच्चे परमात्मस्वरूप के विषय में जीवों की आंखों में पट्टी बांधता है। इस लिए भगवान अर्जुन से कहते हैं कि इस बदमाश का डेरा डंडा पहले इस देह से उठ जाना चाहिए और तब विहित कर्म का या कर्तव्य का आरम्भ करना चाहिए। सारांश, सर्व कर्म अहंकारत्याग पूर्वक ही करना चाहिये।

## तीसरी बात–अनासक्ति।

भगवान् कहते हैं कि प्रत्येक कर्म बाधक होने के लिए जैसे अहंमत्व-कारण है वैसे ही आसक्ति भी दूसरा कारण है। और यह भी उतना ही बलवत्तम है। इसी लिए अनासक्त अथवा असक्त पुरुष के विषय में भगवान [illegible] (अ० ३ श्लोक १९) "[illegible]" (अ० [illegible] श्लोक ७) इन शब्दों के द्वारा विशेष आदर से कहते हैं। कोई कहेगा कि जब कोई काम करना ही है तब फिर अनासक्ति से क्यों करना चाहिए? आसक्ति से अर्थात् जी लगा कर, क्यों न करना चाहिए? इसका कारण यह है कि आसक्ति से काम किया गया और [illegible] यदि भोगना हो गया तो वह आसक्ति ही–कार्यहानि के लिए नहीं–मनस्ताप के लिए अथवा दुःख के लिए कारण होती है। यही काम यदि अनासक्ति से किया जाता है तो उसकी हानि [illegible] नहीं होती। इस बात का स्पष्ट प्रमाण पुराण में है। और [illegible] अनासक्ति की कुछ कुछ [illegible] श्रीकृष्ण ही के विषय में यह है। '[illegible]' [illegible] जिस श्रीकृष्ण

सरल और सुखदायक मार्ग बतला देगा ? कल्पना करो कि हमारे घर में कहीं कुछ बिगड़ गया है और हमने अपने किसी शिल्पी मित्र के पास जाकर यह समाचार बतलाया। शिल्पी ने कहा, एक युक्ति है, उस घर को जला दो और फिर उसी जगह अथवा और कहीं नवीन घर बनाओ! अब बतलाइये, इस युक्ति को लेकर हम क्या करें? अथवा दूसरा उदाहरण—हमारी उँगली में फोड़ा हुआ है; हम अपने किसी मित्र डाक्टर के पास गये। डाक्टर ने कहा, उँगली काट डालो, सब ठीक हो जायगा! अब कहिए ऐसी चतुरता से हमें क्या लाभ ? यथासम्भव उँगली की रक्षा रखते हुए, सिर्फ व्याधि दूर होने के लिए, जो वैद्य उपाय बतावेगा वही हमें—हमें क्या, सब को—पसन्द आवेगा। आज कल भी यद्यपि कुशल सर्जन चीर फाड़ करके कितने ही रोगों का परिहार करते हैं, तथापि रोगी, जहां तक हो सकता है, पहले सर्जन के पास नहीं जाता। इसी प्रकार " निजगृहात्तूर्णं निर्गम्यताम " यह यद्यपि भवभजन का उपाय है और ठीक भी है, तथापि जो यह उपदेश करेगा कि " घर बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं, घर में ही रह कर सत्कर्माचरण करो, वही उपदेशक लोगों को अधिक प्रिय होगा। पथ्य से मार डालनेवाले वैद्य की अपेक्षा मुर्दे का काम न बन्द करते हुए आराम कर देनेवाला वैद्य लोगों को अधिक प्रिय होता है और उसकी दवा चाहे कुछ मँहगी भी हो, तथापि लोग खुशी से खरीदते हैं। यह न्याय कुशल उपदेशक सदा ध्यान में रखते हैं। कहावत है कि, " यादृशस्तादृशेषु " अथवा वाग्भट्ट ने कहा है कि, " यस्य यस्य हि यो भाव तस्य तस्य हित नर । अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवश नयेत् " सारांश, लोगों के अनुसार कार्य कर के उन्हें अपने वश में करना चाहिए। यह वशीकरण की युक्ति क्या भगवान् श्रीकृष्ण के समान चतुर को सिखाने की जरूरत थी ? उनमें वह स्वाभाविक ही थी; और यही बात गीता का निरीक्षण करने पर अनुभव में आती है। अर्जुन शोक-मोह कुल होते हुए धनुष्त्याग करके जब विपण्ण होकर बैठ रहे तब भगवान् ऐसी ही युक्ति से उन्हें मार्ग पर लाये। यहां तक कि अर्जुन ने अपनी खुशी से " करिष्ये वचन तव " कबूल कर लिया। " तरति शोकमात्मवित् "—" न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशु " इत्यादि सैकड़ों वाक्य कर्म के प्रतिकूल होते हुए भी भगवान् ने कर्म का ही स्वीकार करने के लिये बड़े आग्रह के साथ अर्जुन से कहा। एक जगह तो यहां तक कह दिया कि यदि तुम मेरे कहने के मुताबिक युद्ध न करोगे तो " विनक्ष्यसि " तुम्हारा सत्यानाश होगा। भगवान् कृष्ण के समान चतुर पुरुष, और यह सर्वसिद्धान्त विरुद्ध कथन—सो भी इतने आवेश के साथ! इसे क्या कहना चाहिए? इस कथन को भ्रमात्मक कहें या भगवान् का मस्तक फिरा हुआ समझें? एक नवप्रसूत स्त्री को वायुरोग हो गया और एक धन्वतरि के समान वैद्यराज कहता है कि इसे पहले अमरूद, खीरे, शरीफे, इत्यादि देने चाहिए—सो लावो। घड़े का ठंढा पानी पीने के लिए लाओ। अब कहिये इसे क्या कहें? इसका उत्तर इतना ही है कि उस चतुर वैद्य की उसके साथ ही ऐसी कोई योजना होगी कि जिससे अमरूद और खीरों का बाधक धर्म दूर होता होगा, और यही बात सच है। अब भगवान् कृष्ण की कृति का भी इसी दृष्टि से समर्थन करना चाहिए।

## कर्म का महत्व ।

प्राणिमात्र को, कम से कम संसारी जीव को, कर्म-विरहित रहने के लिए कहना मानो मछली को पानी के बाहर जीने के लिए कहना है। अर्थात् मछली के बीमार होने पर पानी में ही उसकी स्थिति रख कर, उसे आराम करनेवाला वैद्य जिस प्रकार होशियार माना जायगा उसी प्रकार मानवी जीवों की कर्मों में स्थिति रख कर उन्हें मुक्तिमार्ग दिखला देनेवाला ही सद्गुरु मानवी जीवों को अधिक प्रिय होगा, और इसी कारण भगवान् श्रीकृष्ण का यह गीतारूप वाक्य उत्तर ध्रुव से लेकर दक्षिण ध्रुव तक भिन्न भिन्न जातियों के, भिन्न भिन्न वर्णों के, भिन्न भिन्न अधिकारों के और भिन्न भिन्न धर्मों के भी लोगों को आदरणीय हुआ है। हमें यहां पर यह स्पष्ट बतला देना चाहिए कि यह कर्मयोगरूपी जो अजीब दवा गीता में परमात्मा ने हम जीवों को बतला दी है उसे बतलाने में एक परमात्मा ही समर्थ है। जीवों में यह सामर्थ्य ही नहीं है। कोई कहेगा कि इसमें कठिन क्या है? इसका उत्तर यही है कि जैसे आग में रह कर शरीर को जलने न देना और पानी में रह कर भीगने न देना करीब करीब असम्भव ही है उसी प्रकार कर्म में रह कर और कर्माचरण करते हुए कर्म की बाधा न होने देना भी सचमुच ही विचित्र बात है। हमने पानी और अग्नि के जो ऊपर दृष्टान्त लिये हैं उसका कारण यह है कि दाहकता जैसे अग्नि का स्वभावसिद्ध अव्यभिचारी धर्म ठहरा उसी प्रकार सुखदुःख, शोकमोह और अन्त में अनेक प्रकार के बन्धन उत्पन्न करना भी तो कर्म का मूल स्वभाव ही ठहरा। अतएव जलता हुआ अंगार हाथ में लेना और उसकी दाहकता भासने न देना जिस प्रकार साधारण वैज्ञानिक का काम नहीं है उसी प्रकार कर्म का बाधकत्व नाश करना भी प्राकृत बुद्धि से परे है।

परन्तु परम कारुणिक परमात्मा हम जीवों का ऐसा ही अनहित क्या करेगा? उसकी दया सदा जाग्रत है, सदा तरुण है, सदा उत्सुक है। परमात्मा ने ज्योंही देखा कि हम कर्म न जाने से एक शोक-मोह के संकट सह रहे हैं त्योंही प्रकट होकर उस वैद्य ने अलौकिक बुद्धिमत्ता प्रकट करके उस स्थिति में हमें शोक मोहातीत होने का मार्ग दिखला दिया। यह करनी सामान्य नहीं—यह विष का अमृत करना है। और यह करना परमात्मा ही जानता है। " कर्तु, अकर्तु, अन्यथा कर्तु " यह जिसका सामर्थ्य है वही ऐसी युक्ति की योजना कर सकता है।

अस्तु; परमात्मा की योजकता अथवा उसकी बुद्धि की मीमांसा करना यद्यपि हमारी शक्ति से बाहर है, तथापि केवल कौतुक के लिए, उसीकी प्रेरणा से, इसका थोड़ा विचार कर देखना चाहिए। कर्म से कर्मातीत होना मानो मरे हुए प्राणी को सोमल से जीवित करना ही है। परन्तु कुछ कुशल वैद्य जैसे यह क्रिया जानते हैं और सोमल के बाधक गुण किसी संस्कार से निकाल कर उसे अत्यन्त गुणकारक बना लेते हैं उसी प्रकार परमात्मा ने ऐसे नीच कर्म की नीचता बड़ी युक्ति से, प्रमाण से, और डौल से, निकाल डाली है। चतुर और अन्य पुरुष की दृष्टि में जो अन्तर है सो यही है। संसार में अनेक वस्तुएं बाह्य दृष्टि को बड़ी घातक देख पड़ती हैं और साधारण बुद्धि के लोग उनकी अवहेलना भी करते हैं। परन्तु कुशाग्र बुद्धि के पुरुष उन पदार्थों की योग्य मीमांसा करके उनके ग्राह्य और त्याज्य भागों का पृथक्करण करते हैं, तथा त्याज्य भाग छोड़ कर बचो हुई वस्तुओं से लाभ उठा लेते हैं। सोमल का उदाहरण ऊपर दिया ही गया है। वैद्यशास्त्र के ग्रन्थ पढ़ने से-फिर चाहे वे देशी वैद्यक के हों, चाहे विदेशी के हों-जान पड़ता है कि बड़े बड़े वैद्य रत्नों का जो चमत्कार हुआ है सो, जिनके नामस्मरण के साथ ही भय उत्पन्न होता है उन विषों और उपविषों के बल पर ही हुआ है। सचमुच ही यदि सर्प में विष न होता और वत्सलता उसमें यदि कुछ कम होती तो कितनी ही विलासी युवतियों ने उसे अपना कण्ठहार बना लिया होता, और जिनमें विष के परिहार करने का अथवा विष से बाधित न होने का सामर्थ्य है उन महादेवजी ने स्पष्टतया सर्प को अपना कण्ठभूषण बनाया भी है और उनके भाई लक्ष्मीपति विष्णु ने तो गद्दे का गद्दा छोड़ कर शीतल और चिकने सर्प पर ही लेटना स्वीकार किया है। इसी न्याय से परमात्मा ने भी, स्वयं अजन्मा और अकर्मा रहते हुए, यह बात जग भर मानो एक ओर रख कर, सामान्य दृष्टि के लिए जो बाधक बन कर डरानेवाला है उसी कर्म को, बड़े उत्साह के साथ स्वीकार किया है और अपने प्रियतम शिष्य तथा सुहृद् अर्जुन से आग्रहपूर्वक कहा है " कुरु कर्मैव तस्मात्त्व । कर्मज्यायो ह्यकर्मण " (इस लिए तू कर्म ही कर, क्योंकि अकर्म से कर्म ही अच्छा) और उन्हें विश्वास दिलाने के लिए वे अपनी ओर संकेत करके कहते हैं, " न मे पार्थास्ति कर्तव्य त्रिषु लोकेषु किंचन । नानवाप्तमवाप्तव्य वर्त एव च कर्मणि " (मेरा इस त्रैलोक्य में मेरे ऊपर किसीने यह भार नहीं रखा कि तू अमुक एक कार्य कर इसके सिवाय मुझे प्राप्त कर लेने योग्य कोई वस्तु भी नहीं तिस पर भी मैं जो घड़ी भर भी खाली नहीं बैठता, इसका मतलब क्या है?) मैं जो सकलाप्तकाम हूं उसकी तो यह दशा है; फिर, हे अर्जुन तुम्हारे समान संसारी यदि हाथ पर हाथ रख कर चुप बैठ रहेगा तो काम कैसे चलेगा? यही नहीं किन्तु भगवान् यहां तक कहते हैं, " शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मण " (तुम कर्म छोड़ दोगे तो जीना भी कठिन होगा।)

इस प्रकार, अर्जुन की स्थिति का स्वरूप उसके आगे रख कर, अपना उदाहरण देकर, नाना युक्तियों से, भगवान् कृष्ण अर्जुन को कर्म में ढकेल रहे हैं। कहावत है कि महापुरुष अपने समान ही अपने शरणागत को भी बनाते हैं। प्रभु 'करके भी अकर्ता हैं,' उसी प्रकार अर्जुन भी ' करके अकर्ता हो ' यही प्रभु का हेतु है। और गीता के उपदेश में यही कुशलता है। और ' शुभाशुभफलैरेव मोक्ष्यसे कर्मबन्धनै ," " कर्मण्यभिप्रवृत्तोपि नैव किंचित् करोति स " " कृत्वाऽपि न निबध्यते, " इत्यादि वाक्यों से प्रभु यह दिखलाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि अर्जुन में भी हमारी ही तरह " करके भी अकर्तापन ' किस प्रकार आ सकता है। ठीक ही है, जो सद्गुरु शिष्य को तत्काल अपने समान बना सकता है उसे अन्य मार्ग कैसे रुच सकता है? क्योंकि अन्य मार्ग दिखलाना मानो वचना करना ही है। परन्तु ये बातें प्राकृत पुरुषों की हैं। सद्गुरु की प्रतिष्ठा ही दूसरी है। परमात्मा के समान सद्गुरु जिसे अपनी शरण में लेता है, फिर वह चाहे कोई भी हो (" स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा ," " अपिचेत्सुदुराचारो॰ " जब तक उसे आत्मस्वरूप में नहीं मिला लेता तब तक वह कदापि नहीं समझता कि मैंने अपना कर्तव्य किया। और इसी लिए प्रत्यक्ष शंकरावतार जगद्गुरु ने अपने सुप्रसिद्ध शतश्लोकी ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कहा है, " दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातु । स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्य स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारम् "— अर्थात् सद्गुरु के लिए पारस की भी उपमा लग नहीं सकती, क्योंकि पारस लोहे को सोना बनाता है; परन्तु प्रति पारस नहीं बनाता, किन्तु सद्गुरु अपने शिष्य को

प्रति सद्गुरु ही बना देता है। यह उदारता तो देखिये! इस योग्यता का भी कहीं ठिकाना है। यह वात्सल्य ही अपूर्व है! पिता तो अपने रत्नभांडार की कुंजी अपने आत्मबिम्ब (पुत्र) को ही सौंपता है, परन्तु सद्गुरु राजा-रंक, आप पर, बालवृद्ध, इत्यादि सब भेद दृष्टि छोड़ कर प्रत्येक जीव को अपने आत्मभांडार की कुंजी दे देता है। ऐसा परमोदार और परकार्यरत महात्मा वञ्चक कभी नहीं हो सकता। ऐसा सद्गुरु यदि अर्जुन के समान प्रिय शिष्य से जब कि वह हाथ पर हाथ रक्खे विषण्ण और तटस्थ बैठा है, प्रवाह में—कर्मरूप प्रवाह में—कूद पड़ने के लिए, आग्रहपूर्वक, कहता है तो अवश्य ही वह उसे डुबाने की गरज से नहीं कहता। प्रवाह तो बहुत प्रबल है और कूदनेवाला तो तैरना जानता नहीं, फिर वह पार कैसे हो? पर इससे समझना चाहिए कि जो कूदने के लिए उससे कहता है उसने भी तो कोई उपाय साथ ही सोच लिया होगा। इसी न्याय से, ऊपर ऊपर देखने से, कर्म, जो जीवों को जन्ममरण के चक्कर में डालता है, उसके प्रवाह में जब भगवान् अर्जुन को खींचे लिये जा रहे हैं तब, अब यह देखना चाहिए कि भगवान् ने ऐसा कौन सा उपाय कर रक्खा है कि जिससे अर्जुन कर्मप्रवाह में पड़ कर भी उसके भँवर में नहीं पड़ सकता, अथवा गोता नहीं खा सकता।

कोई कहेगा कि भगवान् की करनी का न्याय करने बैठना हमारी योग्यता के बाहर की बात है। उसके कथन को सुन कर उसके मुताबिक चलना ही हमारी मर्यादा है। यह उत्तर जीवों को शोभने योग्य ही है। सचमुच उनका इतना ही अधिकार है कि वे भगवान के नियमों का पालन करें, परन्तु परमेश्वर न्यायी और लोकबन्धु हैं; अतएव लोगों के लिए वह जो नियम बनाता है उनके विषय में, प्रत्येक न्यायी राजा की तरह, उसकी यह स्पष्ट इच्छा—नहीं नहीं स्पष्ट आज्ञा भी—है कि लोग उन नियमों को तत्वतः समझ लें और फिर उनके अनुसार बर्ताव करें। भगवान् कहते हैं कि मेरी कृति अथवा मेरे वचन 'बाबावाक्य प्रमाण' के न्याय से जीवों को बिलकुल न मान लेना चाहिए; किन्तु उनको अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए (जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।) अर्थात् परमात्मा का (मेरा) जो कर्म है उसे जीवों को खूब छानबीन करके समझ लेना चाहिए; इस प्रकार समझ लेने से उनका पुनर्जन्म न रहेगा। अर्थात् प्रभु का यह हेतु ही देख पड़ता है कि हमारी कृति और हमारी आज्ञाओं को अच्छी तरह परख लेना चाहिए, भगवान् की इसी आज्ञा के अनुसार अब हम इस बात का विचार करेंगे कि भगवान् ने अर्जुन को जो यह कर्मयोग बतलाया वह उसके स्वभावानुसार बन्धक न होकर तारक क्यों हुआ।

भगवान ने सम्पूर्ण गीता में और विशेष कर प्रथम षटध्यायी में कर्म पर जितने वाक्य कहे हैं उन सब का एकत्र विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अर्जुन यदि चार या पाँच शर्तों का पालन करके कर्माचरण करे तो कर्मबाधक न होगा, किन्तु तारक होगा। वे शर्तें ये हैं। जो काम करना हो वह निरहंकारता से, आसक्ति और फलाकांक्षारहित होकर ब्रह्मार्पण रूप से करना चाहिए और वह कर्म विहित होना चाहिए। इस प्रकार की ये चार अथवा पाँच शर्तें हैं। अब हम यह देखते हैं कि ये शर्तें हमारे व्यवहारी न्याय से भी विचारपूर्ण और इष्टार्थपोषक किस प्रकार हैं! पहली शर्त यह समझिये कि जो कर्म करना हो वह विहित अथवा वेद शास्त्र का कहा हुआ होना चाहिए। अतएव जीवों को विहित कर्मानुष्ठान बतलाना मानो अंधे-लूलों को भारी राजमार्ग दिखलाना है और ऐसे मार्ग के बिना जीवों का स्पष्ट ही कष्ट होगा। क्योंकि भगवान कहते हैं, 'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः" "गहना कर्मणो गतिः" अर्थात् जीव यदि केवल अपनी ही बुद्धि के बल पर कर्म का गहन मार्ग ढूँढने लगें तो बड़े बड़े चतुरों की भी दाल नहीं गल सकती। ऐसी दशा में सब प्रकार से साफ किया हुआ मार्ग ही सर्वसाधारण लोगों को सुखकर और सुगम होगा। और इसी कारण परमात्मा ने जीवों के अधिकार भेदानुसार वर्णाश्रमधर्मरूप से यह कर्म की सड़क निकाल दी है। इस सड़क को पकड़ कर चलने से जीव बिन चूक इष्टस्थल को पहुँचेगा। यह स्पष्ट ही है। अब, भगवान् को यह समझा देने में भी इनकार नहीं कि यह रास्ता ऐसा क्यों निकाला, परन्तु हमें इस बात अवकाश नहीं। इस कारण परमात्मा के आप्तत्व पर विश्वास रख कर और यह देख कर कि, जो सड़क निकाली है वह हमारे हित की है और उचित भी है, हमें विहिताचरण का निश्चय करके आगे के विषय की ओर चलना चाहिए।

## दूसरी बात—निरहंकारता।

भगवान् कहते हैं कि विहित कर्म भी निरहंकार बुद्धि से होना चाहिए। कारण, अहंकार से करना एक तो अन्याय की बात है और दूसरे उसमें कोई लाभ भी नहीं। देखिये भगवान् "प्रकृतेः क्रियमाणानि' इस श्लोक से स्पष्ट करते हैं कि भैया, जीवों के हाथ से जितना कर्म होता है उतना सब, वास्तव में देखिये तो, प्रकृति के सत्वरजस्तमात्मक गुणों की ओर से होता है, परन्तु ये मूढ़ जीव यह कह कर कि, " मैंने किया, मैंने किया, " अहंकारवश होकर उसका कर्तृत्व अपने ऊपर लाद लेते हैं। अवश्य ही यह काम अन्याय और मूर्खता का भी है। एक कहावत है कि जब लड़का अपने बल खिसकता है तब उसे कनिया लेने की क्या जरूरत? बस, इसी तरह प्रकृति के गुण जब आप ही आप अपने सब काम करते रहते हैं तब उनका बोझा अपने ऊपर लेना क्या जीव का पागलपन नहीं है? खैर, पागलपन एक बार सहन किया जा सकता है, पर उसमें जो अन्याय है वह कैसे सहन हो? और करनेवाले को चाहे सहन भी हो गया, तथापि दूसरा कैसे उसे पचने देगा? अन्याय कैसा? अच्छा, देखिये, भगवान् श्रीकृष्ण के समान समर्थ हमसे साफ तौर पर कह रहा है कि सारी क्रियाएं प्रकृति के गुण से होती हैं और वर्तमान समय के विज्ञानवेत्ताओं ने भी यह स्वीकार किया है कि शरीर में इन्-वालंटरी, अर्थात् अनैच्छिक कृत्य व्यापार है—अर्थात् सारी क्रिया किसी दूसरे की जायदाद है। वह दूसरे की मिहनत का फल है। उस पर स्वयं अपनी छाप मारना मानो स्पष्ट परद्रव्यापहार करना ही है। पड़ोसिनी का बच्चा यदि कोई अपने नाम पर लेना चाहे तो अवश्य ही लोग उसकी निन्दा करेंगे, क्योंकि यह अन्याय ही है। वह ईश्वर ही को कैसे पसन्द आ सकता है? कम से कम जिसका सच्चा माल है वह हमें क्यों और कैसे पचने देगा? बात तो स्पष्ट ही है कि दूसरे के माल को हम कितना ही अपना अपना कह कर उसे छाती से छिपावें, तथापि उसका सच्चा मालिक हमें ढूँढ लेगा और हमें पीट कर वह अपना माल अवश्य ही छीन लेगा। तो फिर इस प्रकार का तमाशा करने में क्या मजा आई? इस प्रकार, इस कृति में एक तो पागलपन और दूसरा अन्याय भी है, यह बात सिद्ध है। तीसरे इसमें हानि भी बहुत है। देखिये, संसार में नित्य—नहीं नहीं क्षण क्षण पर—दुःख और शोक की अनेक बातें होती रहती हैं। परन्तु सच तो यह है कि जहां हमारे अहं-मम-का सम्बन्ध नहीं पहुँचता वहां के सुख दुःख की बाधा हमें बिलकुल नहीं होती। परन्तु यह ममत्वसम्बन्ध, चाहे थोड़ा ही क्यों न हो, जहां पहुँचा वहां के सुखदुःख का प्रभाव हमारे ऊपर तुरन्त ही पड़ता है। देह के सुखदुख जो जीव को बाधा करते हैं उसका भी कारण देहसम्बन्धी ममत्व ही है। इस प्रकार का ममत्व, अर्थात उसका मूलभूत जो अहंत्व अथवा अहंकार है यही सब अनर्थों का बीज है और यही बात ध्यान में रख कर महा तत्वज्ञ परमात्मा अर्जुन से कहता है कि विहित कर्म भी अहंकार छोड़ कर ही करना चाहिए, तभी वह बाधा नहीं करेगा।

इन तीन बातों को छोड़ कर अहंकारत्याग का और चौथा भी एक हेतु है। वह यह कि, अहंकार, यह बड़ा बदमाश है; और जब तक यह इस क्षेत्र से दूर नहीं किया जायगा तब तक, चाहे अच्छे काम का ही आप आरम्भ क्यों न कीजिए, तथापि इस क्षेत्र में शान्ति नहीं हो सकती, और इसी लिए पहले इसे दूर हटाना चाहिये। अहंकार कैसा बदमाश है—सो उसका चेहरा अच्छी तरह देखने से मालूम हो जायगा। अ-हं-कार में तीन पद हैं। पहला अ। इसका अर्थ है निषेध करना। दूसरा ह। यह हकार परमात्मा का एकदेश से बोधक है और कार का अर्थ करनेवाला है। अर्थात् अहंकार वह भय है जो परमात्मस्वरूप पर ढकन लगाता है। पांडवों के समय में पौंड्रक वासुदेव, जिस प्रकार मूर्खता से यह प्रकट करता कि, श्रीकृष्ण को जगत में ही वासुदेव है, उसी प्रकार यह अहंकाररूप बदमाश अपने ही को परमेश्वर कहलाता है। (ईश्वरोऽहमहं भोगी) और सच्चे परमात्मस्वरूप के विषय में जीवों की आँखों में पट्टी बाँधता है। इस लिये भगवान अर्जुन से कहते हैं कि इस बदमाश का डेरा डंडा पहले इस क्षेत्र से उठ जाना चाहिए और तब विहित कर्म का या कर्तव्य का आरम्भ करना चाहिए। सारांश, सर्व कर्म अहंकारत्याग पूर्वक ही करना चाहिये।

## तीसरी बात—अनासक्ति।

भगवान् कहते हैं कि प्रत्येक कर्म बाधक होने के लिए जैसे अहं-ममत्व-कारण है वैसे ही आसक्ति भी दूसरा कारण है। और यह भी उतना ही जबरदस्त है। इसी लिए अनासक्त अथवा असक्त पुरुष के विषय में भगवान् "असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः (अ० ३ श्लोक १९)" "असक्तः स विशिष्यते (अ० ३ श्लोक ७)" इन श्लोकों के द्वारा विशेष आदर से कहते हैं। कोई कहेगा कि जब कोई बात करना ही है तब फिर अनासक्ति से क्यों करना चाहिए? आसक्ति से अर्थात् जीजान लगा कर, क्यों न करनी चाहिए? इसका कारण यह है कि आसक्ति से काम किया गया और मौके पर यदि धोखा हो गया तो यह आसक्ति ही—कार्यहानि के लिए नहीं—मनस्ताप के लिए अथवा दुःख के लिए कारण होती है। वही काम यदि अनासक्ति से किया जाता है तो उसकी हानि अपने लिए बाधक नहीं होती। इस बात का स्पष्ट प्रमाण पुराण में है। और अर्जुन को इस अनासक्ति की मुख्य कुंजी दिखा देनेवाले श्रीकृष्ण ही के विषय में वह है। 'चोर-जार-शिखामणि' कहकर जिस श्रीकृष्ण

की लोगों ने निन्दा की गोपियों के साथ रमण करने के विषय में जिस श्रीकृष्ण की शिकायत हुई उसी श्रीकृष्ण को यमुना नदी ने निर्मलता का सर्टिफिकेट (प्रमाणपत्र) दे दिया। सोलह सहस्र स्त्रियों के साथ भोग करके भी ब्रह्मचारी रहना श्रीकृष्ण का "करके भी अकर्तापन" है। और यही आशय मन में रख कर भगवान '{आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्}' (अ० २।७०) इस श्लोक में कहते हैं कि (स शांतिमाप्नोति न कामकामी)-अर्थात् समुद्र के समान सदैव अचल भरा हुआ रह कर जो प्रारब्ध से प्राप्त भोग भोगता है उसे उस भोग से अथवा काम से कुछ बाधा नहीं होती। परन्तु वही यदि उन भोगों के विषय में कामी अर्थात् आसक्त रहेगा तो उसे शान्ति सुख नहीं मिलेगा। सारांश, इन्द्रियों के वश में होकर यदि भोग के बिना चैन न पड़ने लगी तो समझ लो कि यह एक प्रकार की मौत ही है। अतएव आसक्तिरहित अथवा अनासक्त रह कर कर्म करते रहना चाहिए। कर्म की बाधा से बचने के लिए परमात्मा ने अर्जुन से यही तीसरी बात बतलाई।

## चौथी बात—फलाकांक्षा त्याग।

भगवान् कहते हैं कि ऊपर की तीनों बातें सम्हाल कर भी तू यदि फलाकांक्षा, अर्थात् यह आशा या इच्छा रखेगा कि मैं जो अमुक कर्म करता हूं उसका अवश्य ही मुझे अमुक फल मिलेगा, तो यह भी ठीक नहीं होगा और इसी लिए कृष्ण कहते हैं-"मा कर्मफलहेतुर्भूः" (अ० २।४७) अर्थात् कर्म के फल के विषय में हेतु मत धरो। अथवा आगे प्राप्त होनेवाला फल ही अपने कर्म का प्रेरक न होने दो। इस पर कोई कहेगा हम यदि अपने लगाये हुए वृक्ष के फल की इच्छा करें तो इसमें कौन सा अन्याय है? इसमें क्या हम किसीके बाप की चोरी करते हैं? सचमुच इसमें अन्याय या किसी की चोरी नहीं। परन्तु ऐसा करना बहुधा कर्ता के लिए बहुत हानिकारक होता है और इस लिए वह त्याज्य है। देखिये कि फलाकांक्षा के रखने से कर्मसिद्धि-विषयक प्रयत्न बहुधा फल के हिसाब से ही होता है-अर्थात् एक प्रकार से वह मर्यादित ही होता है-अर्थात् जकड़ा हुआ होता है। कहावत है कि "जैसा दाम वैसा काम" परन्तु बदला की इच्छा न रखते हुए यदि कोई किसी-का काम करेगा (जैसे कोई शिष्य भक्ति से अपने गुरु का) तो ऐसी दशा में दाम का विचार काम में विघ्न नहीं डालेगा। इसी लिए जो लोग व्यवहार में इतने कठोर होते हैं कि किसीके बदले में एक पाई की भी हानि नहीं सहन कर सकते वही किसी धर्मकृत्य के करते समय मनमाना धन देते हैं। (यहां यह समझना चाहिए कि उस सत्कृत्य के भावी फल की ओर उनकी दृष्टि नहीं) बदले का प्रश्न आने पर मर्यादा आती ही है। और मर्यादा के आने पर अकुंठित गति समाप्त हो जाती है। बहुत बार भावी फल अथवा उसकी इच्छा का स्वरूप मृग-तृष्णा से अधिक नहीं होता। इससे यदि फल की इच्छा तोड़ कर ही काम किया जाय तो उसमें क्या हानि है? हानि क्यों— उलटे लाभ ही होगा। उदाहरणार्थ कल्पना करो कि —दूर देश के दो याचक एक राजधानी में गये। उनमें से एक याचक पहले एक बार उस बस्ती में आ चुका था और उसे यह मालूम था कि वहां राजगृह में दानधर्म, नित्यदान कैसे कैसे होते हैं, और दूसरे याचक को उस राजदरबार के विषय में कुछ भी जानकारी नहीं है। वे दोनों राजमहल में गये और दोनों को पच्चीस पच्चीस रुपये नित्यदान मिला। यह देख कर अपरिचित याचक के मन में आनन्द की लहरें उठने लगीं। परन्तु परिचित याचक की चेष्टा आनन्दित नहीं देख पड़ी, किन्तु कुछ उदास ही रही। इस भेद का कारण यह है कि अपरिचित को यदि पांच ही रुपये मिल जाते तो उसके लिए बड़ी बात थी। परन्तु पांच की जगह जब उसे पच्चीस मिल गये तब उसे अवश्य ही पँचगुना आनन्द हुआ। परन्तु दूसरे भिक्षुक को आनन्द होना तो दूर रहा, किन्तु उसे उदासीनता मालूम हुई। इसका कारण यह है कि पहिली बार इसी राजघर में उसे पचास रुपये का नित्यदान मिला था, और वह इस आनन्द में था कि इस बार भी उतने ही रुपये मिलेंगे, परन्तु इस बार जब उसे पच्चीस ही रुपये मिले तब उसके आनन्द पर गाज पड़ गई और उसे जान पड़ा कि हम धोखा खा गये। अस्तु। उस भिक्षुक को बुरा मालूम होना स्वाभाविक ही बात है। परन्तु हमें इससे क्या शिक्षा मिलती है सो देखना चाहिए। वही पच्चीस रुपये पाकर एक तो आनन्द के सागर में मग्न है और दूसरा खिन्न है—इसमें क्या बात है? क्या यह रुपयों का दोष है? नहीं एक ने आगे से ही फलेच्छा बांधी थी और उसका स्वरूप भी नियमित कर लिया था; अतएव उसमें त्रुटि पड़ते ही उसे सुख की जगह दुःख ही हुआ। परन्तु दूसरे की यह स्थिति थी कि जो कुछ मिलेगा वह लाभ ही है। अतएव उसे बड़ा आनन्द हुआ। अस्तु; जब यही हाल है तब फिर पहले से फलेच्छा बांध कर पीछे से दुःख मोल लेना पागलपन नहीं तो क्या है? इससे यदि फलेच्छा छोड़ कर सिर्फ कर्तव्य-परता की ही दृष्टि से कर्म किया जाय तो इसमें क्या हानि है? कदापि कोई हानि नहीं, और यही हिसाब लगा कर भगवान् कृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य को कर्म की यह चौथी कुंजी बतलाई।

ऊपर बतलाई हुई थी। पर यहाँ पर यह एक बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि, फल के विषय में पूर्व संकल्प करके क्रिया का आरम्भ करने से उसमें सदोषता निर्दोषता पैदा होती है। आज कल इस देश में जो पिनल कोड जारी है उस पर ध्यान देने पर भी ज्ञात होगा कि क्रियाओं का सदोषत्व अथवा निर्दोषत्व उसके फल अथवा परिणाम पर अवलम्बित नहीं है किन्तु वह उस क्रिया के पूर्वगामी अथवा सहचारी संकल्प के कारण पर ही अवलम्बित है। उदाहरणार्थ—एक मनुष्य लकड़ी काटने की गरज से जंगल में जा कर वृक्ष काट रहा था। अकस्मात उसकी कुल्हाड़ी बेंट से निकल कर एक मनुष्य के सिर में लगी और वह मर गया। यद्यपि परिणाम दृष्टि से देखने पर यह मनुष्यवध उस लकड़िहार की क्रिया का फल है। तथापि पिनलकोड के समान कठोर कायदा भी उस लकड़िहार को सदोष नहीं ठहराता। क्योंकि कायदा उस कृति के परिणाम की ओर नहीं देखता; किन्तु संकल्प की ओर देखता है। और यह देख कर कि मनुष्य के मारने का संकल्प न था, यह बात केवल अचानक हो गई, वह कर्ता को निरपराधी ठहराता है। इसके विरुद्ध इसी कायदे में चोरी के विफल यत्न करने का एक उदाहरण दिया है, वह ऐसा है—कोई एक मनुष्य चोरी के हेतु से किसी की जेब में हाथ डालता है। परन्तु योगायोग से उसे उस जेब में कुछ भी नहीं मिलता। तथापि कानून ऐसे मनुष्य को चोरी के यत्न के लिए अपराधी ठहराता है। कानून कहता है कि संकल्प की दृष्टि से चोर ने अवश्य प्रयत्न किया। योगायोग से फल नहीं मिला परन्तु इससे चोरी करनेवाला सज्जन नहीं कहा जा सकता। अर्थात् कायदा उसे इतने ही से दोषी ठहराता है कि उसका संकल्प दुष्ट है। और यह बात सभी स्वीकार करेंगे कि कानून का उक्त काम सर्वथा योग्य है। इस प्रकार प्रत्यक्ष फल की सदोषता-निर्दोषता की अपेक्षा भी संकल्प की सदोषता-निर्दोषता से क्रिया का साधक-बाधकपन निश्चय किया जाता है और यह उचित ही है। यही ध्यान में लाकर भगवान् ( [illegible] । अ० ५।२४ ) इत्यादि वाक्यों से अर्जुन को सिर्फ फल की ही आशा छोड़ने के लिए नहीं कहते, किन्तु उसके भी आगे जाकर यह भी कहते हैं कि फल के विषय में संकल्प का अंकुर ही चित्तवृत्ति में न उठने देना चाहिए। इस प्रकार से कर्म करके भी अकर्तापन अथवा निर्बाधपन के साधने की चौथी युक्ति बतलाते हैं।

## पांचवीं बात।

उपर्युक्त चारों बातें सम्हाल कर तब से अन्त की एक पांचवीं बात यत्करोषि, यदश्नासि (अ० ९।२७) "ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः (अ० ४।२४)" "सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः (अ० १८।५६)" इत्यादि श्लोकों से भगवान् अर्जुन से जगह जगह बतलाते हैं कि तू जो जो कुछ कर वह सब मुझे अर्पण कर-अर्थात् ब्रह्मार्पण कर। उनके इस कथन का हेतु क्या होना चाहिए? हेतु स्पष्ट ही है कि-भगवान् कहते हैं कि कर्म मानो बकासुर राक्षस है, जो सब के सामने मुहँ बाये खड़ा है। यह बड़े जोर से दबाता है, इसके पञ्जे से कोई छूटा नहीं। परन्तु इसकी बाधा नष्ट करने का एक ही—केवल एक ही—उपाय है और वह उपाय भीम से उसका सामना करा देना है। भीम परमात्मा ही को समझिये। श्रीविष्णुसहस्रनाम में 'भीम' भी परमात्मा को कहा गया है। इस भीम से कर्मरूप बकासुर का सामना करा देने से उसके छक्के छूट जाते हैं।

अथवा, भगवान् कहते हैं कि कर्म मानो भस्मासुर है। यह असुर अपने कर्ता, अर्थात् अपने निर्माण करनेवाले के ही मस्तक पर हाथ रखकर उसे भस्म करने का उद्योग कर रहा है। परन्तु उसे धोखा देकर उसके हाथ से स्वयं उसीको भस्म कराने का युक्ति जिसे मालूम है उसका सामना करा देने से इस भस्मासुर का संकट टाला जा सकता है। परन्तु यह युक्ति सिर्फ एक विष्णु (सर्वव्यापक परमात्मा) ही को मालूम है। सारांश, सब कर्म परमात्मा को अर्पण करना ही उस कर्मरूपी भस्मासुर के पंजे से छूटने का सच्चा उपाय है।

अथवा भगवान कहते हैं कि कर्म एक विशाल सर्प है। उसकी चाल सदा कुटिल रहती है। परन्तु वही जिस समय अपने बिल में घुसता है उस समय जिस प्रकार सरल गति उसकी होती है उसी प्रकार कुटिल कर्म ब्रह्म की ओर जाते समय कुटिलता छोड़ देता है।

अथवा भगवान् कहते हैं, कर्म एक बड़ी घातक पहाड़ी नदी है। यह जगह जगह कलकलाती और भौंराती रहती है, और सदा टेढ़ी मेढ़ी चाल से चलती रहती है। परन्तु परमात्मरूप समुद्र से संगम हो जाने पर वह अपनी सारी दुष्ट चालें छोड़ देती है, यही नहीं वरन् अपना नाम ग्राम भी छोड़ करके केवल सिंधुरूप ही हो जाती है। सारांश, कर्म ब्रह्मार्पण करने से कर्म भी ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं और उनकी बाधकता नष्ट हो जाती है। कर्म अथवा क्रिया एक बेढँगी और तरुण लड़की है। यह बड़ी हूस और अल्हड़ तथा अनिवार्य है। यह आज तक बहुधा मैके में ही रही है। अतएव पतिगृह में रहने से यह घबड़ाती भी है। परन्तु लोकाचार की ओर देखकर उसकी माता उसका अंचल पकड़ कर उसे पतिगृह में छोड़ आती है और उसकी सखियों के द्वारा उसे सिखवा कर उसे

पति के निकट जाने के विषय में कहलाती है, परन्तु वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ती। तब वह अन्त में क्या करती है कि सखियों के द्वारा उसे बलात् पति के पास ढकेलवा करके लौट आती है। बाद को वह सुनती है कि अब हमारी लड़की मैके आना भी स्वीकार नहीं करती। यह सुन कर वह बहुत आनन्दित होती है। इसी न्याय से पहले पहल कर्माचरण के समय जीवों की काम्य अथवा स्वैर-प्रवृत्ति अनिवार्य होती है। परन्तु सत्पुरुषों के बोध से --नहीं नहीं जबरदस्ती से —कर्म ब्रह्मार्पण करने की आदत पड़ जाने पर फिर स्वैर प्रवृत्ति आप ही आप लय हो जाती है।

इस प्रकार हमने, भगवान् का आशय मन में रख कर, ऊपर दिये हुए पाँच भिन्न भिन्न दृष्टान्तों से यह दिखलाया कि कर्मों को ब्रह्मार्पण करना कितना लाभदायक है। अब हम इस बात का विचार करते हैं कि ब्रह्मार्पण करना शास्त्रीय न्याय से भी किस प्रकार हितकारक और आवश्यक है।

भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न मनुष्यों के नाम से लिखे हुए पत्र एक ही डाक की सन्दूक में डालने से लेखकों की इच्छा के अनुसार जिस प्रकार उन उन स्थानों में उन उन मनुष्यों के पास पहुँच जाते हैं; उसी प्रकार एक ही कर्म उद्देशभेद से भिन्न फलप्रापक होता है। वही अन्नदान उद्देशानुरोध से देवताओं की तृप्ति करता है, पितरों को सन्तुष्ट करता है, भूतों को प्रसन्न करता है मनुष्यों का पेट भरता है और कीड़ों को भी सन्तोष देता है। उसी प्रकार यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः। भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥ (अ० ९-२५)—अर्थात् देवताओं का यजन करनेवाले देवताओं के पास जाते हैं; पितरों का यजन करनेवाले पितरों के पास, भूतों का यजन करनेवाले भूतों के पास और मेरा अर्थात् परमात्मा का यजन करनेवाले परमात्मा के पास आते हैं। इस श्लोक से भगवान् ने उपास्य-भेद के अनुसार उपासना की भिन्न फलप्रापकता का जो न्याय दिखलाया है वही कर्म के विषय में भी लगता है। अर्थात् जिस फल के उद्देश से कर्म किया जाय उस फल को वह प्राप्त कराता है, अथवा तद्रूप ही वह होता है। यह न्याय स्पष्ट है। और यह कुंजी हाथ आने पर, कहना चाहिए कि जीवों को एक बड़ा भारी सहारा मिल गया। जिस जीव को सौभाग्य से यह रहस्य मालूम हो गया उसके लिए एक ही बात रह जाती है। वह बात उद्देश का चुनाव है। जिस व्यापारी के पास पूरी पूरी अपनी निज की पूँजी होती है वह मुख्य बात के विषय में निश्चिन्त रहता है अवश्य ही वह यह बात देखता रहता है कि वह पूँजी बुरे माल की खरीद करने में खर्च न हो। उसी प्रकार कर्म करना ही है। परन्तु "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" के अनुसार नश्वर पद की प्राप्ति कर देनेवाला कर्म स्वीकार करना चाहिए अथवा "यद्गत्वा न निवर्तन्ते" से बतलाया हुआ अनामय-पद प्राप्त कर देनेवाला कर्म स्वीकार करना चाहिए—यही निश्चय करने का काम बच जाता है और यह कुछ बहुत कठिन नहीं। यह मालूम करने के लिये, कि सड़े-गले माल की अपेक्षा टिकाऊ माल खरीदना ही अधिक श्रेयस्कर है जिस प्रकार बहुत मेहनत की आवश्यकता नहीं उसी प्रकार यह समझना भी कुछ बहुत कठिन नहीं कि शाश्वतपद का संग्रह किया जाय या अशाश्वत का किया जाय। अवश्य ही जिसे कुछ न कुछ हित ज्ञान होने लगा है अथवा सच्चा विवेक उपजने लगा है उसे यह सहज ही मालूम हो सकता है कि अशाश्वत को छोड़ कर शाश्वत का ग्रहण करना चाहिए। कम से कम उस जीव का कल्याण चाहनेवाला और उसके गुरु-पद पर शोभनेवाला सज्जन तो यही उपदेश देगा कि भैया, अशाश्वत छोड़ कर शाश्वत का ही स्वीकार करना चाहिए। और श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन से यही बतलाया है।

अब बात यह है कि ब्रह्म को छोड़ कर अन्य किसीको भी कर्मार्पण करना योग्य नहीं। यही नहीं, किन्तु वह बड़े भारी कष्ट का कारण होगा। यह बात आज कल की वैज्ञानिक दृष्टि से भी सिद्ध करके दिखलाई जा सकती है।

जो तारायन्त्र अथवा विद्युतशास्त्र की जानकारी रखते होंगे उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि इलेक्ट्रिसिटी अथवा पार्थिव विद्युत् जहाँ एक बार उत्पन्न हुई कि बस फिर वह अपने उत्पत्ति के स्थल में मिलकर उसका सर्किल अथवा गोला जब तक नहीं बना लेगी तब तक वह ठहर नहीं सकती। भारत में भी कहा गया है कि 'स्वयोनिमुपशाम्यति' अर्थात् अग्नि इत्यादि भूत अपनी योनि के यहाँ अर्थात् उत्पत्ति के स्थल में पहुँचने से शान्त हो जाते हैं, यही न्याय कर्म के लिए भी लगता है। क्योंकि कर्म भी एक प्रकार की गति, शक्ति अथवा तेज है। भाई इसका उद्भव ब्रह्म ही से है। कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्। तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्। (अ० ३।१५) इस श्लोक में कर्म की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाई गई है। अब यहाँ पर कदाचित् यह आक्षेप होगा कि ब्रह्म का अर्थ वेद है। तो इसका उत्तर यह है कि वेद भी तो परमेश्वर के ही मुख से निकले हुए हैं। साराश नाक से सुगन्ध लेना भी उसे पेट में ही ले जाना है। अस्तु इस प्रकार कर्म ब्रह्मोद्भव है, इस कारण उपर्युक्त बिजली के दृष्टान्त को देखते हुए यह स्पष्ट है कि कर्म जहाँ से उद्भूत हुआ है वहाँ जब तक न पहुँचाया जायगा तब तक उससे होनेवाला संकट नहीं मिटेगा। यह न्याय व्यवहार में भी बहुधा देखा जाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, इत्यादि जब अपना स्थान छोड़ कर अन्यत्र जाते हैं तब, जब तक फिर वे अपने असली स्थान पर नहीं आ जाते तब तक उनके मन का आकर्षण खतम नहीं होता। घर आने ही पर उन्हें शान्ति मिलती है। इसी सर्वगामी वैज्ञानिक और व्यावहारिक न्याय के अनुसार भगवान अर्जुन से कहते हैं।

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः। संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

अर्थात् जो कुछ कर वह सब मुझे अर्पण कर। इससे कर्म का शुभाशुभ फल तुझे बाधक न होगा और तू विमुक्त होकर मुझमें आ मिलेगा।

यहाँ तक जो विवेचन किया गया उससे मालूम हो गया होगा कि भगवान् ने कर्मयोग पर जो इतना जोर दिया उसका हेतु "ज्ञानादेव तु कैवल्यं, ' नास्त्यकृतः कृतेन "इत्यादि सिद्धान्त वाक्यों में बाधा लानेवाला नहीं है। किन्तु कर्म की व्याप्ति इतनी अपरिहार्य है कि किसी भी देहधारी का कर्म के फन्दे से बिलकुल छूटना असम्भव है। एक महात्मा का कथन है कि चतुर्थ अवस्था तुर्या जब परिपक्व होकर उन्मनी को प्राप्त होती है तब कर्म के पूर्ण होने की सम्भावना होती है। यही यदि सच है तो सदैव उन्मनी स्थिति में रहनेवाले ज्ञानी इन संसारी जीवों में दस लाख में एक के हिसाब से भी मिलना दुर्घट है स्वयं भगवान भी कहते हैं कि 'न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः" अर्थात् निःशेष कर्मत्याग किसी प्राणी से भी सम्भव नहीं। कर्मत्याग तो सम्भव नहीं और कर्मयोग बाधक हुए बिना रहता नहीं। अतएव जब जीवों के सामने यह पेंच आ जाता है कि एक ओर दीवाल और दूसरी ओर कुआँ, तब उन्हें बड़ा संकट पड़ता है कि ' यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते " अर्थात् कर्मफल त्याग करना ही मानो कर्म त्याग करना है--और भगवान् का यह वचन ठीक भी है। जैसे कोई बाँझ वृक्ष न होने के समान ही है उसी प्रकार फलहीन कर्म करना न करने के समान ही है। दृष्टान्त कुछ ग्राम्य है, परन्तु तात्पर्य की ओर देखकर यदि सज्जन क्षमा करें तो मैं कहता हूँ कि, किसी वन्ध्या का कुकर्म जिस प्रकार फलहीनत्व के कारण पुलिस की पकड़ में नहीं आ सकता उसी प्रकार फलत्याग करने से कर्म में बाधकता रहने का कोई कारण नहीं, रहता। यही नहीं, वरन् कभी कभी उसकी व्यग्य—सदोषता—भी सहन हो जाती है। कीचड़ में अँगूठी के भर जाने पर स्वयं अँगूठी को फेंक देना जिस प्रकार हास्यास्पद और हानिकारक होगा उसी प्रकार बाधकपन के कारण कर्म का ही बिलकुल त्याग कर देना भी हास्यास्पद होगा। विवेक की कीमत ऐसी ही जगह मालूम होती है। कुछ अधीर और अविचारी लोग बिच्छू को घातक समझ कर उसे देखते ही मार डालना चाहते हैं परन्तु धीरवान और विवेकी मनुष्य यह देखता है कि बिच्छू का सारा शरीर घातक नहीं है, उसके डंक का अग्रभाग सिर्फ घातक है, उतना युक्ति से निकाल डालने पर बिच्छू बिचारा निरुपद्रवी हो जाता है—फिर जीवहत्या क्यों करना चाहिए? यह साधारण विवेक की बात हुई। भगवान श्रीकृष्ण की विवेकबुद्धि तो बिलकुल अगाध है। कर्म से कर्म की बाधकता अलग निकाल कर उसे बिलकुल उड़ा देने की युक्ति सुझाना भगवान के लिए साधारण लीला की बात है। उन्होंने अर्जुन को निमित्त कर कर उस पार्थ सब जीवों के कल्याणार्थ किया है। उसे ऊपर विस्तारपूर्वक बतलाया भी है। अब पर उस बुद्धिमान परमात्मा की शरण जाकर और 'तदस्य तदन' यह प्रभु की गीतान्तर्गत आज्ञा शिरोधार्य करके यह निबन्धरूपी अल्प कार्य उस प्रभु के चरणों में अर्पण करके हम यहाँ पर अपनी लेखनी को विश्राम देते हैं।

# भारत-रामायण की दो उपकथाओं का मर्म।

संस्कृत साहित्य की समग्रता से उल्लेख करने का प्रसंग आने पर हमारे प्राचीन ग्रन्थकार 'इतिहास पुराण' इस शब्द की नियमपूर्वक योजना करते हैं। किसी विशिष्ट प्रसंग पर इन मिले हुए शब्द का अर्थ, चाहे वैदिक साहित्य के "ब्राह्मण" ग्रन्थों के कथानकों का हो जाय, तथापि साधारणतया "पुराण" से मतलब अठारह महा-पुराण और "इतिहास" से भारत तथा रामायण, इन आर्ष महा-काव्यों का अर्थ लिया जाता है—और यह ठीक ही है क्योंकि भारत-रामायण को—विशेषता महाभारत को—'इतिहास' नाम जितना शोभा देता है उतना संसार के किसी दूसरे ग्रन्थ को शोभा देगा या नहीं—इसमें शंका ही है। सर्वसाधारण लोग "इतिहास" का यह संकुचित अर्थ समझते हैं कि जिसमें राजाओं, योद्धाओं, किंबहुना राजनीतिज्ञों का वर्णन हो, परन्तु यह भूल है। राजनीति, युद्ध अथवा कारवाइयाँ में सच्चे 'इतिहास' का बहुत ही थोड़ा अंश है। विशिष्ट देश के विशिष्ट काल का यदि सच्चा इतिहास लिखना होगा तो उसमें राजाओं, योद्धाओं और राजनीतिज्ञों की ही तरह धर्मप्रवर्तक, समाजनेता, साधु-संत, विद्वान, शास्त्रज्ञ, तत्वज्ञानी, शिल्पकार, इत्यादि सब के कार्यों का यथास्थित और यथाप्रमाण वर्णन होना चाहिए यही नहीं, बल्कि साधारण जनसमूह के शारीरिक मानसिक, सामाजिक, नैतिक, बौद्धिक और आत्मिक व्यवसायों का भी स्पष्ट चित्र खिंचा होना चाहिए, तभी उसे 'इतिहास' का नाम यथार्थता से दिया जा सकता है। मेकाले ने यही व्याख्या ध्यान में रख कर अपना इतिहास लिखा है और वह इस व्याख्या के अनुसार बना भी है। यह बात इतिहास-भक्तों को मालूम ही है। इस दृष्टि से व्यासकृत 'महाभारत' के लिए भी 'इतिहास' की संज्ञा पूर्णरूप से लगती है। महाभारत में यदि सिर्फ कौरव पांडवों के युद्ध का ही वर्णन होता तो उसे इतिहास कोई न कहता। जिस समय भारतीय युद्धकाल का, और वर्तमान, महाभारत लिखा जाता या उस सम्पूर्ण समय के भारतीय आर्य लोग आपस में कैसे लड़ते थे, धर्मयुद्धविषयक उनके कैसे विचार थे, वे किन हथियारों का उपयोग करते थे, द्यूत कैसे खेलते थे, तीर्थयात्रा कैसे करते थे, युद्धकला कैसे सीखते थे, अश्वमेधादि यज्ञ कैसे होते थे, विद्वान् ऋषि, मुनि और राजर्षियों का सम्वाद कैसे होता था, स्वयंवर कैसे होते थे, उस समय धर्म, नीति, व्यवहार और तत्वज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाले कैसे विचार प्रचलित थे, कुश्तियों के अखाड़े कैसे लगते थे, वन विहार कैसे होते थे, इत्यादि अनेक बातों का सूक्ष्म और हृदयंगम वर्णन महाभारत में इतस्ततः इतना फैला हुआ है कि उस काल का आर्य-समाज पाठकों के अन्तश्चक्षुओं के सामने मूर्तिमत खड़ा हो जाता है!

इससे भी अधिक सूक्ष्म, गम्भीर और व्यापक दृष्टि से यदि भारत-रामायण ग्रन्थों का निरीक्षण किया जाय तो उसमें भरतखंड के आर्यों के सम्पूर्ण राष्ट्रीय संसार का चित्र मिलेगा—यही नहीं, किन्तु ऐसे अनेक भयानक सृष्टिचमत्कारों का और पंचमहाभूतों के क्षोभों का कि जिन्होंने तत्कालीन लोगों के मन पर प्रचण्ड और स्थिर प्रभाव डाला, वर्णन भी—रूपक की भाषा में—पाया जाता है। अवश्य ही इससे स्पष्ट होता है कि इस दृष्टि से भारत रामायण का 'इतिहासत्व' अधिक ही व्यापक है। मनुष्य का मन चकित, विस्मित, कुंठित और अन्त में पूर्णतया विनीत करनेवाले महाभूतों के जो अनेक प्रकार के रौद्रस्वरूप हैं उनमें ज्वालामुखियों का भयानक उद्रेक अथवा स्फोट को बड़ा ऊंचा स्थान देना चाहिए। भरतखंड में आज कल भी कभी कभी भूकम्प होते हैं, काश्मीर-पंजाब से आसाम तक फैले हुए हिमालय की तराईवाले प्रदेशों में तो ये बहुत ही जोर से होते हैं। तथापि भारतवर्ष के लोगों को ज्वालामुखियों के प्रचण्ड और भयानक उद्रेकों का आज बिलकुल-हजारों वर्ष से प्रत्यक्ष अनुभव बिलकुल ही नहीं है। भारतीय युद्धकालीन अथवा महाभारतकालीन आर्यों को भी उनकी 'प्रत्यक्ष' जानकारी थी इसका कोई प्रमाण नहीं। तथापि इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि प्राचीन काल में आर्यावर्त में जो ज्वालामुखियों के स्फोट हुए उनकी परम्परागत कथाओं के रूप में उन्हें जानकारी थी।

वनपर्व के २००-२०३ अध्यायों में यह कथा दी गई है कि 'धुंधु' नामक दैत्य का संहार करनेवाले सूर्यवंशी कुवलाश्व राजपुत्र को पराक्रम से उसे 'धुंधुमार' नाम करके प्राप्त हुआ। सूक्ष्मता से मात्र अवलोकन करनेवाले को मालूम हो जायगा कि उस उपाख्यान में एक ज्वालामुखी के उद्रेक का ही वर्णन किया हुआ है। वह कथा इस प्रकार है—उत्तंक नामक एक महर्षि 'रम्य और सम (सपाट) मरुधन्व' प्रदेश के अपने आश्रम में तप करता था परन्तु उस आश्रम के पास मधु कैटभ-पुत्र धुंधु दैत्य बालू में छिपा हुआ रह कर तीनों लोकों को पीड़ा देता था इस कारण उत्तंक ऋषि 'निरुद्विग्नता' से तप नहीं कर सकते थे। तब उन्होंने इक्ष्वाकुवंशी राजा बृहदश्व के पास इस विषय में शिकायत की। राजा बृहदश्व ने अपने बड़े लड़के कुवलाश्व को, उसके २१००० पुत्रों सहित, धुंधु दैत्य का नाश करने के लिए भेजा। वे मरुधन्व प्रदेश में आये और जिस बालू में धुंधु दैत्य छिपा बैठा था उसे चारों ओर से खोद डाला। धुंधु दैत्य अतिशय क्रुद्ध हुआ और चार राजपुत्रों को छोड़ कर बाकी सब को अग्नि में जला डाला। पर अन्त में कुवलाश्व ने अवश्य ही उस अग्नि को बुझा कर और धुंधु दैत्य का नाश करके त्रैलोक्य का महत्कार्य किया यही 'धुंधुमारोपाख्यान' का सारांश है।

अब हम यह देखते हैं कि इस उपाख्यान में धुंधु दैत्य का जो वर्णन किया गया है वह ज्वालामुखी के लिए शब्दशः लगता है या नहीं। उत्तंक के आश्रम के निकट सपाट मरुधन्व प्रदेश में (समं मरुधन्वसु) 'उज्ज्वालक' नाम का 'बालुकापूर्ण समुद्र' था। यह समुद्र 'बहुयोजनमायत' था और इस बालुका पूर्ण समुद्र में धुंधु दैत्य 'अन्तर्भूमिगत' सोया हुआ था। इस धुंधु दैत्य का

संवत्सरस्य पर्यन्ते निश्वासं सम्प्रवर्तते।
यदा तदा भूश्चलति सशैलवनकानना॥
तस्य निश्वासवातेन रज उद्भूयते महत्।
आदित्यपथमाश्रित्य सप्ताहं भूमिकंपनम्॥
सविस्फुलिंगं सज्वालं धूममिश्रं सुदारुणम्।

भयंकर निश्वास जब वर्ष के अन्त में शुरू होता तब पर्वतों और वनों के साथ भूमिकंप होता है, तथा उसके निश्वास की वायु से धूल के बड़े बड़े टोल उठ कर उनसे सूर्य पूर्णतया ढक जाता है, और सात दिन तक उसके निश्वास से भयंकर चिनगारियां, ज्वालाएं और धुआं निकलता रहता है और सात दिन भूकम्प भी होता है—इस प्रकार कुछ वर्ष प्रत्यक्ष चमत्कार देख कर उत्तंक ने राजा बृहदश्व से उसका वर्णन किया है। कुवलाश्व ने २१ हजार राजपुत्रों सहित जब वहां आकर सात दिन तक बालुका-समुद्र को खोदा तब उन्हें देख पड़ा कि उसके भीतर छिपा बैठा हुआ 'दीप्यमान यथा सूर्य' (सूर्य की तरह देदीप्यमान) और 'पावकार्चिष' (अग्निज्वालाओं से युक्त) धुंधु दैत्य पश्चिम दिशा व्याप्त करके सोया हुआ है। उसके शरीर पर वे जो जो शस्त्रास्त्र फेंकते उन सब को भक्षण करके वह दैत्य 'सक्रुद्ध' होकर (उत्तस्थौ) ऊपर भड़का, और उसने 'संवर्तक सम' (प्रलयकालीन अग्नि के समान) अग्नि (आस्याद्वमन्) मुंह से ओंक कर वे सब राजपुत्र (मुखजेनाग्निना) मुख की इस अग्नि से जला डाले! बाद को जब कुवलाश्व से युद्ध शुरू हुआ तब दैत्य की

प्राचीन मरुधन्व प्रदेश का अर्वाचीन दृश्य।

देह से बहुत सा पानी बहने लगा। पर यह पानी (वारिमय तेज) जलमय तेज ही था। यह तेज कुवलाश्व ने योगनिर्मित जल से बुझा कर ब्रह्मास्त्र से धुंधु दैत्य का भी संहार किया। इस युद्ध में २१ हजार राजपुत्रों में से कुवलाश्व और दृढाश्व कपिलाश्व तथा चन्द्राश्व, ये उसके तीन पुत्र सिर्फ जीते बचे!

इस कथा के रूपक की भाषा को सरल रूप देकर यदि पढ़ा जाय तो देखिये उससे कौन कौन सी बातें निकलती हैं। पुराणों में लिखा है कि मरुधन्व प्रदेश सरस्वती नदी तीर के सारस्वत देश और बहुधान्यक देश के बीच में है। राजपूताने के उत्तरी रेगिस्तान में जो घाघरा नदी गुप्त हो गई है वही सरस्वती है। आज कल भी जो अत्यन्त उपजाऊ गुजरात प्रान्त है वही उस समय का भी बहुधान्यक देश समझना चाहिए। इनके बीच में राजपूताने का जो वायव्य और पश्चिम भाग थरपारकर के बालुका-मैदान के नाम से प्रसिद्ध है वही मरुधन्व प्रदेश है। इस प्रदेश का वर्णन बड़ा भारी 'बालुकापूर्ण समुद्र' था। इस शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं अर्थात् बालुका का समुद्र अथवा बालुका से भर कर उथला हुआ समुद्र। दूसरा अर्थ यदि ग्रहण किया जाय तो कहा जा सकता है कि आज कल कच्छ की खाड़ी का जो स्वरूप है वही प्राचीन काल में मरुधन्व प्रदेश का स्वरूप था। वह कभी यदि केवल बालुकामय रहता तो कभी उस पर समुद्र का पानी फैला रहता। संसार में आज जो बड़े बड़े बालुका-मैदान हैं वे प्राचीन काल में समुद्र के तल थे। भूकम्प और ज्वालामुखियों के मिश्र प्रभाव से वे तल ऊपर उठ कर मैदान बन गये हैं। यह भूस्तर-वेत्ताओं का अनुमान है। समुद्र के पेट में अब भी अनेक ज्वालामुखी हैं और उनके प्रचण्ड उद्रेकों से वहां आज भी नवीन नवीन द्वीप निर्माण होते हैं। समुद्र में गुप्त रीति से रह कर समुद्र को खारा डालनेवाला 'वड़वानल' नाम आर्यों ने समुद्र के ज्वालामुखियों को ही दिया होगा। इस वड़वानल को 'ऊर्ध्वभाक्' का जो एक नाम दिया गया है (वनपर्व, अ० २१९) सो भी ज्वालामुखी के उद्रेकों के लिए शोभनेवाला है। अस्तु मरुधन्व प्रदेश का 'बालुकापूर्ण समुद्र' ज्वालामुखी के उद्रेक से आज कल सूखा बालुका मैदान बन गया है। समुद्र की तलभूमि जब ज्वालामुखियों के प्रभाव से धीरे धीरे जब ऊपर उठने लगती है तब पहले उसमें अनेक द्वीप फिर भूमध्यसमुद्र इसके बाद खारे पानी के सरोवर और अन्त में बालुका मैदान बनते जाते हैं। यह भूस्तर-शास्त्रियों का कथन है। जान पड़ता है कि मरुधन्व प्रदेश की भी यही दशा हुई है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि खारे पानी का नमक उत्पन्न करनेवाली साम्भर झील अब भी उस प्रान्त में है। वनपर्व में उत्तङ्क का जहां जहां उल्लेख आया है वहां वहां 'उत्तङ्कसर' शब्द बहुधा आये हैं। यह उत्तङ्कवन मरुभूमि के ही उत्तर ओर था। वन का अधिकांश झील से व्याप्त रहे बिना ऐसी शब्दयोजना नहीं हो सकती। अयोध्या में जब कि राजा बृहदश्व राज्य करता था तब इस बालुका मैदान के अन्तर्गत भागों से ज्वालामुखी का उद्रेक प्रतिवर्ष एक बार होता था और उससे चिनगारियां ज्वालाएं, धुआं, कालिख, इत्यादि करीब सात दिन तक निकलते रहते थे और प्रचण्ड भूकम्प भी होते थे। इस ज्वालामुखी का अन्तिम उद्रेक विशेष भयंकर हुआ और उसके कारण कुवलाश्व के २१ हजार आदमी प्राणों से हाथ धो बैठे। इस बार के उद्रेक में अन्त में ज्वालामुखी से 'वारिमय तेज' बहती हुई आग—तप्तशिलारस—की प्रचण्ड बाढ़ बाहर निकली और बाद को यह ज्वालामुखी मृत, अतएव निरुपद्रव हुआ, यह इस कथानक से स्पष्ट जाना जाता है। इस ज्वालामुखी का धुंधु नाम रखने में भी बड़ा चातुर्य है। विसूवियस इत्यादि ज्वालामुखियों के स्फोट होने पर उनके मुखों से जब भाफ का प्रचण्ड प्रवाह अत्यन्त जोर से निकल कर एक दो मील ऊपर जाता है तब उससे अत्यन्त भयानक बड़ी ध्वनि निकलती है। रेलगाड़ी के एञ्जिन में पानी भरते समय उसके नीचे का पड़दा खोल कर कभी कभी एकदम जोर से भाफ नीचे छोड़ते रहते हैं, उस समय उस भाफ का 'धो धो' शब्द निकलता है। यह शब्द बहुत लोगों ने सुना होगा। इस प्रकार के लाखों एञ्जिन एक स्थान में एकत्र होकर एकदम यदि भाफ छोड़ें तो जैसा शब्द होगा वैसा ही शब्द ज्वालामुखी के उद्रेक के समय होता है, और इसी लिए मरुभूमि के उपर्युक्त ज्वालामुखी को 'धुंधु' का शब्दानुसारी नाम दिया गया। इसमें सन्देह नहीं।



ईसवी सन् की पहली शताब्दी के आरम्भ के विसूवियस पर्वत का दृश्य।

राजा बृहदश्व के भी पूर्वकाल में विन्ध्यपर्वत के आसमन्तात् भाग में ज्वालामुखियों का भयंकर स्फोट हुआ था, जिससे एक राज्य नष्ट हो गया था। इसका वृत्तान्त वाल्मीकीय रामायण की एक कथा में पाया जाता है। उपर्युक्त राजा बृहदश्व इक्ष्वाकु से दसवीं पीढ़ी में हुआ; पर यह भयंकर उत्पात स्वयं इक्ष्वाकु के पुत्र दण्ड के समय में हुआ और उसका राज्य नष्ट हुआ। यह कथा रामायण के उत्तरकाण्ड (सर्ग ७९-८१) में आई है। राजा इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे उनमें सब से छोटा दण्ड मूढ़ था, विद्या उसने बिलकुल नहीं पढ़ी थी, वह अपने बड़ों के साथ भी अशिष्ट बर्ताव करता था। इस विचार से, कि ऐसे लड़के से अयोध्या की प्रजा को कष्ट न हो, राजा इक्ष्वाकु ने उसे देशनिकाला करके विन्ध्य और शैवल पर्वतों के मध्य-प्रदेश का राज्य उसे सौंप दिया। उसने ('रम्ये पर्वतरोधसि') एक रम्य पर्वत की तराई में 'मधुमन्त' नामक नगर बसा कर वहां बहुत वर्ष राज्य किया। भृगु-पुत्र-भार्गव ऋषि उसके पुरोहित थे। उनका आश्रम भी उसी राज्य में था। एक बार चैत्र मास में राजा दण्ड भार्गवाश्रम में आया; और उन्हें आश्रम में न पाकर उनकी 'अरजा' नामक कन्या पर उन्मत्तपन से बलात्कार करके उसने उसे भ्रष्ट किया। इसके बाद वह अपने नगर को चला गया। लौटने पर



सन् १८२७ के उद्रेक के प्रारम्भ में विसूवियस का मुख ऐसा था।

भार्गव को यह सब हाल मालूम हुआ। उन्होंने राजा दण्ड को शाप देकर उसका सारा राज्य धूल की वृष्टि से एकदम नष्ट कर डाला! इस राज्य की जगह में ही आगे जा बड़ा अरण्य बढ़ा उसे 'दण्ड' के नाम से दण्डकारण्य नाम पड़ा, यही मुख्य कथा है।

इस कथा में दण्डराज्य नष्ट करनेवाली रजोवृष्टि का जो वर्णन किया हुआ है उसे पढ़ कर रोमन लोगों के पॉम्पियाई नगर का स्मरण हुए बिना नहीं रहता। दण्डराज्य विंध्य और शैवल पर्वतों के बीच में "समन्ताद्योजनशतं" था। विंध्य सुप्रसिद्ध पर्वत है। उसके दक्षिण की ओर क्रमश नर्मदा नदी, सतपुड़ा पर्वत और तापी नदी है। आधुनिक खोज करनेवालों ने प्राचीन भूगोल का जो वर्णन लिखा है उसमें यह नहीं बतलाया कि उक्त शैवल पर्वत कौन है। यदि वर्तमान सतपुड़ा ही शैवल पर्वत मान लिया जाय तो उन दोनों के बीच के प्रदेश के चारो ओर का घेरा १०० योजन, अर्थात् ८०० से १००० मील तक नहीं हो सकता। कितने ही पुराणों में विंध्य का नाम केवल सतपुड़ा अथवा दोनों के लिए लगाया गया है। अर्थात् शैवल पर्वत सतपुड़ा के भी दक्षिण में होना चाहिए। नासिक से बरार और हैदराबाद प्रान्त के क्रमश दक्षिण-उत्तर भाग में होते हुए पर्वत की श्रेणी पूर्व की ओर गई है। इसी पहाड़ में सुप्रसिद्ध वेरूल और अजंटा की प्राचीन गुफाएं बनी हुई हैं और इस पहाड़ के दक्षिण उतार से समानान्तर गोदावरी नदी बहती है। जान पड़ता है, यही पहाड़ शैवल पर्वत होगा। इसी कथा में जो यह कहा गया है कि दण्डकारण्य समाप्त होने के बाद फिर जो तुरन्त ही जनस्थान (नासिक पंचवटी) मिलता है, सो भी हमारे उक्त विचार के अनुकूल ही है। कई जगह नर्मदा और गोदावरी नदियों के बीच के प्रदेश को दण्डकारण्य नाम दिया गया है। यह उल्लेख भी सतपुड़ा को शैवल मानने से ठीक नहीं लगता। अस्तु, दण्ड का राज्य विन्ध्य-शैवल पर्वतों के बीच में, अर्थात् नर्मदा और गोदावरी नदियों के बीच में, था और वह प्रदेश स्थूल मान से "समन्ताद्योजन शतम्" यदि मान लिया जाय तो इसमें कोई प्रत्यवाय नहीं। भार्गव ने दण्ड को यह शाप दिया था कि तेरा यह १०० योजन घेरे का राज्य

धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासन ।

बड़ी भारी रजोवृष्टि से इन्द्र जला डालेगा, और इस पांसुवृष्टि से तेरे राज्य में सात दिन घना कालिख गिरेगा (पांसुवर्षमिवालक्ष्य सप्तरात्रं भविष्यति) यह शाप देते समय भार्गव ने आश्रम के ऋषियों से कहा कि (जनपदान्तेषु स्थीयतां) इन प्रदेशों की सीमा से बाहर जाकर रहो। परन्तु अपनी कन्या अरजा से अवश्य ही यह कहा कि वह जो एक (योजनपर्यन्तम्) योजन के घेरे का बड़ा सरोवर है, वहां तू जाकर रह। भार्गव ने सरोवर के निकट रहनेवाले प्राणियों को पांसुवृष्टि से उत्पन्न होनेवाली कालरात्रि से जीवित रहने का वर दिया। उत्तरकाण्ड के ७५ वें सर्ग में यह वर्णन है कि शैवल पर्वत के उत्तर ओर पास ही एक बड़ा सरोवर था और वहां शम्बूक शूद्र तप करता था, यही वह सरोवर होगा, जहां भार्गव ने अपनी कन्या को रखा। यह सरोवर अवश्य ही दण्डराज्य की दक्षिणी सीमा के निकट था, अतएव वहां रजोवृष्टि बहुत घनी न हुई होगी और इसकी बहुत सी धूल सरोवर के पानी में गिरी होगी, इस कारण वहां के प्राणी सुरक्षित बच गये होंगे। भार्गव-कन्या के 'अरजा' नाम का भी सम्बन्ध इसी आख्यायिका से होगा इससे स्पष्ट है कि दण्ड का मधुमन्त नगर विन्ध्य पर्वत की तराई में होगा और विन्ध्य के ही किसी भाग का स्फोट होने के कारण दण्डराज्य नष्ट हुआ होगा। भार्गव ऋषि के शाप के अनुसार दण्डराज्य पर प्रचण्ड रजोवृष्टि हुई और वह (सप्ताहाद्भस्मसाद्भूतं सभृत्यबलवाहन) सप्ताह में, नौकर-चाकर, सैन्य वाहन, इत्यादि सहित भस्मसात् हो गया। उपर्युक्त वर्णन में, जो 'धक्ष्यते' और 'भस्मसात्भूत' शब्द आये हैं—सो विचारणीय हैं। 'धक्ष्यते' का अर्थ तिलकटीकाकार ने 'नाशयिष्यति' दिया है। अब, यहां यह कहने की जरूरत नहीं कि उनके ध्यान में यह बात नहीं आई कि पांसुवृष्टि से राज्य 'जलेगा' (धक्ष्यते) कैसे, और इसी कारण उन्हें ऐसा अर्थ करना पड़ा। परन्तु इस पांसु का—रजोवृष्टि का—स्वरूप जो देखे गा उसे तुरन्त मालूम हो जाय गा कि उपर्युक्त दोनों शब्द समर्पक है। ज्वालामुखी का स्फोट होने पर उसके मुख से भाफ, अंगार, पत्थर, जली हुई राख, इत्यादि दाहक पदार्थ निकलते हैं। इस स्फोट का जोर और प्रभाव यदि बहुत ही अधिक हुआ तो अधिकतर दाहक और चिकनी राख बहुत सी निकलती है, इसे अंग्रेज़ी में (Ash) कहते हैं। पर उक्त नाम के अनुसार यह राख (अवशेष) कुछ पदार्थ जलने के बाद नीचे बची हुई रक्षा अवश्य ही नहीं होती। बड़े जल प्रपात का पानी नीचे गिरने पर ऊँचे उठ कर जैसे अत्यन्त सूक्ष्म कणों के रूप में फुहारे के समान हवा में फैलता है उसी प्रकार यह राख, उद्रेक के जोर से ज्वालामुखी की तप्त शिलाओं के सूक्ष्म कणों ही के रूप में होती है। यह भूस्तरशास्त्रवेत्ताओं का सिद्धान्त है। अर्थात् ज्वालामुखी की धूल को भारत के आर्यों ने पाश्चात्यों की तरह 'राख' 'Ash' नाम न देते हुए 'रज' या 'पांसु' संज्ञा दी है। यही नहीं बल्कि यह भी लिख रक्खा है कि यह तप्त पांसु ज्वालामुखी के समीप के प्रदेश को जला भी सकती है, इससे हमारे पूर्वजों का सूक्ष्म निरीक्षण और शब्द योजना चातुर्य अच्छी तरह मालूम हो जाता है। अस्तु इन बातों का सच्चा स्वरूप पाठकों के ध्यान में आने के लिए कि, मरुभूमि के धुंधु ज्वालामुखी के उद्रेक कैसे होते हैं और विन्ध्य के ज्वालामुखियों की पांसुवृष्टि से दण्डराज्य का नाश होकर उस पर दण्डकारण्य कैसे बढ़ा, इटली के विसूवियस, इत्यादि ज्वालामुखियों का निरीक्षण करके पाश्चात्यों के निकाले हुए सिद्धान्त और पॉम्पियाई शहर के नाश का कुछ वर्णन यहां देना आवश्यक है। यह वर्णन पढ़ने से पॉम्पियाई और मधुमन्त नगरों के नाश की समता सहज ही देख पड़े गी।

जिस पहाड़ के शिखर को प्याले के मुख के समान स्वरूप प्राप्त होता है वह पहले का ज्वालामुखी समझा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य भूस्तरशास्त्रवेत्ताओं ने ऐसे ज्वालामुखियों के तीन भेद किये हैं उन्हें जागृत (active) निद्रित (dormant) और मृत (extinct) कह सकते हैं। जागृत ज्वालामुखी सहज ही पहचाना जा सकता है, निद्रित और मृत का अन्तर अवश्य ही सहसा ध्यान में नहीं आता। जो ज्वालामुखी मृत जान पड़ता है वह वास्तव में केवल निद्रित ही होता है और कभी कभी एकदम जागृत होकर अपना भयंकर सजीवता का प्राणघातक स्वरूप लोगों को दिखला देता है। कभी कभी ज्वालामुखी जागृतावस्था में तो रहता है, पर उद्रेक अथवा स्फोट की स्थिति उसमें नहीं होती। तथापि ऐसे समय में भी देखा गया है कि उसके मुख से अथवा आसपास के छिद्रों से कभी कभी धुएं के रंग की तप्त भाफ बाहर निकलती रहती है। खारे पानी का सोता समीप होना भी पर्वत के ज्वालामुखी स्वरूप का एक लक्षण है।

सन् १८७२ के उद्रेक के प्रारंभ के समय का विसूवियस की दशा।

महाभारत के आदिपर्व में सुन्दोपसुन्द की कथा में यह वर्णन है कि वे दोनों दैत्य-बन्धु विन्ध्यपर्वत पर जाकर तप करने लगे, तब उस पर्वत को पीड़ा हुई और उससे 'धूम्र' बाहर निकलने लगा' अर्थात् इससे यही कहना पड़ता है कि उस समय इस पर्वत का ज्वालामुखी भाग ऊपर की स्थिति में था। "यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वन्हि। यथा महानसे। अयं पर्वतो वन्हिमान्। धूमवत्त्वात्" यह न्यायशास्त्र का 'अनुमान'-प्रमाण का निश्चित उदाहरण है। पर्वत पर के प्रत्यक्ष देखे हुए धुएं पर से वन्हि का जो अनुमान इसमें निकाला गया है वह दावाग्नि-विषयक नहीं है, किन्तु पर्वत के पेट की अग्नि के विषय में ही होना चाहिए, क्योंकि पर्वत पर की दावाग्नि का जैसा धुआं वैसी ही आग भी प्रत्यक्ष देख पड़ सकती है, अतएव उसके विषय में अनुमान करने की कोई आवश्यकता ही नहीं। अस्तु; सन् ७६ ई० में पॉम्पियाई शहर नष्ट हुआ, उस समय स्वप्न में भी यह किसीको न मालूम था कि विसूवियस ज्वालामुखी होगा। पर्वत की तराई में और उतार पर रोमन लोगों ने अंगूरों के बड़े बड़े बाग लगा रखे थे और स्वयं ज्वालामुखी के मुख पर भी जंगली अंगूरों की बेलों की जालियां फैली थीं। सन् ६३ ई० से उस पर्वत के समीप भूकम्प शुरू हुआ और १६ वर्ष तक वह वैसा ही बना रहा। अन्त में सन् ७६ ई० में प्रचण्ड भूकम्प और विसूवियस का भयानक स्फोट हुआ और पॉम्पियाई, हर्क्यूलेनियम तथा स्टेबी

शहरों का नाश हुआ। जागृत अथवा निद्रित ज्वालामुखी के उद्रेक का समय जब आता है तब पहले उस भाग में भूमिकम्प होने लगते हैं, और फिर उसके मुख से कुछ दिनों बाद खूब जोर से भाफ निकलने लगती है। इस भाफ की प्रबलता और भी अधिक बढ़ने पर पर्वत के पेट से अंगार, तप कर सुर्ख होनेवाले छोटे बड़े पत्थर, किंबहुना बड़ी बड़ी शिलाएं तक, ऊपर मील मील ऊंचे उड़ कर फिर ज्वालामुखी के मुख में ही अथवा दूर अन्तर पर जा गिरती हैं। इस भाफ के जोर में बहुधा बिजली भी उत्पन्न होती है। इसके बाद पर्वत के मुख से और उतार के छिद्रों से भी तप्तशिलारस के प्रवाह बाहर निकल कर नदी के समान बहने लगते हैं, इस प्रवाह में जो कुछ पड़ जाता है वह सब जल भुन राख होकर उसीमें घुस जाता है। तथापि चूंकि तप्तशिलारस शीघ्र ही ठंढा और गाढ़ा होने वाला होता है, अतएव उसके प्रवाह बहुत दूर तक नहीं जाते। ज्वालामुखियों का स्फोट जब अत्यन्त भयंकर स्वरूप में होता है तब, जैसा कि हम कह चुके हैं, भाफ के जोर से, पर्वत के पेट के तप्तशिलारस के सूक्ष्म कण बन कर वे धूलिरूप से, रजोरूप से अथवा बालुका के रूप से ऊपर उठने लगते हैं। ज्वालामुखी से निकलता हुआ यह रज स्तम्भ कभी कभी एक एक दो दो मील ऊपर चढ़ कर सूर्य को पूर्णतया ढक लेता है और आस-पास के प्रदेश में दिन को भी अमावास्या का अंधकार छा देता है। यह धूल इतनी सूक्ष्म होती है कि खिड़कियां और दरवाजे जिस कोठरी के अच्छी तरह बन्द हैं उसमें भी वह पैठ जाती है। इसके सिवाय यह रजोवृष्टि तप्तशिलारस के प्रवाह से भी अधिक प्रान्त व्याप्त कर डालती है। सन् १६३१ के विसूवियस के उद्रेक ने इस धूल की वर्षा सैकड़ों मील के विस्तार में की थी। इतना ही नहीं, बल्कि कुछ धूल इस्तंबूल तक आई थी। सन् १८२२ के विसूवियस के उद्रेक से निकली हुई धूल भी ऐसी ही बहुत दूर तक गई थी और उसने पर्वत के आसपास के सौ मील के प्रदेश में घना अंधकार छा दिया था। सन १८३४ में तो यह धूल वायुमंडल के उच्च भाग के वायुप्रवाह में पड़ कर सात सौ मील पर जा पहुँची थी। पर्वत के आस पास के पांच छै मील के प्रान्त में तो इस धूल का 'दो पुरुष' मोटा पर्त जम गया था। इस धूलवृष्टि की विशेष भयंकरता यह है कि आसपास के भूप्रदेश पर उसका मोटा पर्त जमने के बाद, आकाश में गई हुई भाफ पानी बन कर कुछ देर बाद वर्षा के रूप से नीचे धूल पर गिरती है; ज्वालामुखी से भी खौलते हुए पानी की हिलोरें कभी कभी बाहर आती हैं और इस कारण उनके पतले कीचड़ के प्रवाह बन कर चारों ओर दौड़ने लगते हैं। इस प्रवाह में पड़े हुए शहर और गांवों की सत्यानाशी तप्तशिलारस के प्रवाहों से भी अधिक, होती है। बाद को यह कीचड़ प्लास्टर की तरह चिपटनेवाला बन कर सूख जाता है और उसके भीतर बड़ी बड़ी बस्तियां जैसी की तैसी गड़ जाती हैं।

हम ऊपर यह बतला ही चुके हैं कि विसूवियस पर्वत के भयंकर स्फोट में पाम्पियाई इत्यादि तीन शहर सन ७९ में सत्यानाश हो चुके हैं। सन ६३ से जो भूकम्प शुरू हुए थे उनके कारण पाम्पियाई शहर बहुत भग्न हो गया था, और सन ७९ के स्फोट तक उसे सुधारने का काम जारी था। अगस्त की चौबीसवीं से सन् ७९ के भयानक उद्रेक का आरम्भ हुआ। पर्वत के मुख से तोपों से भी अधिक प्रचण्ड ध्वनि निकलने लगी, और भूकम्प भी लगातार एक के बाद एक बड़े जोर से होने लगे। यहां तक कि सपाट जमीन पर भी रथ स्थिर न रहने लगे घर और महल भी हिंडोले की तरह डोलने लगे, समुद्र क्षुब्ध होकर एकदम पीछे हट गया, इस कारण खुल जानेवाले नवीन किनारे पर हजारों जलचर प्राणी मर कर रह गये। इसके बाद विसूवियस के ४ मील घेरे के विस्तीर्ण मुख से एकदम बड़ी भारी आवाज हुई और 'पाइन' वृक्ष के आकार का प्रचण्ड बाष्पस्तम्भ जोर से बाहर निकल कर आकाश में खड़ा हो गया और उसके जोर से धूल, बालुका तथा छोटे छोटे पत्थर ऊपर उड़ कर दूर तक उनकी घनी वृष्टि होने लगी। उस स्तम्भ के आसपास बिजलियां चमकने लगीं और उस चारों ओर के घने अंधकार के कारण तो और भी भयानकता छा गई। ज्वालामुखी के पेट का, तप्त और लाल, "तप्तशिलारस" का, पृष्ठभाग जब प्रचण्ड धड़ाके के कारण खुल जाता तब बाष्पस्तम्भ पर उसका भी उजियाला पड़ता तथा इससे और भी अधिक विकराल स्वरूप प्राप्त हो जाता। धूलिवृष्टि से इतना अंधकार छा गया कि उसके लिए अमावास्या के अंधकार की भी उपमा ठीक नहीं लगती। अंधेरी रात में कोई कालकोठरी जैसे सब ओर से बन्द कर दी जाय और उसमें जैसा अंधेरा हो जाय वैसा ही अंधकार तीन दिन तक विसूवियस पर्वत के आसपास के भारी प्रदेश में छा गया था। इस प्रलयकालीन रात में जितने लोग पड़ गये उनकी क्या दशा हुई होगी—उसकी सिर्फ कल्पना ही करने से शरीर पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पाम्पियाई शहर पर इस रजोवृष्टि का २० फीट मोटा पर्त जम गया और उस पर जब पानी की वृष्टि हुई तब वह शहर उस कीचड़ में एकदम डूब कर नष्ट हो गया। स्फोट से और उद्रेक से वहां की भूमि में इतनी उलथापथल हुई कि कोई यह भी न बतला सकने लगा कि पाम्पियाई इत्यादि शहर किस जगह थे। सन ७९ में जो यह शहर गड़प हुआ उसका सन् १७४८ तक कुछ भी पता-निशान न था। किसानों ने इस शहर के शिर पर अंगूर और शहतूत के बाग लगाये थे। अतएव उस वर्ष एक बाग में कुआं खोदते समय आप ही आप इस शहर का पता लग गया और तब से उसकी खुदाई का काम बराबर जारी है। इतिहास के चाहे जितने भारी ग्रन्थ लिखे गये होते, तथापि उस काल का जितना सूक्ष्म ज्ञान न हुआ होता उतना ज्ञान इस १७०० वर्ष अज्ञातवास में रहे हुए शहर की खोज से इतिहासजिज्ञासुओं को हुआ है। पाम्पियाई शहर के महल, बंगले, घर, स्नानागार, सभागृह, अखाड़े, इत्यादि सन ७९ के उद्रेक के समय जिस दशा में थे वैसी ही दशा में आज संसार के सामने खड़े हो रहे हैं। कितने ही स्थलों में तो मनुष्य जिस जिस अवस्था में खड़े, बैठे या पड़े हुए थे उसी उसी अवस्था में उनके मृत शरीर पाये गये हैं! ज्वालामुखी की, और वर्षा से भीगी हुई, इस धूल के कीचड़ का एक ऐसा धर्म है कि उसमें गड़ी हुई वस्तु सैकड़ों वर्ष जैसी की तैसी स्थिर रहती है और इस धर्म के कारण ही दो हजार वर्ष पहले का पाम्पियाई शहर आज के लोगों को प्रत्यक्ष देखने को मिलता है! आर्यावर्त के दण्डराज्य का मधुमन्त नगर भार्गव ऋषि के कथनानुसार यदि विन्ध्य के उद्रेक से दग्ध हुआ होगा तो उसका पता फिर से लगना सम्भव नहीं, परन्तु यह नगर पाम्पियाई की तरह कीचड़ में दब कर यदि नीचे गड़ गया होगा तो खोज करनेवालों को आगे-पीछे अवश्य ही उसका पता लगेगा। विन्ध्य-पर्वत के आसमन्तात् भाग की भूमि उपर्युक्त प्रकार की ज्वालामुखीय धूल की ही बनी हुई है और विन्ध्य के पश्चिम ओर का प्रदेश अधिक ज्वालामुखीय स्वरूप का है। यह भूस्तरशास्त्रवेत्ताओं को मालूम हो चुका है। परन्तु इस भूमि में गड़ा हुआ नगर अथवा गावं या कोई घर, मन्दिर इत्यादि अभी तक उन्हें नहीं मिला है। तथापि यदि भूस्तरशास्त्रवेत्ताओं की ओर से प्राचीन दण्डकारण्य-प्रदेश की अधिक सूक्ष्म और विस्तृत जांच हुई तो कदाचित् भारतवर्ष के इतिहास पर भी अपूर्व प्रकाश डालनेवाले मधुमन्त—प्रति-पाम्पियाई—नगर के मिल जाने की सम्भावना है!

---

# सलिल-स्वभाव और सरल-स्वभाव।

अहा! उपरोक्त वाक्यों में कितने महत्व के भाव भरे हुए हैं। सलिल स्वभाव अर्थात्—पानी जैसा भाव। जैसी सरलता से पानी प्रत्येक पदार्थ में लीन होकर अपने स्वरूप से विपरीत रूप का हो-जाता है उसी तरह सरल स्वभावी मनुष्य को पानी की तरह अन्य में मिलकर पररूप नहीं होना चाहिये।

इस भरत-क्षेत्र के मनुष्य शुरू से आज तक बड़े ही सरल-स्वभावी और मिलनसार होते आये हैं, न कि सलिल-स्वभावी। लेकिन अब वे अपने सरल-स्वभाव को छोड़ कर सलिल-स्वभावी होने लगे हैं। इसीसे आज यह दशा देखने में आती है कि वे अपने महत्वपूर्ण प्राचीन शुद्ध आचरण को भूल कर बिना विचार किये दूसरों की नकल करते हैं।

उपरोक्त कथन से मेरा यह मतलब है कि आज कल हम भारतवासी लोग बिना सोचे विचारे बच्चे की तरह प्रत्येक काम की नकल करने लग जाते हैं और आगामी हानि-लाभ का कुछ भी विचार नहीं करते। हम कैसी कैसी नकलें करते हैं। जैसे—मुसलमान लोग ताजिया बनाते हैं और फकीरी कपड़े पहिने फिरते हैं वैसेही हम भी उनकी देखादेखी हरी हरी पोशाक पहिन कर फकीरी भेष धारण करते हैं। और कितने ही अंग्रेजों की तरह कोट बूट, पतलून, जाकिट, कालर, टाई और हैट लगाये फिरते हैं, उनमें से कितने ही तो पूरी अंग्रेजी भी नहीं जानते।

अभी कुछ अरसे से 'क्रिसमस कार्ड' भेजने की प्रथा प्रचलित हुई है। हम हिन्दू लोग भी 'कृश्चनों' की देखादेखी 'क्रिसमस-कार्ड' भेजने लगे हैं, और नये साल के जनवरी महीने की पहिली तारीख को 'न्यू इयर कार्ड'।

देशहितैषियो! सोचो और विचार करो क्या 'क्रिसमस डे' आप का कोई त्योहार है? या जनवरी की पहिली तारीख हिन्दुओं का कोई नया दिन है?

बन्धुओ! यों तो दुनिया भर के त्योहार आप रोज मनाया करें। इस से आप को अभी कुछ हानि नहीं जान पड़ती। लेकिन आखिर नतीजा खराब ही होता है। क्यों कि जैसे—पानी सरल स्वभाव से दूसरे में मिलकर अपने निज रूप को खो देता है वैसी ही हालत आप की होती हो रही है और होगी!

अच्छा यह तो बताओ कि इतर लोग आपके कौन कौन से त्योहार मनाते हैं? या आप को ही ईश्वर ने सब त्योहार मनाने का ठेका दिया है?

नथैलाल श्रेष्ठी।

भार्गव को यह सब हाल मालूम हुआ। उन्होंने राजा दण्ड को शाप देकर उसका सारा राज्य धूल की वृष्टि से एकदम नष्ट कर डाला। इस राज्य की जगह में ही आगे जो बड़ा अरण्य बढ़ा उसे 'दण्ड' के नाम से दण्डकारण्य नाम पड़ा, यही मुख्य कथा है।

इस कथा में दण्डराज्य नष्ट करनेवाली रजोवृष्टि का जो वर्णन किया हुआ है उसे पढ़ कर रोमन लोगों के पॉम्पियाई नगर का स्मरण हुए बिना नहीं रहता। दण्डराज्य विंध्य और शैवल पर्वत के बीच में "समन्तायोजनशतं" था। विंध्य सुप्रसिद्ध पर्वत है। उसके दक्षिण की ओर क्रमशः नर्मदा नदी, सतपुड़ा पर्वत और ताप्ती नदी है। आधुनिक खोज करनेवालों ने प्राचीन भूगोल का जो वर्णन लिखा है उसमें यह नहीं बतलाया कि उक्त शैवल पर्वत कौन है। यदि वर्तमान सतपुड़ा ही शैवल पर्वत मान लिया जाय तो उन दोनों के बीच के प्रदेश के चारो ओर का घेरा १०० योजन, अर्थात ८०० से १००० मील तक नहीं हो सकता। कितने ही पुराणों में विंध्य का नाम केवल सतपुड़ा अथवा दोनों के लिए लगाया गया है। अर्थात शैवल पर्वत सतपुड़ा के भी दक्षिण में होना चाहिए। नासिक से बरार और हैदराबाद प्रान्त के क्रमशः दक्षिण-उत्तर भाग में होते हुए पर्वत की श्रेणी पूर्व की ओर गई है। इसी पहाड़ में सुप्रसिद्ध वेरूल और अजंटा की प्राचीन गुफाएं बनी हुई हैं; और इस पहाड़ के दक्षिण उतार से समानान्तर गोदावरी नदी बहती है। जान पड़ता है, यही पहाड़ शैवल पर्वत होगा। इसी कथा में जो यह कहा गया है कि दण्डकारण्य समाप्त होने के बाद फिर जो तुरन्त ही जनस्थान (नासिक पंचवटी) मिलता है, सो भी हमारे उक्त विचार के अनुकूल ही है। कई जगह नर्मदा और गोदावरी नदियों के बीच के प्रदेश को दण्डकारण्य नाम दिया गया है। यह उल्लेख भी सतपुड़ा को शैवल मानने से ठीक नहीं लगता। अस्तु, दण्ड का राज्य विन्ध्य-शैवल पर्वतों के बीच में, अर्थात् नर्मदा और गोदावरी नदिया के बीच में, था और वह प्रदेश स्थूल मान से "समन्तायोजनशतम्" यदि मान लिया जाय तो इसमें कोई प्रत्यवाय नहीं। भार्गव ने दण्ड को यह शाप दिया था कि तेरा यह १०० योजन घेरे का राज्य

धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासन।

बड़ी भारी रजोवृष्टि से इन्द्र जला डालेगा, और इस पांसुवृष्टि से तेरे राज्य में सात दिन बना कालिख गिरेगा (पांसुवर्षमिवालक्ष्य सप्तरात्र भविष्यति)। यह शाप देते समय भार्गव ने आश्रम के ऋषियों से कहा कि (जनपदांतेषु स्थीयता) इन प्रदेशों की सीमा से बाहर जाकर रहो। परन्तु अपनी कन्या अरजा से अवश्य ही यह कहा कि वह जो एक (योजनपर्यन्तम्) योजन के घेरे का बड़ा सरोवर है, वहां तू जाकर रह। भार्गव ने सरोवर के निकट रहनेवाले प्राणियों को पांसुवृष्टि से उत्पन्न होनेवाली कालरात्रि से जीवित रहने का वर दिया। उत्तरकांड के ७५ वें सर्ग में यह वर्णन है कि शैवल पर्वत के उत्तर ओर पास ही एक बड़ा सरोवर था और वहां शम्बूक शूद्र तप करता था, यही वह सरोवर होगा, जहां भार्गव ने अपनी कन्या को रखा। यह सरोवर अवश्य ही दण्डराज्य की दक्षिणी सीमा के निकट था, अतएव वहां रजोवृष्टि बहुत घनी न हुई होगी और इसकी बहुत सी धूल सरोवर के पानी में गिरी होगी, इस कारण वहां के प्राणी सुरक्षित बच गये होंगे। भार्गव-कन्या के 'अरजा' नाम का भी सम्बन्ध इसी आख्यायिका से होगा इससे स्पष्ट है कि दण्ड का मधुमन्त नगर विन्ध्य पर्वत की तराई में होगा और विन्ध्य के ही किसी भाग का स्फोट होने के कारण दण्डराज्य नष्ट हुआ होगा। भार्गव ऋषि के शाप के अनुसार दण्डराज्य पर प्रचण्ड रजोवृष्टि हुई और वह (सप्ताहाद्भस्मसाद्भूतं सभृत्यबलवाहनं) सप्ताह में, नौकर-चाकर, सैन्य वाहन, इत्यादि सहित भस्मसात् हो गया। उपर्युक्त वर्णन में, जो 'धक्ष्यते' और 'भस्मसात्भूत' शब्द आये हैं—सो विचारणीय हैं। 'धक्ष्यते' का अर्थ तिलकटीकाकार ने 'नाशयिष्यति' दिया है। अब, यहां यह कहने की जरूरत नहीं कि उनके ध्यान में यह बात नहीं आई कि पांसुवृष्टि से राज्य 'जलेगा' (धक्ष्यते) कैसे, और इसी कारण उन्हें ऐसा अर्थ करना पड़ा। परन्तु इस पांसु का—रजोवृष्टि का—स्वरूप जो देखेगा उसे तुरन्त मालूम हो जायगा कि उपर्युक्त दोनों शब्द समर्पक है। ज्वालामुखी का स्फोट होने पर उसके मुख से भाफ, धुआं, पत्थर, जलती हुई राख, इत्यादि पदार्थ निकलते हैं। इस प्रकार का जोर और प्रताप यहां तक होता है कि ... आग ... निकलती है ... (Ash) कहते हैं। पर उक्त नाम के अनुसार यह राख (अर्थात शेष) कुछ पदार्थ जलने के बाद बची हुई हो सो अवश्य ही नहीं होती। वह जल प्रपात का पानी नीचे गिरने पर जैसे ... अत्यन्त सूक्ष्म कणों के रूप में कुहरे के समान हवा में फैलता है उसी प्रकार यह राख, उद्रेक के जोर से चलनेवाले तप्त शिलारस के कणों के ही रूप में होती है। यह भूस्तरशास्त्रज्ञों का सिद्धान्त है। अर्थात ज्वालामुखी की धूल का भाग ... पाश्चात्यों ने ... तरह 'राख' (Ash) नाम न देते हुए 'रज' या 'पांसु' सम्बोधन किया है। यही नहीं बल्कि यह भी लिखा गया है कि यह तप्त पांसु ज्वालामुखी के समीप के प्रदेश को जला भी सकती है, इससे हमारे पूर्वजों का सूक्ष्म निरीक्षण और शब्द योजना चातुर्य अच्छी तरह मालूम हो जाता है। अस्तु इन बातों का सच्चा स्वरूप पाठकों के ध्यान में आने के लिए कि, मरुभूमि के ... ज्वालामुखी के उद्रेक से ... और विन्ध्या के ज्वालामुखियों की पांसुवृष्टि से दण्डराज्य का नाश होकर उस पर दण्डकारण्य कैसे बढ़ा, इटली के विसूवियस, इत्यादि ज्वालामुखियों का निरीक्षण करके पाश्चात्यों के निकाले हुए सिद्धान्त और पॉम्पियाई शहर के नाश का कुछ वर्णन यहां देना आवश्यक है। यह वर्णन पढ़ने से पॉम्पियाई और मधुमन्त नगरों के नाश की समता सहज ही देख पड़ेगी।

जिस पहाड़ के शिखर को प्याले के मुख के समान स्वरूप प्राप्त होता है वह पहले का ज्वालामुखी समझा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य भूस्तरशास्त्रज्ञों ने ऐसे ज्वालामुखियों के तीन भेद किये हैं उन्हें जागृत (active) निद्रित (dormant) और मृत (extinct) कह सकते हैं। जागृत ज्वालामुखी सहज ही पहचाना जा सकता है, निद्रित और मृत का अन्तर अवश्य ही सहसा ध्यान में नहीं आता। जो ज्वालामुखी मृत जान पड़ता है वह वास्तव में केवल निद्रित ही होता है और कभी कभी एकदम जागृत होकर अपना भयंकर सजीवता का प्राणघातक स्वरूप लोगों को दिखला देता है।

सन् १८७२ के उद्रेक के प्रारंभ के समय का विसूवियस की दशा।

कभी कभी ज्वालामुखी जागृतावस्था में तो रहता है, पर उद्रेक अथवा स्फोट की स्थिति उसमें नहीं होती। तथापि ऐसे समय में भी देखा गया है कि उसके मुख से अथवा आसपास के छिद्रों से कभी कभी धुएं के रंग की तप्त भाफ बाहर निकलती रहती है। खारे पानी का सोता समीप होना भी पर्वत के ज्वालामुखी स्वरूप का एक लक्षण है।

महाभारत के आदिपर्व में सुन्दोपसुन्द की कथा में यह वर्णन है कि वे दोनों दैत्य-बन्धु विन्ध्यपर्वत पर जाकर तप करने लगे, तब उस पर्वत को पीड़ा हुई और उससे 'धूम्र' बाहर निकलने लगा अर्थात् इससे यही कहना पड़ता है कि उस समय इस पर्वत का ज्वालामुखी भाग ऊपर की स्थिति में था। 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वन्हि'। यथा महानसे। अयं पर्वतो वन्हिमान्। धूमवत्त्वात्' यह न्यायशास्त्र का 'अनुमान'-प्रमाण का निश्चित उदाहरण है। पर्वत पर के प्रत्यक्ष देखे हुए धुएं पर से वन्हि का जो अनुमान इसमें निकाला गया है वह दावाग्नि-विषयक नहीं है किन्तु पर्वत के पेट की अग्नि के विषय में ही होना चाहिए, क्योंकि पर्वत पर की दावाग्नि का जैसा धुआं वैसी ही आग भी प्रत्यक्ष देख पड सकती है अतएव उसके विषय में अनुमान करने की कोई आवश्यकता ही नहीं। अस्तु, सन् ७९ ई० में पॉम्पियाई शहर नष्ट हुआ, उस समय स्वप्न में भी यह किसी को न मालूम था कि विसूवियस ज्वालामुखी होगा। पर्वत की तराई में और उतार पर रोमन लोगों ने अंगूरों के बड़े बड़े बाग लगा रखे थे, और स्वयं ज्वालामुखी के मुख पर भी जंगली अंगूरों की बेलों की जालियां फैली थीं। सन् ६३ ई० से उस पर्वत के समीप भूकम्प शुरू हुआ और १६ वर्ष तक वह वैसा ही बना रहा। अन्त में सन् ७९ ई० में प्रचण्ड भूकम्प और विसूवियस का भयानक स्फोट हुआ और पॉम्पियाई, हर्क्यूलेनियम तथा स्टेबी

शहरों का नाश हुआ। जागृत अथवा निद्रित ज्वालामुखी के उद्रेक का समय जब आता है तब पहले उस भाग में भूमिकम्प होने लगते हैं, और फिर उसके मुख से कुछ दिनों बाद खूब जोर से भाफ निकलने लगती है। इस भाफ की प्रबलता और भी अधिक बढ़ने पर पर्वत के पेट से अंगार, तप कर सुर्ख होनेवाले छोटे बडे पत्थर, किंबहुना बड़ी बडी शिलाएं तक, ऊपर मील मील ऊंचे उड कर फिर ज्वालामुखी के मुख में ही अथवा दूर अन्तर पर जा गिरती हैं। इस भाफ के जोर में बहुधा बिजली भी उत्पन्न होती है। इसके बाद पर्वत के मुख से और उतार के छिद्रों से भी तप्तशिलारस के प्रवाह बाहर निकल कर नदी के समान बहने लगते हैं, इस प्रवाह में जो कुछ पड जाता है वह सब जल भुन राख होकर उसीमें पूर जाता है। तथापि, चूंकि तप्तशिलारस शीघ्र ही ठंढा और गाढा होनेवाला होता है, अतएव उसके प्रवाह बहुत दूर तक नहीं जाते। ज्वालामुखियों का स्फोट जब अत्यन्त भयंकर स्वरूप में होता है तब, जैसा कि हम कह चुके हैं, भाफ के जोर से, पर्वत के पेट के तप्तशिलारस के सूक्ष्म कण बन कर वे धूलिरूप से, रजोरूप से अथवा वालुका के रूप से ऊपर उड़ने लगते हैं। ज्वालामुखी से निकलता हुआ यह रज स्तम्भ कभी कभी एक एक दो दो मील ऊपर चढ़ कर सूर्य को पूर्णतया ढक लेता है और आस-पास के प्रदेश में दिन को भी अमावास्या का अंधकार छा देता है। यह धूल इतनी सूक्ष्म होती है कि खिडकियां और दरवाजे जिस कोठरी के अच्छी तरह बन्द हैं उसमें भी वह पैठ जाती है। इसके सिवाय यह रजोवृष्टि तप्तशिलारस के प्रवाह से भी अधिक प्रान्त व्याप्त कर डालती है। सन् १६३१ के विसूवियस के उद्रेक ने इस धूल की वर्षा सेकड़ों मील के विस्तार में की थी। इतना ही नहीं, बल्कि कुछ धूल इस्तंबूल तक आई थी। सन् १८२२ के विसूवियस के उद्रेक से निकली हुई धूल भी ऐसी ही बहुत दूर तक गई थी और उसने पर्वत के आसपास के सौ मील के प्रदेश में घना अंधकार छा दिया था। सन् १८३५ में तो यह धूल वायुमंडल के उच्च भाग के वायुप्रवाह में पड़ कर सात सो मील पर जा पहुँची थी। पर्वत के आस पास के पांच छै मील के प्रान्त में तो इस धूल का 'दो पुरुष' मोटा पर्त जम गया था। इस धूलवृष्टि की विशेष भयंकरता यह है कि आसपास के भूप्रदेश पर उसका मोटा पर्त जमने के बाद, आकाश में गई हुई भाफ पानी बन कर कुछ देर बाद वर्षा के रूप में नीचे धूल पर गिरती है, ज्वालामुखी से भी खौलते हुए पानी की हिलोड़ें कभी कभी बाहर आती हैं और इस कारण उनके पतले कीचड के प्रवाह बन कर चारो ओर दौड़ने लगते हैं। इस प्रवाह में पड़े हुए शहर और गावों की सत्यानाशी, तप्तशिलारस के प्रवाहों से भी अधिक, होती है। बाद को यह कीचड प्लास्टर की तरह चिपटनेवाला बन कर सूख जाता है और उसके भीतर बडी बडी बस्तियां जैसी की तैसी गड़ जाती हैं।

हम ऊपर यह बतला ही चुके हैं कि विसूवियस पर्वत के भयंकर स्फोट में पैम्पियाई इत्यादि तीन शहर सन् ७९ में सत्यानाश हो चुके हैं। सन् ६३ से जो भूकम्प शुरू हुए थे उनके कारण पैम्पियाई शहर बहुत भंग हो गया था, और सन ७९ के स्फोट तक उसे सुधारने का काम जारी था। अगस्त की चौबीसवीं से सन् ७९ के भयानक उद्रेक का आरम्भ हुआ। पर्वत के मुख से तोपों से भी अधिक प्रचण्ड ध्वनि निकलने लगी, और भूकम्प भी लगातार एक के बाद एक बडे जोर से होने लगे। यहां तक कि सपाट जमीन पर भी रथ स्थिर न रहने लगे, घर और महल भी हिंडोले की तरह डोलने लगे, समुद्र क्षुब्ध होकर एकदम पीछे हट गया, इस करण खुल जानेवाले नवीन किनारे पर हजारों जलचर प्राणी मर कर रह गये। इसके बाद विसूवियस के ५ मील घेरे के विस्तीर्ण मुख से एकदम बडी भारी आवाज हुई और 'पाइन' वृक्ष के आकार का प्रचण्ड वाष्पस्तम्भ जोर से बाहर निकल कर आकाश में खड़ा हो गया और उसके जोर से धूल, वालुका तथा छोटे छोटे पत्थर ऊपर उड़ कर दूर तक उनकी घनी वृष्टि होने लगी। उस स्तम्भ के आसपास बिजलियां चमकने लगीं और उस चारो ओर के घने अंधकार के कारण तो और भी भयानकता छा गई। ज्वालामुखी के पेट का, तप्त और लाल, "तप्तशिलारस" का, पृष्ठभाग जब प्रचण्ड धडाके के कारण खुल जाता तब वाष्पस्तम्भ पर उसका भी उजियाला पडता तथा इससे और भी अधिक विकराल स्वरूप प्राप्त हो जाता! धूलिवृष्टि से इतना अंधकार छा गया कि उसके लिए अमावास्या के अंधकार की भी उपमा ठीक नहीं लगती। अंधेरी रात में कोई कालकोठरी जैसे सब ओर से बन्द कर दी जाय और उसमें जैसा अंधेरा हो जाय वैसा ही अंधकार तीन दिन तक विसूवियस पर्वत के आसपास के भारी प्रदेश में छा गया था। इस प्रलयकालीन रात में जितने लोग पड गये उनकी क्या दशा हुई होगी—उसकी सिर्फ कल्पना ही करने से शरीर पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पैम्पियाई शहर पर इस रजोवृष्टि का २० फीट मोटा पर्त जम गया और उस पर जब पानी की वृष्टि हुई तब वह शहर उस कीचड़ में एकदम डूब कर नष्ट हो गया। स्फोट से और उद्रेक से वहां की भूमि में इतनी उलथापथल हुई कि कोई यह भी न बतला सकने लगा कि पैम्पियाई इत्यादि शहर किस जगह थे। सन् ७९ में जो यह शहर गड़प हुआ उसका सन् १७४८ तक कुछ भी पता-निशान न था। किसानों ने इस शहर के शिर पर अंगूर और शहतूत के बाग लगाये थे। अतएव उस वर्ष एक बाग में कुआं खोदते समय आप ही आप इस शहर का पता लग गया और तब से उसकी खुदाई का काम बराबर जारी है। इतिहास के चाहे जितने भारी ग्रन्थ लिखे गये होते, तथापि उस काल का जितना सूक्ष्म ज्ञान न हुआ होता उतना ज्ञान इस १७०० वर्ष अज्ञातवास में रहे हुए शहर की खोज से इतिहासजिज्ञासुओं को हुआ है। पैम्पियाई शहर के महल, बँगले, घर, स्नानागार, सभागृह, अखाडे, इत्यादि सन् ७९ के उद्रेक के समय जिस दशा में थे वैसी ही दशा में आज संसार के सामने खडे हो रहे हैं। कितने ही स्थलों में तो मनुष्य जिस जिस अवस्था में खड़े, बैठे या पडे हुए थे उसी उसी अवस्था में उनके मृत शरीर पाये गये हैं! ज्वालामुखी की, और वर्षा से भीगी हुई, इस धूल के कीचड़ का एक ऐसा धर्म है कि उसमें गड़ी हुई वस्तु सैकड़ों वर्ष जैसी की तैसी स्थिर रहती है, और इस धर्म के कारण ही दो हजार वर्ष पहले का पैम्पियाई शहर आज के लोगों को प्रत्यक्ष देखने को मिलता है! आर्यावर्त के दण्डराज्य का मधुमन्त नगर भार्गव ऋषि के कथनानुसार यदि विन्ध्य के उद्रेक से दग्ध हुआ होगा तो उसका पता फिर से लगना सम्भव नहीं, परन्तु वह नगर पोम्पियाई की तरह कीचड़ में दब कर यदि नीचे गड़ गया होगा तो खोज करनेवालों को आगे-पीछे अवश्य ही उसका पता लगेगा। विन्ध्यपर्वत के आसमन्तात् भाग की भूमि उपर्युक्त प्रकार की ज्वालामुखीय धूल की ही बनी हुई है और विन्ध्य के पश्चिम ओर का प्रदेश अधिक ज्वालामुखीय स्वरूप का है। यह भूस्तरशास्त्रवेत्ताओं को मालूम हो चुका है। परन्तु इस भूमि में गड़ा हुआ नगर अथवा गावँ या कोई घर, मन्दिर इत्यादि अभी तक उन्हें नहीं मिला है। तथापि यदि भूस्तरशास्त्रवेत्ताओं की ओर से प्राचीन दण्डकारण्य-प्रदेश की अधिक सूक्ष्म और विस्तृत जांच हुई तो कदाचित् भारतवर्ष के इतिहास पर भी अपूर्व प्रकाश डालनेवाले मधुमन्त—प्रति-पैम्पियाई—नगर के मिल जाने की सम्भावना है!

## सलिल-स्वभाव और सरल-स्वभाव।

अहा! उपरोक्त वाक्यों में कितने महत्व के भाव भरे हुए हैं। सलिल स्वभाव अर्थात्—पानी जैसा भाव। जैसी सरलता से पानी प्रत्येक पदार्थ में लीन होकर अपने स्वरूप से विपरीत रूप का हो-जाता है उसी तरह सरल-स्वभावी मनुष्य को पानी की तरह अन्य में मिलकर पररूप नहीं होना चाहिये।

इस भरत-क्षेत्र के मनुष्य शुरू से आज तक बडे ही सरल स्वभावी और मिलनसार होते आये हैं, न कि सलिल स्वभावी। लेकिन अब वे अपने सरल-स्वभाव को छोड कर सलिल-स्वभावी होने लगे हैं। इसीसे आज यह दशा देखने में आती है कि, वे अपने महत्वपूर्ण प्राचीन शुद्ध आचरण को भूल कर विना विचार किये दूसरों की नकल करते हैं।

उपरोक्त कथन से मेरा यह मतलब है कि आज कल हम भारत वासी लोग विना सोचे विचारे बच्चे की तरह प्रत्येक काम की नकल करने लग जाते हैं, और आगामी हानि-लाभ का कुछ भी विचार नहीं करते। हम कैसी कैसी नकल करते हैं। जैसे—मुसलमान लोग ताजिया बनाते हैं और फकीरी कपडे पहिने फिरते हैं वैसेही हम भी उनकी देखादेखी हरी हरी पोशाक पहिन कर फकीरी भेष धारण करते हैं। और कितने ही अंग्रेजों की तरह कोट बूट, पतलून, जाकिट, कलर, टाई और हॅट लगाये फिरते हैं, उनमें से कितने ही तो पूरी अंग्रेजी भी नहीं जानते।

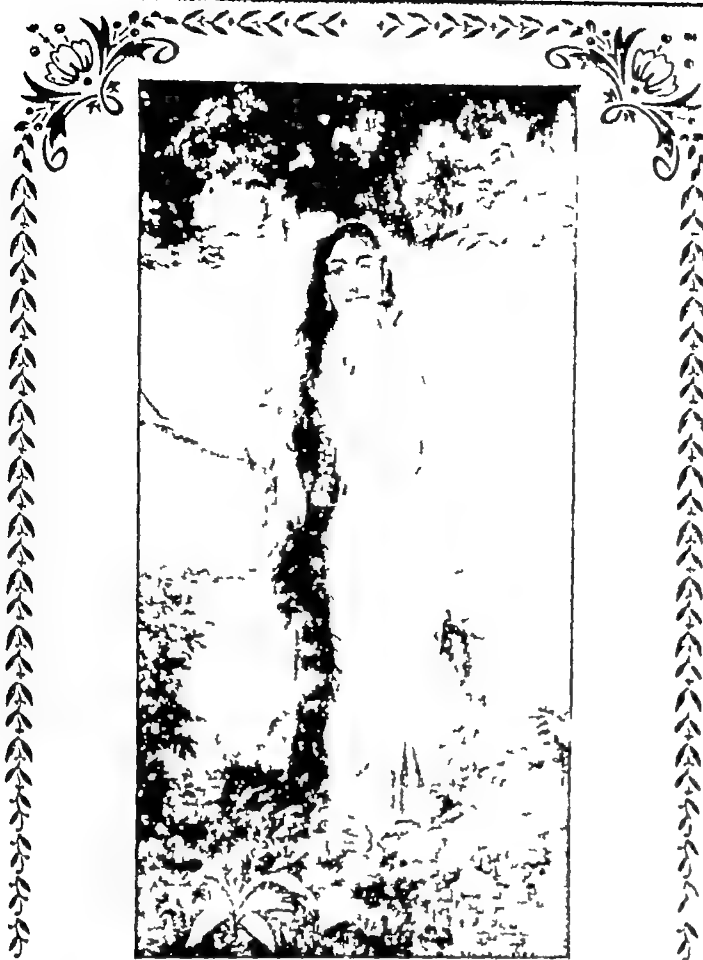
अभी कुछ अरसे से 'क्रस्मस कार्ड' भेजने की प्रथा प्रचलित हुई है। हम हिन्दू लोग भी 'कृष्टानों' की देखादेखी क्रस्मस-कार्ड' भेजने लगे हैं, और नये साल के जनवरी महीने की पहिली तारीख को 'न्यू इयर कार्ड'।

देशहितैषियो! सोचो और विचार करो क्या 'क्रसमस डे' आप का कोई त्योहार है? या जनवरी की पहिली तारीख हिन्दुओं का कोई नया दिन है?

बंधुओ! यों तो दुनिया भर के त्योहार आप रोज मनाया करें। इस से आप को अभी कुछ हानि नहीं जान पड़ती। लेकिन आखिर नतीजा खराब ही होता है। क्यों कि जैसे—पानी सरल स्वभाव से दूसरे में मिलकर अपने निज रूप को खो देता है वैसी ही हालत आप की होगई हो रही है और होगी!

अच्छा यह तो बताओ, कि इतर लोग आपके कौन कौन से त्योहार मनाते हैं? या आप को ही ईश्वर ने सब त्योहार मनाने का ठेका दिया है?

भवँरलाल श्रेष्ठी।



## वासन्तिका।

(१)
मित्रो, जरा संभल कर रहना,
सुध-बुध अपनी मत खो देना।
दृढ़ कर लेना अपने मन को,
उड़ा न देना विवेक-मन को॥
(२)
है वसंत ऋतु परम सुहाई,
त्रिविध समीर चले सुखदायी।
भांति भांति के पुष्प खिले हैं
परम मनोहर सुरभिसने हैं॥
(३)
वासंतिका आपके सन्मुख,
छवि दिखलाती हो प्रसन्नमुख।
देवी है यह वसंतऋतु की,
सत्ता बड़ी प्रबल है इसकी॥
(४)
मुनि भी मोहित हो जाते हैं,
निज को मन्मथवश पाते हैं।
इसका नहीं इशारा पावे,
तब तक नर ज्ञानी रह पावे॥
(५)
गजरे हार भुजावँद माला,
पहने हैं फूलों के वाला।
फूलों के ही साज सजाये,
खड़ी हुई है ठाठ बनाये॥
(६)
कमर लचक का क्या कहना है,
कैसा कुछ उभरा सीना है!
झलक रहा झीनी साड़ी में,
कोक मिथुन मानो जाली में॥
(७)
बालों बिच है मांग सुहाती,
'चपला स्थिर हो घन में भाती'।
कर्णफूल कानों में सोहैं,
भाल-बिन्दु दर्शक-मन मोहे॥
(८)
बड़ी अदा से तरु-शाखा पर,
अपने दहने कर को रखकर।
बांकी झांकी दिखलाती है,
सब के मन में बस जाती है॥
(९)
रसिक पुरुष इस पर हैं मरते,
अपने प्राण निछावर करते।
इसको नेक देख पाते हैं,
दीवाने से हो जाते हैं!
(१०)
चित्त कहीं भी नहिं लगता है,
इसके आस-पास फिरता है।
जो इसका खेही है होता,
बिना दाम का गुलाम होता॥
(११)
मुग्ध युवा तो इसे देख कर,
कहते हैं यों हे परमेश्वर!
नारी हमें मिले तो ऐसी,
प्यारी हमें मिले तो ऐसी॥

श्रीगिरिधर शर्मा।

## मित्र की जुदाई पर।

( ब्लेंक वर्ज़ )

गरमी की कड़ी धूप
माथे पड़ी सारी सही,
वृक्ष नीचे बैठे भी तो
सही लूह की लपट,
वर्षा में विलोके नीके-
हरे-भरे गिरि-शृंग,
जंगल की हरियाली,
लहलहे लता-वृक्ष,
घनभार घटावाली
भादों की [illegible]
काली, और कुओं की
शान्ति नहीं हुई तब तक,
निर्मल नभवाली—
शरद की शोभा हुई,
शीतल, सुगन्ध, मन्द—
वायु में किया 'विहार',
बैठे हम फल सम-
स्वच्छ मेल चाव से
पूनम की चांदनी में
चमेली के शुभ्र पुष्प,
[illegible] सूझे
धुधु पड़े मग-ग्रेम—
हेमन्त के त्रियामा में
जो जो बीती सही सब,
शिशिर का पाला पड़ा,
सब ठंडी मारें सहीं,
जग नहीं घबराये-
हम दोनों प्यारे मित्र!
दोनों सदा साथ रहे,
नहीं हुए दूर कभी,
साथ साथ सहे सब—
सुख-दुख, हर्ष शोक,
आया है वसन्त अब
बौराये हैं सहकार,
कोकिलाएं कुहू-कुहू-
गाती हैं पंचम राग,
तरु और बेलों पर-
नये नये पान आये,
मोतिया, गुलाब, बेला—
आदि के खिले हैं फूल,
जग में उछाह छाया,
प्रकृति में भरा रंग,
मलय-मारुत चला,
सुरभित है संसार,
सखे, ऐसे सुहावने—
समय, सदा के साथी!
सूझा है क्या, मांगने को—
विदाई का तुझे पान!
जाना था तो बिना कहे—
चुपचाप गया होता,
ढूढ़ता ही रहता मैं
सखे! तुझे घूम घूम,
"मित्र का वियोग हुए
सब सुख-दुःख होते
संयोग में दुख-सुख—
होते" यह सिद्ध बात,
जानते हुए भी यह
जाने की ही ठानी सखे!
मेरे दिली दर्द का न—
किया कुछ भी विचार,
पर-सखे! जाता हूँ मैं,
जाता हू मैं पहले ही
देरी किये बिना जाके
खड़ा रहता हू मित्र!
कह के जय श्रीकृष्ण
स्वागत करने तेरा
मन्दार-माला लेकर
उसी दिव्य धाम बीच —
"गिरिधर" खेही! सखा!
करुणा के महासिंधु!
सत्य-सागर! नागर!
प्रेमधर्म शिरोमणे!
होते ही नहीं हैं जहां—
मित्र मित्र कभी जुदा,
रहते सदा हैं साथ—
होकर प्रसन्नचित्त,
रमणीय भावनायें—
जहां सदा शोभा देतीं,
शोभा देते-दिव्यानन्द,
दिव्य स्नेह, दिव्य प्रेम--

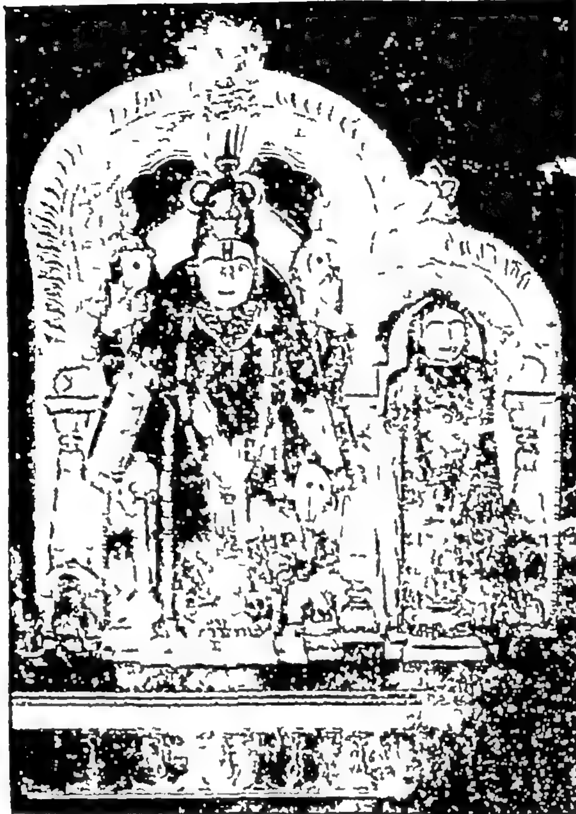


# श्रीक्षेत्र वाईवर्णन।





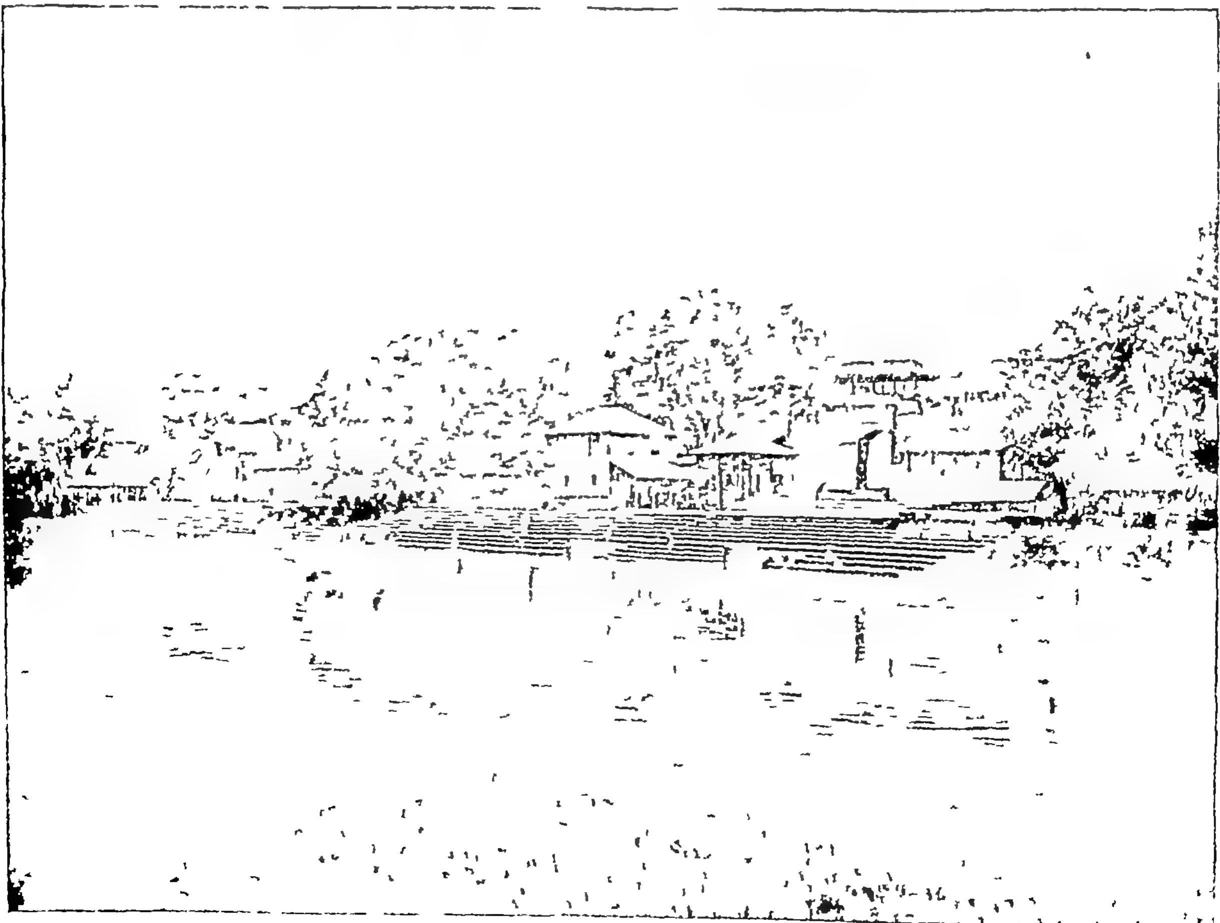
इतिहास—कृष्णा नदी की सुदर दरी में यह क्षेत्र बसा हुआ है। इसके आसपास वुद्ध के आश्रम हैं। इससे जान पड़ता है कि यह पवित्र स्थान वुद्ध का निर्माण किया हुआ होगा। ब्रह्माजी ने यहा के अग्नितीर्थ ( धोसि द्धेश्वर के पास ) पर यज्ञ किया, इस लिए यह वैराजक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महाभारतकाल में, अज्ञातवास करते समय, पाडव यहा थे, अतएव इसे विराटनगरी भी कहते हैं। इस विषय की दन्त कथा इस प्रकार है — भीम ने कीचक का वध किया और उसका मृत शरीर वे पाडवगढ को खींच ले गये। चूकि भीम के समान शक्तिमान् पुरुष उस कठोर मुर्दे को खींचता था, इस लिए पाडवगढ तक जमीन में नाला बनता गया और पानी का प्रवाह उस नाले के द्वारा वाई के पूर्व ओर कृष्णा नदी में आ मिला''। इससे उसे 'कीचकीवरा' कहने लगे। उसीके ऊपर की तरफ जो घाट है उसे 'भीमकुड' सज्ञा मिली। वाई क्षेत्र की ईशान दिशा की ओर एक पहाड़ है और उसपर एक मन्दिर है। यह पहाड़ कीचक और उसके दो साथियों को मार कर भस्म कर डालने की निशानी है। अस्तु।



फश पर के श्रीविष्णु-लक्ष्मी।

ऐसी यद्यपि दन्तकथा है, तथापि महाभारतकाल से मुसलमानी रियासत तक वाई का नाम भी कहीं नहीं सुना जाता। वहमनी राज्य के दौलताबाद के सूवेदार ने सन् १४५३ के लगभग वाई शहर को अपने हाथ में लिया। तब से १४८० तक यह वहमनी राज्य की एक फौजी छावनी हो गया था। बीच में और भी कई परिवर्तन इस शहर पर हुए। सन् १६४८ के वाद महाराज शिवाजी ने इस क्षेत्र को बीजापुरवालों से ले लिया। तब से इस क्षेत्र में हिन्दूपन की पवित्रता बढ़ने लगी। बीच में एक बार मुसल्मानों ने फिर इस क्षेत्र को अपने हस्तगत कर लिया था, परन्तु वीर मराठे सरदारों ने उन्हें युद्ध में हरा कर इस पवित्र क्षेत्र को छीन लिया। महाराष्ट्र-सत्ताधारियों की बराबर इस पुण्य क्षेत्र पर पूर्ण भक्ति रही। आज भी महाराष्ट्र राजा और सरदार समय समय पर इस क्षेत्र में आकर स्नान और पुण्यदान करते हैं।

सन् १७५३ में छत्रपति राजाराम की स्त्री, अपने पाच हजार सेवकों के साथ, वाई में आकर रही। सन् १७७४ ई० में पेशवाओं के न्यायाधीश और मन्त्री रामशास्त्री राजकाज से त्रस्त होकर और नारायणराव पेशवा के वध से खिन्न होकर इसी क्षेत्र में आकर 'राम-भजन' करते रहे। सन् १७९६ ई० में नाना फडनवीस इस बात से चिढ़कर कि, सेंधिया के चक्कर में पड़कर पेशवा अपनी हानि स्वय कर रहे हैं, वाई क्षेत्र ही में शान्ति लेने के लिए आये। सारांश, वाई क्षेत्र



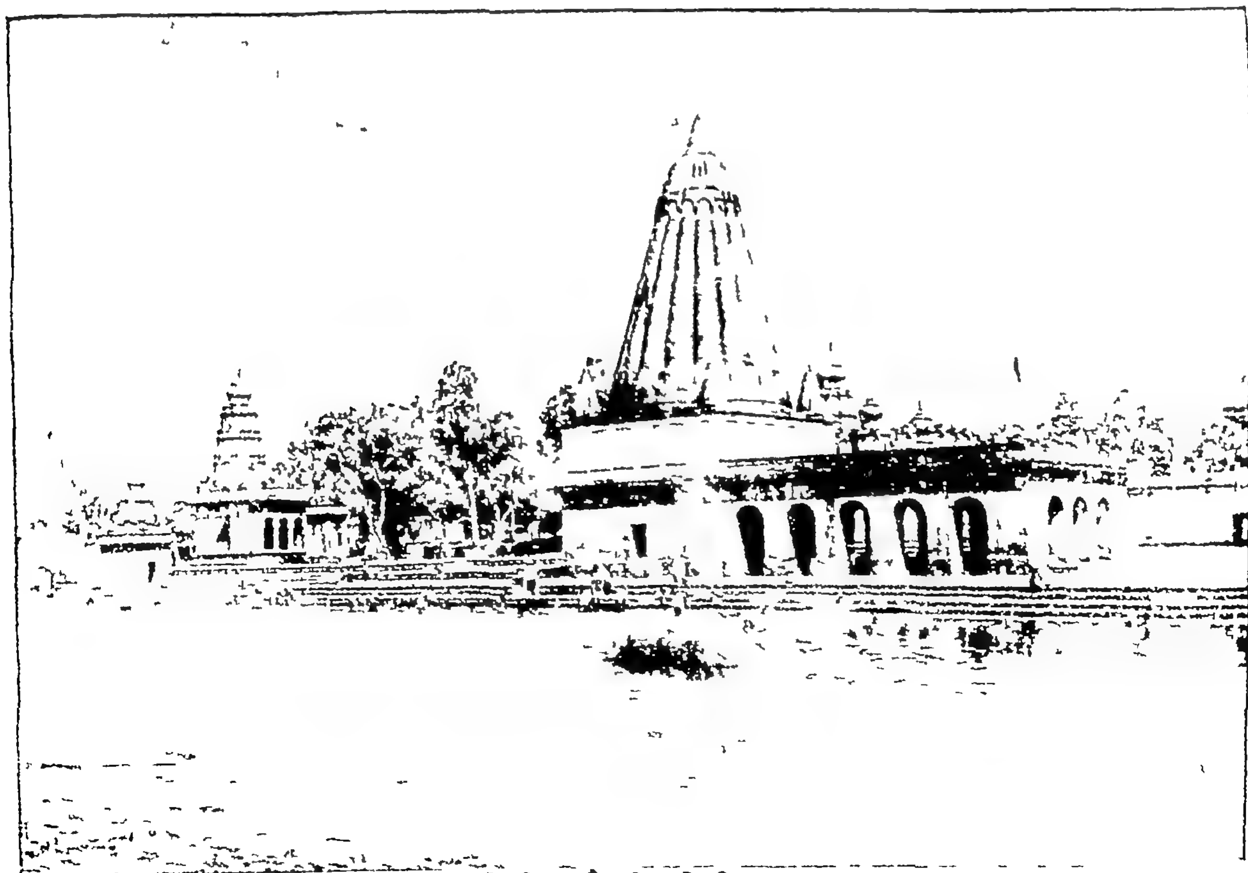
गगापुरी घाट।

को महाराष्ट्र लोग सदा से ही अत्यन्त पवित्र और शान्त तीर्थस्थान मानते आये हैं। कैप्टन डफस ने वाई क्षेत्र को महाराष्ट्र ब्राह्मणों का

दूसरा स्थल मैं नहीं दूंगा। आगन्तुकों ... समय ... को जाया करती। प्रत्यक्ष ... नगर ...



बीच की पंक्ति का घाट।

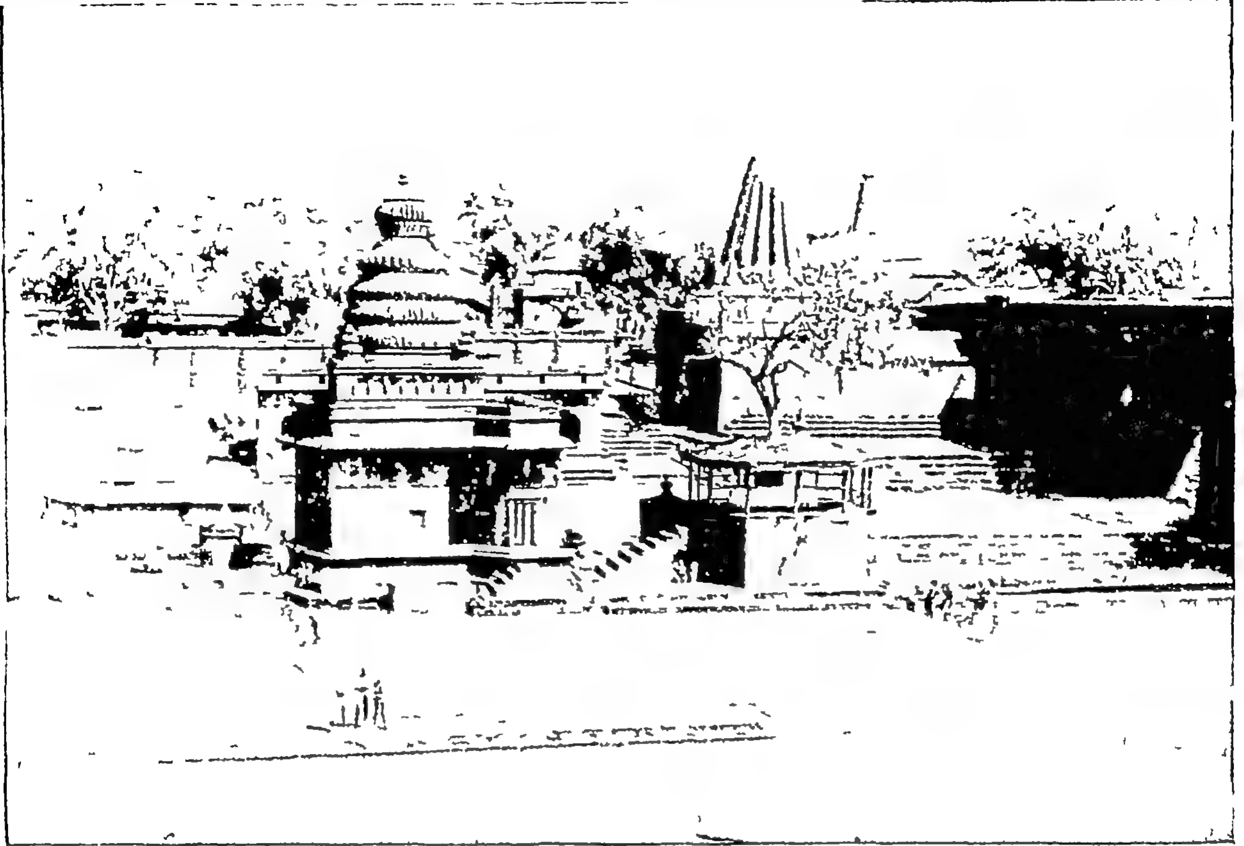


गणपति-पंक्तिघाट और श्रीगणपति-मन्दिर।

'विला' बतलाया है। लेडी फाकलैंड भी वाई क्षेत्र में छै वर्ष तक रही। वह भी एक जगह लिखती है—वाई से अधिक मनोहर अन्य

पड़ती। यहां का दृश्य बहुत ही रमणीय है। यहां की शान्ति मन आल्हाददायक है। वाई के भिन्न भिन्न भाग मनोहर हैं। किसी उ

स्थल से वाई को देखने पर जान पड़ता है कि वाई सौंदर्य-सम्पन्न है। क्षेत्र के पिछले अंग में छोटी बड़ी, भिन्न भिन्न आकार की, बहुत सी टेकडियां हैं। कुछ टेकड़ियों के शिखर ऊंचे हैं, कुछ तो प्राकृतिक ढँग की बनी हुई हैं, जैसे किले बने हों।



धमपुरी—घाट।



कृष्णानदी का घाट का दृश्य।

मन्दिर—वाई में कोई छोटे बड़े बीस मन्दिर अत्यन्त सुन्दर बने हुए हैं। पश्चिम से पूर्व ओर चलने पर पहले "रास्ते का बाड़ा" (जिसमें आज-कल दीवानी कचहरी है) मिलता है। 'रास्ते' नामक यहां बड़े भारी सरदार हो गये। अस्तु उस बाड़े से दक्षिण ओर मिला हुआ एक विस्तीर्ण घाट है। इसे गंगापुरी घाट कहते हैं। इसके पास उमा-महेश्वर का पंचायतन मन्दिर है। यह सन् १७८४ में बनाया गया। इसकी उँचाई चालीस फीट है। उपर्युक्त गंगापुरी घाट २०० फीट लम्बा है। उसे गंगाधरराव रास्ते ने १७८९ में बनवाया, भाऊ जोशी नामक एक भक्त ने इसे ७६ फीट और बढ़वा दिया। दूसरे बाजीराव ने अस्सी फीट बढ़ाया। अब यह ३५६ फीट लम्बा हो गया। पंचायतन मन्दिर मुसल्मानी ढँग का बना हुआ है। बीचों बीच उमा महेश्वर का देवालय है। "बीच की

पंक्ति' नामक एक और भी सुन्दर घाट बना हुआ है। इसके पास एक विष्णु का छोटा सा मन्दिर 'कोटिजन' नाम से प्रसिद्ध है। उसीके पूर्व ओर श्रीमच्छंकराचार्य की समाधि है। (१६०१) नीचे की तरफ जो घाट है उससे मिली हुई, उत्तर की ओर, एक बड़ी धर्मशाला है। उसमें "हीच की पंक्ति" का श्रीकृष्णोत्सव होता रहता है। इस धर्मशाले के चौक में बहुत यज्ञ हुए हैं। बिलकुल अन्तिम यज्ञ भाऊ दीक्षित लेले ने गत ज्येष्ठ मास में किया। इस धर्मशाला के दक्षिण ओर श्रीसिद्धेश्वर का मन्दिर है और उसीके नीचे अग्नितीर्थ है। वहां भी अच्छा घाट है। इसके आगे लेडी फाकलंड का वर्णन किया हुआ सौन्दर्य सम्पन्न स्थान "गणपति पंक्ति" का घाट है। पहले गंगारामेश्वर का मन्दिर मिलता है। इसे गंगाधरराव रास्ते ने सन् १७८० में बनवाया। यह २६ फीट चौड़ा, ३२ फीट लम्बा और चालीस फीट ऊंचा है। इसके आगे गणपति मन्दिर है।



पुल के नीचे कृष्णानदी का दृश्य ( भीमकुंड आदि घाट )।

इसे भिकाजीपन्त रास्ते ने सन् १७७२ में बनवाया। इसके बनवाने में एक लाख पचास हजार रुपये खर्च हुए। इससे मिला हुआ एक ६२ फीट लम्बा घाट है। उसे आनन्दराव भिकाजी ने बनवाया। गणपति का मण्डप ६० फीट लम्बा और ३० फीट चौड़ा है। दीवाल की मुटाई चार फीट है। छत लदावदार चौकोनी पत्थर की है। दोनों ओर पांच कमानीदार दरवाजे हैं। ऊँचाई ७० फीट से भी अधिक है। इस गणपति को "ढोल्या गणपति" कहते हैं, क्योंकि यह बहुत ही बड़ा है। इस मूर्ति का प्रचण्ड पत्थर जब पहाड़ से लाया गया तब मार्ग में उसके दो टुकड़े हो गये। एक टुकड़े से यह गणपति और दूसरे से "श्रीकाशीविश्वेश्वर" के सामने का नन्दी तैयार किया गया। तिस पर भी गणपति के मस्तक पर दूर्वांकुर चढ़ाने के लिए सीढ़ी लगानी पड़ती है!

इस गणेशमन्दिर के उत्तर ओर २१६ फीट लम्बा और ६४ फीट चौड़ा एक पत्थर का मन्दिर है। इसे सन् १७४३ में [illegible] ने बनवाया। इस देवालय का [illegible] है। इसके भीतों और गृह ऊंची दो दीपमालाएं हैं। इस "काशीविश्वेश्वर" के आगे जो नन्दी है उसके गले का घन्टा और फूलमाला भी [illegible] बनाई गई है। मन्दिर के भीतर सभामण्डप के खम्भ इतने [illegible] हैं कि उनमें देखनेवाले का मुख दिख पड़ता है।

इस गणपति पंक्ति को छोड़ कर रामपुरी की ओर चलने पर महालक्ष्मी का एक मन्दिर फर्श पर है। इसे भी सन् १७७८ में आनन्दराव रास्ते ने बनवाया। इसके बनवाने में २७४७३० रु० व्यय हुआ। मन्दिर की उंचाई ७० फीट है। पूर्व पश्चिम लम्बाई ७४ फीट और चौड़ाई ४० फीट है। मन्दिर में पांच दालाने हैं। यह [illegible] ढंग का बड़ा विचित्र बना हुआ है। इस मन्दिर को छोड़ कर उत्तर ओर जाने पर बाईं ओर पूर्वाभिमुखी श्रीविष्णु का मन्दिर मिलता है। इसे भी आनन्दराव महाशय ने ही बनवाया। इसकी तैयारी में २१६७५० रु० लगे। इसके सभामण्डप की लम्बाई ४४ फीट और चौड़ाई ३८ फीट है। इसकी पत्थर की छत नीचे की भूमि से ऐसी समानता रखती है कि देखने वाले को उसके कलाकौशल पर बड़ा कौतूहल होता है। इस प्रकार की सपाट छत का बड़ा मण्डप बहुधा कहीं नहीं देख पड़ता। क्योंकि बीच में इसमें कहीं भी खम्भे नहीं हैं। इस देवालय के अतिरिक्त और भी दस बड़े बड़े देवालय हैं। फर्श पर श्रीराम और श्रीवेंकटेश्वर के मन्दिर हैं। वेंकटेश्वर का मन्दिर एक पुण्यशीला स्त्री ने बनवाया। पुल के पास दत्तात्रेय का मन्दिर त्र्यंबक बाबा ने सन् १८६१ में बनवाया। पुल के नीचे विठोबा का मन्दिर ताईसाहेब ने बनवाया। इन मन्दिरों के सिवाय रास्ते साहब का महल, पेशवा का बनवाया हुआ पुराना पुल, इत्यादि स्थल भी दर्शनीय हैं।

---

# भारत की भावी भलाई का उपाय।

भारतवर्ष के लीडर ( अग्रणी ) वही पुरुष हैं जो पढ़े लिखे हैं और जिनमें देशहितैपिता है। इन्हीं लोगों के हाथ में हमारे देश की शोकमय अवस्था का सुधार है। मैंने अपने देश के सुधार के अर्थ बहुत कुछ सोच विचार किया है और मुझे विश्वास है कि भारतवासियों के लिये सब से भारी लाभदायक बात सम्वादपत्रों का पढ़ना है। जिसके द्वारा ज्ञात हो सकता है कि देश के सुधार के लिये किन २ बातों की आवश्यकता है। इस लिये प्रत्येक भारतवासी को यह भी अपना धर्म समझना चाहिये कि अपने मित्र वर्गों को ताश, चौसर, शतरञ्ज खेलने और निर्मूल गप्पों में काल व्यतीत करने से रोकें और उनको इस बात की प्रेरणा दिलावें कि वे लोग अपना समय सम्वाद पत्र और पुस्तक पढ़ने में वितावें, हमारे देशभाइयों का कितना अमूल्य समय केवल गप्पबाजियों में ही बीतता है यदि वे अपने इस अवसर को समाचारपत्रों के पढ़ने में व्यतीत करें तो उनकी अवस्था इतनी शोचनीय न हो। देखिये जापानी और इङ्गलिस्तान-वासी बच्चे से लगा कर बूढ़े तक सम्वादपत्रों का नित्य पढना केवल अपना एक नित्यकर्म ही नहीं समझते बल्कि धर्म के समान मानते हैं। उनके जाति और देश की गौरवता सम्वाद पत्र ही है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में निर्धनता के कारण सभी लोग पत्र नहीं खरीद सकते हैं, इस लिये मैं भारतवर्ष के समस्त देशहितैपियों से सविनय प्रार्थना करता हूं कि वे लोग जिले २ में और तहसील २ में पुस्तकालय स्थापित करें और करावें जिसमें उत्तम २ ग्रन्थ और पत्र मँगाये जावें और सर्वसाधारण को शौक दिलावें कि अपने फुरसत का समय पढ़ने में व्यतीत करें॥

यूरुप और अमेरिका देशों के लोग अपने नित्य के काम काज से छुट्टी पाकर अपने फुरसत का समय पत्रों के पढ़ने में विताते हैं इसी लिये वहां के लोग अधिक विद्वान् और,देशहितैपी और गुणवान हैं। भारतवर्ष में यह काम बड़ी सरलता से हो सकता है, क्योंकि यहां गांव २ जिले २ में मन्दिर और धर्मशालायें मौजूद हैं जहां उत्तम २

सम्वाद-पत्र रक्खे रहा करें। और लोग जाकर मुफ्त में पढ़ा करें। इससे कई लाभ तो प्रत्यक्ष ही है (१) विना अधिक खर्च किये ही उत्तम स्थान पढ़ने के लिये मिल सकते है,(२) मन्दिरों का सुधार भी इससे बहुत कुछ हो सकता है, (३) सर्वसाधारण अपना काल पढ़ने में व्यतीत कर सकेंगे और देश की अवस्था जान जायँगे तो बहुत कुछ देश को लाभ पहुँचा सकेंगे, (४) उनका समय भी व्यर्थ न जायगा, (५) जब लोगों को मुफ्त समाचारपत्र पढ़ने को मिलेंगे तो वे भी अवश्य ही अपने देश की बुरी अवस्था को जान कर उसके सुधार के उपाय में तत्पर होंगे। अतएव अपने देशहितैषी भाइयों से प्रार्थना करता हूँ कि यदि वे समझते हैं कि देश की अवस्था बहुत ही खराब और हमारी अधोगति है, तो वे लोग अपने दयापात्र देश-भाइयों के हितार्थ प्रत्येक देवमन्दिरों, धर्मशालाओं ऐसे स्थानों में धर्मार्थ पुस्तकालय स्थापित करें। यदि आप लोग इस बात के करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ले तो थोड़े ही से परिश्रम में अपने देश को बड़ा भारी लाभ पहुँचा सकते हैं। मैं प्रत्येक देशहितैषी से सविनय निवेदन करता हूँ कि इस कार्य को शीघ्र ही करने पर तत्पर हो जाय। डेरा इस्माइल खां में मुझे बहुत कुछ सफलता इस प्रकार से हुई, अन्य जिलों में भी सफलता न हो इसका कोई कारण नहीं हो सकता है। इस लिये मैं अपने देश भाई, मित्र और धनवान् पुरुषों को बार बार चेताता हूँ कि मन्दिरों, और धर्मशालाओं में फ्री लाइब्रेरी खुलवा दें, जिनमें उत्तम २ कई पत्र मँगाये जाया करें और लोग उन्हें मुफ्त पढ़ सकें। विचार कर देखिये तो यह कैसे पुण्य का कार्य है, अन्त में परमेश्वर से भी प्रार्थना है कि देश-हितैषियों को इस धर्म-कार्य में सहायता दें।

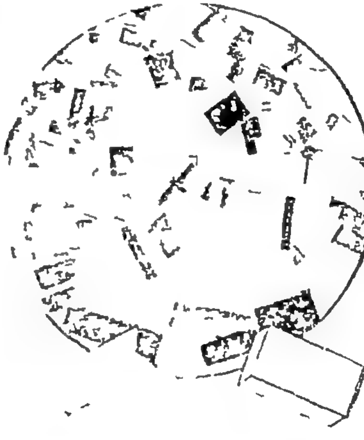
टहलराम गगाराम, जमींदार, डेराइस्माइल खां।

---

# रक्त में स्फटिक।

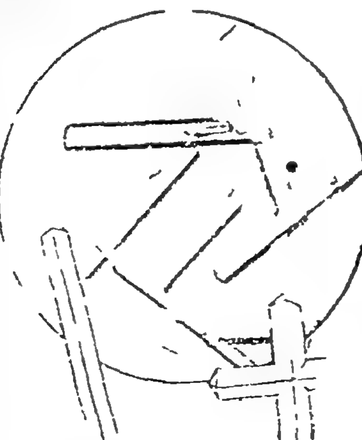
कोलम्बस ने जिस प्रकार अमेरिका की खोज की उसी प्रकार विज्ञान विशारद लोग भी दिन पर दिन नवीन नवीन बातों का पता लगाते रहते हैं। इन नवीन बातों से कभी कभी यदि ऐसा जान पड़ता है कि पुराने विचार सदोष थे तो कभी कभी ऐसा भी मालूम होता है कि उन विचारों की उपयुक्तता का क्षेत्र पहले की अपेक्षा भी अधिक विस्तृत है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य के सुख के साधन और उसकी कर्तृत्वशक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। रक्त में स्फटिक होने की जो खोज अभी हुई है वह भी इसी प्रकार की है।

यह बात तो बहुत लोग जानते होंगे कि कुछ क्षार विशिष्ट स्फटिकाकृति धारण करते हैं। फिटकरी, नमक, नीलाथोथा, इत्यादि पदार्थों का द्रव तैयार करके उसे उथले कांचपात्र में यदि खुला रख दिया जाय तो उसका पानी सूख जायगा और उन पदार्थों के घन स्फटिक हो जायँगे। विशिष्ट पदार्थों के स्फटिक नियत आकृतियों के ही होते हैं, इस लिए स्फटिकों की उन आकृतियों पर से यह अनुमान किया जा सकता है कि वे स्फटिक किन पदार्थों के हैं।

आकृति १—बन्दर और मनुष्य के रक्तों के स्फटिकों के दृश्य—यह पता लगा है कि प्रत्येक जाति के प्राणी के रक्त का स्फटिक विशिष्ट आकार का होता है। कभी कभी रक्त के एक ही आदर्श में दो भिन्न भिन्न आकारों के स्फटिक पाये जाते हैं। इस आकृति में बाईं ओर के आदर्श में दो भिन्न आकारों के स्फटिक हैं। रक्त के घटकद्रव्यों की रासायनिक घटना में जो भिन्नता है वही इसका कारण है, परन्तु इससे प्राणियों की जाति पहचानने के लिए इन स्फटिकों का जो उपयोग होता है उसमें न्यूनता नहीं आती।

हमारे रक्त में भी भिन्न भिन्न रासायनिक क्षार हैं। रक्त का वृन्द सूखने पर उसके क्षारों को भी विशिष्ट प्रकार के स्फटिकों का रूप प्राप्त होता है। देशकालादि भिन्न भिन्न परिस्थितियों के मनुष्यों के और अन्य प्राणियों के रक्त के क्षारों की रासायनिक घटना और उनका प्रमाण भिन्न भिन्न होता है। अतएव भिन्न भिन्न प्राणियों के रक्त के क्षारों के स्फटिक भिन्न भिन्न आकृतियों के होते हैं। इस कारण, जैसे यह बात प्रत्येक मनुष्य ठीक ठीक बतला सकता है कि अमुक रंग हरा या लाल है, वैसे ही रक्त के भिन्न भिन्न प्रकार के स्फटिकों को देख कर यह भी निश्चयपूर्वक बतलाया जा सकता है कि यह रक्त सुअर का है, या हबशी मनुष्य का है, या अन्य किसी प्राणी का है।




आकृति २—बाघ और बिल्ली के रक्तों के स्फटिक—दोनों के स्फटिकों में एक प्रकार की समता है। परन्तु बिल्ली के स्फटिक स्वस्तिकाकृति हैं। एक ही वर्ग में आनेवाले प्राणियों के स्फटिकों में यद्यपि समता देख पड़े, तथापि उनके कोनों का अच्छी तरह निरीक्षण करने पर स्पष्ट देख पड़ता है कि वे प्राणी भिन्न भिन्न जाति के हैं।

रक्त के स्फटिक बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। वे यद्यपि १/२५०० इंच लम्बे और १/१००० इंच चौड़े ही होते हैं, तथापि उनके कारण प्राणिशास्त्रसम्बन्धी कुछ नवीन बातें हमें अभी मालूम हुई हैं। मनुष्यों और बन्दरों का सम्बन्ध इस नवीन आविष्कार के कारण दृढ़ हो गया है। मनुष्य और बन्दर के रक्त के स्फटिकों में बहुत साम्य है, परन्तु उनमें दिखपड़नेवाले थोड़े भेद के कारण ही यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वे सब स्फटिक किस रक्त के हैं। (आकृति पहली देखिये) इस आकृति में मनुष्य के रक्त का दृश्य बाईं ओर और बन्दर के रक्त का दृश्य दाहनी ओर दिया हुआ है।

दूसरी आकृति में बिल्ली और बाघ के रक्तों के दृश्य हैं। बाईं ओर के, बिल्ली के, दृश्य के स्फटिक संयुक्त स्वस्तिकाकृति हैं। परन्तु उनके घटक भाग दाहनी ओर के दृश्य के स्फटिकों के समान ही हैं। इन स्फटिकों के पृष्ठभागों के परस्पर जो कोन बनते हैं वे दोनों में बराबर ही हैं।

रक्त के दृश्य पर से यह पहचानने की, कि यह रक्त किसका है, जो यह नवीन युक्ति निकली उसके कारण कुछ पुराने विचार सदोष कैसे ठहरते हैं—सो एक ही उदाहरण से ध्यान में आ जायगा।

प्राणियों के वर्ग निश्चित करने की प्राचीन पद्धति के अनुसार ऐसा माना जाता है कि रीछ कुत्ता, स्यार और भेड़िया के वर्ग का प्राणी है। परन्तु इन प्राणियों के रक्तों के दृश्यों पर से अब यह निश्चित हुआ है कि रीछ दूसरे ही वर्ग का प्राणी है। चूंकि कुत्ता और घोड़ा के पूर्वज एक ही हैं, अतएव उनके रक्तों के दृश्यों में बहुत भी समानता पाई जाती है (आ० ३ देखिये) इस आकृति में बाईं ओर घोड़े के रक्त का और दाहनी ओर न्यूफाउंडलेंड जाति के कुत्ते के रक्त का दृश्य दिखलाया गया है।

पक्षियों के सम्बन्ध में भी यही बात देखी जाती है। आज तक ग्रामीण मुर्गे और तुर्की दाढ़ीवाले मुर्गे एक ही वर्ग के प्राणी माने

जाते हैं । परन्तु गिनी पिग आक्सिजन नामक पशु की जाति का प्राणी है यद्यपि उनके रक्त के स्फटिकों की समानता में भिन्न हुआ है । आ० ४ में एक पक्षी के रक्त के स्फटिक दिखलाये गये हैं ।

नोफोन नामक ... पशु की ... स्फटिक ... गया । परन्तु उस समय ... नहीं गया ।



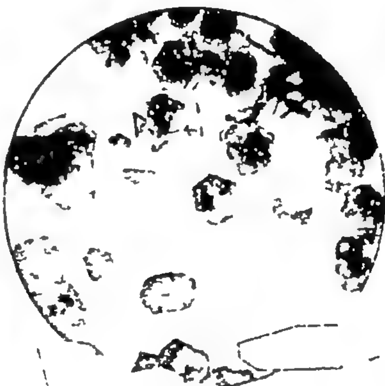
आकृति ३—घोडा और कुत्ता के रक्त के स्फटिक—इनमें भेद और साम्य स्पष्ट दिख रहा है । ... युग में घोडा आकार में न्यूफौंडलैंड जाति के कुत्ते के समान था तथा इन दोनों प्राणियों का अन्य कई बातों में भी साम्य था, इस कारण उपर्युक्त आकृति के स्फटिकों का साम्य— और उनका भेद—कौतूहल और महत्व की बात है ।

आकृति ४—... रक्त के स्फटिक— ... आकार के समान हैं । ... किसी भी ... होते हैं । ... पाये जाते ।

ये स्फटिक ईंटों के समान आकृति के होते हैं और उनके एक पर एक पर्त जमे रहते हैं ।

खून के समान भयंकर अपराधों की जाँच करते समय इस खोज का बड़ा अच्छा उपयोग होगा । किसी पर मिथ्या आरोप सिद्ध करने के लिए यदि उसके वस्त्रों पर रक्त के दाग डाले गये हैं तो यह तुरन्त ही बतलाया जा सकता है कि वे दाग किस प्राणी के रक्त के हैं ।

स्फटिकों की आकृतियों पर से पदार्थों की परीक्षा करना इतनी गहन कला है कि उसे स्फटिकविद्या कहना चाहिए । इस विद्या में निष्णात हो जानेवाला मनुष्य हब्शी और गोरे मनुष्य के रक्त का भेद सहज ही जान सकता है । परन्तु धीरे धीरे उसे चीनी, अमेरिकन, जर्मन इत्यादि भिन्न भिन्न देशों के मनुष्यों का रक्त भी मालूम होने लगेगा ।



आकृति ५—सफेद चूहा और गिलहरी के रक्त के स्फटिक—इन प्राणियों की ... इन स्फटिकों में हैं ... प्राणिशास्त्र की दृष्टि में ... का—एक प्रश्न का निकट साम्य ... कि ये प्राणी भिन्न भिन्न जाति के हैं । भेद में यह स्पष्ट देख पड़ेगा ।

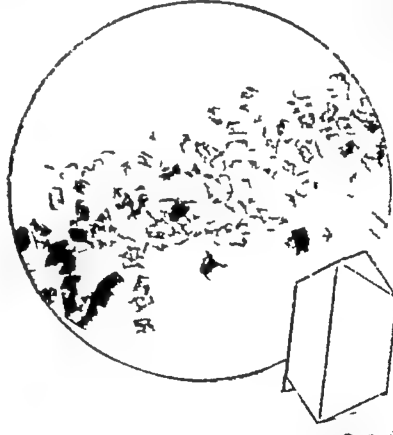
... निकालीं ... की आकृति के स्फटिक दिखाई दिये और इन बातों पर से सहज ही यह प्रश्न उठा कि क्या भिन्न भिन्न प्राणियों के रक्त में भिन्न भिन्न स्फटिक होते हैं ? बस, यहीं से इस ओर शास्त्रवेत्ताओं का ध्यान अधिक आकर्षित हुआ ।

आ० ५ में चूहे और गिलहरी के रक्तों के स्फटिक दिखलाये गये हैं ।

आ० ६ में तुर्की मुर्ग और सुअर के रक्तों के ... हैं । उनमें किसी प्रकार का साम्य नहीं ।

चूहे के रक्त का द्रव्य ... भी तैयार कर सकता है । सुई से छेद कर चूहे के शरीर से एक बूँद रक्त निकाल और फिर उसे काँच की पट्टी पर रखे । उस बिन्दु में पानी का एक बिन्दु डाल और उस पर काँच का पतला ढकन रखे । धीरे धीरे स्फटिक देख पड़ने लगेंगे । पानी के बूँद से चूहे के रक्त का रंग फैल जाता है और उसके क्षार स्फटिक रूप में अलग हो जाते हैं । पर अन्य प्राणियों के रक्तों के द्रव्य तैयार करते समय रक्तों का रंग अलग करने के लिये उनमें प्रथम 'ईथर' का एक आध बिंदु डालकर उसे खूब हिलाना चाहिए । इस रीति से अन्य प्राणियों के रक्तों के आदर्श तैयार करना सहज नहीं । आज कल हाथ के अंगूठे की छाप पर से जिस प्रकार भिन्न भिन्न व्यक्तियों की पहचान में आने लगी है उसी प्रकार रक्त के भिन्न भिन्न स्फटिकों पर से भी भविष्यत् में उनकी पहचान में आना सम्भव होगा । ऐसे लक्षण दिख पड़ने लगे हैं ।

अन्य अनेक आविष्कारों की तरह भिन्न भिन्न रक्तों में भिन्न भिन्न आकृतियों के स्फटिक होते हैं, यह पता भी एकाएक आप ही आप लगा । कोई इन्द्रियविज्ञानशास्त्री एक प्रयोग करने में लगा था । सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता से रक्त के एक बूँद को जाँचने के लिए उसने उसे काँच की एक पट्टी पर रक्खा और उस पर काँच का एक पतला ढकन रख दिया । इतने ही में उसे किसी कार्य के लिए बाहर जाना पड़ा । जब वह लौट कर आया तब रक्त का बूँद सूख गया था । परन्तु सूक्ष्मदर्शक के नीचे रख कर देखने पर उसे उसमें



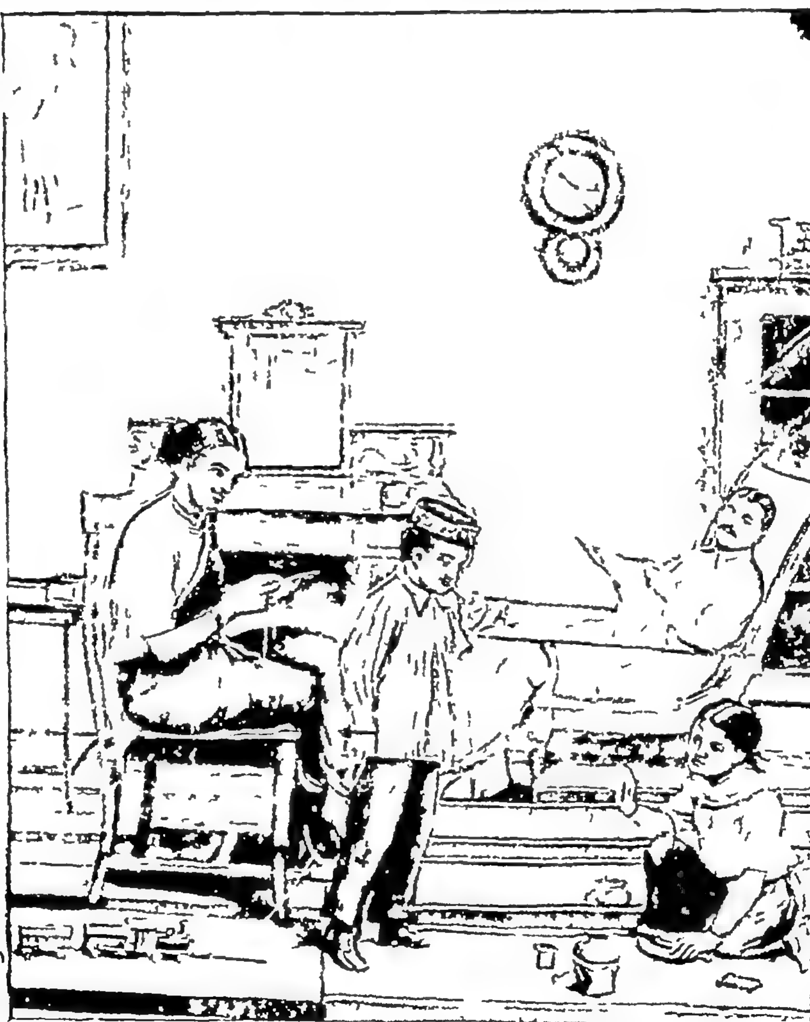
आकृति ६—गिनी पिग और सुअर के रक्त के स्फटिक—बाएँ ओर के आदर्श में दो भिन्न भिन्न आकारों के स्फटिक हैं । रक्त के आक्सिजन की न्यूनाधिकता के मान से स्फटिकों के आकार बदलते हैं । दाईं तरफ की आकृति में सुअर के स्फटिक दिखलाये गये हैं । इन दो आदर्शों में यत्किंचित् भी साम्य नहीं । प्राणिशास्त्र की दृष्टि से सुअर और गिनी पिग में भी परस्पर कुछ सम्बन्ध नहीं, अतएव अवश्य ही उनके स्फटिकों में समता न होगी । गिनी पिग गिलहरी और चूहे के समान और इन्हीं के वर्ग का ६।७ इंच लम्बा प्राणी है ।

# शास्त्रीय गृह-संवर्धन



शास्त्रीय गृह संवर्धन का मूलतत्व:—शीलवान् स्त्री पुरुष समाज के आधारस्तम्भ हैं। परन्तु ऐसे स्त्री पुरुष तभी निपज सकते हैं जब कि गृहरचना और गृह प्रबन्ध शुद्ध शास्त्रीय, अर्थात् वैज्ञानिक, रीति पर किया जाय। इस दृष्टि से प्रत्येक गृह भावी राष्ट्र का एक मुख्य घटक है, इसी लिए गृहसुधार भी राष्ट्रीय सुधार का एक मुख्य अंग है।

संसार की सारी औद्योगिक संस्थाओं से गृहसंस्था अधिक उपयुक्त और महत्वपूर्ण है। गृह भी एक औद्योगिक संस्था ही है और संसार को कर्तव्यवान् तथा सदाचारी स्त्री पुरुषों की पूर्ति करना इस संस्था का मुख्य उद्योग है—और यही उसका मुख्य ध्येय भी है। बुद्धिमान्, कर्तव्यदक्ष और लोकहिततत्पर स्त्री-पुरुष निर्माण करने का उद्योग अन्य सारे उद्योगों से श्रेष्ठ है। इस उद्योग के द्वारा बुद्धिमान् स्त्री पुरुष सृष्टि निर्माता ब्रह्मदेव की सहकारिता कर सकते हैं। चिरंजीव आत्मा के लिए सजीव, सुडौल और निरोगी शरीररूपी मन्दिर बनाने पड़ते हैं सचमुच ही इस काम के आगे संसार के अन्य उद्योग कम कीमत के ठहरते हैं। संसार के कल-कारखानों में उत्पन्न होनेवाले अन्य सब माल से बुद्धिमान्, निश्चयी और विचारवान् मनुष्यरूपी माल की कीमत बहुत ही अधिक है। यह मनुष्यरूपी माल वास्तव में अनमोल है। वर्तमान नवयुवक लड़के लड़कियां भी यही अनमोल माल आगे उत्पन्न करनेवाले हैं। यही सजीव मनुष्यरूपी माल भावी शहर, राज्य और राष्ट्र उत्पन्न करेगा। सुदृढ़ शरीर, बुद्धिमान मस्तिष्क और विचारवान् तथा विवेकी मन—ये बातें स्त्री पुरुषों के अतिरिक्त क्या किसी अन्य भी यांत्रिक कारखाने में उत्पन्न की जा सकती हैं? नीचे के विचार इस उद्देश्य से प्रकट किये जाते हैं कि जिससे यह मनुष्यरूपी अनमोल माल, ईश्वर कृपा से जिन्हें, उत्पन्न करने का अवसर मिला है और आगे शीघ्र ही मिलने वाला है उन्हें अपने पवित्र-कार्य की जवाबदारी और महत्व कुछ न कुछ मालूम हो जाय और विचारवानों का ध्यान इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर आकर्षित हो।



राष्ट्रीय सुधार की मुख्य जड़ गृहसुधार ही है और गृहसुधार करनेवाले सुशिक्षित पति और पत्नी दोनों अत्यन्त पवित्र ईशकार्य और राष्ट्रकार्य यदि करना चाहें तो कर सकते हैं।

जिस प्रकार वैज्ञानिक रीति से चलाये हुए अच्छे कारखाने के बिना अच्छा माल उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार स्त्री-पुरुषों की ओर से गृहरूपी अनादि संस्था का शास्त्रीय रीति से संवर्धन अथवा परिपालन जब तक नहीं होता तब तक मनुष्यरूपी माल अच्छा और बलवान् उत्पन्न नहीं होता। वर्तमान समय में यदि सूक्ष्मता से देखा जाय, तो हमारे देश में मनुष्यरूपी माल बहुत ही नीचे दरजे का और हलका उत्पन्न हो रहा है, यह बात प्रत्येक विचारवान् मनुष्य स्वीकार करेगा। परन्तु जब तक सुजान स्त्री-पुरुष अपनी जवाबदारी पहचान कर और अपने महत्वपूर्ण कर्तव्य का ध्यान रख कर गृहरूपी औद्योगिक संस्था वैज्ञानिक रीति से नहीं चलावेंगे तब तक यह नीचे दरजे का और बेकाम माल अच्छा उत्पन्न नहीं होगा। अन्य कोई माल जब बुरा निकलने लगता है तब सारे लोग यह चिल्लाहट मचाते हैं कि कारखाने वैज्ञानिक रीति पर चलाओ, परन्तु इस मनुष्यरूपी माल के जनन के विषय में चारों ओर जो अवहेलना और असावधानी देखी जाती है वह सचमुच ही शोचनीय है। छोटी सी दियासलाई की डब्बी निर्माण करने के लिए जापान के समान दूर-देश में जाकर कुछ वर्ष ज्ञानार्जन करने की आवश्यकता होती है, परन्तु मनुष्यरूपी माल उत्पन्न करने के लिए शिक्षारूपी पूर्व-तैयारी और शरीर बलवर्धन की बिलकुल ही आवश्यकता नहीं होती, किन्तु केवल उतने ही समय भर के लिए, विवाहोत्सव की तैयारी को छोड़ कर और लेन-देन की तथा अन्य मानापमान की शर्तें ठहराने के सिवाय, किसी भी पूर्व तैयारी की आवश्यकता नहीं होती, यह बड़े खेद को बात है!

यह बात तो सभी को मालूम है कि वैज्ञानिक रीति से, और प्रबन्ध के साथ चलते हुए, कारखानों से माल अच्छा निकलता है। अब, ऐसे कारखाने जिन नियमों और रीतियों से चलते रहते हैं वे नियम और वे रीतियां गृहरूपी औद्योगिक कारखानों की उन्नति के भी कारण हो सकते हैं। अतएव अन्य औद्योगिक संस्थाओं और गृहरूपी औद्योगिक संस्था की तुलना नीचे दी जाती है।

प्रत्येक कारखाना खोलने में अथवा प्रत्येक औद्योगिक संस्था चलाने में जिस प्रकार पहले पहल पूँजी की आवश्यकता होती है उसी प्रकार, जिस माल का हम कारखाना खोलनेवाले हैं उस माल की उत्पत्ति के विषय में पहले पहल सब वैज्ञानिक ज्ञान की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। बहुधा कारखानेवालों को पूँजी की अपेक्षा माल उत्पन्न करने के वैज्ञानिक ज्ञान की ही अत्यन्त आवश्यकता रहती है। जड़ वस्तु निर्माण करनेवाला कारखाना चलाने में यदि पहले ही पूँजी की फिक्र कर रखनी होती है तो फिर गृहरूपी औद्योगिक संस्था चलानेवाली विवाहित जोड़ी को पहले ही से पूँजी की फिक्र कर रखना कितना आवश्यक है—सो सभी जान सकते हैं। पूँजी की कुछ भी तैयारी न रहते हुए गृहरूपी औद्योगिक संस्था चलाने की इच्छा करना विवाहित जोड़ी के लिए ऐसी ही बात है, जैसे कि कोई बिना पूँजी के कारखाना हो। कारखाना चलाने का, और उसमें उत्पन्न होनेवाले माल का, वैज्ञानिक ज्ञान न होने के कारण हमारे देश के कितने ही व्यवसाय बैठ गये हैं और इस कारण देश का जो नुकसान हुआ है सो सब को मालूम ही है। यदि हमें किसी कारखाने का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना है तो तज्ञ मनुष्यों के पास रह कर हमें कम से कम तीन चार वर्ष शिक्षा प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसी दशा में यदि पढ़े-लिखे लोग भी ऐसा ही समझें कि, गृहरूपी औद्योगिक संस्था चलानेवाली विवाहेच्छु जोड़ी के लिए, शरीरशास्त्र, आरोग्यशास्त्र, सुप्रजानिर्माणशास्त्र, बालसंगोपनशास्त्र, मानसशास्त्र और अन्य अनेक उपयुक्त शास्त्रों का ज्ञान होने की कुछ भी आवश्यकता नहीं, तो यह सचमुच ही मनुष्यजाति का एक बड़ा भारी दुर्भाग्य समझना चाहिए।

गृहरूपी औद्योगिक संस्था व्यवस्थित रीति से चलाने के लिए सब शास्त्रों और कलाओं के ज्ञान की आवश्यकता है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो मालूम हो सकता है

[illegible] शिक्षा की ओर सारे शास्त्रीय-वैज्ञानिक-ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। आजन्म ब्रह्मचारी रहनेवाले, गृहरूपी संस्था का सम्बन्ध तोड़ देनेवाले विधुर और विधवा चाहे सिर्फ पेटभर के ही लिए शिक्षा प्राप्त कर लें तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु जिन स्त्रीपुरुषों ने विवाह का ध्येय अपने सामने रख लिया है उन्हें, जहा तक हो सके, सब शास्त्रों और कलाओं का

[illegible] मानो मृगजल के पीछे दौड़ना है।

प्रत्येक औद्योगिक संस्था में साधारणतया नीचे लिखे हुए चार विभाग रहते हैं और इन चार विभागों का उत्तम रीति से प्रबन्ध करने पर ही उन औद्योगिक संस्थाओं का जीवन अवलम्बित रहता

सुन्दर शरीर, तेजस्वी मस्तिष्क, उदार और विचारवान् मन निर्माण करने में, प्रत्येक उपयुक्त जड़ वस्तु निर्माण करने की अपेक्षा, अधिक शास्त्रीय ज्ञान और बुद्धि-कौशल की आवश्यकता होती है, इसी लिए सुप्रजा निर्माण करनेवाले पति और पत्नी को सारे उपयुक्त शास्त्रज्ञान की और कलाओं की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है।

है। अब यहाँ पर इस बात का विचार किया जाता है कि इन चार विभागों का ठीक ठीक प्रबन्ध होने पर ही गृहरूपी हमारी औद्योगिक संस्था का भी जीवन कैसे अवलम्बित है। प्रत्येक औद्योगिक संस्था में साधारणतया ये चार विभाग होते हैं। (१) सारे कारखाने का प्रबन्ध करनेवाला मुख्य विभाग, (२) हिसाब का विभाग (३) कच्चे माल की पूर्ति करनेवाला विभाग, (४) तैयार माल की बिक्री करनेवाला विभाग।

(१) इस प्रबन्ध करनेवाले विभाग के मुख्य मेनेजर का ही सब से अधिक वेतन होता है और इस जगह के लिए बुद्धिमान्, उद्योगी, कार्यतत्पर, प्रामाणिक, अनुभवी और अन्य गुणों से सर्वथा योग्य मनुष्य का ही चुनाव किया जाता है। मुख्य प्रबन्ध-कर्ता उत्तम और कर्तृत्ववान् मिलने पर ही कारखाने की उन्नति अवलम्बित रहती है। धन, मनुष्य, यन्त्र और कच्चे माल का योग्य उपयोग करके बिलकुल थोड़े खर्च में और थोड़े श्रम से उत्तम माल तैयार करना मुख्य प्रबन्ध-कर्ता का कार्य है। गृहरूपी औद्योगिक संस्था में भी मुख्य प्रबन्ध-कर्ता का कार्य उपर्युक्त प्रकार का ही रहता है और वह कार्य बहुधा घर में पुरुषों पर ही आता है। ये प्रबन्धकर्ता जितने बुद्धिमान सुस्वभावी और कर्तव्यतत्पर होंगे उसी हिसाब से गृहरूपी संस्था अच्छी तरह से चलेगी और उसमें उत्तम लड़के लड़कियाँ उत्पन्न होंगी। विद्वान् मुख्य प्रबन्धकर्ता के अभाव में जिस प्रकार हजारों कारखाने धूल में मिल गये हैं उसी प्रकार कर्तृत्ववान् पति के अभाव में हजारों गृहरूपी संस्थाओं की सत्यानाशी हुई है। ऐसी संस्थाओं से उत्पन्न होनेवाला मनुष्यरूपी कच्चा माल समाज के अनेक दुःखों का कारणीभूत हुआ है। प्रत्येक औद्योगिक संस्था के प्रबन्धकर्ता के चुनने में जो परीक्षा ली जाती है उससे भी अधिक परीक्षा लेकर होनहार पत्नी को अपना गृहपति चुनना चाहिए।

(२) कारखाने की साम्पत्तिक स्थिति को ठीक रखना इस हिसाब के विभाग का काम है। यही विभाग कारखाने के भिन्न भिन्न कार्यों में खर्च होनेवाले धन की पूर्ति करता है। रक्त जिस प्रकार शरीर का जीवन है उसी प्रकार धन भी प्रत्येक औद्योगिक संस्था का जीवन है। शरीर का रक्ताभिसरण बन्द हो जाने पर जिस प्रकार मृत्यु हो जाती है उसी प्रकार धन के अभाव में प्रत्येक औद्योगिक संस्था मृतप्राय होती है। गृहरूपी संस्था में भी इस हिसाबी विभाग का प्रायः बहुत सा कार्य पति पर ही पड़ता है। यदि पूरा पूरा धन पास नहीं होता तो गृहरूपी संस्था चलाना अत्यन्त कठिन हो जाता है, और उससे निकलनेवाले माल की भी बरबादी हो जाती है, क्योंकि शिक्षा के अभाव में वह निर्बल और हलके दरजे का निकलता है। धन ही गृहरूपी संस्था का जीवन है और जिनके शरीर में यह जीवन पूरा पूरा प्राप्त करने की शक्ति नहीं उन्हें गृहरूपी औद्योगिक संस्था शुरू करके देश में नादान, कमजोर और मृतप्राय मनुष्यरूपी माल उत्पन्न करके सामाजिक अवनति में ज्यादती न करना चाहिए, किन्तु जब तक वे गृहरूपी संस्था चलाने के लिए पूरे तौर पर धन और ज्ञान न प्राप्त करने लगें तब तक उनका अविवाहित रहना ही अच्छा। पूरी पूरी पूँजी, आवश्यकतानुसार यान्त्रिक उपकरण और ज्ञान हुए बिना जिस प्रकार किसी कारखाने को भी सरकार तथा सर्वसाधारण लोग अपनी सहानुभूति और मदद नहीं देते उसी प्रकार पूरा धन और गृहसंवर्धन-विषयक शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किये बिना स्त्री-पुरुषों को, गृहरूपी औद्योगिक संस्था शुरू करने के लिए, समाज अथवा सरकार के द्वारा आज्ञा न मिलनी चाहिए। धन, जो गृहरूपी औद्योगिक संस्था का जीवन है, उसके प्राप्त करने का प्रयत्न जब पति और पत्नी दोनों करते रहेंगे तभी यह संस्था ठीक ठीक चलेगी। धन पैदा करने का कार्य मुख्यतः पति ही पर पड़ता है, परन्तु पत्नी भी इस काम में पति को थोड़ी बहुत मदद कर सकती है।

(३) कच्चा माल पहुँचानेवाले विभाग की भी प्रत्येक संस्था को अत्यन्त आवश्यकता रहती है। कारखाने के लिए आवश्यक कच्चे माल की ठीक ठीक परीक्षा करना, वह जहाँ सुभीते से मिलता हो वहाँ जाकर उसकी खरीद करना, और ऐसे माल का सदा प्रबन्ध के साथ संग्रह करना, इत्यादि बातों के लिए भी रसायनशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, आदि शास्त्रों की अवश्य मदद लेनी पड़ती है। कोई भी औद्योगिक संस्था हो, उसमें जब इस शाखा पर बड़े बड़े रसायनशास्त्रज्ञ मुख्य प्रबन्धकर्ता और देखरेख करनेवाले होंगे तभी कारखाने की उन्नति होगी। गृहरूपी संस्था में कच्चा माल पहुँचाने की शाखा का मुखियापन गृहिणी पर ही है। गृहरूपी संस्था में जिस कच्चे माल की आवश्यकता होती है उस कच्चे माल में साधारणतया अन्न, वस्त्र, आश्रय का स्थान (गृह) और शिक्षाविषयक अनुकूल परिस्थिति का समावेश किया जाता है। गृहरूपी राज्य की अधिष्ठात्री मुख्य देवी गृहिणी ही है। इस गृहिणी को भी जब तक अन्न का रासायनिकशास्त्र, गृह स्वच्छता-शास्त्र, आरोग्यशास्त्र, मानसशास्त्र इत्यादि का ज्ञान न होगा तब तक गृहरूपी संस्था को कच्चा माल पहुँचाने का ठीक प्रबन्ध वह नहीं कर सकेगी। आरोग्यदायक और बलवर्धक भोजन देनेवाली, शरीर मन और गृह को, आरोग्यशास्त्र की दृष्टि से, खबरदारी रखनेवाली और अपने घर की परिस्थिति सदा आनन्ददायक और सुखमय रखनेवाली गृहिणी की बराबरी रोगनिवारण करनेवाला श्रेष्ठ वैद्य अथवा सदैव हित चाहनेवाला परम मित्र भी नहीं कर सकता। गृहरूपी संस्था में सुगृहिणी की कीमत किसीसे भी ठहराई नहीं जा सकती। प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है कि गृहरूपी संस्था का प्रारम्भ करने के पहले वह यह देखे कि हमें सुगृहिणी मिली है या नहीं। इस कर्तव्य से पराङ्मुख होने पर उससे होनेवाले दुःख और हानियां सहने के लिए प्रत्येक को तयार रहना चाहिए। प्रत्येक औद्योगिक संस्था में कच्चा माल पहुँचानेवाली शाखा के मुख्य प्रबन्धकर्ता को भी शास्त्रीय शिक्षारूपी पूर्व-तैयारी की लोगों को आवश्यकता मालूम होती है, परन्तु गृह[illegible]ी देवी गृहिणी को मामूली शिक्षा भी मिलने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। सर्वसाधारण लोगों का शास्त्रीय गृह-संवर्धन-विषयक अज्ञान ही इसका कारण है।



विवाह, गृहरूपी पवित्र संस्था की, आत्मा है। गृहरूपी संस्था ठीक तौर पर चलना और उसमें [illegible]कार्य होना उचित रीति से होनेवाले विवाह पर ही अवलम्बित है। कारखाने के डिरेक्टर अपने कारखाने पर प्रबन्धकर्ता और अन्य विद्वान् लोगों को नियत करते समय जितना विचार और मनन करते हैं उतना विचार और मनन, वधू को पसन्द करते समय, और वर, वर पसन्द करते समय, यदि करें तो वधू वर को उचित रीति से वैवाहिक सुख मिल सकता है। और अपने विवाह की सहायता से, सुप्रजा निर्माण करके, वे राष्ट्रकार्य में भी अच्छी मदद दे सकते हैं।

(४) तैयार हुए माल की बिक्री करनेवाली शाखा की प्रत्येक औद्योगिक संस्था को बड़ी आवश्यकता रहती है। लोगों में अपने माल के चित्ताकर्षक विज्ञापन देना, माल की खरीद बढ़ाना और तैयार हुए माल की लोगों में माँग उत्पन्न करना, इत्यादि बातों का इस शाखा के मुख्य प्रबन्धकर्ता के कार्य में समावेश होता है। पाश्चात्य देशों के बड़े बड़े प्रसिद्ध कारखानों में इस शाखा पर होशियार, चाणाक्ष, मनुष्य स्वभाव जाननेवाले विद्वान लोग नियत रहते हैं। गृहरूपी औद्योगिक संस्था में भी इस शाखा का मुखियापन चतुर और सुजान गृहिणी पर ही रहता है।

लड़के लड़कियों की बुद्धि का अलग अलग झुकाव देख कर उन्हें शिक्षा देना, उन्हें बाह्य जगत् की प्रतियोगिता का टक्कर लगाने के लिए तयार करना, अपने लड़के-लड़कियों को जगत् के बाजार में गुण और शील की दृष्टि से अनमोल बनाने का प्रयत्न करना, और अपने लड़के-लड़कियों का यहाँ तक मूल्य बढ़ाना कि संसार के अन्य मनुष्य हमारी गृहशिक्षा में तयार होने वाले लड़के-लड़कियों की संगति करने के लिए मनमाना मूल्य दें—इत्यादि अनेक कामों की जवाबदारी गृहिणी पर ही आ पड़ती है गृहरूपी संस्था में इतनी जवाबदारी के और महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए गृहिणी की पूर्व-तैयारी, जगत् का अनुभव, मानसिक और शारीरिक शिक्षा जितनी हो उतनी थोड़ी ही है।

जिस प्रकार औद्योगिक संस्था में इन सब शाखाओं का अच्छी तरह से चलना परस्परावलम्बी है उसी प्रकार गृहरूपी औद्योगिक संस्था में भी इन सब शाखाओं का ठीक ठीक चलना परस्परावलम्बी है। इस के सिवाय गृहरूपी संस्था में इन चार शाखाओं का योग्य रीति से चलना, इन शाखाओं के प्रबन्धकर्ता गृहपति और गृहिणी की परस्पर सहकारिता पर और समान ध्येय पर ही विशेषतः अवलम्बित है। पति का

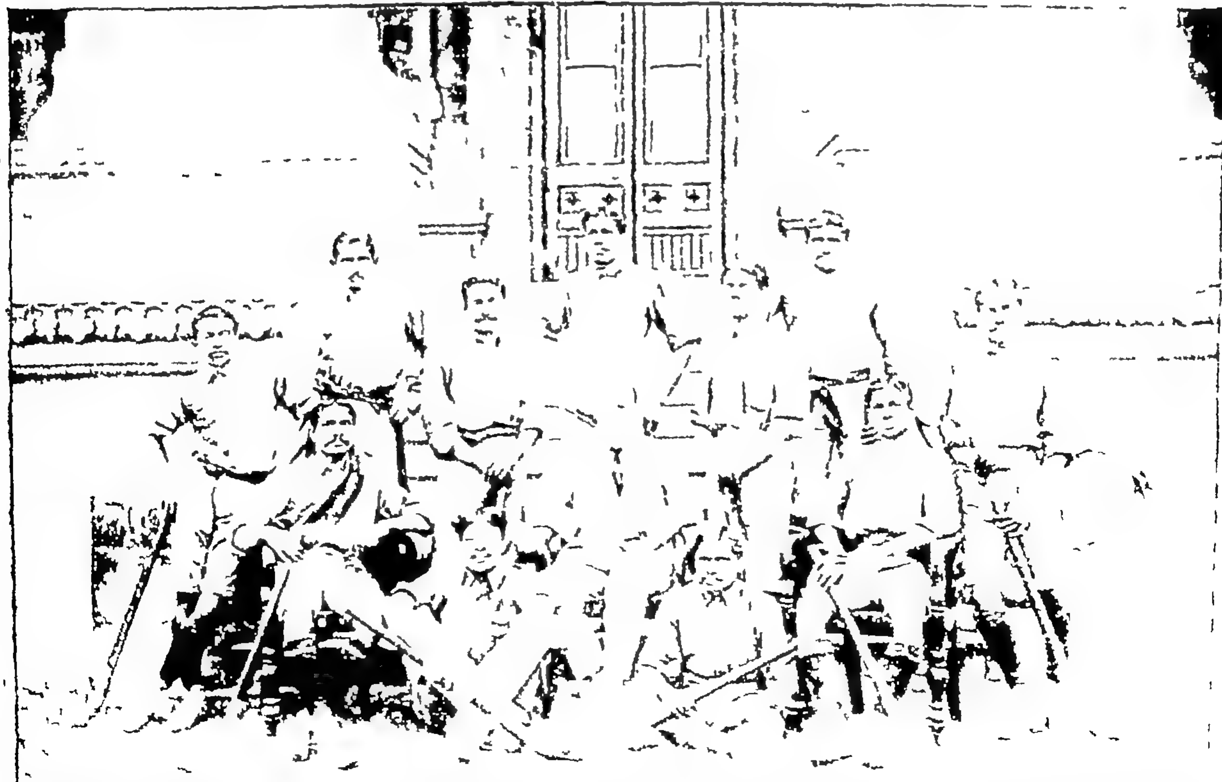
[illegible] भिन्न और पत्नी का [illegible] भिन्न [illegible] है। विवाह होने के पहले स्त्री-पुरुषों की भिन्न भिन्न आवश्यकताओं के अनुसार उनके भिन्न भिन्न ध्येय हो सकते हैं और होते भी हैं। परन्तु विवाह होने पर गृहरूपी औद्योगिक संस्था [illegible] होने पर पति और पत्नी के [illegible] जब एक [illegible] हो जाते हैं तभी उनके द्वारा मनुष्यरूपी स्फूर्तिवान और सतेज माल निकलता है तथा सामाजिक उन्नति में अधिकता होती है। गृहरूपी औद्योगिक संस्था प्रारम्भ करके संसार को तेजस्वी, सात्विक और स्फूर्तिवान् मनुष्यरूपी माल पहुँचाना और उस माल के तैयार करने में—तथा उस माल के पालन पोषण और बाढ़ करने में—अपना ज्ञान और बुद्धि-सर्वस्व खर्च करना ही गृहसंस्था शुरू करनेवाले पति और पत्नी का अपना ध्येय समझना चाहिए, और अपने अन्य ध्येयों को इस उच्चतम ध्येय का पोषक बनाना चाहिए। गृहरूपी संस्था शुरू करके ही स्त्री और पुरुष अपनी तथा समाज की आवश्यकताएँ पूर्ण कर सकते हैं। वर्तमान समय में समाज [illegible] और देश यदि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ [illegible] है तो वह तेजस्वी और कर्तृत्वशाली स्त्री-पुरुष ही [illegible] है। उसी प्रकार प्रत्येक स्त्री पुरुष का अपना जीवन ठीक तौर पर चलाने के लिए अपने स्वभावों की न्यूनता पूर्ण करके अपनी उन्नति कर लेने के लिए वैवाहिक स्थिति की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। गृहरूपी औद्योगिक संस्था शुरू करने से ही व्यक्तिमात्र का स्वार्थ और परमार्थ—दोनों सध सकते हैं। सुप्रजा निर्माण करके समाजसुधार और देश सुधार करना कितने ही लोगों को स्वार्थयुक्त और आधिभौतिक कार्य जान पड़ेगा परन्तु अच्छे स्त्री पुरुष निर्माण करने का काम अत्यन्त आध्यात्मिक और पारमार्थिक है तथा इसीसे सच्चा समाजसुधार और देश सुधार होगा। छोटे लड़के और लड़कियाँ ही भावी समाज और राष्ट्र के मुख्य घटक हैं और इन्हें जब तक हम अन्य जड़ वस्तुओं की तरह यांत्रिक सहायता से उत्पन्न नहीं कर सकते तब तक होनहार पति और पत्नियों को शास्त्रीय गृहस्थधर्म सिखला कर ही समाजसुधार करने का प्रयत्न करना प्रत्येक का कर्तव्य कार्य है।

पति और पत्नी गृहरूपी संस्था की आत्मा हैं। उन्हें एक जगह लानेवाला विवाह इस संस्था की मुख्य बुनियाद है। कोई भी औद्योगिक संस्था केवल एक मनुष्य से नहीं चलती। वह मनुष्य चाहे जितना चतुर और विद्वान् हो, तथापि पहले पहल अपने व्यवसाय में भागीदार लेकर अन्य विद्वान् लोगों से सहकारिता करनी ही पड़ती है। परन्तु ध्यान में रखना चाहिए कि, यह सहकारिता किसी ऐसे-वैसे अजान, और उद्योग की जानकारी न रखनेवाले, मनुष्य से कभी नहीं की जाती। क्योंकि ऐसे मनुष्य की सहकारिता से कोई भी औद्योगिक संस्था अच्छी तरह नहीं चल सकती। विवाहरूपी बुनियाद डाल कर गृहरूपी संस्था की स्थापना करते समय, भावी पति-पत्नी इन बातों का विचार नहीं करते कि [illegible], यदि [illegible] गृहस्थी में [illegible] है गृहरूपी संस्था की स्थापना करके उसके [illegible] जब तक संस्था ठीक तौर पर नहीं चलती तब तक अपने और अन्य लोगों के [illegible] की कारणीभूत होती है। [illegible] अपनी दम्पतिका का, विवाह [illegible] पुराने [illegible] का और माँ बाप का भी दोष देते रहते हैं। [illegible]

[illegible]

परन्तु ऐसा न होने से देश में और समाज में निर्बल, अल्पायु और पराबलम्बी प्रजा की संख्या सर्वत्र बढ़ी हुई देखी जाती है। यह स्थिति सुधारने के लिए शास्त्रीय गृहस्थधर्म का भी उचित रीति से अभ्यास, मनन और विचार होना चाहिए। [illegible] महत्व का है और इस विषय का पूरा ज्ञान किए बिना किसी भी [illegible] आगे विवाह करने [illegible] चाहिए। "शास्त्रीय गृहस्थधर्म" इस विषय की शिक्षा सब स्कूल और कालेजों में [illegible] चाहिए। उन्नतिप्रिय पाश्चात्य देशों में धीरे धीरे इस विषय की शिक्षा आवश्यकीय मानी गई है। इससे सभी लोग जान सकते हैं कि अब हवा किस तरफ को डोल रही है। भावी शीलवान और कार्यतत्पर पुरुष भावी राष्ट्र के आधारस्तम्भ हैं। ऐसे स्त्री पुरुष निर्माण करने का कार्य शास्त्रीय गृहसंवर्धन से ही हो सकता है अतएव गृह एक राष्ट्रीय और मुख्य संस्था है, तथा इस संस्था का महत्व अन्य सारी संस्थाओं से अधिक है। सब सारी मालों में मनुष्यरूपी माल अनमोल है। सुन्दर शरीर विकसित मस्तिष्क और उदार मन की बराबरी अन्य कोई भी भारी वस्तु नहीं कर सकती। यह दिव्य और स्वर्गीय माल उत्पन्न करने का पवित्र कार्य गृहरूपी औद्योगिक संस्था ही कर सकती है। यह संस्था ज्यों ज्यों सुधरती जायगी त्यों त्यों मानव-जाति की उन्नति होती जायगी। सारे सुधार का मूल गृहसुधार में है, इसी लिए इस गृहरूपी संस्था का सब को अच्छी तरह से स्थापन और संवर्धन करना चाहिए। गृहरूपी संस्था के सुधार में चाहे सारा ज्ञान और धन खर्च कर दिया जाय तथापि वह थोड़ा ही है और इस संस्था का महत्व भी, वैज्ञानिक उन्नति के साथ ही साथ जनसमूह को अधिकाधिक मालूम होते जायगा।

## ग्वालियर की हाकी-टीम



ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज के जो विद्यार्थी आगरा से हाकी टीम में जीत कर आये उनका समूह। बीच में प्रिंसिपाल मि० ब्लेडन बैठे हुए हैं।

# वर्तमान हलचलों की दृष्टि।

१ आज कल भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में जो मुख्य हलचलें हो रही हैं उनका स्वरूप राजकीय नहीं है, किन्तु सामाजिक है। "सामाजिक" शब्द की बहुत अर्थों में योजना करके उसमें औद्योगिक, नैतिक और धार्मिक हलचलों का अन्तर्भाव किया जा सकता है। किसी समय राजकीय हलचल में बाढ़ आगई थी और उसने अन्य हलचलों को पीछे हटा दिया था। इधर चार पांच वर्ष में कुछ राजकीय अत्याचार हुए, उन्हें दूर करने के लिए सरकार ने कठोर नियमों का उपयोग किया, तब से लोगों का मन बदल गया, अथवा यों कहिए कि उनके मन में डर पैठ गया, अतएव राजकीय विषय में वैराग्यरूप शिथिलता उत्पन्न होकर बढ़ने लगी थी। पर इतने ही में लार्ड मिन्टो और लार्ड मार्ले ने ऐसे प्रान्तिक राजकीय सुधार किये जो लोगों को अधिकांश में पसन्द पड़े और स्वयं सम्राट् ने भारत में पधार कर और लोगों पर विश्वास रख कर उनके हृदय का कांटा निकाला। और यह आश्वासन दिया कि सरकार की ओर से अब जनशिक्षा के लिए दिन दिन अधिक मदद मिलेगी। इस कारण प्रजा का मन सुप्रसन्न हुआ और उसे इस बात का धीरज बँधा कि सरकार की सहायता से लोगों की योग्यता ज्यों ज्यों बढ़ती जायगी त्यों त्यों राजकीय विषयों के इष्ट सुधार भी धीरे धीरे अमल में आते जायँगे। अतएव अब चारों ओर राजकीय वायुमण्डल स्वच्छ हो गया है। दिल्ली का अत्याचार होते ही सब दिशाओं से जो हाहाकार का और निषेध का घनघोर शोर हुआ उसीसे इस स्वच्छता का अच्छा अनुमान हो सकता है। वाइसराय लार्ड हार्डिज की आरोग्यता के लिए सारे भारत में परमेश्वर-प्रार्थना की गई। यह प्रार्थना सफल हुई और लार्ड हार्डिज ने पूर्ण आरोग्य लाभ किया। अब, सम्पूर्ण राजकीय अभीष्ट बातें सिद्ध होंगी।

२ राजकीय सुधारों की तरफ यदि सर्वसाधारण लोग एक बार ध्यान न भी दें, तो काम चल सकता है, परन्तु सच्चे सामाजिक सुधारों की ओर पूरा पूरा ध्यान न देने से काम नहीं चल सकता। इस बात पर सुशिक्षित नेताओं का विश्वास हो गया है। अतएव, जनसमूह, जो घोर निद्रा में निमग्न है, उसे जागृत करने के लिए वे लोग प्रयत्न कर रहे हैं। यह प्रयत्न सार्वजनिक न होते हुए एकदेशीय और कहीं कहीं एकांगी हो रहा है-अर्थात् एक एक जाति भर के लिए, अथवा एक विषय भर के लिए, यह यत्न हो रहा है। प्रत्येक जाति अपनी जाति की सभा करके उसे उन्नत बनाने में लगी हुई है। विगत महीनों में जगह जगह अनेक भिन्न भिन्न जातियों की सभाएँ हुई और शिक्षा, विवाह-सम्बन्ध, व्यापार-व्यवसाय, कला-कौशल, इत्यादि के अनेक प्रस्ताव पास हुए, तथा उन प्रस्तावों को कार्य में परिणत करने के लिए चन्दा एकत्र करने का प्रयत्न किया गया। साधारण तौर पर इन जातीय सभाओं में, मतमतान्तर की सभाओं की तरह, एक दूसरे के विषय में तिरस्कार नहीं व्यक्त किया गया। यह सन्तोष की बात है।

३ यह प्रयत्न यद्यपि एकदेशीय और एकांगी है, तथापि उसका झुकाव साधारण तौर पर एक ही दिशा की ओर है। जैसे सन्ध्या करनेवाला ब्राह्मण समझता है कि चाहे जिस देवता को नमस्कार किया जाय वह 'केशव' के प्रति पहुँचता है, ऐसा ही उपर्युक्त प्रयत्न करनेवाले नेतागण भी समझते हैं। इन सारे प्रयत्नों का अन्तिम उद्देश यही है कि भारतीय राष्ट्र एक सर्वांग-परिपूर्ण राष्ट्र बन जाय—वह इतना समर्थ हो जाय कि जिससे मानसिक, शारीरिक, आधिभौतिक बल में वह किसी भी पाश्चात्य सभ्य राष्ट्र से हार न सके और उससे बराबरी के नाते से, कन्धे में कन्धा भिड़ा कर, बर्ताव करने की योग्यता प्राप्त कर सके। यह दृष्टि किसीको तो पूर्ण तया मालूम हो चुकी है, किसीको अधूरे तौर पर मालूम हुई है, कई लोगों को यह पसन्द नहीं है तथापि वे समझते हैं कि यह अगतिक है-वर्तमान काल की परिस्थिति का प्रवाह इतनी प्रबलता से उस दिशा की ओर जा रहा है कि उसके विरुद्ध जाना तो दुरापास्त है ही, किन्तु उसका निरोध करना भी असम्भव है। नेता लोगों का विश्वास है कि इस प्रयत्न के अन्त में प्रत्येक जाति उन्नत होकर चतुर और दक्ष हो जायगी जैसे तपा हुआ लोहा तपे हुए लोहे से जोड़ने के योग्य होता है वैसे ही सुशिक्षित और सुदक्ष जाति अन्य जातियों से जोड़ने के योग्य बन जायगी।

४ बड़े आनन्द की बात है कि अब लोग यह भी समझने लगे हैं कि यह प्रयत्न यद्यपि एकदेशीय है, तथापि सर्वथा अपने अधीन है, अन्य लोगों की ओर अथवा सरकार की ओर मुहँ पसारने से सफल नहीं हो सकता। जब तक उताना पड़ा हुआ मुसाफिर ओंठ पर पड़ी हुई जामुन अपने मुख में डालने के लिए बागवान की बाट जोहता था—और वह जल्द नहीं आता था, इस लिए उस पर क्रोधित होता था—तब तक उसे उस जामुन के मुख में जाने की आशा ही क्यों करनी थी? अब वह मुसाफिर समझने लगा है कि हमें अपने ही हाथ से यह जामुन अपने मुख में डालना चाहिए। यह विश्वास जब पक्का हो जायगा, और सार्वत्रिक हो जायगा, तब कहा जा सकता है कि अब कार्यसिद्धि होने को है। इस विश्वास को वैसा बनाने के लिए नेताओं के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये हैं—वे विस्तृतरूप से और दिन रात होने चाहिए।

५ राष्ट्र के बालक—लड़के और लड़कियाँ—भावी पीढ़ी के जनक-जननी हैं—आधार स्तम्भ हैं—अतएव अभी से ऐसी कोशिश—ऐसा प्रबन्ध—होना चाहिए। कि जिससे वे दिन पर दिन तीव्रतर होने वाले जीवन कलह में टिकनेवाले बन सकें। नेता लोग यह सब समझते हैं। वे कहते हैं कि शिक्षा सार्वत्रिक और आवश्यक होनी चाहिए। इसका रहस्य क्या है? बाह्य सृष्टि का स्थूल ज्ञान लेने के लिए ईश्वर ने सब को अविकल पांच ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं। तथा, उस सृष्टि और सृष्टि के व्यवहारों का, पूर्वकालीन विद्वानों का सम्पादित किया हुआ ज्ञान, सहज रीति से, अपना—सा बना लेने का साधन—लिपि ज्ञान या प्राथमिक शिक्षण—है। इसे छठवीं (अथवा मन यदि छठवीं ज्ञानेन्द्रिय मानी जाय तो सातवीं) इन्द्रिय कहने में कोई हर्ज नहीं। जन्मान्ध को दृष्टि देना, बहरे गूँगे को श्रवण और वचन देना, इत्यादि चमत्कार साधुओं ने कर दिखलाये हैं और उनके साक्षात्कार प्रत्यय के लिए साधनीभूत हुए हैं। अतएव, जिस कला से अज्ञानान्धकार में निमग्न हुए को ज्ञान के प्रकाश में आने की स्वतन्त्रता मिलती है—और इसी लिए जो इन्द्रियों की योग्यता तक पहुँची—उसकी महती कहां तक वर्णन की जाय? वह उपर्युक्त चमत्कारों की श्रेणी में अवश्य ही गिनी जायगी।

६ यह कला राष्ट्र की प्रत्येक व्यक्ति को-स्त्री हो, पुरुष हो—धनिक हो, गरीब हो—उच्च कुल में जन्मा हो अथवा नीच माने हुए कुल में जन्मा हो—प्राप्त कर लेने का सुभीता चाहिए। यह ईश्वर का दिया हुआ अधिकार है, फ्रान्स देश के लोगों ने, अठारहवीं शताब्दी के अन्त में, यह चिल्लाहट मचाई, अब इसे सारे सुशिक्षित राष्ट्रों ने उठाया है। जो राष्ट्र यह शोर मचाने में ही कच्ची खाता है वह पीछे पड़ता है, सुशिक्षित राष्ट्र उसे अपने पैरों के नीचे कुचल डालता है, पर जो राष्ट्र वह चिल्लाहट मन में अच्छी तरह प्रतिबिम्बित करके पीछे रहे हुए पन्थ का भाग जल्दी से क्रमण करके आगे गये हुए राष्ट्रों को पकड़ लेता है उसका गौरव-मान होता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जापान ने हमारे सामने रख दिया है। अब भी यदि हम सोते रहें तो काम कैसे चलेगा?—प्रत्येक स्त्री को, प्रत्येक अन्त्यज माने हुए मनुष्य को भी, यह शिक्षा मिलनी चाहिए। फिर मध्यम और उच्च कुल के मनुष्यों के विषय में कहने की आवश्यकता ही क्या रह गई? नीच मानी हुई जातियों के लिए ही अथवा अन्त्यजों के लिए ही हमें यह विचार नहीं करना है।

७ जो शिक्षा दी जाय वह ऐसी होनी चाहिए कि जो सर्वांगी हो और शिष्य अथवा शिष्या के अगले जीवन के व्यवहार कार्य के लिए—उसमें आनेवाले संकटों से धैर्य के साथ पार पड़ने के लिए—आवश्यकता से भी अधिक उपयुक्त हो तथा जिससे शारीरिक और मानसिक बल बढ़े। प्रसन्नता का विषय है कि उक्त विचार बढ़ता जा रहा है। इसी दृष्टि से विवाहादिक सामाजिक व्यवस्थाओं की उत्पत्ति स्थिति लय-मर्यादा निश्चित करनी चाहिए, इसका भी विचार हो रहा है। किसी समय सुख कर जीवनक्रम में जो व्यवस्थाएं पसन्द पड़ीं, अथवा त्याज्य नहीं जान पड़ीं, वही दूसरे समय के कष्ट-कर जीवनक्रम में दुर्वह होती हैं, और उनके नीचे न जाने कितने स्त्री-पुरुष और अर्भक कुचल जाते हैं, और मरते हैं! यह एक प्रकार की हत्या ही है, परन्तु चूंकि नित्य का यही हाल है, अतएव वे हमारी आदत में दाखिल हो गई हैं—और उनकी ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता। परन्तु प्यारे पाठको, सब का यही हाल नहीं है—हममें से जो विवेकी ज्ञाता हैं उनका—यह हाल देख कर—हृदय फटा जाता है। और जो विवेकी कार्यकर्ता हैं उनसे चुप बैठा नहीं जाता। वह उस परिस्थिति, उस व्यवस्था, को बदलने का प्रयत्न करता है। यह बात दूसरी है कि वह प्रयत्न कभी कभी ऐसे-वैसे मार्ग को पकड़ लेता है। इसकी चिकित्सा यही है कि सरल मार्ग से जानेवाले विवेकी ज्ञाताओं की संख्या बढ़नी चाहिए। चुपके बैठे हुए पत्थर मारनेवालों की संख्या जितनी कम होगी उतना ही अच्छा। एक यही विचार लीजिए कि भारत के कई प्रान्तों में जो पर्दे की चाल है उसे बन्द करना चाहिए, पर इसके लिए स्त्रियों के वास्ते शिक्षा के द्वार बिलकुल खोल देने चाहिए—और, अतएव, विवाह में स्त्रियों की उम्र १६ से कम और पुरुषों की उम्र २५ से कम न होनी चाहिए, यह बात बहुत से समाज सुधारकों को मान्य हुई है। सब सभा-समाजों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे विदेश में जाकर नवीन ज्ञान और कला सीखने में अड़चन न पड़े, बाल-विधवाओं के लिए भी यह भवसागर सु-तर हो, अतएव विधवा-

विवाह का सुभीता होना चाहिए, कम से कम उन्हें इतनी उच्च शिक्षा मिलनी चाहिए कि वे, कसीदा और धंधेकी की सहायता से, स्वावलम्बनपूर्वक अपना चरितार्थ चला सकें, उनका जीवन व्यर्थ व्यतीत न हो। प्रौढ विधवाओं के देशसेवा के समान पवित्र ध्येय नेत्रों के सामने रख कर सुधरे हुए पुण्य के लिए व्रता का आचरण करने के मार्ग खोल देना चाहिए।

८ प्रत्येक जाति की अन्तर्जातियों में रोटी-व्यवहार और बेटी-व्यवहार बढ़ाना, कालावधि से फूटी हुई मूल की एक जाति का फिर सम्मेलन करना और रोटी-व्यवहार का प्रारम्भ करना, इत्यादि प्रयत्न उसी तरह के हैं। सब जातियों के सह-भोजन का भी यही उद्देश्य है। इसको आचरण में लाने का विचार करते समय परिस्थिति के महत्व का योग्य मापन नहीं होना यह भावना, कि उक्त कार्य आज ही सब के लिए सुकर है, कदाचित् चूक की होगी, अथवा इस विषय में कि, यह कहा तक आज सुकर है और कहा तक व्यवहार में आज या कल आ सकती है, कदाचित् दिग्भ्रम हुआ होगा, पर यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि इस उद्देश्य के मूल में न्याय की समता है।

विवेक के दिखलाये हुए ध्येय के आचरण करने का जिन्हें मनोधैर्य न हो उन्हें, अपनी निर्बलता लोगों से छिपाने के लिए, धैर्यशीलों की निन्दा करने का पाप न करना चाहिए। अपनी निर्बलता स्वीकार करके घर में चुप बैठना ही उनके लिए योग्य है। अवश्य ही जिन्हें यह मार्ग विवेक-दृष्टि से "अतिशय" का ज्ञान पड़ता हो उनके विषय में हमें कुछ नहीं कहना। विवेक के निषिद्ध किये हुए आचरण का निषेध करना ही उनके लिए योग्य है। कहने का तात्पर्य इतना ही, कि विवेक के उचित ठहराये हुए आचरण पर लोकसंग्रह का पर्दा डालकर अपना कच्चापन उसाके पीछे छिपाने का प्रयत्न करना जितना अपनी मनुष्यता की योग्यता के लिए हानिकर है उतना ही राष्ट्र के अन्तिम हित के लिए भी विघ्न-कारक है, यह बात उन्हें अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए। इसके विरुद्ध दृष्टि से देखने पर यह भी कहना पड़ता है कि साहसिक सुधारकों को अपना अभीष्ट सुधार छद्म से अथवा कानून का समाश्रय करके लोगों के गले बाँधने का यत्न करना भी अनुचित है। इतिहास साक्षी दे रहा है कि ऐसे यत्नों से सुधार होना पीछे रह जाता है। यह बात सब को ध्यान में रखनी चाहिए कि राष्ट्र सत्य की नींव पर है। श्रुति कहती है कि सत्य ने पृथ्वी को धारण किया है और सत्य ही आकाश को सँभाले हुए है। यह वचन क्या श्रुतियों के द्वारा हृदय में बैठेगा?

९ हिन्दू मुसलमानों का असली झगड़ा सम विषम भाव से उत्पन्न होनेवाले राजकीय सुधार के व्यवहार में बढ़ गया था। उसका अतिरेक हो गया और अब उसके उलट जाने के चिन्ह देख पड़ने लगे हैं। इन बीस पच्चीस वर्षों में शिक्षा ने मुसलमानों पर अपना कार्य किया है। अहम्मन्यता, अज्ञान, आलस, दुराग्रह, इत्यादि की पीड़ा से छूट कर अब उनकी दृष्टि स्वच्छ होने लगी है। उनकी दृष्टि पर जो माड़ा छाया हुआ था उसे दूर करने के लिए टर्की का पराभव और उसके विषय में पाश्चात्य राष्ट्रों के तथा राजपुरुषाग्रणियों के मत ही उत्तम शलाका बन गये हैं। इस विषय में, बाकीपुर की कन्वेशन की स्वागत-कारिणी सभा के अध्यक्ष का भाषण मनन करने योग्य है। हमारे जीवन में जिस सख्य के मार्ग के खुलने की कोई आशा न थी, कौन जानता था कि, वह इतनी जल्दी और ऐसे दु ख-प्रसंग पर खुल जायगा? पर ईश्वर की लीला अतर्क्य है। "वह मार्ग खुल गया" इस प्रकार वे—एक ओर दु ख से और एक ओर सन्तोष से—बोले! लखनऊ में जो मुसलमानों की परिषद् हुई उसने भी वही बाकीपुरवाली नीति स्वीकार की। जब कि हिन्दू और मुसलमान एक मार्ग पर आ गये तब फिर एक राष्ट्र होने के लिए सिर्फ समय की ही देरी है। एक प्रसिद्ध इतिहासकार का मत है कि इतिहास के सारे बनाव-बिगाड़ में ईश्वर की उँगली रहती है। यह मत सभी सच्चे विद्वानों को मान्य है। इस विषय में कि अब आगे से हिन्दू मुसलमान आपस में किस प्रकार का बर्ताव करें, कन्वेशन के अध्यक्ष की सूचना सच्चे देशभक्तों को पसन्द होगी। उसका तात्पर्य यही है कि एक दूसरे को चिढ़ाओ नहीं, एक दूसरे के हृदय में प्रवेश करो, आपस के मत समझ लो, उनका आदर करो! मुसलमानों से उन्होंने कहा, "भाइयो! तुम्हारे धर्मक्षेत्र चाहे भारतवर्ष से बाहर हों, तथापि हम सब की जन्मभूमि यही देश है, अतएव इस माता से अलग मत हो।"

१० उद्योग धंधे में प्रवीण होने के लिए बहुधा जन्मसिद्ध जाति विघ्न डालती है। इस बात का अनुभव दिन दिन अधिक हो रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि यंत्रों से चलते हुए कारखाने, रेलगाड़िया, इत्यादि के कार्यक्षेत्र में जो विद्वत्ता और दक्षता इत्यादि गुण पाये जाते हैं उनका विभाग ईश्वर ने जाति के अनुसार किया है। उक्त गुणों से युक्त पंडित पुरुष प्रत्येक जाति में पाये जाते हैं। प्रत्येक कारखाने में अथवा बाहरी व्यवहार में उन गुण-पंडितों की श्रेणी क्रम के अनुसार ही लगती है। इस विषय में देखी अनदेखी करने से कोई लाभ नहीं। उद्योग धंधे में जितने अधिक मनुष्य तैयार होंगे उतना ही राष्ट्रीय सम्पत्ति के लिए [illegible] हो जायगा। आज कल के व्यापार के दुर्धर संग्राम का सामना करने के लिए जितनी [illegible] और [illegible] शिक्षा सम्पादन करनी पड़ती है, जिस पर भी [illegible] का प्रयत्न अनुभव चाहिए ही। इस लिए राष्ट्र के उद्योग धंधों के छोटे छोटे स्कूल बड़े बड़े कालेज और प्रयोगशालाओं की स्थापना होना अत्यन्त आवश्यक है। आनन्द की बात है कि इधर [illegible] में भी दानशूर ताता, [illegible] चिनुभाई के समान महाशय इस विषय स्थापित करने के लिए आगे बढ़े हैं। यथाशक्ति और यथामति इनका अनुकरण प्रत्येक जिला में, प्रत्येक प्रान्त में होना चाहिए। औद्योगिक परिषद् के सभापति के व्याख्यान में इसी ही बातों पर जोर दिया जाता है उसे कार्यरूप में परिणत करना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बड़ोदा-नरेश श्रीमान सयाजीराव महाराज ने इस कार्य में भी अपना आदर्श देशी रियासतों के सामने रख दिया है। और सन्तोष का विषय है कि होलकर, सेंधिया, [illegible], इत्यादि राजा महाराजा भी उनका अनुकरण कर रहे हैं। राष्ट्रीय परिषद् की एक बैठक में सभापति ने इस बात पर जोर दिया कि लेजिस्लेटिव कौन्सिल में राजा लोगों का क्या काम? और जब कभी अंगरेजी भाषा से बिलकुल अनभिज्ञ राजकुमारों की नियुक्ति होने लगती है तभी उक्त आक्षेप किया जाता है। तथापि आघात-प्रत्याघात-न्याय से राजा लोग लेजिस्लेटिव कौन्सिल में बहुत सा व्यावहारिक राजकीय ज्ञान और लोक कल्याण विषयक श्रद्धा अपने राज्य में ले जाते हैं और तदनुसार थोड़ा बहुत कार्य भी कर दिखलाते हैं। इसके विरुद्ध यह भी देखा जाता है कि कई बातों में छोटे छोटे राजाओं की, अथवा उनकी ओर से काम करनेवाले अधिकारियों की, राजकीय दृष्टि ब्रिटिश प्रान्त में भी अनुकरण करने योग्य होती है। यह कहना बिलकुल भ्रामक ही नहीं हो सकता कि, भारतवर्ष की भावी राजकीय घटना में हैदराबाद के निजाम और बड़ोदा के गायकवाड़ को यदि स्थान मिलेगा तो बहुत से विघटित भाग सुघटित होंगे। इसी समय श्रीमान सयाजीराव ने जो सुधार अपने राज्य में कर दिखलाये हैं—जैसे आवश्यक प्राथमिक शिक्षा, विवाह की वय मर्यादा बढ़ानेवाला कायदा, पुस्तकालय, वस्तुसंग्रहालय, हाल ही में बना हुआ बुद्धोद्यान इत्यादि—अन्यान्य प्रान्तों के लिए आदर्शवत् हो रहे हैं। रेलगाड़िया, तारायंत्र, पोस्टआफिस, मोटरगाड़िया, इत्यादि बातें राजव्यवस्थाओं के साथ आज पचीस वर्षों से राष्ट्र का एकीकरण कर रही हैं, जान पड़ता है कि इन बातों में परम्परानुकरण करने की इच्छा बहुत बढ़ जायगी।

११ कृषि-विभाग ने, भारत के किसी किसी प्रान्त के किसानों को प्रयोग और उपदेश के द्वारा, इन बातों का अनुभवजन्य ज्ञान देना निश्चित किया है कि, वर्तमान दशा में कौन सी फसल कैसे अधिक उत्पन्न की जा सकती है, कौन से औजार और यंत्र-भाफ से चलनेवाले या तैलयंत्र की शक्ति से चलनेवाले-आज-कल मजदूरों के न मिलने पर लाभदायक हो सकते हैं। किसानों की प्रान्तिक सभाएं कहीं कहीं स्थापित हो रही हैं। इनका उद्देश्य यह है कि किसानों को कम व्याज पर पूँजी मिले, जिससे खेती में सुधार किया जा सके। सामाजिक जवाबदारी पूँजी की सन्दूक है। यह जवाबदारी प्रत्येक सन्दूक के सब लोगों को अपने हाथ में लेकर प्रेमबद्ध करती है। यद्यपि ये सन्दूकें इस समय प्राय एक ही जाति अथवा एक ही धंधे के लोगों की हो गई हैं तथापि उनमें कहीं कहीं भिन्न भिन्न जातियों के और धंधों के लोग भी शामिल हो गये हैं। कहीं कहीं ये सन्दूकें ग्रामसंस्था के रूप में हो गई हैं। ग्रामसंस्था को आगे पीछे बड़ा महत्व मिलनेवाला है, अतएव ये सन्दूकें सारे ग्रामों को एक करनेवाले अनेक कारणों में शामिल होंगी, सारे ग्राम एक होने पर उन ग्रामों से बननेवाला परगना एक होगा, परगनों से जिला, जिलों से डिवीजन, डिवीजनों से प्रान्त, इत्यादि क्रमश एक होते जायँगे और इस प्रकार सारे प्रान्त तथा राजा महाराजाओं की रियासतें मिल कर एक भारतवर्ष हो जायगा। आज राजकीय भारतवर्ष एक है-फिर सब बातों में वह एकही हो जायगा।

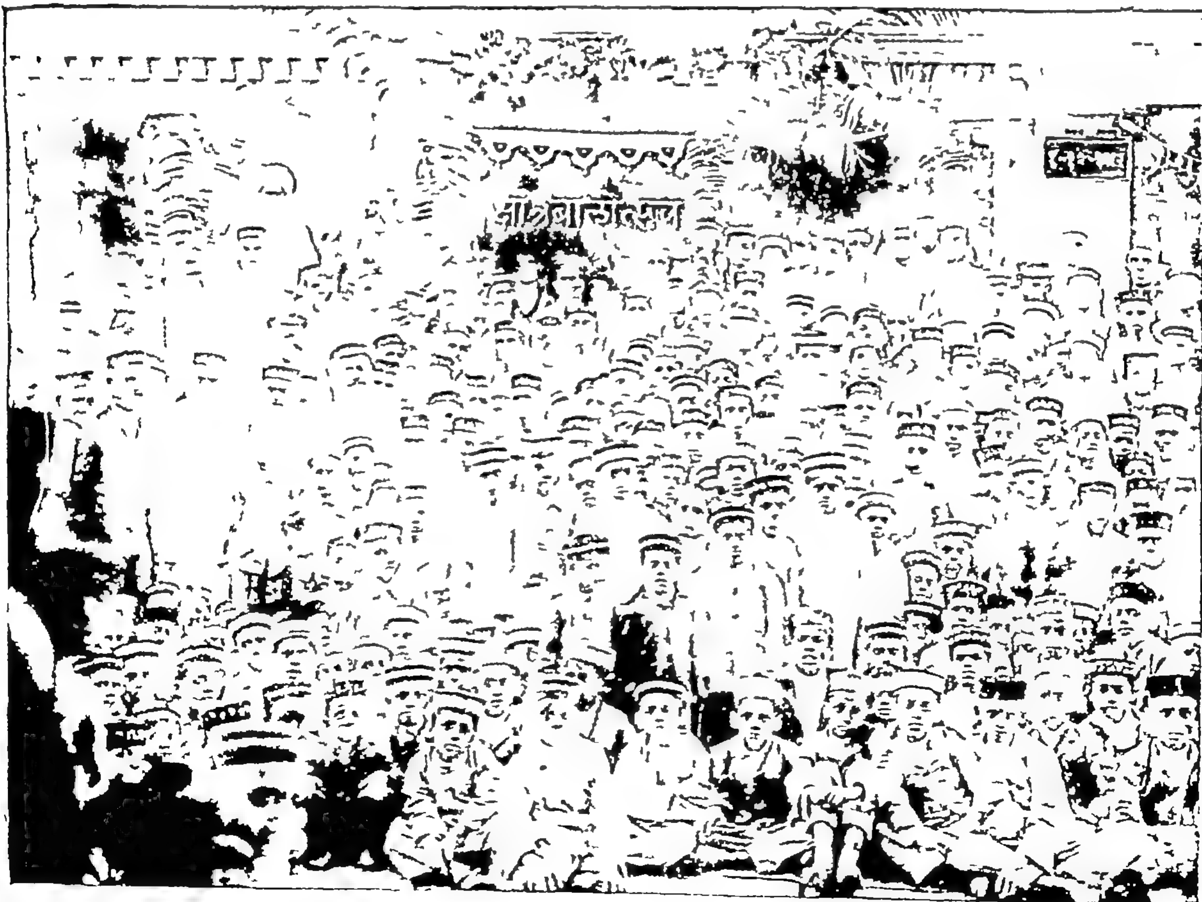
१२ कोई कहेगा कि, भैयाजी, तुम पागल तो नहीं हो गये? जान पड़ता है कि तुम बरेली के पागलखाने की हवा खाना चाहते हो! अरे, जिस भारतवर्ष में नाना पंथ, नाना मत असंख्यों फैले हुए हैं, जहां एक ही प्रान्त में छोटी छोटी अन्तर्जातियों में भिन्न आचार, भिन्न विचार देख पड़ते हैं-वहां यह कहना, कि सब विचारों की एकवाक्यता हो जायगी, बिलकुल पागलपन है। परन्तु शान्त होकर विचार कीजिए। देखिये, महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रकाशित किया हुआ आर्यधर्म पंजाब और युक्तप्रान्त से धीरे धीरे सारे भारतवर्ष में फैल रहा है। दक्षिण ओर अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, नासिक, हैदराबाद तक चला गया है। पूर्व की ओर कलकत्ते तक पहुँचा है। लक्षण देखने से जान पड़ता है कि इस आर्यधर्म का ही साम्राज्य भविष्य में होनेवाला है। इधर ब्रह्मोधर्म भी कलकत्ते से चारों ओर फैल रहा है। उसीका एक सन्तान प्रार्थनासमाजधर्म बम्बई प्रान्त के कुछ स्थलों में विशेषत पूना, बम्बई, अहमदाबाद और इन्दौर में अपने सर्व-धर्म-संगृहीत तत्वों का उपदेश कर रहा है। स्वयं वाराणसी और अडियार, इन दो आगारों से मिसेस बेसंट

और उसके अनुयायी मुख्यत संस्कृत हिन्दूधर्म के तत्व और गौण-रूप से पृथ्वी पर के सब मुख्य धर्मों के तत्व, व्याख्यान, ग्रन्थ, सभा और आचार्योपासना के द्वारा, प्रकाशित कर रहे हैं। पर सब से बड़ा विस्तार क्रिश्चियनधर्म के उपदेशकों का है। उनके पथ यद्यपि भिन्न भिन्न हैं और देशी ईसा-भक्तों के साथ ईसा के उपदेशानुसार समानता का वर्ताव नहीं करते, तथापि उनका महान् उद्योग, भारत के प्रत्येक कोने में फैली हुई उनकी शाखाएं, साथ ही मुफ्त औषधालय, दुर्बलों के लिए अन्नक्षेत्र, मुफ्त बाँटे जानेवाले पत्र और पुस्तकें, उनके स्कूल तथा मधुर और दयापूर्ण वचन—तिस पर भी उनके मन का अखण्ड बहता हुआ श्रोत,इत्यादि बातों से उनकी शक्ति बहुत बढ़ गई है! इस प्रकार यह समय सघटन का है, विघटन का नहीं, यह तत्व क्रिश्चियन उपदेशक भी नहीं भूले हैं। उनकी बड़ी सभा अभी हाल ही में हुई थी, उसमें बहुत से प्रश्नों का विचार हुआ। क्रिश्चियनधर्म में ऐसा प्रतिपादन किया गया है कि सारे मानव ईश्वर के बच्चे हैं। अतएव सब लोग आपस में भाई हुए। यह विचार कि, धर्म से समान-बन्धुत्व आता है, मुसलमानी धर्म में भी है और वह आचरण में स्पष्ट देखा भी जाता है। वह भी विधर्मियों को बड़े आनन्द से अपने समूह में शामिल करता है। बौद्धधर्म भी ऐसा ही संग्राहक है। पर भारतवर्ष में उसका बल, बहुत ही कम है। इतने सारे संग्राहक धर्म 'विग्राहक हिन्दू'-धर्म को निर्मूल अथवा निर्मल करने के लिए उद्युक्त हुए हैं। क्या इन सब धर्मों के आगे हिन्दू धर्म टिक सकता है? भारतवर्ष परम पवित्र धर्म क्षेत्र है। यह आज कौन कह सकता है कि यहां जो यह सारे धर्मों का युद्ध हो रहा है उसके अन्त में विजयलक्ष्मी किस एक के गले में माला पहनाती है, अथवा इस वाक्युद्ध में जन्म पाये हुए नवीन अर्भक को स्वयंवरित करती है? पर यह निश्चित है कि यह युद्ध भी राष्ट्र के एकीकरण के लिए सहायता कर रहा है।

१३ तात्पर्य—हिमालय पिता के किसी ऊंचे कंधे पर बैठ कर भारत वर्ष की सारी हलचलों का निरीक्षण करने पर जान पड़ता है कि उन सबका प्रवाह एक ही दिशा की ओर बह रहा है। जैसे किसी पर्वत से निकली हुई सारी नदियां कल्लोल करती हुई महासागर में मिलती हैं उसी प्रकार वे सारी हलचलें अवश्य ही एक राष्ट्ररूपी महासागर में जा मिलेंगी। यह महासमुद्र आज हमारी इस दृष्टि-पथ से बाहर है। परन्तु वह है अवश्य—यह हमारा मन कहता है। कोलम्बस का मन कहता था कि अमेरिका भूभाग है और उसका सौभाग्य था कि उसने उस भूभाग पर पैर रख ही लिया। हमारा मन आज उपर्युक्त जिस महासागर की शुद्ध कल्पना कर रहा है उसे कदाचित् हम इस शरीर और इन इन्द्रियों से न देख सकेंगे, तथापि हमारे पुत्रपौत्र अवश्य ही उसके सुख का अनुभव करेंगे और हम स्वयं दूसरे जन्मों में अवतीर्ण होकर उस आनन्द-सागर में गोता लगावेंगे—इसी आशा से, आओ पाठक! हम सब मिलकर उस कार्य में लगें।

---

## विद्यार्थि—बालोत्सव।



प्यारे बालको! तुम विद्यार्थी हो न? तो फिर विद्या को छोड़ कर अन्य कोई भी विचार सोते जागते मन में न लाओ, विद्या ही तुम्हारा 'अर्थ' है; तुम इसी 'अर्थ' (धन) को कमाओ। इसके समान अन्य कोई धन इस जगत में नहीं है।

विद्या धन सम धन नहीं जग में दूजो कोय।
सीखे ते जाके सदा अति अद्भुत सुख होय॥

इसे न चोर चुरा सकता है, न राजा छीन सकता है, न भाई बँटा सकता है, यह खर्च करने से घटता नहीं—बढ़ता है! बच्चो, इस समूह में जैसे तुम सब एक देश पढ़ते हो वैसे ही अपना मन भी तुम सब एक बना लो। तुम सब एक बन कर काम भी एक ही करो। वह काम कौन सा—" विद्या का उपार्जन करते हुए संसार की सेवा "!!!

विवाह का सुभीता होना चाहिए, कम से कम उन्हें इतनी उच्च शिक्षा मिलनी चाहिए कि वे, कसीदा और धैय्यकी की सहायता से, स्वावलम्बनपूर्वक अपना चरितार्थ चला सकें, उनका जीवन व्यर्थ व्यतीत न हो। प्रौढ विधवाओं के देशसेवा के समान पवित्र ध्येय नेत्रों के सामने रख कर सुधरे हुए पुण्य के लिए व्रतों का आचरण करने के मार्ग खोल देना चाहिए।

८ प्रत्येक जाति की अन्तर्जातियों में रोटी-व्यवहार और बेटी-व्यवहार बढ़ाना, कालावधि से फूटी हुई मूल की एक जाति का फिर सम्मेलन करना और रोटी-व्यवहार का प्रारम्भ करना, इत्यादि प्रयत्न उसी तरह के हैं। सब जातियों के सह-भोजन का भी यही उद्देश्य है। इसको आचरण में लाने का विचार करते समय परिस्थिति के महत्व का योग्य मापन नहीं होना यह भावना, कि उक्त कार्य आज ही सब के लिए सुकर है, कदाचित् चूक की होगी, अथवा इस विषय में कि, वह कहा तक आज सुकर है और कहा तक व्यवहार में आज या कल आ सकती है, कदाचित् दिग्भ्रम हुआ होगा, पर यह स्वीकार करना ही पडता है कि इस उद्देश्य के मूल में न्याय की समता है।

विवेक के दिखलाये हुए ध्येय के आचरण करने का जिन्हें मनोधैर्य न हो उन्हें, अपनी निर्बलता लोगों से छिपाने के लिए, धैर्यशीलों की निन्दा करने का पाप न करना चाहिए। अपनी निर्बलता स्वीकार करके घर में चुप बैठना ही उनके लिए योग्य है। अवश्य ही जिन्हें यह मार्ग विवेक-दृष्टि से "अतिशय" का जान पड़ता हो उनके विषय में हमें कुछ नहीं कहना। विवेक के निषिद्ध किये हुए आचरण का निषेध करना ही उनके लिए योग्य है। कहने का तात्पर्य इतना ही, कि विवेक के उचित ठहराये हुए आचरण पर लोकसंग्रह का पर्दा डालकर अपना कच्चापन उसके पीछे छिपाने का प्रयत्न करना जितना अपनी मनुष्यता की योग्यता के लिए हानिकर है उतना ही राष्ट्र के अन्तिम हित के लिए भी विघ्न-कारक है, यह बात उन्हें अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए। इसके विरुद्ध दृष्टि से देखने पर यह भी कहना पड़ता है कि साहसिक सुधारकों को अपना अभीष्ट सुधार छद्म से अथवा कानून का समाश्रय करके लोगों के गले बाँधने का यत्न करना भी अनुचित है। इतिहास साक्षी दे रहा है कि ऐसे यत्नों से सुधार होना पीछे रह जाता है। यह बात सब को ध्यान में रखनी चाहिए कि राष्ट्र सत्य की नींवें पर है। श्रुति कहती है कि सत्य ने पृथ्वी को धारण किया है और सत्य ही आकाश को सँभाले हुए है। यह वचन क्या श्रुतियों के द्वारा हृदय में बैठेगा?

९ हिन्दू मुसलमानों का असली झगडा सम विषम भाव से उत्पन्न होनेवाले राजकीय सुधार के व्यवहार में बढ़ गया था। उसका अतिरेक हो गया और अब उसके उलट जाने के चिन्ह देख पडने लगे हैं। इन बीस पच्चीस वर्षों में शिक्षा ने मुसलमानों पर अपना कार्य किया है। अहम्मन्यता, अज्ञान, आलस, दुराग्रह, इत्यादि की पीडा से छूट कर अब उनकी दृष्टि स्वच्छ होने लगी है। उनकी दृष्टि पर जो माड़ा छाया हुआ था उसे दूर करने के लिए टर्की का पराभव और उसके विषय में पाश्चात्य राष्ट्रों के तथा राजपुरुषाग्रणियों के मत ही उत्तम शलाका बन गये हैं! इस विषय में, बाकीपुर की कन्वेंशन की स्वागत-कारिणी सभा के अध्यक्ष का भाषण मनन करने योग्य है। हमारे जीवन में जिस सत्य के मार्ग के खुलने की कोई आशा न थी, कौन जानता था कि, वह इतनी जल्दी और ऐसे दुःख-प्रसंग पर खुल जायगा? पर ईश्वर की लीला अतर्क्य है। "वह मार्ग खुल गया" इस प्रकार वे—एक ओर दुःख से और एक ओर सन्तोष से—बोले! लखनऊ में जो मुसलमानों की परिषद हुई उसने भी वही बाकीपुरवाली नीति स्वीकार की। जब कि हिन्दू और मुसलमान एक मार्ग पर आ गये तब फिर एक राष्ट्र होने के लिए सिर्फ समय की ही देरी है! एक प्रसिद्ध इतिहासकार का मत है कि इतिहास के सारे बनाव-बिगाड में ईश्वर की उँगली रहती है। यह मत सभी सच्चे विद्वानों को मान्य है। इस विषय में कि अब आगे से हिन्दू मुसलमान आपस में किस प्रकार का बर्ताव करें, कन्वेंशन के अध्यक्ष की सूचना सच्चे देशभक्तों को पसन्द होगी। उसका तात्पर्य यही है कि एक दूसरे को चिढ़ाओ नहीं, एक दूसरे के हृदय में प्रवेश करो, आपस के मत समझ लो, उनका आदर करो! मुसलमानों से उन्होंने कहा, "भाइयो! तुम्हारे धर्मक्षेत्र चाहे भारतवर्ष से बाहर हों, तथापि हम सब की जन्मभूमि यही देश है, अतएव इस माता से अलग मत हो।"

१० उद्योग धंधे में प्रवीण होने के लिए बहुधा जन्मसिद्ध जाति विघ्न डालती है। इस बात का अनुभव दिन दिन अधिक हो रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि यत्रों से चलते हुए कारखाने, रेलगाड़ियां, इत्यादि के कार्यक्षेत्र में जो विद्वत्ता और दक्षता इत्यादि गुण पाये जाते हैं उनका विभाग ईश्वर ने जाति के अनुसार किया है। उक्त गुणों से युक्त पंडित पुरुष प्रत्येक जाति में पाये जाते हैं। प्रत्येक कारखाने में अथवा बाहरी व्यवहार में उन गुण-पंडितों की श्रेणी क्रम के अनुसार ही लगती है। इस विषय में देसी-अनदेसी करने से कोई लाभ नहीं। उद्योग धंधे में जितने अधिक मनुष्य तैयार होंगे उतना ही राष्ट्रीय सम्पत्ति के लिए हित होगा। आज कल के व्यापार के दुर्धर संग्राम का सामना करने के लिए पहले कई तरह की औपपत्तिक शिक्षा सम्पादन करनी पड़ती है, तिस पर भी कारखाने का प्रत्यक्ष अनुभव चाहिए ही। इस लिए राष्ट्र में उद्योगधंधों के छोटे छोटे स्कूल, बड़े बड़े कालेज और कलाभवनों की स्थापना होना अत्यन्त आवश्यक है। आनन्द की बात है कि हमारे देश में भी दानशूर ताता, पालित, चिनूभाई के समान महाशय ऐसे विद्यालय स्थापित करने के लिए आगे बढ़े हैं। यथाशक्ति और यथामति इनका अनुकरण प्रत्येक जिला में, प्रत्येक प्रान्त में होना चाहिए। औद्योगिक परिषद के सभापति के व्याख्यान में ऐसी ही बातों पर जोर दिया जाता है, इसे कार्यरूप में परिणत करना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बड़ोदा-नरेश श्रीमान् सयाजीराव महाराज ने इस कार्य में भी अपना आदर्श देशी रियासतों के सामने रख दिया है। और सन्तोष का विषय है कि होलकर, सेंधिया, भोसले, इत्यादि राजा महाराजा भी उनका अनुकरण कर रहे हैं। राष्ट्रीय परिषद की एक बैठक में सभापति ने इस बात पर जोर दिया कि लेजिस्लेटिव कौंसिल में राजा लोगों का क्या काम? और जब कभी अँगरेजी भाषा से बिलकुल अनभिज्ञ राजकुमारों की नियुक्ति होने लगती है तभी उक्त आक्षेप किया जाता है। तथापि आघात-प्रत्याघात-न्याय से राजा लोग लेजिस्लेटिव कौंसिल से बहुत सा व्यावहारिक राजकीय ज्ञान और लोक-कल्याण विषयक श्रद्धा अपने राज्य में ले जाते हैं और तदनुसार थोडा बहुत कार्य भी कर दिखलाते हैं; इसके विरुद्ध यह भी देखा जाता है कि कई बातों में छोटे छोटे राजाओं की, अथवा उनकी ओर से काम करनेवाले अधिकारियों की, राजकीय दृष्टि ब्रिटिश प्रान्त में भी अनुकरण करने योग्य होती है। यह कहना बिलकुल भ्रामक हो नहीं हो सकता कि, भारतवर्ष की भावी राजकीय घटना में हैदराबाद के निजाम और बड़ोदा के गायकवाड़ को यदि स्थान मिलेगा तो बहुत से विघटित भाग सुघटित होंगे। इसी समय श्रीमान् सयाजीराव ने जो सुधार अपने राज्य में कर दिखलाये हैं—जैसे आवश्यक प्राथमिक शिक्षा, विवाह की वय मर्यादा बढ़ानेवाला कायदा, पुस्तकालय, वस्तुसंग्रहालय, हाल ही में बना हुआ बुद्धोद्यान इत्यादि—अन्यान्य प्रान्तों के लिए आदर्शवत् हो रहे हैं। रेलगाडियां, तारायंत्र, पोस्टआफिस, मोटरगाड़ियां, इत्यादि बातें राजव्यवस्थाओं के साथ, आज पचीस वर्षों से राष्ट्र का एकीकरण कर रही हैं, जान पड़ता है कि इन बातों में परस्परानुकरण करने की इच्छा बहुत बढ जायगी।

११ कृषि-विभाग ने, भारत के किसी किसी प्रान्त के किसानों का प्रयोग और उपदेश के द्वारा, इन बातों का अनुभवजन्य ज्ञान देना निश्चित किया है कि, वर्तमान दशा में कौन सी फसल कैसे अधिक उत्पन्न की जा सकती है, कौन से औजार और यंत्र—भाफ से चलनेवाले या तैलयंत्र की शक्ति से चलनेवाले—आज-कल मजदूरों के न मिलने पर लाभदायक हो सकते हैं। किसानों की प्रान्तिक सभाएं कहीं कहीं स्थापित हो रही हैं। इनका उद्देश्य यह है कि किसानों को कम व्याज पर पूँजी मिले, जिससे खेती में सुधार किया जा सके। सामाजिक जवाबदारी पूँजी की सन्दूक है। यह जवाबदारी उस सन्दूक के सब लोगों को अपने हाथ में लेकर प्रेमबद्ध करता है। यद्यपि ये सन्दूकें इस समय प्रायः एक ही जाति अथवा एक ही धंधे के लोगों की हो गई हैं तथापि उनमें कहीं कहीं भिन्न भिन्न जातियों के और धंधों के लोग भी शामिल हो गये हैं। कहीं कहीं ये सन्दूकें ग्रामसंस्था के रूप में हो गई हैं। ग्रामसंस्था को आगे पर बड़ा महत्व मिलनेवाला है, अतएव ये सन्दूकें सारे ग्रामों को एक करनेवाले अनेक कारणों में शामिल होंगी, सारे ग्राम एक होने पर उन ग्रामों से बननेवाला पर्गना एक होगा, पर्गनों से जिला, जिलों से डिवीजन, डिवीजनों से प्रान्त, इत्यादि क्रमशः एक होते जायँगे और इस प्रकार सारे प्रान्त तथा राजा महाराजाओं की रियासतें मिल कर एक भारतवर्ष हो जायगा। आज राजकीय भारतवर्ष एक है—फिर सब बातों में वह एकही हो जायगा।

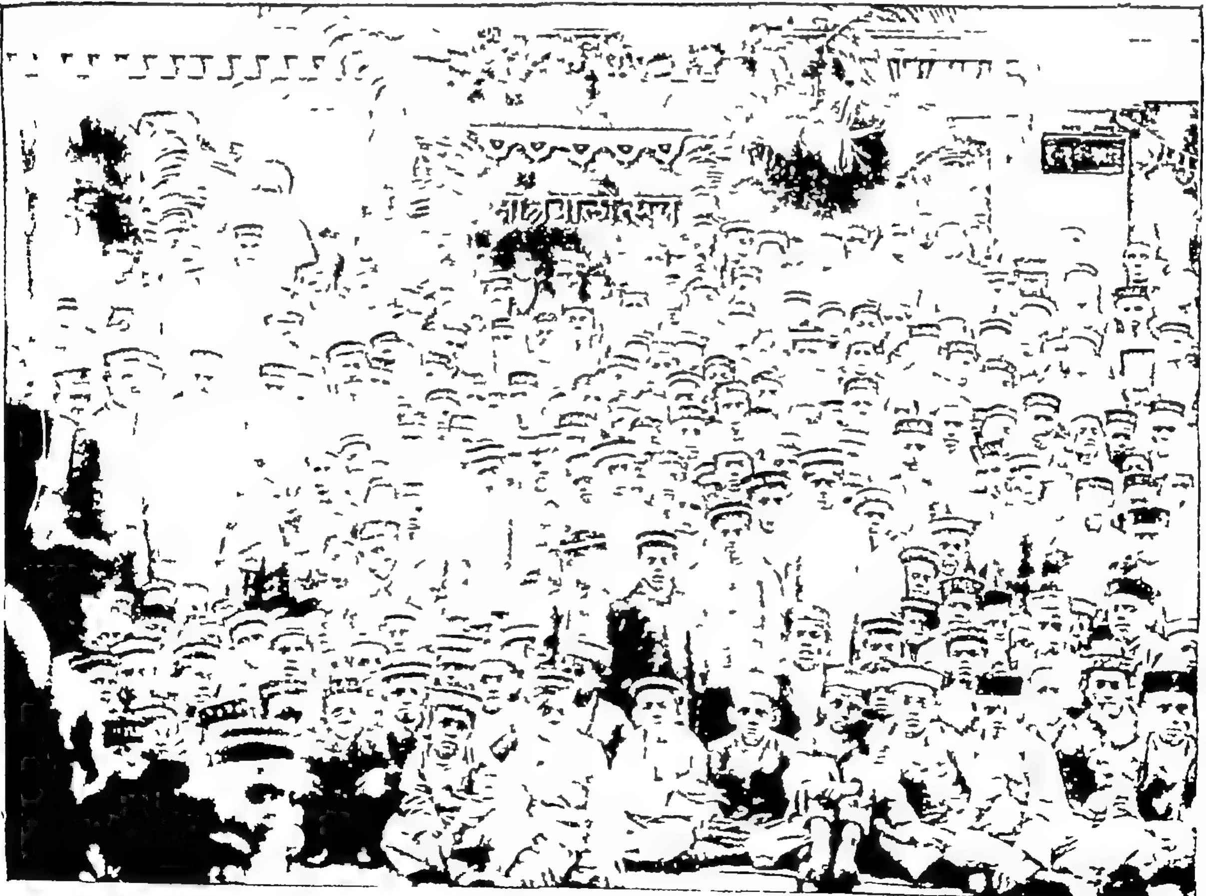
१२ कोई कहेगा कि, भैयाजी, तुम पागल तो नहीं हो गये? जान पड़ता है कि तुम बरेली के पागलखाने की हवा खाना चाहते हो! अरे, जिस भारतवर्ष में नाना पंथ, नाना मत असंख्यों फैले हुए हैं, जहां एक ही प्रान्त में छोटी छोटी अन्तर्जातियों में भिन्न आचार, भिन्न विचार देख पड़ते हैं—वहां यह कहना, कि सब विचारों की एकवाक्यता हो जायगी, बिलकुल पागलपन है। परन्तु शान्त होकर विचार कीजिए। देखिये, महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रकाशित किया हुआ आर्यधर्म पंजाब और युक्तप्रान्त से धीरे धीरे सारे भारतवर्ष में फैल रहा है। दक्षिण ओर अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, नासिक, हैदराबाद तक चला गया है। पूर्व की ओर कलकत्ते तक पहुँचा है। लक्षण देखने से जान पड़ता है कि इस आर्यधर्म का ही साम्राज्य भविष्य में होनेवाला है। इधर ब्रह्मोधर्म भी कलकत्ते के चारों ओर फैल रहा है। उसीका एक सन्तान प्रार्थनासमाजधर्म बम्बई प्रान्त के कुछ स्थलों में विशेषतः पूना, बम्बई, अहमदाबाद और इन्दौर में अपने सर्व-धर्म-संगृहीत तत्वों का उपदेश कर रहा है। स्वयं वाराणसी और अडियार, इन दो आगारों से मिसेस बेसंट

और उसके अनुयायी मुख्यत संस्कृत हिन्दूधर्म के तत्व और गौण रूप से पृथ्वी पर के सब मुख्य धर्मों के तत्व व्याख्यान, ग्रन्थ, सभा और आचार्योपासना के द्वारा, प्रकाशित कर रहे हैं। पर सब से बड़ा विस्तार क्रिश्चियनधर्म के उपदेशकों का है। उनके पथ यद्यपि भिन्न भिन्न हैं और देशी ईसा-भक्तों के साथ ईसा के उपदेशानुसार समानता का वर्ताव नहीं करते, तथापि उनका महान् उद्योग, भारत के प्रत्येक कोने में फैली हुई उनकी शाखाएं, साथ ही मुफ्त औषधालय, दुर्बलों के लिए अन्नक्षेत्र, मुफ्त बाँटे जानेवाले पत्र और पुस्तकें, उनके स्कूल तथा मधुर और दयापूर्ण वचन—तिस पर भी उनके धन का अखण्ड बहता हुआ श्रोत,इत्यादि बातों से उनकी शक्ति बहुत बढ़ गई है ! इस प्रकार यह समय सघटन का है, विघटन का नहीं, यह तत्व क्रिश्चियन उपदेशक भी नहीं भूले हैं। उनकी बड़ी सभा अभी हाल ही में हुई थी, उसमें बहुत से प्रश्नों का विचार हुआ। क्रिश्चियनधर्म में ऐसा प्रतिपादन किया गया है कि सारे मानव ईश्वर के बच्चे हैं। अतएव सब लोग आपस में भाई हुए। यह विचार कि, धर्म से समान-बन्धुत्व आता है, मुसलमानी धर्म में भी है और वह आचरण में स्पष्ट देखा भी जाता है। वह भी विधर्मियों को बड़े आनन्द से अपने समूह में शामिल करता है। बौद्धधर्म भी ऐसा ही सग्राहक है। पर भारतवर्ष में उसका बल, बहुत ही कम है। इतने सारे सग्राहक धर्म 'विग्राहक हिन्दू'-धर्म को निर्मूल अथवा निर्मल करने के लिए उद्युक्त हुए हैं। क्या इन सब धर्मों के आगे हिन्दू धर्म टिक सकता है? भारतवर्ष परम पवित्र धर्म क्षेत्र है। यह आज कौन कह सकता है कि यहा जो यह सारे धर्मों का युद्ध हो रहा है उसके अन्त में विजयलक्ष्मी किस एक के गले में माला पहनाती है अथवा इस वाक्युद्ध में जन्म पाये हुए नवीन अर्भक को स्वयवरित करती है? पर यह निश्चित है कि यह युद्ध भी राष्ट्र के एकीकरण के लिए सहायता कर रहा है।

१३ तात्पर्य—हिमालय पिता के किसी ऊंचे कधे पर बैठ कर भारत वर्ष की सारी हलचलों का निरीक्षण करने पर जान पड़ता है कि उन सबका प्रवाह एक ही दिशा की ओर बह रहा है। जैसे किसी पर्वत से निकली हुई सारी नदिया कल्लोल करती हुई महासागर में मिलती है उसी प्रकार वे सारी हलचलें अवश्य ही एक राष्ट्ररूपी महासागर में जा मिलेंगी। यह महासमुद्र आज हमारी इस दृष्टि-पथ से बाहर है। परन्तु वह है अवश्य—यह हमारा मन कहता है। कोलम्बस का मन कहता था कि अमेरिका भूभाग है और उसका सौभाग्य था कि उसने उस भूभाग पर पैर रख ही लिया। हमारा मन आज उपर्युक्त जिस महासागर की शुद्ध कल्पना कर रहा है उसे कदाचित् हम इस शरीर और इन इन्द्रियों से न देख सकेंगे, तथापि हमारे पुत्रपौत्र अवश्य ही उसके सुख का अनुभव करेंगे और हम स्वय दूसरे जन्मों में अवतीर्ण होकर उस आनन्द-सागर में गोता लगावेंगे—इसी आशा से, आओ पाठक! हम सब मिलकर उस कार्य में लगें।

---

## विद्यार्थि-बालोत्सव।



प्यारे बालको! तुम विद्यार्थी हो न? तो फिर विद्या को छोड़ कर अन्य कोई भी विचार सोते जागते मन में न लाओ, विद्या ही तुम्हारा 'अर्थ' है, तुम इसी 'अर्थ' (धन) को कमाओ। इसके समान अन्य कोई धन इस जगत में नहीं है।

विद्या धन-सम धन नहीं जग में दूजो कोय।
सीखे ते जाके सदा अति अद्भुत सुख होय॥

इसे न चोर चुरा सकता है, न राजा छीन सकता है, न भाई बँटा सकता है, यह खर्च करने से घटता नहीं—बढ़ता है! बच्चो, इस समूह में जैसे तुम सब एक देख पड़ते हो वैसे ही अपना मन भी तुम सब एक बना लो। तुम सब एक बन कर काम भी एक ही करो। वह काम कौन सा—"विद्या का उपार्जन करते हुए समाज की सेवा"!!!

# लार्ड विलिंग्डन्—बम्बई के नवीन गवर्नर।

बम्बई प्रान्त के गवर्नर लार्ड सिडेनहॅम का शासनकाल समाप्त होने पर उनके स्थान में लार्ड विलिंग्डन की नियुक्ति हुई है। आपका



लार्ड विलिंग्डन्।

जन्म सन् १८६६ में हुआ। आपकी शिक्षा ईटन के ट्रिनिटी कालेज में हुई। आपने पहले "ससेक्स आर्टिलरी मिलिशिया" में १४ वर्ष

कार्य किया। सन् १८९२ में पहले अर्ल ब्रासे की कन्या लेडी मरी आडेलेड के साथ आपका विवाह हुआ, और सन् १८९५ में जब अर्ल ब्रासे विक्टोरिया के गवर्नर हुए तब आपको उनके ... का स्थान मिला। तीन वर्ष आपने यह कार्य किया। १८९८ में आप

इंगलैंड को लौट आये। १६०० में दक्षिणी आफ्रिका की लड़ाई के कारण जो पार्लिमेन्ट का चुनाव हुआ उसमें आप हेस्टिंग्ज की ओर से नहीं चुने गये, किन्तु कार्नवाल के बाडमिन् विभाग की ओर से उम्मेदवार होकर चुने गये हाउस आफ कामन्स' में



लेडी विलिंग्टन्।

की ओर से सर हेनरी कॅम्बेल बनरमेन के अनुयायी की हैसियत से पार्लिमेन्ट के सभासद चुने गये। १६०६ के बड़े चुनाव में आप हेस्टिंग्ज भी आप करीब १० वर्ष तक रहे हैं। १६१० में आप 'पियर' हुए। इसके पहले १६०५ में आप 'जूनियर लार्ड आफ दि ट्रेजरी' बनाये

गये थे; १९११ में आप इंगलैंड के राजा साहब के पास रहनेवाले 'लार्ड-इन्-वेटिंग' हुए। आपको क्रिकेट का खेल बहुत प्यारा है—नहीं, नहीं, आप उस खेल में बड़े विद्वान् समझे जाते है। ईटन और केम्ब्रिज की क्रिकेट-टीम के आप कैप्टन भी थे।

लार्ड विलिंग्डन् निर्मल मन और अच्छे स्वभाव के आदमी है। आप अभी तक जहां रहते थे वहा के आदमियों को आप इतने प्यारे थे कि आपके वियोग से उन लोगों को बड़ा खेद हुआ। कहते हैं कि आप स्वदेश को छोड़ कर, सात समुद्र पार, इतनी दूर भारतवर्ष की उष्ण हवा में जो आये हैं सो सिर्फ लोकसेवा के लिए ही आये हैं। ऐसा भी जाना गया है कि आप भारतवर्ष में एक बार कभी आये थे, तथापि इस देश के सम्बन्ध में आप विशेष जानकार नहीं है। लडन की एक ट्रामवे कम्पनी के आप बहुत दिन तक डायरेक्टर थे, अतएव लोगों का तर्क है कि बम्बई की ट्रामवे कम्पनी को आपसे अच्छी उत्तेजना मिलेगी। आशा है कि आपसे और भी हमारे देश के कल्याणकारी कार्य होंगे।

आपकी धर्मपत्नी लेडी विलिंग्डन अपने पिता के साथ बालपन में एक बार यहा आ चुकी हैं। अतएव आपके मन में भी इस अभागी भारतभूमि पर कुछ न कुछ भक्ति अवश्य ही होगी। आप स्वरूपवान्, शीलवान और उत्साहशीला है। समाज में आपका बर्ताव प्रेमपूर्ण रहता है। कहते है कि आपको फुलवाड़ी और बाग-बगीचों पर बड़ा प्यार है। परमात्मा इस दम्पति के द्वारा हमारे देश का कल्याण करे।

# देवियों का दर्शन।



स्त्री-जाति सचमुच ही देवियों की जाति है, परन्तु अज्ञान के कारण यहा के पुरुषों ने स्त्रियों की दुर्दशा कर रखी है। भाइयो! अपनी पुत्रियों, बहनों, पत्नियों, और माताओं को अब फिर 'देवी' के पद तक पहुचाओ। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी जाति फिर पूर्व कालीन उन्नति को प्राप्त हो तो सब काम छोड़ कर पहले स्त्रियों को सुशिक्षित करो, उन्हें सच्चे धर्म का ज्ञान दो। इस चित्र की ओर देखो। यह स्त्री-समूह विद्या की धुन में लगा हुआ है, अतएव ये सब अवश्य ही देविया हैं, इन देवियों का दर्शन कर लो और अपनी आत्मा को पवित्र करो।



भारत के कई प्रान्तों में मुहर्रम के दिनों में लोग बाघ बन कर नाचते-कूदते हैं। ऐसा ही नागपुर का एक चित्र यहा पाठकों को दिखलाया जाता है।

# विलायत की सैर।

[ लेखक—ग० म० मराठे, एम० ए०, ए० आइ० ए० ]

## ईस्टवोर्न—वडा दिन १९१२—हेस्टिंग्ज।

मै गत वर्ष के वड़े दिन की छुट्टियों में वोर्नमथ और ब्रायटन की सैर कर चुका था, इस लिए इस वर्ष ईस्टवोर्न में जाने का विचार किया। पहले पत्र भेज कर दो एक जगह पूँछपाछ की थी, परन्तु प्रवन्ध नहीं जमा, अतएव स्वय जाकर प्रवन्ध करने का निश्चय किया। २४ तारीख को विक्टोरिया स्टेशन से चल कर ढाई घंटे में मैं ईस्टवोर्न पहुँच गया। परन्तु हवा वहुत खराव थी, वर्षा कुछ कुछ हो रही थी और रास्ते भीग गये थे। सामान क्लाकरुम में डाल कर पूँछपाँछ करने के लिए वस्ती को चला। कई जगह 'अपार्टमेन्टस्' और 'वेडसिटिंग रूम' के साईनवोर्ड लगे थे। दो तीन जगह मैंने पूँछपाँछ की, पर स्थान नहीं मिला। फिर विचार किया कि वड़े दिन का तमाशा देखने के लिए वास्तव में वोर्डिंग हाउस ही चाहिए। इतने ही में एक वोर्डिंग हाउस देख पड़ा। उसकी साकल खटखटाई। भीतर से एक तरुण वालिका आई। उससे मैंने पूछा कि यहां मुझे रहने के लिए और भोजन के लिए (वोर्ड रेसिडेन्स) क्या जगह मिल सकती है? उसने कहा, "हां"। एक दो वातों के कारण मुझे चार घर अधिक ढूंढ़ने पड़ते हैं। वे वातें—रोज सुवह 'कलेऊ' के पहले स्नान और वनस्पत्याहारी भोजन। उस लड़की ने पूछा, आपको भोजन के लिए क्या चाहिए? मैंने कहा भात, 'करी,' तरकारी और दूध। उसने कहा, ये पदार्थ यहां मिल सकते हैं। रहने की कोठरी और भाड़ा इत्यादि तै हो जाने पर वहीं उतरने का निश्चय किया। इसके वाद मैं स्टेशन पर से सामान लाने के लिए गया। सामान की रसीद की छोटी सी घड़ी करके उसे जेव में डाल लिया था। वह मिली नहीं। अतएव क्लाकरुम के आदमी ने दूसरे एक कागज पर मेरा हस्ताक्षर लेकर सामान दे दिया। सामान मेरा ही था, इसमें कोई सशय नहीं था। क्योंकि सामान रखनेवाला भारतीय चेहरा अगरेजी टोपी से छिप नहीं सकता!



हेस्टिंग्ज नव्धेन्नार की क्रीडा का दृश्य।

अस्तु सामान लाकर रख दिया। ड्राइंगरूम में अँगीठी जल रही थी वहां आकर बैठ गया। वहीं एक प्रौढ़ दम्पत्ति (पति पत्नी) वठे थे। उक्त वालिका ने मेरी 'नाम-पत्रिका" के द्वारा उनसे परिचय करा दिया। वार्तालाप होने लगा। वाहर की वुरी हवा की चर्चा हुई अन्य विषयों पर सम्भाषण होने लगा। मौका मिलने पर न यह प्रकट करने में कभी नहीं चूकता कि मै 'भारतीय' हूं। क्योंकि मै यह एक अभिमान की वात समझता हूं। अस्तु; उसी दिन सुवह दिल्ली के अत्याचार का तार पहुँचा था उस पर तिरस्कार-पूर्वक खेद प्रकट किया गया, और कुछ वातचीत हुई कि इतने में चाय का वक्त आ गया। चाय में तीन ही चार लोग थे, अतएव यह देख कर खेद हुआ कि वड़े दिन का आनन्द यहां नहीं मिलने का! चाय पान हो जाने पर समुद्र किनारे घूमने के लिए गया। परन्तु वादल दो चार दिन से छाया हुआ था, पानी वरस रहा था और हवा भी वेगवान थी इस कारण वहुत घूम नहीं सका, और समुद्र की ओर जगह जगह जो विश्राम-स्थल वने हुए थे उनमें से एक का मैंने भी आश्रय लिया। यद्यपि विशेष जाड़ा नहीं था तथापि हवा सर्द थी अतएव सिर में दर्द उत्पन्न होने के भय से लौट आया पट पर की शोभा देखने को नहीं मिली। अन्य लोग भी कम देख पड़े। रात को नौ वजे भोजन हुआ।

वुधवार, ता० २५, वड़ा दिन आ गया, तथापि पानी नहीं वन्द हुआ। 'ब्रेकफास्ट' होने पर अन्य लोग चर्च को गये और मैं भी शुक्रवार के दिन भारत को भेजने के लिए पत्र लिखने लगा। कुछ देर वाद लोग चर्च से लौट आये और गप शप मारते हुए हवा की खरावी पर वातचीत होने लगी। एक कमरे में, जहां भोजन की तैयारी थी, मैं भी गया। इस समय वहुत लोग जमा हुए थे। दो वड़े वड़े टेवल जोड़ कर खूव लम्बी चौड़ी जगह भोजन के लिए वनाई गई थी। उस पर जगह जगह कांच के कुंडों में सुशोभित पौधे रखे हुए थे। स्थल वड़ा मनोहर वनाया गया था। आज मेरा निज का भोजन भी सावधानी से और उत्तम वनाया गया था, तीन चार प्रकार के पदार्थ आये थे। उस प्रौढ़ सज्जन की सूचना से, काफी के प्यालों के द्वारा, हम सव ने घर की स्वामिनी का आरोग्य चिन्तन किया। भोजन करते समय कोई कूट प्रश्न पूँछते थे, कोई विनोद पूर्ण वार्तालाप करते थे, कोई भोज्य पदार्थों की प्रशसा करते थे—इस प्रकार यथोचित भोजन होने पर लोग इधर उधर आराम करने के लिये गये। मैंने भी "शतपदी" की। थोड़ी देर वाद हम सव लोग ताश खेलने के लिए वैठे। अगरेजी रीति से खेल कर उन सव को चकित किया। वड़ा आनन्द आया। इतने में चाय का समय आ गया। चाय पीने के वाद क्रिस्मस के खेलों का प्रारम्भ हुआ।

पहले एक युवती पियानो वजाने लगी, एक सज्जन उसके पास वैठ कर गाने लगा, अन्य लोग वीच वीच में उसे मदद देने लगे। इस प्रकार गायन वादन-परायण युवकों ने अन्य लोगों का मनोरंजन किया। फिर अन्य खेलों का प्रारम्भ हुआ।

गाने और वजाने के लिए मुझसे भी आग्रह किया गया। मै उस काम में कुछ पीछा न पकड़ता, एक दो पद गा ही देता, परन्तु यही एक वड़ा दिन था, और इस दिन यथाशक्य मैंने उन्हींके खेल देखने का निश्चय किया था। अतएव विनय की वर्षा करके मैंने उनसे छुटकारा पाया। इस समय वहां १८–१६ लोग जमा हुए थे। ६ लोग तो उस कुटुम्ब के ही थे। उनमें एक मुख्य प्रौढ़ दम्पत्ति, तीन तरुण लड़के, तीन तरुण लड़की, एक लड़की जिसका विवाह हो गया था, उसका पति। चार तरुण लड़कियां मेरी ही तरह थीं, पर वे उनकी अधिक पहचान की थीं, एक और प्रौढ़ावस्था के दम्पति थे। इनके सिवाय एक प्रौढ़ सज्जन तथा दो स्थानिक लड़कियां खेलने के लिए आई थीं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां कुछ अधिक थीं। नृत्य-कुशल लोगों ने कुछ देर तक वाजे की ताल पर नृत्य किया। इसके वाद सव लोग दो पक्षों में विभाजित किये गये। दोनों पक्ष आमने-सामने खड़े हुए। फिर एक पक्ष के लोग हाथ में हाथ डाल कर ताल पर पैर रखते हुए, सुर में कुछ वाक्य कहते हुए, दूसरे पक्ष की ओर जाते और इस अर्थ का वाक्य, कि "तुम्हारी ओर का अमुक मनुष्य हमें ले जाना है," कह कर लौट जाते। दूसरा पक्ष उसी प्रकार ताल में आगे आते हुए कहता, "उसे ले जाने के लिए तुम किसे भेजते हो?" फिर पहला पक्ष आगे वढ़ कर कहता, "हम अमुक को भेजते हैं"। फिर दोनों पक्ष पीछे रह कर पृथक् दो मनुष्य आगे वढ़ते हैं। वीच में एक निशान रख कर उस पर हाथ में हाथ डालते और खींचते। जिसका जोर कम पड़ता वह उस निशान के आगे चला जाता और उसीको दूसरे पक्ष की ओर जाना पड़ता। फिर आह्वान करने की वारी दूसरे पक्ष की ओर जाती। इस रीति से, एक पक्ष की ओर जव तक मनुष्य विलकुल कम न हो जाते तव तक खेल होता रहता।

इसके वाद गत वर्ष वोर्नमथ में देखा हुआ खेल हुआ। सीधी लाइन में वीच में सव पुरुषों के खड़े हो जाने पर स्त्रियां उनके आसपास दौड़तीं और वाजा वन्द हो जाने पर प्रत्येक स्त्री पर एक पुरुष के हाथ में हाथ डालती। एक वची हुई स्त्री खेल से अलग वैठती और एक पुरुष को भी हटा लेती। इसके वाद फिर स्त्रियां दौड़तीं। इस प्रकार अन्त में जो एक स्त्री वचती उसकी जय होती। यही खेल, फिर, स्त्रियों को वीच में खड़ा करके, पुरुष, दौड़ कर खेलते।

इसके वाद एक एक स्त्री और एक एक पुरुष की जोड़ियां एक के पीछे एक खड़ी होकर गोलाकार वनाया। उसमें स्त्रियां भीतर की ओर थीं। और एक स्त्री अधिक थी, उसे राज्य किया। वाजा वजने ही सव ताल के ऊपर होते ही प्रत्येक स्त्री अपना हाथ निका कर

हाथ मे डालती। इस गड़बड़ में राज्यवाली स्त्री किसी पुरुष का हाथ खाली पाकर उसमें अपना हाथ डालती। इस पर दूसरी जो स्त्री खाली रह जाती उस पर राज्य आता। इस प्रकार कुछ देर खेल होने पर पुरुष भीतर की ओर हो जाते हैं और एक पुरुष को राज्य देते हैं।

इसके बाद आँखमिचौनी हुई। जिस मनुष्य की आँखें बांधी जाती हैं उसे सब लोग धक्के मार कर और कोट खींच कर हैरान करते हैं। वह जब किसीको पकड़ लेता तब उसे टटोल कर उसका नाम बतलाता। तीन बार बतलाने पर यदि नाम न बतला सकता तो उस पर से राज्य नहीं जाता और फिर खेल शुरू होता है। नाम बतला देने पर पकड़े हुए मनुष्य पर राज्य आता है। मुझे थोड़े ही लोगों के नाम मालूम थे, अतएव मैं इस खेल में शामिल नहीं हुआ।



इस्टबोर्न जलाघान।

इसके बाद एक प्रकार का नाच हुआ, परन्तु यह नाच सब को न मालूम था, अतएव भूलें होने लगीं, तब यह जल्दी ही बन्द कर दिया गया।

इसके बाद एक गेंद का खेल बड़ा मजेदार हुआ। इसमें, पहले एक मनुष्य अपने ऊपर राज्य लेता और अपने रुमाल का गेंद बना कर तुरन्त किसीके शरीर पर डालता और डालते डालते कहता—' काले चोर का नाम 'वा'-१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०" इतनी अवधि में, जिसके शरीर पर गेंद डाला गया उसे "वा" से शुरु होनेवाला कोई शब्द बतलाना चाहिए (फिर वह शब्द किसी का नाम हो, चाहे न हो) और यदि वह नहीं बतलाता तो उस पर राज्य जाता है।

इसके बाद आँखें मटकाने का खेल हुआ। कुछ लोग कुर्सियों पर बैठे और एक कुर्सी खाली रखी। अन्य लोगों में से, प्रत्येक कुर्सी के पीछे एक एक मनुष्य खड़ा हो गया। जो कुर्सी खाली रखी थी उसके पीछे खड़े होनेवाले मनुष्य पर राज्य आया। वह किसी कुर्सी पर बैठे हुए मनुष्य की ओर देख कर बाईं आँख मटकाता, इसके साथ ही वह उठ कर खाली कुर्सी पर जाने लगता। इतने ही में उसके पीछे खड़ा हुआ मनुष्य उसके कंधे पर हाथ रखता और वह अपनी जगह पर ही रहता। नहीं तो उसके पीछेवाले मनुष्य पर राज्य जाता। जब मैंने प्रौढ़ स्त्रियों को भी आँखें मटकाते देखा तब तो मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। एक प्रौढ़ मनुष्य तो आँखें मटका ही न सका। वह अपना सिर्फ गर्दन ही हिला कर अपनी कुर्सी पर आने के लिए संकेत करता।



हेस्टिंग्जमेंटकेमडरी गुफाए।

इसके बाद बैंड बजाने का खेल हुआ। यहाँ बैंड में तीस चालीस लोग रहते हैं और प्रत्येक का वाद्य भिन्न भिन्न रहता है। प्रत्येक मनुष्य कोई न कोई एक वाद्य बजाने के लिए लेता है। कौन मनुष्य कौन वाद्य लेगा, सो पहले निश्चय हो जाता है। उसमें मैंने टायगल (त्रिकोण) वाद्य लिया। किसीने हस्त-वाद्य (विशिष्ट वाद्य) लिया, किसीने ढोल लिया, किसीने भोंपा लिया, किसीने बाँसुरी ली, किसीने अलगोजा लिया, किसीने ह्वायोलिन लिया, किसीने चेलो लिया, इस प्रकार जब सब ने वाद्य ले लिये तब एक मनुष्य उन सब का कंडक्टर बन कर बीच में खड़ा हुआ। और ज्योंही वह अपने हाथ की उँगली से, कंडक्टर, करने लगा त्योंही सब ने अपने अपने वाद्य शुरू किये। मैं बायां हाथ ट्रायगल पकड़ने की तरह टँगा हुआ रख कर दाहने हाथ मे उसे बजाने की तरह उँगली नीचे ऊपर करता था क्योंकि यह खेल ऐसा था कि कंडक्टर बीच ही में अपना काम छोड़ कर दूसरे किसीके वाद्य का अभिनय करने लगता। यह बात जब उस वाद्य बजानेवाले के ध्यान में आती तब वह अपना वाद्य छोड़ कर कंडक्टर की तरह हाथ करने लगता। इस पर कंडक्टर फिर अपना काम शुरू करता और फिर वह भी अपना वाद्य शुरू करता। परन्तु यदि कंडक्टर का कार्य ध्यान में न आता तो फोर्फीट के तौर पर जप्त करने के लिए कोई वस्तु देनी पड़ती। इस प्रकार बहुत देर तक खेल होते रहा। मेरी और अन्य ४।५ लोगों की कई चीजें जब्त होने पर बाजा बन्द किया गया। इसके बाद एक मनुष्य सजा बतलानेवाला न्यायाधीश बनाया गया। यह काम मेरे पास बैठे हुए, घर की मालकिन के दामा दजी को सौंपा गया। कंडक्टर उनके आगे ही, परन्तु उनकी ओर पीठ फेर कर बैठ गया और पास की वस्तुओं में से कोई वस्तु न्यायाधीश को न दिखलाते हुए हाथ में लेकर सजा पूछने लगा। जिसकी वस्तु हो उसे चाहिए कि न्यायाधीश की बतलाई हुई सजा भोग कर वस्तु लौटा ले। सजा बतलाने के पहले न्यायाधीश यह पूछ लेता कि वह, पुरुष है या स्त्री है। एक पुरुष को आपने कमरे के आस-पास नाचने के लिए कहा। यह मनुष्य बड़ी प्रौढ़ सज्जन निकला। पर यह ज्वान बड़ा कौतुकी था, वह प्रसन्नतापूर्वक नाच आया। एक को टेबल पर खड़े होकर नाचने का हुकम हुआ। एक कुमारिका को अपने प्यारे का नाम बतलाने के लिए कहा गया। यह एक फ्रेंच कुमारिका थी। लाजते लाजते उसने एक नाम ले दिया। एक पुरुष से कोठरी के एक द्वार से बाहर जाकर दूसरे द्वार से लौट आने के लिए कहा। इसके बाद जब यह बतलाया गया कि यह वस्तु किसी स्त्री की है तब उसने जान लिया कि यह हमारी स्त्री की वस्तु है, अतएव उसने यह सजा बतलाई कि उसे अपने पति का चुम्बन लेना चाहिए। स्त्री ने प्यार से उसके गाल का स्पर्श करके अपनी वस्तु लौटा ली।

इसके बाद और ग चार साधारण खेल हुए। फिर तरुण तरुण लोग नाचने लगे। कुछ देर मैं भी नाच देखता रहा। एक बज गया। मुझे नींद बहुत आने लगी, अतएव मैं सोने के लिये चला गया। अन्य लोग भी कुछ देर बाद विश्रान्ति के लिये गये।

दूसरे दिन घंटे भर के लिए बादल हट गया, धूप अच्छी निकल आई। इतने समय में मै "बीची हेड" नामक स्थान देख आया। यह एक पहाड़ी, समुद्र से ५०० फीट की उँचाई पर है। एक ओर समुद्र सौम्य स्वरूप में दृष्टिगोचर होता था और दूसरी ओर छोटी छोटी टेकड़ियाँ और अनेक मार्गों से युक्त होनेवाले सस्यक्षेत्रों में सुशोभित और भगवान् सूर्यनारायण के दर्शन से प्रमुदित होनेवाली धरती माता का प्रेमपूर्ण स्वरूप देख पड़ता था। हवा इतनी तेज थी की खड़ा रहना बड़ा मुश्किल था और चलते समय ऐसा जान पड़ता था कि जैसे गाड़ी खींचने का बल पड़ता हो।

दोपहर को एक पेंटोमाइम देखने गया। पेंटोमाइम भी एक प्रकार का तमाशा ही है, पर इसमें अश्लीलता कम रहती है। स्थल, काल, इत्यादि बातों की विशेष आवश्यकता नहीं। विलक्षण भड़कीले दृश्य, नाच, गाना, कौतूहल इत्यादि दिखलाने के लिए कोई न कोई सोंग लाते हैं! बहुधा प्रचलित चर्चात्मक विषयों पर कोई न कोई कोटि रचते हैं। जहाज का कैप्टन अपने एक खलासी से कहता है, "यू आर डूंक" ( तू मदिरा-मत्त हुआ है ) वह उत्तर देता है, "नाट अकार्डिंग टु ला" ( नियमानुसार नहीं ) एक रेवले हड़ताल, जो हाल ही में हुई थी, उस पर उक्त उल्लेख था। ऐसा ही एक यह भी सवाद था -" तू प्रेम किया कर" "प्रेम क्या है ?" "वह एक ही ऐसा पदार्थ है जिस पर लाइड जार्ज कर नहीं लगा सकते।"

प्रोमेनाड, अर्थात् जलधितीरगत विस्तृत पदपथ के एक सिरे पर 'विश टावर' नामक एक बुर्ज है। दोपहर के समय वहां समुद्र का तूफान देखने के लिए जा बैठा। परन्तु उक्त जगह बहुत ऊंची न थी, अतएव पानी का बहुत भयानक स्वरूप नहीं देख सका, पर आकाश में मेघ मानो लड़ रहे थे। उनका दृश्य अवश्य ही बड़ा कौतूहल-जनक था। तथापि हवा बहुत ठंढ थी, अतएव शीघ्र ही घर का आश्रय लेना पड़ा। बरसाती हवा के कारण सृष्टिशोभा अवलोकन करने में बहुत विघ्न आया।

"बेटल आफ हेस्टिंग्ज" से हेस्टिंग्ज गावँ विद्यार्थियों को मालूम होगा। इस जगह विलियम दि कांकरेर के नेतृत्व में नार्मन लोगों ने अंगरेजों का पराभव किया और दो तीन शतक उन पर अत्यन्त अत्याचार के साथ राज्य किया। फिर धीरे धीरे वे अँगरेज़ लोगों में मिल गये। उस लड़ाई की जगह यहां से ७ मील पर है और सिर्फ "बेटल" नाम से पुकारी जाती है। यहां सिर्फ एक 'बेटल अबे' नामक प्राचीन मन्दिर है। यह स्थान भी मैं नहीं देख सका; क्योंकि समय नहीं था।

शनिवार को सुबह यहां का प्राचीन किला देखने गया। यह किला बहुत बड़ा नहीं है। दीवालें बिलकुल ठिगनी हैं। एक पुरुष के बराबर ऊंची होंगी। समुद्र की ओर की दीवाल गिर पड़ी है। भीतर भी इमारतें गिर पड़ी हैं। एक बुर्ज, कुछ ऊंचा, बाकी है। सारांश, इस किले में कोई विशेषता नहीं।

वहां से फिर मैं 'सेंट क्लेमंट' की गुफाएँ देखने के लिये गया। इन गुफाओं ने कुल तीन एकड़ जगह घेरी है और बहुत लम्बी हैं, तथापि भारत की गुफाओं से इनकी तुलना किसी प्रकार नहीं की जा सकती। इनका पत्थर वालुकामय, अतएव खसुआ है। गुफाओं की बनावट में कोई कौशल नहीं देख पड़ता। एक दो जगह कुछ चित्र, मूर्तियां, इत्यादि खुदी हुई थीं। करीब पैंसठ वर्ष पहले ये गुफाएं किसीको मालूम न थीं। एक माली जमीन खोद रहा था, उसे अचानक उनका मुख देख पड़ा। अब, चूंकि इन गुफाओं में दोनों ओर से हवा आने का मार्ग कर दिया गया है, अतएव उनके अन्दर दम नहीं घुटता। मोमबत्तियां जलती रहती हैं। इनमें उष्णता का प्रमाण सदा ५१ अंश रहता है। फिर चाहे बाहर गर्मी रहे या सर्दी। अनुमान है कि ये गुफाएं लोगों ने धार्मिक अत्याचार से बचने के लिए बनाई होंगी। उसके बाद बहुत दिनों तक स्मगलर्स ( एक प्रकार के चोर ) लोग इन गुफाओं में रहते होंगे। दीवालों और छतों पर लहरों इत्यादि के जो चिन्ह देख पड़ते हैं उनसे जान पड़ता है कि पहले यह टेकड़ी भूकम्प के कारण उत्पन्न हुई होगी, और शीतल होते समय बीच बीच में पोलोपन रह गया होगा। उसी पोलेपन का उपयोग करके, एक दूसरे से भिड़ा कर, ये गुफाएं बनाई गई होंगी। सम्राट एडवर्ड कोई ५६ वर्ष पहले यहां आये थे। उस समय उन्होंने कहा, "पेय मद्य रखने के लिए यह अच्छी खिड़की है।" मुझे सर्दी हो गई, इस कारण इस दिन फिर और अधिक कुछ नहीं देख सका।

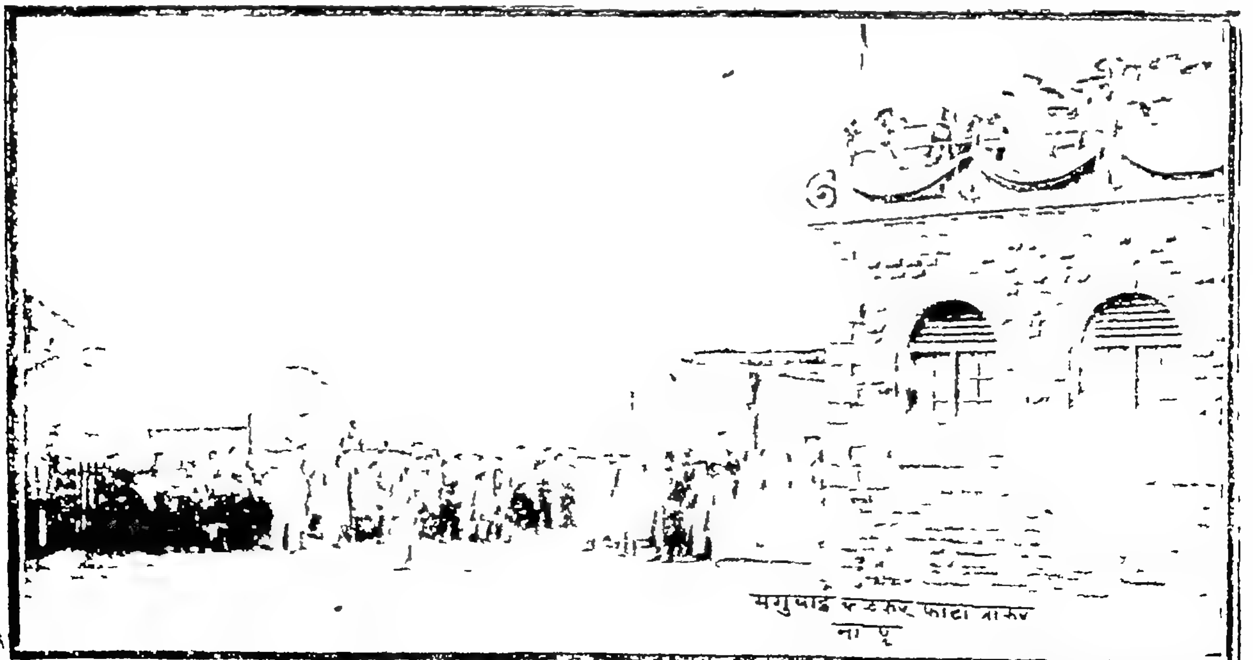
दूसरे दिन सुबह बादल खुल गया और हवा भी ठीक हो गई, धूप अच्छी हुई। इस समय प्रोमेनाड पर सैर करने में बड़ा आनन्द था। चित्र विचित्र परिधान भूषित तरुण स्त्री पुरुष, चपल चाल चलने वाले बच्चे, धायों के हाथ से चलनेवाली गाड़ियों पर के बच्चे, मनुष्यों के हाथ से खींची जानेवाली विक्टोरिया के समान गाड़ियों पर आये हुए वृद्ध, और बीमार तरुण मनुष्य, इत्यादि सब आज दिवसेश्वरार्पित ऐश्वर्य भोगने के लिए यहां आये थे। उष्णता का प्रमाण भी सौम्य—४० के आगे—था, घूमनेवाले मनुष्यों को सामुद्रिक वायु बहुत ही सुख-शीतल जान पड़ती थी। सेंट लेनार्डस नामक गावँ इस गांव से मिला ही हुआ है, अतएव दोनों के प्रोमेनाड भी मिले हुए हैं, और उन दोनों की लम्बाई मिल कर करीब ३ मील है। थोड़े थोड़े अन्तर पर आच्छादित बैठकें हैं और जगह जगह लम्बी बेंचें भी खूब रखी हुई हैं। प्रोमेनाड के पीछे गाड़ियों के चलने का मार्ग है। उसके बाद अनेक रमणीय पण्य-वस्तु-मंडित दुकानों की लाइन लगी हुई थी। इन दुकानों के बाद परर्थ्यों के लिए वसतिगृह हैं और दुकानों के बीच बीच में बड़े बड़े होटेल सुनहले साइन-बोर्डों से सुशोभित थे। एक बात अवश्य ही मुझे खटकी। घरों में जो रंग दिया हुआ था वह बिलकुल ही फीका था और घरों की रचना भी एक ही प्रकार की तथा सादी थी, उनमें कोई विचित्रता नहीं थी। नकाशी का काम भी उनमें बहुत कम था।

यहां पर दो पीयर हैं-एक हेस्टिंग्ज का और दूसरा सेंट लेनार्डस का। बारह बजे हेस्टिंग्ज के पीयर पर बायसिकल चलनेवाली थी। मैं भी देखने के लिए गया। समुद्र में अन्तरीप की तरह एक स्थान बना होता है, वही पीयर है। उस पर नाटकगृह, बैंड-स्टैंड, इत्यादि मनोरंजन के साधन रहते हैं। सिरे के पास ढालू लकड़ियों पर से एक मनुष्य बाइसिकल पर बैठ कर आया और बायसिकल उन ढालू खपच्चियों पर से छूटते ही वह स्वयं भी बाइसिकल छोड़ कर सिर की ओर से पानी में पैठ गया। बाइसिकल में डोरी बँधी हुई थी, अतएव वह पीछे खींच ली गई। वह मनुष्य जहां से साइकल के द्वारा आया वह जगह पानी से करीब ३।४ मंजिल ऊंची थी!

अब मुझे लंडन जाने में दो घंटे का अवकाश था। इस लिए मैं ट्राम के द्वारा 'सर्क्युलर रूट' पर घूम आया। करीब नौ मील घूम कर एक घंटे में ट्राम लौट आती है। कुछ खेत, फुलवाड़ियां, सेंट हेलन्स, माउंट प्लेजंट, इत्यादि गावों का दृश्य बहुत मनोहर जान पड़ा। ट्राम के छप्परविरहित मंजिल पर मैं बैठा था, वहां से देखने का अच्छा सुभीता था। भगवान् सहस्त्ररश्मि का प्रकाश फैला था। हवा की तकलीफ भी न थी।

सायंकाल में ४ की गाड़ी से चल कर ८ बजे लंडन आ गया।

## नागपुर और रामटेक के दृश्य।




नागपुर के कुछ प्रसिद्ध पुरुष रुट साहब के स्वागत के लिए खड़े हैं। पाठक! देखिये, सबसे पहले पं० नागपुर के डिपुटी इन्स्पेक्टर जनरल आफ पुलिस मिस्टर मुर्शिद के साथ रुट साहब की भावप्रदर्शना कर रहे हैं।

# श्रीप्रेम-महाविद्यालय वृन्दावन।

पाठकगण! आप यह जिस प्रेम पयोनिधि महानुभाव का चित्र देख रहे हैं वह कौन है? मन में सहसा यह प्रश्न उपस्थित होता है। आइये, हम आपको इनके कुछ देशोपकारी कार्यों का वर्णन सुनावें। यह राजकुमार महेंद्रप्रतापसिंह हैं। इन्होंने दीन भारत की दशा सुधारने के लिए-उसे उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के लिए-अपनी पैतृक सम्पत्ति में से ८०००० अस्सी हजार रुपयों की सम्पत्ति श्रीप्रेम-महाविद्यालय के नाम रजिस्ट्री कर दी है।

इस विद्यालय के कार्य को सम्यक् रूपेण सम्पादन करने के लिए एक कमेटी है, जो कि अपना कार्य्य पूर्ण रूपेण किये जा रही है। विद्यालय की उन्नति के विचार को लक्ष्य करके उसका प्रति वर्ष वार्षिक अधिवेशन किया जाता है जिसमें दूर दूर से अनेक प्रेमी प्रेम-महाविद्यालय से सहानुभूति प्रकट करके उसकी सहायता करते हैं। इस समय ३०० के लगभग विद्यार्थी इस विद्यालय में शिक्षा पा रहे हैं। विद्यालय में निम्न विषयों की शिक्षा दी जाती है —



कुँ० महेन्द्र-प्रताप-सिंह संस्थापक-प्रेममहाविद्यालय।

(८) रसायन विज्ञान। (९) अङ्क शास्त्र। (१०) इतिहास और भूगोल।

विद्यालय के साथ साथ कन्याओं को शिक्षा देने के लिये कन्या पाठशाला भी है। इसमें प्राय ३० तीस से अधिक कन्यायें साधारण विद्या के अतिरिक्त नारी धर्म की शिक्षा भी प्राप्त करती हैं। कन्यायें हाथ के कसीदे बेल बूटे तथा नाना प्रकार के चित्र विचित्र मोज़े, गुलबन्द, बनियाइन, टोप, आदि बनाती हैं। उनकी कारीगरी देख कर मन मोहित हो जाता है।

विद्यालय के साथ एक दातव्य चिकित्सालय भी है इससे अनेक यात्रियों और वृन्दावन-वासियों का लाभ होता है। इन सब कार्यों के होते हुए भी विद्यालय से 'प्रेम' नामक दाशाहिक समाचारपत्र निकलता है। इसमें इन्जिनियरिंग, शिल्प वाणिज्य और देश सुधार सम्बन्धी लेख तथा प्रस्ताव रहते हैं। प्रत्येक दशाह में नवीन नवीन चित्र रहते हैं।

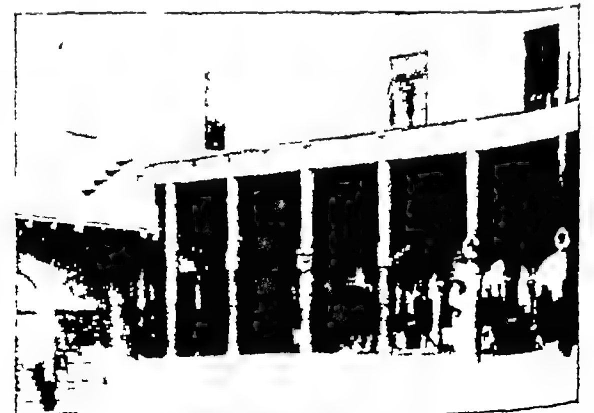
विद्यालय में शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों के लाभार्थ एक छात्रावास (Boarding House) भी है। विद्यार्थियों के स्वास्थ्य-सुधार का विशेष ध्यान रख कर उन्हें उत्तम तथा स्वादिष्ट भोजन मिलता है। साथ ही साथ उनकी मानसिक तथा शारीरिक दशा



सूत्र-शिक्षा श्रेणी।



क्रिकेट-टीम।



विद्यालय-विभाग का एक अंश।

(१) धातुकार्य। (२) काष्ठकार्य। (३) सेरमिक (चीनी के चमकीले बर्तन बनाने की कारीगरी (४) गलीचा बुनने का कार्य। (५) व्यवसाय और वाणिज्य। (६) सर्व। (७) अङ्क-विद्या।

भी उन विद्यार्थियों के मुकाबिले, कि जो आज कल छोटी ही उम्र में



कंदुक क्रीडा-नौकागमन।

निर्बल बन जाते हैं, अच्छी रखने की कोशिश की जाती है। सार यह है कि, विद्यालय को सर्वगुणालंकृत बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

विद्यालय का किसी जाति वा मत से द्वेष नहीं है। वह सब के साथ प्रेममय व्यवहार करना ही अपना उद्देश्य समझता है।

आओ भारत वासियों हम सब मिल कर ऐसे विद्यालय की सहायता करें। उससे सहानुभूति प्रकट करें, ताकि वह शीघ्र ही भारत का उद्धार करने में पूर्ण समर्थ हो सके। हमारे बालक उससे अलभ्य लाभ उठा कर अपने ऋषि-मुनियों-अपने पूर्वजों-के "एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवा " उपदेश को चरितार्थ कर सकें और इस भारत का कल्याण हो।

* परमात्मा से हमारी प्रार्थना है कि हे परमात्मन्! आप ऐसे निःस्वार्थ राजा को, आप ऐसे भारतमाता के अनन्य सेवक को, तथा उस के हाथ बटानेवाले विद्यालय के अवैतनिक कार्य्यकर्ताओं को बल दें, ताकि वे भारत का उपकार करने में समर्थ रहें और विद्यालय दिन दुगनी रात चौगुनी उन्नति कर सके।

श्रीनारायणदत्त शर्मा काश्यप।

* क्या भारत के अन्य " राजा महराजा " कहलाने वाले इस निःस्वार्थ प्रेमी महापुरुष का अनुकरण न करेंगे? म० वि०।

---

# जीवन की सफलता।



१

उठो मित्रवर प्रात भई है, आलस्य को अब दूर करो।
दिशा-फराकत से फारिग हो, मुख-मजन विधिपूर्ण करो॥
ध्यान ईश का करके मन में, कर्तव्य कर्म को याद करो।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर, जीवन अपना सफल करो॥

२

सब से प्रथम पुत्र पुत्री-गण-विषयक निज कर्तव्य करो।
उन के लालन पालन शिक्षण, आदिक में मत भूल करो॥
अनुचित लालन करके उनका जीवन हाय! न नष्ट करो।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सुफल करो॥

३

सतति को पैदा करके तुम उसे मनुज पद-योग्य करो।
तभी पिता-पद के अधिकारी होगे इसको चित्त धरो॥
हृष्ट पुष्ट औ शिक्षित वह हो ऐसी नित तजवीज करो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

४

कभी एक पल भी उसका मत, अनुचित विधि से खर्च करो।
ब्रह्मचर्य की रक्षा पर नित उसके अपनी दृष्टि धरो॥
जिससे चरितवान् होवे वह वही उपाय विचार करो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

५

सामाजिक रीती जो आवें शिक्षा-पथ के आड़ हरो।
सब मिलि देखो शास्त्रविहित पथ पूर्व-करनी को याद करो॥
नहीं ज्ञान सम विमल हितैषी उसका पल पल लाभ करो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

६

अपनी और अपने भाई की उन्नति का नित ख्याल करो।
हेल-मेल की मात्रा जिससे बढ़े वही सब काम करो॥
कृषी, खनिज की उन्नति करके देश-दशा उद्धार करो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

७

आंख मूद कर देखादेखी काम करन की टेव हरो।
आदि अन्त को सोच समझ कर काम करन की टेव धरो॥
तर्क वितर्क जनित फल उत्तम होता है यह ध्यान धरो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

८

रामायण, भारत औ गीता सुधा सम मत याद करो।
उनको केवल सुनने से वा पढ़ने से नहिं लाभ खरो॥
सोच-समझ कर करनी वैसी करो तभी भवपार तरो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

९

नित के काम-काज को करके ग्रन्थ पठन की टेव धरो।
जो कुछ पढ़ो, गुनो उसको नित, फिर मित्रों पर प्रकट करो॥
यों विचार कर करके सारो वस्तु तत्व को ग्रहण करो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

१०

दावँ-पेच, छल-छिद्र कपट की चाल चित्त से दूर करो।
थोड़ा कहो करो पर उसको पूरा मन में ठान करो॥
शिबि, दधीच, हरिचन्द्र कहानी इसी लिये हैं, याद करो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

११

समझ-बूझ कर हित तत्वों को प्रेम ऐक्य विस्तार करो।
सामाजिक बल धन के साधन खोज खोज कर प्रकट करो॥
राजा-प्रजा लहैं सुख जिससे वही सदा तुम काम करो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

१२

सड, मुसंडे, धूर्त जनों को कौड़ी भी मत दान करो।
गांजा, भंग, अफीम-खोर को कौड़ी भी मत दान करो॥
विद्या, बुद्धि ज्ञान के हित तुम धरा वित्त का दान करो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

१३

रहन-सहन औ पाठ-पठन के नियमों में सु-सुधार करो।
जिससे सतति शिक्षित होकर वीर्यवती हो-ध्यान धरो॥
बिन विद्या बल धन के जग में काम किसीका नहीं सरो।
धरतीतल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री।

# मि० रेमान प्वांकारे

## ( फ्रान्स के नवीन प्रेसिडेन्ट )



मि० रेमान प्वांकारे–( फ्रान्स के नवीन अध्यक्ष )

### फ्रान्स की अर्वाचीन स्थिति ।

फ्रेंच लोगों ने महा शौर्य और कर्तृत्वशक्ति के कार्य प्राचीन काल में कर दिखलाये । उस समय फ्रान्स में नाना प्रकार के शास्त्रों में और विचार-प्रणालियों में निष्णात बड़े बड़े विद्वान् हो गये, और इसी देश ने एक बार "लिबर्टी, ईक्वालिटी, फ्रेटर्निटी" ( स्वातंत्र्य, समता और बन्धुभाव ) के तत्वों की उत्तेजना बड़ी दृढ़ता के साथ दी । विद्वान् और स्वतंत्र वृत्ति के फ्रेंच लेखकों ने, वक्ताओं ने और राजनीतिज्ञों ने क्रमश अनेक ग्रन्थ, व्याख्यान और युक्तियों के द्वारा फ्रान्स में लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति चलाई, क्योंकि उनकी प्रबल इच्छा थी कि हम पर व्यक्ति का राज्य न हो एक मनुष्य के चापलूस मंत्री की बुद्धि के अनुसार राजकाज न होना चाहिए, विशिष्ट व्यक्तियों की अनियन्त्रित सत्ता के जुआं का भार प्रजा पर न आना चाहिए और लोगों के स्वतंत्र विचारों को तथा इच्छाओं को सार्वजनिक हित के विषय में पूर्ण अवकाश मिलना चाहिए । अस्तु, यह बात सत्य है कि लोकसत्तात्मक राज्य-प्रणाली में जिस प्रकार बहुत से गुण हैं उसी प्रकार कुछ दोष भी हैं । दीपक चाहे जितना प्रकाश

देनेवाला हो, तथापि उसके नीचे अंधेरा रहता है। इसके सिवाय एक बात और भी है, कि वही दीपक अपने प्रकाशित स्थल के आगे वाले अंधकारमय प्रदेश को स्पष्ट दिखलाने में कारणीभूत होता है। उसी प्रकार फ्रान्स में लोकसत्तात्मक राज्य-पद्धति के प्रचलित होते ही उसके दोष भी उस देश में आगये, और फ्रान्स की विशिष्ट परिस्थिति को बढ़ाने के लिए भी वह कारणीभूत हुई। इस बीच में फ्रांस को बड़े बड़े काम कर दिखलाने में शक्ति से बाहर परिश्रम करना पड़ा, अतएव सहज ही उसे आलस्य आया, लोगों का उत्साह कम हो गया; अथवा यों कहिए कि अधिक परिश्रम करने के कारण फ्रान्स विश्रान्ति लेने के लिए निद्रावश होगया—फ्रान्स का तेज कुछ दिनों से योरोपियन राजकीय विषयों पर पड़ा नहीं, जर्मनी के समान राष्ट्र ने फ्रान्स को अपने सामने नम्र कर लिया; और फ्रान्स यद्यपि परतंत्र नहीं हुआ; अथवा, यद्यपि, लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति आज भी वहां जारी है, तथापि वह कुछ निर्बल सा हो गया है। ऐसा जान पड़ने लगा कि फ्रान्स का अपने सामर्थ्य पर विश्वास कम हो गया है और बार बार यह देख पड़ने लगा कि जो फ्रेंच राष्ट्र बड़े बड़े विचार प्रत्यक्ष कार्यरूप में परिणत कर दिखलाने में इतिहास प्रसिद्ध था वही पहले समय को देखते हुए अब लला, दूसरे बलवान् राष्ट्रों को डरनेवाला, तेजी के साथ काम न करते हुए डरते डरते कोई बात करनेवाला बन गया। सन् १८७० में प्रशिया ने फ्रान्स का पराजय किया, उसने फ्रान्स की राजधानी पेरिस पर भी धावा किया, और इससे फ्रेंच लोगों को अच्छी तरह मालूम हो गया कि हम दुर्बल हो गये हैं। कुछ दिनों से फ्रान्स के अध्यक्ष-पद पर ऐसे महाशय बहुत कम देखने में आये जिनकी मनोवृत्ति प्रबल होती; तेजी और आत्म विश्वास से कोई काम करने के लिए तैयार होते अथवा स्वतंत्र विचारों के अनुसार आचरण करके राष्ट्र के सच्चे नायक बनते और उसे उन्नति तथा कीर्ति का मार्ग दिखलाते। परन्तु अभी जो हाल में चुनाव हुआ उसमें फ्रेंच प्रजा ने मि० प्वाकारे को अध्यक्ष पद के लिए चुना है अतएव कह सकते हैं कि अब फ्रान्स के दिन फिरनेवाले हैं।

## फ्रान्स और गत वर्ष।

सन् १९१२ का साल सम्पूर्ण जगत की दृष्टि से तो अत्यन्त हलचल का हुआ ही, परन्तु फ्रान्स की दृष्टि से तो और भी अधिक हलचल का गया, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। इस गत वर्ष में फ्रान्स का प्रधान मंडल बदला, मुरक्को का मामला मिटा ही न था, 'इलेक्टोरल रिफार्म बिल' का झगड़ा हो ही रहा था, 'टीचर्स यूनियन' के 'फेडरेशन' की झंझट मची ही हुई थी, बड़े बड़े डाकुओं ने मोटार कारों पर बैठ कर, प्रतिष्ठितपन के साथ, स्वयं फ्रान्स की राजधानी पेरिस नगर और उसके आसपास के प्रान्त पर डाके डाल कर लोगों को तबाह करने का उपक्रम शुरू किया था—इस प्रकार की अनेक महत्वपूर्ण बातें फ्रान्स में गत वर्ष एक के बाद एक हो रही थीं। इधर तुर्की-इटालियन और तुर्की-बाल्कन युद्धों की धूम मची हुई थी, ऐसी परिस्थिति में फ्रान्स के राजकाज के सूत्र, प्रधान की हैसियत से, मि० प्वाकारे के हाथ में आये। इन्होंने प्रधान रहते समय फ्रान्स और रूस के सम्बन्ध में सख्य की वृद्धि की और इंगलैंड से फ्रान्स का जो विशेष प्रेमभाव बढ़ा उसके लिए मि० प्वाकारे की ही राजनीतिज्ञता कारण हुई। ऐसे सज्जन को—मि० प्वाकारे को—फ्रेन्च लोगों ने अध्यक्ष चुना, और कितने ही लोगों ने अनेक प्रकार की बुरी भली युक्तियां लड़ा कर यह प्रयत्न किया कि वे न चुने जायँ, तथापि इस बात में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई इससे कहा जा सकता है कि अब फ्रान्स की प्रजा जागृत हो गई है, वह समझ गई है कि हमारी परिस्थिति कितनी विकट है और मि० प्वाकारे की योग्यता भी उसने पहचान ली है। सब लोगों का मत है कि मि० प्वाकारे का अध्यक्ष चुना जाना मानो अपनी उन्नति करने के लिए नवीन मार्ग का अवलम्बन करने को फ्रेन्च लोगों का तैयार होना ही है।

## मि० प्वाकारे और फ्रान्स का मंत्रित्व।

मि० प्वाकारे की अवस्था इस समय ५२ वर्ष की है। उनकी अवस्था २७ वर्ष की भी नहीं थी जब वे डिपुटी नियत किये गये थे। पहले कुछ दिन तक आपने समाचारपत्र का व्यवसाय किया इसके बाद बैरिस्टर हुए। तभी से आप फ्रान्स के राजकीय विषयों में हृदयपूर्वक ध्यान देते थे, इसी समय आपने विशेषतया यह अध्ययन किया कि फ्रान्स की साम्पत्तिक स्थिति कैसी है और फ्रान्स के जमा-खर्च का प्रमाण क्या है। १८९३ में वे शिक्षाविभाग के प्रधान हुए, इसके बाद आप फ्रान्स के खजाने के मुख्य अधिकारी नियत किये गये। १८९५ से १९०२ तक वे फिर बैरिस्टर ही का व्यवसाय करते रहे, और इस व्यवसाय में, इन सात वर्षों में अच्छा धन और प्रतिष्ठा प्राप्त की। और इधर डिपुटी अथवा सिनेटर की हैसियत से वे स्वदेश की सेवा कर ही रहे थे। १९०४ से १९०६ तक आप फिर खजाने के मुख्य अधिकारी हुए। इसके बाद कुछ वर्ष तक आप सार्वजनिक कामों में अधिक शामिल नहीं हुए, तथापि १९१२ में—गत वर्ष—आप फ्रान्स के प्रधान चुने गये। इस समय वे फारेन मिनिस्टर (अर्थात् परदेश-सम्बन्ध निश्चय करनेवाला) का काम भी करते थे। नवीन प्रधानमंडल का कार्य यह था कि फ्रेंच राष्ट्र में अपनी कर्तृत्वशक्ति के विषय में जो शंका आ रही थी—अथवा आगई थी—उसे नष्ट करके फ्रान्स की प्रतिष्ठा रखी जाय, और आत्मविश्वास जागृत करके फ्रान्स को कार्यक्षम बनाया जाय। यह कार्य एक वर्ष की अल्पावधि में ही मि० प्वाकारे के नेतृत्व में नवीन प्रधानमंडल ने कर दिखलाया, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मि० प्वाकारे सिर्फ वर्ष भर फ्रान्स के प्रधान रहे; पर इतनी ही अवधि में उन्होंने प्रशंसनीय कार्य कर दिखलाया। आपका मत है कि यूरप के राष्ट्र आपस में लड़ाई-झगड़ा न करें, व्यर्थ के लिए युद्ध न हो और द्रव्यहानि तथा जनहानि न उठाना पड़े; और आपने अपने इस मत के अनुसार यूरप में शान्ति रखने के लिए हृदय से सहायता की है। इसी प्रकार के अपने अनेक गुणों के कारण आप यूरप खंड में बड़े सन्मान्य हुए हैं। अभी हाल ही में आप रूस के जार से भेंट करने के लिए समुद्र के मार्ग से सेंटपीटर्सबर्ग को जा रहे थे; उस समय जब आपका क्रूजर जहाज बाल्टिक समुद्र में आया तब एक जर्मन सेना ने उन्हें इक्कीस तोपों की सलामी देकर उनका सन्मान किया। इंगलिश पत्र कहते हैं कि ग्याम्बेटा के बाद फ्रान्स के अध्यक्ष पद पर उनकी योग्यता के अध्यक्ष अब मि० प्वाकारे ही आये हैं। कितने ही जर्मनपत्रों ने भी आपकी प्रशंसा की है। रूस के जार ने उनके अध्यक्ष चुने जाने के उपलक्ष में तार भेज कर अभिनन्दन किया है। उन्होंने अपने तार में कहा है, "मुझे विश्वास होता है कि आपके शासनकाल में फ्रान्स और रूस की मैत्री और अधिक बढ़ेगी—प्रेम के बन्धन विशेष दृढ़ होंगे, और इससे दोनों देशों की उन्नति होगी।" अपने अध्यक्षपद पाने के उपलक्ष में कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए मि० प्वाकारे ने कहा, "चाहे कोई कितनी ही हमारी निन्दा किया करे—पर शत्रु से फ्रान्स की रक्षा करने के लिए जो कुछ हमें करना चाहिए वह मैं करूं ही गा। इसके सिवाय, परराष्ट्रों से फ्रान्स का आज जो नीति-सम्बन्ध है वही मैं आगे जारी रखूंगा।

## मि० प्वाकारे और फ्रान्स का अध्यक्षपद।

मि० प्वाकारे सरलता से विचार करते हैं, नियमितपन से कार्य करते हैं, और जब तक किसी बात को अन्त तक नहीं पहुँचा देते तब तक उसका पीछा नहीं छोड़ते। वे प्रत्येक मामले को स्वयं अच्छी तरह जान लेते हैं। वे सच्ची बात का खोज किये बिना व्यर्थ के संकल्प विकल्प मन में नहीं उठाते, और जब तक किसी बात का वे पूर्ण विश्वास नहीं कर लेते तब तक उसमें पड़ते नहीं। बिना समझे बूझे कोई काम करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। दूसरे को खुश करने के लिए, अपने मतों को छोड़ कर, अपनी सदसद्विवेकबुद्धि की अवहेलना करनेवाले लोगों में वे नहीं हैं। तथापि उनका भाषण अथवा बर्ताव उन्मत्तता का नहीं है, किन्तु सभ्यता और नम्रता का है, इसी कारण आज शत्रुओं की अपेक्षा मित्र ही उनके अधिक हैं। वे जैसे राजनीतिपटु हैं वैसे ही शास्त्रज्ञ और विद्वान् भी हैं। कला और तत्वज्ञान दोनों का उन्हें अच्छा ज्ञान है। कुछ राजनीतिज्ञ योरप में ऐसे हैं जो राजनीति को द्रव्यप्राप्ति का एक साधन समझते हैं। पर मि० प्वाकारे का ख्याल ऐसा नहीं है। स्वयं फ्रान्स में ही अपने को लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति का पुरस्कर्ता कहलानेवाले कई नेता ऐसे हैं जो स्वार्थ के लिए, देशहित पर आक्रमण करने के लिए, तैयार हो सकते हैं; पर मि० प्वाकारे के सम्बन्ध में कोई भी आदमी ऐसा आक्षेप नहीं कर सकता।

मि० प्वाकारे किसीके हाथ की कठपुतली बनकर रहनेवाले नहीं हैं तथा अपने हाथ में आई हुई सत्ता का दुरुपयोग करके सब के साथ अत्याचार करने का दुर्गुण भी उनमें नहीं है। सब लोग यही कहते हैं कि आपके शासन-काल में फ्रान्स की प्रतिष्ठा और वैभव की वृद्धि ही होगी। चेम्बर बर्खास्त करने अथवा उसे मुलतवी करने, फ्रान्स की दोनों चेम्बरों से सन्देश के द्वारा सम्बन्ध रखने, अपराधियों को क्षमा करने और परराष्ट्रों से सुलह करने का अधिकार फ्रान्स के अध्यक्ष को रहता है। इसके सिवाय स्थलसेना या जलसेना पर हुकूमत करनेवाले सर्वश्रेष्ठ अधिकारी के नाते से फ्रान्स के अध्यक्ष के हाथ में विशेष ही सत्ता रहती है और बड़े बड़े ओहदेदारों को नियुक्त करने का अधिकार भी उसीको रहता है। सारांश, यूरप के सभ्य राष्ट्रों के "कान्स्टिट्यूशनल सावरिन" से भी अधिक फ्रेन्च अध्यक्ष के अधिकार रहते हैं अतएव ऐसे ओहदे पर रहते समय मि० प्वाकारे के समान देशभक्त फ्रान्स का बहुत सा हित कर सकेंगे।

## मि० प्वाकारे के मत।

उनके भिन्न भिन्न विषयों के मत उनके लेखों और भाषणों के द्वारा प्रसिद्ध हुए हैं। उनका भाषण सदा स्पष्ट, विचारयुक्त और अर्थपूर्ण रहता है, उनके लेख विद्वत्ता और सद्विचार से परिपूर्ण रहते हैं। वे फ्रेन्च एकाडमी के सभासद हैं, इससे भी उनकी विद्वत्ता स्पष्ट होती है। आपका मत है कि राष्ट्रभक्तों अथवा लोकनायकों को अपने देशबान्धवों अथवा अनुयायियों से सदैव सत्य ही बतलाना चाहिए, यह उनका कर्तव्य है; मृदु यह कह कर कि अप्राप्य

बातें सहज ही प्राप्य होनेवाली हैं, उन्हें कभी धोखे म न डालना चाहिए। वे कहते हे की "यह ध्यान में रखना चाहिए कि उत्साह अथवा अभिमान और दुरभिमान अथवा गर्व एक नहीं हे, महत्वाकाक्षा और लोभीपन एक नहीं हैं, तथा अनियमितपन से मनमाने काम करने की प्रवृत्ति और स्वतन्त्रता की लालसा एक नहीं ह।"

यह कहना कि, "देशभक्ति, 'देशभक्ति,' की बड़बड करना व्यर्थ है, स्वार्थ ही देखना मनुष्य का कर्तव्य है, और सारी मनुष्यजाति का हित इसी मार्ग से होगा" बिलकुल मूर्खता अथवा पाजीपन का लक्षण है। यह मि० प्वाकारे का कथन है। उन्होंने प्रतिपादन किया है, कि सुजनता, न्यायप्रियता, और सत्यप्रियता, इत्यादि सद्गुणों की राजकीय विषयों में बड़ी आवश्यकता है। सदसद्विवेकबुद्धि का तिरस्कार करके हित साधना उच्च श्रेणी की राजनीति नहीं कही जा सकती, यद्यपि वे शान्ति के भक्त हैं और हृदय से उनकी इच्छा है कि इगलेंड तथा रूस से फ्रान्स की दोस्ती रहे, तथापि उनका कथन है कि फ्रान्स की स्थलसेना अथवा जलसेना को भी कभी निर्बल न रहना चाहिए और नहीं किसी सकट के समय फ्रान्स को धन की न्यूनता रहनी चाहिए। साराश, फ्रांस में ऐसा सामर्थ्य रहना चाहिए कि वह प्रत्येक समय अपने प्रबल शत्रुओं से भी चार हाथ करके अपने अधिकार और अपने हित की रक्षा कर सके। अपने देशबन्धुओं को उन्होंने यह उपदेश किया है, "हमारा सच्चा सामर्थ्य हमीं में है। हमारे ही कार्य मे ससार में हमारा मूल्य निश्चित होगा और प्रत्येक हमसे मित्रता करने के लिए दौड़ेगा, और हमारे उद्योग, हमारे सैनिक सामर्थ्य और हमारी एकता पर ही हमारे राष्ट्र का लोग गौरव करेंगे।" प्रत्येक फ्रेंच मनुष्य को सम्बोधन करके वे कहते हैं, "तुमको अखिल मानवजाति पर प्रेम करना चाहिए, परन्तु इस मानवजाति के अत्यन्त महत्वपूर्ण और अत्यन्त प्रिय भाग का—स्वदेश का—विस्मरण तुम्हें न होने देना चाहिए। तुम मनुष्य बने रहो, परन्तु फ्रेंच, इस व्यक्ति की हैसियत से तुम्हें जो कर्तव्य करना है उसे, सब से पहले, तुम अपनी आखों के सामने रखो।" अभी तक फ्रास के अध्यक्ष का चुनाव होने पर यूरप अथवा अमेरिका में उस ओर बहुधा किसीका ध्यान नहीं जाता था। परन्तु मि० प्वांकारे के चुनाव मे सब का ध्यान फ्रान्स की ओर आकर्षित हुआ है। मि० प्वाकारे के समान महापुरुष और कर्तृत्वशाली राजनीतिज्ञ के हाथ मे फ्रान्स के हित होने की बहुत सम्भावना है और यदि ऐसा हुआ तो वह राष्ट्र एक बार फिर जोश के साथ जागृत होगा।

# पब्लिक सर्विस कमीशन।



( दाहनी तरफ से बाईं तरफ )-मि० ज० आर० मैकडानल्ड, आ० जी० के० गोखले, मि० ज० अबदुलरहीम, मि० स्काट् , मि० एम० बटलर, मि० एफ० जी० स्लाय, आ० ज० ओल्ड फील्ड, आ० मि० ज० डब्ल्यू० मारगे, मि० सुब्रम्हण्य पटर।

( बैठे हुए )-सर वाल्टाइन चिरोल, सर मरे हेमिक, दि रा० आ० लार्ड इस्लिंगटन, सर थियाडेर मारिसन, आ० मि० एम० बी० चौबल, सब के पीछे अर्ल आफ रानाल्डशे।

# दक्षिण ध्रुव-आविष्कारक स्वर्गीय कैप्टन स्कॉट ।



पृथ्वी के दोनों सिरों का, अर्थात् उत्तर और दक्षिण सिरों का, पता लगाने की महत्वाकांक्षा यूरोपियन लोगों को अनेक शतकों से



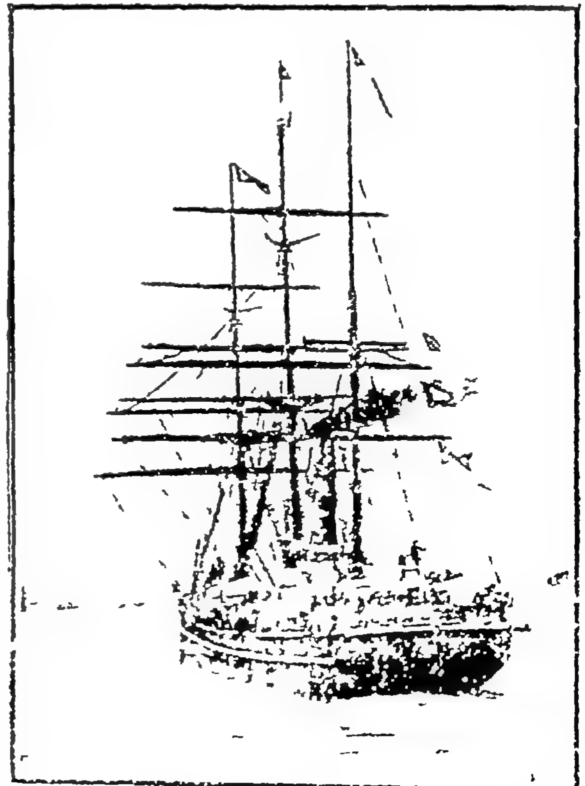
मि० कैप्टन स्कॉट।

थी, परन्तु अन्त में इस बीसवीं शताब्दी को ही उसका श्रेय मिला। १९०९ के एप्रिल महीने में अमेरिकन कैप्टन पेरी ने उत्तर ध्रुव पर अमेरिकन झंडा खड़ा कर दिया। और दक्षिण ध्रुव के पता लगा देने का भी मान कप्तान अमन्डसेन ने अमेरिका को ही प्राप्त करा दिया। सन् १९१० में जिस समय कप्तान अमन्डसेन दक्षिण ध्रुव का पता लगाने के लिए निकले, करीब करीब उसी समय इँगलैंड में कैप्टन स्कॉट ने भी प्रयाण किया। अर्थात् अमेरिकन और इँगलिश आविष्कारकों में यह एक बाजी ही लगी हुई थी। उसमें कप्तान अमन्डसेन १६ दिसम्बर १९११ के दिन दक्षिण ध्रुव पर अपना झंडा गाड़ कर विजय सम्पादन किया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद, अर्थात् १८ जनवरी १९१३ को कप्तान स्कॉट दक्षिण ध्रुव को जा पहुँचे। कप्तान स्कॉट को यद्यपि अग्रेसरत्व का गौरव नहीं मिला, तथापि यह उत्तर ध्रुव के प्रवास का काम इतना कठिन है कि इस काम में जो कोई सफलता प्राप्त करेगा वह प्रशंसा का पात्र ही होगा, और उसके पहले चाहे अन्य अनेक लोग प्रवास कर आये हों, तथापि इस कारण उसके यश में कुछ भी न्यूनता नहीं आ सकती।

कप्तान स्कॉट का जन्म १८६८ में हुआ। वे अँग्रेजी नौसेना के कप्तान के पद पर थे। सन् १९०० में ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण ध्रुव की खोज के लिए एक आविष्कारक मण्डली रवाना की। कप्तान स्कॉट उस मण्डली के मुखिया थे। इस धावा में कप्तान स्कॉट सन् १९०२ में दक्षिण अक्षांश ८२ १७ अंशों तक जा पहुँचे। परन्तु अनेक विघ्नों के कारण उन्हें वहाँ से लौट आना पड़ा। उसके बाद अमेरिकन महाशय सर अर्नेस्ट शेकलटन ने १९०८ में दक्षिण ध्रुव की ओर ८८ २३ अक्षांश तक मंजल मारी और उनके बाद थोड़े ही दिनों में कप्तान पेरी के उत्तर ध्रुव के पता लगाने का समाचार आया, तब कप्तान स्कॉट ने अपनी ही हिम्मत पर और निजी जवाबदारी पर फिर एक बार दक्षिण ध्रुव पर धावा करने का निश्चय किया। इस धावे की तैयारी उन्होंने बहुत विचारपूर्वक और दूरदर्शिता के साथ की थी। उन्होंने अपने साथ पाँच वर्ष के लिए अन्नसामग्री, बर्फ पर घसरनेवाली गाड़ियाँ और उन गाड़ियों को खींचनेवाले कुत्ते, घोड़े इत्यादि सब साधन साथ लिये थे। इस धावे पर डॉक्टर विलियम कप्तान ओटस और ले० बावर्स इत्यादि लोग स्कॉट की मदद के लिए स्वयंस्फूर्ति से गये थे। टेरानोवा नामक जहाज के द्वारा ये सब लोग २९ नवम्बर १९१० को चले और दक्षिण शीत कटिबन्ध की कक्षा में दक्षिण अक्षांश ७८ के करीब उन्होंने मुकाम किया। अपने अगले धावे की यह बुनियाद सोच कर उन्होंने अपनी सब सामग्री रखी और अगला मुकाम पाने के लिए सब आवश्यक सामग्री साथ लेकर १ नवम्बर १९११ को इन लोगों ने वह जगह छोड़ी। यहाँ से ध्रुवस्थान ९०० मील के अन्तर पर था। प्रति दिन लगभग १५ मील का प्रवास करते हुए वे आविष्कारक ४ जनवरी १९१२ को दक्षिण अक्षांश ८७ ३६ अंश पर आ पहुँचे। वहाँ से ध्रुवस्थान कुल डेढ़ सौ मील रह गया। यहाँ से फिर सिर्फ कप्तान स्कॉट, कप्तान ओटस, डॉ० विल्सन और ले० बावर्स ही आगे चले। १८ जनवरी १९१२ को उन्होंने दक्षिण ध्रुव पर अपना झंडा फहराया।

यहाँ तक स्कॉट का कर्तव्य अच्छी तरह से पूर्ण हुआ। पर यहाँ से उनकी विपत्ति का प्रारम्भ हुआ। कप्तान स्कॉट ने जब समझा कि इतने कष्ट सह कर हमने अपना ध्येय साध्य किया, पर इसके पहले ही दूसरे ने उस कार्य के अग्रसरत्व का मान प्राप्त कर लिया तब तो उनकी आनन्दित वृत्ति में उदासीनता की छटा देख पड़ने लगी। अस्तु। इसके बाद वे सब लोग लौट चले कि तुरन्त ही बर्फ के बादल का प्रारम्भ हुआ। इस बर्फ के चक्कर से निकल जाना बड़ा मुशकिल था। तिस पर भी डॉ० विल्सन के सिर में बर्फ का टुकड़ा लगा और वे जखमी हुए। अतएव उन्हें घिसलनेवाली गाड़ी पर से ले जाना पड़ा, इस कारण दिन अधिक लग गये और उनके पास की अन्नसामग्री खतम हो गई। अन्त में चाय का एक डब्बा और दो चम्मच शक्कर को छोड़ कर खाने का सब सामान समाप्त हो गया, इससे भूक के मारे सब के प्राण व्याकुल होने लगे। कप्तान स्कॉट ने अपनी पत्नी को जो अन्तिम पत्र भेजा वह उसे गत वर्ष के मार्च मास में मिला। पर करीब करीब उसी समय इधर कप्तान स्कॉट का अन्त हुआ होगा। क्योंकि उनकी लाश के पास पड़ी हुई जो डायरी मिली उसमें ५ मार्च १९१२ को अन्तिम चर्या है। यह जान कर कि, हमारे पास की सब अन्नसामग्री खतम हो गई, बर्फ की वर्षा का ज़ोर कम नहीं होता और उस बर्फ पतन के कारण हम मार्ग भी भूल गये, अतएव ऐसी दशा में हम सब का अवश्य ही अन्त होगा, कप्तान स्कॉट ने अपने राष्ट्र के लिए अन्तिम सन्देशा लिख रखा। उसमें ऐसा विश्वास प्रकट किया कि जिन शूर सहायकों ने अपने देश की कीर्ति के लिए अपने प्राणों की आहुति दी उनके कुटुम्ब की चिन्ता उस देश के लोग स्वयं करेंगे ही। जब से यह सन्देश प्रकाशित हुआ तब से कप्तान स्कॉट और उनके साथियों का स्मारक



टेरानोवा जहाज।

बनाने और उनके कुटुम्ब को मदद करने की हलचल चारों ओर मची हुई है। सम्राट और सम्राज्ञी ने क्रमशः दो सौ और सौ पौंड दिये हैं

और अन्य सारे देशों से सहानुभूतिप्रदर्शक तार और फंड के लिए धन आ रहा है।

श्रीसयाजीराव गायकवाड़ ने इस फंड के लिए २०० (दो सौ) पौंड भेजे हैं। इस धावे पर जाने की तैयारी करने में कप्तान स्कॉट को तीस हजार (किसी किसी के मत में बारह हजार) पौंड कर्ज हो गया है और वह सारा कर्ज इस फंड से अदा किया जानेवाला है। प्रधान मन्त्री आस्क्रिथ ने पार्लिमेन्ट सभा में जब कप्तान स्कॉट के अन्तिम सन्देशे का उल्लेख किया तब उनका भी कंठ भर आया, पाठशालाओं में जब लड़कों को कप्तान स्कॉट का वृत्तांत बतलाया गया तब उन श्रोता-वक्ताओं की भी वैसी ही दशा हुई। और अब बिलकुल गरीब विद्यार्थियों के एक आना के दान से लेकर कोट्याधीशों की दी हुई बड़ी बड़ी रकमों तक, यथाशक्ति दिये हुए सब प्रकार के दान से सारे देश में चन्दा जमा हो रहा है। और कप्तान स्कॉट के नाम से लंडन शहर में वैज्ञानिक आविष्कारों की चर्चा के लिए एक भवन बनाने का निश्चय हुआ है और उस भवन के द्वार पर स्कॉट के अन्तिम शब्द "प्रयत्न करो, ढूँढो, ढूँढ निकालो, और संकटों का सामना करो" (To strive to seek, to find and not to yield) ये शब्द खोदे जानेवाले हैं।

कप्तान स्कॉट की अन्तिम वार्ता मालूम होते ही सारे पाश्चात्य देशों में और विशेष कर इंगलैंड तथा संयुक्त रियासतों में जो सहानुभूति प्रकट हुई और ज्ञानलालसा तथा वैज्ञानिक आविष्कार के के लिए स्वप्राण की जिन्होंने आहुति दी उनके नाम का जो गौरव और जयजयकार वहां हो रहा है उसीसे इस बात का मर्म मालूम हो जाता है कि प्राणों पर बीतनेवाले इस साहस के लिए वहां के लोग कैसे तैयार होते हैं। जो साहसी मनुष्य इस विश्वास से उत्तेजित हुआ है कि कृतज्ञ, गुणगौरवयुक्त और सहानुभूतियुक्त राष्ट्र का सहारा हमारे लिए है उसके लिए इस संसार में कुछ भी असम्भव नहीं। उसको सदैव यही विश्वास रहता है कि हम चाहे अपने देश की कीर्ति बढ़ाने का प्रयत्न करते समय मर भी जायँ, तथापि हमारे पीछे कृतज्ञ और गुणग्राहक देशबान्धव हमारे नाम का अभिमानपूर्वक जयजयकार करेंगे और हमारे कुटुम्ब को किसी प्रकार की भी तकलीफ नहीं होने देंगे। अपने इसी विश्वास के बल पर, ये उत्तर ध्रुव या दक्षिण ध्रुव का ही नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष यम की दाढ़ के समान भयंकर जगह में भी जाने के लिए वे लोग तैयार रहते हैं। विमान कला की सम्भावना जब से सिद्ध हुई तबसे उस कला में प्रवीणता प्राप्त करने में गत दो चार वर्ष में विमानकला के पीछे सौ डेढ़ सौ लोग तो प्राणों से हाथ धो बैठे होंगे। परन्तु एक ओर अपघात के कारण एक मनुष्य मरता है तो दूसरी ओर उसकी जगह दस लोग वही काम करने के लिए आगे बढ़ते हैं। यह पश्चिमी राष्ट्रों का साहस तो देखिये! हमारे यहां का हाल इसके विरुद्ध है। एक मनुष्य को यदि किसी काम में दुख होता तो दूसरे उस मनुष्य, जो उसके व्यवसायबन्धु हैं, उसकी हँसी करते हैं और इस कारण साहसी लोगों की संख्या नहीं बढ़ती, किन्तु घटती जाती—"विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति"— इस प्रकार की वृत्ति होने के लिए नैसर्गिक धैर्य की तो आवश्यकता है ही, पर उसके साथ लोगों में गुणग्राहकता भी होनी चाहिए। अँगरेजी राष्ट्र में गुणग्राहकता कितनी है—सो इस स्कॉट के स्मारक की हलचल से सिद्ध हो रहा है। ऐसी गुणग्राहकता जब तक हम में नहीं आती तब तक हमारा राष्ट्र उन्नतावस्था को प्राप्त नहीं हो सकता।

(अपूर्ण)

# दासत्व।

(१)
हे नाथ क्या अब दास बन कर ही सदा को हम रहें?
अथवा किसी विधि पेट भर निज दुख किसीसे नहिं कहें?
अब तो कृपा प्रभु कीजिए दुख हैं बड़े हमने सहे।
हे नाथ पार लगाइये अब दुख नहीं जाते सहे॥

(२)
होकर निधन कंगाल करते हम सदा दासत्व हैं।
पाते उसीसे जीविका समझे उसे अमरत्व हैं॥
पर भाईयो, क्या ध्यान में है आपके आया कभी?
क्या भोग सकता दास कोई स्वप्न में भी सुख कभी?

(३)
इस नौकरी से भाइयो मैं सब प्रतिष्ठा खो चुका।
अब शेष केवल रह गया है "डेम ब्लडी" का धका॥
दिन रात है चिन्ता सदा हमको सताती अब यही।
हो जाय अब तो पार हरि! पीड़ा सही जाती नहीं॥

(४)
पर पार होने के लिए कुछ भी नजर आता नहीं।
क्योंकि कोई भी यहां शुभ युक्ति बतलाता नहीं॥
हम देखते जिसको वही है नौकरी पर मर रहा।
पास बी० ए० हो चहे, पर दास्यव्रत्ती कर रहा॥

(५)
इस दासपन से नाथ अब हम हो रहे हैरान हैं।
गालियाँ खाते हुये हम बनगये हैवान हैं॥
हे नाथ अब करुणा करो अरु बुद्धि हमको दो वही।
जिससे कि हम नरजन्म लेकर दास्यदुख पावें नहीं॥

(६)
करते हुए हमको गुलामी वर्ष कितने हो गये!
निर्लज्जता है आ रही, सद्भाव सारे खो गये॥
अनुभव हमें आया यही है भाईयो सुन लीजिए,
यह पद्य नीचे का अहो, निज चित्त में गुन लीजिए॥

(७)
हे पाठको, संसार में कितने बड़े दुख जाल हैं?
पर दास्य से बढ़ कर नहीं कोई जगज्जंजाल है।
नर्क से दु:खद इसे जानो सदा हे भाइयो,
पड़ कर न इस दासत्व में प्यारे कभी दुख पाइयो॥

दासत्व से ग्रस्त एक 'गार्ड'—दास।*

* ये महाशय हमारे एक बड़े भारी मित्र रेल्वे में नौकर हैं। इन्होंने पहले "ग्रीष्म" पर कविता भेजी, पर मैंने प्रार्थना की कि "आप चूंकि दासत्व में ग्रस्त हैं, अतएव उसी पर कविता भेजिए।" मेरी प्रार्थना मान कर आपने यह कविता भेजी, अतएव मैं बड़ा कृतज्ञ हूं।

सम्पादक चि० म० ज०

# सज्जन की सज्जनता।

एक दिन दो महात्मा श्रीयमुनाजी के तट पर सन्ध्या कर रहे थे। इतने में एक महात्मा ने क्या देखा कि एक बिच्छू पानी में जा रहा है। महात्मा ने मन में विचार किया कि यदि यह पानी ही में रहा तो मर जावेगा। इस लिए इसको बचाना चाहिए। ऐसा विचार कर महात्मा ने बिच्छू को पानी से निकाल कर पृथ्वी पर अलग रख दिया, परन्तु बिच्छू ने, जो कि स्वभाव ही से दुष्ट होता है, महात्मा के हाथ में लपट कर काट खाया। महात्मा ने इस पर कुछ ध्यान न दिया और अपना भजन पूजन करने लगे। कुछ देर के बाद फिर महात्मा ने क्या देखा कि वही बिच्छू फिर पानी में जा रहा है, महात्मा ने प्राण बचाने के लिये उसे पानी से बाहर निकाला, परन्तु अब की बार भी इस दुष्ट ने महात्मा के हाथ में काट खाया। महात्मा ने इस पर भी कुछ ध्यान न दिया और पूर्ववत् अपने भजन पूजन में लग गये। इस प्रकार पांच बार महात्मा ने उसे पानी से बाहर निकाला और पांचों बार उसने महात्मा के हाथ में काटा। यह सब दृश्य पास के बैठे हुए दूसरे महात्मा देख रहे थे, उन्होंने उक्त महात्मा से कहा कि, "हे मित्रवर्य्य! आप यह क्या करते हैं! इस दुष्ट के साथ उपकार करने से क्या लाभ? यह आपके साथ दुष्टता ही करता जाता है न कि सज्जनता। इस लिये वृथा कष्ट क्यों सहते हो?" महात्मा ने उत्तर दिया "देखो मित्रोत्तम, यदि यह दुष्ट मेरे साथ दुष्टता करने से नहीं चूकता तो मैं ही इसके साथ भलाई करने से क्यों चूकूं? सत्य है, सज्जन मनुष्य के साथ कोई कितनी ही दुष्टता क्यों न करे, परन्तु वे तो सदा सब के साथ सज्जनता ही का बर्ताव करते हैं।

विद्यार्थी जयनारायण उपाध्याय।

# साहित्य-चर्चा।

## ग्रंथ साहित्य।

**दयानन्द दिग्विजय**—लेखक कविरत्न अखिलानन्द शर्मा। प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग। मूल्य ४ रु०।

अर्वाचीन काल में यदि महर्षि दयानन्द का अवतार न हुआ होता तो आज आर्यधर्म का जो महत्व संसार में फैल रहा है वह हुआ होता या नहीं—इसमें शंका है। यद्यपि शंकराचार्यजी ने अपने समय में जिस प्रकार अनेक मतमतान्तरों का खंडन करके वैदिक धर्म का प्रसार किया उसी प्रकार अर्वाचीन काल में महर्षि दयानन्दजी ने भिन्न भिन्न मतों को नीचा दिखा कर आर्यधर्म का डंका सारे देश में बजाया। उक्त महात्मा ने अपनी दया, क्षमा, शान्ति, निर्भयता, विद्वत्ता, इत्यादि गुणों से भारत के सारे हठधर्मियों को पराजय करके दिग्विजय किया और देश में एक नवीन प्रकार की हलचल पैदा कर दी। इसी महात्मा का, संस्कृत ललित वृत्तों में, यह जीवन चरित वर्तमान अद्वितीय संस्कृतकवि अखिलानन्द शर्माजी ने लिखा है। प्रत्येक श्लोक के नीचे आर्यभाषा में उसका अर्थ भी दिया हुआ है। पुस्तक भारी है। कविरत्नजी संस्कृत के स्वाभाविक कवि हैं, अतएव उनकी कविता के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है। आपकी कविता में सरसता, प्रसाद, शब्दमाधुर्य, अनेकों गुण हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि "शंकर दिग्विजय" से भी यह ग्रन्थ बहुत बढ़ा चढ़ा है। बीसवीं शताब्दी की नाना प्रकार की हलचलों की छाया इसमें बड़ी खूबी के साथ कविरत्नजी ने डाल दी है। प्रत्येक आर्य को इस ग्रन्थ का परिशीलन करना चाहिए।

**स्वाधीनता**—लेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी। प्रकाशक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी, हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई। मूल्य दो रुपया। प्रेमी महाशय ने इस ग्रन्थ का दूसरा एडीशन निकाल कर बड़ा अच्छा काम किया। दाम्पत्य में लौटते हुए भारतवासियों के लिए स्वाधीनता के समान ग्रन्थ के परिशीलन की बड़ी आवश्यकता है। इस पुस्तक में प्रस्तावना, 'विचार और विवेचना की स्वाधीनता,' 'व्यक्ति विशेषता भी सुख का एक साधन है,' 'व्यक्ति पर समाज के अधिकार की सीमा,' 'प्रयोग'—इन पांच विषयों को पांच अध्यायों में वर्णन है। मिल साहब ने अंगरेजी में इन तात्विक विषयों का बड़ी ही योग्यता से विवेचन किया है। द्विवेदीजी ने भी हिन्दी अनुवाद करने में अपनी पूर्ण योग्यता का परिचय दिया है। परन्तु इस ग्रन्थ की भाषा के विषय में हमारा बहुत मत भेद है। द्विवेदीजी दूसरे संस्करण में स्वयं भाषा का सुधार करनेवाले थे, परन्तु जान पड़ता है, प्रकृति अस्वस्थ होने के कारण आप ऐसा नहीं कर सके तथापि "विचार मुख्य है, भाषा गौण है"—बात समझनी चाहिए भाषा चाहे जो हो। 'मिल' का जीवनचरित जो इस पुस्तक में जोड़ा गया है विचारपूर्ण और विस्तृत है। 'मिल' और 'द्विवेदी' के चित्रों का मेल भी अच्छा है। आशा है कि हिन्दी भाषी सज्जन इस ग्रन्थ का प्रचार करके 'अनन्य' अनुवादक और 'प्रेमी' प्रकाशक के हृदय को प्रसन्न करेंगे।*

**प्रतिभा**—लेखक (अनुवादक?) उक्त प्रेमी महाशय ही हैं। आप ही ने प्रकाशित किया है। मूल्य सवा रुपया है। हमारे साहित्य में कुछ दिनों से उपन्यास बहुत निकले, अतएव सद्विचारी सज्जनों की रुचि उनसे भाग गई और उन्होंने उच्च श्रेणी के, सुरुचि उत्पन्न करनेवाले, उपन्यासों का प्रकाशन शुरू किया। बस, ऐसा ही यह उपन्यास प्रेमी महाशय ने प्रकाशित किया है। मनोरंजन के साथ साथ सद्भाव बढ़ाने का यह अच्छा साधन है।

**द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन**—(कार्य विवरण, पहला और दूसरा भाग) मिलने का पता—मंत्री हिन्दी-साहित्य सम्मेलन स्थायी कार्यालय प्रयाग। मूल्य पहले भाग पर लिखा नहीं। दूसरे भाग का एक रुपया। पहले भाग में द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सम्पूर्ण विवरण है और दूसरे भाग में उक्त "सम्मेलन में उपस्थित किये गये लेखों और कविताओं का संग्रह" है। लेख और कविताएँ प्रसिद्ध प्रसिद्ध साहित्य सेवियों की लिखी हुई हैं। विषय वैचित्र्य, साहित्य चर्चा, मनोरंजन, उपदेशग्रहण, इत्यादि सभी दृष्टियों से ये दोनों विवरण उपादेय हैं। निस्वार्थ साहित्य प्रेमी सम्पादक बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने विषयक्रम, लगाने और भूमिका लिखने में अपनी अनुपम चातुरी का परिचय दिया है। प्रत्येक साहित्य प्रेमी को ये पुस्तकें खरीद कर साहित्य सम्मेलन को पुरस्कार देना चाहिए।

श्रीयुत सत्यदेव के द्वारा प्रकाशित चार और पुस्तकें हमारे पास "समालोचनार्थ" आई हैं। परन्तु 'समालोचना' हम करते नहीं,—हम तो चर्चा करते हैं, अतएव इस चर्चा में इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन चार पुस्तकों में से उक्त महाशय की लिखी हुई "अमरीका भ्रमण," "सन्ध्या," "राजर्षि भीष्मपितामह" मनोरंजकता, उपदेश, देशभक्ति, देशाभिमान, कर्तव्यतत्परता, सच्चरित्रता आदि गुणों से परिपूर्ण हैं। "सन्ध्या" में स्वदेश कल्याण के लिए परम पिता परमात्मा की प्रार्थना की गई है। यह सन्ध्या प्रत्येक उच्च का सिपाही चाहिए। चौथी पुस्तक परमहंस स्वामी रामतीर्थ का "राष्ट्रीय सन्देश" है। इसे बाबू नारायण प्रसाद अरोड़ा बी० ए० ने अंगरेजी से अनुवादित किया है। आत्मिक शान्ति बढ़ाते हुए स्वदेश सुधार करने की कुंजी इसमें बतलाई गई है। चारों पुस्तकों की कीमत क्रमशः ८, ३, ४ और ६ आना है। सत्यग्रन्थमाला आफिस, कानपुर, से मिल सकती है।

**सूक्तिसुधा**—लेखक पं० गौरीशंकर भट्ट सुलेखा-ध्यापक गुरुकुल कांगड़ी, हरद्वार। मूल्य ?) रु०। संस्कृत-साहित्य ज्ञान का भंडार है। अनेक रत्न उसमें भरे पड़े हैं। खोज करने की आवश्यकता है। अनेक सूक्तियां उसमें ऐसी हैं जिनका मनन करने से आत्मा दृढ़ और मन पवित्र होता है। ऐसी सूक्तियां बड़े परिश्रम से खोज कर भट्टजी ने उन का संग्रह किया है। ये सूक्तियां आपने अत्यन्त सुन्दर बेल बूटों में अलंकृत अक्षरों में चित्रित रंगीन कागज पर और भांति भांति की स्याही से छपाई हैं। कमरे में लगाने से स्थल तो सुशोभित होता ही था, किन्तु इनके मनन करने से आत्मा और मन भी पवित्र होगा। पुस्तक की तरह देखने का भी रंग सकते हैं। इससे भारत के दर बारी सुलेखक हैं। अभी लाट मेस्टन गुरुकुल में जाकर सुलेखन-शैली को देख कर मोहित हो गये और आपसे हाथ मिलाया। इन गुणों पुरुष को पुरस्कृत करना हमारा कर्तव्य है।

**रंग में भंग**—लेखक बाबू मैथिलीशरण गुप्त। प्रकाशक बाबू रामकिशोर गुप्त चिरगांव झांसी। मूल्य चार आना। गुप्तजी की यह कविता पहले सरस्वती में "नश्वता विलास" के नाम से मुद्रित हुई थी, इसके बाद 'रंग में भंग' नाम से एक संस्करण इसका निकल गया, अब दूसरा संस्करण निकला है। इससे गुप्तजी की कविता की सर्वप्रियता प्रकट होती है। यह कविता एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर लिखी गई है। स्वाभिमान और स्वदेश प्रियता के गुणों से पूर्ण है। इसके सिवाय "जयद्रथ-वध" "पद्य प्रबन्ध" नामक दो काव्य ग्रन्थ भी गुप्तजी के प्रकाशित हो चुके हैं। "भारत भारती" एक अत्युत्तम काव्य 'सरस्वती' में क्रमशः निकल रहा है। आपकी कविता का खूब प्रचार होना चाहिए।

**विचित्र वधूरहस्य**—अनुवादक श्रीजनार्दन झा, प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग। मूल्य ।||)आ०। यह श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर के बंगाला उपन्यास का अनुवाद है। घटना वैचित्र्य इसमें अच्छा है। काव्य के कई रसों का इसमें परिपाक हुआ है। प्राकृतिक वर्णन भी जगह जगह है। उपन्यास पढने लायक है।

**शिक्षा दान**—लेखक पंडित बालकृष्ण भट्ट। प्रकाशक महादेव भट्ट, अहियापुर, प्रयाग। इस प्रहसन में भट्टजी ने "जैसा काम वैसा परिणाम" दिखलाया है। एक सदाचरणी स्त्री ने अपने वेश्यागामी पति को उसके कुकर्म से पराङ्मुख किया है। भट्टजी रंगीली और उपदेशप्रद कहानियां लिखने में भी सिद्ध हस्त रहे हैं। इसका मूल्य सिर्फ ≡) आना है।

**वाणिज्य की डाइरेक्टरी**—सम्पादक और प्रकाशक बाबू हरीनारायण टण्डन, चौक लखनऊ, मूल्य ।।) आना। इस विषय की, कि भारत में कौन कौन से वाणिज्य पदार्थ कहां बनते और मिलते हैं। इस पुस्तक में विस्तृत सूची दी हुई है। लगभग सभी स्वदेशी चीजों के नाम और पते आ गये हैं। स्वदेशी व्यापारियों के लिए उपयोगी चीज है।

**नीतिदर्शन** (दूसरा भाग)—रचना लाला राधामोहन गोकुलजी, इम्पीरियल जूट प्रेस, सलकिया (हावड़ा) कलकत्ता। लाला साहब हिन्दी में अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं। देशभक्त लाला लाजपतराय का विस्तृत जीवनचरित अभी आपने थोड़े ही में निकाला था। आज "नीतिदर्शन" के दर्शन हुए। भारत के नवयुवकों के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। सदाचरण ही पर सारे राष्ट्र की इमारत खड़ी है। लाला साहब का हेतु परमात्मा सिद्ध करे।

**श्रीयुत गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण**—"लक्ष्मी-नारायण यन्त्रालय," मुरादाबाद ने हमारे पास "दो मित्र," "स्त्री सुधार," "द्रौपदी स्वयम्वर," "राजा कर्ण की कथा" नामक चार पुस्तकें "समालोचनार्थ" भेजने की कृपा की है। हम आपके बड़े कृतज्ञ हैं—इस लिए कि आपने हिन्दी में उत्तमोत्तम पुस्तक प्रकाशित करने का क्रम शुरू किया है। आपकी "पुस्तकों का विषय उनके नाम ही से प्रकट" यहां पर इतना ही कह देना पर्याप्त है कि यदि हिन्दीहितैषी आपकी पुस्तकें पढ़ेंगे तो उन्हें नैतिक और धार्मिक बड़ा लाभ होगा और प्रकाशक का उत्साह बढ़ेगा। पुस्तकों की कीमत भी अधिक नहीं प्रत्येक की क्रम० २, ३, ४ आना है।

**बाबू अम्बिका प्रसाद**—सराय गोवर्द्धन, बनारस के बड़े साहसी साहित्य सेवी जान पड़ते हैं। आप 'इन्दु' नाम का एक मासिकपत्र तो निकालते ही हैं, इसके सिवाय अब आपने "चन्द्रिकासुमन माला" नामक एक सीरीज भी निकाल दी है। इस सीरीज की 'छाया' और 'उर्वशी चम्पू-जीव' नामक दो पुस्तक बाबू जयशंकर प्रसाद की

---

*इस ग्रन्थ के विषय में हमें बहुत कुछ कहना है विस्तृत चर्चा फिर कभी करेंगे।

लिखी हुई मिली हैं। 'छाया' में पाँच आख्यायिकाओं, का संग्रह है, विषय मनोरंजक है। दूसरी पुस्तक ऐतिहासिक चरित्र है, खोज के साथ लिखा गया है। यदि ये दोनों पुस्तकें बाबू साहब की मूल लिखी हुई हैं। तो हम आपके परिश्रम की सराहना करते हैं। पुस्तक ग्राह्य है।

श्रीयुत हरिदास माणिक ने काशी से अभी हाल ही में एक "माणिक ग्रन्थ माला" शुरू की है। इस "ग्रन्थमाला" में दो प्रकार के ग्रन्थ पिरोये जाते हैं—ऐतिहासिक और शारीरिक, ऐतिहासिक हरिदासजी पिरोते हैं और शारीरिक कालिदासजी (शायद आपके भाई)। इस माला में अभी तक १२ ग्रन्थ रत्न पिरोये गये। इस माला को जो कोई धारण करेगा उसका शरीर दृढ होगा और वीरता की स्फूर्ति उसमें आवेगी। कीमत बहुत नहीं है।

रघुवंश महाकाव्य—"पद्यबद्ध भाषानुवाद स्वर्गीय पं० सरयूप्रसाद मिश्र विरचित" मिलने का पता लिखा नहीं। पं० काशीनाथ वाजपेयी के प्रबन्ध से ओंकार प्रेस, प्रयाग में छपा है। मूल्य ॥।)। पुस्तक में मिश्रजी का सचित्र जीवन वृत्त और काव्य का सारांश गद्य में भी दिया हुआ है। मिश्रजी बड़े विद्वान् और विद्याव्यसनी थे। सौम्य प्रकृति थे। यद्यपि आपकी कविता की भाषा आज पसन्द न की जायगी, तथापि आपने उस काल में जो कार्य हिन्दी साहित्य के लिये कर दिया वह प्रशंसनीय है। आज प्राचीनता के नाते से आपकी पुस्तक का आदर करना आपका ही आदर करना है। इसके सिवाय जिस काल में संस्कृत वृत्तों में हिन्दी कविता न होती थी उस काल में आपने वह कार्य कर दिखलाया, अतएव आप के साहस से हम बालकों को लाभ उठाना चाहिए।

ठोंक-पीट कर वैद्यराज—अनुवादक पं० लक्ष्मीप्रसाद पांडेय। प्रकाशक श्री हिन्दी ग्रन्थ प्रकाशक मंडली, प्रयाग और खंडवा। मूल्य चार आना। यह मराठी से अनुवादित किया हुआ एक प्रहसन है। दिल खुश करने के लिए अच्छी चीज है। असर भी अच्छा डाल सकता है।

शिक्षकों के कर्तव्य—अनुवादक बाबू चम्पालाल जौहरी, खंडवा। मूल्य दो आना। यह मराठी के एक अनुभवी लेखक के लिखे हुए एक छोटे से निबन्ध का अनुवाद है। अध्यापकों को इसे एक बार पढ जाना चाहिए।

मुंशी द्वारकाप्रसाद अत्तार, शाहजहाँपुर ने कृपा करके "संगीत रत्नप्रकाश" (४ भाग), "नारी धर्म शिक्षा," "काव्यकुसुमोद्यान" इत्यादि कई उपयोगी पुस्तकें समालोचनार्थ भेजी हैं। आर्य सामाजिक जगत् में उपयोग और सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करने में आप प्रसिद्ध हैं।

बाबू नारायणलाल बुकसेलर, कटरा, प्रयाग। चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा से, इंडियन प्रेस, प्रयाग के मुकाबले में, बालकोपयोगी पुस्तकें लिखवा कर प्रकाशित कर रहे हैं। कई अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। "सावित्री और सत्यवान्" नामक एक पुस्तक हमें समालोचनार्थ मिली है। पुस्तक बालिकाओं के लिए उपयोगी है।

सुकन्या—लेखक श्रीगिरिधरशर्मा नवरत्न, नगरीभवन, झालरापाटन। मूल्य १ आना। शर्मा जी की कविता से हमारे सभी पाठक परिचित ही हैं। आपके उद्गार सदा स्वाभाविक रहते हैं। कन्याओं और महिलाओं के लिए यह कविता अमृतरूप है।

## सामयिक साहित्य।

नागरीप्रचारक—यह मासिकपत्र बाबू यू० सी० बनर्जी एंग्लो ओरियंटल प्रेस, लखनऊ से निकालते हैं। वा० मू० २) रु० है। इसमें सामाजिक, धार्मिक इत्यादि सब प्रकार के विषयों पर विचारपूर्ण लेख निकलते हैं। पत्र बड़ी योग्यता से सम्पादित होता है। साहित्यविषयक समालोचना इसका मुख्य अंग है। हम इसे बहुत पसन्द करते हैं। विविध विषय नामक कालम में भिन्न भिन्न विषयों की अच्छी चर्चा रहती है। अब इसके प्रकाशक विशेष रूप से इसकी उन्नति करनेवाले हैं। परमात्मा आपकी इच्छा पूर्ण करे।

सरस्वती—इस मासिक पत्रिका से तो हमारे प्रायः बहुत से पाठक परिचित हैं। इस वर्ष से इसके कई "विविध विषय" प्रायः स्वतंत्र होने लगे हैं। गत वर्ष तक अँगरेजी पत्र पत्रिकाओं के आधार पर कुछ मनोरंजक और विचित्र विषय ही लिये जाते थे, पर अब इस साल से इसके सुभाग्य सम्पादक स्वतंत्र रीति से कुछ नोटस् लिखने लगे हैं। नोटस अधिकांश साहित्य विषयक ही रहते हैं। अन्य विषयों पर भी यदि कुछ नोटस् रहा करें तो 'सरस्वती' की सर्वप्रियता और भी बढ जाय। वर्तमान वर्ष में रंगीन चित्रों की संख्या कम कर दी गई है। शायद खर्च अधिक बढ जाने के कारण ऐसा करना पडा हो।

## हमारे साहित्य की प्रगति हो रही है!

वाह, खूब कही, हमारे साहित्य की प्रगति हो रही है! इधर तो बड़े बड़े विद्वान् "हिन्दी साहित्य की हीनता का कारण" बतला रहे हैं, कई महाशय "हिन्दी की हीनता" पर आंसू बहा रहे हैं, और आप कहते हैं कि "प्रगति हो रही है"!

आप सन्देह न कीजिए, हम सच कहते हैं, हिन्दी साहित्य का भांडार अब अच्छी पुस्तकों से भरा जा रहा है। देखिये न, हमारे साहित्य ने अब भारतवर्ष की चारों सीमाओं को दबा लिया है। पश्चिम की ओर पंजाब में एक गिरोह पैदा हो गया है, जो हिन्दी भाषा और नागरीलिपि के लिए बहुत प्रयत्न कर रहा है। पंजाब में आर्यसमाज का राज्य है। आर्य समाज अपने राज्य में राष्ट्रीय भाषा हिन्दी (आर्य भाषा) ही का सर्वथा प्रचार करेगा। उसके नेता लोग अब उर्दू बीबी के नाज ओ नखरों से ऊब गये हैं। यह तो पश्चिम की बात हुई। उत्तर भारत के कई नगरों में आर्यभाषा के लिए प्रयत्न हो ही रहा है। सभी देखते हैं। पूर्व की ओर बिहार, और बंगाल में भी अब हिंदी की विशेष चर्चा है। कलकत्ते के हिन्दीसाहित्यसेवी बंगालियों को राष्ट्रीय भाषा की ओर आकर्षित कर रहे हैं। प्रोफेसर विनयकुमार सरकार के समान विद्वान् महाशय हिन्दी में अपने ग्रन्थों का होना आवश्यक समझते हैं। दक्षिण की ओर मदरास में यद्यपि हिन्दी की अधिक चर्चा नहीं है, तथापि बम्बई के सेठ लोग हिन्दी की बहुत से सेवा कर रहे हैं। और अब तो कोई दो साल से दक्षिण की मुख्य राजधानी पूने में हिंदी ने अपना झंडा गाड दिया है। और वहां से हिंदी की बहुत सी सेवा होगी। वहां के कई तरुण और सुशिक्षित लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो रहा है। तात्पर्य, भारत के चारों कोनों को हिन्दी भाषा ने घेर लिया है और वह दिन अब शीघ्र ही आनेवाला है कि जब उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम से इस राष्ट्रीय भाषा का प्रचार होते होते मध्यप्रदेश और मध्यहिंद तक—सारे देश में इसी भाषा का पूर्ण साम्राज्य हो जायगा! यह स्वप्न नहीं है। भारत भर में हिन्दी साहित्य के सेवक पैदा हो गये हैं और वे किसी न किसी रूप में राष्ट्रीय भाषा (हिन्दी की सेवा) कर रहे हैं। अतएव, अब मेरी प्रार्थना है कि "हिन्दी की हीनता" का रोना बन्द कर दिया जाय—उत्साह का सचार किया जाय—जागृति बढाई जाय। आशा है, हमारे गुरु विद्वान् हमारी इस प्रार्थना का ध्यान में रखेंगे।

## धन्यवाद की शुष्कवर्षा।

हमारे यहां अँगरेजी राज्य के आने से जहां अनेक बातों की सृष्टि हुई, वहां "थैन्क्यू" (Thank you) का भी बहुत प्रचार हुआ है। हिन्दी भाषा में उसकी नकल "धन्यवाद" देने की चाल पड़ गई है। वास्तव में, हमारी दृष्टि से, अवश्य ही आर्यों की दृष्टि से यह चाल बनावटी (कृत्रिम) है। खेद है कि हम लोगों ने अँगरेजों की साहसप्रियता, स्वतन्त्र देशभक्ति, ब्रह्मचर्यपालन, शौर्य, कर्तव्यतत्परता इत्यादि सत्य गुणों का स्वीकार नहीं किया, किन्तु बनावटी राजभक्ति, कृत्रिम और स्वार्थ पूर्ण दम्भाचार तथा अनेक व्यसनों का स्वीकार कर लिया है। अस्तु, इस विषय में अब हम बहुत ही शीघ्र चेतना चाहिए।

आज हम जो ये विचार सूझे, उसका कारण यह है कि आज तक हमारे 'जगत' के इस यज्ञ में हमारे अनेक प्रेमियों ने, अनेक प्रकार से प्रोत्साहन देकर हमें, अपनाया है, इसके लिए आधुनिक प्रथा के अनुसार हमें भी "धन्यवाद की शुष्क वर्षा" करनी चाहिए, परन्तु प्यारे प्रेमियो, हम शुष्क धन्यवाद देना नहीं चाहते—किन्तु आर्यों की शुद्ध प्रथा के अनुसार आप लोगों से अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करना चाहते हैं। सब से पहले हम अपने सहयोगियों के कृतज्ञ हैं कि जिन्होंने एक बार भी हमारा स्मरण करके अपनी शुभ सम्मति से हमारा उत्साह बढाया, विशेष कर सद्धर्मप्रचारक सम्पादक बाबू इन्द्र और कुँअर हनुमन्तसिंह रघुवंशी के हम बड़े कृतज्ञ हैं कि जिन्होंने कई बार अपनी महानुभावी सम्मति से हमें कृतार्थ किया। पं० गिरिधर शर्मा और बाबू मैथिलीशरण गुप्त के हम बड़े उपकृत हैं कि जिन्होंने समय समय अपनी अमृतमयी कविता से 'जगत्' को सिंचित किया। श्रीयुत रामचन्द्र, देहली, विद्यार्थी प्रताप नारायण वाजपेयी, कलकत्ता, जी० सी० गुप्त, हरदोई, श्रीयुत एम० एम० रिसनाटकर, पेटलावाद, पं० चन्द्रशेखर शर्मा फतेहपुर, इत्यादि सज्जनों ने हमारी ग्राहकसंख्या बढा कर हमें जो उत्साहित किया उसके लिए हमारा हृदय उन सज्जनों का अत्यन्त कृतज्ञ है। इनके सिवा जिन जिन सज्जनों के हृदय तक 'जगत्' की ध्वनि अथवा प्रतिध्वनि पहुँचती है, उनसे हम इससे अधिक और क्या कृतज्ञता ज्ञापन करें।

---

## मंगलं दिशतु नो सरस्वती!

कहते हैं कि भारतवर्ष में एक सम्पादक के घर एक देवी अवतीर्ण हुई है, उस देवी का नाम उसने आर्यमित्रा रखा है। उसकी प्रेरणा है कि यह देवी बौद्धधर्मीय संघमित्रा की तरह आजन्म ब्रह्मचारिणी रह कर, संसार में आर्यधर्म का प्रसार करके, उसका उद्धार करेगी!

---




वर्ष ३ ] चैत्र और वैशाख सं० १९७० विक्रमी—एप्रिल और मई, सन् १९१३ [ अं० ४-५

# जयन्तियां।

जयं च पुण्यं च कुरुते जयन्तीमिति तां विदुः ।
रोहिणी सहिता कृष्णा मासे च श्रावणेऽष्टमी ॥
[ स्कन्दपुराण । ]

श्रावण मास के रोहिणी नक्षत्र से युक्त ऐसी जो अष्टमी की तिथि है उसे 'जयन्ति' कहते हैं। यह योग जयप्रद और पुण्यकारक है। इसी विजयी तथा शुभ योग पर श्रीकृष्ण परमात्मा का जन्म हुआ था, इसलिये इस अष्टमी को कृष्णजयन्ति कहते हैं। इसके बाद जयन्ति शब्द के मूल का विशिष्ट योगवाचक अर्थ बदल गया और वह सामान्य शब्द हो गया तथा उसका अर्थ 'किसी भी महात्मा की जन्मतिथि' ऐसा होने लगा। आजकल भी इसी सदार्थ से जयन्ति शब्द का उपयोग किया जाता है, और उसे अर्थानुरोध से श्रीराम, हनुमान, नृसिंह, परशुराम, दत्तात्रेय इत्यादिकों की जन्मतिथियों को रामजयन्ति, हनुमज्जयन्ति, नृसिंहजयन्ति, परशुरामजयन्ति और दत्तजयन्ति इत्यादि कहते हैं। इस पुरानी रीति के अनुसार ही आधुनिक महात्माओं की जन्मतिथि के सम्बन्ध में शिवजयन्ति, रामकृष्ण—परमहंस—जयन्ति वगैरह शब्दप्रयोग प्रचलित होने लगे हैं।

साक्षात् परमेश्वर जब धर्मसंस्थापनार्थ अवतार लेता है उस समय उसके अवतार की तिथि यही जयन्ति कहलाती है। हिन्दुओं में मुख्य दस अवतार माने गये हैं और अंशावतार तो अनेक हैं। इन दस अवतारों में से ९ अवतार हो चुके हैं और दसवां कल्की अवतार होनेवाला है। परन्तु गत ९ अवतारों की जिस तरह जयन्तियां हैं उसी तरह भावी दशमावतार की भी जयन्ति का उल्लेख हमारे शास्त्रों में किया गया है। इस कारण दस अवतारों की दस जयन्तियां तो प्रत्येक हिन्दू को मालूम होनी ही चाहियें, परन्तु यह खेद का विषय है कि बहुत से लोगों को रामजयन्ति तथा कृष्णजयन्ति को छोड़ और जयन्तियों का नाम तक मालूम नहीं रहता। कुछ लोगों को परशुरामजयन्ति और नृसिंहजयन्ति मालूम रहती हैं और उनमें भी अल्पसंख्यक लोग वामनजयन्ति कब होती है यह जानते हैं। शेष बची हुई मत्स्य, कूर्म, वराह, बौद्ध तथा कल्की जयन्तियों के नाम तक बहुतों ने कभी सुने न होंगे, इसलिये इन सब जयन्तियों के नाम निम्नलिखित कोष्ठकों में दिये गये हैं —

| महीना | तिथि | अवतार | जयन्ति का नाम। |
|---|---|---|---|
| चैत्र | शु० ३ | १ | मत्स्यजयन्ति। |
| | शु० ९ | ७ | रामजयन्ति। |
| वैशाख | शु० ३ | ६ | परशुरामजयन्ति। |
| | शु० १४ | ४ | नृसिंहजयन्ति। |
| | शु० १५ | २ | कूर्मजयन्ति। |
| श्रावण | शु० ५ | १० | कल्किजयन्ति। |
| | कृ० ८ | ८ | कृष्णजयन्ति। |
| भाद्रपद | शु० ३ | ३ | वराहजयन्ति। |
| | शु० १२ | ५ | वामनजयन्ति। |
| आश्विन | शु० १० | ९ | बुद्धजयन्ति। |

अन्य प्रचलित जयन्तियां।

| | | |
|---|---|---|
| चैत्र | शु० १५ | हनुमज्जयन्ति। |
| वैशाख | शु० २ | शिवजयन्ति। |
| वैशाख | शु० १५ | गणेशजयन्ति। |
| कार्तिक | कृ० ८ | कालभैरवजयन्ति। |
| मार्गशीर्ष | शु० १५ | दत्तजयन्ति। |
| माघ | शु० ४ | मयूरेश जयन्ति। |
| माघ | कृ० १४ | श्रीशंकराचार्य जयन्ति। |

इस प्रकार मुख्य दस अवतारों की तथा और भी अनेक जयन्तियां हैं। साधु पुरुषों की जन्मतिथियों की अपेक्षा उनकी मृत्युतिथियां ही अधिक मानी जाती हैं। अतएव उनकी जयन्तियां प्रचलित नहीं हैं। उपरोक्त कोष्ठक से यह ज्ञात होगा कि जयन्तियों की विशेषता वैशाख मास में ही है। दशावतारों में से तीन अवतार इसी महीने में हैं और इसी महीने में गणेशजयन्ति तथा आधुनिक शिवजयन्ति भी मनाई जाती है। इस प्रकार वैशाख महीने में जयन्तियों की संख्या पांच होगई। इस पर से यह मालूम होता है कि इस महीने में बड़े बड़े महात्माओं के जन्म के लिए विशेष अनुकूल योग होता है, क्योंकि साधारणतः वराहमिहिराचार्य के मत से इस समय रवि उच्चस्थान में रहता है। भाग्यशाली विक्टोरिया महारानी का जन्म भी वैशाख मास में ही हुआ था। अस्तु वैशाख मास में होनेवाली पांच जयन्तियों का कुछ वृत्तान्त नीचे दिया जाता है।

---

### श्रीशिवजयन्ति।

वैशाख शु० २ को श्री शिवाजी महाराज का जन्म शिवनेरी किले में हुआ। परन्तु ठीक ठीक तिथि कौनसी है यह केवल वाद ही का विषय है। श्रीयुत केलुसकर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि व० शु० ४ ठीक तिथि है। परन्तु पारसनीस इतिहास संग्रहकार की जर्नी से यह मालूम होता है कि उस दिन रोहिणी नक्षत्र था परन्तु व० शु० ४ को रोहिणी नक्षत्र का होना सम्भव ही नहीं है। इसलिए यदि रोहिणी नक्षत्र ठीक समझा जाय तो शु० २ यह तिथि ही सच मालूम होती है। इन बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सं० १५९८ प्रभव संवत्सर वै० शु० २ बृहस्पतवार को सवेरे १०–११ बजे शिवनेरी किले में श्री शिवाजी महाराज का जन्म हुआ। यह किला पूना जिले में, जुन्नर (तालुका) तहसील में जुन्नर से पश्चिम की ओर प्राय आध मील पर है। इस किले की ऊंचाई आसपास प्रदेश के धरातल से, १००० फुट है। महाराष्ट्र देश के सब किलों में से यह अत्यन्त प्राचीन है और इसमें ५ भिन्न भिन्न राजकर्ताओं के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। किले के पूर्व ओर की गुफाओं से यह विदित होता है कि उस पर किसी समय बौद्ध धर्मी लोगों का अधिकार होगा। सन् ११७० से १३०८ तक यह किला देवगिरि के जादवों के अधिकार में था। सन् १३०८ से १६०४ तक उस पर मुसलमानी अधिकार था। सन् १५९५ में मालोजी भोंसले को पूना और सुपा नामक दो प्रांतों की जागीर मिली और साथ ही यह किला भी उन्हें प्राप्त हुआ। कुछ समय के बाद शहाजी और जाधव राजाओं में विरोध उत्पन्न हुआ इसलिए

शहाजी को वहां से भागना पड़ा। उस समय गर्भिणी जिजाबाई को वहीं छोड़ शहाजी ने फलटन गांव का रास्ता लिया। उपरोक्त कारण से जिजाबाई को वहीं रहना पड़ा और उस किले को श्री शिवाजी महाराज के जन्मस्थान होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्तमान समय इस किले में एक देवी का देवालय तथा दो गंगा यमुना नामक, मीठे पानी के, कुंडों को छोड़ कुछ भी देखने योग्य नहीं है। किले के ऊपर मसजिद



जिजाबाई को ऐसा निश्चय था कि यह पुत्र देवी के वर का फल है, अतएव पुत्र का नाम, देवी के नाम पर, " शिवाजी " रखा।

के पूर्व की ओर टूटी-फूटी इमारतों की दो कोठरियां शेष बची हैं। कहा जाता है कि यही शिवाजी महाराज का जन्मस्थान है और तदर्थक वहां एक पटनी भी लगा दी गई है। परन्तु उतने ही से, एक बड़े महात्मा का जन्म उस स्थान में हुआ होगा यह बात मन में नहीं जचती।

शहाजी राजा ने जब जिजाबाई को शिवनेरी किले में छोड़ दिया था तब उनकी दशा बहुत हृदयविदारक थी। एक ओर उन्हें अपने पति और उनके साथ रहनेवाले तीन वर्ष के, एक, बालक की चिन्ता थी, और दूसरी ओर स्वयं अपने गर्भ की चिन्ता थी। दोनों चिन्ताओं में पड़ कर उन्होंने देवी से मिन्नत की। जिजाबाई ने यह सुना था कि हमारे वंश में एक श्रेष्ठ पुरुष जन्म लेनेवाला है। उन्होंने देवी से यह प्रार्थना की कि, वह श्रेष्ठ पुरुष मेरे ही गर्भ से उत्पन्न हो। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। उनके शिवाजी सदृश पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। जिजाबाई ने उसको देवी के ही वरदान का फल समझा, इसलिए पुत्र का नाम शिवाजी ही रक्खा। इस प्रकार हिन्दूधर्म-रक्षणार्थ शिवाजी का जन्म शिवनेरी किले में जिस तिथि को हुआ उसे 'शिवजयन्ति' कहते हैं।

---

## परशुरामजयन्ति।

वैशाख मास में जो दूसरी जयन्ति होती है उसको परशुरामजयन्ति कहते हैं। यह अक्षयतृतीया नाम से विशेष प्रसिद्ध है। परशुराम के अवतार का कृत्य क्षत्रियों के नाश का ही था, इस कारण उनकी जयन्ति को अर्थात् अक्षय-तृतीया कहते हैं। वराह और नृसिंह अवतार में हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपु नाम के दैत्यों का नाश करने पर देव और दैत्यों का युद्ध शांत हो गया था। अनन्तर राजा बलि प्रबल हुआ, परन्तु वामनावतार में बिना युद्ध के ही दूसरे उपाय से उसका बंदोबस्त कर दिया गया। यद्यपि इससे बलि का बन्दोबस्त हो गया तौभी दूसरे दैत्य और दैत्य सदृश दूसरे क्षत्रिय वैसे ही बच रहे और दिनोंदिन उनका अत्याचार बढ़ते ही चला। इन क्षत्रियों में सहस्त्रार्जुन प्रमुख था। एक समय वह मृगया करते २ जमदग्नि ऋषि के आश्रम के निकट आया। जमदग्नि ने कामधेनु



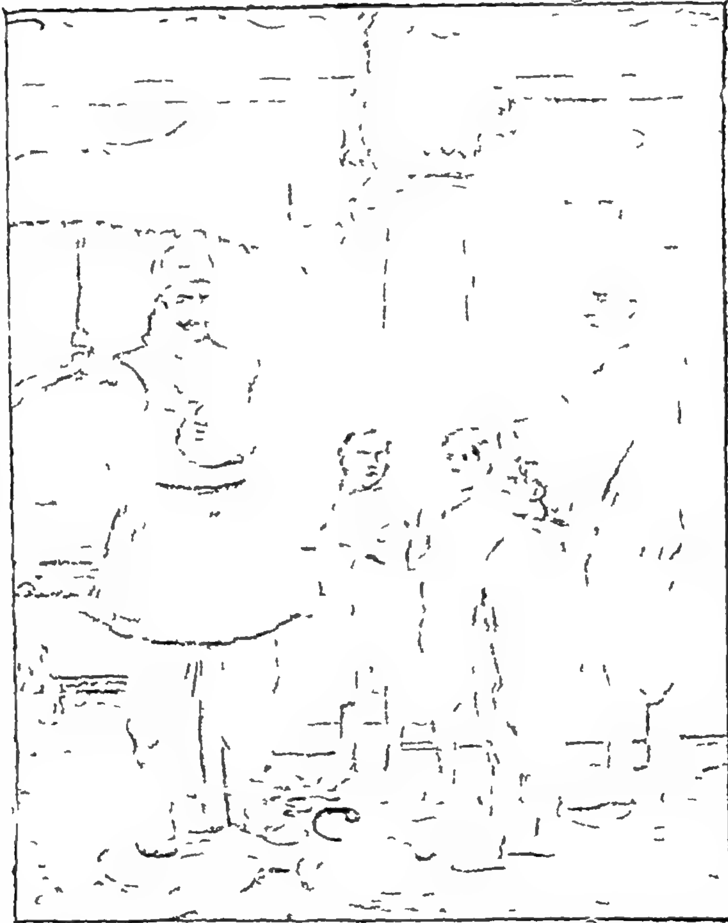
परशुराम आश्रम में आते ही इस प्रकार की दशा देखी और अत्यन्त क्रोधित होकर हाथ में परशु ( फरसा ) लिया।

की सहायता से उनके सब परिवार का पूर्ण रूप से आतिथ्य किया। परन्तु इस उपकार का परिणाम बिलकुल उलटा हुआ। कामधेनु की सहायता से यह ऋषि मुझसे अधिक ऐश्वर्यशाली है यह बात उस दुष्ट-बुद्धि राजा को अच्छी न लगी। वह उस कामधेनु को बलात्कार से अपने नगर की ओर ले चला। उस समय जमदग्नि ऋषि का पुत्र परशुराम कहीं बाहर गया था। ज्योंही उसे यह समाचार मिला त्योंही वह सहस्त्रार्जुन की ओर गया और अपने परशु से उसके हाथ काट कर उसका वध किया। उस समय सहस्त्रार्जुन के पुत्र डर के मारे भाग गये। परन्तु वे इस बात को न भूले कि परशुराम ने हमारे पिता का वध किया है। एक दिन परशुराम आश्रम में न था तब उन राजपुत्रों ने जमदग्नि के आश्रम में प्रवेश किया, और समाधि लगा कर बैठे हुए

महर्षि का वध कर और उनका सिर तोड़ वे उसे लेकर चले गये। परशुराम को स्वाश्रम में पदार्पण करते ही उन्हें, सहस्रार्जुन के पुत्रों की यह सब कार्रवाई दीख पड़ी। तब उनका क्रोध बेहद बढ़ गया। उन्होंने उसी समय अपना परशु हाथ में ले लिया और क्षत्रिय कुल को जड़ से उखाड़ने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने महिष्मति नगरी पर हमला किया और सहस्रार्जुन के पुत्रों का नाश कर उनके शिरों का ढेर लगा दिया। कहते हैं कि जमदग्नि के मरण समय परशुराम की माता (रेणुका) ने इक्कीस बार अपनी छाती पीटी थी, इसलिए परशुराम ने भी इक्कीस बार क्षत्रियों का पराभव किया और सारी पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर डाला। परन्तु इस कहानी को केवल अर्थवाद की दृष्टि से देखना चाहिये। उस समय क्षत्रिय लोग बहुत उन्मत्त रीति से बर्ताव करते थे और उनके राजसगुण का नाश हुये बिना सत्वगुण की वृद्धि होने को अवकाश न था। ब्राह्मणों के सात्विक आचरण का प्रभाव समाज पर होने के लिए राजसगुण की प्रबलता कम होनी चाहिए थी। यह कर्तव्य परशुराम अवतार में पूर्ण हुआ। क्षत्रियों का भयंकर संहार करके सत्वगुण का साम्राज्य स्थापित किया गया। इस प्रकार मदोन्मत्त क्षत्रियों का संहार करनेवाले परशुराम की जन्म-तिथि को 'परशुरामजयन्ति' अर्थात् अक्षय तृतीया कहते हैं।

## नृसिंहजयन्ति।

विष्णु के दशावतारों में नृसिंह अवतार की कथा जैसी अद्भुत और मनोवेधक है वैसी ही वह बोधप्रद और रहस्यमय भी है। प्राय सब अवतारों में महाविष्णु को, अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए, दुष्टों का संहार भी करना पड़ा। यह कार्य उन्होंने लौकिक नीति के अनुसार ही किया। उन्हें इस कार्य में दूसरों तथा मानवी सहायता भी पूर्ण रूप से थी। परन्तु जिस स्थिति में नृसिंह अवतार हुआ वह स्थिति दूसरे अवतारों की स्थिति से बहुत भिन्न प्रकार की थी। रामावतार में रावणादिकों का और कृष्णावतार में कंस, शिशुपाल, दुर्योधन इत्यादिकों का नाश करने को साधनों की बहुत विपुलता थी। यदि दुर्योधन की ओर ११ अक्षौहिणी सेना थी तो पाण्डवों की ओर कम से कम ७ अक्षौहिणी थी। यदि रावण को इन्द्रजीत के समान ७ पराक्रमी पुत्र सहायक थे तो राम को भी लक्ष्मण के समान जितेन्द्रिय बन्धु की और हनुमान के समान ब्रह्मचारी सेवक की सहायता थी। परन्तु भक्त प्रह्लाद की रक्षा करके पृथ्वी को हिरण्यकश्यप के अत्याचार से छुड़ाने के लिए विष्णु को अवतार लेते समय कोई सुरक्षित तथा सुसंस्कृत स्थान नहीं मिला। सब जगह, सब दिशाओं में, दिन और रात भर अचेत और सचेत पदार्थों पर उस दैत्य का अधिकार इतना दृढ़ था कि उस अवस्था में विरुद्ध विचारों के लिए कोई स्थान ही न था। यद्यपि रावण का राज्य बहुत विस्तृत और बलाढ्य था तिस पर भी जनस्थान के उत्तर की ओर उसका अधिकार स्थापित नहीं हुआ था। इसलिए अयोध्या के स्वतंत्र राज्य में रहने और अपने पराक्रमों की गिनती का आरम्भ करने के लिए श्रीरामचन्द्र को अवसर मिल गया था। कृष्ण भी गोकुल सरीखे कुछ कुछ स्वतंत्र स्थान में रह कर अपनी प्राथमिक तैयारी कर सके। परन्तु हिरण्यकश्यप के अन्याय से सारी पृथ्वी ग्रस्त हो गई थी। उस पर रह कर राजा के विरुद्ध षड्यंत्र करने को कहीं स्थान नहीं था। इस कारण सर्वत्र निराशा का साम्राज्य फैल गया था। इसका कोई भी अनुमान न कर सकते थे कि इस निराशा रूपी आकाश के पर्दा दूर होकर आशारूपी सूर्य कहां दृगोचर होगा। परन्तु ऐसे ही संकट के अवसर ईश्वर की अपनी अघटित घटनापटुता का परिचय दिलाने के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। महाबलाढ्य और मदान्ध हाथी की पकड़ से छूटना दूर के मनुष्य को दुर्घट होता है परन्तु उसकी गर्दन पर बैठनेवाला महावत अंकुश की मार से उसको अपने आधीन कर लेता है। यही बात इस समय भी घटित देख पड़ती है। हिरण्यकश्यप के प्रजाजनों में यदि कोई भी 'नारायण' शब्द का उच्चार करता तो उसे कारागृहवास का दंड दिया जाता था, ईश्वरीय लीला ऐसी कुछ विचित्र है कि उसी 'नारायण' नाम का घोष उसका पुत्र प्रह्लाद करने लगा। 'दूसरा कोई यदि इस नाम का उच्चारण करता तो उसे गुरुजी ही स्वयं दंड देते, या उसकी खबर तुरन्त हिरण्यकश्यप को दे देते, परन्तु स्वयं राजपुत्र प्रह्लाद के इस कर्म से गुरुजी बहुत चकित हो गये। यदि प्रह्लाद के इस व्यवहार की खबर राजा को दी जाय, तो कदाचित् अपने ही ऊपर कोई संकट न आपड़े और यदि न बतलावें तो कभी न कभी यह बात उस राक्षस के कान में अवश्य पड़े ही गी, ऐसा पूर्ण विचार करके गुरुजी ने राजा को यह खबर सुनाने का निश्चय किया। यह बात उस दैत्य को प्रगट की और कहा कि अकेला प्रह्लाद ही "नारायण" का नाम नहीं लेता, किन्तु उसने अपने साथवाले सैकड़ों विद्यार्थियों को भी बिगाड़ डाला है।



राजा, प्रह्लादादि अनेक लड़कों को बुलाकर, बहुत धमकी देकर, कह रहा है कि इस (नारायण) का नाम लेना छोड़ दो।

यह आकस्मिक और दुष्ट समाचार सुन कर पैर पर से शिर तक गरम हो गया। उसी समय उसने प्रह्लाद और उसके साथियों को अपने सामने बुलाया और कहा कि तुम लोग 'नारायण' का नाम लेना छोड़ दो। उसने उन लड़कों को बहुत धमकी भी दी परन्तु प्रह्लाद के मन पर इन सब बातों का कुछ भी परिणाम न हुआ। इसके बाद प्रह्लाद को मार डालने के लिए वह अनेक उपाय करने लगा। उसने उस बालक को विष पिलाया, ऊंची टेकड़ी पर से ढकेल दिया, पानी में डुबाया, अग्नि में जलाया और पृथ्वी में गाड़ दिया परन्तु किसी भी उपाय से प्रह्लाद का नाश न हुआ। परिणाम यह हुआ कि इन सब दुःखों को सहते सहते प्रह्लाद की श्रद्धा-भक्ति बहुत दृढ़ हो गई। अन्त में हिरण्यकश्यप ने यह निश्चय किया कि प्रह्लाद से यह पूछना चाहिये कि तेरे सामर्थ्य का रहस्य किस बात में है। अनन्तर उसने एक दिन यह प्रश्न किया कि तेरा नारायण कहां है? प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि वह सब जगह है। यह सुन कर उस राक्षस को अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि यद्यपि मैं अपने शत्रु के नाश करने का इतना यत्न कर रहा हूं तथापि वह सब जगह बना है और स्वयं मेरे ही महल में उपस्थित है। वह बिचारा यह न जानता था कि ईश्वर रूप अविनाशी सत्य का कदापि नाश नहीं होता। यद्यपि बाहरी दृष्टि से उसका नाश होता हुआ देख पड़ता है तथापि सब चराचर वस्तुओं में अलक्ष्य रीति से वह व्याप्त रहता है। इसलिए उसने फिर उस बालक से प्रश्न किया कि क्या तेरा नारायण इस सामने के खंभे में भी है? यह प्रश्न गर्व से खाली न था। उसका विश्वास था कि मेरा शत्रु मेरे सिंहासन के सामने कदापि न रह सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि उसका शत्रु जड़ शरीर धारण करके उसके सामने कदापि न रहता परन्तु वह यह बात न जानता था कि चैतन्य रूप परमेश्वर के लिए कोई स्थान अगम्य नहीं है। वह अपने चैतन्य रूप से उसके चारों ओर और स्वयं उसके शरीर ही में निवास करता था। हिरण्यकश्यप इस समय अपने शत्रु का दृश्य रूप ही देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो रहा था। दृश्य रूप से अपने शत्रु का साक्षात-

कार हुए बिना वह न तो उसका अस्तित्व ही स्वीकार करता और न अपने मन में समाधान ही पाता। उसको स्वयं अपनी शक्ति और सत्ता की इतनी घमण्ड थी कि जब तक उसका शत्रु खम्भा फाड़ कर उसके सामने खड़ा न होता तब तक उसकी दिलजमई न होती। अनुमान, उपमान, शब्द इत्यादि प्रमाण उसको मान्य न थे। वह सिर्फ एक प्रत्यक्ष प्रमाण ही को मानता था वह जानता था कि केवल जड़ देह ही अस्तित्व का एक मात्र लक्षण है। जब तक उसका शत्रु इसी जड़ और दृश्य रूप से उसके सामने प्रगट न होता तब तक वह अपनी शक्ति और सत्ता के प्रभाव में किसी प्रकार की न्यूनता स्वीकार न करता। ईश्वर भी उसको यही चमत्कार दिखाना चाहता था इस लिए उसने अपने निर्गुण रूप का त्याग किया और महा भयानक नर-सिंह का रूप धारण किया। जिस खम्भ के सामने हिरण्यकश्यप खड़ा था वह बिजली के समान कड़कड़ाट की आवाज करके एकदम फट गया और उसमें से नर-सिंह रूपधारी परमात्मा का अवतार प्रगट हुआ। जब तक हिरण्यकश्यप अदृश्य रूप के सम्बन्ध में वैर करता रहा तब तक उसके सामने कोई भी आपत्ति उत्पन्न न हुई थी, यह वैर हजारों वर्ष तक इसी प्रकार बना रहता और इससे उसकी कुछ भी हानि न होती। परन्तु, अब, जब कि उसके अदृश्य वैर का भाव जड़ रूप धारण करके प्रत्यक्ष रूप से उसके सामने प्रगट हो गया, तब उन दोनों में से किसी एक का नाश अवश्य ही होना चाहिए। अर्थात् सत् और असत् के झगड़े में सदा असत् ही का नाश हुआ करता है। यही प्राकृतिक नियम इस समय भी चरितार्थ हुआ। नर-सिंह रूप को देखते ही हिरण्यकश्यप की सारी शक्ति एक क्षण में नष्ट हो गई, वह हतवीर्य हो गया, नर-सिंह के तीव्र नखाग्रों से उसका पेट विदीर्ण किया गया और अंत में वह गतप्राण हो गया। यदि वह अपने ऐश्वर्य से मदान्ध न हो जाता, यदि वह परमेश्वर के असीम भक्त प्रह्लाद को पीड़ित न करता और यदि वह अपने गुप्त शत्रु को प्रकट रूप से उपस्थित होने का आग्रह न करता तो उसका नाश कदापि न होता। इस कथा से यह बोध लिया जा सकता है कि मदान्ध पुरुष अपनी अनियंत्रित सत्ता में रत्ती भर भी न्यूनता नहीं होने देना चाहता और वह अपने ऐश्वर्य तथा सत्ता की घमण्ड में भले-बुरे का कुछ भी विचार नहीं करता।

## कूर्मजयंति।

बौद्ध और कलकी अवतार विशेष महत्त्व के नहीं हैं ऐसा समझ कर यदि उनका वर्णन छोड़ दिया जाय तो कुछ अनुचित न होगा क्योंकि अब जो आठ अवतार बचे हैं उनमें से कूर्मावतार में ही विशेष बोध ग्रथित किया गया है। साधारणतः ईश्वर का अवतार साधुओं के परित्राणार्थ, दुष्टों का नाश करने के लिए हुआ करता है। इसलिये किसी भी अवतार में एकाध दैत्य का वध होना यह एक स्वाभाविक कर्तव्य हुआ करता है। इसीसे साधारण लोगों में यह शंका उठा करती है कि ईश्वर की दैत्यों पर विषम बुद्धि क्यों है और उसमें ऐसा पक्षपात क्यों है? परन्तु कूर्मावतार के, ऊपरी नियम का अपवाद होने से किसी भी राक्षस का वध करने के लिये ही ईश्वर का अवतार होता है इस एक पक्षीय नियम की असत्यता प्रगट होती है। कूर्मावतार में श्री विष्णु ने किसी भी राक्षस का वध नहीं किया, इसके बदले देव और दानवों की सहायता ही की। दूसरे सब अवतारों में दीख पड़नेवाले बाहरी भेद का इसी अवतार में लोप क्यों हुआ, ऐसी शंका मन में उत्पन्न होती है। कूर्मावतार की आवश्यकता क्यों उत्पन्न हुई, इसका विचार करने से उपरोक्त शंका का समाधान होता है।

दुर्वासा ऋषि के श्राप के कारण इन्द्र का ऐश्वर्य नष्ट हुआ और दैत्य प्रबल हो गये, इस कारण देवताओं ने महाविष्णु की प्रार्थना की। उस समय भगवान् ने कहा कि "इस समय दैत्य और दानवों ही पर समय की पूरी पूरी कृपादृष्टि है इसलिये यदि तुम्हें अपना महत्कार्य साधने की इच्छा हो, तो जिस प्रकार पिटारी में बंद किया हुआ सर्प बाहर निकलने का मार्ग ढूंढते समय चूहे से भी मित्रता करता है, उसी प्रकार तुम उन दैत्यदानवों से मित्रता करो और उनकी सहायता से क्षीरसागर का मथन करके अमृत उत्पन्न करने का प्रयत्न करो। उस समय दैत्य लोग जो कुछ कहें उसका चुपचाप अनुमोदन करो। उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ मत करो। समुद्र से कालकूट विष निकलेगा उसे देखते ही भयभीत न हो जाओ, दूसरे भी रत्न निकलेंगे उनके लोभ में मत फसो, परन्तु केवल अमृत-प्राप्ति के अंतिम ध्येय पर दृष्टि रख कर प्रयत्न जारी रक्खो। इससे तुमको यशप्राप्ति होगी और तुम अपनी वर्तमान संकटावस्था से पार हो जाओगे," श्री भगवान् महाविष्णु के बताये हुए इस मार्ग का अवलंब करके देवताओं ने दैत्यों से मित्रता की और दैत्यों ने भी अमृत की आशा से देवताओं से मिल कर समुद्र मथन सदृश दुर्घट काम करने का वचन दिया। देव और दानव एकत्र हुए बिना समुद्र का मथन किया जाना असंभव था। इसलिए दोनों ने अपने वैर को क्षण भर भुला दिया—दोनों ने एकता की। इस समय परमेश्वर को एक पक्ष से मित्रता और दूसरे से वैर करने का कोई काम न पड़ा। इसी लिए कूर्मावतार में ईश्वर को किसीका वध नहीं करना पड़ा। जहां विरोध ही नहीं है वहां ईश्वर को भी समबुद्धि से सब की सहायता करनी पड़ती है। देव-दानवों के सदृश परम वैरी भी समुद्रमथन सरीखे दुर्घट कार्य के लिए एकत्र हो गये। इस प्रकार की एकता जब होती है तब परमेश्वर को भी उनके सहायतार्थ अवतार लेना पड़ता है। यही बोध इस कथा से लिया जा सकता है। अस्तु देव-दानवों ने मन्दराचल का दंड बना कर क्षीरसागर का मथन करना आरम्भ किया। तब वह समुद्र नीचे जाने लगा। उस समय देव दानवों का यह यत्न निष्फल न होवे, इसलिए परमेश्वर ने कूर्मावतार धारण किया और मंदराचल पर्वत को अपनी पीठ का आधार दिया। इस आधार से मथनकार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ और समुद्र में से चौदह रत्न निकले। इन रत्नों का विभाग कैसे किया गया और अमृत-प्राप्ति के लिए देव तथा दानवों में झगड़ा कैसे हुआ इत्यादि बातों का वर्णन करने की यहां कोई आवश्यकता नहीं है। कूर्मावतार से हम लोगों को यह शिक्षा लेनी चाहिए कि परस्पर विरोधी मन के लोग किसी महत्व कार्य के लिए पूर्व विरोध को भूल जब एकत्र होते हैं। उस समय ईश्वर भी उनके विषय में समबुद्धि रख कर उनकी सहायता करता है।

## गणेशजयन्ति।

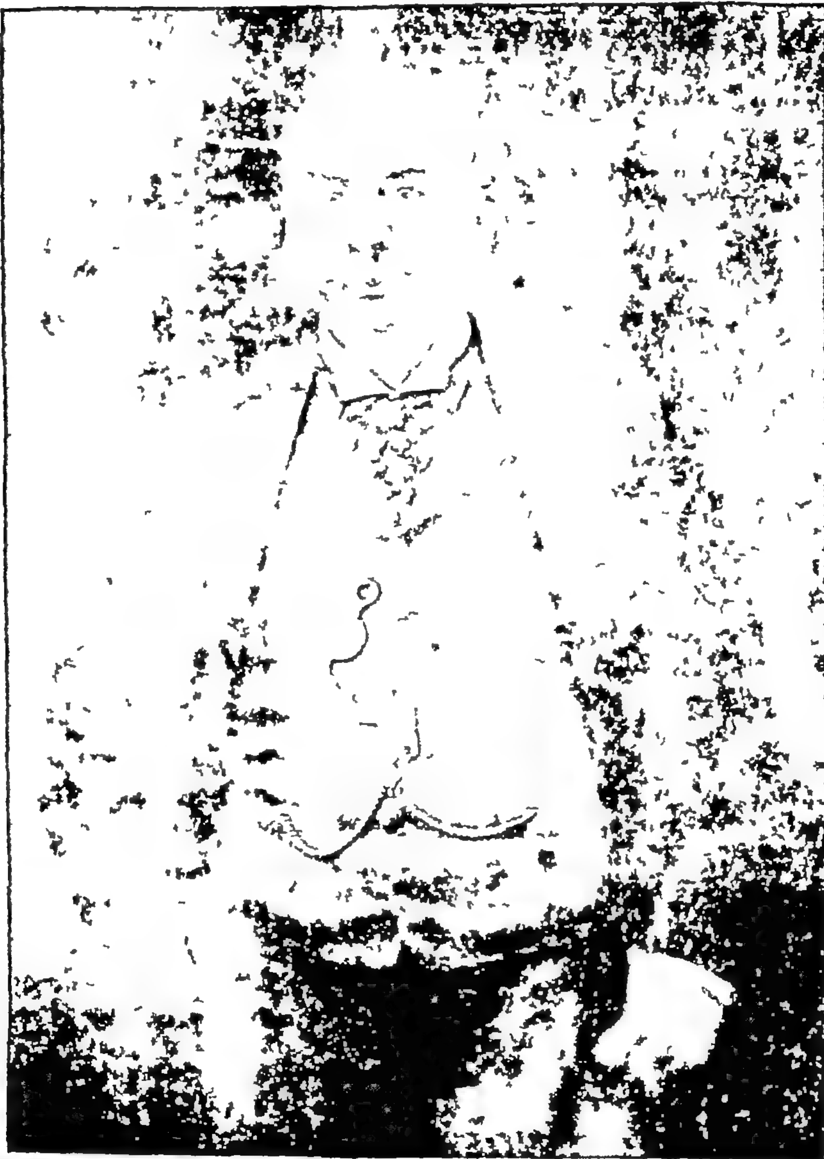
गणेश जयन्ति वैशाख मास की अन्तिम जयन्ति है। महिषासुर के पुत्र गजासुर नामक दैत्य का वध करने के लिए ही गणपति ने पराशर ऋषि के यहां जन्म लिया था। गजासुर अथवा गणेशजन्म की कथाओं में नवीन विशेष रहस्य कुछ भी नहीं है। हिरण्यकश्यप, रावण इत्यादि दैत्यों के सदृश ही गजासुर भी गर्वित हो गया था और शंकरजी के वर के कारण मस्त होकर त्रैलोक्य को पीड़ित करता था। उसके अन्याय की सीमा कहां तक पहुंच गई थी यह निम्न लिखित उदाहरण से ज्ञात होगा। उसके डर से त्रस्त हुए देव जब उसके पास अभयदान मांगने गये तब उसने यह कहा कि 'तुम सब दोनों हाथों से दोनों कान पकड़ कर मेरे चरणों पर मस्तक रख कर प्रणिपात करोगे तो मैं तुम्हें जीवित रक्खूंगा। देवताओं ने भी वैसा करना स्वीकृत किया' इतने से भी गजासुर का समाधान न हुआ। उसने उन्हें अपने प्रमुख कार्यकर्ता गणेश को लाकर उनसे प्रणिपात कराने का हठ पकड़ा। तब गणेशजी ने गजासुर से युद्ध कर उसका वध किया। वैशाख मास की ऊपर लिखी पांच जयन्तियों की मूल कथा का वर्णन किया गया। परशुराम अवतार में क्षत्रियों का गर्व हरण हुआ और ब्राह्मणों का प्रभुत्व स्थापित हुआ। नृसिंहावतार में भक्ति की श्रेष्ठता और सच्चे भक्त की निर्भयता दीख पड़ी। कूर्मावतार में यह मालूम हुआ कि लोककल्याण के कार्यसिद्धि के लिए विरोध भूल कर एकता कैसी करनी चाहिए और ऐसी एकता जब हो जाती है, तब उस कार्य की सिद्धि के लिए परमेश्वर भी किसी प्रकार से अवतार लेता है। गणेशजी का अवतार विघ्ननाश के लिए ही था और इस कारण गजासुर सरीखे महा प्रबल राक्षस की एक भी न चली। मनुष्य के एक बार अधोगति की ओर झुकने से वह स्वाभिमान किस तरह भूलता है और केवल देहरक्षणार्थ बड़ी कड़ी शर्तें मंजूर कैसे कर लेता है इत्यादि बातों का भी वर्णन किया गया है। अन्त में श्री शिवाजी के ऐतिहासिक जीवनचरित्र से यह बात मालूम होती है कि अत्यंत प्रतिकूल परिस्थिति से भी अवतारी पुरुष किस प्रकार अपना मार्ग निकाल सकते हैं। इन जयन्तियों का इस प्रकार संक्षिप्त इतिहास पाठकों को सन्मार्गदर्शक और कल्याणप्रद होने के हेतु अर्पण किया गया है।

परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे पाठकगण इससे अपना हित सम्पादन करें।

# मिस्टर जान पियरपान्ट मार्गन।

## सम्पत्ति का महत्त्व।

यद्यपि धर्म ग्रन्थों में यह लिखा है कि आत्मा अमर और अविनाशी है, तथापि उस आत्मा को न किसीने देखा है और न उसका साक्षात्कार किसीको हो सकता है। इतना ही नहीं किंतु उसके विषय में यह कहा जाता है कि जिन पांच इन्द्रियों के द्वारा मनुष्य को दृश्य पदार्थों का ज्ञान होता है वे पांच इन्द्रियां उस आत्मा के ज्ञान की प्राप्ति करने में बिलकुल असमर्थ हैं। जैसे आत्मा का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त करना कठिन अथवा असम्भव है वैसे ही इस बात का भी कोई साक्षात् ज्ञान हमको नहीं हो सकता कि जन्म लेने के पहिले—यह मानव शरीर धारण करने के पहिले—हम कहां थे हमारी क्या दशा थी, हम इस मानवजन्म में क्यों और कैसे आये। इसी तरह इस बात का भी कोई पता नहीं लगता कि मृत्यु के बाद हम कहां जायेंगे और हमारी क्या दशा होगी। इन सब विषयों के बारे में हम लोग या तो अनेक प्रकार के तर्क कर सकते हैं या दूसरों के किये तर्कों पर विश्वास रख सकते हैं—यही दो उपाय हैं कि जिनके द्वारा हम अपनी आत्मा, जन्म और मृत्यु के विषय में कुछ जानने का दावा कर सकते हैं। इन उपायों के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है इस लिये उक्त बातों के विषय में हमारा ज्ञान निश्चित रूप से सिद्धान्त कहा नहीं जा सकता। परंतु यही बात हम अपने अस्तित्व के विषय में भी नहीं कह सकते। हमारा अस्तित्व कायम है हम जीते रहें, हम जिन्दा रहना चाहते हैं, हमारा जीवन सुख से व्यतीत होना चाहिये इत्यादि बातें हमको निश्चित रूप से सत्य प्रतीत होती हैं—इन सब बातों का हम प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करते हैं—इन बातों के सम्बन्ध में हमारे मन में कभी सन्देह नहीं होता। जिन्दा रहना चाहिये और वह भी सुख से, ये दो बातें प्रत्येक मनुष्य में पाई जाती हैं चाहे वह छोटा हो या बड़ा। इस दुनिया में जितने मनुष्य हैं उन सब मनुष्यों में (सिर्फ पागलों को छोड़ कर) यही दो बातें, यही दो इच्छायें देख पड़ती हैं कि हम जिन्दा रहें और सुख से जिन्दा रहें। इन्हीं दो इच्छाओं, भावनाओं, के कारण इस संसार में स्वार्थ-बुद्धि और उससे उत्पन्न होनेवाली अन्याय-वृत्ति का जन्म हुआ है। सब लोग यही चाहते हैं कि हमारा शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहे हमारे खानेपीने के लिये अच्छे अच्छे पदार्थ मिलें, पहिनने-ओढ़ने के लिये अच्छे अच्छे वस्त्र हों, और रहने के लिये अच्छा स्थान हो। ज्यों ज्यों इस बुद्धि—स्वभाव—का विस्तार होता जाता है अथवा ज्यों ज्यों हमारी महत्वाकांक्षा बढ़ती जाती है त्यों त्यों हमारे मन में यह विचार आने लगता है कि हमारे साथ हमारे नातेदारों का भी कल्याण हो, हमारे देशभाइयों का भी हित हो उन लोगों को कोई तकलीफ न हो, इतना ही नहीं, किन्तु यह भी विचार मनमें आता है कि हमारी और हमारे देशभाइयों की सन्तान कई पीढ़ियों तक जिन्दा और सुखी बनी रहे। यद्यपि सुख के सम्बन्ध में प्रत्येक मनुष्य और जाति की भिन्न भिन्न कल्पनायें देख पड़ती हैं तथापि इसमें सन्देह नहीं कि सुख ही प्रत्येक व्यक्ति का अन्तिम हेतु है। सूक्ष्म दृष्टि से देखनेवाले को यह बात मालूम हो जावेगी कि मनुष्य को पहिले पहल मानसिक सुख की अपेक्षा शारीरिक सुख की ही अधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। हां, यह बात सच है कि यदि मन सुखी होगा तो शरीर भी सुखी रहेगा परंतु इससे अधिक सच बात तो यह है कि जब शरीर सुखी होगा तभी मन को भी सुख होगा। यही कारण है कि शारीरिक सुख के साधन—अर्थात् उन साधनों को हस्तगत करानेवाली सम्पत्ति—की प्राप्ति के लिये मानव-जाति बहुत प्राचीन समय से यत्न कर रही है। यद्यपि यह शरीर नाशवान् है तथापि उसके नाश होने का समय पहले ही से किसीको मालूम नहीं होता, और यद्यपि मनुष्य को अनेक दुःख और संकट भोगना पड़ते हैं तथापि उसके मनमें जिन्दा रहने की इच्छा बनी ही रहती है, इन्हीं दो कारणों से आज तक सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये मानवी जाति ने कई छोटे बड़े झगड़े किये, बहुत सी मारपीट की, बड़ी बड़ी लड़ाइयां कीं, कई हमले किये और खून की नदी बहाई। यही हाल भविष्य में भी होता रहेगा।



मि० जान पियरपान्ट मार्गन।

धर्म में, परमेश्वर के सम्बन्ध में, कुछ भी कहा हो और तत्वज्ञानमें, आत्मा के अमरत्व के विषय में, कोई भी सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया हो, उस बात की ओर मनुष्य का मन सहज रीति से आकर्षित नहीं होता। सृष्टि-कर्ता परमेश्वर अथवा अविनाशी आत्मा की अपेक्षा मनुष्यों ने प्रत्यक्ष रूप से देख पड़नेवाले अपने शरीर और अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञात होनेवाले अपने मन ही की अधिक चिन्ता की है, कर रहे हैं और कदाचित् करते रहेंगे। दुनिया के बड़े बड़े देशों में बड़ी बड़ी सेनायें जो देख पड़ती हैं उनका प्रयोजन क्या है? यही न, कि शारीरिक सुख के साधनों को हस्तगत करानेवाली सम्पत्ति प्राप्त हो और प्राप्त की हुई सम्पत्ति सुरक्षित बनी रहे। सुख की इच्छा के साथ ही सम्पत्ति के इच्छा का भी जन्म होता है। सम्पत्ति और उससे उत्पन्न होनेवाले ऐश्वर्य के लालच से देवताओं ने भी आपस में भयंकर युद्ध किये हैं; मनुष्य तो मनुष्य ही है। इस भूलोक में केवल सम्पत्तिमान मनुष्य अथवा संपत्तिमान् देश ही आदर

की दृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि ग्रन्थों में लक्ष्मी की अपेक्षा सरस्वती की ही महिमा अधिक गाई जाती है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि ससार के व्यवहारिक विषयों में निमग्न रहनेवाले मनुष्यों को सरस्वती की आराधना से उत्पन्न होनेवाले सात्विक सुख की अपेक्षा लक्ष्मी के उपभोग से राजसी और तामसी सुख की ही अधिक आवश्यकता होती है। लक्ष्मी-पुत्र केवल सपत्ति ही के योग से सरस्वती के प्रेमियों को अपना दास बना लेते है और श्रीमान् लोग स्वय अशक्त होने पर भी धन की ही सहायता से, अनेक बलवान् लोगों को नौकर रख कर, अपनी शारीरिक न्यूनता पूर्ण कर लेते हैं। जो देश असमर्थ होते है उन्हें सपत्ति की विशेष आवश्यकता होती है और बलवान देश सदा धन का सग्रह करते ही रहते हैं। समाज में भी हम यही देखते हैं कि जिस व्यक्ति के पास धन होता है वही आदर और मान का उचित पात्र समझा जाता है। कहा भी है कि "सर्वगुण काचनमाश्रयन्ते" इसी तरह वही देश सन्मानित होता है जो सपत्ति से भरा-पूरा होता है। यह बात सब लोग जानते हैं कि कृषि और व्यापार से सपत्ति की वृद्धि होती है इसी लिये होशियार कार्य कर्ता लोग तथा बड़े बड़े देश इन्हीं बातों की ओर विशेष ध्यान दिया करते हैं। जिन लोगों ने, सपत्ति-प्राप्त करने के हेतु, व्यापार का महत्त्व भलीभांति जान लिया है और जिन लोगों ने अपनी बुद्धि का उचित उपयोग करके सपत्ति प्राप्त कर ली है ऐसे धनमान् लोगों के चरित्रों की कुछ बातें जानना हम लोगों के लिये अत्यन्त आवश्यक है। हमारे देशवासी आलसी और द्रव्य हीन हैं। यदि वे धनी देशों के कुछ लक्ष्मी पुत्रों का उत्तेजक और उपयुक्त इतिहास सुनेंगे तो हम आशा करते है कि उन लोगों को अवश्य लाभ होगा। यही सोच कर आज हम अपने पाठकों को अमेरिका देश के करोड़पति मिस्टर जान पियरपान्ट मार्गन के जीवनचरित्र की कुछ बातें सुनाना चाहते हैं। आप हाल ही में, अर्थात् गत ३१ मार्च को, परलोक सिधारे।

## जन्म, शिक्षा और उद्योग का आरभ।

मिस्टर जान पियरपाट मार्गन का जन्म हार्टफोर्ड के कानेक्टिकट गाव में ता० १७ अप्रेल १८३७ को हुआ। आपके पिता का नाम जूनियस स्पेंसर मार्गन था। जब सन् १८६० में इनकी मृत्यु हुई तब वे राष्ट्रीय बैंकर के नाते से बहुत प्रसिद्ध थे। पहिले पहल मिस्टर मार्गन हिस्सेदारी में कुछ व्यापार किया करते थे। उन्होंने अपनी होशियारी से व्यापार में बहुत धन सपादित किया। हम अपने देश में देखते है कि हमारे श्रीमान् और धनिक लोगों के लड़के लडकपन में हठ करने, खाने-पीने, नौकरों के साथ लड़ने-भिड़ने और तरुणावस्था में शराब पीने, जुवा खेलने, इत्यादि अनेक व्यसनों में फस कर अपने पुरखों की कमाई जायदाद नष्ट करने में तथा अपने रिश्तेदारों के साथ मुकदमे-मामले करके विरोध पैदा करने में अपनी सब आयु व्यतीत किया करते हैं। जो लोग ऐसा नहीं करते वे अपनी आयु ऐश आराम करने और चैनबाजी में तथा आलस के अनेक कार्यों में व्यतीत किया करते हैं। दिन भर नींद लेने और रात को नाच या नाटक, गाना बजाना इत्यादि देखने में वे अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। जिन श्रीमानों के लड़के कुछ अधिक होशियार होते है वे थोड़ी सी टूटीफूटी अग्रेजी सीख कर, अग्रेजी ड्रेस पहिन कर, विलायत चले जाते हैं और वहा अग्रेजों के साथ खाने-पीने, उनकी खुशामद करने और अग्रेजी समाज की अनेक बुरी रीतियों का अनुकरण करने में स्वर्ग प्राप्ति का सुख मानते हैं। उनके घर में जिधर देखो उधर अग्रेजी सामान देख पड़ता है। अनेक सार्वजनिक सस्थाओं के सभासद् बन कर अथवा आनरेरी मेजिस्ट्रेट बन कर, वे लोग, अपने तई धन्यवाद के पात्र हो जाते हैं। जब वे किसी यूरोपियन के स्मारक-फड के लिये द्रव्य इकाठा करने का काम करते हैं तब वे समझते है कि हमारे समान देशमित्र और कोई नहीं। जब कोई यूरोपियन अफसर उनके घर पर आता है तब वे समझते है कि हमें साक्षात् ईश्वर ही का दर्शन हुआ। जब उन्हें सरकार की ओर से कोई उपाधि दी जाती है अथवा जब वे दिल्ली दरबार के समान किसी बड़े दरबार में निमत्रित किये जाते हैं तब वे समझते हैं कि हमारा जीवन सफल हुआ। हमारे लक्ष्मीपुत्रों की यह दशा होने के कारण, वे लोग, इस बात का कभी विचार नहीं करते कि हमको अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करना चाहिये, परिश्रम तथा साहस करके सपत्ति की वृद्धि करना चाहिये, अनेक प्रकार के व्यापार और व्यवसाय के योग से स्वदेश का हित साधना चाहिए, सर्वसाधारण लोगों के नायक बन कर उनको सुख की प्राप्ति का मार्ग दिखाना चाहिये, और स्वय अपना तथा अपने देश का कल्याण करना चाहिये। यद्यपि यह दोष किसी अश में उनके परपरा गत सस्कारों का और किसी अश में वर्तमान सामाजिक दशा का है तथापि इसमें सदेह नहीं कि यह कोई समाधान या आनन्द की बात नहीं है। जब कभी कोई श्रीमान् का लड़का भाग्यवश उद्योग और व्यवसाय करके धन और नाम कमाता है तब, खेद से लिखना पड़ता है कि, वह अपने लड़कों की, उचित शिक्षा की, और कुछ भी ध्यान नहीं देता। न तो वह अपने लड़कों का विद्वान बनाता है और न व्यापार ही में लगाता है। उसके लड़के आलसी, व्यसनी और चैनबाजी मे समय बितानेवाले, स्वय सिद्ध श्रीमान, हो जाते हैं। हा, यह बात सच है कि इस प्रकार के उदाहरण केवल इसी देश म नहीं किन्तु यूरोप और अमेरिका मे भी पाये जाते हैं। परन्तु स्मरण रहे कि उन देशों के श्रीमानों के लडके प्राय व्यापार और उद्योग-धन्धा करके स्वय कर्तृत्ववान् होने का सप्रयत्न किया करते हैं। जिन लोगों को अपने पूर्वजों की सपत्ति प्राप्त हो जाती है वे उसका सदुपयोग करने तथा उसकी वृद्धि करने की ही चेष्टा किया करते है। ऐसे ही यत्न-शील व्यापारियों में मिस्टर मार्गन का नाम बहुत प्रसिद्ध है। आपने अपनी कर्तृत्वशक्ति से अपने पिता की सपत्ति की बहुत वृद्धि की।

मिस्टर मार्गन ने बोस्टन के इग्लिश हायस्कूल में शिक्षा पाई। इसके बाद वे जर्मनी के गाटिंजेन नामक युनिवरासिटी में भरती हुए। बीसवें वर्ष की उमर से आप बैंकिंग (महाजनी या साहूकारी) का व्यवसाय करने लगे। पहिले पहल वे एक बैंक में कुछ दिन नौकर रहे। उसके बाद सन् १८५६ में अपने पिता की कोठी के एजट होगये। सन् १८६४ में उन्होंने "डाब्ने मार्गन एड कपनी" स्थापित की। इसके बाद १८७१ में आप, फिलाडेलफिया में अपना ड्रिक्सेल के साथ, "ड्रिक्सेल मार्गन एड कपनी" में शामिल हो गये। सन् १८९३ मे आप इस कपनी के मुखिया हो गये। सन १८९५ में इसी कपनी का नाम आपने "जे० पी० मार्गन एड कपनी" रख दिया। इस कपनी की अनेक शाखाए दूर दूर के देशों में स्थापित होगई हैं।

## रेल्वे का झगडा।

जब वे ड्रिक्सेल कपनी में हिस्सेदारी से काम करते थे तब अमेरिका में रेल्वे कपनियों के सम्बन्ध में बडे बडे झगड़े शुरू हुए। अमेरिका के बड़े बडे धनी और श्रीमान् लोग इस बात का यत्न कर रहे थे कि "आल्बनी और सस्केहाना लाईन" हमारे ही आधीन रहे। ऐसी अवस्था में मिस्टर मार्गन भी रेल्वे के झगड़ों में शामिल हुए और उन्होंने बड़ी चतुरता से अपने सब प्रतिपक्षियों को हरा कर अपना लाभ कर लिया। उन्होंने केवल अपना ही लाभ नहीं किया किन्तु रेल्वे कपनियों का झगडा भी शात कर दिया। उनकी यह चतुरता और दक्षता देख कर बडे बड़े व्यापारी आश्चर्य-चकित हो गये। उस समय एराय, फिलाडेलफिया, न्यूयार्क, न्यूइग्लैंड सदर्न नार्दन प्यासिफिक, बाल्टिमोर, ओहियो, इत्यादि रेल्वे कपनियों का दिवाला निकलने का समय आ पहुचा था; कई कपनियों का दिवाला तो निकल चुका था, परतु मिस्टर मार्गन की व्यवसाय दक्षता के कारण इन सब कपनियों का सुप्रबन्ध होगया। अमेरिका में स्पर्धा की बड़ी तेजी है। इस बात की कल्पना हमारे देश के एक छोटे से व्यवसाय से कुछ विदित हो सकती है। हम देखते हैं कि जब किसी अच्छे स्थान में कोई दर्जी अपनी दुकान लगाता है तब उसके आसपास पचासों दर्जियों की छोटी-मोटी दुकानें खुल जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इस व्यवसाय से होनेवाला लाभ किसी एक को भी पूरी तरह होने नहीं पाता। यही हाल अमेरिका के बडे बड़े करोडपतियों में भी देखा जाता है। जब किसी एक स्थान में कोई एक कपनी रेल्वे लाईन बना लेती है तब और कई उसीके पास दूसरी लाईन बनाने के लिये न जाने कितनी कपनियां खडी होजाती है। जब यह स्पर्धा बढ़ते बढ़ते अतिम सीमा को पहुच जाती है तब उनमें से कई एक कपनियों का दिवाला निकल जाता है और लोगों की करोडों की सपत्ति नष्ट हो जाती है। अत में कोई दूसरा ही श्रीमान् व्यापारी उस रेल्वे लाईन को अपने आधीन कर लेता है और उस व्यवसाय का सारा नफा आप ही ले लेता है। इसमें सदेह नहीं कि मर्यादित स्पर्धा व्यवसाय के लिये अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि इसी मर्यादित स्पर्धा के कारण सच्ची कला और कुशलता की वृद्धि होती है और माल सस्ता बनने लगता है तथा सारे समाज का हित होता है। परन्तु जब इस स्पर्धा का रूप अनीति और अन्याय से युक्त होता है तब इष्ट परिणाम के बदले अपना और दूसरे लोगों का भी नुकसान हो जाता है। यही बात मिस्टर मार्गन ने भिन्न भिन्न रेल्वे कपनियों के प्रबन्ध कर्त्ताओं को भली भांति समझा दी। यह कोई सहज काम न था। अहकार से व्याप्त, अत्यन्त हठ करनेवाले तथा भिन्न भिन्न वृत्तियों के आधीन होनेवाले लोगों का मेल कराना और उन लोगों से मर्यादित स्पर्धा का तत्व स्वीकार कराना, मिस्टर मार्गन जैसे व्यवहार निपुण पुरुष ही को साध्य हो सकता है। जब परस्पर स्पर्धा करनेवाली भिन्न भिन्न कपनियों के व्यवस्थापक और हिस्सेदार सभा में एकत्र होकर, अपने अपने हित के अनुरोध से, वादविवाद में प्रवृत्त हो जाते थे, तब मिस्टर मार्गन शातता पूर्वक बैठे चुरट पीते रहते और उन सब लोगों की सुनते रहते। जब उनकी राय पूछी जाती तब वे सब सभासदों के भावार्थ की उचित आलोचना करते और ऐसा कुछ उपाय बताते वह तुरत ही सब लोगों को मान्य हो जाया करता था। यदि

झगड़े में मिस्टर मार्गन शामिल न होते और स्पर्धा करनेवाली भिन्न भिन्न कंपनियों के प्रबन्धकर्त्ताओं को उचित परामर्श न देते तो करोड़ों की संपत्ति का नाश हो जाता। मिस्टर मार्गन का यह मत है कि प्रत्येक व्यवसाय में सुनीति और सारासार विचार का मुख्य आधार होना चाहिए। वे स्वयं अपने व्यवसाय में इसी सिद्धांत के अनुसार बर्ताव किया करते थे। यदि कोई प्रतिपक्षी दुराग्रह करने लगता तो वे उसे अपनी बुद्धिमानी के प्रभाव से दबा डालते थे।

## उनके बड़े बड़े कार्य।

सन् १८९५ में यूनाइटेड स्टेट्स के सरकारी खजाने की दशा बहुत बिगड़ गई और सारे राष्ट्र की इज्जत जाने का समय आ पहुंचा। उस समय मिस्टर मार्गन ने अच्छी सहायता की और इस संकट से सरकार की रक्षा की। इस आर्थिक संकट का कारण यह था कि सोने के सिक्कों की मांग इतनी अधिक बढ़ गई कि सरकारी खजाने के सब सिक्के बाहर निकल गये। उस समय यूनाइटेड के प्रेसिडेंट ने अपने सब नीति निपुण मंत्रियों की सभा की और उस सभा में मिस्टर मार्गन को भी निमंत्रित किया। मिस्टर मार्गन ने ऐसी एक युक्ति सुझाई कि जो कानून के अनुकूल थी और जिससे सरकार की इज्जत भी रह गई। लाखों डालर अमेरिका से बाहर भेजे जाने वाले थे परंतु मिस्टर मार्गन की सूचना से यह संकट टल गया। सन् १९०७ में भी उन्होंने सरकार की इसी प्रकार सहायता की। इसके सिवाय, उन्होंने अपने देश की उन्नति के लिए और भी बड़े बड़े काम किये हैं। उन्होंने अमेरिका के व्यापारियों की अनेक संस्थाएं स्थापित कीं। यूनाइटेड स्टेट्स की, लोहे का व्यापार करनेवाली, "स्टील कारपोरेशन" नाम की सुप्रसिद्ध कंपनी, पेनसिलवेनिया की रेल्वे लाइन और कोयले का व्यापार करनेवाली कंपनी के झगड़े का निर्णय, तथा अमेरिका और यूरोप के बीच माल लाने लेजानेवाली जहाजों की संयुक्त संस्था इत्यादि बड़े बड़े कार्य आप ही ने किये हैं। मिस्टर मार्गन ही के बदौलत अमेरिकन संस्थाओं ने समुद्र पर की "ह्वाइट स्टार" तथा अटलांटिक महासागर की और और लाइन खरीद ली। जिस समय ब्रिटिश लाइन के स्वामियों ने मिस्टर मार्गन को, जहाजों से माल लाने लेजाने का अपना सारा व्यवसाय सौंप दिया उस समय इंगलैंड में बड़ी हलचल मच गई। वे लोग कहने लगे कि अब धीरे धीरे हमारे देश का सब व्यापार अमेरिकन लोगों के हाथ चला जाता है, संभव है कि कुछ समय के बाद उस देश के श्रीमान् व्यापारी हम लोगों को भी खरीद लेंगे। अमेरिका की भिन्न भिन्न रेल्वे कंपनियां अपनी लाइन पर का सब माल जहाजों के भिन्न भिन्न कंपनियों के मार्फत भेजा करती थीं। इसका परिणाम यह होता था कि अनेक कंपनियों को भिन्न भिन्न पूंजी का ब्याज तथा नौकरों के वेतन का व्यय इत्यादि बातों से माल ढोने में इतना अधिक खर्च पड़ता था कि एक देश से दूसरे देश को भेजा हुआ माल सस्ता होने के बदले बहुत महंगा हो जाया करता था। यह दशा देख कर मिस्टर मार्गन ने मुख्य मुख्य रेल्वे कंपनियों के प्रबंधकर्त्ताओं को एकत्र करके उनकी एक संयुक्त संस्था बना दी और यह नियम बना दिया कि रेल्वे लाइन पर से लाया हुआ माल किस जहाजी कंपनी के द्वारा बाहर भेजा जाय सो आपस की सलाह से निश्चित किया जाना चाहिये। इससे अनर्थकारक स्पर्धा बंद हो गई, धन और श्रम दोनों की बचत हुई और रेल्वे कंपनियों के हिस्सेदारों को बहुत नफा मिलने लगा। जहाजों के कंपनियों की संयुक्त संस्था का नाम "दी इंटरनेशनल मर्कन्टाइल मरीन कंपनी" था। उसके आठ डायरेक्टर अमेरिकन तथा पांच अंग्रेज थे। उस समय इस कंपनी से बड़ी कोई और दूसरी कम्पनी न थी। नये प्रबंध के अनुसार इस कंपनी के १४१ बड़े बड़े जहाज थे इन जहाजों में ११००००० टन माल भेजा जा सकता था। हम्बर्ग अमेरिकन कंपनी नाम की एक और छोटी सी कंपनी थी उसमें १२७ जहाज थे जो सिर्फ ६३०००० टन माल ले जा सकते थे। तात्पर्य यह है कि अमेरिका और यूरोप के बीच माल लाने के व्यवसाय का साठ सैकड़ा काम मिस्टर मार्गन ने अपने आधीन कर लिया। मिस्टर मार्गन के उन बड़े बड़े कामों की यथार्थ कल्पना हमारे देश के दरिद्री लोगों को होना कठिन है। परंतु जब हम इस बात की ओर ध्यान देंगे कि अमेरिका और यूरोप के व्यापारियों तथा व्यवसायों की पूंजी कितनी बड़ी होती है उनके व्यापार तथा व्यवसाय की मर्यादा कितनी बड़ी होती है, उनके व्यापार तथा व्यवसाय से कितना नफा होता है और यदि उन व्यापारों तथा व्यवसायों के प्रबंधकर्त्ताओं में दक्षता, तीव्र बुद्धि तथा दीर्घ उद्योग का उचित संयोग न हो तो कितना बड़ा नुकसान होता है जब हम उक्त सब बातों पर उचित ध्यान देंगे तभी हम मिस्टर मार्गन की व्यवसाय दक्षता की उचित प्रशंसा कर सकेंगे। उन्होंने अल्प समय ही में केवल यूनाइटेड स्टेट्स ही के नहीं, सिर्फ अमेरिका ही के नहीं, यूरोप के किसी एक देश ही के नहीं, किन्तु सारी दुनिया के अनेक बड़े बड़े देशों के बड़े बड़े व्यापार, व्यवसाय और बैंकों के सब सूत्र अपने आधीन कर लिये थे।

## आपका महत्त्व।

मिस्टर मार्गन सबसे बड़े और अत्यंत महत्त्व के आदमी कहे जाते हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिये अमेरिका के एक पत्र ने, कुछ वर्ष पहिले, चार कारण बताये थे, वे ये हैं—१ पहिला कारण यह है कि, रूस के बादशाह की जितने आदमियों पर और जितनी सत्ता है उससे अधिक लोगों पर और अधिक सत्ता मिस्टर मार्गन की है। यथार्थ में अमेरिका के प्रेसिडेन्ट से भी आपका प्रभाव अधिक है। २ दूसरा कारण यह है कि, उनके पास इतनी संपत्ति है कि जितनी आज तक किसीके पास न थी। अर्थात् यदि दुनिया के सब सोने की कीमत लगाई जाय तो उससे २०००००००००००० डालर अधिक मूल्य की संपत्ति उनके आधीन है। ३ तीसरा कारण यह है कि भिन्न भिन्न देशों की संपत्ति-स्थिति के विषय में सर्कारी कोष विभाग के प्रबंध-कर्ताओं को उचित परामर्श देने की उनकी योग्यता देख कर बड़े बड़े राजा और बादशाह सदा उनके खोज में रहा करते हैं। ४ चौथा कारण यह है कि वर्तमान समय में ललित कलाओं की सहायता करनेवाले जितने बड़े लोग हैं उन सब में आपका नम्बर पहिला है। इनके समान ललित कलाओं का आश्रयदाता और कोई नहीं है। आज तक आपने अनेक सार्वजनिक संस्थाओं को तथा आदमियों को तथा गुणी जनों को सहायता देने में जो धन व्यय किया है उसका अनुमान करना भी असम्भव है—केवल यही कहा जा सकता है कि इन उपयोगी कामों में आपने अगणित द्रव्य व्यय किया है। वही पत्र-कर्ता आपके विषय में और भी लिखता है कि, "रूसके ज़ार, अमेरिका के प्रेसीडेंट, इंगलैंड के राजा अथवा हिंदुस्थान के बादशाह के हाथ में जितने पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के कल्याण करने का अधिकार है उससे अधिक स्त्री पुरुषों और बच्चों के कल्याण करने का अधिकार मिस्टर मार्गन के हाथ में प्रत्यक्ष देखा जाता है। उनमें यह अद्भुत सामर्थ्य है कि केवल इच्छामात्र से वे दो देशों की लड़ाई एक क्षण में बंद करा दे सकते हैं, क्योंकि ऐसा कौन है जो आपकी इच्छा के विरुद्ध किसी देश को एक कौड़ी भी दे सके। जब किसी देश को ऋण लेना होता है तो आप ही की सलाह से द्रव्य दिया जाता है। यह न समझिये कि वे वर्तमान समय ही के एक बड़े साहूकार हैं किन्तु यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि आपके समान किसी दूसरे बड़े साहूकार का वर्णन पिछले इतिहास में कहीं नहीं पाया जाता। वे चाहे जिस कार्य की सहायता के लिये एक दिन में ५००००००० डालर का चंदा दे सकते हैं। दुनिया के ८३ बड़े बड़े देशों की आय एकत्र करने से उससे १०००००००० डालर अधिक आपकी संपत्ति है। सोलह जहाजी कम्पनियों के तथा चवालिस रेलवे कंपनियों के आप मुख्य स्वामी हैं। आपके प्रबंध से तीन सौ बड़े बड़े जहाज और तीस हजार रेलगाड़ियां चला करती हैं। इस पर से मालूम हो सकता है कि आपका कैसा प्रभाव है। आपकी आयु का बीमा एक अंग्रेज कंपनी ने २०००००००० डालरों के लिये लिया था। इससे अधिक कीमत का बीमा आजतक किसी अंग्रेज कंपनी ने किसीका नहीं लिया। महारानी विक्टोरिया का भी बीमा इससे कम कीमत का था क्योंकि वह सिर्फ २०००००० डालरों का था"।

## आपकी शारीरिक प्रकृति।

मिस्टर मार्गन बहुत ऊंचे-पूरे जवान थे आपकी उंचाई ६ फुट, छाती चालिस इंच और वजन २१० पौंड था। वे बहुत मजबूत, उत्साही और दृढ़ निश्चयी थे। उनका सिर बहुत बड़ा और चेहरा रुआबदार था। एक बार जो आदमी उनकी नजर से नजर मिला देता वह अपनी उमर भर कभी उनको न भूलता था। उनकी आंखों में विलक्षण तेज देख पड़ता था। उनके भव्य शरीर तथा तीव्र बुद्धि का प्रभाव सब लोगों पर एकदम हो जाया करता था। जब वे किसीसे बोलने लगते तो थोड़े ही समय में अपने प्रतिपक्षी से अपना कथन स्वीकार करा लिया करते थे। वे अपने प्रतिपक्षियों को हराने के लिए किसी गुप्त उपाय का अवलम्ब कदापि न करते थे। उनकी नीति खुल्लमखुल्ला और प्रकट रहा करती थी। उन्हें केवल अपनी बुद्धि का विश्वास था और केवल इसीके आधार पर वे अपने प्रतिपक्षियों के मतों का खंडन किया करते थे। वे यह बात भली भांति सिद्ध कर दिया करते थे कि हमारे ही मत का अवलम्ब करने से हमारे प्रतिपक्षियों का हित होगा। इस बात का अनुभव भी अनेक बड़े बड़े व्यापारियों, व्यवसायियों और साहूकारों ने कर लिया है कि मिस्टर मार्गन की सलाह से सचमुच लाभ हुआ है। इसके बाद बहुतेरे लोग, किसी प्रकार के कारणों की जांच न करते हुये केवल उन पर विश्वास रख कर उनकी सलाह सुन लिया करते और उसी अनुसार कार्रवाई किया करते थे। जब कभी मिस्टर मार्गन किसी मनुष्य के नाम पर कुछ शेयर (हिस्से) की रकम लिख दिया करते या जब कभी वे चंदे की कुछ रकम लिख देते तो वह रकम तुरत ही वसूल हो जाया करती थी। यदि कोई मनुष्य मिस्टर मार्गन की सलाह से न चलता तो वे उसे अपने किसी काम में शामिल नहीं करते थे। इससे उसी मनुष्य की बहुत हानि हुआ करती थी। तात्पर्य यह है कि मिस्टर मार्गन का

कथन अस्वीकार करने के लिए कोई भी तयार नहीं रहता था। ऐसे अनेक उदाहरण देखे गये हैं। कि स्वयं अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल मिस्टर मार्गन के विश्वास के जोर पर करोड़ों रुपये व्यापार में लगा दिये हैं। यद्यपि मिस्टर मार्गन की व्यवसाय-रीति बहुत कड़ी थी तथापि उनका अन्त करण भूतदया से भरा हुआ था। वे आलस बिलकुल पसंद न करते। वे अपने शरीर की भव्यता के मान से बहुत चपल थे। काम करते समय व्यर्थ विलम्ब एक क्षण के लिए भी वे न सह सकते। उनकी चपलता और शीघ्रता देख कर बहुतेरे लोग आश्चर्य चकित हो जाया करते थे।

## उनका कार्यक्रम।

मिस्टर मार्गन आठ बजे सोकर उठते, ग्यारह बजे बेंक में जाते और वहां चार बजे तक काम किया करते थे। वे हर एक काम बहुत शीघ्रता से करते, और इसी कारण उनका दिन भर का काम बहुत होता था। कचहरी के कमरे में पहुंचते ही वे अपने शिर का टोप खूंटी पर टांग देते टेबल के पास जाकर बैठते, सामने रक्खे हुए कागजात जल्दी जल्दी पढ लेते और काम खतम किया करते थे। काम करते समय यदि उन्हें, अपने हिस्सेदार अथवा सेक्रेटरी के साथ बोलना होता तो वे स्पष्ट आवाज से बोलते और जब कोई उस पर जवाब देता तो उसके मुख से दो तीन वाक्य निकलते ही वे उसके कहने का साराश समझ जाते और एकदम दूसरे की तरफ देख कर बोलने लगते। उन सब का समाधान वे थोड़े से शब्दों में करके अपना कहना उनसे मान्य करा लिया करते थे।

## उनके व्यापार करने की रीति।

व्यापार करने में उद्योग, बुद्धि और साहस चाहिये, परन्तु दैव के आधीन होकर द्रव्य का व्यापार करना और कोई विचार न करके किसी व्यापार में द्रव्य खर्च करना, उन्हें पसन्द नहीं था। उनकी निजी जायदाद १५००००००० डालर कीमत की होगी। उन्होंने यह धन विश्वासनीय व्यापार करके ही कमाया था। वे हुंडी समय पर चुका देंगे ऐसा सब को विश्वास कायम रखने के लिये वे बहुत होशियारी किया करते थे। मनुष्य के स्वाभाव के सम्बन्ध में उन का ज्ञान प्रशंसा करने योग्य था। यह बात उन्हें तुरन्त ही मालूम हो जाया करती थी कि कौन सा मनुष्य कितनी योग्यता का है और किस मनुष्य पर कितना विश्वास रख कर कौन सा काम किसको बताना चाहिए और उनकी परीक्षा इतनी ठीक हुआ करती थी कि उन्होंने जो काम जिस आदमी को सौंपा वह काम उसने फुर्ती से किया। एक दफे किसी आदमी की परीक्षा करने पर वे, उस पर विश्वास रख कर, उसको जवाबदारी का काम दे दिया करते थे और उनके उत्तेजन से वे काम अच्छी तरह से हुआ करते थे।

## उनके दिल-बहलाव के उपाय।

आनन्द से जहाज में बैठकर समुद्र में प्रवास करना उन्हें बहुत प्रिय था। इसके सिवाय उन्हें 'गोल्फ' का और समुद्र की मछलिया पकड़नेका खेल बहुत पसन्द था। वे कभी कभी तास भी खेला करते परन्तु खेल में बेइमानी करना उन्हें नहीं पसन्द था। इन तासों के खेलों में 'पोकर' नाम का एक खेल है और इस खेल में चालाकी ही की जीत होती है। इस खेल से केवल चालाकी की शिक्षा मिलती है इस लिए वे उसे कभी पसन्द नहीं करते थे। यह सुनने से उन्हें बहुत क्रोध आता था और यह अमेरिका का राष्ट्रीय खेल है। वे सदा यह कहा करते थे कि जो कोई इसको हमारा राष्ट्रीय खेल कहेगा वह गोली से मरवा डाला जायगा।

मिस्टर मार्गन ललित कला के बड़े प्रेमी थे। जो आदमी केवल द्रव्य कमाने के पीछे पड़ा रहता है वह प्राय रुक्ष मनोवृत्ति का हो जाता है। परतु मिस्टर मार्गन का आचरण उक्त नियम के विरुद्ध देख पड़ता था। उन्होंने अपरमित द्रव्य व्यय करके बड़े बड़े उपयोगी ग्रथ, चित्र तथा अन्यान्य कला-कुशलता के पदार्थों के नमूने इकट्ठे किये हैं। इस प्रकार का सग्रह बड़े बड़े देशों के सग्रहालयों में भी नहीं पाया जाता। वे मितभाषी थे इस लिये उनके मित्रों की सख्या भी बहुत कम है।

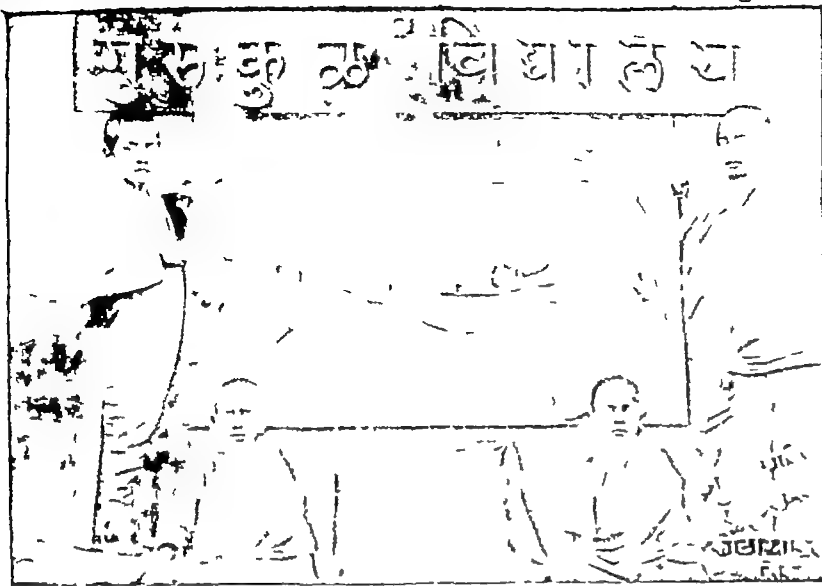
## उनकी उदारता।

यह एक साधारण नियम है कि जब कोई मनुष्य धन कमाने के पीछे पड जाता है और जब उसकी सारी दृष्टि धन ही की ओर आकर्षित हो जाती है और जब वह बहुत साधन इकट्ठा कर सकता है तब उसके हृदय की नम्रता, लीनता, दयार्द्रता बिलकुल नष्ट हो जाती है और ज्यों ज्यों उसकी धन तृष्णा बढती जाती है त्यों त्यों वह बहुत अनुदार और कठोर होता जाता है। परन्तु मिस्टर मार्गन उक्त नियम के लिये प्रत्यक्ष अपवाद के समान हैं। लक्ष्मी के अनेक प्रकार के विलासों ऐश्वर्यो और उपभोगों से उनका विवेक रत्तीभर भी नष्ट नहीं हुआ। वे न तो मदान्ध और कृपण हुए और न अनुदार तथा कठोर हुए। उनका हृदय सुविचारों से भली भाति सुसस्कृत बना रहा और उनका बर्ताव भी बहुत ही सभ्यता का रहा। जिस प्रकार लक्ष्मी ने उन पर कृपादृष्टि की थी उसी प्रकार उनकी उदारता भी सारे जगत में प्रसिद्ध है। न्यूयार्क के "लाइग इन आस्पिटल' की सोसाइटी को इमारत बनाने के लिये २७०००० पाउ, न्यूयार्क का व्यापार विषयक शिक्षा की एक शाला को १००००० पौंड, हावर्ड यूनिवरसिटी को २००००० पौंड, न्यूयार्क के एक गिर्जाघर के लिए १००००० पौंड—इस प्रकार आपने अनेक सस्थाओं को दान दिया है। इनके दान की रकम लाखों नहीं करोडों की गिनाई जा सकता है। इसमें भी विशेषता यह है कि यह दान, यह सत्कार्य आपने स्वतः कर्तव्य-बुद्धि ही से किया—आपने यह इच्छा कभी प्रगट न की कि इस सत्कार्य के द्वारा अपनी कीर्ति हो या हमारा कोई स्मारक बनाया जाय। हम जानते हैं कि जब हमारे हिन्दुस्थानी भाई कोई परोपकार का काम करते हैं तब उनकी यही इच्छा होती है कि हमारा कोई स्मारक चिन्ह बनाया जायगा, हमारे नाम की कोई मूर्ति बनाई जायगी, किसी मंदिर या इमारत के पत्थर पर हमारा नाम खोदा जायगा, हमारा चित्र सभा-भवन में रक्खा जायगा और यदि यह कुछ न हुआ तो सर्कार की ओर से कोई पदवी हमें दी जायगी या कोई सर्कारी अफसर ही प्रसन्न हो जायगे। स्मरण रहे कि, मिस्टर मार्गन ने इस प्रकार की नीच, स्वार्थ-बुद्धि से एक कौडी का भी दान नहीं किया। गीता शास्त्र के अनुसार उनका सब दान सात्विक कहा जा सकता है।

## उपसहार।

सन १८८८ तक मिस्टर मार्गन के विषय में बहुतेरे लोग कुछ जानते न थे, सिर्फ पिछले बीस पचीस वर्ष में ही वे उक्त श्रेष्ठ पद को पहुंच गये। उनके जीवन में आनुवंशिक सस्कारों, सामाजिक परिस्थिति और उच्चप्रकार के शिक्षा की बहुत सहायता मिली। उनकी शारीरिक प्रकृति और बुद्धिमत्ता भी असाधारण थी। इस लिये, कोई कोई कहते हैं कि उनको अपने व्यवसाय में बहुत सफलता प्राप्त हुई। यद्यपि यह बात सच हो तथापि इसमें सदेह नहीं कि वर्तमान स्थिति को अपने कार्य के अनुकूल कर लेना, परिश्रम करके उच्चप्रकार की शिक्षा प्राप्त करना, व्यवसाय के लिये कठिन उद्योग करना, पूर्व समय के अनुभवों को ध्यान में रखकर नूतन व्यवसायों में प्रवृत्त होना और यश की प्राप्ति के लिये यत्न करना कोई सहज काम नहीं है। सब लोग जानते हैं कि हिंदुस्थानियों में व्यवसाय का अकुर कठिनाई से पाया जाता है। यद्यपि हमारे देश में उद्योग धन्धा और व्यापार शिक्षा की बड़ी बड़ी शालायें नहीं हैं और यद्यपि हमारे देशभाइयों के हृदय तुच्छ विचारों और केवल शारीरिक सुखों ही की प्राप्ति करने में सदा निमग्न रहते हैं तथापि हम आशा और विश्वास करते हैं कि मिस्टर जान पियरपाट मार्गन के जीवन चरित्र से ये लोग अवश्य ही कुछ शिक्षा ग्रहण करने का यत्न करेंगे। हमारे श्रीमानों और धनिकों का तो यह कर्तव्य ही नहीं किन्तु आवश्यक धर्म भी है कि वे मार्गन जैसे विदेशी सत्पुरुषों के चरित्र से अपना और अपने देश का कुछ कल्याण करें। अब खेती-किसानी से सपत्तिमान होने का समय नहीं है। अब कूप के मेढक के समान सकुचित दृष्टि से काम नहीं चलेगा। अब धर्म की कोरी बातों से कोई लाभ न होगा। यह आचरण करने का समय है—काम करने का समय है—हल चल करने का समय है। हजारों उपायों के द्वारा व्यवसाय और व्यापार की शिक्षा प्राप्त करके अपने देश की सपति की वृद्धि करनी चाहिए। हमारा यह काम कदाचित एकदो बार में सफल न होगा तो उससे निराश न होना चाहिए।

# देवलाली गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के चित्र।







## श्रीजीवन्मुक्त स्वामी।



आपका जन्म पंजाब में हुआ। जिस वंश में आपका जन्म हुआ वह वंश उस प्रांत में भगवच्चिन्तन के लिये सुप्रसिद्ध है। भगवद्गीता में कहा ही है --

"अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।"

बाल्यावस्था ही से आपके अन्तःकरण में इस संसार की असारता प्रकट हो गई, जैसा कि गीता में कहा है —

"तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।"

अपनी आयु के दसवें वर्ष में ही आप पूर्ण विरक्त हो गये और अपने दो बालक मित्रों को साथ लेकर सद्गुरु का दर्शन तथा परमपद की प्राप्ति के लिये वन में चले गये। वहां साधुजनों के आश्रम में रह कर उनकी सेवा करने लगे। इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गये। इतने समय में आप सदा महात्माओं के मुख से ज्ञान की चर्चा सुनते रहे।

कुछ समय के बाद जिस मठ में हमारे बाल-स्वामी रहते थे उसके अधिपति, कुंभ के मेले में प्रयाग गये। उनके साथ आप भी गये। वहां से सब साधु-समाज के साथ आप गुरु गोविंद के जन्मस्थान का दर्शन करने पटना गये और वहां उपासना भक्ति में निमग्न हो गये। एक दिन आप प्रदक्षिणा कर रहे थे उस समय वहां एक आजानुबाहु दिव्य महात्मा पुरुष आ पहुंचे। उनको देखते ही आपका चित्त प्रसन्न हो गया—आपने तुरन्त उस महात्मा को दण्डवत प्रणाम किया। महात्मा ने रात भर आपको उपनिषदों का सारामृत पिलाया जिससे आप अमर और निःसंदेह हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा ही है —

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥"

हमारे स्वामीजी उसी समय से ज्ञानी हो गये। वहां से आप काशी को चले गये। मार्ग में 'निष्पक्षपात तत्त्वज्ञान' के कर्ता महात्मा कमरीबाबा के दर्शन-लाभ किये।

"छिद्यन्ते तस्मिन् दृष्टे परावरे।"

यही आपका विषय था।

इस समय स्वामीजी की आयु लगभग ५० ५१ वर्ष की होगी। आप संस्कृत, हिंदी, फारसी, मराठी, और गुजराती आदि अनेक भाषायें जानते हैं। आपने इन भाषाओं में, गद्य और पद्य के, कई ग्रन्थ भी लिखे हैं। अनुभव लहरी, विवेकमंजरी सिद्धान्तविनोद इत्यादि ग्रंथ पढ़ने योग्य हैं। स्वामीजी की वाक्शक्ति में ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि नित्य हजारों लोगों की भीड़, उनका उपदेश सुनने के लिये, एकत्र हुआ करती है। सम्प्रति आप महाराष्ट्र में पनवेल तहसील के उरण नामक ग्राम में विरक्ताश्रम नामक मठ में निवास करते हैं। आपके भव्य तथा तपस्वी शरीर का प्रभाव पाठकों को, ऊपर दिये हुए चित्र से मालूम हो जायगा।

# भूखों को अन्नदान।

इस समय अहमदनगर जिले में बड़ा भारी अकाल पड़ा है। बिना अन्न-पानी के मनुष्यों की तथा घास आदि बिना पशुओं की दुर्दशा हो रही है। और हजारों पशु मर रहे हैं। अकालपीड़ित लोगों की मदद के लिये बम्बई, पूना सरीखे स्थानों में चंदा इकट्ठा किया जा रहा है। यद्यपि यह बात इष्ट न हो कि अकाल सरीखी आपत्ति के आक्रमण से प्रजा तथा गूंगे जानवरों की प्राण रक्षा के लिये चंदा एकत्र करना पड़े, तौभी ऐसे सङ्कट समय की ओर ध्यान देकर स्वदेश बांधवों के प्राणों की रक्षा के लिये लोगों को यथाशक्ति सहायता करनी चाहिये। ऐसी ही आपत्ति के समय महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध दानशूर तथा स्वार्थत्यागी 'दामाजीपंत' ने हजारों भूखों को अन्नदान देकर परोपकार का बहुत बड़ा काम किया था। उन्हीं दामाजीपंत का संक्षिप्त चरित्र आज यहां दिया जाता है। इस चरित से विदित होगा कि उदार तथा परोपकारी महात्मागण दूसरों का दुःख दूर करने के लिये स्वयं कष्ट भोगने को किस प्रकार तयार रहते हैं।



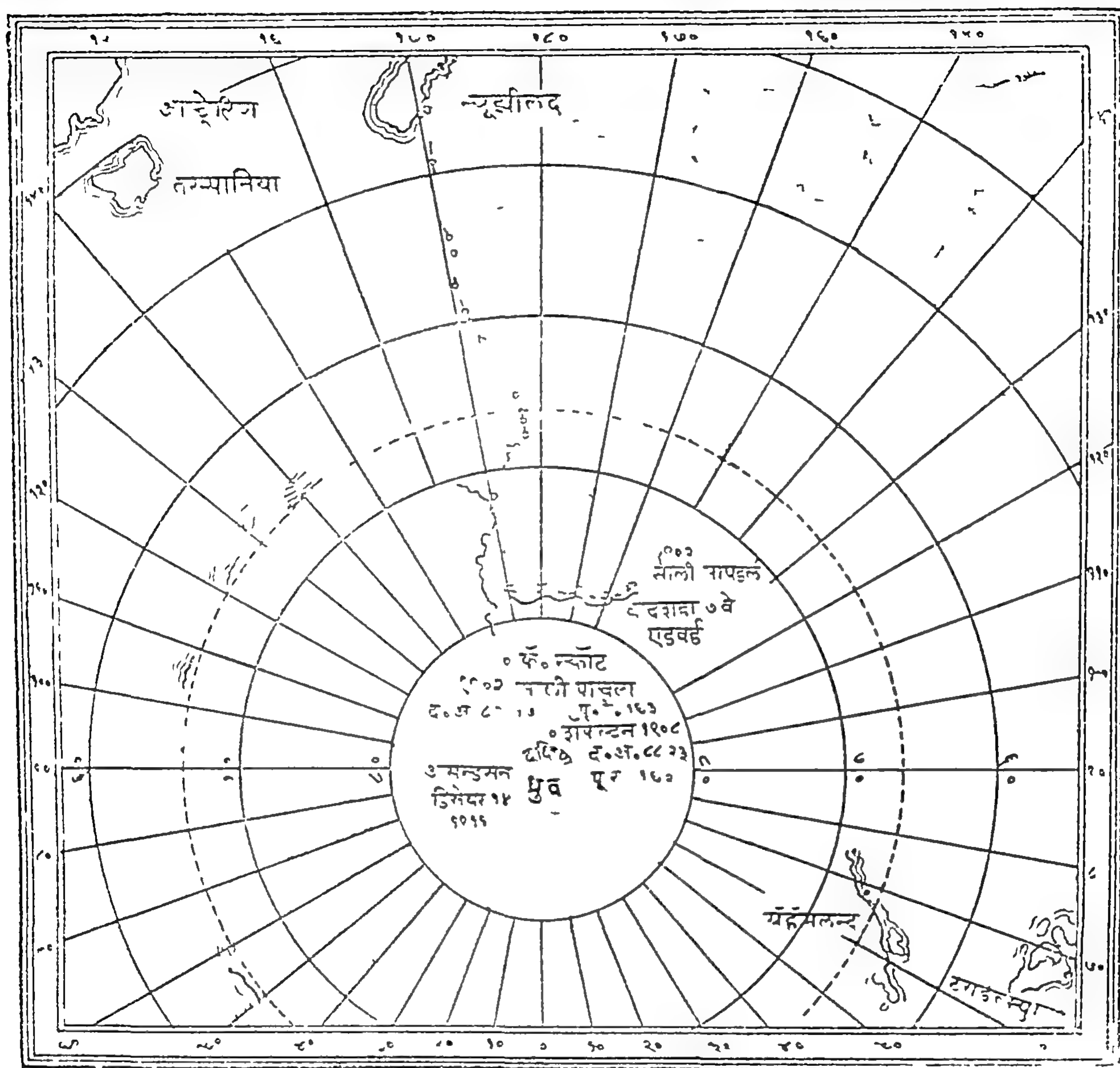
दामाजीपंत भिखारियों को अन्न बांटते हैं।

सन् १४६० ई० में महाराष्ट्र में एक बड़ा अकाल पड़ा था। उस समय दक्षिण देश ब्राह्मणी बादशाहत के अधिकार में था और उसकी राजधानी बेदर में थी। इस अकाल के समय, पंढरपुर के पास, मंगलवेढा गांव में दामाजीपंत नामक एक तहसीलदार रहता था। मुसल्मान बादशाह अनाज के रूप में सरकारी कर लिया करते थे। यद्यपि सन् १४६० ई० में अकाल पड़ा था तौभी पिछले वर्ष के कर की वसूली में हजारों खंडी अनाज मिला था जो सरकारी भंडार में भरा था। इस साल वर्षा के अभाव से अनाज न हुआ। गरीबों के पास एक दाना भी न रहा। धनवान् और बड़े बड़े रईसों ने अपने अनाज के भंडार नहीं खोले। व्यापारियों की तो खूब बनी। वे सस्ता अनाज महंगा होने के लिये मनाते ही रहते हैं। जितना तेज भाव चढ़े उतना ही उनके लिये अच्छा है। फिर भला, वे अपना बचा हुआ माल इस समय क्यों निकालते? ऐसी स्थिति में गरीब, मजदूरी पर रहनेवाले और मध्यम स्थिति के लोगों की अत्यंत शोचनीय दशा होगई। जिनके मकान में अनाज बहुत बचा था वे भी प्रगट रीति से न तो उसे बाहर निकाल सकते थे और न किसीको दिला सकते थे। चारों ओर हाहाकार मच गया। मंगलवेढे में दामाजीपंत के दरवाजे पर आगंतुकों तथा भिखारियों की भीड़ लग गई। आपका तो यह संकल्प था कि कोई भी अतिथि या भिखारी विमुख जाने न पावे। परंतु ऐसे भयंकर अकाल के समय यह संकल्प किस प्रकार सिद्ध होगा? घर का अनाज खतम होगया था, दान करते करते निजी कोठे का भी अनाज खतम हो गया, तब आप चिंता करने लगे कि अब लोगों का सङ्कट किस प्रकार दूर होगा। ऐसा विचार करते करते आपकी दृष्टि एकाएक सरकारी अनाज की कोठी पर पड़ी। तब तो आपके मन में कई परस्पर विरुद्ध-विचारों का झगड़ा शुरू होने लगा "देखो, लोग भूखे मर रहे हैं और यहां तो सरकारी कोठी में अनाज खूब भरा है, भला इस अनाज का उपयोग खाने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? अर्थात् यह सब अनाज बांट कर अब बिना व्याकुल होनेवालों के प्राण क्यों न बचाऊं! परंतु यह सब अनाज दे देने का अधिकारी कौन है? मैं तो बादशाह का एक नौकर हूं, मेरा काम तो हर साल ठीक समय-पर नियत किया हुआ कर वसूल करने, नया अनाज आने पर पुराना अनाज निकाल कर उसे बेचने, और उसकी जगह पर नये अनाज का संचय करने और बिक्री के धन की रसीद बादशाह के मुनीम को भेजने का है। इस साल नया अनाज वसूल की तौर पर नहीं आया, इसलिये पुराना अनाज नहीं बेचा जा सकता—नहीं नहीं, बेचने की सख्त मनाही है। मैं तो कायदा का गुलाम हूं परंतु यह कैसी विलक्षण बात है कि, मेरी आंखों के सामने गरीब-बिचारे लोग भूख से व्याकुल होकर प्राण छोड़ें और मैं अनाज के भंडार का प्रबंध करता रहूं। धिक् धिक्, पाषाण हृदया मनुष्य भी ऐसा काम न करेगा! अच्छा अब कुछ उपाय सोचना चाहिये। यहां की शोचनीय स्थिति का वर्णन लिख कर बादशाह से इस साल का बचा हुआ अनाज मुफ्त में बांटने का हुक्म मंगाना चाहिये, परंतु यह भी समझनीय नहीं दिखता क्योंकि पहिली बात तो यह है कि उत्तर ही ठीक समय पर न आवेगा और कदाचित आया भी तो 'नियत किये हुए नियमों में फेरफार कर नहीं सकते इसलिये अति खेद है' इत्यादि, इसी तरह आवेगा। भला जब ऐसी अवस्था है तब क्या मृगजल के पीछे पड़ कर व्यर्थ समय खोवें। जब कि यमराज प्रजा के प्राणों का संहार करने में लगा है, यह अनाज भी तो उन्हींके परिश्रम का फल है और उन्हींकी रक्षा के लिये वसूल किया है, तब यदि अकाल सरीखी आपत्ति में इसका व्यय न किया जाय तो फिर कौन से अच्छे काम में लाया जा सकता है। सब से पहिला कर्तव्य प्राण-रक्षा, फिर धन रक्षा और इसके बाद अन्य वस्तुओं की रक्षा करना है। ऐसे समय, जब कि लोग भूख से मर रहे हैं और इतना अनाज भरा हुआ है कि सबके प्राण बच सकते हैं तब, मेरा कर्तव्य क्या है? अस्तु, अब निश्चय होगया—क्षुधितातों की क्षुधा निवारण करना ही मेरा कर्तव्य है। भूख से प्राण छोड़नेवाले लोगों को आज पेट भर भोजन दिया जायगा, फिर आगे जो होगा सो देखा जायगा। राजाज्ञा भंग करने के अपराध में बादशाह मेरा शिर अवश्य काट डालेगा, परंतु क्या मेरी जान हजारों लोगों की जान से अधिक प्रिय है! कदापि नहीं। यदि मेरे प्राण पर सङ्कट आने से हजारों गरीब लोगों का प्राण बच सकता है तो मैं अपना प्राण अर्पण कर दूं, यही इस समय मेरा मुख्य कर्तव्य है। अब मेरा यही निश्चय है कि जो मनुष्य अन्न के अभाव से मृत्यु के पथ में पड़ा हो, उसे सरकारी भंडार से अनाज दिलाने की व्यवस्था की जाय। जब बादशाह मुझसे कैफियत मांगेंगे तब मैं निडर होकर साफ साफ उत्तर दूंगा कि भंडार में बहुत अनाज होकर प्रजा भूख से प्राण त्यागे यह मैं न देख सका। इसी लिये सब अनाज अकालपीड़ितों को बांट दिया। मेरा आचरण उच्च नीतितत्व की दृष्टि से योग्य तथा क्षम्य है। परंतु यदि बादशाह उसे उचित न समझें तो मैं सब प्रकार के दंड भोगने के लिये तयार हूं। मुझे तो मालूम पड़ता है कि ईश्वर की दृष्टि में मैं पापी नहीं हूं और मैं अपने प्राण-त्याग से हजारों लोगों के प्राण बचाने में समर्थ हुआ, इस विचार से मैं देह दंड की बिल्कुल पर्वा नहीं करता।" उक्त जवाब देने और होनेवाला दंड भोगने का पक्का निश्चय करके दामाजीपंत ने सरकारी भंडार में से हर एक भिखारी को अनाज बांटने का हुक्म दे दिया। इस हुक्म के सुनते ही सैकड़ों क्षुधा-पीड़ित भिखारियों के झुंड के झुंड, मानो हड्डी पसली के पुतले ही, दामाजी के द्वार पर उपस्थित हुए। जब वे भिक्षा ग्रहण कर दामाजीपंत को आशीर्वाद देते, मार्ग क्रमण करते चले जाते थे, उस समय की अपूर्व शोभा का वर्णन कौन कर सकता है? क्या ही अलौकिक धैर्य!! क्या ही पुरुषार्थी स्वार्थ त्याग!!

---

# ध्रुव-देश के आविष्कार का यत्न ।

इस विषय पर गत संख्या में जो लेख लिखा गया है उसमें कहा है कि पश्चिमी लोगों की गुणग्राहकता ही के कारण उधर इस प्रकार के अनेक साहस के कार्य किये जाते हैं। यहां जो नक्शा दिया गया है उससे आविष्कारकों के मार्ग, आविष्कृत स्थान इत्यादि भौगोलिक बातों का ठीक ठीक पता लग जायगा। इसके अतिरिक्त यहां पर इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि अब तक उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों का आविष्कार करने का किन किन लोगों ने यत्न किया और वह यत्न कहां तक सफल हुआ —




## उत्तर-ध्रुव के आविष्कारक ।

| नं० | यात्रा का सन् | आविष्कारक का नाम | कहां तक यात्रा की। | विशेष। |
|---|---|---|---|---|
| १ | १५०८ | [illegible] | [illegible] के पूर्व भाग का आविष्कार। | |
| २ | निश्चित नहीं | विलियम बेफिन | बेफिन [illegible] उत्तर अ० ७८° | |
| ३ | १५८५-८७ | जान डेविस | उत्तर अक्षांश ७२° ४१ | |
| ४ | १८०६ | विलियम स्कारसबी | उ० अ० ८१ | |
| ५ | १८२४ | पेरी | उत्तर अक्षांश ८२° ४० | स्लेजवाली गाड़ियों का उपयोग प्रथम इन्हीं ने किया। |
| ६ | १८४० | सर जॉन फ्रैंकलिन | [illegible] चैनल तक गया। | १८०८ में इनकी मृत्यु का समाचार मिला। |
| ७ | १८७० | कैप्टन नेयर्स | उत्तर अ० ८३ २० | |
| ८ | १८८१ | लॉकवुड | उत्तर अ० ८३° ३५ | |
| ९ | निश्चित नहीं | डी लांग | [illegible] ध्रुव के [illegible] रह गया। | जहाज बर्फ में फंस गया और सब लोग मर गये। |
| १० | १८९३ | नॅन्सन | उ० अ० ८६° १४ | एक भी मनुष्य की हानि नहीं हुई। |
| ११ | १९०० | कैप्टन केग्नि | उ० अ० ८६° ३४ | |
| १२ | १९०९ | कैप्टन पेरी (अमेरिका) | उत्तर ध्रुव में झंडा गाड़ा। | |

---

## दक्षिण-ध्रुव के आविष्कारक ।

| नं० | यात्राका समय। | आविष्कारक का नाम। | कहां तक यात्रा की। | विशेष। |
|---|---|---|---|---|
| १ | १७७३ | कप्टन कुक | दक्षिण अ० ७१°-१० | |
| २ | १८२९ | जोस वेडेल | दक्षिण अ० ७४°-१५ | |
| ३ | १८४२ | कॅप्टन रॉस | द० अ० ७८°-९ | व्हिक्टोरिया लैन्ड, एरबस पर्वत इत्यादि का शोध किया |
| ४ | १९०४ | कॅप्टन स्कॉट | द० अ० ८२°-१७ | सबसे अधिक में पहिले चढ़ाई। |
| ५ | १९११ | कॅप्टन अमंडसेन ( नारविजियन ) | दक्षिणध्रुव पर झंडा लगाया ता० १६।१२।१९११ | |
| ६ | १९१२ | कॅप्टन स्कॉट | दक्षिण ध्रुव को ता० १८ जनवरी १९१२ का पहुचा। | ता० ६ मार्च के पश्चात रास्ते में बर्फ के तूफान में मरा। |

ध्रुव देश के आविष्कारकों को इंग्लैंड के राजाओं ने केवल शाब्दिक उत्तेजन ही नहीं किंतु अच्छी सहायता दी है। सन् १८१८ में तीसरे जार्ज के शासन समय में सरकारी कायदे से यह प्रगट किया गया था कि जो आदमी यूरप के ईशान की ओर से चीन देश का रास्ता ढूंढ निकालेगा उसको बीस हजार पौंड और जो उत्तर ध्रुव के समीप ८९° अक्षांश तक यात्रा करके लौट आवेगा उसको पांच हजार पौंड इनाम के तौर पर दिये जायंगे। यह बात तो सब लोगों को विदित ही है कि स्वर्गवासी कॅप्टन स्कॉट की विधवा स्त्री को सरकार की पदवी देने का हुक्म हुआ है।

---

# महाराष्ट्र की एक उपयुक्त संस्था ।



## स्टूडंट्स सोशल क्लब के मंडली का चित्र ।

पूना में हायस्कूल के विद्यार्थियों ने शाके १८१७ विनय ... के लिए 'स्टूडंट्स सोशल क्लब' स्थापित की। इस क्लब का उद्देश नाटकादि मनोरंजक खेल करके उससे जो द्रव्य प्राप्त हो वह द्रव्य अनाथ बालकाश्रम आदि सार्वजनिक संस्थाओं की सहायता में लगाया जाय। इस संस्था का सब मंडली सुशिक्षित है। सात–आठ वर्ष से इस सभा ने मनोरंजक खेल से लोगों को प्रसन्न करने के सिवाय सार्वजनिक कामों में भी यथाशक्ति मदद की है। अब इस संस्था का विचार, एक छोटा सा मकान बनाकर एक स्थान में रहने का है। जिससे एक ही स्थान पर रह कर सार्वजनिक सेवा पूर्णतया कर सके। आशा है कि थोड़े ही दिनों में, ईश्वर की कृपा से तथा महाराष्ट्रीय धर्मियों की मदद से, उक्त संस्था की वृद्धि होगी। क्या हमारे देश के विद्यार्थी भी इस संस्था का अनुकरण करके मनोरंजन के साथ ही साथ सार्वजनिक कामों को मदद पहुंचाने के लिये तत्पर होंगे।

## [illegible] परिषद्।




अञ्जुमान ई इशायत तालीम-परतवाड़ा क्याप, एलिचपूर।

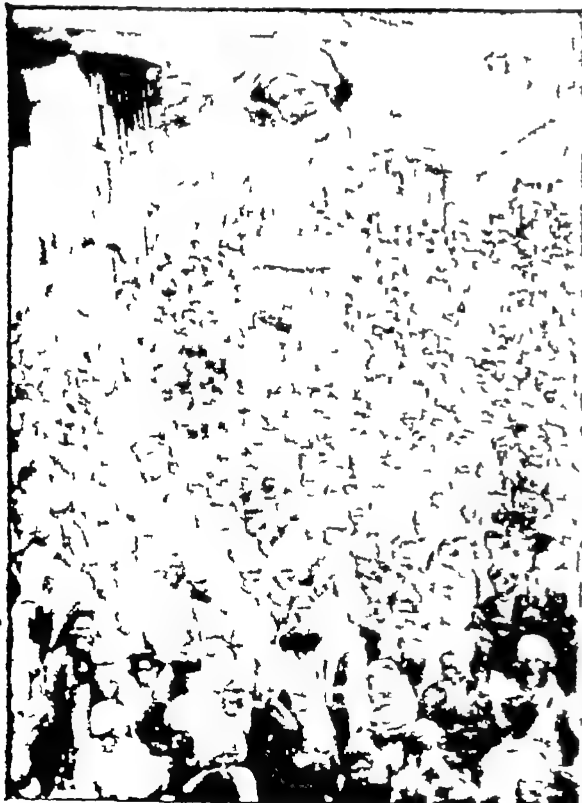
आज कल हमारे मुसलमान भाई अपनी उन्नति करने की बहुत यत्न कर रहे हैं। यथार्थ में यह प्रशंसनीय बात है। हमारी हार्दिक इच्छा यही है कि आपलोग शीघ्र सफलता प्राप्त करें। आपकी उन्नति से हमारी भी उन्नति होगी।

इस परिषद के सभापति मौलवी सैयद अब्दुर [illegible] साहब मध्यप्रदेश में गरीब मुसलमान बालकों की शिक्षा के लिये यत्न कर रहे हैं।



एम्० ए० रहीमखां-(परिषद के सेक्रेटरी।)

## अहमदनगर के सुप्रसिद्ध मुसलमान साधु।



[illegible] साहब की प्रेम यात्रा के [illegible] हैं। [illegible] हैं। देखिये, [illegible]



सोलापुर के जैन पहलवान।

# दिल्ली नगर-प्रवेश।

इम्पीरियल कैडेटकोर का जलूस।

पटियाला के महाराजा के हाथी और जलूस का दृश्य।

# गेहूं के पौधे की जन्मकथा।

हम लोग नित्य अनेक प्रकार के अनाज खाते हैं, जैसे गेहूँ, चना, चावल, जव, मूँग, और मटर इत्यादि। ये अनाज भोजन के काम में आते हैं। बहुतेरे लोगों ने बड़े बड़े खेतों में इनकी फसल देखी होगी, परन्तु इस बात का विचार बहुत ही कम लोगों ने किया होगा कि जब बीज जमीन में बोया जाता है तब यह कैसे उगता है, जमीन के भीतर यह कैसे फट जाता है, आरम्भ में उसकी जड़ कैसी होती है और पहले पत्तों से लेकर अन्त समय तक उस पौधे का पोषण किस प्रकार होता है। आज हम अपने पाठकों को गेहूँ के पौधे की जन्म कथा सुनाते हैं, अर्थात अनेक चित्रों के द्वारा यह बात भलीभाँति समझाने का यत्न किया जायगा कि जब से गेहूँ का दाना जमीन में डाला जाता है तब से अन्त समय तक उसमें कौन कौन से परिवर्तन होते हैं और इन सब परिवर्तनों को कितना समय लगता है।

आ० १        आ० २        आ० ३

आ० ४        आ० ५        आ० ६

आ० ७

आ० ८

यदि आप किसी किसान के खलियान में जाएँ और गेहूँ का एक दाना हाथ में उठा कर देखें तो आपको मालूम होगा कि उस दाने का एक छोर कुछ लम्बा और गोल सा है (देखिये आकृति नं० १) और उसका दूसरा छोर बिल्कुल चपटा है तथा उसके बीचोंबीच एक छोटा सा छेद है। आपको यह भी मालूम होगा कि उसके एक छोर में पतले पतले बालों का एक [illegible] सा लगा भी है। जब यह दाना सात आठ घंटे गीली जमीन में गाड़ कर रक्खा जाता है तब यह फूल कर बहुत बड़ा हो जाता है। यदि आप आकृति नं० २ और ३ को ध्यान से देखें तो मालूम होगा कि गेहूँ के दाने के ऊपरी हिस्से में बालों का एक छोटा सा छत्ता है और नीचे के हिस्से में कुछ फटी हुई दरार सी जगह है—इसी स्थान से दाने का अंकुर होता है और इसी से पौधा उगता है। इस अंकुर का जो भाग, गेहूँ दाने के छेद के आगे से, बाहर निकलता है उसको 'मुख' कहते हैं और जो भाग जमीन के भीतर चला जाता है उसको 'जड़' कहते हैं।

आ० ९

यदि आप गेहूँ के दाने के बालदार छोर की ओर सूक्ष्म रीति से देखें तो मालूम होगा कि उसी स्थान से फटी हुई जगह शुरू होती है। यह परमेश्वर की स्वाभाविक रचना है। यह अत्यन्त उपयोगी और महत्व की है, क्योंकि इसी बालदार छोर के स्थान में गेहूँ का दाना पानी लेता है और उस जल की आर्द्रता को, फटी हुई जगह से, नीचे की, जड़ की, ओर भेजता है। इस प्रकार उस दाने को जितनी आर्द्रता चाहिये वह सब उसी स्थान से मिलता रहता है। जब अंकुरस्थान से जड़ बाहर आने लगती है तब वे कैसी दिख पड़ती हैं सो आकृति नं० ७ से विदित होगा। सारांश यह है कि गेहूँ के दाने में एक ओर बालदार बालों की जगह, बीच की फटी हुई जगह और बालांकुर के पास वाली जगह इन सब को देखने से प्रतीत होता है कि परमेश्वर ने यह रचना गेहूँ के 'मुख' तथा 'जड़' को पानी पहुँचाने ही के लिये की है।

आ० १०

गेहूँ के दाने में जो मसाला होता है वही पहले पहल अंकुर का पोषण करता है, वही उस अंकुर से जड़ उगाता है, और जब तक कि उस जड़ में जमीन से अपना पोषक द्रव्य स्वयं लेने की शक्ति नहीं आ जाती तब तक वही मसाला उसको पोषक द्रव्य दिया करता है। इस मसाले को अल्बुमेन कहते हैं जो [illegible] से बिल्कुल भिन्न पदार्थ है। यथार्थ में यह अल्बुमेन गेहूँ के लिये वैसा ही काम करता है जैसा कि अंडे के भीतर का [illegible] अंडे से बच्चा निकालने के लिये [illegible] अंडे से बच्चा निकलने के पहले [illegible] करती है।

बीज उगने के लिये [illegible] और [illegible] आवश्यकता है। इसके [illegible] जमीन की आर्द्रता से पानी मिलता है। [illegible] यह सिद्ध किया है कि

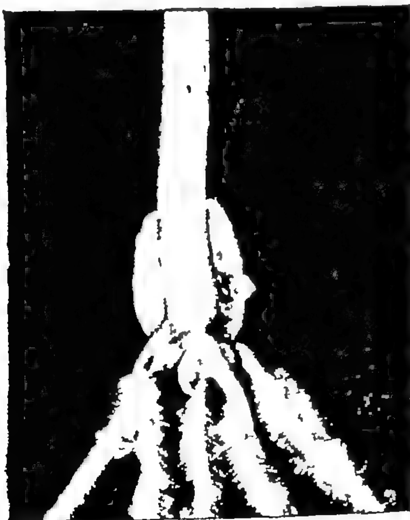
सेंटिमीटर नामक उष्णतामापक यत्र में जब पारा पाचवें अश के नीचे रहता है तब गेहू का दाना उगने लगता है। फैरिनाइट नामक उष्णतामापक यत्र में यह पारा ४० अश पर होना चाहिये। यदि इससे भी अधिक उष्णता हो तो पौधे की बाढ शीघ्रता से होगी। तात्पर्य यह है कि गेहू के दाने को उगने के लिये जो न्यूनाधिक समय लगता है वह उष्णता पर अवलम्बित रहता है। ४६८ घंटों तक की गई परीक्षा का फल नीचे दिया जाता है—इस परीक्षा के समय फैरिनाइट उष्णतामापक यत्र के अनुसार उष्णता का अश ३८ से ६० तक था। इतने समय तक यदि गेहू का दाना गीली रेत मे गाड दिया जाय तो उसका पहला पत्ता बाहर निकल आता है और पौधे का मुह खुलने लगता है। इस विषय का पूरा पूरा हाल इस नक्शे से मालूम हो जायगा —

| दिन | दोपहर की उष्णता | रात की उष्णता | स्थिति दर्शक आकृति। |
|---|---|---|---|
| १ | ६० अश | ४९ अश | आकृति न० १ |
| २ | ६० ,, | ४४ ,, | ,, ,, ४ |
| ३ | ४५ ,, | ५० ,, | ,, ,, ५ |
| ४ | ५३ ,, | ४५ ,, | ,, ,, |
| ५ | ५० ,, | ६५ ,, | ,, ,, ६ |
| ६ | ४९ ,, | ४६ ,, | ,, ,, ७ |
| ७ | ५० ,, | ४५ ,, | ,, ,, ८ |
| ८ | ५० ,, | ४८ ,, | ,, ,, , |
| ९ | ५२ ,, | ५० ,, | ,, ,, , |
| १० | ५३ ,, | ४४ ,, | ,, ,, , |
| ११ | ५१ ,, | ४४ ,, | ,, ,, , |
| १२ | ४७ ,, | ६४ ,, | ,, ,, ९ |
| १३ | ४९ ,, | ४२ ,, | ,, ,, , |
| १४ | ४५ ,, | ४३ ,, | ,, ,, , |
| १५ | ५२ ,, | ५० ,, | ,, ,, १० |
| १६ | ५४ ,, | ६० ,, | ,, ,, ११ |
| १७ | ५४ ,, | ४७ ,, | ,, ,, , |
| १८ | ५० ,, | ४३ ,, | ,, ,, , |
| १९ | ४५ ,, | ३८ ,, | ,, ,, , |
| २० | ४२ , | | ,, , १२ |

यह परीक्षा दोपहर के ठीक १२ बजे शुरू की गई। दूसरे दिन दोपहर के समय ( अर्थात् दाने को गीली रेत मे रखने के २४ घंटे बाद ) बीजाकुर के ऊपर का पतला भाग फट गया और उसके चपटे भाग में एक फटी सी लकीर पड गई ( आकृति न० ४ )। तीसरे दिन दोपहर के समय जड की रक्षा करनेवाला आच्छादन बाहर देख पडने लगा ( आकृति न० ५ )।



आ० ११



आ० १२

पाचवे दिन दोपहर के समय जड के ऊपर का सब आच्छादन अच्छी तरह देख पडने लगा और बीजाकुर पर का फटा हुआ हिस्सा कुछ ढीला हो गया और जड तथा कुल्ले के छोर आच्छादन के दोनों ओर से अपना छोटा सा सिर बाहर दिखाने लगे ( आकृति न० ६ )। बहुधा यह देखा गया है कि इस समय पौधे के ऊपरी हिस्से की बाढ नीचे के हिस्से की अपेक्षा कुछ अधिक हुआ करती है। परन्तु इसको सच्ची बाढ नहीं समझना चाहिये क्योंकि छठवें दिन दोपहर के समय ऊपर के हिस्से की बाढ ज्यों की त्यों बनी रही और नीचे के हिस्से ( जड ) की बाढ बहुत शीघ्रता से होती हुई देख पडी ( आकृति न० ७ )। इतना ही नहीं किंतु यह भी देख पडेगा कि उस जड के साथ और भी दो जडों के सिरे बाहर निकलने का यत्न कर रहे हैं—यही पौधे के जड़ों की पहली जोडी है।

अब हम मध्य भाग की ओर विशेष ध्यान देकर देखेंगे। यह बहुत ही शीघ्रता से बढती चली जाती है। बीजाकुर को जितनी आर्द्रता की आवश्यकता होती है वह सब इसी मुख्य जड के द्वारा पहुचाई जाती है, इसी तरह पानी में मिले हुए रासायनिक द्रव्यों का पोषक खाद्य भी इसी मुख्य जड के द्वारा पौधे को मिला करता है, अतएव ज्योंही और और जडें बाहर निकलने लगती हैं त्योंही यह मुख्य जड जमीन के भीतर घुसने का यत्न करने लगती है और इस जड से अनेक छोटी छोटी शाखायें निकलती जाती हैं जो मुख्य जड को आर्द्रता तथा पोषक द्रव्य पहुचाने की सहायता करती हैं। इन्हीं शाखाओं के योग से जमीन के भीतर प्रवेश करने के लिये मुख्य जड को ताकत मिलती है। जमीन के भीतर की ये सब छोटी बडी जडें जमीन के बाहर अपना सिर उठानेवाले छोटे से पौधे को तूफान और हवा के झकोरों से बचाती हैं।

मुख्य जड मे चिपके हुए जो छोटे छोटे ततु होते हैं उनका काम बहुत महत्त्व का है। इन ततुओं के सिरे कुछ प्रवाही तथा पारदर्शक होते हैं। इनमें कुछ ऐसा विलक्षण और स्वाभाविक ज्ञान होता है कि वे अनेक अपघातों तथा सकटों से पौधे की रक्षा किया करते हैं। उक्त ततुओं के सिरे जमीन के भीतर मिट्टी के छोटे छोटे कणों में घुसते चले जाते हैं और जब किसी कठिन पदार्थ की रुकावट होती है तो वे उसके चारों तरफ लिपट जाते हैं और फिर भी आगे की ओर बढते हैं। इन ततुओं की यह स्वाभाविक क्रिया को देख कर उत्क्रमणवादी डार्विन साहब ने इन जडों की तुलना चूहे के साथ की है जो कि अपने रहन के लिये जमीन मे बिल खोदने का काम किया करता है। परीक्षाओं से यह बात भी पाई गई है कि इन-ततुओं के सिरे में पसन्द या नापसन्द करने की भी शक्ति है। देखिये, इन ततुओं के इर्द-गिर्द पानी में मिश्रित अनेक प्रकार के रासायनिक पदार्थ पडे रहते हैं, परन्तु ये ततु उन सबका स्वीकार नहीं करते, जिन पदार्थों की उन्हें आवश्यकता होती है उन्हींका स्वीकार करते हैं और जिनकी आवश्यकता नहीं होती, त्याग कर देते हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक गमले में एक गेहू का दाना और एक मटर का दाना बो दिया जाय तो मटर की जडों के ततु जमीन के भीतर से केवल चूने के अश का स्वीकार करेंगे और गेहू की जडों के ततु उस चूने का त्याग करके रेत में मिले हुए सीलिका नामक पदार्थ ही का स्वीकार करेंगे। यही सीलिका नामक पदार्थ गेहू के डठुओं में ऐसी शक्ति उत्पन्न करता है कि वे हवा से अपनी रक्षा कर सकते हैं। यह पदार्थ इन डठुओं मे इतना अधिक सचित होता है कि यदि वह पोटाश के साथ पिघलाया जाय तो उससे काच का एक मणि भी तयार हो जायगा। मटर का पौधा सीलिका नामक पदार्थ का स्वीकार नहीं करता, इसलिये उसमें सीधा खडे रहने की ताकत नहीं होती। वह किसी दूसरे पदार्थों के सहारे से खडा रहता है। इस पर से यह बात सिद्ध होती है कि पौधों की जडों के ततुओं मे अपने काम की वस्तु चुन कर ले लेने की तथा बेकाम वस्तु का त्याग कर देने की विलक्षण शक्ति है।

यह न समझिये कि, पौधे के लिये पोषक द्रव्य ग्रहण करने का काम केवल मुख्य जड ही को करना पडता है, इसके अतिरिक्त दो बाहरी जडों की एक और जोडी होती है ( आकृति न० ७ ) जो शीघ्र ही जमीन के भीतर घुस जाती है और जिनके ऊपर मुख्य जड ही के समान अनेक ततु उत्पन्न होते हैं जो मुख्य जड ही का सा काम किया करते हैं। गेहू के पौधे की यह स्थिति सातवें दिन दोपहर के समय देख पडने लगती है ( आकृति न० ८ )। इस आकृति पर से आप लोगों के मन मे यह बात सहज ही आजायगी कि पौधे की बाढ जमीन के ऊपर की ओर बहुत ही कम हुई है। ज्यों ज्यों ऊपर लिखी हुई तीनों जडों के सिरे जमीन के भीतर घुसते चले जाते हैं और उनके ततुओं की शाखायें अधिकाधिक निकलती चली जाती हैं त्यों त्यों पौधे को अधिकाधिक पोषक द्रव्य मिलता जाता है और वह सशक्त होता जाता है। इसके बाद जमीन के ऊपर का पीले रग के पौधे का हिस्सा भी शीघ्रता से बढने लगता है। यही भाग उन पत्तों की रक्षा करनेवाला कवच है जो भीतर से बाहर की ओर बढता चला जाता है। पौधे के पत्ते जब तक भीतर ही रहते हैं, पौधे में यह शक्ति नहीं होती कि उसके पत्ते बाहर निकल सकें, अतएव इस अवस्था में यह भाग केवल ऊपर की ओर बढता रहता है और तीनों जड जमीन के भीतर घुसती रहती हैं।

बारहवें दिन दोपहर के समय ( आकृति न० ९ ) और भी कुछ परिवर्तन देख पडता है। इस छोटे से पौधे की मजबूती के लिये और भी एक बाहरी जडों की जोडी उत्पन्न होती है। पहले पहल जडों के सिरे देख पडते हैं इसके बाद वे सिरे जमीन के भीतर घुसने लगते हैं और पूर्वोक्त वर्णन के अनुसार वे अपना अपना काम करने लगते हैं।

पद्रहवें दिन दोपहर के समय ( आकृति न० १० ) पौधे की रक्षा करने के लिये शीघ्रता से बढनेवाली पाच बडी बडी जडें हो जाती हैं और वे सब मिल कर जमीन के भीतर से उचित पोषक द्रव्य चुन कर पौधे की बाढ करने में तत्पर हो जाती हैं।

इसी समय पहला हरा पत्ता पौधे के ऊपरी हिस्से मे बाहर निकलता है ( आकृति न० १० अ )। यह पत्ता हर एक घटे में प्रकाश की ओर अधिकाधिक बढता हुआ देख पडता है।

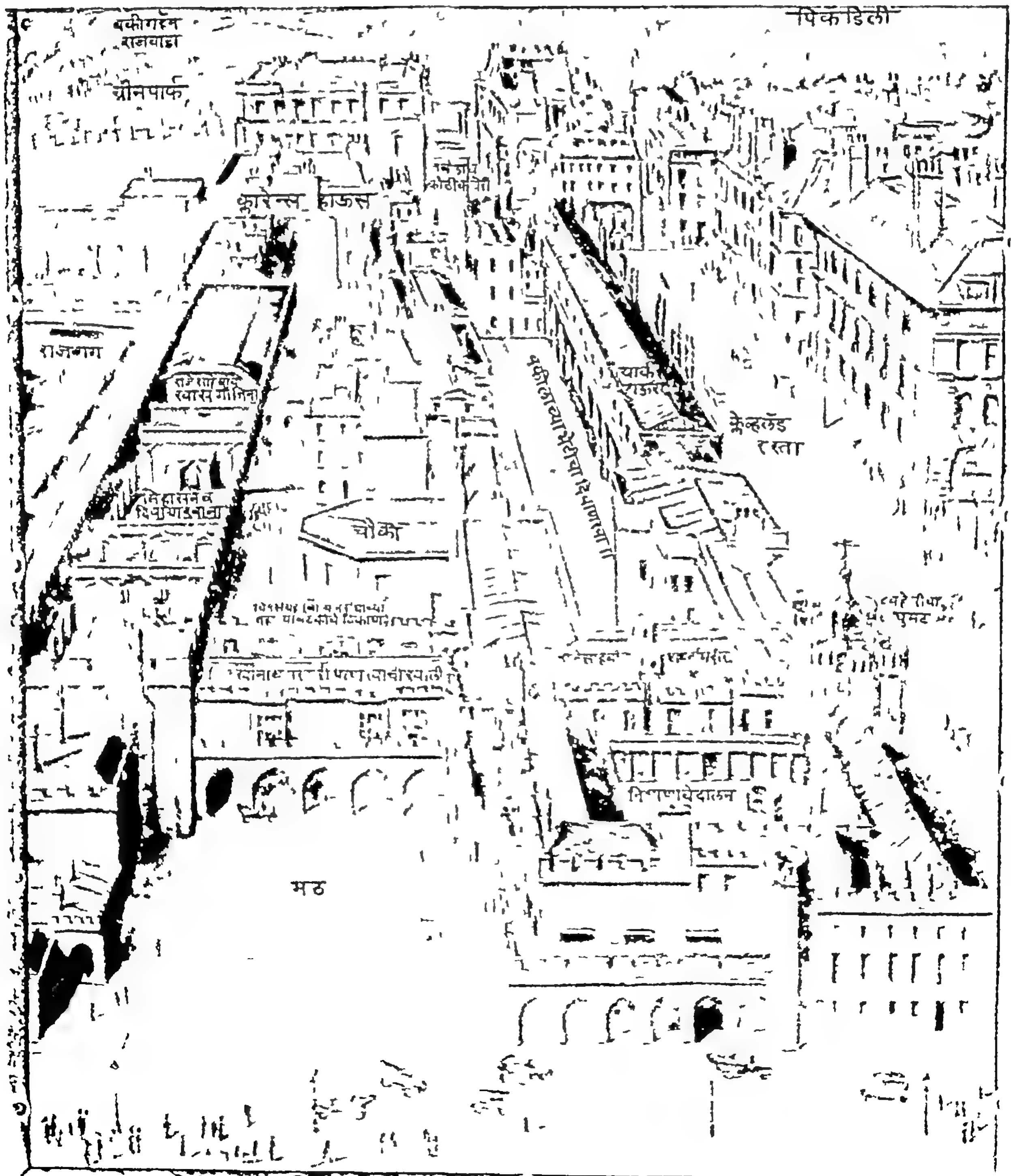
सोलहवें दिन दूसरे पहर के समय यह हरा पत्ता पूरी तरह बाहर निकल आता है परतु वह अच्छी तरह खुला नहीं रहता ( आकृति न० ११)।

बीसवें दिन दोपहर के समय उस पौधे में कुल छै जडें हो जाती हैं और पत्ता भी पूर्ण रीति से खुल जाता है ( आकृति न० १२ )। अब समझना चाहिये कि पौधे का जन्म हो गया।

सराश यह है कि गेहू का पौधा आरम्भ ही से अपनी परिस्थिति के अनुसार बढता जाता है। जब गेहू का एकाध दाना भूमि पर गिर कर, पानी मे मिल कर, जमीन के भीतर चला जाता है तब उसके चारो तरफ रेत और मिट्टी के छोटे-बडे ककड पडे रहते हैं। ऐसी अवस्था मे जब उस पौधे की जडें और ऊन के हिस्से बढने लगते हैं तब, यद्यपि उनके मार्ग में अनेक विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं तथापि वे किसी न किसी प्रकार अपने जीवन का मार्ग, आक्रमण करते चले ही जाते हैं। इस बात की आवश्यकता नहीं है कि, पौधे की जडों को जमीन के भीतर घुसने के लिये, दाना सीधा ही जमीन पर डाला जाय। इसका परिणाम यह होता है कि आरभ मे, कुछ समय तक, गेहू के दाने को, जमीन के भीतर ही भीतर बहुत कठिन सग्राम करना पडता है। जब वह इस आरभिक सग्राम में कृतकार्य हो जाता है तब कहीं वह जमीन के बाहर निकलने मे समर्थ होता है। जडों के ततुओं के सिरों मे ऐसा कुछ अद्भुत स्वर्दशान होता है कि, जब उनके सामने कोई कठिनाई आ पडती है तब, वे तुरत ही उसको टालने का प्रयत्न करने लगते हैं। यही कारण है कि जब हम गेहू के दाने को जमीन में डाल कर उसके उगने की क्रिया का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं तब हमको उसके पौधे का जडों की भिन्न भिन्न अवस्था देख पडती है। इस पर से पाठकगण यह जान सकते हैं कि पौधे की भिन्न भिन्न अवस्थाओं के चित्र निकालने में कैसी कठिनाई होती है।

इग्लैण्ड मे गेहू के पौधे का जन्म बीस दिन में होता है। चूकि हिंदुस्थान की हवा गर्म है, इस देश के उष्ण प्रदेशों में बहुत ही कम समय लगता है।

## लडन के सेन्ट जेम्स पॉलिस में बादशाहो की सधि के विषय मे बात-चीत करने की जगह।





## मदालसा और ऋतुध्वज।

[१]
कैसा यह उद्यान सुहाता,
ऐसा और नजर नहिं आता।
रम्य भूमि है, तरु सुन्दर है,
शोभा देते हुए गुल्म हैं॥

[२]
यह गन्धर्व-सुता गुणवाली,
बड़ी निराली सजधजवाली।
मदालसा है सुछवि बनाये,
कुसुमगुच्छ कर में लटकाये॥

[३]
भोली-भाली इसकी सूरत,
सुन्दरता की इसकी मूरत।
मन भीतर चुभ-चुभ जाती है,
बाहर निकल नहीं पाती है॥

[४]
दूसरा कर कपोल पै रख कर,
देख रही है तिरछे दृगकर।
मोहित हुई ऋतुध्वज नृप पर,
सुनती उसके वचन मनोहर॥

[५]
खड़ी हुई है कान लगाये,
मन में अतिशय मोद बढ़ाये।
मन्द-मन्द मुसकाती जाती,
निज अनुराग मनो दिखलाती॥

[६]
उधर ऋतुध्वज धीर भूपवर,
मन्त्रमुग्ध से हुए इसी पर।
सीने पर रख कर अपना कर,
कहता है शुभ वचन मधुरतर॥

[७]
दोनों ने दोनों को जाना,
दोनों ने कर लिया ठिकाना—
दोनों के मन में, सुखदायी—
उठी उमंगें और सवाई॥

[८]
दोनों ने दृढ़ सोच लिया जब,
हो गन्धर्व-विवाह गया तब।
एक स्त्री ने दी सुवधाई,
रमणीयता प्रकृति में छाई॥

[९]
अहो चांदनी छिटक गई है,
मन्द मन्द बस पवन बही है।
समय मनोहर सुहावना है,
हुआ दृश्य मन लुभावना है॥

श्रीगिरिधरशर्मा।

---

## भारत में दान का सुधार।

इसमें संदेह नहीं है कि भारतवर्ष में दान का विषय बहुत ही बिगड़ा हुआ है। शास्त्रों में विद्या-दान सब से उत्तम कहा गया है, चूंकि साधुओं, ब्राह्मणों और अतिथियों का कर्तव्य विद्या का प्रचार और देश-सेवा था, इसलिए ये ही लोग दान के सुपात्र माने गये हैं। जब तक इस देश में विद्या की उन्नति रही तब तक ये महात्मा लोग विद्वान् होकर अपने सत्य कर्तव्य का पालन करते रहे। परन्तु विद्या के लोप होजाने से ये लोग भी मूर्ख बन कर अपने कर्तव्य को भूल गये और केवल नाम के साधु, ब्राह्मण रह गये। गत १९०१ की मनुष्यगणना के अनुसार ५२ लाख मनुष्य साधु या भिक्षुक बतलाये गये हैं जैसे कि साधारण लोगों में राजा और रईस हैं वैसे ही इस साधुमण्डली में भी बहुत से धनमान हैं, जिनकी आमदनी लाखों रुपये साल की है। जैसे गया के महंत की सालाना आमदनी एक लाख से ज्यादा है और लखनऊ के साधु, हजारी बाग के रियासत की, आमदनी साढ़े तीन लाख रुपया सालाना है। इसी तरह भारतवर्ष में करीब दो करोड़ ब्राह्मणों की भी गणना है। इन में से फी सैकड़ा ५ ऐसे हैं जो स्वयं व्यापारादि उत्तम रीति से, धन उपार्जन कर, आजीविका करते हों। यदि ४) फी मनुष्य के माहवारी-पोषण का खर्च हो तो ८ करोड़ रुपया माहवारी ब्राह्मण लोग केवल दान में लेते हैं। इसके अतिरिक्त ५२ लाख साधुओं के पोषण में भी करीब २ तीन करोड़ रुपया माहवार हिन्दुजाति खर्च करती है क्योंकि साधु लोग पोषण के अलावा भारतवर्ष के तमाम तीर्थों में, प्राय रेलगाड़ी के द्वारा, भ्रमण करते हैं तथा तमाकू, गांजा, चरस और अफीम आदि नशाओं के सेवन में भी लिप्त रहते हैं। इस लिये हर एक साधु पर ६) माहवार से कम खर्च नहीं पड़ता, इस तरह कुल दस करोड़ रुपया हर महीने भारतवर्ष का दान में खर्च होता है। अब प्रश्न यह है कि दस करोड़ रुपया माहवारी दान के बदले हिन्दूजाति को कितना लाभ पहुंचता है। इन साधु और ब्राह्मणों में सैकड़ा पीछे एक भी अपने शास्त्रोक्त कर्तव्य का पालन अर्थात् विद्या की उन्नति, स्वदेशी वस्तु का प्रचार और देश-भक्ति नहीं करता। इनमें साधु और ब्राह्मणों का इतना दोष नहीं है जितना कि दान देनेवाले लोगों का, क्योंकि कुपात्रों और मूर्खों को दान देना मानों इन लोगों को सुस्त और दुराचारी बनाना है और इसी कारण कुपात्रों और मूर्खों को दान देनेवाले भी पाप के भागी हैं, क्योंकि यदि दान देनेवाले इन मूर्ख साधुओं और ब्राह्मणों को दान न देते तो कदापि यह लोग दुराचारी न होते। ये लोग प्राय भिक्षा मांगते समय लोगों को बहुत तंग करते हैं। यूरोप और अमेरिका आदि सभ्य देशों में यह नियम है कि भीख मांगनेवाले को ६ महीने की कैद होती है परन्तु भारतवर्ष में कानून के द्वारा भीख मांगना बन्द कराने का यत्न कराना बहुत ही बुरा है, क्योंकि दान का विषय एक धार्मिक बात है इसलिए धर्म की बातों में सरकार कभी दखल न देगी। इसके सिवाय यदि भीख मांगना, अन्य सभ्य देशों की तरह, जुर्म माना जायगा तो पुलिस को, जो अभी मूर्ख और असमर्थों पर बहुत जुल्म कर रही है। इसको साधुओं और ब्राह्मणों पर जुल्म करने का अधिक मौका मिलेगा।

इसके सिवाय भारतवर्ष में भिक्षुकों की गणना ज्यादा बढ़ने का कारण यह भी है कि इस देश में सब प्रकार के लाभदायक व्यापार और कारखाने बिलकुल बंद होगए हैं। विदेशी व्यापारियों ने यहां के सब कारखानों और लाभदायक व्यापारियों को नष्ट कर दिया है, जिससे कि लोग या तो नौकरी करते हैं जो कि शास्त्रों में सब से नीच मानी गई है क्योंकि लिखा है— "उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, निकृष्ट चाकरी, भीख निदान।" या भीख मांगकर पेट-पालन करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि यहां के महाराजे और रईस अन्य देश की बनी हुई चीजों के गुलाम बन गए हैं और इसी कारण यहां से हर साल दो सौ करोड़ रुपया अन्य अन्य विदेशी लोग बाहर ले जाकर इस भारतवर्ष को निर्धन बना रहे हैं। अब वही लोग धर्मात्मा या धर्म के रक्षक हैं जो केवल स्वदेशी चीजों को बर्तते हैं, ताकि इस देश में फिर सब प्रकार के कारखाने स्थापित हो जावें, जिससे सब लोगों को आजीविका प्राप्त हो और फिर हमारा सारा दान विद्या की उन्नति, अर्थात् ग्राम ग्राम में पाठशालायें और हर एक मंदिर तथा धर्मशाला में पुस्तकालय और समाचारपत्रालयों के खोलने, में लगे, ताकि फिर भारतवर्ष जापान तथा अन्य अन्य देश और जातियों की तरह स्वतंत्र, धनमान, सभ्य और धर्मात्मा बने।

टहलराम, गंगाराम जमींदार,
डेराइस्माइलखां।

# श्रीरामनवमी।

चैत्र के महीने में नये वर्ष का आरम्भ होता है और आनन्ददायक वसन्त ऋतु की बहार रहती है। इसलिए यह सब लोगों को सुखदायक होता है। इतने पर भी इसी महीने में रामनवमी "हनुमज्जयंती" और "गौरी-स्थापना" इत्यादि अनेक उत्सवों के कारण सार हिन्दुओं को यह मास अति उल्लास-जनक जान पड़ता है। हिन्दू-धर्म का विशिष्ट लक्षण यह है 'उपास्यानामनियम' और उसकी सत्यता नाना पर्वों को रुचि पर से स्पष्ट दीख पड़ती है। यह बात सब लोगों को विदित है कि कोई भी हिन्दू चाहे वह किसी देवता का उपासक क्यों न हो परन्तु वह रामनवमी के दिन श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन, और उनकी पुण्य-पावन कथा का श्रवण तथा मनन अवश्य करता है। इसमें सन्देह नहीं कि औत्सुक्यपूर्ण बालवयस में अथवा महेतुकाचरण विशिष्ट तथा आशामय तरुण अवस्था में तो लोग रामकथामृत का पान करने के लिए तत्पर रहते ही हैं परन्तु वैराग्य युक्त तथा विरक्तमनस्क वयोवृद्ध आदमी भी इस कथामृत के लिए अत्यन्त उत्सुक बने रहते हैं। अब यदि इसकी मीमांसा की जाय कि रामचरित में कौन सी बात है जिससे, छोटे से बड़े तक सब लोग मोहित हो जाते हैं तो उससे विशेष लाभ न होगा। इसके जानने के लिए स्वानुभव तथा आत्म प्रतीति ही चाहिए। परन्तु आज हमें इसके बारे में कुछ कहना नहीं है। यह बात आश्चर्य करने योग्य नहीं है कि श्रीरामचन्द्रजी का चरित सब का पूजनीय, अनुकरणीय, सर्वांग-सुन्दर, तथा चित्ताकर्षक जान पड़ता है क्योंकि वे तो साक्षात् ईश्वर के अवतार ही हैं। इस लेख में यह बात प्रगट करनी है कि श्रीविष्णु ने अपने अवतार के लिए जो भूमिका ढूँढ़ निकाली वह कितनी पवित्र और ऊँचे दर्जे की तथा हर एक प्रकार से इस अवतार के लिए योग्य थी। ईश्वर दो कारणों से अवतार लेता है। पहिला, साधुसन्तों को पीड़ा करने वाले दुष्ट लोग और दूसरा, दुष्टों की पीड़ा नम्र रीति से सहन करके भी अपना सत्य न छोड़नेवाले साधु लोग। ये दोनों बातें कदाचित् एक ही समय में हो सकती हैं परन्तु इनके साथ एक और बात चाहिए—अर्थात् ईश्वर के अवतार के लिए उचित पात्र भी चाहिए। यदि ऐसा न हो तो ईश्वर का अवतार नहीं हो सकता। अतएव जिस रघुकुल में श्रीरामचन्द्रजी का अवतार हुआ उसकी योग्यता का वर्णन इस लेख में किया जायगा।

## रघुवंश के श्रेष्ठत्व और दिलीप की कर्तव्यनिष्ठा।

एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानाम्।
पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु॥

रघु० सर्ग २ श्लो० ३१।

सूर्यवंश के इक्ष्वाकु कुल में दिलीप नामक एक राजा था। सूर्यवंश के सभी ही राजे प्रतापशाली कर्तव्यदक्ष दानशूर और प्रजापालन में तत्पर हो गये परन्तु दिलीप राजा इन सब गुणों से विशेष मंडित था। आपको सब बातें अनुकूल थीं परन्तु सन्तान एक भी न थी। इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कुछ उपाय करना चाहिए ऐसा सोच कर राजा, वसिष्ठजी के आश्रम में गया। जब उसने अपना सब हाल कह सुनाया तब वसिष्ठजी ने कहा कि तुम एक समय स्वर्ग से लौट आ रहे थे और कामधेनु रास्ते में खड़ी थी तब तुमने उसको वंदन करके आदर न किया, किन्तु यों ही आगे चले गये इसलिए उसने यह शाप दिया कि जब तक तुम मेरी नंदिनी की सेवा न करोगे तब तक तुम्हारे सन्तान न होगी। इसलिए अब तुम हमारे आश्रम में कुछ दिन रहो और यहाँ नंदिनी की सेवा करो जिससे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो।



वनेनाम्ब च धनु, नरसनभूमिरवरते।
तपाहुति सदपुत्र पद, विश्व नरस्य इदावरते॥

रघु० २।२१

अपने गुरु की आज्ञा स्वीकार करके दूसरे दिन सबेरे नंदिनी को दुहने के बाद राजा उसको चराने के लिए जंगल में ले गया। देखिए, राजा दिलीप पृथ्वीपति था, परन्तु उसने अपना सब राजवैभव त्याग दिया और साधारण गोपाल के समान, वह, गाय के पीछे पीछे जाने लगा। यह विचार ही बड़तरा को अचम्भे में डाल सकता है। परन्तु राजा ने अपनी दृढ़ भक्ति, गुरुवचन पर श्रद्धा और शारीरिक सुख की निरपेक्षता के कारण असम्भव बात को भी संभव कर दिया। जब वह गाय के पीछे पीछे जंगल में गया तब उसके शरीर की रक्षा करनेवाले कोई सेवक उसके साथ न थे इसका एक कारण तो यह है कि व्रत के नियमों के अनुसार नंदिनी की सेवा स्वयं उसको अकेले ही करनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण यह है कि मनुवंश के राजाओं को अपनी रक्षा के लिए कभी किसी अन्य पुरुष की सहायता अपेक्षित न थी। जब वह गाय मार्ग में चलने लगती तो राजा दिलीप उसके पीछे पीछे चलता, जब वह खड़ी हो जाती तब आप भी खड़ा हो जाता, जब वह बैठती तभी आप बैठता और जब वह पानी पीती तभी आप पानी पीता था। तात्पर्य यह है कि वह राजा, उसकी छाया ही के समान, सदा उसके साथ रहा करता था। जंगल में से अच्छी अच्छी घास काट कर लाना और वह उसे खिलाना, उसका शरीर पानी से धोकर स्वच्छ रखना इस प्रकार तन-मन से उसकी सेवा किया करता था। सन्ध्या के समय जब वह घर लौटने लगती तब राजा भी उसके साथ घर आता। इस प्रकार इक्कीस दिन तक अत्यन्त निष्ठापूर्वक राजा ने उसकी सेवा की तब एक दिन उसने राजा की परीक्षा करने का इरादा किया। जब दूसरे दिन वह जंगल में चरने गई तब उसने प्रति दिन का मार्ग छोड़ दिया और हिमालय की एक दरी में घुस गई। वहाँ एक ओर गंगा नदी का प्रवाह चट्टानों पर से शीघ्र गति

से बह रहा था। चारो ओर हरी दूब उग रही थी और दूसरी ओर हिमालय का घना जंगल देख पड़ता था। प्रकृति की यह अपूर्व शोभा देख कर राजा का मन कुछ समय के लिए तल्लीन हो गया इतने ही में उसने गाय के चिल्लाने की आवाज सुनी ज्योंही उसने उधर देखा त्योंही उसे मालूम हुआ कि एक भयानक सिंह नन्दिनी की गर्दन पर पंजा डाले बैठा है। उसी समय राजा ने अपना धनुष हाथ में ले लिया और तरकस से बाण निकालने लगा। परन्तु इतने ही में क्या चमत्कार हुआ कि उसका दाहिना हाथ बाण के छोर पर चिपक गया, वह वहां से हिलता न था। राजा यह देख कर बहुत चकित हो गया कि मेरी आखों के सामने सिंह नन्दिनी की गर्दन पर पंजा डाले बैठा हुआ है और मेरा हाथ इस प्रकार स्तंभित हो गया है कि मैं बाण छोड़ने के लिए असमर्थ हुआ हूं। जिस प्रकार सांप बाजीगर के मन्त्र से बंध जाने के बाद अपनी ही जगह पर पड़े-पड़े तलमलाया करता है परन्तु कुछ भी नहीं कर सकता उसी तरह राजा की दशा हो गई।



तस्मिन्क्षणे पालयितु प्रजानाम, उत्पश्यत सिंहनिपातमुग्रम्।
अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टि, पपात विद्याधरहस्तमुक्ता ॥
रघु० २।६०

राजा की यह दशा देख कर सिंह मनुष्यवाणी से बोलने लगा। उसने कहा "हे राजन्! यह देवदार का वृक्ष तुझे देख पड़ता है न? यह वृक्ष स्वयम् पार्वती देवी का लगाया हुआ है। एक समय की बात है कि किसी जंगली हाथी ने अपने मस्त गंडस्थल से इस पेड़ को रगड़ कर इसका छिलका निकाल डाला। इस पर पार्वती देवी को इतना दुःख हुआ कि मानो स्वयम् उसका पुत्र स्कंद युद्ध में जखमी हो गया है। इसके बाद श्रीशंकरजी ने मुझे सिंह स्वरूप देकर इस पेड की रक्षा के लिए यहां रक्खा है ताकि कोई इस पेड़ को दुःखित न करे। भूताधिपति महादेव ने मुझे यह आज्ञा दी है कि इस वृक्ष के आसपास जो जानवर पहुंचे उसको मार कर तुम अपनी क्षुधा शांत करो। उसी आज्ञा के अनुसार मैंने इस गाय को भी पकड़ लिया है। यहां तेरा पराक्रम किसी काम का न होगा। तेरा शस्त्र तो निष्फल हो ही गया है अब यदि तू अस्त्र का प्रयोग करेगा तो वह भी निष्फल हो जायगा। अब मैं इस गाय को मार कर अपनी क्षुधा शांत करूंगा। तू अपने आश्रम को लौट जा। तू किसी प्रकार की चिंता न कर। उदास होने के लिए तुझे कोई कारण भी नहीं है क्योंकि जिस वस्तु की शस्त्र के द्वारा रक्षा की जानी चाहिए उस पर जब शस्त्र का कोई उपयोग ही नहीं होता किन्तु कोई अपूर्व संकट प्राप्त हो जाता है तब बिचारा शस्त्रधारी रक्षक क्या कर सकता है। कैलाशनाथ-महादेवजी-की ही आज्ञा से यह गाय मेरे आधीन हुई है अब इस पर तेरा कुछ भी उपाय चल न सकेगा। ऐसी अवस्था में तू व्यर्थ दुःखित क्यों होता है। तूने अपनी गुरुभक्ति पूरी तरह प्रगट की है। इससे अधिक और कोई क्या कर सकता है?"

उस सिंह का उक्त भाषण सुन कर दिलीप का खेद कुछ कम हुआ परन्तु नन्दिनी को, सिंह की पकड़ में, छोड़ कर आश्रम को लौट जाना उसे बिलकुल पसंद न था। ज्योंही उसे यह मालूम हो गया कि शंकर के वरदान के प्रभाव से यद्यपि मेरी शक्ति यहां कुछ काम नहीं आ सकती तो भी मुझे इस गाय की रक्षा के लिए कुछ न कुछ उपाय अवश्य ही करना चाहिए। तब उसके मन में यह विचार सूझ पड़ा कि यदि मैं आत्मसमर्पण कर दूं तो इस गाय की रक्षा हो जायगी। ऐसा सोच कर राजा दिलीप ने कहा "हे शिव दूत! मैं मानता हूं कि तुझे कुछ न कुछ भक्ष्य अवश्य चाहिए। अब मैं एक ऐसा उपाय बताता हूं जो कि तुझे मूर्खता का जान पड़ेगा परन्तु उससे इस गाय की निस्सन्देह रक्षा हो सकती है। तू तो सर्वज्ञ है—सब लोगों के अंतःकरण की बात भलीभांति जानता है। यदि मैं न भी कहूं तो भी तू जान लेगा, इसलिये कुछ कहता हूं। भूतनाथ-श्रीशंकरजी-की आज्ञा मुझे भी मान्य है परन्तु जिस गाय की रक्षा के लिए मेरे गुरु ने मुझे नियत किया है उसको मैं अपनी आखों के सामने कैसे मरने दूं? इसलिए तू मुझे खा ले और इस गाय को छोड दे। ऐसा करने से तेरी भूख शांत हो जायगी और धेनु-रक्षा रूप मेरा कर्तव्य भी सफल हो जायगा।"

राजा का यह अद्भुत भाषण सुन कर वह शिव-दूत कुछ हंस कर बोला, "राजा यह तू क्या कर रहा है। सारी पृथ्वी पर स्थापित तेरी सत्ता, तेरा अपूर्व वैभव, तेरा तरुण अवस्था और यह सुन्दर शरीर—इन सब बातों का त्याग सिर्फ एक तुच्छ गाय के लिए तू कर रहा है! जान पड़ता है कि तू केवल मूर्ख है! मेरी समझ में तेरा ऐश्वर्य इन्द्र पद से किसी प्रकार न्यून नहीं है। इतना होने पर भी केवल वसिष्ठजी के क्रोध से डर कर तू अपना देह अर्पण करने के लिए उत्सुक हो रहा है। यदि वसिष्ठजी क्रोधित होंगे तो उन्हें शांत करने का एक सहज उपाय भी है। इस गाय के बदले तू उन्हें करोड़ों गौएं दे सकता है। ऐसी अवस्था में तू अपने शरीर की हानि व्यर्थ क्यों कर रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि सिंह का उक्त भाषण मन को बहुत लुभानेवाला था। इन्द्र के समान ऐश्वर्य, सुखोपभोग की इच्छा, अतृप्त तरुण अवस्था, स्त्री, आप्त, और इष्ट इत्यादि सब को एक तुच्छ गाय के लिए छोड़ देना बुद्धिमानी का काम न था। इन सब बातों के बदले यदि एक गाय की मृत्यु हो जाय तो उसमें क्या हानि होगी? तुम्हारी अनुपस्थिति में प्रति दिन न जाने कितनी गौएं मरती होंगी? तब इस गाय के लिए प्राण अर्पण कर देने में क्या लाभ है? परन्तु स्मरण रहे कि, मन को लुभानेवाले ऐसे विचार एक क्षण भी राजा दिलीप के मन में नहीं आये। उसने अपने स्वार्थ की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। वह अपने कर्तव्य से पराङ्मुख होना नहीं चाहता था। कर्तव्य की सफलता के लिए वह आत्मसमर्पण कर देने को तयार था। स्वार्थ उसीको मोहित कर सकता है जो कि उसके वश में हो परन्तु दिलीप ऐसा न था। उसकी विवेक-बुद्धि पूरी तरह जागृत थी।

अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्।
विचार मूढ प्रतिभासि मेत्वम् ॥

सिंह के उक्त कथन में एक ऐसा सिद्धान्त स्थापित किया गया है कि जो सब लोगों को मान्य है। सब लोग जानते हैं कि एक छोटी सी तुच्छ वस्तु के लिए एक बड़ी भारी बहुमोल वस्तु को खो नहीं देना चाहिये परन्तु यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि सिंह ने अपने कथन में केवल सांसारिक वैभव और शारीरिक सुख ही

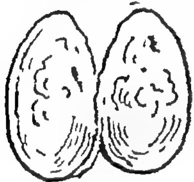
को अधिक महत्त्व दिया है। राजा दिलीप की बुद्धि ऐसे सुख की लालच से कदापि भ्रष्ट नहीं हो सकती थी। वह जड़वादी अथवा देहात्मवादी न था। वह जानता था कि इस जड़ देह में भी अत्यन्त विस्तृत और महत्त्व का 'यश शरीर' है। कदाचित् एक गाय से राजा का शरीर अधिक मूल्यवान हो परन्तु वह जानता था कि अपनी आधीनता में रहनेवाली गाय की रक्षा न करके यदि मैं आश्रम को लौट जाऊंगा तो उससे उत्पन्न होनेवाली अपकीर्ति की अपेक्षा हमारी देह किसी प्रकार अधिक महत्त्व की नहीं है। सम्भव है कि यदि मैं गाय को इस स्थान में छोड़ कर चला जाऊं तो इस समय के लिए मेरे भौतिक शरीर की रक्षा हो जायगी परन्तु यह शरीर चिरस्थायी नहीं है। इसके अतिरिक्त मेरी कीर्ति कलङ्कित हो जायगी। वह अपने 'यश शरीर' का नाश नहीं चाहता था। अपने मन के अनुसार बर्ताव करने का उसमें धीरज भी बहुत था। अन्त में उसने निश्चयपूर्वक सिंह से कहा कि मैं स्वकर्त्तव्यनिष्ठ हूं, मैं इस जड़ देह पर आसक्त नहीं हूं, मुझे अपना 'यश शरीर' ही अधिक महत्त्व का प्रतीत होता है। अतएव इसकी रक्षा करने के लिए मैं तुझे अपना यह देह अर्पण किये देता हूं। इसका स्वीकार कर और गाय को आश्रम पर लौट जाने दे।

दिलीप की यह गुरुभक्ति, धर्मश्रद्धा और कर्त्तव्यनिष्ठा देख कर नन्दिनी बहुत प्रसन्न हुई। उसने राजा को पुत्रप्राप्ति का वरदान दिया। अस्तु, जिस सूर्य वंश में दिलीप के समान स्वार्थत्यागी और कर्त्तव्यनिष्ठ अनेक राजा हो गये वही वंश श्री भगवान् विष्णु के अवतार के लिए अत्यंत उचित स्थान था।

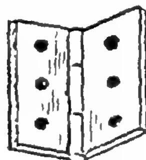
# वैज्ञानिक आविष्कार और यांत्रिक योजना के प्राकृतिक नमूने।

यदि मानव-समाज के विकाश का इतिहास देखा जाय और इस बात पर ध्यान दिया जाय कि बाल्यावस्था से उसकी किस तरह उन्नति होती चली आई है, तो यह कहना पड़ता है कि, ज्यों ज्यों मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ने लगीं त्यों त्यों उसके सामने नई नई आपत्तियां उपस्थित हुई होंगी। उन आपत्तियों को दूर करने तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसने जिन उपायों की योजना की होगी और जो नए आविष्कार किये होंगे उनके विषय में उसको बहुत कुछ सोच विचार करना पड़ा होगा और बहुत कुछ शारीरिक क्लेश भी भोगना पड़ा होगा। इन सब बातों का वर्णन वैज्ञानिक ग्रंथों में पाया जाता है। भिन्न भिन्न आविष्कार कब, किस अवस्था में और कैसे किये गये, तथा यांत्रिक योजना की कल्पना कब और कैसे सूझ पड़ी इत्यादि बातों का मनोरंजक वर्णन सृष्टि-विद्या के इतिहास में पाया जाता है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जब किसी विषय में नूतन आविष्कार की अत्यंत आवश्यकता होती है तब प्रकृति-देवी उदासीन होकर चुपचाप नहीं बैठ रहती। अपने अज्ञान बालकों की सहायता करने ही के लिये मानों उसने, इस विश्वरूप भवन में, वैज्ञानिक आविष्कारों तथा यांत्रिक योजनाओं के प्रकृतिजनक नमूने, ठौर ठौर में रख दिये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आज तक अनेक नई नई बातों का जो आविष्कार किया गया है और जिन यांत्रिक योजनाओं का उपयोग व्यवहार में लाया गया है उन सबों का कोई न कोई नमूना सृष्टि (प्रकृति) में अवश्य पाया जाता है। ऐसी अवस्था में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य ने यांत्रिक योजना की कला प्रकृति देवी के कारखाने से सीखी है। इस बात की सत्यता के लिये कुछ साधारण पदार्थों के दृष्टान्त दिये जाते हैं जो सदा मनुष्य के व्यवहार में उपयोगी हैं—

१ किवाड़ों में कब्जे लगाने की युक्ति पानी में रहनेवाले एक विशिष्ट



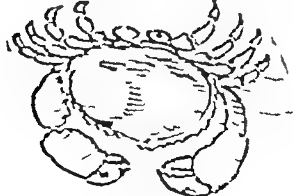
आ० १ (अ)



आ० १ (ब)

जंतु से ली गई है। इस जंतु के शरीर पर अस्थिमय तथा धारेदार एक छोटा सा घर बना रहता है जिसकी दो बाजू, ठीक कब्जे के समान आपस में जुड़ी रहती हैं। परंतु हमारे कृत्रिम कब्जे अब तक भी प्राकृतिक नमूने की बराबरी पूरी तरह कर नहीं सकते।

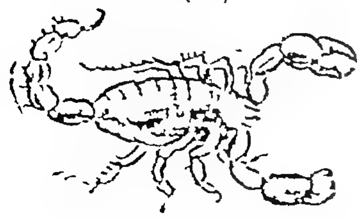
२ केकड़ा, बिच्छू, और मकड़ी इत्यादि जंतुओं के हाथ, पांव, और



आ० २ (अ)



आ० २ (ब)



आ० ३ (अ)

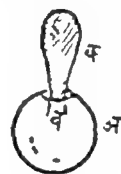


आ० ३ (ब)

मुंह आदि अवयवों को देख कर ही चिमटा, और कैंची आदि हथियारों की युक्ति मनुष्य को सूझी होगी। काले रंग के बड़े चींटे के मुंह के डंक की पकड़ ऐसी मजबूत होती है कि छुड़ाने से भी नहीं छूटती।

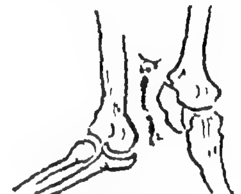
३ पूरक रेचक यंत्रों (Pumps पंप) की कल्पना मनुष्य को अपने शरीर के रक्ताशय की रचना पर से सूझी होगी। रक्ताशय के समान और कोई उत्तम पूरक-यंत्र (पंप) नहीं है। जब कृत्रिम पंपों का कोई हिस्सा टूट जाता है तो उसको फिर से बनवाना पड़ता है। परंतु रक्ताशय-रूप प्राकृतिक पंप स्वयं पूर्ण है।

४ बहुतेरे यंत्रों में ऐसे छोटे छोटे भाग होते हैं जो कि अन्य बड़े भागों





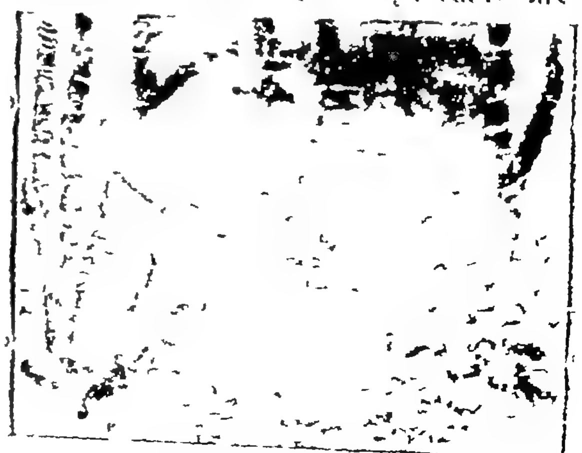
आ० ४ (अ)



आ० ४ (ब)

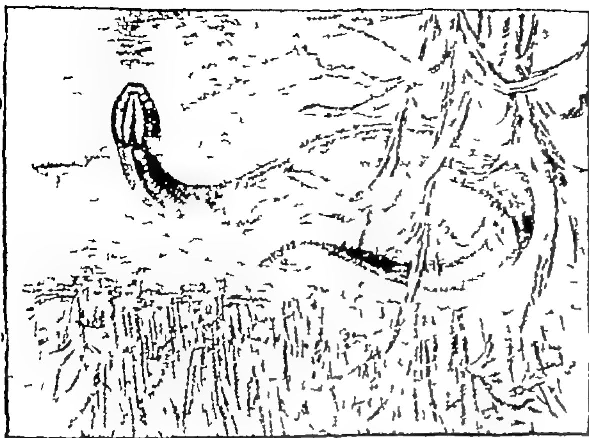
के भीतर रक्खे रहते और वहीं घूमते हैं। मान लो कि अ नाम के पात्र में ब गोला व डंडे को जोड़ दिया गया है। ऐसी अवस्था में ब-ब सूचक वस्तु अ पात्र में इस प्रकार घूमी रहेगी कि वह सदा दाहिने ओर से बाईं ओर तथा बाईं ओर से दाहिने ओर सहज घूमती रहेगी। हमारे हाथ-पांव में, जोड़ के स्थानों (घुटना इत्यादि स्थानों) में भी, इसी प्रकार की प्राकृतिक रचना पाई जाती है। सांप के पृष्ठ भाग की हड्डियों के टुकड़े (रीढ़) भी इसी तरह एक दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं। इसी लिये वह घुमाव के साथ चला जा सकता है।

५ आविष्कारकों के मस्तिष्क में विद्युत्प्रकाश की योजनाओं का विचार उत्पन्न होने के हजारों वर्ष पहले प्रकृति देवी ने उष्णता रहित प्रकाश उत्पन्न करनेवाली 'विद्युत्चक्रमाला' निर्माण कर दी थी। टारपेडो नामक मत्स्य के शरीर में चमकनेवाली विद्युद्दीपमालिका स्वयं सिद्ध होती है और उस दीपमालिका के प्रकाश को चारों ओर फैलाने के लिये प्राकृतिक परावर्तकों की (Natural Reflectors) भी योजना रहती है। यह मत्स्य भूमध्यसागर और नील



आ० ५ अ [illegible]

नदी में पाया जाता है। दक्षिण अमेरिका में ईल नामक पानी में रहनेवाला सांप होता है। उसमें इतनी विद्युत्शक्ति होती है कि उसके धक्के से घोड़ा भी मूर्छित हो जाता है। यदि यह अनुमान



आ० ५ (ब) ईल नामक विद्युन्मय सर्प ।

किया जाय कि खद्योतों के निरीक्षण से विद्युद्दीप की कल्पना उत्पन्न हुई होगी तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं है ।

६ अखरोट, बादाम, और आम की गुठली इत्यादि चीजों पर से मनुष्य ने अनेक प्रकार के सन्दूकों का उपयोग सीखा होगा।

७ तूंबा आदि पर से बोतलों और शीशियों का उपयोग सूझ पड़ा होगा ।

८ मकड़ी और रेशम के कीटों को जुलाहों के प्राकृतिक गुरू कहना चाहिये । ये जन्तु जैसा महीन तन्तु बना सकते हैं वैसा अब तक न तो कोई जुलाहा कात सकता है और न कोई कृत्रिम यन्त्र ही बना सकता है ।

९ एक प्रकार की चिड़िया होती है जो अपने रहने का घर पत्रावलि से बनाया करती है। यह चिड़िया हूबहू दर्जी का सा काम करती है । उत्तर की ओर बरफ से आच्छादित प्रदेशों में रहनेवाले तथा अन्य जंगली लोग जब अपने लिये जानवरों के चमड़ों के कपड़े बनाते हैं, तब वे पहले उनमें छेद कर लिया करते हैं और अनन्तर उन छेदों में से धागा डाल कर कपड़े सी लेते हैं। इन बातों पर से अनुमान किया जा सकता है कि उक्त चिड़िया ही ने हमारे दर्जियों को सीने की प्रथम शिक्षा दी होगी ।

१० अनेक बार देखा गया है कि वर्तमान समय के डाक्टर लोग रोगियों के शरीर में पिचकारी से खींच कर ओषधि भर देते हैं। साँप, बिच्छू इत्यादि विषैले जन्तुओं के पास विष खींचने को पिचकारी प्रकृति देवी ही ने दे रक्खी है ।

इस प्रकार और भी अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। ये सब प्राकृतिक नमूने, न जाने किस समय से, इस भूतल पर खुले पड़े हैं। उनकी ओर मनुष्य का ध्यान आकर्षित होने के लिए निस्सन्देह बहुत समय लगा होगा । इसमें सन्देह नहीं कि अत्यन्त सूक्ष्म जन्तुओं के अवयवों का निरीक्षण करने के लिये मनुष्य को सूक्ष्मदर्शक यन्त्र का आविष्कार करना पड़ा, परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि, यद्यपि पानी के बड़े बूंद में से सूक्ष्म पदार्थ देख पड़ता है तथापि, बहुत समय तक, मनुष्य का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ ।

सृष्ट पदार्थों के निरीक्षण से, मनुष्य को, और भी न जाने कितनी उपयोगी बातें सीखने योग्य हैं ! अब तक मनुष्य प्रकृति-देवी का सच्चा चेला नहीं बना है ! यह प्रकृति-देवी पदार्थ में अद्भुत चमत्कारों की जननी है ! देखें, हमारे हिन्दुस्थानी भाई इससे क्या सीखते हैं !

---

## भीष्म-प्रतिज्ञा ।



भीष्म :—" मैं मृत्युपर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत से रहने की प्रतिज्ञा करता हूं । "

यह एक पौराणिक नाटक का दृश्य है । महाप्रतापी वीर और पूर्ण ब्रह्मज्ञानी के नाते से महात्मा भीष्म का नाम भरतखण्ड के छोटे-बड़े सब लोगों को विदित है । यह बात भी सब लोग जानते हैं कि केवल अपने पिता की इच्छा-तृप्त करने के लिए उस महात्मा ने कैसा स्वार्थ त्याग किया—उसने आजन्म ब्रह्मचारी रहने की घोर प्रतिज्ञा की ! इस प्रकार के स्वार्थ-त्याग के उदाहरण आजकल कहीं नहीं देख पड़ते। हमारे प्राचीन पौराणिक तथा ऐतिहासिक ग्रंथों में ऐसे ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। इन्हीं उदाहरणों में राष्ट्र-जागृति की मोहक शक्ति है । खेद की बात है कि हिन्दीभाषा में अब तक " इन्दर-सभा " और " लैले-मजनू " जैसे खेलों ही की अधिक कदर है ! परन्तु स्मरण रहे कि नाटकों में एक अद्भुत शक्ति होती है । यदि उसका सदुपयोग किया जायगा तो लाभ होगा, और यदि दुरुपयोग किया जायगा तो हानि होगी । अतएव हमारे हिन्दी लेखकों का कर्तव्य है कि वे अच्छे उपयोगी नाटक ग्रंथ लिखने की ओर ध्यान दें । इसीके साथ नाटक कम्पनियों का भी कर्तव्य है कि वे अज्ञ तथा मूर्ख जनों का दिल बहलाव करके केवल टके कमाने ही की ओर ध्यान न दें, किन्तु ऐसे नाटकों के खेल स्टेज पर लावें कि जिनसे मनोरंजन होकर कुछ स्थायी हित भी हो । वे यह न समझें कि ऐसा करने से उनकी आय घट जायगी ! नहीं, नहीं हमारा विश्वास है कि उनकी आय बहुत बढ़ जायगी । देखें, हमारे चरित्र, आचार और शील की उचित शिक्षा देनेवाले नाटकों के खेल हिन्दी की रंगभूमि पर कब दृष्टिगोचर होते हैं ।

# हमारे प्राचीन कायदे और कायदों के ग्रंथ।

जिस प्रकार की शिक्षा वर्तमान समय में हमारे युवकों को दी जाती है उसके विषय में, राष्ट्रीय शिक्षा विषय पर व्याख्यान देते समय, स्वामी विवेकानंद ने जो कुछ कहा है उसका सारांश नीचे दिया जाता है। आप कहते हैं कि ज्योंही बालक पाठशाला में भेजा जाता है त्योंही सबसे पहिली बात उसको यह सिखाई जाती है कि "तेरा पिता मूर्ख है, तेरे पूर्वज मूर्ख थे, तेरे गुरु ढोंगी हैं और तेरे पवित्र ग्रंथों में सब असत्य बातें लिखी हुई हैं। इस प्रकार की शिक्षा से बालक का अंतःकरण निःसत्व और निर्जीव हो जाता है और फिर किसी प्राचीन बात पर उसकी श्रद्धा नहीं रहती।" वर्तमान समय की शिक्षा प्रणाली के उक्त बुरे परिणामों को टालने के लिये ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है जो कि राष्ट्रीय शिक्षा का प्रबंध कर सकें परंतु हमारे दुर्भाग्य से इस समय यह बात असम्भव सी जान पड़ती है। राष्ट्रीय शिक्षा का प्रबंध करनेवाली संस्थाओं के अभाव में उक्त बुरे परिणामों को टालने का एक और उपाय किया जा सकता है—लेखों द्वारा इस बात का विवेचन किया जाना चाहिये कि पूर्व समय में हम कौन और किस प्रकार के थे। यदि हमारे युवकों को यह बात भली-भांति मालूम हो जाय कि अनेक प्रकार की विद्याओं और कलाओं में हमारे पूर्वजों ने कितनी उन्नति की थी तो इसमें संदेह नहीं कि भविष्य में, लोगों के अंतःकरण में, पूर्ण आत्म-विश्वास न उत्पन्न हो जाय जिसका परिणाम हमारे देश के लिये अत्यंत हितदायक होगा। इस बात की ओर ध्यान देकर ही आज शीर्षक में लिखे विषय की चर्चा आरंभ की जाती है। प्राचीन समय में हमारे कायदे किस प्रकार के थे उन पर से हमारे देश की उन्नति के विषय में क्या अनुमान किया जा सकता है इत्यादि बातों की मीमांसा इस लेख में की जायगी।



इस विषय की चर्चा करने के पहिले एक बात का उल्लेख कर देना अत्यंत आवश्यक है। इस लेख के शीर्षक में 'कायदा' शब्द का प्रयोग किया गया है। परंतु इस शब्द का अर्थ हम लोगों के लिये नूतन सा है। 'धर्म' शब्द से प्रायः सब लोग परिचित हैं। इस शब्द का साधारण अर्थ 'कर्तव्य' होता है जैसे राजा का धर्म, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री इत्यादिकों के धर्म अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति या जाति के कर्तव्य। अपने कर्तव्य के विरुद्ध बर्ताव करनेवाले को लौकिक और पारलौकिक दंड भोगना पड़ता है। इसके अतिरिक्त एक और भी उपाय है। अपने धर्म अथवा कर्तव्य के विरुद्ध बर्ताव करनेवाला प्रायश्चित से भी शुद्ध हो सकता है। ये सब बातें 'धर्म' शब्द के अर्थ में भरी हुई हैं जो सब हिंदुस्थानियों को भलीभांति मालूम हैं। परंतु किसी विशेष कारण से इस लेख में धर्म शब्द के बदले 'कायदा' शब्द उपयोग किया जायगा।

### धर्म का ( कायदे का ) उद्गम।

धर्म अथवा कायदे का मुख्य उद्गमस्थान वेद हैं। इसी तरह वेदों का रहस्य जाननेवाली मन्वादिक स्मृतियां भी धर्म का उद्गमस्थान कही जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त सदाचार और आत्मतुष्टि भी धर्म के उद्गमस्थान माने गये हैं। सदाचार से शील का भी अंतर्भाव हो जाता है।

मनुस्मृति में सदाचार के विषय में यह लिखा है "सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच का जो प्रदेश है उसको 'ब्रह्मावर्त' कहते हैं। उस देश में प्रायः शिष्ट लोग ही रहा करते हैं। यहां के ब्राह्मणों से लेकर नीच जाति के लोगों तक परंपरा क्रम से जो आचार करते चले आये हैं वही सदाचार कहलाता है। कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, कान्यकुब्जदेश और मथुरा के इर्दगिर्द का देश जो कि ब्रह्मर्षिदेश कहलाता है, ब्रह्मावर्त से कुछ कम योग्यता का समझा जाता है। इस प्रदेश में उत्पन्न होनेवाले ब्राह्मणों से दुनिया के सब लोगों को आचार की शिक्षा लेनी चाहिये। जो प्रदेश हिमालय और विंध्याचल पर्वतों के बीच में है, जहां सरस्वती गुप्त हो गयी है उसके पूर्व की ओर और प्रयाग के पश्चिम की ओर मध्यदेश कहलाता है। पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक, हिमालय और विंध्याचल पर्वतों के बीच में जो प्रदेश है उसे आर्यावर्त कहते हैं।"

अब संक्षेप में यह जानना चाहिये कि इस समय हमारे कायदे के कौन कौन ग्रंथ उपलब्ध हैं, उनके कर्ता कौन थे, वे कब हो गये और उनमें किन किन विषयों का समावेश किया गया है। जिन ग्रंथों में हमारे कायदे पाये जाते हैं उन्हें साधारण तौर पर 'स्मृति' कहते हैं। वेद ग्रंथों को 'श्रुति' कहते हैं। जो कुछ सुना गया उसको श्रुति कहते हैं और जो कुछ ध्यान में रहा उसको स्मृति कहते हैं। परमेश्वर ने बड़े बड़े ऋषियों को जो बातें प्रगट कीं उनका समावेश वेद ग्रंथों में किया गया है। प्राचीन समय में जो बातें सामाजिक व्यवहार में रूढ़ थीं उनका समावेश स्मृतिग्रंथों में किया गया है। हमारे कायदे इन दोनों प्रकार के ग्रंथों में अर्थात् श्रुति ग्रंथों में तथा स्मृतिग्रंथों में भी पाये जाते हैं। कहते हैं कि पहिले पहल ये स्मृति ग्रंथ ब्रह्मदेव से मनु को प्राप्त हुये। इसके बाद मनु से मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वसिष्ठ, भृगु और नारद इन दस ऋषियों को प्राप्त हुए। प्रत्येक स्मृतिग्रंथ के तीन भाग किये गये हैं। पहिले भाग में आचार संबंधी नियम हैं इसमें धार्मिक कार्यों के नियम और मनुष्यों के साधारण कर्तव्यों का विवेचन भी किया गया है। दूसरा भाग व्यवहार के विषय में है। इसमें मनुष्य के जीवन तथा जायदाद वगैरह के विषय में नियमों का विवेचन किया गया है। तीसरे भाग में प्रायश्चित का वर्णन है। इसमें अनेक प्रकार के पापों के निवारणार्थ उपायों का वर्णन किया गया है। इन तीनों भागों में जितने सांसारिक तथा पारमार्थिक नियम हैं उनको 'धर्मशास्त्र संहिता' कहते हैं। उनको 'स्मृति' ग्रंथ भी कहते हैं। धर्मशास्त्र संहिता अथवा स्मृतिग्रंथ अनेक हैं। याज्ञवल्क्य ने बीस संहिताओं का उल्लेख किया है जैसे, मनु, अत्रि, विष्णु, हारित, याज्ञवल्क्य, उशन, अंगिरा, यम, आपस्तंब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वसिष्ठ। कुछ स्मृतिकारों ने भिन्न भिन्न नाम दिये हैं। पराशर स्मृति में भी बीस ही स्मृतिकारों का उल्लेख किया गया है। परंतु ऊपर लिखे हुए नामों में से यम, बृहस्पति और व्यास के बदले काश्यप, गार्ग्य और प्रचेतस का उल्लेख पराशर स्मृति में पाया जाता है। वर्तमान में उत्तम स्मृतिकारों का

-उल्लेख है। याज्ञवल्क्य ने जिन नामों का उल्लेख किया है उनमें से अत्रि का नाम पद्मपुराण में नहीं पाया जाता। उक्त नामों के अतिरिक्त पद्मपुराण में ये नाम अधिक है जैसे, मरीचि, पुलस्त्य, प्रचेता भृगु, नारद, कश्यप, विश्वामित्र, देवल, ऋष्यश्रृंग, गार्ग्य, बौधायन, पतंगिनाशन, जावालि, सुमन्तु, पाराशर, लोकाक्ष और कुथुमी। गृह्य सूत्र में ३६ स्मृतिकारों के नाम पाये जाते हैं। उसमें च्यवन, छागालेय, जातुकर्ण, पितामह, प्रजापति, बुद्ध, सत्यायन, और सोम के नाम अधिक हैं। उक्त नामों के अतिरिक्त पाडवों के पुरोहित धौम्य ऋषि, आश्वलायन, भगुरी और अत्रिपुत्र दत्त के भी नाम स्मृतिकारों में पाये जाते हैं। प्रत्येक युग के लिये भिन्न भिन्न संहिता का प्रमाण माना जाता है। सत्ययुग में मनुसंहिता मानी जाती थी; त्रेतायुग में गौतम संहिता; द्वापरयुग में शंख और लिखित की संहिताएं तथा कलियुग के लिये पाराशर स्मृति का प्रमाण माना जाता है। यह मत स्वयं पाराशर मुनि का है। ग्रंथों के छोटे बड़े आकारों के अनुसार बृहत्संहिता और लघुसंहिता नाम प्रचलित हुए हैं। यदि पाराशर का मत स्वीकृत किया जाय तो एक अड़चन उत्पन्न होती है वह यह कि पाराशर स्मृति में व्यवहार काड है ही नहीं। ऐसी अवस्था में यदि केवल पाराशर स्मृति ही कलियुग में प्रमाण मानी जाय तो व्यवहारसम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय करने के लिये कोई उपाय ही न रहता।

## मनुस्मृति।

सब स्मृतिग्रंथों में मनुस्मृति सब से प्राचीन है। वेदों के बाद इसी का सबसे अधिक अधिकार है। ब्रह्मदेव के पुत्र स्वायंभूमनु ने इस की रचना की है। इस ग्रंथ की रचना-काल के विषय में अनेक मत हैं। कुछ पश्चिमी पडितों की राय है कि ईसाई सन् के १३०० वर्ष पहिले यह ग्रंथ बना होगा। कुछ लोग कहते हैं कि यह ग्रंथ ईसाई सन् के ७०० वर्ष पहिले बना होगा। कुछ विद्वानों का यह तर्क है कि यह ग्रंथ वेदों के अनन्तर और पुराणों के पहिले बना होगा। अब भिन्न भिन्न विद्वानों के ये तर्क एक ओर रहने दीजिये। यह देखिये कि स्वयं मनु इस विषय में क्या कहते हैं। मनुस्मृति के पहिले अध्याय के ३३, ३४, और ३५ वें श्लोक में जिन बातों का उल्लेख किया गया है उन पर से यह प्रतीति होता है कि इस जगत् के उत्पत्ति के आरंभ में मानवजाति के उत्पादक मनु ने, मानवजाति के हित के लिये इस ग्रंथ की रचना की। पश्चिमी पडित सर विलियम जोन्स मनु के काल के विषय में लिखते हैं "मिनास, मिनेयुस नामों के अन्त्य अक्षर यूनानी हैं, परंतु इन नामों के और संस्कृत मनु नाम के मुख्य अक्षर एक ही समान है। ब्रह्मदेव का पुत्र मनु, ग्रीक लोगों के ज्यूपिटर देवता का पुत्र, और क्रीटन लोगों के कायदों का प्रधान प्रवर्तक 'मिनास' है। मिसर देश के लोगों की हर्मस नामक जिस देवी ने मिनस नाम के जिस पुरुष को उस देश के कायदे प्रगट किये और देश का राजा मेनेस—ये चारों व्यक्तियां एक हैं या भिन्न भिन्न, इसका निर्णय पाठकों को सौंप कर जोन्स साहब कहते हैं कि जिसको यहूदी, ईसाई और मुसलमान लोग 'आदम' कहते हैं, वही यथार्थ में ब्राह्मणों का मनु और मानवजाति का उत्पादक है।"

इस बात का उल्लेख ऊपर किया गया है कि मनुस्मृति के रचना काल के सम्बंध में, उसी ग्रंथ में, कुछ बातें लिखी गई हैं। उन बातों का सारांश यह है "हे उत्तम ब्राह्मण, यह जानो कि उस विराट पुरुष ने स्वयं तपश्चर्या करके जिसको उत्पन्न किया है वह सारे जगत् को निर्माण करनेवाला मनु मैं ही हूं (३३)। प्रजोत्पत्ति की इच्छा करनेवाले मैंने अति कठिन तपश्चर्या करके प्रथम दस प्रजापति महर्षियों को उत्पन्न किया। मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वसिष्ट, भृगु और नारद यही दस महर्षि हैं।

### मनुस्मृति में किन विषयों का वर्णन है।

मनुस्मृति में कुल बारह अध्याय हैं, जिनमें नीचे लिखे विषयों के नियमों का वर्णन किया गया है—

#### (अ) आचार।

जगत् की उत्पत्ति, संस्कार विधि, व्रतचर्या, विवाह, महायज्ञ, श्राद्धकल्प, नमस्कारादि उपचार, वृत्ति का लक्षण, भक्ष्याभक्ष्य-निर्णय, अशौच, द्रव्यशुद्धि, स्नातक, वानप्रस्थ और यति के धर्म।

#### (आ) व्यवहार।

राजाओं के सब धर्म, न्याय-निरूपण, स्त्री और पुरुष के धर्म, दायविभाग, धन, चोर, वैश्य और शूद्र के धर्म सकरजाति, आपद्धर्म, प्रायश्चित्त शुभाशुभ कर्मफल। इन्हीं सब विषयों के नियम मनुस्मृति में दिये गये हैं। मनुस्मृति के बाद जो स्मृतिकार हो गये उनके स्मृतिग्रंथों की रचना इसी नमूने की है। मनुस्मृति के वाक्य ऐसे आदर दृष्टि से माने जाते हैं कि उनके विरुद्ध किसी स्मृतिकार का वचन नहीं मान्य किया जाता। इस देश में मनु ही हमारे कायदों का प्रधान प्रवर्तक है। इसका कारण यही है कि इस स्मृतिग्रंथ में वेदों का सब सारांश आ गया है। यह हमारा कथन नहीं किंतु स्वयं बृहस्पति का है।

## याज्ञवल्क्यस्मृति।

महत्व और मान की दृष्टि से मनुस्मृति के बाद, याज्ञवल्क्य स्मृति का दूसरा नंबर है। प्राचीन समय में मिथिला देश में बड़े बड़े विद्वानों की एक सभा हुई थी। उसी सभा में याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपनी 'स्मृति' का निरूपण किया था। इसके भी तीन भाग—आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त—हैं। इस स्मृति की रचना काल के सम्बंध में भी कोई निश्चित मत नहीं है। तथापि, यह कहा जा सकता है कि, यह स्मृति बहुत पुरानी है। याज्ञवल्क्यस्मृति के कुछ श्लोक 'पचतंत्र' में भी पाये जाते हैं। विद्वानों की राय है कि पचतंत्र का रचना काल ईसाई सन के बाद पांचवीं सदी होगा। इस पर से यह अनुमान किया जाता है कि याज्ञवल्क्यस्मृति की रचना पांचवीं सदी के पहले हुई होगी। मनुस्मृति के समान इस स्मृति में विश्वोत्पत्ति का भाग नहीं है। यह लिखा जा चुका है कि इस स्मृति के तीन भाग हैं। इनमें उन्हीं सब विषयों का, और वैसा ही, वर्णन किया गया है जो कि मनुस्मृति में है। इसलिये उनका स्वतंत्र रीति से यहां उल्लेख करना उचित नहीं है। परंतु यह बात अवश्य ध्यान में रखने योग्य है कि इस स्मृति में, मनुस्मृति के नियमों का बहुत विकास हुआ है। जब हम मनुस्मृति की प्राचीनता और याज्ञवल्क्यस्मृति की आधुनिकता की ओर ध्यान देते हैं तब यही कहना पड़ता है कि उक्त विकास स्वाभाविक परिणाम है। ज्यों ज्यों मानवजाति की उन्नति होती जाती है त्यों त्यों मनुष्य के व्यवहारों का भी विकास होता चला जाता है, और इस विकास के साथ मनुष्य के व्यवहारों में विविधता या विचित्रता भी आती जाती है। तब नूतन स्थिति के अनुसार, कायदा बनानेवालों को, नए नियम बनाना पड़ते हैं। इसी विकास-तत्व के आधार पर याज्ञवल्क्य स्मृति की रचना की गई है। अब अठारह स्मृतियां और शेष रहीं, उनका भी वर्णन संक्षेप में किया जायगा।

## हारित।

अबरिष राजा ने मार्कण्डेय मुनि से यह पूछा कि, भिन्न भिन्न जातियों और आश्रमों के कर्तव्य क्या हैं? तब मार्कण्डेय ऋषि ने हारित तथा अन्य ऋषियों का संवाद, राजा अबरिष को कह सुनाया। ऐसा जान पड़ता है कि हारित तथा अन्य ऋषियों का संवाद गद्य में हुआ था। उसको मार्कण्डेय ऋषि ने पद्य में बनाया। हारित का मूल-ग्रंथ इस समय उपलब्ध नहीं है। मार्कण्डेय ऋषिकृत उसका पद्य रूपान्तर उपलब्ध है। इस ग्रंथ में व्यवहार सम्बंधी नियम नहीं हैं। आचार नियमों के विषय में यह ग्रंथ प्रमाण माना जाता है। मनुस्मृति के समान, इस ग्रंथ के आरंभ में, जगत् की उत्पत्ति की चर्चा की गई है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार जातियों के कर्तव्यों का निरूपण किया गया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास—इन चार आश्रमों के विशिष्ट नियमों का भी वर्णन किया गया है। अंत में योग सम्बंधी कुछ बातें हैं। यद्यपि यह ग्रंथ बहुत छोटा है तथापि इसकी रचना बहुत सुंदर और मार्मिक रीति से की गई है।

## उशन-संहिता।

इसकी रचना पद्य में की गई है। इसका संक्षिप्त भाग उपलब्ध है। इसमें वेदाध्ययन, गुरु, माता, पिता, वधु के विषय में कर्तव्य, ब्रह्मचर्य, आश्रम सम्बंधी कर्तव्य, श्राद्ध सम्बंधी नियम, अशौच, भिन्न भिन्न पापों के प्रायश्चित्त, आचार सम्बंधी नियम इत्यादि विषयों का समावेश किया गया है। इस स्मृति में व्यवहार सम्बंधी नियमों का वर्णन नहीं है।

## अंगिरस-संहिता।

यह संहिता बहुत ही छोटी है। इसमें केवल सत्तर श्लोक हैं। इसमें प्रायश्चित्त सम्बंधी नियमों का विशेष वर्णन है। इसके अतिरिक्त भक्ष्य-अभक्ष्य के विषय में भी कुछ नियम हैं।

## यम-संहिता।

इसमें सौ श्लोक है। इसका मुख्य विषय प्रायश्चित्त विचार ही है। श्राद्ध के विषय में भी कुछ नियम लिखे गये हैं।

## अत्रि-संहिता।

इस संहिता में चारों वर्ण के लोगों के कर्तव्य, प्रायश्चित्त, शौच और श्राद्ध विषयों का समावेश किया गया है।

## सवर्त।

यह पद्य ग्रंथ पूर्ण नहीं है। इसका कुछ भाग उपलब्ध है। इसमें प्रायश्चित्त ही के नियम बहुतायत से दिये गये हैं। चारों वर्णों के कर्तव्यों के विषय में भी, संक्षेप से, कुछ विचार किया गया है।

## कात्यायन-संहिता।

इसमें यज्ञ और होम तथा तत्सम्बंधी और और बातों का भी विवेचन किया है। श्राद्ध के बारे में भी कुछ नियम दिये गये हैं।

## बृहस्पति-संहिता।

इसमें भिन्न भिन्न प्रकार के दानों और उनके फलों के विषय में विवेचन किया गया है। प्रायश्चित्त के बारे में भी कुछ नियम कहे हैं।

### दक्ष संहिता।

इस संहिता में प्रथम चारों आश्रमों के लक्षणों का दिग्दर्शन किया है, तदनन्तर ब्राह्मण वर्णों के दिनचर्या के नियम बतलाये हैं। इस संहिता में गृहस्थ लोगों के कर्तव्यों का विचार बड़े सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है वरन इसके सिवाय स्त्रियों के कर्तव्यों का भी विचार किया गया है। इस संहिता में अशौचसम्बन्धी नियम और योग विषयों का भी समावेश किया गया है।

### शातातप।

इस संहिता में मुख्य करके कर्मविपाक, दान, प्रायश्चित्त और श्राद्ध विषयों का समावेश किया गया है।

### लिखित-संहिता।

इस संहिता में श्राद्ध और प्रायश्चित्तसम्बन्धी नियम लिखे हैं।

### व्यास-संहिता।

इस संहिता में संस्कार, श्राद्ध, स्त्रियों के कर्तव्य, गृहस्थाश्रम लोगों की नित्य, नैमित्तिक, काम्य कर्म तथा दान विषयों का समावेश किया गया है।

### पाराशर-संहिता।

पाराशर संहिता में व्यवहार नियमों के अतिरिक्त अन्य विषयसम्बन्धी नियम लिखे हैं जैसे, होम, अतिथि, चातुर्वर्णों के कर्तव्य, अशौच, लग्नविधि और प्रायश्चित्त इत्यादि। यह स्मृति कलियुग में प्रमाण समझी जाती है जैसे कि इसके पहले अध्याय के १ से ३२ तक श्लोक में कहा है।

### गौतम-संहिता।

इस संहिता में आचार, व्यवहार और विषयों के नियम लिखे हैं। आचारसम्बन्धी विषय में ब्रह्मचर्य के नियम, गुरु और शिष्य का कर्तव्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोगों का कर्तव्य इत्यादि का समावेश किया गया है। व्यवहारसम्बन्धी विषय में व्याज बट्टा, कर्ज, चोरी इत्यादि बातों का समावेश किया है। इसके सिवाय में एक स्वतन्त्र अध्याय है। उक्त विषयों के अतिरिक्त इस स्मृति में स्नान पानसम्बन्धी नियम लिखे हैं। इस स्मृति के अंतिम अध्याय में स्त्रियों का कर्तव्य, विवाह, सन्तति और दान के विषय लिखे हैं।

### आपस्तम्ब संहिता।

इस संहिता में व्यवहारसम्बन्धी नियम नहीं हैं, परन्तु ऊपर कहे हुए विषयों के सम्बन्धी नियम हैं। इस संहिता में मुख्य करके प्रायश्चित्त का विचार किया है। इसमें गृहस्थ लोगों के कर्तव्य और द्रव्यशुद्धि सम्बन्धी कुछ नियम लिखे हैं।

### वसिष्ठ-संहिता।

यह स्मृति ग्रन्थ बड़े महत्व का है। इस ग्रन्थ में भी आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त इन तीनों विषयोंसम्बन्धी नियमों का समावेश किया है। आचार विभाग में चातुर्वर्ण के धर्म, चतुराश्रम के धर्म स्त्रियों का कर्तव्य, वेदाध्ययन और दत्तविधान इत्यादि विषयों की चर्चा की है। न्याय के सम्बन्ध में राजाओं के कर्तव्य, सवती, नाबालिग के जायदाद का प्रबन्ध, खेत की सरहद का वाद गवाह पितृऋण के विषय में पुत्र की जवाबदारी इत्यादि विषयों के नियमों का समावेश व्यवहार विभाग में किया गया है। इसके सिवाय इस स्मृति में राजाओं के कर्तव्य और प्रायश्चित्त विषयों की चर्चा थोड़ी बहुत की है।

### विष्णु-संहिता।

यह स्मृति ग्रन्थ बड़े ही महत्व का है। इस ग्रन्थ में तीनों प्रकरणों का समावेश किया है। व्यवहार प्रकरण का विवेचन विस्तृत रीति से किया है। पहिले विश्व के उत्पत्ति का वर्णन कर फिर चारों वर्णों के कर्तव्य संक्षेप में बतलाए हैं इसके उपरान्त राजाओं के कर्तव्य बतला कर व्यवहार प्रकरण का प्रारम्भ किया है। इस प्रकरण में नीचे दिये हुए विषयों पर चर्चा की है।

द्रव्यदण्ड के सजा का प्रमाण भिन्न भिन्न अपराध तत्सम्बन्धी दण्ड कर्ज व्याज, जमानत, भिन्न भिन्न प्रकार के दस्तावेज और उनकी गवाही कौन गवाह हो नहीं सकता, गवाहों की शपथ लेने का प्रकार गवाही देते समय उनकी चर्चा अपवाद किस कारण प्रकार के पुत्र दाय विभाग इत्यादि विषयों की चर्चा इस प्रकरण में है। इसके अतिरिक्त इस स्मृति में नीचे लिखे हुए दूसरे विषय सम्बन्धी नियम हैं।

### स्मृति पर के टीकाग्रन्थ।

मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम, वसिष्ठ और विष्णुस्मृतियों के अतिरिक्त दूसरे कोई भी स्मृति ग्रन्थ में ऊपर कहे हुए आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त इन तीनों विषयोंसम्बन्धी नियम नहीं पाये जाते। इस पर से ऐसी कल्पना होती है कि उक्त स्मृतिग्रन्थ के सिवाय दूसरे विस्तृत स्मृतिग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। उक्त स्मृतिग्रन्थ पर अनेक विस्तृत टीकाग्रन्थ बने हैं। यदि ये टीकाग्रन्थ न होते तो मूल स्मृतियों के वचन समझना बड़ा ही कठिन काम हो जाता। मनुस्मृति पर अनेक ऋषियों ने टीका लिखी थी परन्तु असुरी के सिवाय आज कोई भी टीका उपलब्ध नहीं है। साम्प्रत काल में वीरस्वामीभट्ट का लड़का गोविंदराज और धरणीधर की टीका सर्वमान्य है। कल्लूकभट्ट की टीका की इन सब टीकाओं से, अधिक ख्याति है। महाराष्ट्र में सायणाचार्य की बनाई हुई माधवी नामक टीका और नंदराज की टीका बहुत प्रसिद्ध है। सायणाचार्य के टीका का कर्नाटक में बड़ा मान है। मनुस्मृति पर मन्वर्थचन्द्रिका और कामधेनु नामक और दूसरी टीकाएं हैं।

नंदपण्डित ने वैजयन्ती नामक विष्णुसंहिता पर एक टीका बनायी है इसी प्रकार पाराशरस्मृति पर आपने एक टीका लिखी है। सब से पुरातन टीका याज्ञवल्क्य पर अपरार्क की है। इसके उपरान्त उसी ग्रन्थ पर विज्ञानेश्वर की प्रसिद्ध मिताक्षरी नामक टीका है। देवबोध और विश्वरूप की बनाई हुई टीकाएं भी प्रसिद्ध हैं। बंगाल प्रान्त में याज्ञवल्क्य पर दीपकलिका नामक टीका का बड़ा महत्व है। लोगों की ऐसी समझ है कि इस टीका का कर्ता मिथिला देश का शूलपाणि है। मिताक्षरी केवल टीका ही नहीं है वरन इस ग्रन्थ में दूसरे अनेक स्मृतिकारों के मत का संग्रह किया है। विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्यस्मृति का जो अर्थ किया है उसे पुष्टीकरण के लिये, उन्होंने, दूसरे स्मृतिकारों के और टीकाकारों के मत का अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है। इसके सिवाय विज्ञानेश्वर ने भिन्न भिन्न विरुद्ध देखनेवाले मत की चर्चा कर उनका मेल करने का प्रयत्न किया है। मानवशास्त्र के टीकाकर्ता कल्लूकभट्ट ने यमस्मृति पर भी एक टीका लिखी है। वरदराज ने नारदस्मृति पर वरदराजीय नामक टीका लिखी है। यह ग्रन्थ दक्षिण देश में आधारभूत समझा जाता है। माधवीय टीका में मुख्य करके आचार और प्रायश्चित्त विषयों का विवरण किया है। 'चतुर्विंशति स्मृतिवाक्य' नामक और एक ग्रन्थ है। सभी स्मृतिकारों का एक मत नहीं रहता। कई स्थान में मनुस्मृति के वचनों से इतर स्मृतिकारों का विरोध रहता है। जब कभी उक्त विरोध देख पड़ता है तो ऐसा नहीं मानना चाहिए कि एक वचन ग्राह्य और दूसरा त्याज्य है। इसलिए भिन्न भिन्न स्मृतिकारों के वचनों के संग्रह करने की आवश्यकता जान पड़ी। इस प्रकार के संग्रह ग्रन्थों में परस्पर विरुद्ध वचनों का मेल करने का प्रयत्न किया है और प्रत्यक्ष व्यवहार में कौन सा वचन ग्रहण करना चाहिए इसका दिग्दर्शन किया है। अब श्रुतिस्मृति और स्मृति स्मृति के परस्परविरुद्ध वचनों की क्या व्यवस्था करनी चाहिए इसके सम्बन्ध में कुछ उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के १४ वें श्लोक में, इन विषयोंसम्बन्धी, जो उल्लेख किया है वह इस प्रकार का है। मनु का वचन है कि "परस्परों के विरुद्ध दो स्मृति होती हैं और वे दोनों धर्म ही हैं।" व्यासस्मृति के पहिले अध्याय के चौथे श्लोक में नीचे दिया हुआ वचन है 'श्रुति-स्मृति और पुराणों के वचनों में यदि विरोध होवे तो श्रुति वचनों को प्रमाण समझना चाहिए। स्मृति और पुराणों के वचनों में यदि विरोध होवे तो स्मृतिवचन पुराण से श्रेष्ठ समझना चाहिए। उक्त नियमानुसार संग्रह ग्रन्थ के भिन्न भिन्न संहिता के वचनों को मनुस्मृति के वचनों के आधार पर इनका अर्थ किया है। यदि भिन्न भिन्न वचनों में परस्पर विरोध हो तो उसको दूर कर ऐक्यता करने का प्रयत्न किया है। ऐसा नियम नहीं है कि इन स्मृतिवचन संग्रह ग्रन्थों में धर्मशास्त्र के तीन ही प्रकार का विचार किया हो और न ऐसा नियम है कि विविध संग्रहकारों का सिद्धान्त एक ही रहता हो। इसलिये हिंदुस्थान देश में धर्मशास्त्र की अलग अलग पांच शाखाएं उत्पन्न हुई हैं—(१) बनारस (२) मिथिल (३) महाराष्ट्र (४) द्राविड (५) गौड़ीय अथवा बंगाली।

मिताक्षरी नामक बनारस पद का मुख्य ग्रन्थ विज्ञानेश्वर ने बनाया है। बनारस शाखा में भिन्न भिन्न के बनाये हुए वीरमित्रोदय, पाराशर माधव व्यवहारमयूख निर्णयसिंधु और विवाद ताण्डव ग्रन्थ प्रमाणभूत समझे जाते हैं।

मिथिल शाखा के लोग विवाद रत्नाकर, विवाद चिन्तामणि और [illegible] को प्रमाण मानते हैं। महाराष्ट्र देश

सुबोधिनी और दायकर्मसंग्रह ग्रंथ बंगाल प्रांत में बड़े महत्त्व के समझे जाते हैं।

इस प्रकार वर्तमान समय में हमारे देश में पांच शाखाएं हैं कि जिनके विषय में कोई अंग्रेजी कायदा अब तक बनाया नहीं गया है। जब इन विषयों में से किसी एक के बारे में अंग्रेजी अदालतों में वाद उपस्थित होता है तब उक्त पांच शाखाओं के प्रमाणभूत माने हुए ग्रंथों के आधार से निर्णय किया जाता है।

यहां तक इस विषय का जो विवेचन किया गया है उस पर से हमारे कायदों के ग्रंथों का बाहरी स्वरूप पाठकों के ध्यान में आ जायगा। इसके बाद स्मृति ग्रंथों के भीतर जो अमूल्य सिद्धांतरूप-रत्न भरे हैं उनका कुछ परिचय करा देना आवश्यक है।

धर्मप्रदेश का विस्तार।

वर्तमान समय में हमारे देश में न्याय की पद्धति जो जारी है उससे हमारे मन पर यह परिणाम हुआ है कि स्मृति ग्रंथों में जिस विषय को व्यवहार प्रकरण नाम दिया गया है वही कायदे का यथार्थ प्रदेश है। जिस मनुष्य को कुछ थोड़ा भी व्यवहारज्ञान हो, वह जब किसी कार्य के करने अथवा न करने का विचार करता है तब सब से पहिले उसके मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि इस कार्य से मैं दीवानी या फौजदारी कायदे की पकड़ में तो न आजाऊंगा। उसके मन में इस प्रकार के विचार का प्रभाव बहुत कम रहता है कि कायदे के अतिरिक्त, सत्य, न्याय, नीति, सदाचार इत्यादि बातों की दृष्टि से भी कोई काम बुरा या भला कहा जा सकता है। इसका फल यह हुआ है कि वर्तमान समय में लोगों के अंतःकरण में कायदा, कायदा बनानेवाले अफसर, और उसके अनुसार काम करनेवाले अधिकारी पुरुषों को छोड़ और किसी बात का भय नहीं देख पड़ता। यही नहीं किंतु यह भी देखा जाता है कि बहुतेरे लोग ऐसे बुरे कामों में प्रवृत्त हो जाते हैं कि जिन पर कायदे के अनुसार कोई कर्रवाई नहीं की जा सकती—बहुतेरे लोग तो अनेक युक्तियों के द्वारा कायदे की पकड़ से बच कर और जान बूझ कर बुरे काम करने लग जाते हैं। लोग यह जानते हैं कि शराब पी कर आम रास्ते में लड़ाई-झगड़ा करना कायदे के विरुद्ध है इस लिये कायदे के भय से लोग इस कायदे में प्रवृत्त नहीं होते। परन्तु वे ही लोग अपने घर में शराब पी कर झगड़ा और लड़ाई किया करते हैं, अपने लड़के-बच्चों और स्त्री इत्यादि जनों को मारते-पीटते हैं, मन माना बुरा बर्ताव करते हैं तो भी उन्हें कायदे के अनुसार कोई दंड नहीं दिया जा सकता। वे भली-भांति जानते हैं कि इस प्रकार के बुरे बर्ताव के लिये वर्तमान कायदों में कोई नियम नहीं बनाया गया है। इस प्रकार के और भी सैकड़ों दृष्टान्त दिये जा सकते हैं जो कि हम प्रति दिन अपने समाज में देखा करते हैं। इन दृष्टान्तों पर से यह बात सिद्ध हो जायगी कि जिस तत्व का ऊपर उल्लेख किया गया है, वह सत्य है—अर्थात् इस समय लोगों को केवल राजकर्तृत्व कायदों ही का भय है, जब तक इन कायदों का प्रभाव हम लोगों पर बना रहता है तब तक हम अच्छे व्यवहार करते रहते हैं, परन्तु हमारे मन पर कायदे के अतिरिक्त सत्य, न्याय, नीति, और सदाचार इत्यादि किसी बात का भय नहीं है, इसी लिये हम लोग वर्तमान कायदों का उल्लंघन न करते हुए अनेक प्रकार के बुरे व्यवहार करते रहते हैं। यह दशा किसी विचारशील मनुष्य को भली न लगेगी। पश्चिमी लोगों के सहवास के कारण कायदों की व्याप्ति के विषय में हम लोगों की भी कल्पना अत्यंत संकुचित और हानिकारक हो गई है।

हमारे धर्म की ( कायदों की ) कल्पना इतनी संकुचित नहीं है। उसकी व्याप्ति बहुत बड़ी है। हमारे धर्म अथवा कायदा शब्द में उन सब बातों का समावेश किया गया है कि जिनका सम्बंध मानव-जाति के सांसारिक तथा पारलौकिक जीवन के साथ लगा हुआ है। अर्थात् मनुष्य के जीवन के सब कार्य नियमबद्ध कर दिये गये हैं। आचार विभाग में वर्णाश्रम धर्म के नियम बताये गये हैं प्रायश्चित विभाग में पापरूप सब कर्मों का निराकरण करने के लिये नियम बताये गये हैं, इन दोनों बातों का हमारे "कायदा" शब्द में समावेश किया गया है। व्यवहार प्रकरण में जो नियम बताये गये हैं उनकी अपेक्षा उक्त कायदों का महत्व अधिक है। आचार और प्रायश्चित्त प्रकरणों का मुख्य कटाक्ष प्रत्येक व्यक्ति के आचरण के सुधार की ओर है क्योंकि व्यक्ति ही समाज का एक मुख्य अंग है। इन विभागों में जो नियम बनाये गये हैं उनके द्वारा व्यक्ति का बर्ताव सुधरता है और व्यक्ति का हित होता है, इतना ही नहीं किंतु समाज की भी उन्नति होती है। चारो वर्ण और चारो आश्रम के धर्म ( कर्तव्य ) इस प्रकार बताये गये हैं कि यदि उन नियमों के अनुसार प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम के व्यक्ति का शील तयार हो जाय तो, व्यवहार प्रकरण में जिन बातों का निषेध किया गया है वे बातें उस व्यक्ति की ओर से कदापि न होंगी। हमारे धार्मिक ग्रंथों ने केवल इसी बात का विचार नहीं किया है कि मनुष्य का शील किस तत्व के अनुसार बनाया जा सकता है, परन्तु उन्होंने इस बात का भी निर्णय किया है कि विशिष्ट प्रकार का शील बनाने के लिये किस पद्धति का अवलंब करना चाहिए। इस विषय का विस्तृत विवेचन आश्रम-धर्म में किया गया है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने मनुष्य के कार्यों के आदि कारण की ओर ध्यान दिया है। सब लोग जानते हैं कि सब कार्यों का मुख्य कारण मन ही है अतएव उन ऋषियों ने सोचा कि मनुष्य के मन में ऐसी एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न कर देनी चाहिए कि जिसकी सहायता से मनुष्य निषिद्ध कर्म में कदापि प्रवृत्त न हो जब यह परिणाम होगा तब व्यवहार प्रकरण में निरूपित राजदंडादि उपायों का अवलंब करने के लिए कोई मौका ही न आयेगा। इसी एक मूल तत्व पर हमारे वर्णाश्रम धर्म की रचना की गई है जो अत्यंत उत्तम है। अन्य देशों के कायदों में इस तत्व के आधार पर की हुई रचना कहीं नहीं देख पड़ती। अब उक्त सिद्धान्त की बातें भली-भांति समझा देने के लिए और वर्णाश्रमधर्म का कुछ परिचय करा देने के लिए, इस विषय के सम्बंध में, मनुस्मृति के कुछ महत्व के प्रमाणों का उल्लेख किया जायगा।

( अपूर्ण )

---

# स्वर्गवासी महादेव गोविंद रानडे।

न्यायमूर्ति रानडे की मृत्यु को, गत सोलहवीं जनवरी के दिन, पूरे बारह वर्ष हो गये। जिस महात्मा का सब समय केवल अपनी मातृभूमि की उन्नति के चिंतन में व्यतीत हुआ करता था, उसकी सांसारिक यात्रा की समाप्ति के अनंतर, इस देश की दशा में न जाने कितने परिवर्तन हो गये हैं। ऐसी अवस्था में जब कभी सार्वजनिक हित का कोई प्रश्न उपस्थित होता है तब लोगों के मन में कुतूहलता-पूर्वक यह जानने की इच्छा होती है कि इस प्रश्न के विषय में रानडे महाशय ने क्या राय दी होती। यद्यपि इस इच्छा की पूर्ति के लिए अब कोई प्रत्यक्ष साधन नहीं है, तथापि उनके ग्रंथों, लेखों, और व्याख्यानों आदि के संग्रह से तथा उनके चरित्र की महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देने से बहुत लाभ हो सकता है। आपका चरित्र-काल सन् १८४२ से १९०१ तक, अर्थात् लगभग साठ वर्ष का है। इस समय को भारतवर्ष की संक्रमण-अवस्था ( Period of transition ) कहना चाहिए। इस समय में भारत की प्राचीन संस्कृति या सभ्यता ( Civilization ) और पश्चिमी नूतन सभ्यता का परस्पर युद्ध हो रहा था। यह युद्ध अब तक जारी है और, कई बरसों तक जारी रहेगा। इस युद्ध की व्यापकता का क्षेत्र भी बहुत बड़ा है। इसके पहले भी, इस देश में, दो भिन्न सभ्यताओं में झगड़ा हो चुका है परन्तु उस झगड़े का स्वरूप, वर्तमान झगड़े के समान, व्यापक नहीं था। प्राचीन समय के वैदिक और बौद्ध मतों के झगड़े से, उस समय की राजनैतिक स्थिति में, क्रांतिकारक कोई परिणाम नहीं हुआ था। 'मध्ययुग' में हिन्दू और मुसलमानों के जो झगड़े हुए उनके कारण हिंदुस्थान के व्यापार तथा व्यवसाय में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। परन्तु वर्तमान समय में, पूर्वी तथा पश्चिमी सभ्यताओं में जो झगड़ा हो रहा है, वह मानवी संस्कृति ( Human civilization ) के सारे अंगों और उपांगों में व्याप्त हो गया है। इन दो भिन्न भिन्न सभ्यताओं के झगड़े से, भारतनिवासियों के आचार ही पर असर हो रहा है। ऐसी अवस्था में बहुतेरे लोगों का व्यापक दृष्टि से विचार करना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव सा जान पड़ता है, क्योंकि व्यापक दृष्टि से विचार करनेवालों की संख्या हमेशा कम हुआ करती है। ऐसे अल्प संख्यक महानुभावों में स्वर्गवासी महादेव गोविंद रानडे का नाम प्रमुख माना जाता है। अतएव आज हम अपने पाठकों को रानडे महोदय के चरित्र की कुछ बातें संक्षेप में सुनाते हैं। आशा है कि इस चरित्र-लेख को पढ़ कर कोई न कोई युवक, इस अलौकिक महात्मा की जीवनी तथा उनके उपदेश-ग्रन्थ हिंदीभाषा में प्रकाशित करने के लिए, अवश्य उत्तेजित होगा।

आपके जीवन चरित्र के दो समान भाग किये जा सकते हैं। सन् १८४२ से १८७१ तक पूर्व भाग और सन् १८७१ से १९०१ तक उत्तर भाग। केवल अंकों की दृष्टि से ये दोनों भाग समान तो देख ही पड़ते हैं परन्तु वे यथार्थ दृष्टि से भी समान ही हैं। इसका कारण यह है कि सन् १८७१ में आपने एडव्होकेट की, अर्थात् अंतिम, परीक्षा पास की। उस समय बाह्यदृष्टि से आपकी विद्यार्थी दशा समाप्त हुई और उसके बाद आपके चरित्र का उत्तर भाग आरंभ हुआ। तात्पर्य यह है कि पूर्व भाग में आपने विद्या प्राप्त की और उत्तर भाग में उसके कार्य का आरम्भ हुआ।

## पूर्व भाग १८४२ से १८७१।

महोदय रानडे की बाल्यावस्था का चरित आपकी पत्नी श्रीमती रमाबाई रानडे ने लिखा है। सन १८५६ में महाशय रानडे कोल्हापुर में मराठी विद्याभ्यास पूर्ण कर, बम्बई में पधारे। सन १८६३ तक आप अंग्रेज़ी शिक्षा का अभ्यास एलफिन्स्टन इन्स्टिट्यूट और कालेज में करते रहे और अन्त में एम० ए० की परीक्षा पास की। सन ६३ से ६६ तक आप उसी कालेज में इतिहास पढ़ाते थे और साथ ही साथ "इन्दुप्रकाश" में लेख भेजा करते थे। सन ६६ से ६७ तक का, महाशय रानडे के विद्याभ्यास का इतिहास, उस वर्ष की पब्लिक इन्स्ट्रक्शन की रिपोर्ट में है। इस समय में आप अध्ययन और अध्यापन दोनों काम किया करते थे। आपके पढ़े हुए ग्रन्थ, शिक्षा देने में प्राप्त किया अनुभव और उसके अनुसार शिक्षा-पद्धति में स्वीकृत मार्ग इत्यादि सब बातों का "डायरी" में बड़ा ही मनोरंजक उल्लेख किया गया है। इसी समय में आप कभी कभी ज्ञान प्रसारक सभा में निबन्ध भी पढ़ा करते थे। सन १८६८ में उन्होंने "the Theory of Population" नामक निबन्ध पढ़ा। यह निबन्ध अनेक दृष्टि से महत्व का है। इन लेखों में स्मृति, कल्पना से और सतत अध्ययन से पूर्णावस्था को पहुँची हुई आपकी भाषा पद्धति का बालस्वरूप दीख पड़ेगा। इस लेख के पढ़ने से यह बात मालूम होगी कि यद्यपि इसमें पश्चिमी विद्वानों के अनेक विचार पाये जाते हैं तथापि वे ज्यों के त्यों नहीं ले लिये गये हैं उनमें इस देश की दशा के अनुसार उचित परिवर्तन कर लिया गया है और उनको हम लोगों के लिए उपयुक्त बना लिया गया है। "इन्दुप्रकाश" नामक समाचार पत्र में प्रकाशित उनके लेखों से यह बात भली भाँति विदित होती है कि मानव समाज की सर्वांग उन्नति की ओर वे कैसी व्यापक-बुद्धि से लक्ष्य रखते थे और प्रचलित विषयों की भी वे किस प्रकार चर्चा किया करते थे। खेद की बात है कि ये सब लेख पुस्तकरूप से एकत्र करके अब तक प्रकाशित नहीं हुए हैं।

सन १८६६ ई० में आपको मराठी अनुवादक (Translator) की नौकरी मिली। इस पद पर रहते हुए आपने मराठी भाषा की अनुपम सेवा की। अंग्रेज़ी राज्य के आरम्भ से सन १८६८ तक प्रकाशित सब ग्रन्थों की सूक्ष्म रीति से आपने आलोचना की और उस विषय पर एक उत्तम रिपोर्ट आपने प्रकाशित की। इसी विषय पर "टाइम्स ऑफ इण्डिया" में भी आपने एक लेख माला प्रकाशित की थी। यदि यह लेख माला और उक्त रिपोर्ट एकत्र करके पढ़े जायँ तो मराठी-साहित्य के अस्सी वर्षों (१८१८-१८६८) का इतिहास सहज मालूम हो जायगा। इसके बाद आप कुछ समय तक अक्कलकोट के दीवान और कोल्हापुर में प्रधान न्यायाधीश के पद पर रहे। सन १८७१ ई० में आपने एडवोकेट की परीक्षा पास की।

इसी समय हिन्दुस्थान के आय-व्यय के विषय में पार्लमेंट द्वारा नियमित एक कमेटी इंग्लैंड में जाँच कर रही थी। यद्यपि उस कमेटी की कार्रवाई की कोई रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई थी। तथापि उस कमेटी के कार्यक्रम की सब बातों का उचित विचार करके सन १८७७ में आपने "A Revenue Manual of British Empire in India" नाम की पुस्तक प्रकाशित की। सन् १८८६ में जब आप Finance Commission पर नियत किये गये तब उक्त अभ्यास से राष्ट्र-हित का कार्य करने के लिए बहुत लाभ हुआ। सन १८७८ में पूना की सार्वजनिक सभा की ओर से एक त्रैमासिक पत्र निकलने लगा। उसमें अनेक विषयों पर बहुत उपयोगी निबन्ध आपने प्रकाशित किये हैं। यद्यपि उन लेखों के आरम्भ या अन्त में रानडे महोदय का नाम देख नहीं पड़ता तथापि विषय विवेचन की पद्धति से लेखक का परिचय सहज हो सकता है। इस त्रैमासिक पत्र में उस समय के अनेक सार्वजनिक विषयों के सम्बन्ध में विशेषतः राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में, रानडे महोदय के स्वतन्त्र विचार दृष्टिगोचर होते हैं। किसी विषय के सब अंगों की ओर उचित ध्यान देकर चर्चा किस प्रकार की जाती है और प्रतिपक्षियों का मत अपनी ओर किस प्रकार खींच लिया जाता है इत्यादि सब बातें इन लेखों में देख पड़ती हैं। इन लेखों में साहित्य समाज और शिक्षा इत्यादि के विषय में जो विवेचन किया गया है वह आदर्श रूप है। सन १८८७ में सामाजिक परिषद का पालन पोषण आप ही ने किया। "महाराष्ट्र की सत्ता का उदय," "धर्म पर व्याख्यान" इत्यादि आपके सर्वमान्य ग्रन्थ हैं।



स्व० महादेव गोविन्द रानडे।

पहले इस बात का उल्लेख किया गया है कि स्वा० रानडे को स्वर्गवासी हाकर एक तप अर्थात् बारह वर्ष बीत गये। समय का प्रवाह अखण्ड बहता ही रहता है और इसी लिए यह अवधि बढ़ती ही रहेगी। तथापि इतना समय बीतने पर भी महाराष्ट्र देश में—नहीं नहीं सारे देश में उनकी स्मृति लुप्त नहीं हुई है। जिस मनुष्य की स्मृति सदैव जागृत रहती है वह मरने पर भी जीवित रहने के ही सदृश है, इस न्याय से स्वा० रानडे न हमारे पास से कभी गये न कभी जाने वाले ही हैं।

इस प्रकार यदि अन्तःकरण में स्मृति जागृत रहे तिस पर भी उसे प्रगट रूप देना अनेक कारणों से आवश्यक है। इसी लिए स्वा० रानडे के स्वर्गवासी होते ही बम्बई, मद्रास, पूना, इलाहाबाद, कलकत्ता, और लाहौर इत्यादि स्थानों में बृहत् सभाएँ की गईं और उनमें उनके योग्य स्मारक बनाने के प्रस्ताव स्वीकृत हुए। उस प्रस्ताव के अनुसार ही मद्रासी देशबान्धवों ने उनके नाम पर एक अर्थशास्त्र और इतिहास-विषयक वाचनालय स्थापित किया है। यह सब को मालूम ही होगा कि रानडे इकानोमिक इन्स्टिट्यूट नाम का एक स्मारक पूना में बनाया गया है। परन्तु बम्बई का स्मारक दोनों संस्थाओं के सदृश उपयुक्त प्रकार का नहीं है। यह स्वा० माननीय रानडे की पाषाणमूर्ति के रूप में है और यद्यपि मूर्ति एक आदर स्थान में होना भी अवश्य था उनके नाम पर स्थापित पूर्वोक्त संस्थाओं से यद्यपि राष्ट्र को अनन्य लाभ होता रहता है तिस पर भी उनकी मूर्ति को अपना चिरकाल तक स्थापित रखना भी ऐतिहासिक दृष्टि से हमारा एक कर्तव्य ही था। इसमें भी एक विशेष बात यह है कि, स्मारकमूर्ति को पाश्चात्य बम्बई के सुप्रसिद्ध कारीगर श्रीयुत म्हात्रे ही ने बनाई है। देशी कारीगरी को उत्तेजन देने की दृष्टि से भी यह सर्वथा उचित ही है—इस विषय में सब का एक मत ही होगा।

स्वा० रानडे की स्मारक सम्बन्धी सभा सन १९०१ में सर वॉमन स्कॉट की अध्यक्षता में हुई थी। चन्दा एकत्रित करने के लिए जो कमेटी बनाई गई थी उसके सभी नामी मुखिया नियुक्त किये गये थे। इन सभों ने यथोचित श्रम करके रुपया इकट्ठा किया। वे रुपये आज तक ब्याज से बढ़ते रहे और इसी लिए ब्याज और मूलधन मिल कर अब ४५ हज़ार रुपये कमेटी के हाथ में प्राप्त हुए।

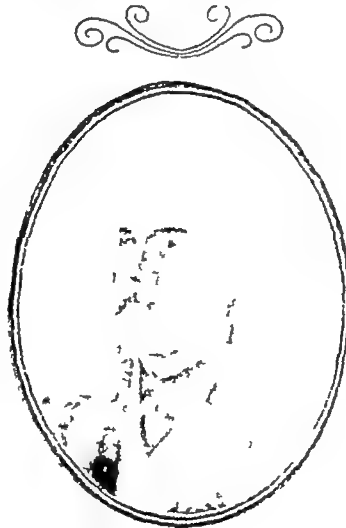
# सायरस कर्टिस।

सायरस कर्टिस अमेरिका के एक विशाल छापखाने के स्वामी थे। आपका जन्म सन् १८५० जून महीने की १५ तारीख को मेन संस्थान के पोर्टलैंड नामक गांव में हुआ। उस समय आपके पिता बैंड बजानेवाली एक मण्डली के नौकर थे। आपकी प्राथमिक शिक्षा का आरम्भ पोर्टलैंड की एक शाला में हुआ। ज्योंही आपको लिखने तथा पढ़ने की कला हस्तगत हुई,त्योंही आपकी प्रवृत्ति छापनेसम्बंधी विषयों की ओर झुकी। १० वर्ष की अवस्था में ही आप अपनी माता के दिये हुए एक नकली (बनावटी) छापेखाने से अपने मित्रों के नाम कार्डों पर छाप छाप कर उन्हें दिया करते थे। बारह वर्ष की अवस्था में आपने एक दिन अपनी माता से मिठाई के लिये कुछ पैसे मांगे। माता ने हँसी में कहा, "तू अब श्रम करके क्यों नहीं कमाता?" हँसी में कहे हुए इन शब्दों का, बालक सायरस के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसी दिन से उसने पैसे कमाना आरम्भ किया। एक समाचारपत्र बेचनेवाले बालक से पहिचान कर, वह रोज समचारपत्रों के चार अथवा छै अंक बेचने लगा। उस समय उस देश में बहुत हलचल थी और इस कारण समाचार पत्रों की बहुत सी आवृत्तियां प्रकाशित होती थीं। इस अवसर से सायरस ने पूर्ण रीति से लाभ उठाया। इसके बाद सायरस के कुछ दिन, प्रात काल समाचारपत्र बेचने में तथा दुपहर को विद्याभ्यास करने में, व्यतीत हुए। समाचार पत्र सम्पादित करनेवालों से घनिष्टसम्बंध होने के कारण सायरस के मन में भी, एक समाचार पत्र स्वतं निकालने की प्रबल अभिलाषा उत्पन्न हुई। आपने अपने गोल्ड नामक मित्र से इस सम्बन्ध में सलाह कर एक "सायरस और गोल्ड" नामक कम्पनी स्थापित की और "यंग अमेरिका" नामक एक ही पृष्ठ का बाल सम्पादित पत्र ग्राहकों के सामने उपस्थित किया। इस कम्पनी की पूंजी बिलकुल कम थी। सायरस का परिचय एक छापेखानेवाले से था, इसलिये उसने एक पृष्ठ के समाचार पत्र की १०० प्रतियां १५ रुपयों में निकाल देने का वचन दिया। सायरस ने उसी दिन रात्रि को अपना अखबार लिख डाला और उस पत्र को छपवाया। इस बाल सम्पादक ने इसकी पहिली प्रति अपनी माता को बड़ी ममता से पढ़ने के लिये भेंट की। ये दोनों (सायरस और गोल्ड) पत्र सचालक अपने विद्याभ्यास से बचे हुए समय का उपयोग ग्राहकों की संख्या बढ़ाने में किया करते थे। ऐसा अटल परिश्रम करने पर भी उन्हें छापेखानेवाले को देने के लिये आवश्यक धन न प्राप्त हो सका। अन्त में सायरस के पिता को ही, उन्हें कुछ आर्थिक सहायता करनी पड़ी। समाचार पत्र बेंच कर प्राप्त किये हुए धन में से सायरस ने कुछ रुपयों से बोस्टन जाकर, एक छापखाना और कुछ टाइप मोल लिये। फिर आप अपना समाचार पत्र स्वयं अपने ही छापेखाने से प्रकाशित करने लगे। परन्तु दुर्भाग्य से इस समय पोर्टलैंड में प्रचंड अग्नि प्रकोप हुआ और उसमें यह छापाखाना जलकर भस्म हो गया, इस कारण "यंग अमेरिकन" पत्र इस दुनिया से चल बसा।

अनंतर सायरस, बोस्टन नगर में गये और वहां डेली टाइम्स पत्र के लिये विज्ञापन मिलानेवाले एजंट हुए। वहां आपने अपने परिश्रम से, जो विज्ञापन टाइम्स को न मिलते थे, वे मिला दिये। कुछ समय के बाद आपके और टाइम्स संचालक के बीच विरोध उत्पन्न हुआ, इस कारण आपने अपने एक मित्र की सहायता से "बोस्टन इनडिपेंडेंट," नाम का एक समाचार पत्र निकाला, परन्तु उसमें भी आपको अपयश ही प्राप्त हुआ, इसलिये वह पत्र शीघ्र ही बंद हो गया।

सन् १८७५ ईसवी में बोस्टन के 'मिस लुइस नैप' से आपका विवाह सम्बन्ध हुआ। इस समय आपकी अवस्था २५ वर्ष की थी। विवाह होने के उपरान्त आप फिलाडेलफिया को गये और वहां अपनी पत्नी और साली की सहायता से "टायबून फार्मर" नामक पत्र निकाला। इस पत्र के मालिक स्वयं आप ही थे और इसके सम्पादक प्रो० थॉमस मिहान थे। इस पत्र का वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया था। इस के थोड़े ही वर्षों के बाद आपकी पत्नी का स्वर्गवास हुआ। आपकी पत्नी का लेखन कौशल्य असामान्य था। विशेषत स्त्री विषयक कला सम्बन्धी विषयों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। यह आपकी ही सहायता का फल था, कि "ट्रिबून फार्मर" के ग्राहकों की संख्या ४८००० से अधिक हो गई थी। इस पत्र में विशेषत कृषि-सम्बन्धी लेखों की अधिकता रहती थी, परन्तु जब मि० कर्टिस ने देखा कि कृषिबल के कुटुम्बी जन भी इस पत्र को पढ़ते हैं तब आपने एक पूरे पृष्ठ में स्त्री विषयक उपयुक्त बातें प्रकाशित करने का निश्चय किया। यह विषय 'स्त्री और गृह' नामक शीर्षक में प्रकाशित किया जाता था। इस विभाग में मुद्रित होनेवाली बातें ग्राहकों को इतनी प्रिय मालूम होती थीं, कि उन्हें इस विभाग के विषय में और भी अधिक लिखना पड़ता था।

एक समय कर्टिस साहिब ने अपनी स्त्री से कहा "जब अपने मासिक पत्र के स्त्रीसम्बधी विषयों के दो तीन कॉलम ही इतने प्रिय हैं तो मालूम होता है कि यदि स्त्रीसम्बन्धी एक स्वतंत्र मासिक पुस्तक निकाली जाय तो वह अवश्य प्रिय होगी, इस पर आपकी स्त्री ने कहा कि इस प्रकार का एक पत्र मैं सम्पादित कर सकूंगी। आप उसके मुद्रित कराने का प्रबंध कीजिये। इस विचार का फल यह हुआ कि १८८३ दिसम्बर की पहिली तारीख को एक ८ पृष्ठ का 'लेडिज होम जर्नल' (अबला गृह समाचार) नामक पत्र लोगों के सन्मुख उपस्थित हुआ। इसके बाद सायरस कर्टिस ने अपनी चित्ताकर्षक भाषा में एक विज्ञापन लिखा, और एक विज्ञापन देने वाली कम्पनी को १०००० रु० दे वह सब जगह बँटवाया। इस विज्ञापन द्वारा यह प्रसिद्ध किया गया था कि कोई भी ४ आने देकर तीन महिने तक इस मासिक पत्र का ग्राहक हो सकता है और फिर मासिक पत्र पसंद पड़ने पर वह वर्ष भर का मूल्य देकर ग्राहक बन सकता है। इस उपाय से एक वर्ष के भीतर ही उस पत्र की ग्राहक संख्या २५००० से अधिक हो गयी, और दूसरे वर्ष उसकी ग्राहक संख्या पहले की अपेक्षा चौगुनी हो गयी। इस नवीन मासिक पत्र का वार्षिक मूल्य डेढ़ रु० था परंतु मि० कर्टिस ने ऐसा प्रबंध किया था कि यदि ४ स्त्रियां उस पत्र को एक साथ मगावें तो ४ अंक ३) रु० में ही भेज जायगे। इस नये प्रबंध का इतना उत्तम परिणाम हुआ कि हर एक पत्र द्वारा चार चार ग्राहक होने की उन्हें खबर आने लगी। ऐसा दृष्टिगत होने पर कर्टिस साहब अपने मासिक पत्र के विज्ञापन फिर द्विगुणित उत्साह से देने लगे। इस प्रयत्न से उन्हें ऐसी यश प्राप्ति हुई कि तीन वर्ष के भीतर ही उनकी ग्राहक संख्या ४ लाख हो गई। बाद फिर उन्होंने प्रसिद्ध लेख मिलाने की योजना की और यह बात सब को विज्ञापन द्वारा विदित की। इस योजना से व्यय की वृद्धि हो गई और इस कारण ऊपर लिखा हुआ प्रबंध बंद कर दिया गया, इससे ग्राहक संख्या की वृद्धि में कुछ बाधा पड़ी, परंतु कर्टिस साहब ने विज्ञापन देना जारी ही रक्खा। अंत में ग्राहक संख्या ५ लाख तक बढ़ गई। १८८६ ईसवी में आपका यह मासिक पत्र अधिक सुन्दरता से प्रकाशित होने लगा और इसका वार्षिक मूल्य ३ रु० हो गया। मूल्य बढ़ने से हजारों ग्राहक कम होने लगे इस कारण ऐसे समय मि० कर्टिस और भी जोर से विज्ञापन देने लगे। अधिक श्रम के कारण इस बार आपका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ने लगा और आप बीमार पड़ गये। तिस पर भी मिसेस कर्टिस ने घर का काम सम्हाल मासिक पत्र का सम्पादन भी किया और ऐसे कठिन समय में पत्र की पूरी पूरी रक्षा की।

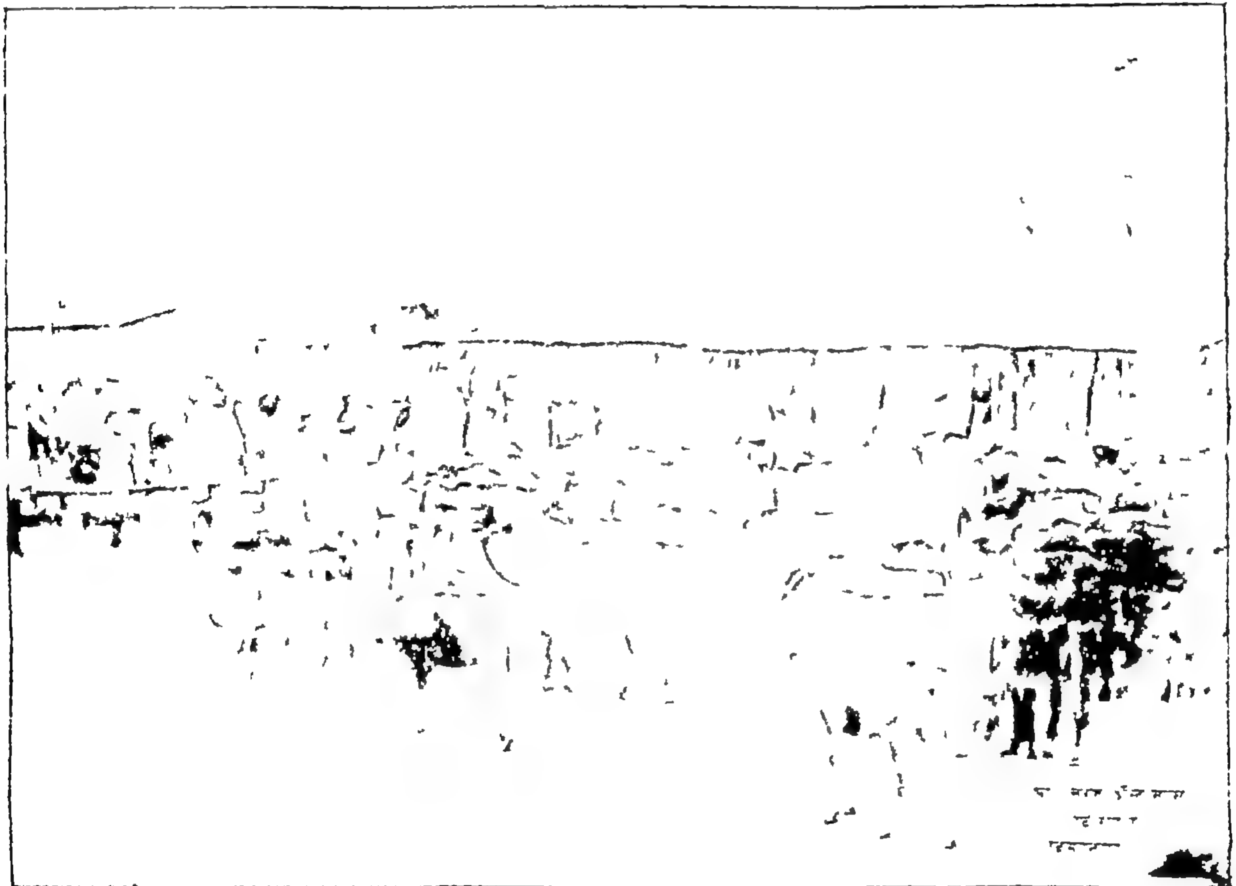

सायरस कर्टिस।

सन् १८८६ से इस मासिक पत्र के सम्पादक मि० एडवर्ड बॉक हुए। इस समय से इसके सुधार के लिये और विज्ञापन के लिये बहुत धन खर्च किया। मि० कर्टिस को, पाठकों के मन पर परिणाम कारक तथा मनमोहक विज्ञापन लिखने की कला, पूर्ण रूप से हस्तगत हो गई थी और ऐसे चित्ताकर्षक विज्ञापन सब जगह बांटने में उन्होंने एक वर्ष में ही ३ लाख डालर व्यय किये। नदी के पूर के पानी की तरह बहनेवाले इन विज्ञापनों का और मासिकपत्र के सुधार का यह फल हुआ कि उसकी ग्राहक संख्या दस लाख हो गई और उसका वार्षिकमूल्य ५) रु० तक हो गया तिस पर भी

ग्राहक संख्या न घटी। इस समय इस पत्र की महीने में १० लाख ३० हजार प्रतियां बिकती हैं। १८९७ साल में आपने "स्याटरडे इवनिंग पोस्ट" नामक एक खराब स्थिति के पत्र को प्रकाशित करने का हक़ मोल लिया—और उसे साप्ताहिक कर दिया। आप उसमें भी अपने पूर्व मासिक पत्र के सदृश ही सुधार करने लगे। इस समय उस पत्र के १० लाख से भी अधिक ग्राहक हैं। "लेडिज होम जर्नल" की प्रतियां लेजाने के लिये २२० और "स्याटरडे इवनिंग पोस्ट" की प्रतियां लेजाने के लिये ३१० गाड़ियां लगती हैं। उत्तमोत्तम लेख कम मूल्य में मिलना और [illegible] विज्ञापन [illegible]। इन दो सरल तत्वों का काम में परिणत करने ही से कर्टिस को छापेखाने में यश प्राप्त हुआ। मि० कर्टिस का लाभों को, फंसा कर धनोपार्जन करना बिलकुल पसन्द न था। पहले उन्हें जो ऋण हुआ था उसे उन्होंने अपने अनुकूल समय में सब, ब्याज सहित, दे डाला।

प्रथम जब मि० कर्टिस ने फिलाडेलफिया में अपना कारखाना खोला था तब वे १०) रु० किराये के मकान में रहते थे परन्तु अब वे ६ लाख रुपयों से बनाई हुई एक भव्य इमारत में निवास करते हैं। पहिले "लेडिज जर्नल" दूसरे छापेखाने में छपता था परन्तु अब छापने के लिये और उसके सम्बन्ध की व्यवस्था करने के लिये आठमंजली दो विशाल इमारतें भी कम नहीं होतीं। मि० कर्टिस ने अपने पत्रों के सम्पादकत्व का कार्य ऐसे सज्जनों के हाथ में दे रक्खा है, कि वे जब कभी चाहें, तभी बड़े महत्व का काम उन पर छोड़ कर दूरदेश में उपयुक्त हाल मिलाने के लिये जा सकते हैं। खेल में एक पृष्ठ का साप्ताहिक पत्र निकालने वाला बालक, केवल दीर्घ परिश्रम से उन्नति के शिखर पर पहुंच सकता है, यह बात किसी भी कार्य तत्पर तरुण हृदय में आशा तथा प्रेरणा उत्पन्न किये बिना नहीं रह सकती।

# अकाल-पीड़ित जानवर।



हिन्दुस्थान प्राचीन समय से कृषि प्रधान देश है। वर्तमान समय में भी कृषि ही इस देश के अधिकांश लोगों की मुख्य जीविका है। मालूम होता है कि, भविष्य में भी बहुत दिनों तक यही कृषि हमारे जीवन का एक मात्र आधार बनी रहेगी। यहां इस बात की चर्चा करने का मौका नहीं है कि उक्त दशा अच्छी है या नहीं परन्तु इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए कि, जब तक हम लोगों को अपने जीवन के लिए कृषि ही पर अवलम्बित रहना है तब तक कृषि के उपयोगी जानवरों की उचित रक्षा करना हमारा परम आवश्यक कर्तव्य है।

अहमदनगर में हजारों ढोर, घास और पानी के अभाव से मर रहे थे। उस जिले के बड़े बड़े धीमानों और व्यापारियों ने ढोरों की रक्षा का बहुत अच्छा प्रबंध किया है। हाल ही में वहां सब लोगों की एक सभा हुई थी। सभापति के आसन पर मेकानकी साहब विराजमान थे। निराश्रित ढोरों की रक्षा के लिए 'कैटल रिलीफ' नामक एक फंड खोला गया जिसमें बहुत सा धन एकत्र किया गया है। इस चित्र में दर्शित ११० जानवर ३००) रु० में खरीदे गये। मेकानकी साहब स्वयं उन जानवरों का घास खिला रहे हैं।

यह सब ठीक ही ठीक हो रहा है। परन्तु इस बात का विचार कोई नहीं करता कि हमारे जानवर अकाल से पीड़ित क्यों होते हैं? जब कि इस देश के निवासियों के जीवन के लिए एक खेती ही मुख्य आधार है, तब खेती के जानवरों को अकाल से पीड़ित होने का मौका क्यों आता है। क्या परमेश्वर हमारे देश के किसानों से अप्रसन्न हो गया है? क्या हमारे राज्य के कर्मचारी इस बात की ओर ध्यान नहीं देते? क्या हमारे देश की उन्नति करनेवाले सत्पुरुष इस विषय को विचार योग्य नहीं समझते? है ना भी क्या? इस दुर्दशा का मुख्य कारण क्या है? हम आशा करते हैं कि हमारे पाठकगण इस महत्व के विषय पर कुछ विचार करेंगे और इस बात का निर्णय करेंगे कि हमारे जानवर अकाल से पीड़ित क्यों हुआ करते हैं? जब तक सच्चे कारण का पता न लगाया जायगा तब तक अनेक उपाय करने पर भी, स्थायी हित न होगा।

# रेलवे दुर्घटना।

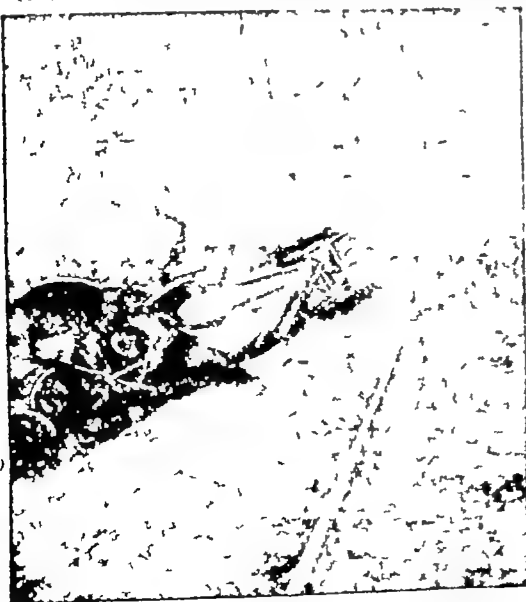
ता० ३० अप्रैल को सवेरे पांच बजे नागपुर और भुसावल के बीच में वोरगांव नाम के एक छोटे से स्टेशन के पास माल-गाड़ी और पासिंजर की टक्कर हुई। छै डब्बों का चकनाचूर हो गया और ३२ आदमियों की मौत हुई। दो अंग्रेज और ४८ हिन्दुस्थानी जखमी हुए, परन्तु जखमी आदमियों की ठीक ठीक संख्या मालूम होना कठिन है। मालगाड़ी के आठ डब्बे और पासिंजर के एंजिन का भी चूर्ण



( नं० १ ) टक्कर होने के बाद का दृश्य।

हो गया। रेल के आने जाने का रास्ता बहुत बिगड़ गया था, और लाइन पर से गाड़ियों के आने-जाने के लायक रास्ता बनाने के लिए अठारह घंटे लगे। इस पर से यह ज्ञात हो गया होगा कि यह कितनी भयंकर दुर्घटना हुई होगी।

इस दुर्घटना के समय एक माल गाड़ी कांटेपुर स्टेशन से छूट कर वोरगांव स्टेशन के पास आई और स्टेशन में आने के लिए सिगनल



( नं० २ ) टक्कर लगने से लोहे के भी टुकड़े टुकड़े हो गये, उसका दृश्य।

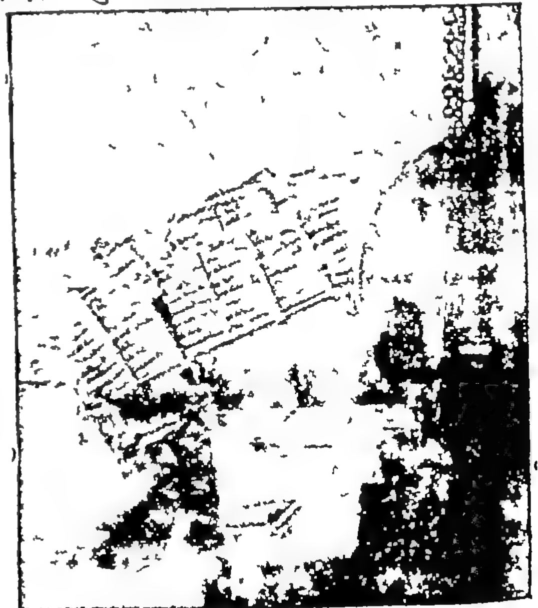
न मिलने के कारण वहीं खड़ी रही। नागपुर से कांटेपुर १८० मील है और कांटेपुर से वोरगांव कुल ५ मील की दूरी पर है। कांटेपुर से मालगाड़ी को चले जाने के कुछ देर बाद पासिंजर ट्रेन स्टेशन पर आई। पहिले जो मालगाड़ी रवाना हो गई थी उसको छूट कर बहुत देर हो गई थी और वोरगांव स्टेशन कुल ५ मील की दूरी पर था इसलिए यह शंका भी नहीं हो सकती थी कि मालगाड़ी उस स्टेशन पर न पहुंची होगी।

इसी समय वोरगांव और कांटेपुर के बीच का लाइन क्लीयर यंत्र बिगड़ गया था। इसलिए मालगाड़ी के स्टेशन पर पहुंचने के पहिले ही 'लाइन क्लीयर' का गोला पासिंजर गाड़ी के गार्ड को दे दिया गया और यह पिछली गाड़ी (पासिंजर) भी कांटेपुर से छूटी। पहिले आई हुई मालगाड़ी अभी तक स्टेशन के बाहर ही खड़ी थी और उसके पीछे के लैम्प बुझ गये थे। रास्ते में कुछ घुमाव होने के कारण पासिंजर चलानेवाले को पहिली गाड़ी यानी



( नं० ३ ) रास्ता सफाई का प्रारम्भ।

मालगाड़ी नहीं दिखी। पासिंजर पूरे वेग से आ रही थी। जब वह मालगाड़ी के समीप आई तब एक भारी टेकड़ी के समान कुछ देख पड़ने लगा। तब पासिंजरवाले ने गाड़ी को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह इतनी तेजी से आ रही थी कि यद्यपि इंजिन की भाफ बंद कर दी गई तब भी वह फिसलती ही चली गई और अंत में मालगाड़ी से टकरा गई। टक्कर होते ही चारों ओर से एकदम दुःख की आवाज आने लगी।



( नं० ४ ) धक्का हटानेवाला यंत्र, रास्ते पर से, टूटे हुये डब्बे आदि को, अलग कर रहा है।

यह समय बिलकुल नींद का था और बहुतेरे लोग गाड़ी में पड़े सोते थे। गाड़ी का धक्का लगने के कारण सब डब्बे दोनों तरफ से चपटे हो गये और बीच का भाग फूल कर चौड़ा हो गया। जो लोग बीच के डब्बों में थे उन्हें एक ओर से ऐसा धक्का लगा कि वे खिड़की से उछल कर बाहर आ गिरे। इस प्रकार जो लोग बाहर गिर न सके बचे बाकी कुछ लोग तो नींद ही में देवलोक पहुंचे, कुछ लोग इस दुर्घटना के बाद चोट की वेदना असह्य होने के कारण गतप्राण हुए और कुछ लोगों ने थोड़ी देर के बाद यमलोक का

रास्ता लिया। जिस स्थान में यह अपघात हुआ वह बिलकुल ही शून्यस्थान था, इसलिये जख़मी लोगों को वहां से १२ मील पर अकोला नाम के गांव में ले जाना पड़ा। यह सब व्यवस्था होने तक सब जख़मी आदमी बगैर दवापानी के तड़फड़ा गये। इस समय स्टेशन के आसपास रहनेवालों ने यथा सम्भव मदद की। कहते हैं कि एक छोटी सी ब्राह्मण की लड़की बालटी में पानी भरभर के जख़मी लोगों को देती थी। इस दुर्घटना की खबर अकोला शेगांव, भुसावल, वर्धा और नागपुर वगैर स्थलों में बहुत जल्दी पहुंची और रेलवे के अधिकारी, इंजिनियर तथा डाक्टर, उस जगह आ पहुंचे। परन्तु यह खबर बम्बई में दो पहर तक नहीं पहुंची। रेलवे के अधिकारियों ने पहिले जख़मी आदमियों को अस्पताल की ओर रवाना किया बाद इसके दूसरे लोगों को रवाना करने का उपाय किया और अन्त में बोझा उठाने का यन्त्र लाकर रास्ता साफ करना आरम्भ किया। इस यन्त्र से एक ही दफे में पैंतीस टन का बोझा रास्ते पर से दूर फेंक दिया जा सकता था। चित्र नं० ८ में इस यन्त्र से काम करने के समय का दृश्य है। इस दुर्घटना से मरे हुए आदमियों की और जख़मी आदमियों की नुकसानी भर देने के सिवाय रेलवे कम्पनी के चार पांच लाख रुपये बरबाद हुए होंगे। पहिले इस दुर्घटना की जांच रेलवे के अधिकारियों ने स्वयं गुप्त रीति से की बाद को बोरगांव के स्टेशन मास्टर, पाइन्टमैन व ड्राइवर और तार यन्त्र तथा लाईन क्लीयर-यन्त्र के एक इन्सपेक्टर पर मुकदमा जारी किया गया है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि कानून के मुताबिक जिस आदमी की लापरवाही साबित होगी उसको सजा होगी परन्तु जिन लोगों की जान गई वह किसी उपाय से लौट नहीं सकती। दुर्घटना से जो दुःखदायक मृत्यु हुई उसमें से श्रीयुत मोरो केशव दामले एम० ए० नागपुर सिटी नील हाईस्कूल के हेड मास्टर और उनकी स्त्री सौ० तावाई की मृत्यु अत्यन्त शोक जनक है। उनकी एक ७ वर्ष की छोटी लड़की ईश्वर कृपा से बच गई।



पं० मोरो केशव दामले एम्० ए०

श्रीयुत दामले का जन्म रत्नागिरी के मालगुंड में सन १८६८ नवम्बर में हुआ। मरने के वक्त उनकी उमर करीब करीब ४४ वर्ष की थी। उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी थी और वे शान्त स्वभाव के थे। अगर उनकी मृत्यु इस दुर्घटना से न हुई होती तो वे बहुत दिनों तक जीते रहते—१५–२० वर्ष और नौकरी करते रहते। मोरोपन्त पहले अंग्रेजी शिक्षा पाने के लिए तेरहवें वर्ष अपने बड़े भाई श्रीधर केशव दामले के पास बड़ोदा गये। उसी साल श्रीधर केशव वहां नये कालेज के प्रोफेसर नियत किये गये थे। परन्तु श्रीधर केशव की एक वर्ष की नौकरी पूरी होने के पहले ही नवज्वर से उनकी मृत्यु हो गई और मोरोपन्त पूने में अपने मामा रामचन्द्र गणेश कारदीकर वकील के पास गये। उस वक्त वर्धे में शिक्षा का कोई उचित प्रबन्ध न था। तब वे अमरावती को गये और मेट्रिक की परीक्षा अमरावती हाईस्कूल से ही पास की। मेट्रिक पास होने के बाद वे दक्षन कालेज से बी० ए० हुए और अध्यापक नियत किये गये। प्रि० सेल्बी और डॉ० सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर इन्हें बहुत चाहते थे। एम०ए० की परीक्षा पास होने के पहिले ही सन् १८९३ में वे माधव कालेज उज्जैन के प्रोफेसर नियत किये गये। इसी जगह पर वे सन् १९०७ के आखिर तक रहे। सन् १९०८ जनवरी में वे नागपुर के नील हाईस्कूल के सुपरिंटेंडेंट नियत किये गये और मरते तक उसी जगह पर रहे।

वे नागपुर से पूने को अपने छोटे भाई के पास गरम-ऋतु की छुट्टी भर रहने के हेतु से जा रहे थे। खास कारण यह था कि उनकी स्त्री की प्रकृति बहुत खराब हो गई थी और नागपुर की कड़ी धूप में उनकी प्रकृति और ज्यादा बिगड़ने का डर था। इसी लिए पूने की ठंढी हवा में जाकर कुछ दिन रहने का उनका इरादा था। परन्तु जिस दिन वे पूने में पहुंचनेवाले थे उसी दिन सवेरे उनके भाई के पास अकोलेवालों के तरफ से उनकी मृत्यु का तार पहुंचा। सचमुच यह किसी उपन्यास की घटना ही के समान अद्भुत बात हुई। मोरोपन्त के मरने के बाद उनके चार छोटे बालक—एक लड़का और तीन लड़कियां—अनाश्रित हो गये। आप मराठी के एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार थे। आपका शास्त्रीय मराठी व्याकरण ग्रन्थ, आपका नाम अजर-अमर बना देगा। आपने न्याय शास्त्र पर अंग्रेजी पद्धति के अनुसार दो ग्रन्थ लिखे हैं। आपने वर्क नामक ग्रन्थकार के Present Discontent (वर्तमान असन्तोष) नामक ग्रन्थ का अनुवाद ग्रन्थमाला में प्रकाशित किया है। वे इधर कुछ दिनों से बहुत ही धार्मिक हो गये थे और दत्तात्रय आपके इष्ट देव थे। किसीने भी पैसों की मदद मांगी तो 'नहीं' का जवाब नहीं देते थे। वे अपने गुरु को अपने तनख्वाह में से साल भर या छः महीने तक १०० रुपये नियम से भेजा करते थे। इसके सिवाय नजदीक के रहनेवाले बहुत से विद्यार्थियों को वे अपने पास के पैसे से पढ़ाते थे। उनकी रहने की स्थिति और पोशाक बहुत सादी थी। उनका बर्ताव बहुत ही पवित्र, शुद्ध और दोषरहित था। शिक्षक के कार्य के सिवाय वे किसी दूसरे धन्धे के तरफ ध्यान नहीं देते थे। ऐसे सदाचारी, विद्वान धार्मिक बुद्धि के मनुष्य की आकस्मिक मृत्यु से सब लोग दुःखित हो रहे हैं। जैसे गत साल टिटानिक बोट डूबी और स्टेड-साहब मरे उसी प्रकार यह भी घटना हुई। हम परमेश्वर से यह प्रार्थना करते हैं कि वे मोरोपन्त और उनकी स्त्री की आत्मा को सद्गति देवें।



कुमार। रत्नप्रभा–स्वरूप।

# शिव-दूत-संवाद।

माघ कृ० १४ को महाशिवरात्र थी। उस दिन रात के समय यद्यपि आकाशमण्डल तारागणों से शोभित था तथापि पृथ्वी पर सब ओर घोर अन्धकार ही छाया हुआ था। तिसपर भी हिन्दुओं का आज विशेषतः शिवभक्तों का यह अत्यन्त पवित्र दिन था। इसलिये ऐसे घनघोर अन्धकार में से भी शिवोपासकों के झुण्ड के झुण्ड शिवमंदिर की ओर जा रहे थे। शिवालय के सभास्थान में महोत्सव की तैयारी बड़ी सजधज से हो रही थी। सामने के सभामण्डप में शिवपुराण की किसी कथा के आधार पर कोई पण्डित [illegible] [illegible] वर्णन कर रहा था। भानुदास निद्राटवी से लड़ाई करता ध्यान में तल्लीन होने का अपनी ओर से बहुत प्रयत्न करता था। यह मन्दिर में महिम्नस्तोत्र का [illegible] [illegible] शिव लीलामृत के पाठकों की [illegible] [illegible] दर्शन करके लौट जानेवालों की भी [illegible] [illegible] थी। देवपत्रियों [illegible] [illegible]

होता था परन्तु बीच बीच में उनको उठा कर अलग कर देते थे। भाविक स्त्रियां अनेक प्रकार से सजाये हुए और उत्साह में मग्न थीं। कोई कोई तो केवल मन्दिर में दर्शन ही कर शिवदर्शन दान ही अपने को धन्य मानते थे। कोई विनती करते थे और कोई पश्चात्तापपूर्वक उन अपने पाप की निवृत्ति हो इसी हेतु मन ही मन में प्रार्थना करते थे। कई आदमियों ने अपने पाप को अनेक बार पुनः [illegible] की थी इसलिए ईश्वर की शोभा का दर्शन कर उनके मन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ऐसे अनेक तरह के मनोविकारों से प्रेरित होकर, दर्शनार्थ आये हुए प्रत्येक व्यक्ति के अन्त करण की परीक्षा करके उसे उसकी भक्ति के अनुसार अच्छा या बुरा फल देना मानवी बुद्धि के बाहिर है। तिस पर भी सर्वसाक्षी परमेश्वर को यह एक कौतुकपूर्ण खेल ही है, इसी लिए उसने वह काम अपने कोट्यावधि दूतों पर छोड़ दिया। इन दूतों में श्रीशंकर ने अपने सर्वसाक्षित्व का थोड़ा थोड़ा अंश रख छोड़ा था; इसी लिए यह संभव न था कि इस दृश्य को देख कर भूल से भक्तों की अभक्तों में तथा अभक्तों की भक्तों में गणना हो जाय और तदनुसार पापी नराधम को पुण्यात्मा का पारितोषक अथवा पुण्यवान् को पापी का दंड प्राप्त हो जाय। इसके सिवाय दूतों को जोड़ियां विभक्त कर दी गई थीं और हर एक जोड़ी में एक ऐसा प्रवीण दूत रख दिया गया था जो कि अपने साथियों को अपने कर्म की गुप्त बातें पूर्णता से समझा दे। ऐसे समय भैरव और चंड नाम के दो शिवदूतों में जो संवाद हुआ वह हम अपने पाठकों के हितार्थ नीचे उधृत करते हैं।

चंड—हे मित्र, भैरव, आज इस पर्व के दिन हम भूत नाथ शंकर के भक्तों का निरीक्षण करने निकले हैं। मैं ऐसा समझता हूं कि एक रीति से यह काम बहुत सरल है, तदनन्तर उसने कहा कि आज के, पर्व के, दिन यदि कोई किसी भी हेतु से, जानबूझ कर अथवा केवल यदृच्छा से शिवपूजन, दर्शन अथवा चरित्र श्रवण करें तो उसे कैलासपद प्राप्त हो सकता है। इस विषय में अपने मित्र भैरव की संमति पूछ कर कहा कि, फिर इसमें भक्तों की परीक्षा लेने का कारण ही क्या है? तथा उनके मन का हेतु शोध कर निकालने की भी क्या आवश्यकता है? यह देखो, इस गोकर्ण क्षेत्र में लाखों लोग दर्शन के लिए भीड़ लगाये खड़े हैं। किसी ओर भी दृष्टि फेंको प्रत्येक पुण्यक्षेत्र के स्थान में और विशेष करके द्वादश ज्योतिर्लिंग के पवित्र स्थान में तो उनकी बहुत ही भीड़ देखने में आती है। इन सबों ने शिवरात्र के निमित्त उपवास किया है, जागरण किया है और श्रीशंकर के दर्शन निमित्त ही इतनी भीड़ के धक्कों की परवाह न करके बड़ी उत्सुकता से आते ही जाते हैं। इसलिए इन सब के सप्तजन्मों के पापकर्मों की क्षमा होनी चाहिए, ऐसा ही सिद्धान्त है न? इसलिए हमारा यहां इतना ही कर्तव्य है कि हम इन सब की एक फेहरिस्त बनावें और इनके निवास के लिए कैलास पर्वत पर स्थान खोजें, परन्तु मुझे यह समझ नहीं पड़ता कि लाखों साल से यह पर्व का दिन होता ही आता है और लाखों लोग इस दिन दर्शन को आते हैं, तथापि कैलास अब तक यथार्थ में निर्जन स्थान ही प्रतीत होता है।" इसके बाद उसने अपने मित्र से इस शंका का समाधान करने की प्रार्थना की।



श्रीरामेश्वर—पूना।

भैरव—मित्र, चंड, यह एक विचित्र ही शंका तेरे मन में किस प्रकार उत्पन्न हुई? क्या तेरी यह समझ है कि केवल शरीर ही से शिवालय में, महेश्वर के सन्मुख, खड़े रहने से तथा शिवलिंग पर कमंडलु भर पानी डालने से, या एक आध टूटा फूटा बेलपत्र शिवजी पर चढ़ाने से और शिवालय में किसी भी अन्य विचार में मग्न रह कर भ्रमण करने से मनुष्य को ईश्वरपूजन का श्रेय मिल जाता है और वह पुण्यात्मा तथा भक्तश्रेष्ठ होकर कैलासपद को पहुंच जाता है?

चंड—हां, मेरी तो ऐसी ही समझ है। क्या इसमें आपको कोई शंका है? आप ही ने तो मुझसे आज तक ऐसी कई कथाओं का वर्णन किया है जिनमें कि कई पापी मानवों का केवल यदृच्छा से अथवा उपहास से शिवनाम का उच्चारण करते ही उद्धार हुआ है। यदि आपके पूर्व कथनानुसार गोकर्ण क्षेत्र की चंडालिन, और विंध्यावासी भिल्ल के उद्धार की कथायें सत्य हों तो इस पृथ्वीतलवासी हर एक व्यक्ति का उद्धार होना ही चाहिए, क्योंकि ये सब कभी न कभी किसी निमित्त से श्रीशंकर का दर्शन तथा उनका स्मरण करते ही हैं। अब बताइये कि इस, समय आंतरिक निरीक्षण की क्या आवश्यकता है?

भैरव—तू अभी अज्ञानी है, इन पौराणिक कथाओं का रहस्य कुछ भी तेरे ध्यान में नहीं आता; इसी लिए तेरे मन में ऐसा भ्रम उत्पन्न हुआ है, परन्तु उस भ्रम का समाधान होने के लिए ही आज तू मेरे साथ भेजा गया है। तेरे ही सदृश शंका बहुतों को पहले भी हो चुकी है और उसका समाधान भी उतनी ही बार सुगम रीति से किया जा चुका है—वही मैं तुझे बताता हूं, ध्यान देकर श्रवण कर—

ये पौराणिक कथायें अल्पज्ञ मानवों के लिए रची गई हैं। उनका वर्णन, उनके सन्मुख, उनकी नित्य की भाषा में ही करना पड़ता है। इस प्रकार का व्यवहारिक भाषा का अर्थ अन्य सब प्रसंगों में जैसा किया जाता है वैसा ही पौराणिक कथाओं का रहस्य समझने के समय क्यों न करना चाहिए? जब किसी कथा का वर्णन किया जाता है तब शान मर्यादा की ओर ध्यान देकर उस कथा को इस प्रकार संक्षिप्त करना पड़ता है कि अर्थ समझने में कोई दुर्बोधता न हो जाय। यही बात एक दृष्टांत द्वारा समझाई जायगी। मान लीजिये कि, वामन नाम के एक बालक को असत्य भाषण करने की आदत पड़ गयी थी। एक समय उसके असत्य भाषण की पोल खुल गयी। इसलिये उसके शिक्षक ने उसे अच्छी तरह दंड दिया। उस समय से उसने अपनी बुरी आदत बिलकुल छोड़ दी और कुछ काल के बाद वह बड़ा सत्यवक्ता और निस्पृह न्यायाधीश हुआ। इस प्रकार की संक्षिप्त वर्णनात्मक बातें हम हर समय बोलते हैं, सुनते हैं, लिखते तथा पढ़ते हैं। परन्तु एक दिन की शिक्षा से ही वह इतना सत्यवक्ता तथा न्यायाधीश कैसे हो सकता है? इस बात को हम इक दम असम्भव मानने को उद्यत नहीं होते। इसी प्रकार हमें पौराणिक कथाओं की सत्यता तथा असत्यता मानने के समय भी वैसी ही भावना रखना उचित है। विंध्याचल के एक भिल्ल ने शिवरात्र के दिन शिवमंदिर में शिवनाम का घोष सुना और उसका मन उस ओर आकर्षित हुआ। इस लिए वह भी शिवनाम का जप करने लगा। अन्त में उसे शास्त्र श्रवण का भी लाभ हुआ और उसके अन्त करण में शिव-भक्ति की प्रीति उत्पन्न हुई और उसे कैलास पद प्राप्त हुआ। क्या इस कथा में उक्त झूठ बोलनेवाले बालक की कथा से अधिक असत्यता दीख पड़ती है? अब कदाचित् तुम कहो कि वह व्याध तो शिवोपासकों की हंसी करने के लिए शिवनाम का उच्चारण करता था तब उस नामोच्चार का उसके मन पर सुपरिणाम किस प्रकार हो सकता है? परन्तु यह शंका भी वास्तविक नहीं है। यदि व्यवहार की ओर दृष्टि दो तो तुम्हें ऐसी बातें हर घड़ी देखने में आवेंगी और तुम्हें ऐसा दृष्टिगत होगा कि ऐसे कई लोग हैं जो केवल साधू की हंसी

करने के लिए उनके शिष्य बने परन्तु कुछ समय के बाद वे ही उनके सत्य शिष्य बन गये। क्या ऐसे उदाहरण नहीं देखने में आते कि कुछ लोग किसी धर्म तथा मत के खंडनार्थ उसका अध्ययन करते करते स्वतः ही आप उसके अनुयायी बन बैठे? छोटा बालक जब अपनी माता के साथ शिवालय में शिवदर्शनार्थ जाता है और वहाँ पुराण श्रवण करता है तब उसके मन पर भी उसका कुछ न कुछ परिणाम होता ही है। वाल्मीकि को तो प्रथम 'राम' के बदले 'मरा' ही का उपदेश किया गया था जिस पर भी अन्त में उसे उसका रहस्य मालूम हुआ और वह एक प्रख्यात महर्षि बना। इसलिए तुझे विन्ध्याचल के भिल्ल को, गोकर्ण क्षेत्र के चंडालिन को तथा पिंगला वेश्या को कथायें इतनी असम्भव क्यों प्रतीत होनी चाहिए? इन सब कथाओं का यही रहस्य है कि अत्यन्त अधम और पापी प्राणी भी, किसी न किसी निमित्त से, सन्मार्ग पर चलने से, उच्चस्थान प्राप्त कर लेते हैं। इन कहानियों में जिन व्यक्तियों के उद्धार की बातें दी गई हैं, उनके चुनाव में एक ऐसे तत्व का सम्बन्ध है जो अभी तक तेरी समझ में न आया होगा। ऊपर जिन पापियों के उद्धार के विषय में कहा गया है वे तो पापी ही थे, परन्तु वे सब एक ही मार्ग के अनुगामी थे। आकस्मिक और आगन्तुक कारणों से ही उनकी प्रवृत्ति पाप कर्मों की ओर झुकी और वे उसीमें अत्यन्त तल्लीन हो गये थे। परन्तु ज्योंही उनका मन एक बार उलटा त्योंही वे अत्यन्त धार्मिक और पुण्यवान् बन गये। ऐसा जमीन आसमान का अन्तर केवल छोटे बालक तथा अज्ञानियों में ही होना सम्भव है। इसी कारण से भिल्ल, चंडालिन, शबर और गोप बालक इत्यादि के उदाहरण लिये गये हैं। बुरा तथा भला जो कुछ उन्हें एक समय ठीक जँच जाता है वे उसीमें तल्लीन हो जाते हैं और उसीके अनुसार इच्छा पूर्वक काम करते हैं। परन्तु आधे-अधूरों के सामने कुछ भी नहीं चलती। कहा भी है कि "अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः। ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति॥" इस वाक्य में जो न्यायतत्व कहा गया है वही उन लोगों के भक्तिमार्ग के लिए भी लागू हो सकता है।

कोई तो दृढ श्रद्धा रखनेवाले होते हैं और कोई केवल नास्तिक ही होते हैं, परन्तु जो न तो दृढ श्रद्धा ही रखता है और न नास्तिक ही होता है उसके सम्मुख कुछ भी उपाय नहीं चल सकता। इसलिए ऊपरी (आधा अधूरा) भजन-पूजन करनेवालों का ही अलग करना आज हमारा मुख्य कर्तव्य है।

व॰—अच्छा उसे रहने दो। मेरी एक और शंका है। उसका भी समाधान कीजिये। पिंगला अथवा चंडालिन के सदृश अत्यन्त पाप रत व्यक्तियों का एक निमेष या आपके वर्णनानुसार क्षण क्षण में यदि उद्धार होता है तो क्या इससे पापी लोगों को अपने पाप कर्म करने में उत्तेजना नहीं मिलती? जितने दिन चाहे उतने दिन मन माने पापकर्म करने पर भी एक-आध तीर्थ में जाने से, रुद्राक्ष धारण करने से अथवा अपने शरीर पर केवल भस्म लगाने से सद्गति प्राप्त होती है—ऐसी भावना रखना क्या आपको ठीक मालूम होता है?

गे॰ दे॰—तेरी सब शंकाओं के लिए मेरा 'व्यवहार की ओर दृष्टि देना' यही एक उत्तर है। तेरी भावना वास्तविक व्यवहार से बिलकुल विरुद्ध है। दुःखित मनुष्य अपने दुःखों से मुक्त हो सकते हैं और उन्हें सुख प्राप्त भी हो सकता है ऐसा दर्शाना अच्छा है या उन्हें सदैव ही निराशामग्न रखना अच्छा है? सब अच्छी बातों में सिद्धि प्राप्त करना केवल मन के आशा पर ही अवलम्बित रहता है। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः,' यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है। ऐसा प्रबल मन ही यदि निराश हो जाय तो फिर उसकी प्रगति की हानि ही होगी समझना चाहिए। इसी लिए मनुष्य कैसी ही अवनत दशा में क्यों न रहे, परन्तु हमारा यही काम है कि हम उसे उस निराशा से बचावें और सन्मार्ग में लगावें। यदि पापी को धीरज दिया जाय कि "अरे दुनिया में तू ही अकेला पापी नहीं है। तुझ से भी बड़े बड़े पापियों का उद्धार हो गया है, फिर तू क्यों निराश होता है? आशा रख, और सुमार्ग पर चलने का निश्चय कर, अभी भी तेरे पापकर्मों का नाश होकर पुण्यवान् होने के लिए बहुत समय है" इत्यादि इत्यादि' तो अधोगति की ओर जानेवाला आदमी ऐसा प्रयत्न करके सन्मार्ग तथा उन्नति की ओर आ सकता। "तेरी बीमारी अभी बहुत बढ़ी नहीं है और इससे भी बुरी दशा के रोगियों को जो मृत्यु के द्वार तक पहुँच गये थे, मैंने दवाई देकर अच्छा किया है" इत्यादि प्रकार से प्रोत्साहन देनेवाला वैद्य अच्छा है या रोगी को डरा कर रुलाने ही वाला वैद्य अच्छा है? अब इसी उदाहरण के द्वारा हम यह देखेंगे कि तेरी शंका कहाँ तक सयुक्तिक और सकारण है। यदि किसी शहर में कोई ऐसा धन्वन्तरि हो जो रोगियों को मृत्यु के द्वार से लौटा सकता हो तो क्या उसके भरोसे शहर के सब लोग शारीरिक स्वास्थ्य के विषय में लापरवाही किया करते हैं? यदि किसी नगर में कोई बड़ा ही चतुर वकील रहता हो और वह मुलजिम को किसी भी जुर्म से दोष मुक्त करा लेता हो, तो क्या उसके भरोसे कोई अपने ऊपर स्वयं संकट डाल लेता है? परन्तु दैवयोग से यदि किसी पर ऐसा विकट प्रसंग आ ही जाता है तब वह पुण्यमार्ग की खोज करता है। बीमार धन्वन्तरि की खोज में निकलता है और अपराधी बॅरिस्टर की विनती करता है। परन्तु जैसे उस बीमार मनुष्य की तथा अपराधी के अपराध की जवाबदारी उस वैद्य तथा वकील पर नहीं रहती, ठीक उसी प्रकार पापियों के पापों की जवाबदारी उस पुण्य क्षेत्र पर तथा पौराणिक कथा पर नहीं रहती। वर्ष में एक दिन महा शिवरात्र का पवित्र दिन आता है और उस दिन शिवपूजन करने से अपना पाप मिट जायगा, ऐसी प्रबल इच्छा से कोई पापकर्म की ओर प्रवृत्त नहीं होता। परन्तु किसी भी कारण से यदि पापकर्म का आचरण किया हो और अनन्तर उसकी वेदना होने लगी कि "इस पाप से यदि हमारी मुक्तता न होगी तो हम अब किसी भी प्रकार के आचरण से नरकवास से बच नहीं सकते" ऐसा निराशा-युक्त डर जब लगने लगा और पापाचरण की ओर प्रवृत्ति अधिकाधिक झुकने लगी तब निराशारूपी अंकुर को उखाड़ आशारूपी बीज उनके हृदय में डालना—यही इन पुण्यक्षेत्रों तथा पर्वों के अस्तित्व का मुख्य उद्देश्य है। मनुष्यों को रोग जकड़ लेता है इसी लिए परमेश्वर ने दिव्यौषधियां निर्माण की हैं। औषधियां हैं इसी लिए जिस प्रकार कोई जान-बूझ कर बीमार नहीं पड़ता, उसी प्रकार पापियों को इस भवसागर से पार करने के लिए पुराण बने हैं परन्तु पुराण हैं, इस लिए कुछ संसार में कभी भी अधिक पाप नहीं होता। एतावत् तुम्हारी यह शंका, कि इन कथाओं से पाप प्रवृत्ति बढ़ती है सो बिलकुल ठीक नहीं।

व॰—अब मेरी बहुत सी शंकाओं का समाधान होगया। जिस पर भी कई कथाओं पर से मुझे यह मालूम पड़ता है कि ईश्वर पापियों का उद्धारार्थ तत्पर रहता है, परन्तु साधुओं पर उसकी विशेष वक्रदृष्टि होती है और उनका सत्व देखने की इच्छा से वह उनको बहुत पीड़ित करता है। इसलिए हरिश्चन्द्र, श्रियाल के सदृश सत्वशील होकर दुःख सहने की अपेक्षा कंस या रावण जैसे पापी होकर ईश्वर को अपने उद्धार के लिए कष्ट देना ही अच्छा है।

भै॰—यह कल्पना तो बड़ी विलक्षण जान पड़ती है! त्याग परमेश्वर के उद्देश का सर्वथा विपर्यास हो गया! मालूम होता है कि तुझे मानवी मनोव्यापारों की उचित कल्पना ही नहीं है! सोचने की बात है कि, यदि किसी बीमार को मीठी दवाई दी गई हो तो क्या उतने ही के लिए किसी मनुष्य बीमार पड़ने की इच्छा करेगा? छोटे बालक को माता गोद में लेती है तो क्या उतने ही के लिए प्रौढ़ आदमी बालक होना चाहेगा? पापी मनुष्य का किसी तरह समाधान करना और प्रोत्साहन देकर उसे सुमार्ग पर लाना तथा ईश्वरतुल्य आचरण करनेवाले सत्वशील धर्मनिष्ठ मनुष्य की धर्मनिष्ठा देखने के अनन्तर प्राप्त होनेवाला फल इन दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है। पापियों का उद्धार केवल नामस्मरण से ही होता है ऐसा सुन कर जिस प्रकार तू कालविपर्यास के दोष में पड़ा, ठीक उसी प्रकार इस समय तू उच्च-नीच पद के विपर्यास दोष में पड़ गया है। अत्यन्त पापी मनुष्य को पाप से परावृत्त होने के कारण दिया हुआ प्रासंगिक फल एक ओर है, और हरिश्चन्द्र के सदृश सत्वस्थिर को मिलनेवाला फल दूसरी ओर है। प्रत्येक पौराणिक कथा में सर्वदा इन दोनों में से किसी एक बात पर कटाक्ष रहता है अर्थात् पहिली बात यह है कि किसी अत्यन्त पापी मनुष्य को सन्मार्ग में प्रवृत्त करने का दृष्टान्त दिया जाता है और दूसरी बात यह है कि अत्यन्त सात्विक और श्रेष्ठ भक्त की परीक्षा लेने का उदाहरण दिया है। सामान्य मनुष्यों के सामान्य व्यवहार से पुराणों का कोई सम्बन्ध नहीं है। कल्पनातीत पापाचरण करनेवाले मनुष्यों का उदाहरण क्यों दिया गया है यह तो मैंने पहले ही समझा दिया। अब इस बात का विचार किया जायगा कि सत्वशील और सत्वगुणसम्पन्न श्रेष्ठ नरों को क्यों सताया जाता है।

भगवान् की यह इच्छा रहती है कि जिस प्रकार पापी पापक्षालन की निराशा से पाप मार्ग में ही निमग्न न रहें उसी प्रकार पुण्यवान भी अपने सदाचरण से हट न जावें। इसी लिए पापी मनुष्यों का मार्ग दिखाने के लिए, जिस प्रकार अत्यन्त पापियों के उदाहरण पुराणों में रहते हैं उसी प्रकार सदाचरणी आदमी का अपना अन्तिम ध्येय प्राप्त करना कितना कठिन है यह दिखाने के लिए ही साधुओं के सताए जाने की कथाएँ भी हैं। हमारे दुराचरण से निराश हुए मन को पौराणिक कथाएँ यह शिक्षा देती हैं कि "तू निराश मत हो तू कुछ अजामिल से अधिक पापी नहीं है यदि श्रद्धा रख कर प्रयत्न करेगा तो तू भी सन्मार्गगामी हो जायगा।" परन्तु दैव से पुण्य-कृत्य में प्रतिष्ठित होनेवाले लोगों को वही पौराणिक कथाएँ उपदेश देती हैं कि 'अभी तुम्हारा कर्तव्य पूर्ण नहीं हुआ। तुमने केवल अभी सदाचरण का पहिला ही पाठ सीखा है। यदि तुम इतने ही में सन्तुष्ट हो कर प्रयत्न छोड़ दोगे तो तुम इस ही अवस्था पर ठहरोगे अथवा अधोगति को प्राप्त होगे। तुम्हें अभी बहुत बड़ा पद प्राप्त करना है। तुम हरिश्चन्द्र की ओर देखो वह राज्य के बदले में ........ श्रियाल की सत्वनिष्ठता का विच

सदैव दित मन में रक्खो, शिवी का शरणता की ध्यान रक्खो और आलस्य या गर्व का त्याग करके अपना शील बढ़ाने का यत्न करो।' पुराण में साधुओं के सताए जाने का अथवा परीक्षा का यही मर्म है। पौराणिक-कथाओं की यही दो प्रकार की मर्यादाएं हैं। हताश लोगों के लिये अजामिल सरीखों की मर्यादा-रेखा है और श्रेष्ठ जनों के लिए शिवी और श्रियाल सरीखों की मर्यादा का उच्च स्थान दिखा दिया है। मानव-योनि का प्रत्येक जीव इन्हीं दो मर्यादाओं के बीच में रहता है, इसलिए उनके अंतिम स्थान एक दूसरे से भिन्न तथा अत्यन्त दूर रक्खे गये हैं। वर्णन में अतिशयोक्ति की छटा दिखने का कारण अव्याप्ति ही है। अव्याप्ति टालने के प्रयत्न से यदि अतिव्याप्ति का दोष भी हो तो उसकी फिकर परमात्मा को नहीं रहती इसी लिए वह दिखाऊ अतिशयोक्ति स्वीकृत की गई है, परन्तु इस बात का उल्लेख किया गया है कि वह सद्धेतुमूलक है और उसमें हानि होने का कोई डर नहीं है। कोई भी पौराणिक कथा हो, उसका रहस्य इसी दृष्टि से समझ लेना चाहिए। इतना भाषण होने पर वह की सब शंकाओं का समाधान हो गया, और वे दोनों शिवदूत, भक्तजन-मन-निरीक्षण के काम के लिए, चल दिये।

---

# वर्तमान समय के युद्धों की भीषणता।

## हिंस्र पशु और युद्धप्रिय मानव।

सृष्टिकर्ता के उत्पन्न किये हिंस्र जीव ही केवल क्रूर तथा युद्धप्रिय नहीं होते वरन् बुद्धि और अंतःकरण की घमंड करनेवाले मनुष्यों में भी स्वार्थ प्रियता तथा युद्ध लालसा दीख पड़ती है। इसके अतिरिक्त यह बात स्पष्ट दीख पड़ेगी कि जंगल के श्वापद मनुष्य के समान बुद्धिमान् नहीं होते; इसलिये उनके युद्ध के उपाय भी विशेष सीधे होते हैं, परन्तु बुद्धिमान् मानवों की बुद्धि स्वार्थ की ओर झुकती रहने के कारण उनके युद्ध के मार्ग बड़े वक्र और भयंकर परिणाम करनेवाले होते हैं। धर्मनिष्ठ लोगों की समझ है कि मनुष्य परमेश्वर का अंश है परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो यह बात विदित होगी कि सृष्टिकर्ता का तमोगुण ही उसमें विशेष है।

सृष्टिकर्ता के निर्माण किये हुए सारे भूप्रदेश और उस पर के सब जलाशयों तथा वनस्पतियों पर सब मनुष्यों की सत्ता समान होनी चाहिये; परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। मनुष्यों में स्वार्थ प्रियता का अंश बहुत ज्यादा है, इसलिये उनमें से कुछ लोग सोचने लगे कि हमारी ही सत्ता पृथ्वी पर अधिक हो, दूसरों का कुछ भी स्वामित्व न हो, स्वत हमारा ही नहीं किन्तु हमारी भावी पीढ़ी का भी उस पर हक बना रहे—कोई भी किसी प्रकार का संकट उपस्थित न कर सके। अन्य लोगों की अपेक्षा स्वयं हमारे लिये तथा हमारी संतानों के लिये शरीर-सुख-साधन अधिक हों, फिर चाहे उससे दूसरों की हानि ही क्यों न हो इत्यादि स्वार्थपूर्ण महत्वाकांक्षा के आधीन होकर लोगों ने शक्ति का उपयोग—अथवा 'दुरुपयोग'—करना आरंभ किया, और बुद्धि की सहायता मिलते ही युद्धकला निर्माण हुई। हम देखते हैं कि यद्यपि सब धर्मग्रंथों में लिखा है कि शरीर की अपेक्षा आत्मा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए, तौभी सारे धर्म के लोग न्यूनाधिक प्रमाण से आत्मा का विचार छोड़ शरीरसुख के साधनों में मग्न हो गये हैं। भिन्न भिन्न धर्मों के उपदेशक उपदेश किया करते हैं कि यह शरीर क्षणभंगुर है और आत्मा अविनाशी है; इसलिए ऐसे तुच्छ देह में आसक्त न होना चाहिए। जब लोग उक्त प्रकार का उपदेश सुनते हैं तो वे भी शिर हिला कर अपनी सम्मति प्रदर्शित करते हैं, परन्तु यदि उनकी कृति की ओर ध्यान दो तो यह देख कर बड़ा अचरज होगा कि वे किस तरह शारीरिक सुख में निमग्न हैं। मनुष्यों की प्रवृत्ति और उनकी कृति से उनके भयंकर स्वार्थ की कल्पना हो सकती है। इस स्वार्थ के कारण मनुष्य बड़ा अन्यायी तथा क्रूर हो गया है। यह बात कबूल करनी पड़ेगी कि यद्यपि मनुष्य चतुष्पाद अथवा हिंस्र पशुओं की अपेक्षा पादसंख्या में कम है तौभी वह अपनी बुद्धि के सामर्थ्य से स्वार्थप्रियता तथा क्रूरता में हिंस्र जीवों से बढ़ कर है। मनुष्य आज हजारों वर्ष से विचार कर रहा है कि किस प्रकार कम श्रम से अधिक शक्ति उत्पन्न कर सकें, किस प्रकार कम समय में प्राणहानि अधिक कर सकें और किस प्रकार कम खर्च से अधिक द्रव्य अथवा द्रव्योत्पादक भूमि हरण कर सकें, इस प्रकार के स्वार्थप्रिय मानवों ने अपनी बुद्धि से युद्धकला को आसुरी तथा युद्ध के शस्त्रास्त्रों को भयंकर प्राणघातक बना डाला है।

## सुशिक्षित और सभ्य देश।

अब यह बात सब लोगों को विदित है कि यथार्थ में वही सुशिक्षित कहलाते हैं जो कि अधिक बुद्धिमान् हैं और जो अपनी बुद्धि का उपयोग कार्यद्वारा प्रगट किया करते हैं; अथवा यह कहिये कि वही यथार्थ में होशियार और सभ्य कहलाते हैं जो अपने पूर्व अनुभव के अनुसार वर्तमान समय में ऐसा बर्ताव करते हैं, जिसमें उन्हें भविष्य में सुख हो। इस पर से यह अनुमान न करना चाहिए कि वर्तमान समय के सुशिक्षित और सभ्य लोगों में तमोगुण की न्यूनता होगी। इस समय तो जिसके पास अधिक सम्पत्ति है अथवा जिसके पास अधिक सामर्थ्य है वही श्रेष्ठ कहलाता है। इसी लिए हम देखते हैं कि पश्चिमी दुनिया के सब सभ्य देश, अपनी अपनी जल और थल सेनाओं की वृद्धि करने और युद्ध कला को प्रत्यक्ष राक्षस का स्वरूप देनेवाले भयानक शस्त्रास्त्रों का संग्रह करने ही में निमग्न हो रहे हैं। कहते हैं कि सुशिक्षा से मनुष्य का मन उदार होना चाहिए तथा उसकी स्वार्थप्रियता घट जानी चाहिए तथा जो स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ की ओर अधिक ध्यान देगा उसीको सभ्य कहना चाहिए। परन्तु अब इन कल्पनाओं को प्रगट होने के लिए मनुष्य की कृति में कोई स्थान नहीं है। यदि आवश्यकता हो तो—उपयोग करने के लिए नहीं—उन कल्पनाओं को मनुष्य अपने हृदय में स्थान दे रक्खे, उनको किसी प्रकार बाहर प्रगट न करे। इसका कारण यह है कि यदि कोई उक्त विचारों को प्रगट करेगा तो वह मूर्ख और सिड़ी समझा जायगा और तुरत ही पागलखाने में भेज दिया जायगा। इस समय तो केवल सम्पत्ति और सामर्थ्य ही की चलती है और प्रायः सब लोग इसी बात का यत्न कर रहे हैं कि सम्पत्ति और सामर्थ्य किस प्रकार प्राप्त की जाय तथा प्राप्त की हुई सम्पत्ति और सामर्थ्य की रक्षा किस प्रकार की जाय। इस कार्य में यदि अन्याय और क्रूरता हो जाय तौभी कुछ परवाह नहीं। तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय की ओर चिकित्सक बुद्धि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि 'सुशिक्षित और सभ्य' शब्दों के अर्थ बदल गये हैं।

## वर्तमान समय के युद्ध।

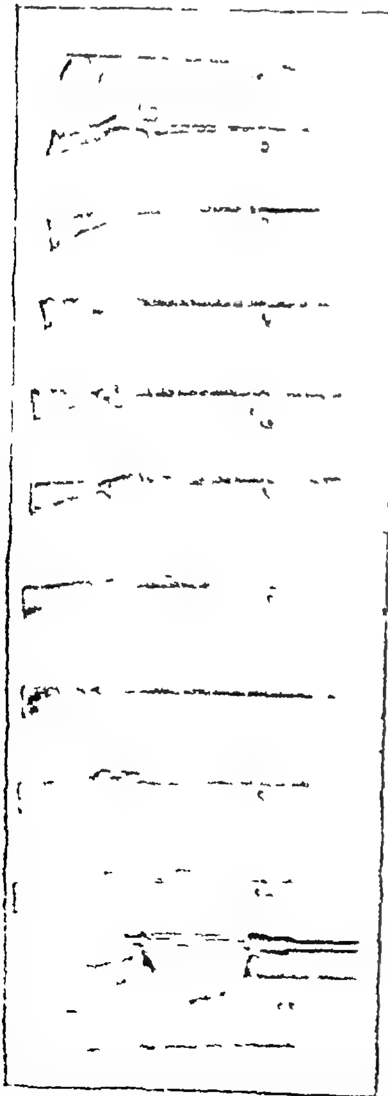
प्राचीन समय में शारीरिक सामर्थ्य की जितनी आवश्यकता थी उतनी वर्तमान समय के युद्धों में नहीं रही। अब ऐसे दृष्टान्त बहुत कम देख पड़ेंगे कि दो वीर परस्पर मल्लयुद्ध कर रहे हैं, एक दूसरे पर गदा का प्रहार कर रहे हैं अथवा मियान में से तलवार निकाल कर एक दूसरे को मारने को लिए दौड़ रहे हैं। अब वे दिन न रहे कि जब पादचारी, पैदल सैनिकों के साथ, घुड़सवार, घुड़सवारों के साथ, हाथी पर बैठनेवाले, हाथी पर बैठनेवालों के साथ रथी और महारथी, रथी और महारथियों के साथ, गदाधारी, गदाधारियों के साथ अथवा धनुर्धारी, धनुर्धारियों के साथ भिड़ कर युद्ध किया करते थे। इस समय तो युद्धकला की कुशलता इसी बात में है कि बहुत दूर रह कर—जितनी दूर हो सके उतनी दूर रह कर—अथवा ऐसे स्थान में रह कर जहां कि शत्रु की नजर न पहुंच सके, अचानक शस्त्रास्त्रों का प्रहार किया जाय। प्राचीन समय के युद्धों में वायुअस्त्र, वरुणास्त्र इत्यादि का उपयोग किया जाता था। यद्यपि वर्तमान समय के योद्धाओं के शस्त्रागार में उक्त प्राचीन अस्त्र देख नहीं पड़ते तथापि भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्रशस्त्र निःसंदेह दृष्टिगोचर होते हैं।

युद्ध भी एक महत्व की कला है—यह एक विद्या है। इस विद्या में अनेक बातों का समावेश किया जाता है जैसे, युद्ध का आरंभ कैसे करना चाहिए, सेना कहां और किस प्रकार खड़ी करना चाहिए; जहाजी बेड़ों को किस स्थान में रखना चाहिए; जलसेना अथवा थलसेना को कैसे, किस समय और किधर हिलाना चाहिए छिप कर कैसे बैठना चाहिए, किस स्थान को अनुकूल अथवा प्रतिकूल जानना चाहिए; शत्रु पर कब और कैसे हमला करना चाहिए, यदि पीछे लौटना हो तो कब और कैसे लौटना चाहिए इत्यादि इन सब बातों के विषय में बुद्धिमान् और अनुभवी लोगों ने कुछ नियम बना दिये हैं। वर्तमान समय की युद्ध विद्या में उक्त बातों के अतिरिक्त और और अनेक विद्याओं का भी समावेश किया जाने लगा है। यह वर्तमान समय की अद्भुत युद्ध विद्या का ही परिणाम है कि सीडन में जनरल मोल्ट के फरासीसी सेनापति को घेर सका और मुकडेन में जनरल नोगी, ओक्यू, नोडजू, क्यूरोकी और कामीमुरा नामक पांच सेनापतियों की सब सेनाओं को फील्ड मार्शल ओयामा एकत्र कर सका तथा समुद्र के समान इस विस्तीर्ण सेना को लेकर वह रूस के विरुद्ध लड़ सका। यह इसी युद्ध विद्या के परिचय का परिणाम है कि वेलम्न फरासीसी सेनापतियों के हेतु पहिले से ही जान सका और अबुकिर की खाड़ी में उन लोगों को हरा सका। एडमिरल टोगो ने रूस के एडमिरल को जो परास्त किया वह इसी युद्ध विद्या के ज्ञान का प्रभाव है। यद्यपि ये सब बातें सत्य

है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान समय में युद्ध विद्या का उपयोग केवल रणभूमि में निपुणता प्रकट करने के लिए ही नहीं होता किन्तु उसका उपयोग और भी अनेक प्रकार से किया जाता है। इस समय अनेक विद्याओं की सहायता से जो नई नई बातें आविष्कृत होती हैं उन सब का उपयोग युद्ध की भयानकता ही बढ़ाने की ओर किया जाता है।

बन्दूक का इतिहास।

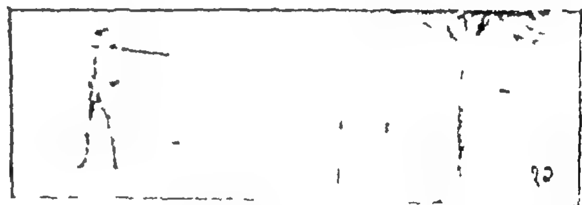
बन्दूक लड़ाई में काम आनेवाला एक सर्वसाधारण शस्त्र है। भला, बन्दूक को तो देखिये, कितने शास्त्रीय आविष्कारों से उसमें रदबदल होते होते आज यह इस अवस्था को प्राप्त हुई है। इंग्लैंड के चौथे एडवर्ड राजा के समय में सन् १४७१ में 'हेन्ड-केनान' नामक बन्दूक थी। यह में चार या पाँच इंच जलनेवाली 'स्लोमैच' नामक लकड़ी से यह बन्दूक दागी जाती थी और उसका उपयोग केवल शत्रु के जहाजी बेड़े का भेद करने ही में किया जाता था। सन् १५३७ में, जब कि इंग्लैंड देश का राजा आठवाँ हेनरी था, 'आर्क बस' नामक बन्दूक का उपयोग होता था। यह बन्दूक भी 'स्लोमैच' द्वारा चलाई जाती थी और चलाने के समय उस एक लकड़ी के समान घोड़े पर रखते थे। उस बन्दूक की गोली का वजन दो औंस था। सन् १५५० ईसवी से १६०० तक 'व्हीललाक आर्कबस' नामक बन्दूक का उपयोग किया जाता था। इस बन्दूक में एक 'स्प्रिंग' और एक चक्र था, ज्योंही बन्दूक का घोड़ा दबाया जाता था त्योंही चक्र घूमने लगता और भीतर के 'पायराइटिस' के घर्षण से चिनगारियाँ उत्पन्न होती थीं और उससे बन्दूक चलती थी। इस बन्दूक की गोली सौ गज तक भी नहीं जा सकती थी। सन् १६८० ई० में 'फ़्लिंटलाक मस्केट' का उपयोग करने के समय एक ऐसी युक्ति की गई थी कि फ़ौलाद और पत्थर की रगड़ से अग्नि उत्पन्न होते ही बारूद जलने लगती और यह बन्दूक शीघ्र चलने लगती। इस बन्दूक की पहुँच १०० गज से अधिक और २०० गज के भीतर रहा करती थी। सन् १७०० ई० से १८४० तक 'ब्राउन बेस' नामक बन्दूक का उपयोग किया जाता था। यह ६ फुट लंबी थी और उस



बायोनेट भी था। यह भी चकमक पत्थर के द्वारा चलाई जाती थी, परन्तु इसकी पहुँच केवल २०० गज तक थी। नेपोलियन बोनापार्ट के समय यही बन्दूक काम में लाई जाती थी। सन् १८०० ई० में 'बेकर्स फ़्लिंटलाक रायफल' नामक बन्दूक का प्रचार हुआ। इसकी पहुँच २०० से ३०० गज तक थी परन्तु इसके भरने में बहुत समय लगता था। सन् १८५० में 'मिनाय रायफल' नामक बन्दूक निकली। इसकी पहुँच पहिले के बन्दूकों की अपेक्षा अधिक अर्थात् १००० गज की थी और इसकी गोली भी ठीक ठीक जाती थी। इसके उपरान्त पाँच ही वर्ष में 'एनफ़ील्ड मज़ल लोडर' नामक बन्दूक प्रचार में आने लगी। सन् १८६७ में 'एनफ़ील्ड स्नाइडर ब्रीचलोडर' नामक बन्दूक निकली। इसकी पहुँच १२०० गज की थी। सन् १८७१ में 'मार्टिनी हेनरी ब्रीच लोडिंग रायफल' की पहुँच १७०० गज की थी। सन् १८९२ में 'ली मेटफ़र्ड मैगेज़िन रायफल' नामक बन्दूक की पहुँच २४०० गज की थी और बन्दूक के घोड़े के निकट १० कारतूस रखने की व्यवस्था की थी। इसके बाद 'ली एनफ़ील्ड मैगेज़िन रायफल' नामक बन्दूक का उपयोग होने लगा। यह बन्दूक केवल ४४ ½ इंच लंबी होती है।

बन्दूक का सुधार सत्तर वर्ष पहिले बहुत धीरे धीरे होता था। परन्तु गत सत्तर वर्ष से इसमें अनेक सुधार शीघ्र होते गये। वाटर्लू की लड़ाई में 'ब्राउन बेस' बन्दूक से काम लिया जाता था और १५० वर्ष तक इसी बन्दूक का सेना में उपयोग किया जाता रहा। इसकी गोली का वजन एक औंस और व्यास पौन इंच का था। इसकी पहुँच २०० गज तक की थी इसलिये शत्रु जब तक गोली की पहुँच में न आ जाय तब तक बन्दूक चलाने का हुक्म न था, क्योंकि निशाना वृथा जाता। मि० मेटफ़र्ड (ब्रिटिश), माऊज़र (जर्मन), मनलिचर (आस्ट्रियन) क्रग-जारगनसन (स्विस) और वेटर्ली (इटालियन) आदि बन्दूकें अनेक प्रयोग और सुधार के बाद बनी हैं॥

'मिनाय' बन्दूक की गोली का आकार लम्बगोल के समान हुआ और गोली को नली से बन्दूक में ठूसने की अपेक्षा पीछे से ही डालने की युक्ति 'नीडल गन' के कर्त्ता लोगों ने शुरू की। तीस वर्ष पहिले बन्दूक दागने की इस प्रकार व्यवस्था की गई थी कि बन्दूक के घोड़े



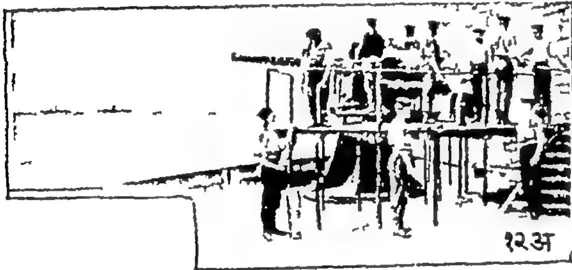
[illegible] का समय।

के पास गोलियाँ तयार रहें और ज्योंही घोड़ा दबाया जाय त्योंही गोली एक के बाद एक घोड़े के सम्मुख आकर उड़ने के लिये तयार रहे। फिर दिनों-दिन गोली का आकार भी छोटा होने लगा। बन्दूक की बारूद का आविष्कार होने पर तीन शतक तक बन्दूक की गोली केवल सीसे की बनाई जाती थी, फिर उस पर 'कप्रो-निकल' या 'निकल स्टील' अथवा फ़ौलाद का कवच चढ़ाया जाने लगा और वह गोल आकृति की गोली कुछ लंबी हो गई। गोल गोली का बहुत सा पृष्ठ भाग उसके वज़न के मान से हवा को प्रतिरोध करता और इसलिये उसकी गति कम हो जाया करती थी। उसी प्रकार मनुष्य के देह में गोल गोली कठिनाई से प्रवेश करती थी और उसकी जख़म भी वर्तमान समय की गोलियों से बहुत कम होती थी। इस सीसे की गोल गोली में घन पदार्थ को छेद कर पार जाने की शक्ति न थी। परन्तु जबसे यह गोली लम्बाकृति बनाई जाने लगी और उस पर मज़बूत धातुओं का कवच चढ़ाया जाने लगा तब से हवा में सूं सूं शब्द करने, अत्यन्त दृढ़ पदार्थ का भी भेद करने तथा छिपे शत्रु का प्राण लेने का सामर्थ्य संशोधकों ने उत्पन्न किया इतना ही नहीं वरन आधुनिक गोलियों का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि वे शरीर में प्रवेश करते ही बड़ी होने लगतीं और शत्रु के देह को शीघ्र ही विदीर्ण कर डालती हैं। यह गोली हिंदुस्थान के डमडम नामक शहर में बनाई गई इसलिये इसका नाम 'डमडम बुलेट' रक्खा गया। अब कुछ गोलियाँ ऐसी होती हैं कि वे शरीर में तिरछी घुस कर बड़े बड़े छेद बनाने लगतीं हैं और कुछ गोलियों के सिर शरीर में घुस जाने के पश्चात् टूट हो जाते और मांस में फट जाते हैं। पहिले समय बन्दूक की गोली नली में से सीधी जाया करती थी परन्तु वर्तमान सुधारों के उपरान्त गोली एक चक्राकृति नली से जाने लगी जिससे उसका वेग भी अधिक बढ़ गया और गोली भी बिलकुल सीधी जाने लगी। पहिले जब बन्दूक दागी जाती थी तो उससे धुआँ निकलने से पहुँचना था परन्तु अब इस प्रकार की उत्तम व्यवस्था की है कि न तो उससे धुआँ ही निकलता है और न। ... के अग्र भाग में 'साइलेन्सर' लगाने से। आवाज़ ही होती है। बन्दूक की गोली की गति ... के

लिये बारूद का उपयोग किया करते थे, परन्तु अब 'कार्डाइट'—छोटी छोटी रस्सी के समान और जिससे धुवाँ नहीं होता ऐसी बारूद—का उपयोग करते हैं।

## तोप और उसके गोले।

इस प्रकार पदार्थविज्ञान शास्त्र ने बंदूक और उसकी गोली का आकार आदि बदल दिया, रसायन शास्त्र ने 'कार्डाइट' तयार किया और धातु संशोधन शास्त्र ने गोली पर का मजबूत कवच उपलब्ध कर दिया। 'सर्व्हिस रायफल' में बड़ी ही विलक्षण शक्ति होती है इसकी पहुंच तीन मील तक होती है और यदि गोली छोड़ी जाय तो इसका वेग इतना होता है कि एक लोहे का पत्रा और वृक्ष को भेद कर छिपे हुए शत्रु का प्राण ले सकती है। वैज्ञानिक संशोधकों ने धूम रहित 'मेलिनाइट' नामक फ्रेंच बारूद, 'पिक्रेट आफ पोटयास' से तयार किया, 'लेडाईट' और जापानी ज्वालाग्राही पदार्थ निर्माण किये। स्वयं रशियन लोगों का यह कथन है कि त्सुशिमा में जापानी ज्वालाग्राही पदार्थों से हम लोग घबरा गये और अंत में सब लोगों का नाश हुआ। डायनामाइट के गोले अथवा बारूद और लोहे के टुकड़े आदि भर कर शत्रुओं पर वर्षा करने की चाल बड़ी पुरातन है। युद्ध के समय शत्रु-सेना का नाश करने के लिये तोपें कितनी सहायक हो सकती हैं इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण जापानी लोगों की सुप्रसिद्ध 'होविट्झर' नामक भयानक तोप है जिसका उपयोग पोर्टआर्थर के युद्ध में किया गया था। इन तोपों के राक्षसी मुखों से पाच पांच हंड्रेडवेट वजन के ३६००० भयानक गोलों ने किलों पर की रशियन सेना में हाहाकार मचा दिया।




जब कोई किला या स्थान घिर जाता है तब इस तोप का उपयोग किया जाता है।

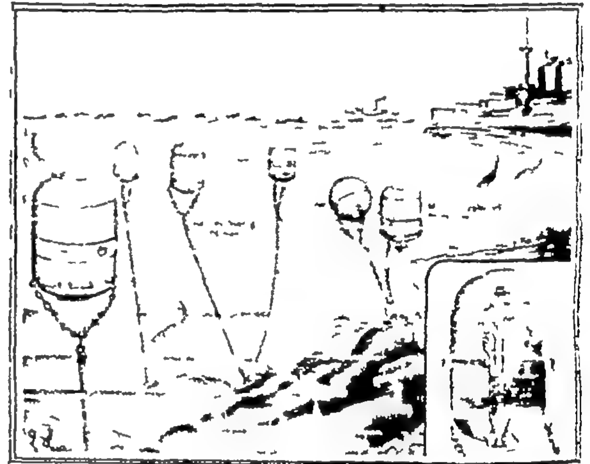
इन 'होविट्झर' तोपों का मुंह ११ इंच का होता है, तोपों के दागते ही पाच हंड्रेडवेट वजन का फौलाद तथा ज्वालाग्राही पदार्थ अति वेग से निकल कर एक ऊंची टेकडी पर से दूर के बंदर अथवा शहर में प्रवेश कर फूट जाता है जिससे हजारों लोग मृत्युमुख में जा गिरते हैं। रूसो-जापानी युद्ध में जब जापानियों ने '२०३ मीटर हिल' नामक टेकड़ी हस्तगत कर ली तब वे उस स्थान से बंदर देख सके। जापानी लोगों ने इस स्थान में 'टेलिफोन' स्थापित कर वहां की वार्ता 'होविट्झर' तोप के गोलंदाजों को भेजने की व्यवस्था की। 'होविट्झर' कभी कभी तीन, चार, छै या आठ मील के अंतर पर रहती थी, उसके विध्वंसक गोलों का निशान ठीक है या नहीं इत्यादि की खबर टेकड़ी पर से 'टेलिफोन' के द्वारा तोप चलानेवाले अधिकारियों को दिया करते थे, इसका परिणाम यह हुआ कि रशियन जहाजी बेड़ा छिन्न विछिन्न हो गया। रशियन लोग गोलों की वर्षा को न सह सके और उन्हें बंदर को अपने अधीन रखना बड़ा कठिन हो गया। अब पाठकगण इस बात का विचार करें कि आठ आठ मील दूर स्थान के गोलों ने हजारों लोगों का नाश किस प्रकार किया होगा।




'होविट्झर' तोप इस प्रकार चलते हैं।

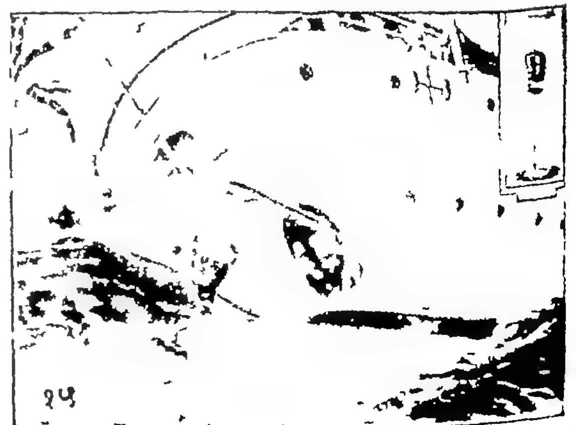
## लड़ाई के जहाज।

'ड्रेडनाट' जहाज पर की तोपें तो इससे भी अधिक भयानक बनाई गई हैं। सन् १८५६ तक तोपों में विशेष सुधार नहीं हुआ था, और इन पुरानी तोपों को उठाने में बड़ी कठिनाई होती थी—एक तोप के उठाने, उचित स्थान पर रखने और चलाने के लिए चौदह मनुष्यों से भी अधिक लगते और उनका निशान ठीक न होने के कारण जब तक शत्रु का जहाजी बेड़ा पास न आ जाय तब तक तोप दाग नहीं सकते थे। परन्तु इस समय के 'ड्रेडनाट' नामक जहाजी तोप की लंबाई १२ इंच की है और वह पांच मील दूर के शत्रु को जर्जर करने में समर्थ है। सन् १८६४ के जहाजी बेड़े का तोप साढे तीन मील के अंतर पर रक्खे हुए आठ इंच के लोहे के पत्रे को भेद सकती थी, परन्तु आधुनिक गोलों का सामर्थ्य इतना है कि वे एक गज मोटे लोहे और डेढ़ फुट मोटे फौलाद के पत्रे के आरपार निकल जाते हैं। इस १२ इंच तोप के गोलों का वजन ८५० पौंड रहता है। आधुनिक गोलों में सैंकड़ों छोटी छोटी गोलियां भरते हैं और जब वह गोला फूटता है तब चारों ओर छोटी छोटी गोलियां उड़ती हैं जिससे कई लोग मर जाते हैं। तोप के गोलों के टुकड़े इतने प्रखर होते हैं कि उनके गिरने से मनुष्य खाक हो जाते हैं। जब कोई स्थान घेरा जाता है तब उस काम में पड़नेवाली तोपों के गोलों के टुकड़े एक तीव्र छुरे के समान सिपाहियों के वस्त्र काटते चले जाते हैं, इतना ही नहीं किन्तु उसमें से प्रगट होनेवाला विषारी वायु से भी हजारों सिपाही सांस रुकने के कारण मर जाते हैं।




जल के पृष्ठ भाग के नीचे गुप्त रीति से तैरते रहनेवाले और जहाज के धक्के से फूटनेवाले 'माइन' यन्त्र।

इस प्रकार ज्यों ज्यों तोप के गोलों का सामर्थ्य बढता गया त्यों त्यों जहाज का बाहिरी हिस्सा भी अधिकाधिक मजबूत बनाना पड़ा। यह प्रयत्न अब तक जारी है। तोप का ठीक ठीक निशाना मारने के लिये दूरबीन का उपयोग किया जाता है। इसके सिवाय एक और भी आश्चर्यकारक युक्ति अमल में लाई गई है। तोप पर एक ऐसा दर्पण लगाया जाता है जिससे, गोला चलानेवाले को, शत्रु के जहाजों का चित्र स्पष्ट रीति से दिखाई देने लगता है और वह उस पर अपना निशाना ठीक ठीक लगा सकता है। इस युक्ति से जब तोप का गोला छूटता है तब वह छै छै आठ आठ मील की

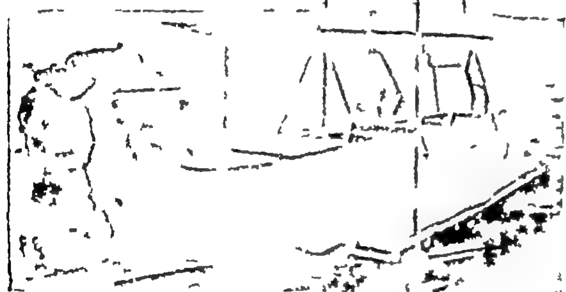



लड़ाई के जहाज की खिड़की में से 'माइन' नामक यन्त्र पानी में छोड़ रहे हैं। दाहिनी ओर कोने में जो चित्र देख पड़ता है वह स्वतंत्र 'माइन' का है।

दूरी पर रहनेवाले शत्रुओं के जहाजों को गरक ले डालता है। [illegible] हजार टन वजन के जहाज पर यदि इस प्रकार की दस तोपें हों तो वह पानी पर तैरनेवाला एक दुर्गम किला ही बन जाता है।

## 'माइन' यन्त्र।

आश्चर्य की बात है कि पानी में तैरनेवाले जहाजरूप जिस दुर्गम किले का ऊपर वर्णन किया गया है उसका केवल भेद ही नहीं किंतु सर्वथा नाश कर डालने की भी युक्ति निकाली गई है। जब लोगों ने देखा कि ऐसे बड़े भयानक जहाजों के पास कोई जा नहीं सकता क्योंकि यदि उसके पास कोई जाय तो तोप के गोलों से उसका नाश हो जायगा और यदि दूर से उस पर गोले छोड़े जायँ तो उसका एक टुकड़ा भी टूट नहीं सकता। ऐसी अवस्था में शोधक मनुष्यों की बुद्धि ने एक उपाय सोचा। पहिले यह अंदाज कर लिया जाता है कि अमुक जहाज अमुक स्थान में आनेवाला है। तब उस स्थान में गुप्त रीति से एक विध्वंसक यन्त्र जिसको 'माइन' कहते हैं पानी के भीतर रख दिया जाता है। ये यन्त्र जमीन पर कुछ दूर रह कर भी चलाये जा सकते हैं। केवल इतना ही नहीं किंतु ये शत्रु के जहाज के धक्के से आप ही आप फट जाते हैं और जहाज के टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं। माइन यन्त्र दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के यन्त्र समुद्र के नीचे रक्खे जाते हैं और जब ये चलाये जाते हैं तो अपने चारों तरफ साठ फुट तक प्रत्येक वस्तु का नाश कर डालते हैं। दूसरे प्रकार का माइन यन्त्र कुछ छोटे आकार का होता है और



[illegible] माइन बोट।

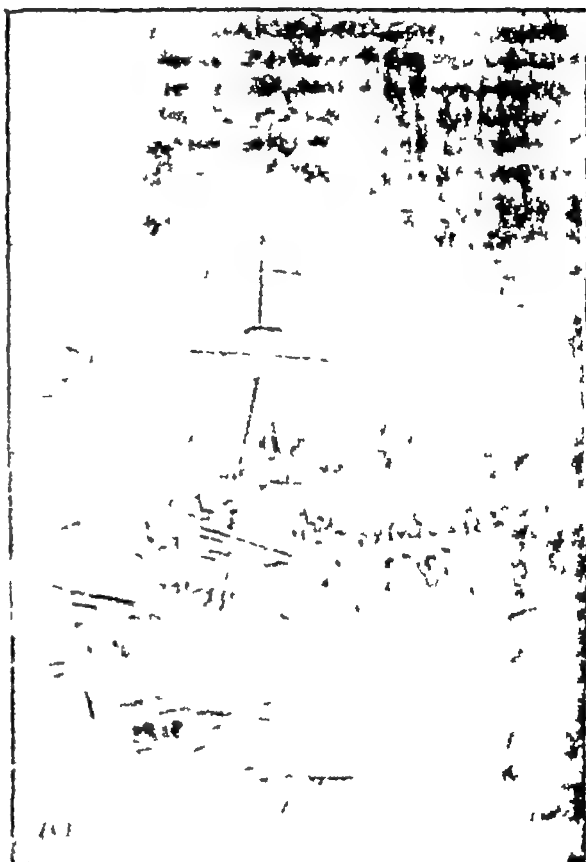


[illegible]

वह पानी पर तैरता है। उसमें पारे से भरी हुई एक छोटी शीशी और बिजली पैदा करनेवाली एक ब्याटरी रक्खी रहती है। ब्याटरी के दोनों तार पारे के पृष्ठ भाग के ऊपर कुछ फासले पर लिये जाते हैं और उसके चारों तरफ गन कॉटन भर दिया जाता है। गन कॉटन एक प्रकार का ज्वालाग्राही पदार्थ है जो नाइट्रिक ऍसिड में भिगो कर बनाया जाता है। ज्योंही शत्रु के जहाज का धक्का लगता है त्योंही यह माइन यन्त्र कुछ टेढ़ा हो जाता है, उसके भीतर का पारा ब्याटरी के तारों के दोनों छोरों का स्पर्श करता है, तुरंत ही बिजली की चिनगारियाँ उत्पन्न होती हैं, गन कॉटन का स्फोट होता है और जहाज के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। किसी किसी माइन यन्त्र में बिजली के तार समुद्र के किनारे पर ले जाते हैं और वहाँ से बिजली के प्रवाह के द्वारा यन्त्र चलाये जाते हैं। लड़ाई के बड़े बड़े जहाजों में एक दो छोटे छोटे जहाज रक्खे जाते हैं उनसे ये माइन यन्त्र पानी में छोड़े जाते हैं। इन यन्त्रों के नीचे जो लोहे की जंजीरें रहती हैं उनके कारण ये एक ही स्थान में खड़े रह सकते हैं। हर एक 'माइन' यन्त्र में [illegible] 'गन कॉटन' भरा रहता है। यह गन कॉटन इतना भयानक ज्वालाग्राही पदार्थ है कि साठ फुट के अंदर कोई जहाज सुरक्षित नहीं रह सकता। यदि इस प्रकार के ६ 'माइन' यन्त्र लगा दिये जायँ तो ५२० फुट चौड़ाई की खाड़ी भी शत्रुओं के लिये दुर्गम हो जाती है।

## टॉरपीडो।

समुद्र पर के युद्ध में जिन शस्त्रों का उपयोग किया जाता है उनकी भयानक उन्नति यहीं पर नहीं रुक रहती किंतु उसने इससे भी अधिक भयानक रूप धारण किया है। 'माइन' यन्त्र तो केवल एक ही स्थान में रह सकता है। जब शत्रु का कोई जहाज उसके समीप आवेगा तभी उस यंत्र का कुछ उपयोग हो सकेगा। इससे वर्तमान के युद्धों में जब एक तरह की कठिनाई उत्पन्न होने लगी तब तुरंत ही टॉरपीडो का आविष्कार किया गया। टॉरपीडो को पानी पर चलता हुआ एक प्रकार का माइन यन्त्र ही समझिये। उसका आकार कुछ लंबा होता है और उसके भीतर गन कॉटन अथवा और कोई ज्वालाग्राही तथा स्फोटक पदार्थ भरा रहता है। टॉरपीडो का आकार सिगार के समान होता है। उसका व्यास १४ से १८ इंच तक होता है। और उसके भीतर ८० से २०० पौंड तक गन कॉटन भरा जाता है। टॉरपीडो फौलाद के बनाये जाते हैं और उसके भीतर कुछ यन्त्र भी रहते हैं जिनके द्वारा वे पानी पर तैर सकते हैं, दाहिनी ओर से बाईं ओर लौटाये जा सकते हैं और निश्चित समय पर गन कॉटन का स्फोट

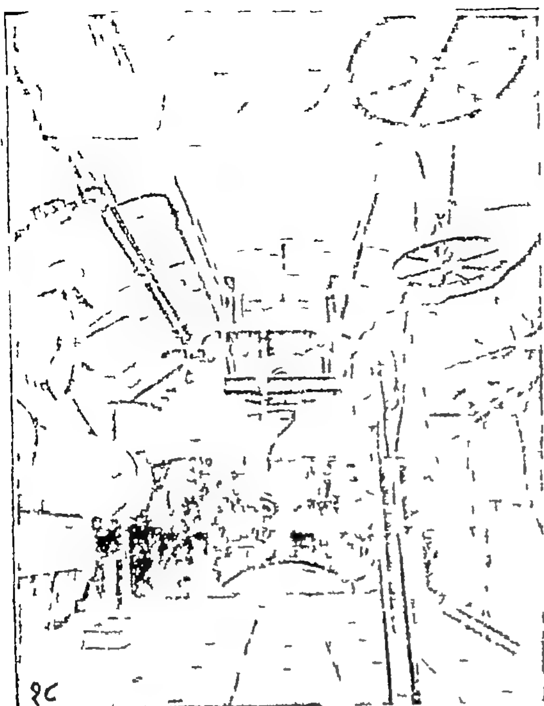


टॉरपीडो से नाश किया हुआ जहाज।

किया जा सकता है। टॉरपीडो में, पानी में चलने वाला, एक यन्त्र लगा रहता है जिसमें कुछ छोटी-बड़ी नलियाँ लगी रहती हैं। इन्हीं नलियों में से पारे की बूंद टपकती है और बिजली पैदा होने के लिये '[illegible]' बनाया जाता है।

इसके बाद टॉरपीडो में और भी कई सुधार किये गये अर्थात् समुद्र के पृष्ठ भाग के कुछ नीचे पानी में रह कर ऊपर घूमनेवाले टॉरपीडो बनाये गये। ये नये टॉरपीडो शत्रुओं को दृष्टिगोचर भी नहीं हो सकते इसलिये ये शत्रुओं के जहाजों के बिलकुल समीप चले जा सकते हैं और उनका नाश कर सकते हैं।

इन 'टॉरपीडो' तथा 'सबमरीन' जहाजों की उन्नति अब तक पूर्ण नहीं हुई है इसलिये कभी कभी पता चलता है कि ये समुद्र के ऊपर चले जाते हैं और किसी कारण से स्फोट होने से स्वयं अपना ही नाश कर डालते हैं। इन जहाजों पर रहनेवालों का प्राण सदा [illegible] जाने का डर बना रहता है। तथापि इन त्रुटियों को दूर करके नये नये सुधार का यत्न किया जा रहा है। अब तो इस बात का यत्न किया जा रहा है कि बिना तार के बिजली से टॉरपीडो समुद्र में चलाये जा सकें। ज्योंही ये सब सुधार पूर्णता से हो जायँगे त्योंही वर्तमान समय के युद्ध-प्रेमी लोगों को एक नया नाशक शक्ति रूपी साधन मिल जायगा जिसके द्वारा गुप्त रीति से हजारों लोगों का नाश किया जा सकेगा।



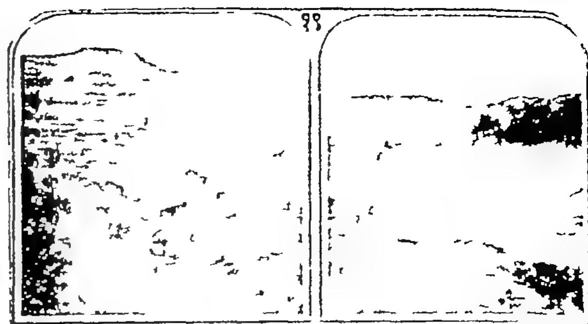

सबमराइन का भीतरी हिस्सा।

## युद्ध के विमान।

ऐसा बोध होता है कि वर्तमान समय के युद्ध-प्रेमी जनों की प्राण हानि करने की लालसा न तो भूमि पर तृप्त हुई और न समुद्र पर, इसलिये अब वे लोग आकाश को भी अपना युद्धस्थान बनाने का यत्न कर रहे हैं। जो आकाशमंडल अब तक युद्ध से दूषित न हुआ था वह अब लड़ाई के विमानों से भरा देख पड़ता है। सभ्य कहलाने वाले पश्चिमी देशों में इस समय अनेक नई नई युक्तियां निकल रही हैं जिनकी सहायता से लोग विमान में बैठ कर आकाश में बहुत दूर चले जाते हैं और वहां से अचानक अपने शत्रुओं पर बम गोलों की वृष्टि करने लगते हैं। ज्यों ज्यों विमान विद्या में उन्नति होती गई और उनके आविष्कारकों के यत्न सफल होते गये त्यों त्यों युद्ध के लिये भी देशों का ध्यान उधर आकर्षित होता गया। पहिले यह नियम था कि प्रत्येक युद्ध-प्रेमी देश अपने जहाजी बेड़े और थल सेना तयार रक्खे, यदि आवश्यकता हो तो उनकी वृद्धि भी करे। इस समय यह नियम पाया जाता है कि जहाजी बेड़े और थल सेना के साथ ही लड़ाई के विमान भी बनवाये जाँय और उनकी संख्या भी बहुत बढ़ा दी जाय। लड़ाई के विमानों के द्वारा शत्रुओं के जहाज, बन्दरस्थान, किले और शहर क्षण भर में नष्ट कर दिये जा सकते हैं। 'झेपेलिन,' 'पर्सीवल' इत्यादि नाम के विमान सत्ताईस टन बोझा लेकर, आसानी से हवा में उड़ सकते हैं। उन पर 'मशीनगन्' नाम की तोप और दो हजार पाउंड बारूद इत्यादि बम गोले का सामान रक्खा जा सकता है। वे हवा में एक घंटे में ५० मील के हिसाब से प्रवास कर सकते हैं। वे हवा ही में चार चार, पांच पांच दिन तक रह सकते हैं। उन्हें जमीन पर आने की कोई आवश्यकता नहीं होती। सोचने की बात है कि इस प्रकार अब विमानों में बैठ कर ग्यास से भरे हुए बम के गोले शत्रुओं पर छोड़ने का सामर्थ्य जिन लोगों को प्राप्त हो गया है उनके हाथ प्राणहानि करने की कैसी भयानक शक्ति आ गई है!

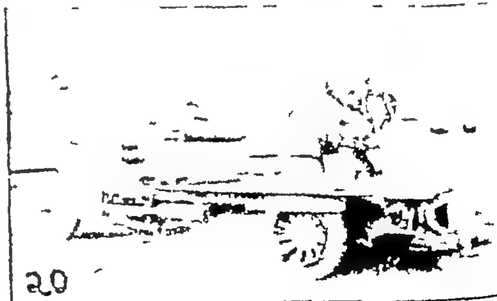
## शांति और युद्ध-प्रियता।

यदि वर्तमान समय के युद्धों का इतिहास देखा जाय तो मालूम होगा कि यूरोप के अनेक देश और अमेरिका तथा एशिया के भी अनेक देश जो अपने को 'सभ्य,' 'सुशिक्षित' और 'सुधरे हुए' कहते हैं, उक्त प्रकार के भयानक शस्त्रास्त्र इकट्ठा करके, जल और थल सेनाओं की वृद्धि करके तथा नए नए प्राणनाशक यंत्रों की सहायता प्राप्त करके सदा युद्ध के लिये तयारियां करते रहते हैं। उन देशों की प्रजा के कष्टोपार्जित द्रव्य में से अपना कर वसूल करके सरकार न जाने कितनी सम्पत्ति, प्रत्यक्ष युद्ध करने में और अप्रत्यक्ष रीति से युद्ध की तयारी करने में, बरबाद किया करती है! जब प्रजा के पसीने की कमाई इस प्रकार युद्ध में नष्ट कर दी जाती है तब न जाने कितने कुटुम्बों के लोग भूख से मरते होंगे, न जाने कितने लोग दरिद्री हो जाते होंगे और न जाने कितने लोकोपयोगी कार्य, धन के अभाव से, अपूर्ण रह जाते होंगे! जब इन सब बातों का विचार किया जाता है तब निराश होकर कहना पड़ता है कि उक्त युद्ध प्रिय देशों की 'सभ्यता,' 'शिक्षा,' 'सुधार' और 'उन्नति'



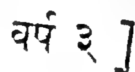

माइन-यंत्र की मार।

सिर्फ ढोल की पोल है! दीपक के तले सदा अंधियारा ही रहता है! अशिक्षित तथा शिक्षित लोगों के युद्धों में एक बहुत बड़ा भेद देखा जाता है। अशिक्षित लोग अपने युद्ध के 'कारण' स्पष्ट और प्रगट रूप से बता दिया करते हैं, परंतु वर्तमान समय के 'शिक्षित' लोग मुख से तो शांति देवी की स्तुति करते हैं और इस प्रकार की स्तुति करते ही करते 'शांति की रक्षा के लिये' भयानक युद्धों की केवल तयारी ही नहीं करते किंतु प्रत्यक्ष रणभूमि में भी उपस्थित हो जाते हैं! कोई कहते हैं कि "हम युद्ध करना नहीं चाहते हम तो शांति-देवी के उपासक हैं; क्या करें, ये हमारे चारों तरफ रहनेवाले देश मानते ही नहीं। हमें इस बात का सदा भय बना रहता है कि ये लोग न जाने कब हमारे देश पर हमला कर बैठेंगे, इसलिये केवल अपनी रक्षा के लिये, हमको युद्ध की तयारी करनी पड़ती है," कोई कहते हैं कि "हम तो स्वयं युद्ध के विरोधी हैं हमें युद्ध करना बिलकुल ना पसंद है परंतु सब देशों में "बेलेन्स आफ पावर" (शक्ति की समानता) रहनी चाहिए, कोई एक देश दूसरे देश से अधिक बलवान् न होने पावे, नहीं तो छोटे छोटे गरीब देश बिचारे पिस जायंगे और बड़े देश उन पर जुल्म करने लगेंगे, इसलिए हमको अपनी जल और थल सेनाओं की वृद्धि तथा दृढ़ता करके सदा युद्ध के लिये तयार रहना पड़ता है," कोई कहते हैं "आज तो हमें कोई भय नहीं है परंतु जब तक हम अपने 'स्फीयर आफ इन्फ्लुएन्स' (प्रभाव-क्षेत्र) की वृद्धि न करेंगे तब तक कौन कह सकता है कि हम भविष्य में भी निर्भय रह सकेंगे? इसलिये हमको युद्ध के लिये तयार रहना अत्यंत आवश्यक है" और कोई कोई भूतदया, शांति, सभ्यता, शिक्षा, सुधार और उन्नति इत्यादि की मीठी मीठी बातें करते हुए यह कहते हैं कि, "हमारे पड़ोसी देश पर कोई जुल्म करने न पावे इस लिये हम सशस्त्र होकर उसकी रक्षा किया करते हैं।" इस प्रकार युद्ध की भयानक तयारियों के विषय में कोई कुछ कहता है और कोई कुछ कहता है। पश्चिमी देशों के राजाओं में से जब कभी किसी दो राजाओं की मुलाकात होती है तब सारी दुनिया के लोग प्रशंसा करने लगते हैं कि, "शांति की दृष्टि से यह मुलाकात बड़े महत्त्व की है।" जब कभी किसी राजा के भाषण में शांति के बारे में एकाध शब्द या वाक्य आ जाता है अथवा जब कभी कोई राजा अपने पत्र में शांति की प्रशंसा करके दो चार वाक्य लिख देता है, तब तुरंत ही पश्चिमी सभ्य दुनिया के समाचार पत्र उस राजा का सचित्र चरित्र प्रकाशित करने लगते हैं और उसकी शांति प्रियता की प्रशंसा होने लगती है। उसीकी नकल हमारे देशवासी भी,




विमानों का विनाश करनेवाली जर्मन तोप।

बिना कुछ सोच विचार किये ही, करने लग जाते हैं। यह सब लोग जानते हैं कि यूरोप के "शांति परिषद्" की कितनी प्रशंसा हुआ करती है। भिन्न भिन्न देशों के राजा लोग अपने मुख से सदा कहा करते हैं कि हम शांति के पक्षपाती हैं। परंतु यदि उन देशों के बजट (आय व्यय के हिसाब) की ओर ध्यान दिया जाय तो यही देख पड़ेगा कि युद्ध की तयारी के लिये, जल-थल-सेनाओं और जहाजी बेड़ों के विभाग में, व्यय अधिकाधिक बढ़ता चला आ रहा है। भिन्न भिन्न देशों के प्रधान मंत्री अत्यंत गंभीरता से यह कहा करते हैं कि "उपयोगिता, अपमान का बदला लेने, शांति और प्रभाव



वर्ष ३ ] ज्येष्ठ संवत् १९७० विक्रमी—जून सन् १९१३ ईस्वी [ अंक ६

# रामकृष्ण-वाक्सुधा।

(गत दिसम्बर की संख्या से आगे।)

## बिन्दु १६

### विवाहित पुरुषों के विषय में।

महाराज बातें करते करते अपने कमरे के बरामदे में चले गये। मणि भी वहीं खड़ा था और नरेन्द्रादि सब शिष्य भी वहीं थे।

गृहस्थाश्रमी मनुष्य की चिन्ता।

महाराज बार बार यह कह रहे थे कि जिसमें पक्का विवेक और वैराग्य नहीं है उसको परमेश्वर का दर्शन कभी नहीं हो सकता। इस समय मणि की उमर २७-२८ साल की थी। उसका विवाह भी हो गया था। महाराज की उक्त बातें सुन कर वह अपने मन में चिन्ता करने लगा और कहने लगा 'क्या विवेक और वैराग्य का यही अर्थ है कि संन्यासी के समान संसार का—गृहस्थाश्रम का—कामिनी और कांचन का त्याग कर दिया जाय?''

मणि—महाराज जब कि स्त्री यह कहती है कि 'यदि तुम मेरी ओर न देखोगे—यदि तुम मेरी कुछ भी परवाह न करोगे—तो मैं अपनी जान दे दूंगी।'' तब क्या किया जाय?

महाराज (गम्भीरतापूर्वक)—जो स्त्री अपने पति के ईश्वर चिंतन में बाधा डालती है उसका त्याग खुशी से कर देना चाहिये। वह अपने नसीब का फल भोगती रहेगी। चाहे वह आत्महत्या करे या और कुछ करे। जब कि पति ईश्वरप्राप्ति के मार्ग का आक्रमण कर रहा हो, उस समय जो स्त्री अज्ञानवश विघ्न उपस्थित करती है उसको मूर्तिमान-अविद्या ही कहना चाहिये।

मणि चिन्तासागर में डूब गया। नरेन्द्रादि सब शिष्य भी क्षणभर स्तब्ध हो गये। किसीके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

महाराज, कुछ समय तक, इसी तरह बोलते रहे। मणि दीवाल से माथा टिकाए चुपचाप खड़ा था। तब उसकी ओर मुख कर महाराज ने धीरे से कहा "परन्तु जिसके अन्तःकरण में ईश्वर की भक्ति होती है उसकी बात ही अलग है। सब लोग उसके आधीन हो जाते हैं। स्त्री की तो बात ही क्या परन्तु स्वयं राजा और बड़े बड़े दुष्ट लोग भी उसकी आधीनता में रहने लग जाते हैं। यदि हमारे अन्तःकरण में भक्ति जागृत हो तो वे लोग भी धीरे धीरे ईश्वर के मार्ग में लग जाते हैं। यदि ईश्वर के विषय में पति की आंतरिक भक्ति शुद्ध होगी तो उसकी स्त्री उसकी इच्छा के विरुद्ध कभी बर्ताव न करेगी। ईश्वर की कृपा से उसके भी मन में [illegible] अभिप्राय का उदय हो जायगा और वास्तविक सहधर्मचारिणी के समान वह अपने पति की सहायता करने लगेगी।' मणि के हृदय की चिन्ता रूप आग उस वाक्सुधा से बुझ गई—उसका मन [illegible] हो गया।

मणि—महाराज यह संसार [illegible] भयानक है।

[illegible]

है उसका कुछ भय नहीं। ईश्वर की प्राप्ति का ज्ञान होने के बाद यदि मनुष्य इस संसार के सब विषयों का उपभोग करता रहे तो उसकी कोई हानि न होगी। [illegible] के शिष्यों में उनके संसारी जन थे परन्तु वे नाममात्र ही के लिये 'संसारी' कहलाते थे—संसार में रह कर वे लोग संसार से अलिप्त थे।

× × × ×

इस प्रकार बातें करते करते दोपहर का समय हो गया। भगवान् का भोग आदि समाप्त हुआ। महाराज ने भी भोजन पाया। नरेन्द्रादि सब शिष्यों ने महाराज के साथ थोड़ा थोड़ा प्रसाद ग्रहण किया।

## बिन्दु १७

### महाराज की समाधि।

दुर्गापूजा की नवरात्रि के बाद पूर्णिमा हुई। उस दिन बृहस्पतिवार था—ता० २६ अक्टोबर सन् १८८२ ई०। महाराज दक्षिणेश्वर के मंदिर में अपनी कोठरी में [illegible] और [illegible] के साथ बैठे थे। इतने में एक आदमी ने कहा बाबू केशवचन्द्र सेन आये हैं, वे नौका में बैठे हैं और नौका घाट ही पर खड़ी है।

कुछ समय के बाद केशवबाबू के कुछ शिष्य भी वहां आये और महाराज को प्रणाम करके बोले 'महाराज आपके लिये नौका घाट पर खड़ी है। केशवबाबू ने प्रार्थना की है कि आप नौका में चलने की कृपा कीजिये।' सन्ध्या के चार बजने का समय था। केशवबाबू की नौका में विहार करने के लिये महाराज डोंगी में बैठे। शिष्य भी आपके साथ था। डोंगी में बैठते ही बैठते महाराज बाह्यशून्य हो गये—उनकी समाधि लग गई।

मणि केशवबाबू की नौका में बैठा था। महाराज की डोंगी नौका की ओर आती देख वह अत्यन्त आनंदित हो गया। महाराज की बाह्यशून्य, स्तब्ध, निश्चल और समाधिस्थ मूर्ति की ओर टकटकी बांधकर वह देखने लगा। वह केशवबाबू की नौका में बैठ कर कलकत्ते से तीन बजे चला था। उसकी यह इच्छा थी कि श्रीरामकृष्ण परमहंस और केशवबाबू के सम्मेलन के समय जो दिव्य आनंद होगा उसका कुछ अनुभव करें और उन दोनों की बातचीत सुन कर अपने श्रवणों को पवित्र करें। केशवबाबू ने अपने सच्चरित्र तथा अद्वितीय वक्तृता से अनेक बंगाली युवकों के मन मोहित कर लिये थे। अनेकों के हृदय में केशवबाबू के सम्बन्ध में आत्मीयता उत्पन्न हो गया था—लोग उनका आदर और प्रेम से करते थे। केशवबाबू अंग्रेजी पढ़े लिखे विद्वान और [illegible] थे। वे मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे। इसलिये यह आश्चर्य की बात है कि केशवचन्द्र सेन [illegible] परमहंस के सम्बन्ध में इतना प्रेम [illegible]

[illegible]

भी थे—वे ब्रह्मचिंतन में निमग्न रहा करते थे और पुष्पचंदन आदि से देव-देवियों की, प्रतिमाओं की, पूजा भी किया करते थे। केवल इतना ही नहीं; किंतु मूर्ति की पूजा करते करते भक्तिभाव से उन्मत्त होकर वे नाचने और गाने भी लगते थे! सन्यासी होकर गद्दी और पलंग पर सोते थे! कभी गेरुए वस्त्र पहिनते तो कभी कोट, बूट भी चढ़ा लेते! केशवबाबू केवल निराकारवादी ही थे। वे किसी देव-देवियों की, प्रतिमाओं की, पूजा करना निंदनीय समझते थे। वे स्त्री पुत्रों सहित गृहस्थाश्रम में रहते थे। अंग्रेजी में व्याख्यान देते, समाचारपत्रों में धार्मिक चर्चा करते और इसी तरह अन्य कार्य भी किया करते थे।

अब महाराज की डोंगी नौका के समीप आ पहुंची। सब लोग महाराज का दर्शन करने के लिये उत्सुक होकर खड़े हो गये। केशवबाबू इस बात का प्रबंध कर रहे थे कि नौका पर चढ़ने के समय महाराज को किसी प्रकार कष्ट न हो।

नौका के ऊपरी भाग में महाराज को ले जाना था—परंतु वे तो समाधि में निमग्न थे। लोगों ने उनको जगाया, उठाया, ले जाने लगे, तौभी आप भावस्थ ही बने रहे—ब्रह्मानंद ही में निमग्न थे। नौका पर चढ़ते समय उन्होंने अपने शरीर का सब भार अपने एक शिष्य पर डाल दिया था। इसमें संदेह नहीं कि उनके कदम उठते चले जा रहे थे, पर यह क्रिया केवल यंत्र के समान हो रही थी क्योंकि उनका चित्त ब्रह्मचिंतन में लीन हो गया था! वे कमरे में लाए गये। केशवबाबू आदि सब लोगों ने उनको प्रणाम किया, परंतु उनका ध्यान उस ओर न था। चढ़ने के समय जो कुछ थोड़ी सी जागृति उनके शरीर में देख पड़ती थी वह भी अब नष्ट हो गई। महाराज को एक कुर्सी पर बैठाया। केशवबाबू दूसरी कुर्सी पर बैठ गये। तब अन्यान्य लोग भी अपने अपने स्थान पर बैठ गये। वह कमरा बहुत छोटा था, इसलिये शेष लोग उसके बाहर दरवाजे और खिड़की के पास खड़े होकर उत्सुकता से भीतर देखने लगे।

कुर्सी पर बैठते ही महाराज अपनी समाधि में पूर्ण निमग्न हो गये—वे बिलकुल बाह्यशून्य हो गये—उन्हें बाहरी दुनियां की कुछ भी सुध-बुध न रही! सब लोग उनकी ओर टकटकी लगा कर देखने लगे। उस छोटे से कमरे में भीड़ बहुत हो गई थी, इसलिये वहां हवा अच्छी तरह नहीं आ सकती थी। यह बात केशवबाबू के ध्यान में आई, तब उन्होंने सब खिड़कियां खोल दीं।

पहले पहल विजय केशवबाबू का अनुयायी था। उनके पंथ का त्याग करके वह अब साधारण ब्रह्मसमाज का अनुयायी हो गया था। केशवबाबू ने, अपने सामाजिक तत्वों के विरुद्ध, अपनी कन्या का विवाह छुटपन ही में कर दिया था; इसलिये विजय ने अनेक बार उनकी निंदा की थी। विजय को यहां अचानक देख कर केशवबाबू कुछ आश्चर्यचकित से हो गये।

संसाररूप कारागृह।

इस बात का उल्लेख ऊपर किया ही गया है कि सब लोग टकटकी लगा कर महाराज की ओर देख रहे थे। कुछ समय के बाद महाराज की समाधि का उत्थान हुआ, तौभी उनकी आंतरिक वृत्तियां ब्रह्मभाव ही में लीन थीं। धीमी आवाज से महाराज कहने लगे "हे माता, तू मुझे यहां क्यों लायी? ये सब लोग कारागृह में बंधे पड़े हैं! क्या मैं इस कारावास से इन लोगों को मुक्त कर सकता हूं?" महाराज के मुख से ये वचन क्यों निकले? कदाचित् आपने सोचा होगा कि ये सब लोग संसाररूप कारागृह में बंध पड़े हैं—ये लोग समाधिरूप स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर सकते—ये लोग आत्मा के दिव्य प्रकाश की ओर देख भी नहीं सकते-विषय सम्बंधी कर्मों से इनके हाथ पैर बंध गये हैं। सच बात है; सांसारिक जनों को अपने कारागृह के पदार्थों के सिवाय और कुछ देख ही नहीं पड़ता। ये लोग यही समझते हैं कि शारीरिक सुख और विषय-कर्म—कामिनी और कांचन—के बिना जीवन की सफलता हो नहीं सकती। इन्हीं सब बातों को सोच-समझ कर महाराज ने उक्त वाक्य अपने मुख से निकाले होंगे।

देह और आत्मा।

महाराज को धीरे धीरे बाह्य-ज्ञान होने लगा। गाजीपुर के नील माधव बाबू भी उस मंडली में बैठे थे। जब महाराज बाह्य-वृत्ति में जागृत हुए तब नीलबाबू और उनके एक साथी गाजीपुर के पौहरी बाबा के विषय में बातें करने लगे।

एक साथी—महाराज, बड़े सौभाग्य की बात है कि हम लोगों को पौहरीबाबा का दर्शन हुआ है। वे गाजीपुर में रहते हैं। आप ही के समान सत्पुरुष हैं।

महाराज अब तक भाषण करने की स्थिति में न थे; उनका हृदय ब्रह्मानंद में निमग्न था, इसलिये उनके मुख से एक भी शब्द निकलता न था। जिस मनुष्य ने बाबा की बात छेड़ी थी उसकी ओर देख कर वे सिर्फ हंसे। यह देख कर वह आदमी फिर बोला "महाराज, बाबा ने आपकी तसवीर अपने कमरे में लगा रक्खी है।"

महाराज ने अपने शरीर की ओर अंगुली का इशारा किया और हंसते हुए कहा "यह सिर्फ तकिया का आच्छादन है।" महाराज का भावार्थ यह था कि देह नश्वर है, उसमें रहनेवाला देही अविनाशी है। ऐसे नश्वर देह की तसवीर से क्या लाभ होगा? मनुष्य के हृदय में जो देही अर्थात ईश्वर रहता है उसीका आदर कर[ना] चाहिये, उसीके चित्र की ओर गौरवपूर्ण दृष्टि से देखना चाहिय[े]।

महाराज—एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि भक्त का हृदय [ही] ईश्वर का निवासस्थान—मंदिर—है। इसमें सं[देह]

ईश्वर का निवासस्थान।

नहीं कि वह सारे जगत में व्याप्त है तथापि भ[क्त] का हृदय ही विशेष रूप से उसका निवासस्थ[ान] कहा जाता है। जैसे किसी श्रीमान् के अनेक घर होते हैं, प[र] उसका खास घर सदा नियमित रहता है। इसी तरह भक्त [के] हृदय भी ईश्वर का विशेष स्थान है। यदि ईश्वर का दर्शन करना [हो] तो मनुष्य को चाहिये कि वह ईश्वर के विशेष निवासस्थान में जा[ए]।

ईश्वर एक है, उसके नाम अनेक हैं।

ज्ञानी अथवा वेदांती लोग जिसको ब्रह्म कहते हैं उसीको यो[गी] जन आत्मा और भक्त जन भगवान् कहते [हैं]। जब कोई ब्राह्मण देव की पूजा करता है [तब] उसको "पुजारी" कहते हैं, और जब [वह] "रसोई" बनाने का काम करता है। तब उस[को] "रसोइया" कहते हैं, परंतु दोनों अवस्थाओं में वह ब्राह्मण ही है।

अद्वैतवादी।

जब कोई वेदांती ज्ञान मार्ग का अवलंब करके ब्रह्म प्राप्ति का [प्रयत्न] करता है तब वह विचार करते करते "[नेति] नेति" कहता है। अर्थात् वह कहता है कि [यह] ब्रह्म नहीं है, वह ब्रह्म नहीं है, जीव ब्रह्म [नहीं] है, जगत् ब्रह्म नहीं है इत्यादि। इस प्रकार विचार करते करते जब [मन] स्थिर हो जाता है, तब वह वासनाओं के आघात से डिगता न[हीं]; अर्थात् जब मन का पूर्ण रीति से लय हो जाता है, तभी सम[ाधि] सिद्ध होती है, तभी ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है और तभी "ब्रह्म स[त्यं] जगन्मिथ्या" इस तत्व का साक्षात् अनुभव होता है। ज[गत्] की नामरूपात्मकता केवल स्वप्न के समान है। इस बात का [वर्णन] शब्दद्वारा किया नहीं जा सकता कि ब्रह्म कैसा है। ब्रह्म कोई [वस्तु] भी नहीं है। यह बात केवल अनुभव से प्रतीत होती है।

भक्त अथवा द्वैतवादी।

ऊपर इस बात का वर्णन किया गया है कि वेदांती अथवा [ज्ञानी] लोग क्या कहते हैं। अब यह देखना चा[हिये] कि भक्त लोग इस विषय में किस तरह वि[चार] करते हैं। वे सब अवस्थाओं को सत्य ही म[ानते] हैं। वे इस जगत को भी सत्य मानते हैं—स्वप्नवत नहीं मा[नते]। उनकी दृष्टि से नाम और रूप भी सत्य है। वे कहते हैं कि [ईश्वर] सगुण है, वह अनेक गुणों का निधि है, इस संसार [की] प्रत्येक वस्तु उसीकी बनाई हुई है, सारा ब्रह्मांड उ[सीके] ऐश्वर्य को प्रकट करता है। आकाश, नक्षत्र, चंद्र, सूर्य, [पर्वत], समुद्र और जीव जंतु इत्यादि परमेश्वर ही ने उत्पन्न किये हैं। [जिस] प्रकार वह हृदय के भीतर है उसी तरह वह बाहर भी है। [भक्त] यह कहता है कि, *चौबीस तत्त्व—जीव, जगत इत्यादि [सब] कुछ उसीमें भरे हैं। शक्कर में शक्कर मिला देने से जैसे उ[सकी] मिठास स्वयं शक्कर को नहीं मालूम हो सकती, उस तरह की [स्थिति] में रहना भक्त पसंद नहीं करता। शक्कर से अलग रह कर शक्क[र की] मिठास चखते रहना उसको बहुत पसंद है। (सब लोग हंसते [हैं])

क्या तुम जानते हो कि भक्त का भाव कैसा होता है? वह [कहता] है "हे ईश्वर, तू प्रभु है, मैं तुम्हारा दास हूं, तू मेरी माता [है, मैं] तेरा बालक हूं।" भक्त की यह भावना नहीं होती कि मैं "ब्रह्म [हूं]"।

योगीजन इस बात का यत्न करने में लगे रहते हैं कि परा[त्मा] का साक्षात्कार हो। आत्मनिग्रह करके जीव और शिव—जी[वात्मा] और परमात्मा—का संयोग करना ही उनका मुख्य उद्देश होता [है]। जो मन विषयों के पीछे मदान्ध होकर दौड़ता रहता है उ[सको] अपने आधीन करना—उसको स्थिर करना—यही उनका [मुख्य] कर्तव्य होता है। जब इस प्रकार मन स्थिर हो जाता है [तब वे] उसको परमेश्वर का ध्यान करने में लगा देने का यत्न करते हैं। [यही] कारण है कि योगीजनों को अपने अभ्यास की प्रथमावस्था में [एकांत] प्रदेश में रह कर और स्थिरासन होकर, अनन्य भाव से, परमात्[मा का] चिंतन करना पड़ता है।

स्मरण रहे कि मूल वस्तु एक ही है, केवल नामों की भिन्न[ता है]। जो ब्रह्म है वही आत्मा है और वही भगवान्। ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म [कहता] है, योगी परमात्मा कहता है और भक्त भगवान् कहता है। [वस्तु] एक है, नाम भिन्न भिन्न हैं।

## बिंदु १८

### सगुण ईश्वर, आदिशक्ति और उसका ऐश्वर्य।

केशवबाबू की नौका धीरे धीरे कलकत्ते की ओर जाने [लगी]। नौका में बैठनेवाले सब लोग रामकृष्ण परमहंस के मुख की ओ[र देख] रहे थे और उनके मुखारविंद से टपकनेवाले वाक्सुधा के [रस] का पान करने में तल्लीन हो रहे थे। पर उन्हें इस बात का [ध्यान] ही न रहा कि हमारी नौका चल रही है या नहीं। कुछ स[मय के] बाद दक्षिणेश्वर का मंदिर पीछे रह गया—उस मनोहर दे[वालय] का दृश्य दृष्टिपथ के बाहर चला गया। नीचे की ओर गंगा

* चौबीस तत्त्व=स्थूलपंचमहाभूत, सूक्ष्मपंचमहाभूत, पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रि[य], बुद्धि, अहंकार और प्रकृति।

निर्मल तथा पवित्र जल में नीलवर्ण आकाश प्रतिबिम्बित हुआ था। जल पृष्ठ पर अनेक लहरें विहार कर रही थीं। उन लहरों को काटती हुई अग्निबोट बड़े वेग से चली जा रही थी। परन्तु इन बातों की ओर उन लोगों का ध्यान न था। वे उस शान्तवदन, आनन्दमय और प्रेमपूर्णमूर्ति की ओर देखने ही में निमग्न थे। महाराज की बातें बन्द नहीं हुईं—वे फिर कहने लगे—

ब्रह्म और शक्ति।

महाराज—वेदान्ती या ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं कि केवल ब्रह्म ही एक वस्तु है—इसके अतिरिक्त जो कुछ है सो सब 'अवस्तु' है। केवल ब्रह्म सत्य है, अन्य सब जगत मिथ्या है। वे कहते हैं कि सृष्टि, स्थिति प्रलय, जीव, जगत इत्यादि सम्पूर्ण दृश्य केवल शक्ति—माया—माता का खेल है। विचार-दृष्टि से यह जगत स्वप्न के समान मिथ्या है और शक्ति भी वैसी ही है। परन्तु जब तक विषय शून्यावस्था प्राप्त नहीं होती, जब तक मन का लय सिद्ध नहीं होता और जब तक समाधि का अनुभव नहीं होता तब तक शक्ति या माया के उस पार चले जाना सम्भव नहीं है—चाहे कोई 'नेति नेति' तत्व को दिनरात कहा करे। 'मैं ध्यान करता हूँ,' 'मैं चिन्तन करता हूँ' इत्यादि भाव माया के—शक्ति के—द्योतक हैं।

ईश्वर एक है।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्म और शक्ति में कुछ भेद नहीं है। यदि ब्रह्म सत्य है तो उसकी शक्ति या माया भी सत्य है। क्या किसीने ऐसी आग देखी या सुनी है कि जिसमें दाहक शक्ति न हो? अग्नि के साथ ही उसकी दाहक शक्ति भी रहती है। यदि अग्नि सत्य मानी जाय तो उसकी दाहक शक्ति भी सत्य होनी चाहिये। अग्नि के बिना केवल दाहक शक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती, अथवा दाहक शक्ति के बिना केवल अग्नि की कल्पना नहीं की जा सकती। दूसरा उदाहरण लीजिये। क्या सूर्य के बिना केवल किरणों की, या किरणों के बिना केवल सूर्य की कल्पना की जा सकती है? नहीं। इसी तरह बिना ब्रह्म के शक्ति की, अथवा बिना शक्ति के ब्रह्म की भावना नहीं की जा सकती। यदि नित्य वस्तु (ब्रह्म) की भावना करना हो तो उसकी लीला-शक्ति या माया का त्याग नहीं किया जा सकता। आदिशक्ति लीलामयी है। वही उत्पत्ति, स्थिति और लय करती है। उसीका नाम काली माता है।

काली माता ब्रह्म है, ब्रह्म काली माता है। वस्तु एक ही है जो स्वयं निष्क्रिय है, जो उत्पत्ति स्थिति और लय आदि कुछ भी कार्य नहीं करती। ऐसी जब मेरी भावना होती है तब मैं उसे ब्रह्म कहता हूँ। और जब मेरी यह भावना होती है कि वही इन सब कार्यों को करती है तब मैं उसीको काली कहता हूँ, शक्ति कहता हूँ। वस्तु एक ही सिर्फ नाम और रूप का भेद है।

सब धर्मों का समन्वय।

पदार्थ एक ही है, परन्तु भिन्न भिन्न भाषाओं में उसके भिन्न भिन्न नाम हैं जैसे जल, वॉटर, पानी, वारि, एक्वा इत्यादि। तालाब के चारों ओर घाट होते हैं। एक घाट पर हिंदू पानी पीते हैं और वे उसे 'जल' कहते हैं। दूसरे घाट पर मुसलमान रहते हैं और वे 'पानी' कहते हैं। यदि तीसरे घाट पर कोई अंग्रेज हो तो वह उसे 'वॉटर' कहेगा और चौथे घाटवाला लेटिन भाषा में 'एक्वा' कहेगा। यथार्थ में पानी एक ही है परन्तु केवल शब्दों में भेद है। इसी तरह परमेश्वर भी एक है और उसके नाम अनन्त हैं। कोई 'अल्ला' कहते हैं कोई 'गॉड' कहते हैं, कोई 'ब्रह्म' कहते हैं कोई 'काली' कहते हैं और कोई राम, कृष्ण, हरि, विष्णु, नारायण, दुर्गा, जीसस (ईसामसीह), बुद्ध इत्यादि कहते हैं।

केशवचन्द्र—महाराज, काली माता भिन्न भिन्न रूपों से लीला करती है—इस लीलामय जगत में कार्य करती है? कृपापूर्वक इस विषय पर कहिये।

महाराज (हँसते, हँसते)—वह अनेक भावों से लीला करती है। कभी तो वह महाकाली होती है अर्थात् निरुपाधिक निरञ्जन निराकार रहती है; कभी वह नित्यकाली हो जाती है अर्थात् इस जगत् के समान रूपवान नहीं रहती। कभी वह श्मशानकाली बन कर मृत्यु पर अपना आधिकार करती है और एक क्षण में श्यामा होकर अपने बालकों की रक्षा करती है। कभी वह रक्षाकाली होकर अपने भक्तों को आनन्द देती है। तन्त्रों में महाकाली और नित्यकाली का वर्णन किया गया है। जब यह सारा ब्रह्माण्ड शून्यावस्था में था, जब यह सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी, जब चन्द्र, सूर्य ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी और समुद्र आदि कुछ भी न थे तब उस समय महाकाली अपने निराकार रूप में महाकाल में लीन होकर रहती थी। श्यामा में अनेक कोमल भाव हैं—वह वराभयदायिनी है प्रेमदायिनी है और इसी रूप से वह प्रत्येक मनुष्य के घर में पूजी जाती है। जिस समय महामारी, दुर्भिक्ष, धरणीकम्प, अनावृष्टि, अतिवृष्टि इत्यादि आपत्तियाँ आती हैं उस समय वह रक्षाकाली के नाम से पूजी जाती है। श्मशानकाली की संहार मूर्ति होती है। जिस समय वह मुर्दे और भूत पिशाच और डाकिन इत्यादि के सहवास में, श्मशान में निवास करती है उस समय के उसके भयानक रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता।

उसकी उत्पत्ति इस प्रकार होती है। जब इस जगत के विनाश का अर्थात् प्रलय का समय समीप आता है उस समय वह मेरी माता सृष्टि के बीज को एकत्रित करके अपने पास रख लेती है। जो स्त्री गृहस्थी के काम-काज में निपुण होती है वह एक घड़े में अनेक आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करती रहती है (केशवबाबू और अन्य लोग हँसते हैं)।

सृष्टि का बीज।

महाराज (हँसते हँसते)—हाँ भाई बात तो ऐसी ही है। मेरी माता भी इसी तरह सृष्टि के बीज को एकत्रित करके अपने पास रखती है।

आदिशक्ति जिस प्रकार सृष्टि के भीतर है उसी प्रकार सृष्टि के बाहर भी है। जगत् की उत्पत्ति के बाद वह जगत् ही में निवास करती है। उसको मकड़ी के समान और जगत् को जाले के समान जानो। जैसे मकड़ी पहले अपने पेट से जाला बाहर निकालती है और फिर उसी जाले में आप रहने लगती है वैसे ही इस शक्ति का भी जानो। मेरी माता जगत् का आधार और आधेय भी है। वही जगत का निमित्त कारण है और उपादान कारण भी है।

जगत् का आधार।

काली मेरी माता है। क्या उसका रंग काला है? नहीं। वह बहुत दूर है—उसका रूप मानवी ज्ञान को अगम्य है इसलिये वह कदाचित् काली सी देख पड़ती हो परन्तु यदि उसका स्वीकार किया जाय—उसकी पूजा की जाय—उसका ज्ञान हो जाय—तो जान पड़ता कि उसका रंग काला नहीं है किंतु अत्यन्त मनोहर है।

आकाश भी दूर से नीला देख पड़ता है परन्तु यदि अपने समीप का आकाश देखा जाय तो उसका कोई रंग ही नहीं है। समुद्र का जल भी दूर से नीला दिख पड़ता है; परन्तु जब उसके पास जाओ और थोड़ा सा जल हाथ में लेकर देखो तो मालूम होगा कि उस जल में कोई रंग भी नहीं है। इसी तरह ब्रह्म के समीप—मेरी माता के निकट—जाकर उसको देखो, उसका अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करो, उसका साक्षात्कार लाभ करो तब यह देख पड़ेगा कि वह निर्गुण और निराकार ब्रह्म ही है।

इतना कहते कहते महाराज प्रेमोन्मत्त होकर, शिव और शक्ति की अभिन्नता के विषय में, कुछ गाने लगे और फिर बोलने लगे—

इसी आदिशक्ति के कारण मनुष्य बद्ध या मुक्त होता है। यह इसी माता का प्रभाव है कि इस संसार में अनेक जीव 'कामिनी और काञ्चन' के मोहजाल में फँस जाते हैं। ज्योंही मेरी माता किसी मनुष्य की ओर कृपादृष्टि से देखती है त्योंही वह संसार की माया से मुक्त हो जाता है। वह अपने बालकों को भवसागर पार कर देती है। यथार्थ में वह भवबन्धहारिणी और तारिणी है। वह अत्यन्त लीलावती है। यह सारा संसार उसीकी लीला है। वह इच्छामयी और आनन्दमयी है। लीला मात्र से, इच्छा मात्र से, वह अपने भक्तों को संसार बंधन से मुक्त कर देती है।

एक ब्रह्मसमाजी—महाराज, आपने कहा कि यदि माता चाहे तो वह सब को मुक्त कर सकती है। तो फिर वह बतलाये कि उसने हम सब लोगों को इस संसार में बद्ध क्यों कर लिया?

इच्छामय का खेल।

महाराज—केवल उसकी इच्छा! उसकी यही इच्छा है कि संसार में इस प्रकार की लीला हो। मानों उसने सब जीवों को गुप्त रीति से कह दिया है "अच्छा, जाओ जब तक मैं फिर आज्ञा न दूँ तब तक संसार में रहो।" ऐसी अवस्था में न तो जीव का कोई दोष है और न हमारे मन का। ज्योंही उसकी कृपा होगी त्योंही वह अपने बालकों को मुक्त कर देगी। वह तुरन्त ही हमारे मन की विषय प्रवृत्ति नष्ट कर डालेगी और हम मुक्त हो जायँगे। अतएव भाव से उसकी कृपा प्राप्त करनी चाहिये।

इसके बाद, कुछ समय तक, महाराज इस भाव से गाते रहे कि मैं एक सांसारिक जीव हूँ, इस अवस्था में मैं बहुत दुःखित हूँ, तेरी कृपा के बिना मेरा उद्धार न हो सकेगा। अन्त में महाराज ने कहा कि यह जीव इसी माया से मोहित होकर भवसागर में गोते लगाता रहता है।

## चित्र १५

## कर्मयोग—संसार और निष्काम कर्म।

एक ब्रह्मसमाजी—महाराज क्या यह बात सच है कि सर्व स्वत्व परित्याग किये बिना मनुष्य को ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती?

महाराज—नहीं, नहीं। तुमको सर्व स्वत्व परित्याग की क्या आवश्यकता है? तुम जैसे हो वैसे ही बने रहो। यह संसार सार और दुःख का मिश्रण है। यद्यपि तुम लोग इस संसार में बद्ध हो तथापि इस बात की ओर ध्यान रक्खो कि तुम्हारा मन सदा ईश्वर की भक्ति में लीन रहे—तुम सदा उसकी कृपा प्राप्त करने का यत्न करते रहो। यदि ऐसा न करोगे तो सद्गति न होगी। एक हाथ से दुनिया के सब कामकाज करो और दूसरे हाथ से प्रभु के चरणों को दृढ़ता से पकड़े रहो। जिस समय कोई भी कामकाज न हो उस समय दोनों हाथों से प्रभु की सेवा में लगे रहो।

देखिये, सब बातें केवल मन ही पर अवलंबित होती हैं। यदि तुम्हारा मन बद्ध हो तो तुम भी बद्ध हो जाते हो और यदि तुम्हारा मन मुक्त हो तो तुम भी मुक्त हो जाओगे। मन का रंग पानी के समान है, जो रंग उसमें दिया जायगा वही उसका रूप हो जायगा। उसमें लाल रंग डालो, वह लाल देख पड़ेगा, पीला रंग डालो, पीला हो जायगा। मन स्वयं निर्गुण है। केवल स्थिति के कारण ही उसमें गुण या अवगुण देख पड़ते हैं। देखिये, अंग्रेजी लिखापढ़ा आदमी आप ही आप "सिट् फिट्, पट् मेट्" बोला करता है। संस्कृत जाननेवाला पंडित "घटपटादि" कहा करता है। यह सब अभ्यास, आदत या स्थिति, का परिणाम है। यदि मन को कुसंगति लग जाय तो उसका परिणाम हमारे आचार, विचार और उच्चार पर भी प्रगट होने लगता है। इसके बदले यदि मन को अच्छी संगति में—भक्त जनों के समागम में—लगा दिया जाय तो वह ईश्वरचिंतन में रममाण हो जाता है और फिर ईश्वर की कथाओं के अतिरिक्त उसको कुछ नहीं सुहाता।

स्थिति की शक्ति

सारांश यह है कि सब बातें मन ही पर अवलंबित हैं। वह सचमुच बहुरूपी है। जैसा देश हो वैसा ही, वह, भेष बना लेता है। देखिये, मनुष्य के एक ओर स्त्री और दूसरी ओर कन्या है। दोनों के शरीरों पर वह प्रेमभाव से अपना हाथ धरता है—अथवा दोनों को प्रेमभाव से आलिंगन देता है, परंतु स्त्री विषयक प्रेमभाव और कन्याविषयक प्रेमभाव में जमीन आसमान का अंतर होता है। यद्यपि भाव दो प्रकार के और भिन्न भिन्न हैं तथापि मन एक ही है।

## विंदु २०

## ईसाईधर्म, ब्राह्मसमाज और पापवाद।

श्रीरामकृष्ण (ब्रह्मसमाजियों से) —सच बात है कि, बंधन के लिये मन ही कारण है और मोक्ष के लिये भी मन ही कारण है। मैं मुक्त पुरुष हूं, चाहे मैं जन-समाज में रहूं अथवा वन समाज में, चाहे मैं संसार में रहूं अथवा संसार के बाहर; तौभी मुझे किसी प्रकार का बंधन नहीं है। मैं राजाधिराज का बालक हूं मैं ईश्वर का पुत्र हूं। मुझे बांध कौन सकता है? यदि किसी आदमी को सांप काटे और वह यह भावना करे कि मुझे विष की बाधा हुई ही नहीं तो उस पर विष का कोई परिणाम नहीं होगा। इसी प्रकार यदि मन में दृढ़तापूर्वक यह भावना की जाय कि मैं बद्ध नहीं हूं, मैं मुक्त ही हूं, तो मनुष्य यथार्थ में मुक्त ही हो जायगा।

एक समय की बात है कि एक ईसाई ने मुझे एक पुस्तक दी। मैंने कहा इसको पढ़ कर मुझे अर्थ बताओ। क्या कहूं, उस पुस्तक में आरंभ से अंत तक "पाप" ही "पाप" भरा था। (केशवबाबू की ओर) ब्रह्मसमाजियों को भी "पाप" के सिवाय और कुछ नहीं दिख पड़ता। यदि कोई मनुष्य यह कहता रहेगा कि "मैं बद्ध हूं, मैं बद्ध हूं,". तो सच मानो कि, उसके भाग्य में बद्धता ही बनी रहेगी। इसी प्रकार जो अभागी मनुष्य रात दिन यह रटता रहेगा कि "मैं पापी हूं, मैं पापी हूं" तो इसमें संदेह नहीं कि वह पापी ही हो जायगा।

यदि कोई मनुष्य श्रद्धायुक्त अंतःकरण से ईश्वर का नाम लेगा तो उसके सब पाप नष्ट हो जायेंगे—निःसंदेह वह मुक्त हो जायगा। हरि नाम के विषय में ऐसी दृढ़ भावना होनी चाहिये "मैं ईश्वर का नामस्मरण करता हूं, अब मेरे पास पाप कैसे रह सकते हैं। पाप के लिये अब मेरे पास कोई स्थान नहीं है। अब मैं बद्ध दशा में नहीं रह सकता"। कृष्णकिशोर बाबू एक पापभीरु हिन्दू और सदाचार निष्ठ ब्राह्मण हैं। एक समय वे वृंदावन की यात्रा को गये थे। मंदिरों में दर्शन करते करते उन्हें प्यास लगी। तब वे एक कुआं पर पानी पीने को गये। वहां एक आदमी खड़ा था। उससे उन्होंने कहा "बाबा, तू कौन जात है, मुझे थोड़ा पानी पिला, ?" यह सुन कर उस आदमी ने कहा "महाराज, मैं नीच जाति का चमार हूं।" इस पर कृष्णकिशोर ने कहा "कोई हर्ज नहीं, तू मुख से राम का नाम ले और मुझे पानी पिला।"

ईश्वर के नाम में ऐसी ही कुछ अद्भुत सामर्थ्य है। यदि उसके नाम का स्मरण किया जाय तो मनुष्य का शरीर और मन सचमुच पवित्र हो जाता है।

तुम लोग पाप और नरक इत्यादि अमंगल भावनाओं से अपने मन को दूषित क्यों करते हो? एक बार अपने मुख से यह कहो कि "हे भगवन्," जो काम न करना चाहिये वह मैंने किया, और जो काम करना चाहिये वह मैंने नहीं किया।" इतना कह कर उसके पवित्र नाम की शक्ति में विश्वास रक्खो। तुम्हारे सब पाप भस्म हो जायंगे।

यह कहते ही कहते महाराज प्रेमोन्मत्त हो गये और हरि नाम की महिमा गाने लगे।

मैं अपनी माता की प्रार्थना करता हूं कि मुझे केवल भक्ति दे। हाथ में पुष्प लेकर मैं अपनी माता के चरणों पर अर्पण करता हूं और यह प्रार्थना करता हूं कि "हे माता, मेरे मन में शुद्ध और अव्यभिचारिणी भक्ति उत्पन्न कर। माता! मुझे न तो पुण्य चाहिये और न पाप। इन दोनों की मुझे कोई जरूरत नहीं—मैं इन दोनों को तेरे चरणों पर अर्पण करता हूं। मुझे सिर्फ भक्ति चाहिये, वही मुझे दे। 'यह ज्ञान है—यह अज्ञान है,' इन दोनों बातों की मुझे जरूरत नहीं। मैं सिर्फ तेरी भक्ति का भूखा हूं! 'यह शुचित्व है और वह अशुचित्व है'—इन दोनों की कीमत मेरे लिये समान है—मैं न तो तेरे धर्म की परवाह करता और न अधर्म की। मैं इन सब बातों को तेरे आधीन किये देता हूं। इनसे मेरा कोई सम्बंध नहीं। मेरे मन में, तेरे चरणों के विषय में, निर्मल प्रेमभाव रहने दे—बस, यही मेरी प्रार्थना है।'

माता की प्रार्थना।

क्या संसार में रहते हुए ईश्वर की प्राप्ति हो नहीं सकती? अवश्य हो सकती है। राजा जनक को 'राजर्षि' क्यों कहते हैं? इसीलिये न, कि उन्होंने सब राजकाज करके भी ईश्वर की प्राप्ति कर ली! मनुष्य संसार में रह कर संसार से अलिप्त हो सकता है। परंतु इसमें संदेह नहीं कि चुटकी बजाते ही राजा जनक की योग्यता किसीको नहीं आ सकती। इस बात को भूलना न चाहिये कि राजा जनक को अनेक वर्षों तक निर्जन स्थान में बैठ कर कठिन तप करना पड़ा था, इसलिये यह उचित है कि प्रत्येक मनुष्य कुछ समय तक अरण्य या निर्जन स्थान में रह कर पहले तपश्चर्या करे। यदि कोई मनुष्य संसार के सब झगड़ों को छोड़ कर सिर्फ तीन दिन ईश्वर का चिंतन करे, उसके नाम पर प्रेम के आंसू बहावे, तोभी उसका काम हो जायगा। यही क्यों? यदि एक दिन भी इस प्रकार ईश्वर का चिंतन किया जाय तो अकल्पित लाभ होगा। संसारी जन अपनी स्त्री और बाल बच्चों के लिये घड़ा भर आंसू बहा देंगे, परंतु वे ईश्वर के प्रेम के लिये एक बूंद भी नहीं गिरने देना चाहते! कहिये यह बात सच है न! मैं सच कहता हूं कि यदि संसारी जन भगवत्प्राप्ति के लिये कभी कभी एकांतवास का स्वीकार किया करें तो बहुत लाभ होगा।'

ब्रह्मसमाज और राजा जनक।

यदि ईश्वर प्राप्ति की इच्छा रखनेवाला कोई साधक पुरुष सदा सांसारिक कार्य में निमग्न रहेगा, यदि वह सदा विषयों ही में निमग्न रहेगा, तो प्राथमिक अवस्था में उसका मन ईश्वर का ध्यान करने में स्थिर न हो सकेगा। सांसारिक विषयों का मोह ही अनेक प्रकार का विघ्न उत्पन्न करता है। देखिये, रास्ते पर जो वृक्ष लगाये जाते हैं उनकी क्या दशा होती है। जब तक वे छोटे रहते हैं तब तक अनेक प्रकार से उनकी रक्षा करनी पड़ती है। यदि ऐसा न किया जाय तो ढोर, बकरे इत्यादि उसे खा जाते हैं, इसलिये जब तक प्राथमिक अवस्था में रह कर अभ्यास करना हो तब तक साधक को, सांसारिक मोह के भय से, अवश्य अपनी रक्षा करनी चाहिये। जब भक्तिरूप पौधा दृढ़तापूर्वक जम जायगा, जब उसकी जड़ें बहुत मजबूत हो जायगी तब उसको किसी प्रकार का भय न रहेगा। ऐसे अनेक बड़े बड़े वृक्ष आपने देखे होंगे कि जिनके नीचे मस्त हाथी बांधे जाते हैं, तौभी उन वृक्षों को कोई हानि नहीं पहुंचती।

संसारी मनुष्य का मन अनेक विकारों में फँसा रहता है। उसकी सब इन्द्रियां विषय-सुख की प्राप्ति में निमग्न रहती हैं, इसलिये वे मन को ईश्वर का ध्यान करने नहीं देतीं, क्योंकि ऐसी अवस्था में मन प्रायः इन्द्रियों के आधीन रहता है। संसारी मनुष्य का मन अपने परम पिता ईश्वर को भूल जाता है और 'कामिनी तथा कांचन' के चिंतन में रात दिन लगा रहता है। इस प्रकार विषयों का ध्यान करते करते उसकी सब इन्द्रियां विकृत हो जाती हैं इसलिये यह अत्यंत आवश्यक बात है कि मन को विषयों के चिंतन से हटा कर ईश्वर के चिंतन में लगाने के लिये कुछ समय तक एकान्तवास किया जाय। जिस कमरे में कोई बीमार आदमी सोता हो उसीमें यदि ऐसे पदार्थ रक्खे हों कि जिनको देख कर रोगी का मन ललचाया करे तो यह उसके स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। जब तक वह बीमार है तब तक उसके सामने ऐसा कोई पदार्थ न होना चाहिये कि जो कुपथ्य करनेवाला हो। ऐसी अवस्था में उसको किसी दूसरे कमरे में रखना हितदायक होगा। यही बात पारमार्थिक अभ्यास करनेवाला साधक को भी लागू है।

सब से पहले विवेक ही का आश्रय करना चाहिये। इसके बाद वैराग्य का अभ्यास करना चाहिये। जब ये दोनों बातें सिद्ध हो जाय तब तुम मनमाना, संसारसागर में घूमते रहो, तुम्हारी कोई हानि न होगी। परंतु ध्यान में रक्खो कि इस संसार-समुद्र में कामक्रोधादि अनेक जलचर रहते हैं, इसलिये यदि तुम यथा निर्भयता से रहना चाहते हो तो वैराग्य का आश्रय कभी मत छोड़ो। वैराग्य का आश्रय करने से कामक्रोधादि शत्रुओं का कोई भय न रहेगा। सत्-असत् विचार को विवेक कहते हैं ईश्वर ही एक सत् अर्थात् नित्य वस्तु है, शेष सब कुछ असत् अर्थात् अनित्य है। इसी ज्ञान को विवेक कहते हैं।

विवेक और वैराग्य के साथ साथ और ज्ञान होनी चाहिये अर्थात् ईश्वर के सम्बन्ध में आत्यन्तिक अनुराग प्रेम या भक्ति होनी चाहिये। वृन्दावन की गोपियाँ इसी अनुराग में मग्न थीं। भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में उनका प्रेम अत्यन्त निमग्न था।

[illegible] ।

गोपियों के शुद्ध प्रेम का वर्णन करते करते महाराज भावमग्न हुए और उस प्रेमरस में इतने निमग्न हो गये कि उनकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। उसी प्रेम के आवेश में उन्होंने केदारबाबू तथा अन्य लोगों से कहा, "तुम लोग ज्ञानमार्गी हो। तुम मानते हो कि ईश्वर निराकार है। तुम लोग ईश्वर के अवतार नहीं मानते। उसकी लीलाओं पर तुम्हारा विश्वास नहीं है। अच्छा है, न मानो, कोई हर्ज नहीं। राधा और कृष्ण को तुम लोग मानो या न मानो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये गोपियों की जो व्याकुलता हुई थी वह अवश्य अनुकरणीय है।

जब इस प्रकार की व्याकुलता—इस प्रकार की तलमलाहट—रोम रोम में भिद जायगी तब भगवान श्रीकृष्ण दूर नहीं हैं—वह तुम्हारे हृदय ही में प्रगट हो जायेंगे।

---

# हन्त शोकति पातः ।



# स्पष्टवक्ता रघुनाथपंत।

शिवाजी ने रघुनाथपंत को जिंजी–कर्नाटक प्रांत का प्रबंधकर्ता नियत किया था। शिवाजी के बाद जब उसका पुत्र सम्भाजी गद्दी पर बैठा तब उसने अपने पिता के समय के अनेक प्रबंधकर्ताओं को मरवा डाला। यह देख कर रघुनाथपंत ने, भरे दरबार में, राजा से कहा "राज्य की वृद्धि के बदले अवनति हो रही है, इसका क्या कारण है? आज तक जो शत्रु दबे पड़े थे वे अब फिर बलवा करने लगे हैं, इसका क्या कारण है? इस समय राज्य में सब लोग उदासीन और निरुत्साहित देख पड़ रहे हैं, इसका क्या कारण है? शिवाजी के समय के सब पुराने और अच्छे अच्छे कार्यकर्ता गण क्या मार डाले गये? अब औरंगजेब इस प्रान्त पर अधिकार करनेवाला है, उसको रोकने का क्या प्रबन्ध किया गया है? शिवाजी की मृत्यु के बाद इतने अल्प समय ही में राज्य की बरबादी क्यों होने लगी? शिवाजी अपने साथ कुछ भी नहीं ले गये—सारी संपत्ति, सेना, किला और मुल्क यहीं छोड़ गये! तब आपके जमाने में राज्य की दुर्दशा क्यों हो रही है?"

परन्तु, याद की बात है कि उक्त स्पष्ट वक्तृत्व से सम्भाजी का चित्त प्रसन्न होने के बदले अत्यंत क्रुद्ध हो गया। स्पष्टवक्ता रघुनाथपंत अपने प्रान्त को लौट गये।



# परलोक का अनुभव।

परलोक की बातें बड़ी आश्चर्यजनक होती हैं। हमारे प्राचीन पुराण-ग्रन्थों में इस विषय का वर्णन तो बहुत पाया जाता है। आजकल अंग्रेज़ी ग्रन्थों के आधार पर भी इस विषय की हिन्दी भाषा में बहुत चर्चा हुई है। फिर भी हमारे समाज में बहुत से लोग ऐसे हैं जो परलोक की बातों पर विश्वास नहीं करते। हम जानते हैं कि यदि किसी विश्वसनीय मनुष्य का प्रमाण दिया जाय तो लोगों को विवश होकर मानना पड़ता है कि परलोक की बात असत्य नहीं है। हिन्दुस्तान में समाचार पत्रों तथा मासिक पत्रों के पढ़नेवालों को स्टेड साहब का नाम भलीभाँति मालूम है। गत वर्ष टिटानिक नामक जहाज़ में डूब कर आपकी मृत्यु हो गई, यह बात भी सब लोगों को मालूम है। मृत्यु के बाद उन्हें परलोक का जो अनुभव हुआ वह समाचार पत्रों में प्रकाशित किया गया है। वह सचमुच अनेक अद्भुत बातों से परिपूर्ण है। यदि हमारे पाठक इस ओर ध्यान देंगे तो उन्हें विश्वास हो जायगा कि मृत्यु के बाद यह जीव किस प्रकार का अनुभव करता है। सच है, पहली बात तो यह है कि प्रायः सब लोग मृत्यु के नाम से बहुत डरा करते हैं। यदि मृत्यु के बाद कोई मनुष्य इस संसार में फिर लौट आवे और वह अपना सब अनुभव हम लोगों को सुनावे तो हमें आशा है कि मृत्यु सम्बन्धी उनका भय दूर हो जायगा। परन्तु यह बात असम्भव है—यद्यपि यह बात सच है कि मरा हुआ मनुष्य इस दुनिया में फिर नहीं आ सकता है तथापि मनुष्य की बुद्धि ने [illegible] बड़े बड़े मृत्यु के दरबार का सब हाल जानने का यत्न किया है। यद्यपि परलोक के अनुभव के सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दिया नहीं जा सकता तथापि आजकल की विज्ञान वृद्धि ने जो नये नये युक्तियों का निर्माण किया है उनसे अनेक [illegible] का हाल मालूम हो नहीं सकता। उन लोगों के द्वारा [illegible] लोगों का [illegible] पर हजारों लाखों [illegible] मनुष्यों को विश्वास है। हमारे हिन्दुस्तानी भाई यह सुन कर आनन्दित होंगे कि मृत्यु के विषय में जो सिद्धान्त हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने लिख रक्खे हैं वही इस समय स्वीकार हो रहे हैं। अमेरिका तथा यूरोप के विद्वानों का [illegible] लोगों में [illegible] है। वे लोग भी इस बात पर विश्वास करने लगे हैं कि मृत मनुष्य का जीव किसी जीवित मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके अपना सब हाल [illegible] है। इसकी सत्यता के विषय में [illegible] प्रमाण भी दिये गये हैं। अब भी किसी एक प्रकार के समय मि० स्टेड साहब की आत्मा ने मिसेस विल्सन नामक एक स्त्री के शरीर में प्रवेश किया और परलोक का अपना अनुभव सब लोगों को सुनाया। वही अनुभव आज हम अपने पाठकों को सुनाते हैं। इस पर कोई [illegible] सकते हैं कि मिसेस विल्सन को भ्रम हो गया होगा—उसका मस्तिष्क बिगड़ गया होगा। परन्तु स्मरण रहे कि इस प्रकार के समय बड़े बड़े ज्योतिषी और विद्वान लोग भी उपस्थित रहा करते हैं जो मस्तिष्क के बिगड़ने या न बिगड़ने की जाँच भली भाँति कर सकते हैं। [illegible] स्टेड साहब के परलोक के अनुभव की बात सुन कर हम लोगों को यही पता चलता है कि पश्चिमी लोग भी हमारे ही समान मृत्यु के विषय में विचार करने लगे हैं। यह बात [illegible] आप ही आप सिद्ध [illegible]

स्वर्गवासी डब्लू० टी० स्टेड।

जब मैं इंग्लैंड से चला तब मुझे इस भवितव्यता की पहले से कुछ भी कल्पना न थी। जहाज़ का [illegible] लग कर ऊपर उठ जाने पर भी एक घड़ी तक किसी को अपना अन्तिम समय निकट आया हुआ न जान पड़ता था। परन्तु इसके बाद शीघ्र ही सब लोग अपनी अपनी मृत्यु की तैयारी करने लगे। [illegible] ऊँचे [illegible] आवाज़ों में आत्मसमर्पण तथा हाहाकार का [illegible] विचार करता है और इसी लिए उसमें भी एक चञ्चलता न रह पड़ा। [illegible] के आदमी इन दृश्यों से [illegible] नहीं [illegible] इसीलिए उन्होंने प्रार्थना शुरू कर दिया। उन्हें समाधान करने के विषय में कुछ समझा कर मैं [illegible] के कमरे में लौट आया और मृत्यु की मार्ग प्रतीक्षा करने लगा। मैं अपनी सदा की रीति के अनुसार अपना मन विचार में [illegible] कर आत्मानुभव में तल्लीन हुआ ही था कि इस [illegible] में अन्तिम—जलसमाधि का—समय आ पहुँचा।

बस ! हो ही चुका जिस [illegible] का लोगों को इतना डर मालूम होता है वह तो जन्म भर में एक ही बार हो चुका। किसी प्रकार का कष्ट न मालूम हुआ कुछ भी त्रास न हुआ। बस ज्यों ही [illegible] का त्याग करके मैं इस अलग हुआ त्यों ही पहले मेरे [illegible] और वर्तमान [illegible] दस बारह [illegible] नातेदार ने आकर उसको चारों ओर से घेर लिया। सब से पहिले मैंने अपने पुत्र को पहिचाना और फिर दूसरे इष्ट मित्रों की भेंट हुई। पहले पहल मैं तो अपनी दशा की कुछ कल्पना ही न कर सका। मुझे यह भी न जान पड़ता था कि मैं जागृत अवस्था में हूँ या स्वप्नावस्था में हूँ। परन्तु थोड़े ही समय बाद मेरे ध्यान में आया कि मेरे [illegible] को समुद्र में जलसमाधि मिल गई और मैं अब [illegible] में रह न [illegible] उच्च योनि के प्राणियों में [illegible] मैंने अपने पुत्र तथा मित्र से प्रश्न किया "क्या तुम्हें यह पहले ही से मालूम हो गया था कि टिटानिक जहाज़ जलमग्न होगा और [illegible] के साथ उसके सभी [illegible] [illegible]" उत्तर मिला "इसमें क्या शक ? हम तो तुम्हारा मार्गप्रतीक्षा करते [illegible] तुम [illegible] आये हो।" [illegible] तो फिर तुमने मुझे उस जहाज़ में प्रवास न करने का अन्तिम सन्देश क्यों न [illegible]" "हमारी सत्ता का कुछ उपयोग न होता; इसी लिए तुमसे कहा न गया था कि तुम्हारे [illegible] का समय पूरा हो गया था।" "तो फिर सब लोगों की मृत्यु का समय नियत रहता है ?" "यह बात सत्य है। क्या इतने लोग जो मर गये हैं (नहीं नहीं ! ऊपर की योनि में गये) और इतने जो बच गये (कोलम्बस के द्वारा में भी गये) यह सब घटना क्या पहले किसी [illegible] के अनुसार ही हुई ?" [illegible] होता है ! यदि एक छोटी सी छोटी बात भी नियम के विरुद्ध हो जाय तो ऐसा मान लिया जायगा कि यह संसार विश्वव्यवस्था है और इसमें सब और गड़बड़ ही गड़बड़ नज़र आता है। इसके बाद मेरे मित्र ने मुझे एक नई [illegible] निवासस्थान की ओर चलने को कहा। परन्तु मैंने उनसे कहा कि "मैंने डूबनेवाले लोगों को जिस दशा में छोड़ा है, चलो हम ऊपर चढ़ाने में हम सब उनकी सहायता करें।" इस पर मेरे पुत्र ने कहा "इस [illegible] से दूसरों की सहायता करना ही एक मात्र कर्तव्य है और [illegible]

हम एक ऐसे जीव के पास गये जो हाल में ही स्थूल देह से मुक्त हो चुका था। उसके मृत्यु की कुछ तयारी भी न थी और अब उसे कुछ कल्पना भी न आती थी। वह लहरों के साथ पानी पर इधर उधर तैरती हुई अपनी देह की ओर टक-टकी लगा कर देखता हुआ बैठा था। यह अटल प्रश्न ही वह न छुड़ा सकता था कि वह पानी पर तैरनेवाली मृत देह 'मैं हूं या 'मैं ही मैं हूं। वह यही कल्पना न कर सकता था कि मैं उस देह से मुक्त हो चुका। स्थूल देह से बाहर होने पर भी, पूर्व साहचर्य के कारण ही, वह देह के साथ व्यर्थ चक्कर खाते हुए चला था। उसकी स्थिति ठीक वैसी ही थी जैसी कि जहाज पर चक्कर आनेवाले मनुष्य की हुआ करती है। जब आदमी जहाज पर से जमीन पर उतरता है तब उसके मस्तिष्क में कुछ समय तक चक्कर आता रहता है इसलिए वह जमीन पर भी झुकता हुआ और चक्कर खाता हुआ चला जाता है। अस्तु।

जब हमने देखा की हमारे उपदेश का उस पर कुछ भी परिणाम नहीं होता तब हम हताश होकर एक दूसरे जीव की ओर गये। ये महाशय बहुत समय से जड़ देह से मुक्त हो गये थे, परन्तु उनको इस अवस्था का कुछ स्मरण ही न था। उनकी तरुण पत्नी उस दुर्घटना से बच कर एक छोटी नौका ( डोंगी ) में बैठ कर चली थी। और ये भी उसके पीछे पीछे चले थे। उनकी यह भावना थी कि मैं भी अपनी पत्नी के साथ नौका में बैठे चला जा रहा हूं। परन्तु उन्हें यह न समझ पड़ता था कि यह क्या बात है कि मेरी पत्नी न तो मेरी ओर देखती है और न बोलती है? अन्त में ये अपने को न सम्हाल सके। अपनी स्त्री का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वे क्रोधयुक्त होकर उस नौका पर अपने पैर पटकने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु फिर उनके ध्यान में आया कि अब तो हमारे हस्तपादादि अवयव हैं ही नहीं। यह देखते ही महाशय घबड़ा गये। धीरे धीरे उन्हें वस्तुस्थिति का कुछ ख्याल होने लगा तिस पर भी पत्नी की समीपता का अटल मोह उन्हें न छोड़ता था। और ये योंही उसके आसपास चक्कर लगाते थे। इसी प्रकार सैकड़ों लोग अपने अपने ध्येय वस्तु के चिंतन में मग्न होकर, बदली हुई स्थिति के ज्ञान को, जान-बूझ कर या वे जाने, अपने मन में स्थान ही न देते थे। कोई अपनी पत्नी या पुत्र के खाने में, कोई मित्र के विरह में, कोई अपने धन को सदूक की खोज में, तो कोई अपने प्यारे कुत्ते की खोज में, मग्न थे, इसी लिए उन्हें अपनी यथार्थ दशा का कुछ ज्ञान न था। यहां पर ठीक वैसा ही हाल हो रहा था, जैसा कि निद्रावस्था से कुछ जागृत होने पर मालूम होता है अर्थात् हम किस स्थिति में सोये हैं, उठने का समय हुआ या नहीं इत्यादि बातों की पूर्णस्मृति होने को कम या अधिक समय लगता है। जिन्हें मृत्यु और परलोक का डर नहीं मालूम होता, या यह कहिये कि जो शांत होकर मृत्यु की प्रतीक्षा करते हैं, उन्हें इस स्थूल देह के आवरण के मिट जाने से कुछ खेद नहीं होता, या जिनका कुटुम्ब मरणोन्मुख हुआ हो वे फिर एकत्र हो जाते हैं, इसलिए उन्हें भी कुछ खेद नहीं होता परन्तु जो इस लोक की सांसारिक वासनाओं में बिलकुल मग्न रहता है उसे तो यह स्थित्यन्तर जानने को ही बहुत समय लगता है और अन्त में बड़े कष्ट से हताश होकर वह पूर्व परिचित वस्तुओं का त्याग करता है और दूसरे प्रकार की रहन-सहन स्वीकार करने को उद्यत होता है।

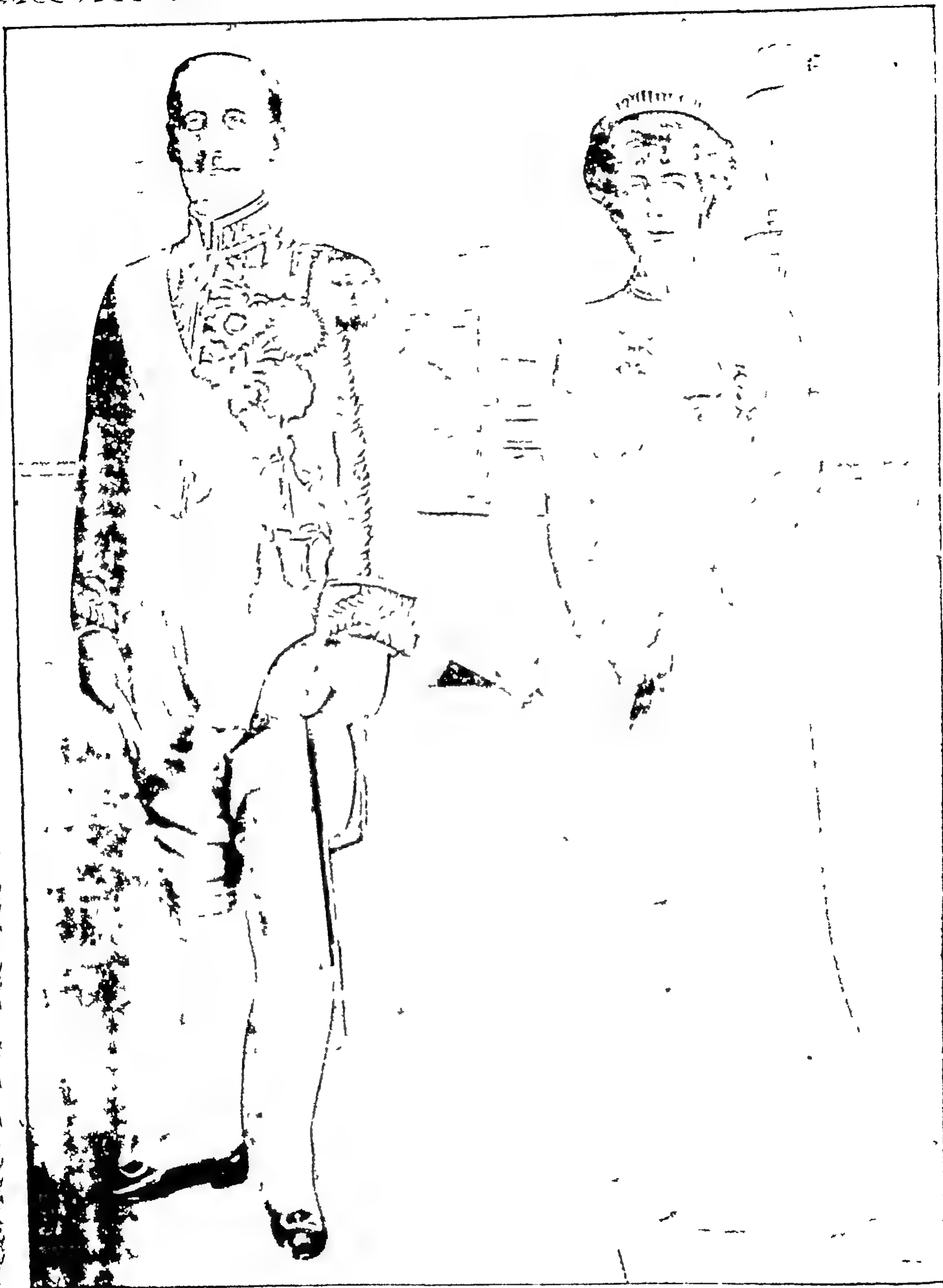
अब मैं बताता हूं कि हमारी इस नई दुनिया में और तुम्हारी स्थूल देहों की सृष्टि में क्या अंतर है। पहली महत्व की बात यह है कि स्थूल देह का त्याग होते ही साक्षात स्वाधीनता का अनुभव होने लगता है। जब हम पृथ्वी पर रहते हैं तब इस स्थूल देह की स्वाभाविक जड़ता के कारण मनमाना घूम फिर नहीं सकते—जिधर चाहें उधर नहीं जा सकते। यदि कुछ दूर भी जाना हो तो भी गाड़ी, घोड़ा, मोटर, नौकर-चाकर इत्यादि अनेक बातों का प्रबंध करना पड़ता है। यहां उन बातों की कोई जरूरत नहीं होती। ज्योंही मन में आता है कि कहीं जाय त्योंही हम वहां पर पहुंच सकते हैं। जब स्थूल देह का आवरण छूट जाता है तब पहले पहल मन में कुछ समय तक ऐसी इच्छा होती है कि हम रात दिन उड़ते रहें या सारी दुनिया में घूमते रहें। यदि कोई आदमी चालीस पचास वर्ष तक कारागृह की एक छोटी सी कोठरी में बंद रहे तो मुक्त होने पर जब वह बाहर आता है तब उसे यह सारा जगत् अत्यन्त विस्तीर्ण सा जान पड़ता है अथवा यदि लड़कपन ही से कोई जानवर खूंटे से रात दिन बंधा रहे तो जब वह वहां से छूट जाता है तब वह चारों ओर जोर से दौड़ने लगता है। इसी तरह मृत्यु के बाद जीव की भी यही दशा होती है। तात्पर्य यह है कि जीवात्मा को परलोक में सब से पहले इस बात का अनुभव होता है कि मन रूपी वायु से भी अत्यन्त सूक्ष्म है और मैं इच्छित स्थान को एक क्षण में चला जा सकता हूं। दूसरी बात यह है कि स्थूल देह के न होने से खाने-पीने, कपड़े पहरने, इत्यादि बातों की कोई तक-लीफ नहीं होती परन्तु एक बात अवश्य होती है कि जब हम पृथ्वी पर रहते हैं तब जिव्हा को अनेक प्रकार के रस चखने की आदत पड़ जाती है और जब हम परलोक में आते हैं तब यद्यपि यह बात मालूम रहती है कि यहां खाने-पीने की कोई जरूरत नहीं तथापि आरम्भ में बहुत दिनों तक खाने-पीने के पदार्थ देख कर उनको प्राप्त कर लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है। परन्तु यह इच्छा सफल हो नहीं सकती। भोजन पाने के लिये या पानी पीने के लिये न तो हाथ है और न मुंह। संग्रह करने के लिए पेट भी नहीं है। जब हम देखते हैं कि खाने-पीने की इच्छा तृप्त करने के लिए कोई स्थूल अवयव नहीं है तब निराश होकर कुछ दिनों तक केवल उन पदार्थों की ओर देख कर ही संतुष्ट होना पड़ता है। कोई कोई तो अपने पूर्व समय के इष्टमित्रों को खाते पीते देख कर ही अपने मन को संतुष्ट किया करते हैं। अन्त में इस प्रकार लोगों के मुंह की ओर देखते देखते जी ऊब जाता है और खाने-पीने के विचार नष्ट होने लगते हैं। यहां यह शंका उठ सकती है कि यदि परलोक में जीवात्मा के हाथ-पैर और मुंह इत्यादि कोई अवयव नहीं है तो हम लोगों का आपस में किस प्रकार व्यवहार होता होगा। इसका उत्तर यह है कि उस अवस्था में हमारे सब व्यवहार केवल मनोमय कल्पनाओं के द्वारा हुआ करते हैं। सचमुच पृथ्वी पर रहनेवाले जीवों को स्थूल शरीर के भारी आवरण और अवयव से वेष्टित देख कर हम लोगों को, उनकी बद्धावस्था के विषय में, अत्यन्त दुख होता है। उदाहरणार्थ किसी मनुष्य के हाथ-पैर बांध कर उसे बोरे में बंद कर दें तो वह जब चिल्लाता है, गिरते पड़ते दो चार कदम चलता है तब उसको देख कर प्रेक्षक लोग हंसने लगते हैं, ठीक वैसे ही हमें भी तुम्हारे स्थूल देह में खींच-तान कर बांधी हुई आत्मा को देख कर हंसी आती है। यह कैसी बद्धावस्था है! यह कैसी पराधीनता है! और इतना होने पर भी, आश्चर्य की बात यह है कि, इस बद्धावस्था से मुक्त होते समय लोग बहुत विह्वल होते हैं और शोक किया करते हैं।

परलोक में हम लोगों की सम्भाषण पद्धति मानों एक प्रकार का मनोमय यंत्र है जो बिना तार के, यंत्र के समान, काम देता है। ज्योंही किसीके मन में कुछ विचार आता है त्योंही उसको मालूम हो जाता है जिसके कि विषय में विचार किया गया हो। इसी प्रकार उस मनुष्य का उत्तर भी तुरत ही हमारे पास पहुंच जाता है। प्रश्न उठने, उसके उचित स्थान में पहुंचने और वहां से उत्तर आने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं लगता। पृथ्वी पर जब बिना तार के संदेश वाहक यंत्र के द्वारा कोई खबर भेजी जाती है तब रास्ते में कहीं रुक जाने का भय होता है, परन्तु यह भय परलोक में नहीं होता।

जब हम पृथ्वी पर से इस लोक में आते हैं तब हम अपने साथ अपने विचारों के सिवाय और कुछ नहीं ला सकते, इसलिए जब हम लोग अपने विचार तुम लोगों पर प्रगट करना चाहते हैं तब हम लोगों को तुम लोगों में से किसी के हाथ, किसी की कलम, इत्यादि की सहायता लेनी पड़ती है। तथापि इसमें संदेह नहीं कि जब हम पृथ्वी पर जिन्दा थे तब जितने लोगों पर हम अपने विचारों का प्रभाव डाल सकते थे उससे कहीं अधिक लोगों पर अब हम अपना प्रभाव डाल सकते हैं। इसका कारण यह है कि यहां किसी काल और देश की कोई मर्यादा ही नहीं है। जिस तरह मैं यहां रह कर शिकागो शहर के किसी आदमी से बात चीत कर सकता हूं उसी तरह मैं लन्दन के किसी दूसरे आदमी के साथ ( विचार द्वारा ) बात-चीत कर सकता हूं।

सारांश रूप से मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूं कि तुम लोग मृत्यु से कभी मत डरो। तुम लोग जिस अवस्था को मृत्यु कहते हो वह यथार्थ में परलोक की एक ऊंची स्थिति है। मृत्युलोक में मरने के बाद मनुष्य परलोक में एक ऊंचे दरजे पर पहुंच जाता है। मनुष्य के मरने के बाद उसके सम्बन्ध में खेद और शोक प्रगट करना तथा अपने दुख का आर्त स्वर पूर्वक प्रदर्शन करना निरर्थक है। जब मृत मनुष्य परलोक की ऊंची सृष्टि में पहुंच जाता है तब वह वहां रह कर अनेक प्रकार के कार्य कर सकता है। यदि उसने मृत्युलोक में मरने के पहले कोई अच्छा काम आरम्भ किया हो तो वह परलोक से उस विषय की प्रेरणा किसी दूसरे के मन में कर सकता है और उस मनुष्य की सहायता करके अपने आरम्भित कार्य को सफल करने का यत्न कर सकता है। मृत्यु को किसी प्रकार भयानक और अनिष्ट मत समझो। इसके बदले यह समझो कि मृत्यु एक ऐसा उपाय है कि जिसके द्वारा जीवात्मा स्थूल देह के बंधन से मुक्त होकर नित्य स्वतन्त्र और नित्य सुखी हो सकता है। तुम लोग मृत्यु के विषय में अनेक प्रकार की निरर्थक कल्पनायें करके स्वयं हताश मत होओ और दूसरों को भी हताश मत करो। यह विश्वासपूर्वक जानो कि मृत्युलोक की मर्यादा-सृष्टि में से निकल कर परलोक की अमर्यादित और स्वतन्त्र सृष्टि में आने के लिए मौत एक अत्यन्त आवश्यक साधन है।

२० वीं जून को सारे हिंदुस्थान में उत्सव मनाया गया।



# यही कृतज्ञता है !

( १ )

पंडित दयालसिंह की कोठी का नाम इस भारतवर्ष में बहुत दिनों से मशहूर है। पंडितजी की कोठी पर कभी भी जाइये, तो वहां उनके सब नौकर अपने अपने काम में सदा मग्न देख पड़ेंगे। उनके उत्साह तथा आनन्दपूर्ण मुख को देख कर दर्शक गण भी आनन्दमग्न हो जाते थे। आने-जानेवालों की गड़बड़ के कारण ऐसा मालूम होता था कि मानो शान्ति देवी वहां से बिलकुल चल बसी है। कोठी का व्यापार बहुत विस्तृत रूप से चलता था, इसलिए कोठी के सामने के आंगन में व्यापार विषयक पदार्थों के ढेर के ढेर लगे रहते थे। परन्तु आज तो इन सब बातों में एक विलक्षण अन्तर देख पड़ता था !

अब पंडितजी का बुरा समय आया था, इसलिए आज उन्हें सब लोगों ने छोड़ दिया था। परन्तु पंडितजी के पूर्ण विश्वासी वृद्ध मुनीम सुन्दरदास ने ही नहीं छोड़ा है। सुन्दरदास अब भी उनकी कोठी की देख भाल किया करता ही था। सुन्दरदास, खजांची की जगह पर नियुक्त होने के पूर्व, एक निम्नश्रेणी का सिपाही था। तथापि पहिले के सद्गुणी, शान्त और उद्योगप्रिय सुन्दरदास के स्वभाव में अब भी कुछ अन्तर नहीं देख पड़ता था। गणितशास्त्र में उसका ज्ञान इतना विस्तृत तथा अनुभवपूर्ण था कि कोई भी गणितशास्त्र-पारगत विद्वान् उसको दबा नहीं सकता था। कोठी के प्रतिकूल समय में वही पंडितजी का एक मात्र आधार था। सुन्दरदास कोठी के काम की अब भी देख-भाल करता था इसका कारण केवल आदर अथवा प्रेम का सम्बन्ध ही न था, किन्तु उसका 'पूर्ण विश्वास' ही उसको काम करने को प्रेरित करता था। सुन्दरदास इस बात की ओर बिलकुल ध्यान न देता था कि कोठी के सब नौकर अपना अपना काम छोड़ कर भाग रहे हैं। गणितशास्त्र पर उसका इतना दृढ़ विश्वास था कि पंडितजी की कोठी का दिवाला निकलेगा ऐसी शंका उसके मन में आना असम्भव थी। वह जानता था कि सदा नदी के पानी से चलनेवाली पन-चक्की, पानी का अकस्मात् लोप होजाने के कारण, बंद नहीं हो सकती। एक बात और थी कि सुन्दरदास का विश्वास उठ जाने के लायक कोई घटना अभी तक न हुई थी। गत मास में कोठी का हिसाब बिलकुल ठीक ठीक था। जब सुन्दरदास ने शेष सब द्रव्य पंडितजी को दे दिया, तब उन्होंने उसे अपनी 'खाली' सन्दूक में रख कर कहा 'सुन्दरदास, शाबाश! मुनीमों में तुम तो एक बेजम्बी रत्न ही हो!'

स्वामी के उपरोक्त शब्दों से सुन्दरदास को जो अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ वह क्या उसे तुच्छ द्रव्य की प्राप्ति से हो सकता था!

दयालसिंह ने इस मास में कई रातें चिंतामग्न दशा में ही व्यतीत कीं। इस महीने में आनेवाली हुंडियों की रकम पटाने के लिए विचारे दयालसिंह ने अपनी पत्नी तथा कन्या के कई जवाहिरात गहने बेंच दिये। यदि ठीक समय पर हुंडियां न पट जायं तो व्यापार में अपनी पूर्ण निराशा हो जायगी—अपना दिवाला निकलेगा! यह कल्पना ही पंडितजी को बहुत भयंकर मालूम होती थी। कोठी की गिरी दशा के सम्बन्ध में चारों तरफ बहुत सी बातें फैल गई थीं, इसलिए साहूकारों में उनकी साख रह न गई थी। अगले महीने में ३½ लाख की रकम कैसे पटाई जा सकेगी? यह बात पंडितजी के आधीन न थी। पंडितजी आज अपने खानगी कमरे में बैठे थे। ऊपर से शान्त देख पड़ते थे; परन्तु उनका मस्तक उद्वेगपूर्ण विचारों में भ्रमण कर रहा था।



जवान आदमी ने कहा—"हां पंडितजी! क्या आपको मालूम है कि मैं कहां से आया हूं?"

इतने ही में एक अपरिचित जवान आदमी उनके सन्मुख आकर खड़ा हुआ और उनकी ओर टक लगा कर देखने लगा। दयालसिंह जी को उसके आकस्मिक आगमन से बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा "मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, कि आपका यहां कुछ काम है। कहिये, क्या काम है?"

जवान आदमी ने कहा—"हां पंडितजी! क्या आपको मालूम है कि मैं कहां से आया हूं?"

पंडितजी ने कहा—"हां, अभी सुन्दरदास कह रहा था कि आप राजा मुनशीलाल की कोठी के नौकर होंगे।" ऐसा कहते कहते ही पंडितजी दुःख से विह्वल हो गये।

यह सुन कर युवक ने कहा—"आपका तर्क बहुत ठीक है। पंडितजी! राजा मुनशीलाल की कोठी का इस शहर में ३ लाख का व्यापार चलता है। आपकी कोठी का लौकिक तथा नियमबद्ध नाम सुन कर सेठजी ने आपकी सब हुंडियां जमा करके मेरे पास दी हैं। मुझे आशा है कि आप इन हुंडियों की रकम ठीक समय पर अदा कर देंगे। इसके बाद जो कुछ करना होगा सो सब मुझे मालूम है।"

पंडितजी ने एक लंबी सांस ली। उन्होंने अपने पसीने से भरे मस्तक पर से अपना हाथ फिराया और कहा "क्या मेरे दस्तखत की हुंडियां आपके पास हैं?"

"हां! और रकम भी बहुत बड़ी है।"

"सब मिला कर कितनी रकम है, बताओ तो सही?" पंडितजी की आवाज बहुत कांपती हुई मालूम पड़ती थी।

"यह देखिये, अपनी कोठी की रसीद। नारायणदास श्रीवाला ने पचास हजार की रकम हमारे स्वाधीन करने को लिखा है। आप उसे कबूल तो करते हैं न?"

"हां! नारायणदास ने यह रकम पांच वर्ष के पहिले हमारी कोठी पर जमा की थी।"

इस रकम की मियाद कितनी है?

"कुछ रकम इस महीने में मिलनी चाहिए और कुछ दूसरे महीने में।"

"इसके सिवाय देढ़ लाख की आपके हस्ताक्षर की ये हुण्डियाँ हैं। और यह सब रकम हमारी कोठी में जमा करनी है।"

पंडितजी ने कहा कि "मैं उन सब को मान्य करता हूँ।" उन्होंने आज तक अपना हस्ताक्षर कभी नामंजूर न किया था। और अब ऐसी स्थिति में कैसे उन्हें नाकबूल करते। उन्होंने फिर पूछा "क्या अब सब हो चुका?"

"नहीं नहीं! इसके सिवाय तीन लाख की आपकी कोठी की हुण्डियाँ हमारे स्वाधीन की गई हैं। आपको यह रकम ठीक समय पर अदा कर देनी चाहिए।" यह सुन कर पंडितजी की जो स्थिति हुई उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। उन्होंने फिर से पूछा "क्या सब मिला कर तीन लाख रुपए हुए?"

युवक ने कहा—"हाँ पंडितजी! मुझे आपसे कुछ छिपाना ठीक नहीं मालूम होता। आज तक आपकी कोठी का व्यापार प्रेम से और ईमानदारी से चल रहा था। परन्तु आपके विषय की अफवाहों से मुझे यही मालूम पड़ता है कि आप यह रकम नियमित समय पर दे नहीं सकेंगे। पंडितजी! मुझे स्पष्टोक्ति के लिए क्षमा कीजिए।"

इस भयंकर बातों के कारण पंडितजी के चेहरे पर मृत्यु की छाया छा गई!

"महाराज!" पंडितजी ने मंद स्वर से कहा "परम पूज्य पिता के पश्चात् कोठी का व्यवहार देखते देखते मुझे आज २५ वर्ष हो गए। इतने समय में दयालसिंह की कोठी पर किसी ने असत्य व्यवहार का दोष नहीं लगाया! दयालसिंह के हस्ताक्षर का ऐसा उपमर्द कोई भी न कर सका!" ऐसा कहते कहते वृद्ध पंडितजी के मुख पर गम्भीरता की छटा चढ़ने लगी।

उस युवक ने कहा—"हाँ, यह सब मुझे मालूम है परन्तु अब यह बतलाइए कि आप हुंडी की रकम ठीक समय पर दे सकेंगे या नहीं?" इस सवाल से बेचारा वृद्ध मनुष्य बिलकुल ही घबरा गया।

स्पष्ट रीति से पूछनेवाले को स्पष्ट उत्तर देना ही योग्य है। अन्त में आपने कहा "यह रकम हूँगा—मेरे विस्तृत व्यापार रूप महासागर में इस समय मेरी आशारूप नौका न जाने कहाँ भटक रही है। यदि मेरी नौका सुरक्षित रही तो मैं आपकी सब रकम ठीक समय पर दूँगा और यदि उस नौका का नाश हो जाय तो—" पंडितजी की आवाज रुक गई और आँखों से आँसू भर आए।

"माना यदि तुम्हारी नौका महासागर से न लौटी तो?"

"तो?" इस बात का विचार ही अत्यन्त भयानक है। फिर—फिर तो मैं एक दाम से समर्थ न हूँगा।

"क्या आपकी सहायता करनेवाला कोई भी मित्र नहीं है?"

"व्यवहार में मनुष्य की मित्रता काम नहीं करती।"

युवक ने कहा—"आपका कहना तो सर्वथा सत्य है। हाँ फिर तो आपकी [illegible] का बदला घर ही बाकी रह गया है।"

"[illegible]?"

"हाँ आज यही स्थिति है।"

"क्या बिलकुल निश्चित?"

"और यदि यह भी निष्फल हो जाय तो फिर?"

"फिर क्या! मेरा नाश—सर्वनाश—हो जायगा।" इतना कहते ही बेचारे वृद्ध मनुष्य ने एक लंबी सांस छोड़ी।

पंडितजी इस समय आप बड़े विकट संकट में पड़े हैं। मैं जानता हूँ कि आपकी यह दुःखावस्था है। आपको कई दिन से नींद तक भी नहीं है न?

"हाँ।"

"यदि इस समय के [illegible] होने की [illegible] हो जाय तो?"

[illegible]

पंडितजी तेजी से बोले—"हाँ मैं उस समय आपकी मार्गप्रतीक्षा करता रहूँगा!" (फिर बिलकुल धीमी आवाज से) उस समय आपको या तो पैसे ही मिलेंगे या मेरा चैतन्यविरहित शरीर ही आप को दृष्टिगत होगा। दयालसिंह ने यह प्रतिज्ञा इतने मंद स्वर से की कि वह उस युवक को बिलकुल सुनाई भी न पड़ी।

उस युवक ने आदरपूर्वक पंडितजी को नमस्कार किया। दयालसिंह ने भी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से उस अपरिचित युवक को आशीर्वाद दिया।

इस एकान्त स्थान से निकलते ही उस युवक को पन्द्रह वर्ष की एक बालिका सामने खड़ी देख पड़ी। वह वहीं ठहर गया।

उस युवक ने नम्रता से पूछा "आपका क्या नाम है?"

बालिका ने नीचे देख कर उत्तर दिया। "सरोजिनी! मैं दयालसिंह की कन्या हूँ।"

"सरोजिनी देवी! आपको एक दिन एक पत्र मिलेगा। उस पत्र के नीचे आपको 'टनक' यह शब्द लिखा रहेगा। उस पत्र में जो कुछ लिखा रहेगा उसीके अनुसार आप कार्रवाई कीजिए। आपका प्रत्यक्ष दर्शन होने से मुझे मालूम होता है कि आप वैसा करेंगी। आप मुझे वचन दीजिए।"

अपरिचित युवक को वचन देना उस बालिका को बहुत भयंकर मालूम हुआ। उसने वचन न दिया। वह बिलकुल स्तब्ध हो गई।

युवक ने कुछ देर तक उत्तर की राह देखी। जब कुछ उत्तर न पाया तब उसने कहा "आप स्तब्ध हैं, यही आपकी वृत्ति आपके अन्तःकरण की गवाही देती है। अब मैं जाता हूँ। मुझे यही आशा है कि आप मेरी प्रार्थना के अनुसार करेंगी।"

युवक वहाँ से शीघ्रता से चलता हुआ।

इस अब बालिका को ध्यान आया। उस युवक के शब्द उसके कानों में गुनगुना रहे थे परन्तु वह न तो भी [illegible] किस [illegible]!

(२)

राजा मुरलीलाल की कोठी से [illegible] समय में भी [illegible] यह बात दयालसिंह का [illegible] मालूम हुई। [illegible] जो कि एक [illegible] का आधार भी मिल जाता है तो वही उसे बचा लेता है। यह [illegible] पंडितजी ने [illegible] था। पंडितजी के [illegible] लगा। वे समझने लगे कि क्या अब हम लोगों का इस [illegible] रहना पड़ेगा!

[illegible] दयालसिंह का [illegible] राजा मुरलीलाल [illegible] किन्तु [illegible] था। उस समय व्यापारियों में सब का [illegible] था [illegible] पंडितजी का अब [illegible] दुर्दशा से [illegible] था। पंडितजी का सब [illegible] हो चुकी। [illegible] महीने का सब [illegible] हो चुका। [illegible] राजा मुरलीलाल की [illegible] के कारण [illegible] गई। [illegible] महीना भी आरम्भ हो गया और उधर पंडितजी को [illegible] साम्राज्य [illegible]। इसी महीने की [illegible] तारीख को तीन लाख रुपए देने चाहिए। यदि न दें तो मृत्यु या [illegible], दोनों में से कुछ न कुछ प्राप्त ही होगा!

पंडितजी के मन में एक विचार आया। [illegible] दयालसिंह [illegible] उनका [illegible] उच्च स्थिति प्राप्त [illegible]। [illegible] चाहिए। [illegible] दयालसिंह [illegible] न करेगा। [illegible] राजा मुरलीलाल की कोठी को [illegible] है [illegible] किसी [illegible] कि [illegible] दयालसिंह का [illegible] अपना सब [illegible] हो जायगा। [illegible] और [illegible] से [illegible] का [illegible] भी [illegible] हो जायगा। [illegible] इस विचार [illegible] समय से

"बाबा! ऐसा कौन सा अन्याय मैंने किया? जो आप उस गुप्त कमरे की चाबियां मुझसे मांगते हो?"

बस, इतना कहते ही सरल हृदय बालिका के नेत्रों में अश्रु छा गये।

"नहीं बेटी! कुछ नहीं है। मुझे चाबियों की जरूरत है।" इतना कहते ही वृद्ध पिता के नेत्रों से अश्रुपात होने लगा।

"कुंजियां मेरे कमरे में हैं। मैं अभी ला देती हूं।"

निःसंशय यह बालिका बहुत धूर्त थी। उस, बिलकुल गुप्त, कमरे की चाबी तो पिता ने मेरे विश्वास पर ही रख छोड़ी थी, भला फिर आज वे मुझसे क्यों मांगते हैं? इसके पहले कोई भी काम हो, वे मुझसे ही करवाते थे। यद्यपि पिता ऊपर से शान्त ही देख पड़ते हैं, तथापि उनके मन में कोई दारुण विचार निःसंशय वास करता है। इत्यादि, इत्यादि विचारों ने उस बिचारी के अन्तःकरण में बहुत ही गड़बड़ मचा दी, इसलिए ज्योंही वह कुंजियां लाने के लिये पिता के पास से निकली त्योंही एकदम अपने बंधु के पास आ उपस्थित हुई।

"यथाशक्ति प्रयत्न करके यह कुंजियां तू पिता के हाथ न लगने दे और इस समय से तू उन पर अपनी नज़र रख।" ऐसी ऐसी बातें प्रिय बंधु से सुन कर वह बाला तो और भी घबरा गई और मुग्धावस्था के कारण वह अपने भाई की बातों का कुछ मतलब भी ठीक ठीक न समझ सकी। बंधु को 'हां' कह कर वह बालिका कमरे के बाहर आई, तो देखती क्या है कि एक अपरिचित पुरुष, हाथ में एक चिट्ठी लेकर, किसीकी मार्गप्रतीक्षा कर रहा है।

उसे देखते ही उस पुरुष ने प्रश्न किया "क्या आपका नाम सरोजिनी है? क्या आप ही दयालसिंहजी की कन्या हैं।"

बालिका ने कहा हां, मैं ही हूं; परन्तु इसमें संदेह नहीं कि वह घबरा सी गई थी। उसने पूछा "आपको क्या चाहिए? आप तो कुछ मेरे परिचय के नहीं मालूम पड़ते?"

"यह चिट्ठी पढ़िये! इसमें आपके पिता के जीवन संरक्षण का मार्ग है। ऐसा कह कर उसने यह चिट्ठी उस बालिका के हाथ में दी।

बालिका ने उसे पढ़ा। उसमें यह लिखा था।—

"आदरपूर्वक आशीर्वाद! आजका यह दूसरी बार का परिचय है! एक क्षण का भी विलंब न करके प्रेमदासजी के, ग्रँटरोड पर की, दसवें कमरे की, चाबी पहरावाले से मांगो। कमरे के एक कोने में, रखे हुए टेबल पर, आपको एक लाल रंग की रेशमी थैली देख पड़ेगी। आप उसे निःशंक लेकर अपने पिता को दे दीजिए। यह बात इतने महत्व की है कि आज ही ११ बजे के अन्दर वह थैली उनके हाथ पहुंच जानी चाहिए। आपको इस कार्रवाई से आपको आज एक प्रशंसनीय कर्तव्य करने का श्रेय मिलेगा। ध्यान में रखिये, कि यदि आप इस प्रकार काम न करें तो एक निरपराधी मनुष्य के जीवन-घात का पाप आपके मत्थे पड़ेगा! यह काम अवश्य कीजिये, ऐसी प्रार्थना करनेवाला,

आपका

'कृतज्ञ।'"



"बच्चा! बच्चा!!" कहती हुई सरोजिनी वहां दौड़ती आई और उसने अपने पिता का हाथ जोर से पकड़ लिया और कहा—"अपना बचाव हो गया!"

बालिका ने सम्पूर्ण पत्र पढ़ लिया। पत्र लानेवाले की ओर देखने के उद्देश्य से बालिका ने ऊपर देखा, परन्तु वह तो पहले ही वहां से चला गया था। बालिका ने वह पत्र फिर पढ़ा। पत्र के अन्त में विशेष और कुछ लिखा था—

पत्र में लिखा हुआ काम स्वयं आप ही को करना चाहिए। यदि दूसरा मनुष्य आपके साथ आवेगा अथवा यदि आप यह काम किसी दूसरे मनुष्य से कराओगी तो ध्यान में रखिये, कि पहरेवाला साफ साफ कह देगा कि मैं कुछ नहीं जानता।"

उपरोक्त पत्र को पढ़ते ही बालिका के मन में कई एक विचार आने लगे—"यदि इस पत्र के अनुसार मैं वहां जाऊं तो इसमें कोई भय तो नहीं है? मुझको संकट में डालने के लिए यह षड्यंत्र तो नहीं रचा गया?" उस अवस्था की बालिका पर किस प्रकार के संकट आया करते हैं यह बात यद्यपि उसे मालूम न थी, तथापि भय की कल्पना उसके बाल-हृदय में जागृत हो गई थी—

परन्तु इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि भय की जागृति होने के लिए संकटावस्था का यथार्थ ज्ञान ही हो—अकल्पित संकट ही स्वयं भय उत्पन्न करते हैं।

सरोजिनी के मृदु अन्तःकरण की स्थिति इस समय अत्यन्त भयंकर थी। बालिका ने इस बात में वृद्ध सुन्दरदास की सलाह लेने का विचार किया और झट वह उसके पास जा पहुंची। राजा मनसालाल की कोठी से आये हुए युवक का उसके साथ जो भाषण हुआ था वह उसने सुन्दरदास को कह सुनाया। वह पत्र भी उस वृद्ध मुनीम को दे दिया। उस वृद्ध मनुष्य ने वह पत्र पढ़ा। उसके अन्तःकरण में एकदम ज्ञान का प्रकाश हुआ।

उसने कहा—"सरोजिनी देवी! आप वहां जांय, यही मुझे उचित जंचता है।"

"क्या मैं वहां अकेली हो जाऊं?"

"हां! बेटी, मैं भी तेरे साथ चलूंगा!"

"परन्तु मुझको बिलकुल अकेली जाना चाहिए, यही उस पत्र का उद्देश्य है न?"

मुनीम ने कहा "हां है! और तू अकेली ही जा! मैं उस सड़क के कोने पर खड़ा रह कर तेरी मार्गप्रतीक्षा करूंगा! यदि तुझको अंदाज़ से अधिक समय लगेगा तो मैं तेरी सहायता को आ पहुंचूंगा और तेरे संकट का परिहार करूंगा!"

"सुन्दरदास! क्या आपको यही जंचता है कि मुझको वहां जाने का साहस करना ही चाहिए?

"अवश्य! क्योंकि तुझे इसमें यह दर्शाया गया है न, कि तेरे पिता का जीवित सर्वस्व इसी बात पर अवलंबित है?"

"परन्तु—सुन्दरदास! भला पिता के जीवन पर ऐसा कौन सा संकट आया है, यह भी तो कुछ कहो?"

बालिका के प्रश्न से सुन्दरदास निरुत्तर हो गया। परन्तु, सरोजिनी के जाने का निश्चय इसी समय होना चाहिए था और इसी लिए वृद्ध मुनीम को अपनी इच्छा के विरुद्ध सब बातें बतानी पड़ीं। उसने कहा "सुन! आज सप्टेंबर की ५ वीं तारीख है न?"

"हां, है तो।"

"तब पिता का आज २४ घंटे के अन्दर तीन लाख रुपये भरने चाहिये। कोठी की सन्दूक में तो एक लाख रुपये भी नहीं हैं और अब अधिक रुपये मिलने का कोई दूसरा मार्ग भी नहीं देख पड़ता।"

सरल बालिका ने पूछा "यदि न भरे जाय तो?"

"यदि तेरे पिता नियत समय पर ये रुपये न भर सकेंगे तो कोठी का व्यवहार बंद होगा और उन्हें दिवालिया बनना पड़ेगा। पंडित दयालसिंह जी इस अपमान को न सह सकेंगे और इसी कारण वे मृतप्राय हो जावेंगे।"

सरल बालिका के [illegible] मन पर इसका [illegible] परिणाम हुआ।

"सुन्दरदास! बस, अब हमको जाना ही चाहिये।"

वृद्ध मुनीम भी उस बालिका के [illegible] उसके पीछे पीछे चला।

(३)

[illegible] विद्यार्जन में पूर्णरूप से मन लगा रहता था इसी कारण व्यापार विषयक बातों की ओर उसका विशेष ध्यान न था। यद्यपि [illegible] तथापि कोठी की [illegible] का उसे ज्ञान था। आज सबेरे से पिता के बर्ताव में कुछ परिवर्तन देख कर उसका मन संशयपूर्ण हो गया था। पिता के सम्मुख जाकर उनसे सब बातों का ज्ञान कर लेने के हेतु वह नीचे आया और पिता के कमरे में जा उपस्थित हुआ।

"बाबा!" कहते ही शरद् ने पिता के चरण पकड़ लिए।

"बाबा! क्षमा कीजिये। भला आपका इन [illegible] से क्या मतलब?"

"शरद्! इसीलिए मैं इस समय उठा था—परन्तु—"

"हे पिता! हे पिता! ईश्वर का स्मरण करके बताइये कि आप इनका क्या उपयोग करेंगे?" [illegible] के अश्रुओं से पिता के चरण बिलकुल भीग गये।

"शरद्!" दयालसिंह ने [illegible] से देखा "शरद् तू भी मर्द है! और तू सब कुछ समझ सकता है। इस ! मैं तुझे सब हाल भी साफ साफ बतलाता हूं।"

दयालसिंह ने हिसाब का कागज अपने पुत्र के हाथ में दिया। शरद् ने उसका पूर्णरूप से निरीक्षण किया। उसका कथन है कि रकम तो केवल एक ही लाख की है परन्तु देना तीन लाख रुपया है।

"अपमान की अपेक्षा मुझे मरना अधिक प्रिय है।" ऐसा कहते समय पर पिता के मुख पर एक विलक्षण तेज चमक रहा था।

शरद् ने पूछा—"क्या यह भयंकर समय टालने के लिए आपने सब उपाय किये?"

पिता—"मालकी [illegible] का एक भी उपाय बाकी नहीं बचा?"

पुत्र—"क्या आपके आज तक के वैभव के कारण आपको कुछ भी धन प्राप्त नहीं हो सकता?"

पिता—"प्रतिकूल स्थिति में वैभव कुछ काम नहीं आता।"

पुत्र—"क्या आपने सब प्रकार के प्रयत्न कर देखा?"

पिता—"सब यत्न किये गये। बस!—अब आध घंटे में ही, आज तक प्रकाशमान-रहनेवाले मेरे नाम पर कलंक लगेगा। अपमान से बचने का एकमात्र उपाय अब मृत्यु ही है।"

शरद् ने कहा "आपका कहना सर्वथा ठीक है। यह एक पिस्तौल आपके लिए तथा दूसरा मेरे लिये है।"

वृद्ध दयालसिंह ने पुत्र का हाथ पकड़ लिया।

"भला मेरे पश्चात् तेरी वृद्ध माता का तेरी भगिनी का पालन पोषण कौन करेगा?"

शरदसिंह का शरीर रोमाञ्चित हो गया।

"तो फिर क्या आपकी यही आज्ञा है कि मैं जीवित रहूं?"

"हां मेरी यही आज्ञा है। यही तेरा कर्तव्य है। शरद्, तू तो बालवृत्ति का है ही! तू कुछ साधारण पुरुष तो है ही नहीं!—"मेरी न तो कुछ इच्छा ही है और न आज्ञा ही है। मेरी वर्तमान स्थिति की ओर ध्यान दे और फिर तुझको जो उचित मालूम हो कर—

[illegible] शरद् ने [illegible] पिता [illegible] कहा "पिता! बस शरद् का कंठ रुक गया। फिर उसने कहा [illegible] ईश्वर की इच्छा ही ऐसी मालूम पड़ती है। आप सुख से [illegible] हूजिये।"

दयालसिंह का प्रेमावेग दूना हो गया। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र को हृदय में लगा लिया। [illegible] दोनों का आलिंगन हुआ।

"हे पुत्र! इसमें तेरा कोई दोष नहीं है।"

शरद् ने विकट शब्द किया और कहा "पिता! [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]।"

[illegible]

[illegible]

"बचाइये पिता! बचाइये" कहती हुई एक बालक [illegible] था और उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी।

"यह पत्र राजा मुरलीलाल के [illegible] है। उनका मुनीम अब इस मिनट में ही यहां पहुंचेगा। यदि अभी नहीं, तो जब पहुंचे तब तुम्हें [illegible] राजा साहब का सब धन प्राप्त हुआ होगा। [illegible] मेरा [illegible] 'तेरी वृद्ध माता—' इस [illegible] बालिका [illegible] अब [illegible] कुछ बोल न सका। शरद् ने पिता के चरणों पर मस्तक रक्खा। पिता ने उसे और भी हृदय से लगा लिया।

"जा! जा!! [illegible] [illegible] जाता है। शरद्! तू यहां से चला जा! [illegible] [illegible] से संसार से सब नाता टूट गया! ईश्वर तुम्हें चिरायु करे!"

[illegible] शरद् [illegible] से चला गया।

दयालसिंहजी ने अब अपनी [illegible] [illegible]। धीरे धीरे समय बीत रहा था। इस [illegible] २४ घंटे की केवल [illegible] मिनट बाकी थे।

अपना सांसारिक सम्बन्ध—यह [illegible] [illegible]—तोड़ डालने वाले अभागी दयालसिंह के मन में इस समय जो अनेक विचार आये होंगे उनका [illegible] वर्णन करना असम्भव है। उस [illegible] भागी प्राणी ने [illegible] देखा। उसे अपने प्राणों से भी प्यारी [illegible] बेटी का ध्यान हो आया। परन्तु अब सरोजिनी से मिलने को समय ही कहां था! एक एक क्षण भी उस [illegible] अभागी को मूल्यवान मालूम होता था। दयालसिंह ने जल्दी जल्दी एक पत्र लिखा। अपनी प्रिय कन्या को उसके द्वारा [illegible] से उन्होंने अन्तिम आशीर्वाद दिया। दयालसिंह का सब ध्यान घड़ी की ओर था। घड़ी में [illegible] बजने लगा। मानो उसने उस अभागी प्राणी को अपना सांसारिक सम्बन्ध जल्दी से तोड़ने के लिए ही जोर से सुनाया हो। पंडित जी ने [illegible] हाथ में लिया। अपना मुंह खोला और [illegible] में [illegible] का निशाना लगाया [illegible] के [illegible] "बाबा! बाबा!" कहती हुई सरोजिनी [illegible] आ पहुंची और उसने अपने पिता का हाथ जोर से पकड़ लिया।

अपना [illegible] देख [illegible] गया। [illegible] भी [illegible] बालिका का [illegible] हो गया था। "पिताजी तुम [illegible] [illegible] हो गये।"

पिता ने [illegible] उसे [illegible] लगा लिया। बालिका के हाथ में एक [illegible] थी।

"[illegible]" बोला "मेरा [illegible]! तू यह क्या कहती है?" प्रेमावेग के [illegible] दयालसिंहजी [illegible]।

बालिका ने [illegible] कहा "[illegible], [illegible] पुण्य [illegible] हो गया। परमेश्वर ने आपको फिर [illegible] स्वाधीन कर दिया।"

[illegible] एक [illegible] में राजा मुरलीलाल की कोठी की [illegible] लाख की [illegible] दूसरे भाग में एक [illegible] [illegible] और [illegible] निकट एक चिट्ठी थी जिसमें यह लिखा था—"सरोजिनी भगिनी के विवाह के उपलक्ष्य में भेंट।"

दयालसिंहजी मानो स्वप्नलोक में विचर रहे थे।

अपने [illegible] हाथ में [illegible] और उन्होंने कहा—"सुशीला! बता तो! यह क्या बात है? यह सब मुझे जल्दी बता!"

[illegible] के [illegible] के कारण दयालसिंहजी की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी।

"मुझे यह सब [illegible] के एक मकान में मिला है।"

तो फिर [illegible] कुछ [illegible] नहीं है।"

बालिका ने [illegible] में पाई हुई एक चिट्ठी अपने पिता के हाथ दी। उसमें लिखा था—

"पंडितजी! मैं आपका [illegible] हूं। मैं आपका [illegible] हूं।

आपकी कोठी के विरुद्ध [illegible] [illegible] मुझे भी सुन पड़ीं। आपकी तरफ से तीन लाख रुपये राजा मुरलीलाल की कोठी में दे दिये हैं। [illegible] [illegible] आपकी वर्तमान स्थिति का [illegible] करके [illegible] की [illegible] का विचार आया। आप जानते ही हैं कि इस संसार में [illegible] निराधार [illegible] [illegible] सकता है। राजा मुरलीलाल की ओर से आया हुआ मुनीम न होगा!

"मैं [illegible] हूं! मैं तो आपकी कोठी का एक [illegible] नौकर हूं। मैंने [illegible] के [illegible] अपनी कोठी पर [illegible]। एक [illegible] उसकी कुछ भी स्मृति न होगी, परन्तु मुझे तो उसकी स्मृति [illegible]। [illegible] उसकी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न होगा। [illegible] [illegible] दे। [illegible] [illegible] था। [illegible] उसका [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible]।"

की ओर था। आपका ध्यान एक बार मेरी ओर आकर्षित भी हुआ था; परन्तु मैं तो उस वृद्ध स्त्री की ही ओर इकटक देख रहा था। देखते देखते मैं एकदम चिल्ला उठा ! मैं जिस ओर देखता था उस ओर आपने भी दृष्टि फेंकी। वही वृद्ध स्त्री उस जलप्रवाह में गिर कर डुब-डुब करती हुई आगे ही को जाने लगी। दुर्दैव से मुझे तैरना न आता था। आप तो बड़े आदमी थे। आपने उस ओर न देखा, परन्तु फिर एक क्षण में ही, मैंने आपको, उस तरंगिनी के प्रवाह में कूदते देखा। मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। जब मैं होश में आया तो देखता क्या हूं कि वह वृद्ध स्त्री—मेरी प्रेममय माता—अपने मृदु हाथों से मेरे मस्तक पर जलसिंचन कर रही है ! उस आनन्द-दायक प्रसंग की कल्पना होते ही मेरा हृदय आनन्दपूर्ण हो जाता है ! आप बड़े आदमी ! आपकी यह उपकृति तो आपके ध्यान में भी न होगी !

"मुझे कुछ समय के लिए आपकी कोठी से अपना नाता तोड़ना पड़ा।

"क्षुद्र से क्षुद्र बात में भी परमेश्वर का हेतु कुछ निराला ही रहता है।

"हाय ! वह तो आज स्वर्ग में है !—इस समय मैं अतुल धन का स्वामी हूं। माता को जीवदान देने के आपके उपकार, मानवी शक्ति से उऋण हो नहीं सकते। परन्तु आपके काम आना तो इस दासानुदास का प्रथम और पवित्र कर्तव्य है।

"मैं इस समय आपके दर्शन को न आ सकूंगा। यह सुयोग सरोजिनी के विवाह-प्रसंग में जल्द ही आ जाय !—मैं अवश्य आऊंगा। ईश्वर आपको पूर्ण सुखी करे !

आपका दास,

"कृतज्ञ।"

यथार्थ में यही कृतज्ञता है !

---

# आरोग्यता।

इस संसार में आरोग्यता ही सब सुखों की जड़ है, इसलिये प्रत्येक को सब से पहिले आरोग्यता की ओर ध्यान देना चाहिये, क्योंकि बिना आरोग्यता के मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। मनुष्य यदि आरोग्य है, तो वह संसार में सब कुछ कर सकता है; अर्थात् वह स्वार्थ और परमार्थ दोनों साध सकता है। इसी आरोग्यता के विषय में कई कहावतें प्रसिद्ध हैं; यथा —

"धर्मार्थ काम मोक्षाणां, आरोग्यं मूल कारणम्।"

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पदार्थों की प्राप्ति का मूल कारण आरोग्यता ही है। इसी प्रकार एक कहावत उर्दू में कही है कि —

"तन्दुरुस्ती हजार नियामत।"

अर्थात् एक तन्दुरुस्ती, हजार नियामतों से कहीं बढ़ कर है। और इसी प्रकार एक दोहा हिन्दी में भी कहा है कि —

दोहा।

तन-रक्षा है जगत् में, यश सुख आमद भौन।
तन-रक्षा को खोय के, सुखी जगत् में कौन॥ १॥

अर्थात् आरोग्यता यश, सुख और आनंद का घर है, ऐसा कौन सा मनुष्य है जो आरोग्यता को छोड़ कर सुखी हुआ हो ? कोई नहीं।

यदि कोई रोगी नृप, किसी आरोग्य कँगाल मनुष्य से कहे कि, मैं तेरी आरोग्यता लेने के बदले में अपना सारा राज्य तुझे देता हूं; इसलिये मुझसे यह सर्वराज्य लेकर मुझे अपनी आरोग्यता दे तो यह बात वह कंगाल मनुष्य कदापि न स्वीकार करेगा।

करेगा क्यों ? उसके पास आरोग्यतारूपी एक ऐसा धन है कि जिसके सामने, सब राज्य-पाट, धन और ऐश्वर्य पासँग के समान भी नहीं हैं।

ध्यान देने की बात है कि मान लीजिये, हम एम० ए० (M A) पास हैं, परन्तु रोगी हैं, चारपाई से उठा नहीं जाता। खाना, पीना, सोना, बैठना यहां तक कि शौचादिक क्रिया भी चारपाई पर ही करते हैं। जब किसी काम के करने की इच्छा होती है, तो घर वालों को अथवा नौकर को बुलाते हैं, जब वे आते हैं, तब हम काम करते हैं, वर्ना चुपचाप बैठे दूसरे का मुह ताकते रहते हैं अर्थात् उनके आधीन रहते हैं। ऐसे समय में हमारा पास होना वृथा है, और वृथा होना ही चाहिये, क्योंकि जिस वस्तु से अपने को तथा दूसरों को लाभ न पहुंचे उस वस्तु के होने से क्या लाभ ? कुछ नहीं।

यदि हम आरोग्य नहीं हैं तो हमारा द्रव्य और पढ़ना इत्यादि सब व्यर्थ है।

जब मनुष्य रोगी होता है, तब उसे कुछ भी नहीं अच्छा लगता। वह किसी काम में न मन लगता है और न भोजन अच्छा लगता है। वह सदा दुःखी ही रहता है। रोगी मनुष्य स्वयं ही दुखी नहीं होता वरन् घरवालों को भी दुखी करता है, क्योंकि इस समय न तो वे काम कर सकते हैं जिससे धनोपार्जन हो और न सुख से रह सकते हैं, वरन् बिचारों के धन और समय दोनों नष्ट होते हैं। ऐसे समय में गरीबों की बड़ी बुरी दशा होती है क्योंकि वे तो नित्य मजूरी कर पेट पालते हैं, जिस दिन मजदूरी न करें उसी दिन भूखों मरें। ऐसे समय में घरवालों को रोगी भार सा मालूम होता है और सबों को बड़ा दुःख होता है। यहां तक दुःख होता है कि यदि दो चार दिन मजदूरी न करें तो एक न एक मनुष्य भूख के मारे काल का ग्रास हो जाता है। और जब मनुष्य आरोग्य होता है तब उसे प्रत्येक समय प्रसन्नता रहती है। वह आनंद से अपना कार्य करता है और औरों भी को सहायता देने में समर्थ होता है।

बहुधा मनुष्य कहा करते हैं कि सुख-दुःख परमेश्वर की ओर से होते हैं इसमें मनुष्य का कुछ वश नहीं, यदि यह बात मनुष्य के आधीन होती तो कोई मनुष्य रोगी न होता। यह समझना उनकी एक भारी भूल है। यह ऐसा समझना है जैसे कि प्रथम कोई मनुष्य आकाश में पत्थर फेंक कर मस्तक को उसके नीचे कर दे और जब पत्थर लग जावे तब कहे कि यह दुःख ईश्वर ने दिया है।

तुम्हीं विचार करो, कि यदि तुम बम्बूल बोओ और आम पाने की इच्छा करो, और जब आम न मिले तो परमेश्वर को दोष दो तब लोग तुम्हें क्या कहेंगे ? यही न कहेंगे, कि तुमने काँटे पाने का काम किया है, आम पाने का नहीं; इसलिये ईश्वर को दोष न दो। जैसा कर्म किया है वैसा ही फल भोगो। ईश्वर को दोष देना पाप करना है, इसमें ईश्वर कुछ नहीं कर सकता वह जैसा कर्म देखता है, वैसा ही फल देता है। इसी प्रकार रोग के उत्पन्न होने का कोई न कोई कारण अवश्य होता है, यदि रोग ईश्वर ही देता है तो फिर वह दवाई करने से अच्छा क्यों कर होता है। जब हम अधिक पानी में रहते हैं अथवा अधिक खेलते हैं, तब हमें सर्दी तथा अजीर्ण क्यों कर होते हैं और इनके न करने के पहिले क्यों नहीं होते। दूसरे जब ईश्वर ही रोग देता है और आराम करता है तो फिर डाक्टर तथा वैद्य लोग क्यों शर्त बाधते हैं कि हम इस रोग को शर्तिया, इतने दिन में, जड़ से दूर कर देवेंगे। क्या ईश्वर वैद्यों तथा डाक्टरों के आधीन रहता है ? इससे स्पष्ट है कि रोग ईश्वर नहीं देता, हम स्वयं उसको बुलाते हैं।

रोगों के उत्पन्न होने के मुख्य कारण ये हैं —

(१) बिगड़ी वायु का सेवन करना, (२) खराब जल का पीना, (३) अधिक और गरिष्ट तथा अनियमित समय पर भोजन करना, (४) शौचादि का रोकना, (५) स्नान न करना अथवा काग स्नान की भाँति स्नान करना, (६) मैले वस्त्र का धारण करना, (७) अधिक सोना अथवा अधिक जागना, (८) व्यायाम का न करना।

आरोग्य रहने के मुख्य नियम ये हैं —

(१) नित्य सूर्योदय के पहिले उठकर शौचादिक मुखमार्जन करना चाहिये, (२) स्वच्छ जल से स्नान करना और स्वच्छ जल का पान करना चाहिये, (३) नियमित समय पर ताजा, गरम, और थोड़ा भोजन करना और उसे खूब चबाना, चाहिये (४) प्रातः-सायं वायु सेवन करना चाहिये, (५) यथा साध्य व्यायाम करना चाहिये, (६) सदा स्वच्छ वस्त्र पहनना चाहिये। इत्यादि नियमों का पालन करने से मनुष्य सदा आरोग्य रह सकता है और जो चाहे वह कर सकता है। हे मेरे प्यारे मित्रों ! यदि आपको इस संसार में सुख से रहना है, धन, मान और प्रतिष्ठा बढ़ाना है तो सर्व कार्य छोड़ कर प्रथम आरोग्यता की ओर ध्यान दो। नहीं तो आपका, आरोग्यता के बिना, पढ़ना और द्रव्य कमाना सब वृथा है।

विद्यार्थी जयनारायण उपाध्याय।

# आकाश का रंग नीला क्यों है?

यह प्रश्न प्रायः सब लोगों ने अपनी अपनी बाल्यावस्था में किया ही होगा। आकाश की ओर देखने पर नीले रंग के सिवाय और कुछ देख नहीं पड़ता इसीलिए लड़के अपने माता पिता से पूछा करते हैं कि आकाश का रंग नीला क्यों है? परन्तु यह प्रश्न जितना सहज है उतना ही इसका उत्तर कठिन है, अतएव कोई माता पिता अपने बालकों को, उक्त प्रश्न का, उत्तर नहीं दे सकते। वे यही कह दिया करते हैं कि 'जब तुम बड़े होगे तब तुम्हें यह बात मालूम हो जायगी।' परन्तु आश्चर्य की बात है कि बड़े हो जाने पर भी हम लोगों को इस बात का ठीक ठीक पता नहीं लगा कि आकाश का रंग नीला क्यों है। इस दृष्टि से हम लोग भी, इस समय, बालक ही हैं।

यद्यपि यह बात सच है कि उक्त प्रश्न का कोई ठीक उत्तर अब तक नहीं मिला है तथापि इस विषय की चर्चा के लिए अनेक कल्पनाएँ उत्पन्न हुई हैं। उनमें से कुछ कल्पनाओं का इस लेख में विचार किया जायगा। आशा है कि हमारे पाठकों को आकाश के नीलापन के बारे में कुछ नई बातें अवश्य मालूम हो जायँगी।

सब लोग जानते हैं कि पृथ्वी के चारों तरफ हवा भरी है—इसी को वातावरण (atmosphere) कहते हैं। यदि किसी उपाय से यह वातावरण हटा लिया जाय तो ज्योति सृष्टि का वर्तमान दृश्य बिलकुल बदल जायगा। जब कभी हम आकाश की ओर देखते हैं, चाहे दिन हो, चाहे रात तब हमें आकाश का रंग नीला ही दृष्टि पड़ता है। परन्तु अब मान लीजिए कि पृथ्वी के आसपास का वातावरण हटा लिया गया है और हम लोग बिना वायु के जीवित रह सकते हैं। ऐसी अवस्था में आकाश की ओर देखने से ज्योति सृष्टि में बहुत परिवर्तन देख पड़ेगा। सब से पहली बात यह देख पड़ेगी कि चन्द्र, सूर्य आदि सब आकाशस्थ ज्योतियाँ किसी एक काले रंग के पट में जड़ दी गई हैं। इस समय हमको नीला रंग देख नहीं पड़ेगा, क्योंकि स्वयं आकाश में कोई रंग नहीं है। अब दूसरी बात सुनिए।

[illegible]

[illegible]

जब सूर्य के किरण वातावरण को पार करके पृथ्वी पर आते हैं, और जब उनका परावर्तन होता है तब वे बहुत तेज जान पड़ते हैं। इन किरणों का प्रकाश इतना प्रखर होता है कि आकाश में सूर्योदय के बाद या मुरझाया हुआ चन्द्र और सायंकाल के समय कुछ बड़े बड़े ग्रहों के सिवाय और कुछ भी नहीं देख पड़ता। परन्तु यदि यही किरण वातावरण-रहित आकाश से पृथ्वी पर आवें तो उनकी तेजस्विता और भी हजारों गुनी अधिक हो जायगी। यथार्थ में हमारी आँखें उस प्रचण्ड आकाश की ओर देख ही न सकेंगी। और यदि हम किसी प्रकार देख सके तो मालूम होगा कि आकाश में सूर्य, चन्द्र और कुछ बड़े ग्रहों के साथ और भी अनेक तारागण उपस्थित हैं। ये सब दिन को भी देख पड़ेंगे।

इस नूतन अवस्था में तीसरी बात यह देख पड़ेगी कि सन्ध्या बहुत कम है। एक या दो ही मिनट तक सन्ध्या समय का प्रकाश रहेगा। सूर्य का अस्त होते ही पृथ्वी पर चारों ओर अँधियारा हो जायगा। चौथी बात तो बहुत ही विलक्षण और चमत्कारिक है। कृष्ण पक्ष की रात्रि में, यदि आकाश स्वच्छ हो, तो असंख्य तारागण देख पड़ते हैं परन्तु जब वातावरण न रहेगा तब इन ताराओं की संख्या और भी बढ़ जायगी। पहले जो तारे अदृश्य थे वे भी अब देख पड़ने लगेंगे। और इनके प्रकाश किरणों का निरोध करनेवाला कोई तत्व आकाश में न होने के कारण, रात भी, दिन ही के समान प्रकाशमान हो जायगी। तब वहाँ काला अथवा नीला कोई भी रंग नहीं देख पड़ेगा।

ऊपर लिखी हुई बातों से पाठकों के ध्यान में यह बात आ गई होगी कि, पृथ्वी के वातावरण ही के कारण आकाश नीला देख पड़ता है। यथार्थ में आकाश की कोई मर्यादा ही नहीं है। वह आदि और अन्त रहित है। जिस आकाश में हम नीला रंग देखते हैं वह वस्तुतः हमारी पृथ्वी का ही वातावरण है और वह बहुत दूर भी नहीं है—१०० मील के भीतर ही है।

अब यह प्रश्न किया जा सकता है कि वातावरण नीला क्यों देख पड़ता है? कुछ दिनों के पहले ऐसा मालूम होता था कि उक्त प्रश्न का उचित उत्तर दिया जा सकेगा परन्तु वर्तमान समय के वैज्ञानिकों की राय है कि प्राचीन कल्पनाएँ सत्य नहीं हैं। टिंडल साहब ने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि आकाश के अत्यन्त ऊर्ध्व भाग में सूक्ष्म रज-कण हैं; सूर्य के नीले रंग के किरण, पृथ्वी की ओर आने के समय, उन सूक्ष्म कणों पर से परावर्तित होते हैं, इसीलिए आकाश का रंग नीला देख पड़ता है। इस सिद्धान्त पर बहुत वर्षों तक प्रायः सब विद्वानों का विश्वास था। परन्तु इधर ४-५ साल से इस विषय की फिर चर्चा की जा रही है। उक्त सिद्धान्त के विषय में अनेक आक्षेप किए जा रहे हैं जिनका उत्तर देना बहुत कठिन है। पहली शंका यह है। यह बात अब सिद्ध हो चुकी है कि आकाश के अत्यन्त ऊर्ध्व भाग में सूक्ष्म रज के कण हैं; यदि सौ मील के भीतर के हवा के भाग की परीक्षा की जाय तो मालूम पड़ता है कि उस प्रकार के रज-कण आकाश में रह ही नहीं सकते—चाहे वे कितने ही छोटे क्यों न हों। इसी प्रकार और भी अनेक शंकाएँ हैं।

तब, फिर यही प्रश्न है कि आकाश का रंग नीला क्यों है?

इसका उत्तर देने के लिए वर्तमान समय के कुछ वैज्ञानिक यत्न कर रहे हैं। उन लोगों ने इस विषय की एक नई उपपत्ति निकाली है। परन्तु अब तक वह सब लोगों को मान्य नहीं हुई है। कौन जानता है कि इस नूतन उपपत्ति में भी, कुछ समय के बाद वैज्ञानिकों को अविश्वास न हो जायगा। परमात्मा की सृष्टि में ऐसे ऐसे अनेक चमत्कार हैं कि जिनका पता लगाना मनुष्य-बुद्धि के बाहर है।

तात्पर्य यह है कि यदि कोई पूछे कि आकाश का रंग नीला क्यों है तो उसको यही उत्तर देना उचित है कि "हम नहीं जानते—यह परमेश्वर की सृष्टि का चमत्कार ही है।" सच बात यही है कि इस विषय में हम सब बालक ही हैं—हमको यही सोचना चाहिए—परमात्मा का इतना ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

# मुहम्मद पैगंबर।

जिस प्रकार आज तक पीछे हटते चले गये उसी प्रकार यदि अब भी पीछे हटोगे तो परमेश्वर तुमको कड़ी सजा देगा।"—क़ुरान शरीफ।

ऊपर लिखा हुआ प्रभावशाली वाक्य जिस महात्मा के पवित्र मुख से निकला, उसका देहात होकर लगभग तेरह सदियों से कुछ अधिक समय बीत गया। इतने अवसर में उस महात्मा का नाम दुनिया के प्रत्येक महत्व के भाग में प्रसिद्ध हो गया है। करोड़ों मनुष्यों के हृदय उस महात्मा का नाम सुनते ही प्रेम से उछलने लगते हैं। अनेक लोगों के हृदय म उसका नाम सुनते ही भय उत्पन्न होता है। न-जाने कितने लोगों ने उस महात्मा को अपने अत करण में एक ऊचा स्थान दे रक्खा है। प्रभावशाली मनुष्य का यही लक्षण होता है कि वह अन्य जनों के अत करणों पर प्रेम, भय अथवा द्वेष का साम्राज्य स्थापित कर देता है। जिस प्रकार किसी प्रभावशाली मनुष्य के विषय में असख्य लोगा का प्रेम होता है जिसके द्वारा उसकी शोभा और कीर्ति बढ़ती है उसी प्रकार उसके विषय में अनेक लोगों के मन में भय अथवा द्वेष भी बना रहता है। मुहम्मद पैगंबर इसी प्रकार के असाधारण और प्रभावशाली महात्मा थे। वर्तमान समय में मुहम्मद साहब के अनुयायियों के अस्तित्व के विषय में बहुत बड़ा युद्ध हो रहा है। ऐसे समय पर उस महात्मा का स्मरण होना अत्यत स्वाभाविक है कि जिसने तुर्किस्तान के मुसलमानों की भुजाओं में सामर्थ्य और अत करण में आशा उत्पन्न की है। चाहे तुर्किस्तान नष्ट हो जाय, चाहे ईरान रशिया के हाथ लग जाय, चाहे इजिप्त अपने वैभव से च्युत हो जाय, परन्तु मुहम्मद पैगंबर का सिंहासन अपने ऊचे स्थान से रत्ती भर नहीं हट सकता। ऐसे महात्मा के चरित्र तथा उनके धर्मग्रथ क़ुरान-शरीफ के विषय में कुछ बातें अपने पाठकों को सुनाना अप्रासगिक न होगा।

वर्तमान समय में, दुनियां में, जितने धर्म प्रचलित हैं उनमें तथा मुहम्मद साहब के प्रचलित किये हुए धर्म में एक बड़ा भारी भेद यह है कि इस धर्म के सस्थापक मुहम्मद साहब केवल स्वधर्म के उपदेशक ही न थे, किंतु अपने धर्म का विजय करानेवाले एक सत्ताधारी राजा भी थे। प्राय सब धर्मों के प्रचार के विषय में यह बात पाई जाती है कि कोई महात्मा अपने प्रभावशाली मुख से धर्म के तत्वों का विवेचन करता है और उस धर्म का प्रचार करने के लिये किसी दूसरे सत्पुरुष को तलवार का उपयोग करना पड़ता है। हजरत ईसा के धर्म को रोमन बादशाहों की सत्ता की आवश्यकता हुई। बौद्ध धर्म की वृद्धि अशोक जैसे राजाओं की प्रभुता से हुई। याज्ञवल्क्य का तत्वोपदेश राजा जनक की सहायता से शोभायमान हुआ। इससे यह सिद्ध है कि बुद्धि और शक्ति दोनों परस्परावलंबित हैं; इसलिये प्राय प्रत्येक नूतन धर्म अपने जन्म के समय केवल असहाय अवस्था में रहता है। यदि धर्मप्रचारक के हाथ में राजसत्ता भी हो अथवा यदि धर्म के तत्वों का उपदेश करनेवाले ज्ञानवान पुरुष राजकुल में उत्पन्न हों, तो किसी धर्म पर अपनी बाल्यावस्था में पराधीनता का सकट प्राप्त न होगा। सोचने की बात है कि तत्वोपदेशकों को किस पराधीन अवस्था में रहना पड़ता है! जो लोग अपने मस्तिष्क की विलक्षण शक्ति के द्वारा सारी दुनियां के अंत करणों को जीत सकते हैं उन्हें भी किसी सत्ताधारी राजा का आश्रय लेना पड़ता है, क्योंकि जब तक कोई सत्ताधीश राजा उनके तत्वों को मान्य नहीं करता और उनके नूतन धर्म को आश्रय नहीं देता तब तक उनके तत्वों का प्रचार नहीं किया जा सकता। इस बात के उदाहरण सब देश के धार्मिक ग्रथों में पाये जाते हैं। हिंदूधर्म की रक्षा करने के लिये स्वय निर्गुण और निराकार परमेश्वर को अनेक बार सगुण रूप धारण करना पड़ा है। परतु सौभाग्यवश मुहम्मद साहब के प्रचलित किये हुए धर्म को इस प्रकार की पराधीनता न भोगनी पड़ी। स्वय मुहम्मद साहब की शूरता के कारण इस नूतन धर्म का उदय हुआ और उनके बाद अनेक पराक्रमी राजाओं ने उसकी रक्षा की है। महम्मदी धर्म का इतिहास पढ़ने से जान पड़ता है कि मानों हम अपने महाभारत के भीष्मपर्व की कथा पढ़ रहे हैं, राजपूतों के घनघोर सग्राम का वर्णन पढ़ रहे हैं अथवा यूरोप के मध्य युग के सर्दारों का वृत्तात पढ़ रहे हैं। मुसलमानी धर्म की यह विशेषता ध्यान में रखने योग्य है।

इस बात का उल्लेख ऊपर किया गया है कि मुहम्मद साहब केवल धर्मोपदेशक ही नहीं थे, किंतु वे राजा भी थे, परतु इस बात को न भूलना चाहिये कि वे किसी पुश्तैनी राज्य के हकदार न थे। उन्होंने स्वय अपनी तलवार के जोर पर राज्य प्राप्त किया था। मुहम्मद साहब का जन्म गरीब कुल में ही हुआ था और उनका ऐसे किसी भी राजकुल से निकट या दूर का सम्बध न था कि जिससे उनको वहा का राज्य प्राप्त हो, परतु उन्होंने एक हाथ से तो मुसलमानी साम्राज्य रूपी मंदिर खड़ा किया और दूसरे हाथ से, उन्होंने ही मुसलमानी धर्म की भव्य इमारत खड़ी की। मुहम्मद साहब को वक्तृत्व शक्ति और बाहु, शाप और शर, भक्ति और शक्ति, वैराग्य और वैराज्य, ये सब अनुकूल थे। वे पडितों में पडित और शूरों में शूर थे। जैसा उनमें सात्विक गुण था वैसा ही तामस गुण भी था। इस प्रकार परस्पर विरोधी गुणों का मिश्रण उनमें पाया जाता है। यही कारण है कि मुहम्मद साहब ने थोड़े ही समय में अद्भुत काम कर दिखाया। सिकन्दर, सीजर अथवा नेपोलियन के चरित्र पढ़ कर पाठकों के मन में अद्भुत रस उत्पन्न होता है, शकराचार्य और विवेकानन्द के चरित्र पढ़ कर मन आनन्दलुब्ध हो जाता है, परतु मुहम्मद साहब के चरित्र में सिकन्दर और विवेकानन्द के गुण एक ही साथ पाये जाते हैं।

यथार्थ में इस्लामधर्म के बहुत से उसूल यहूदियों से लिये गये हैं। प्राचीन समय में यहूदीधर्म की बहुत तेजी थी। ईसाई और मुसलमानी धर्म उसीसे उत्पन्न हुए हैं। परतु ज्यों ज्यों इन धर्मों की वृद्धि होती गई त्यों त्यों उनमें से यहूदीधर्म के तत्वों का महत्व घटता चला गया।

इस्लामधर्म के मूलग्रथ को क़ुरान कहते हैं। यह स्वय मुहम्मद साहब की प्रतिभा से उत्पन्न हुआ है। इस ग्रथ पर प्रत्येक मुसलमान की अतिशय प्रीति देख पड़ती है। मध्ययुग में जब मुसलमान लोग यूरोप में बलवा करने लगे तब से ईसाई लोगों ने क़ुरान शरीफ पर हमला करना शुरू किया। अन्य धर्म के लोग क़ुरान के सम्बध में चाहे कुछ भी कहें परतु इसमें सदेह नहीं कि यह एक अपूर्व ग्रथ है।

क़ुरान-शरीफ़ बहुत बड़ा ग्रथ है। सब मिला कर इस ग्रथ के एक सौ चौदह भाग हैं। प्रत्येक भाग को 'सुरा' कहते हैं। इन 'सुराओं' की रचना बहुत करके मुहम्मद साहब ने मक्का या मदीना में ही की है। मुसलमानों का आरभ से अब तक यह दृढ़ विश्वास है कि इस ग्रथ की रचना मुहम्मद साहब ने नहीं की, किंतु ईश्वर उन्हें जिस प्रकार बताते गया उस प्रकार वे लिखते चले गये, अर्थात् यह ग्रथ साक्षात् ईश्वर का बनाया हुआ है। इस ग्रथ के भाग अलग अलग समय पर लिखे गये हैं। कोई कोई भाग तो मुहम्मद ने नित्य व्यवहार की अड़चनों को उद्देश करके लिखे हैं। एक समय मुहम्मद साहब की पत्नी पर व्यभिचार का लोकापवाद आया, तब उन्होंने अपने ग्रथ का चौबीसवा अध्याय लिखा। इसी प्रकार क़ुरान शरीफ के बहुत भागों का मुहम्मद साहब को अलग अलग कारणों से ध्यान होता गया और फिर उनका उल्लेख उस ग्रथ में हुआ। क़ुरान-शरीफ अरबी भाषा में लिखा हुआ है, उस भाषा के पारंगत विद्वानों का मत है कि उसकी भाषा अत्यत उत्कृष्ट तथा मधुर है और इसीलिये उसे परमेश्वरीय भाषा कहना अनुचित नहीं देख पड़ता। मुहम्मद साहब के समय में ही ऐसे कई आक्षेपक लोग थे जो क़ुरान शरीफ को झूठ समझते थे, परतु उन सब के लिये क़ुरान शरीफ में एक ही उत्तर लिखा गया है, "क्या तुम क़ुरान को ईश्वरदत्त मानने को उद्यत नहीं होते? तो फिर उस ग्रथ की एक पंक्ति के सदृश मधुर तथा सुदर पक्ति की रचना कर तो देखो? इससे फिर तुमको यह चुपचाप मानना पड़ेगा कि क़ुरान कुछ मनुष्यकृति—मुहम्मद कृति—नहीं है।" सुदैव से क़ुरान-शरीफ की वाङ्मय-सर्वोत्तमता अब तक भी विद्यमान् है—कवियों की निंदा करनेवाले मुहम्मद साहब इतनी उत्कृष्ट भाषा कैसे लिख सके, यह देख कर कुत्सित लोगों के अत करणों में भी उनके विषय में आदरबुद्धि उत्पन्न होती है।

क़ुरान शरीफ में विषयवैचित्र्य बहुत देखने में आता है। यदि पहिले अध्याय में परमेश्वर का यशोगान है तो दूसरे में नास्तिक लोगों की निन्दा ही निन्दा देख पड़ती है; यदि कोई अध्याय तत्त्वज्ञान से पूर्ण भरा हुआ है तो दूसरे में "तौल में बेइमानी" न करने के विषय के उपदेश लिखे हैं या इसी प्रकार के साधारण तथा सामान्य नष्ट देख पड़नेवाले नीतितत्वों का वर्णन है। यदि किसी अध्याय में स्वर्ग का प्रेमपूर्ण वर्णन किया गया है; तो दूसरे में, नारक

स [illegible] नक [illegible] लोग की [illegible] तथा विस्मृत [illegible] या ही [illegible]। यदि किसीमें विवाह-बन्धन के नियम हैं तो दूसरे में [illegible] का भय आडम्बर दृष्टिगोचर होता है। [illegible] के [illegible] लिखा है तो मुहम्मद साहब ने बड़े बड़े कवियों का भी [illegible] कर लिया है। यदि ऐसा प्रामादिक [illegible] अपनी [illegible] के [illegible] में [illegible] गया है और उसने अपने अनन्त [illegible] [illegible] लिया है तो भला इसमें आश्चर्य ही क्या है?

[illegible] तारीफ का [illegible] आप बहुत उच्च प्रकार का [illegible] है। यह बात तो स्पष्ट ही है कि मुसलमानों के [illegible] धर्मावलम्बियों का यह सब पसन्द न पड़ेगा परन्तु यदि किसी धर्म के तत्व किसी मनुष्य की दृष्टि में अयथार्थ अथवा [illegible] तो [illegible] यह सर्वथा उचित है कि उनका विचार किया जाय। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि उसी [illegible] का [illegible] सर्वश्रेष्ठ आसन प्राप्त होगा जो अपने धर्म की पुस्तकों के अतिरिक्त दूसरे धर्म की पुस्तकों का भी अध्ययन करता हो। हिन्दूधर्म के प्रचारकों ने अपने धर्म पर [illegible] करनेवाले [illegible] के ग्रन्थ का अवलोकन करने की रुचि, [illegible] ही से [illegible] है और यदि वर्तमान हिन्दूधर्माभिमानी भी अब उसी बात का अनुसरण करें तो इसमें बिलकुल सन्देह नहीं है कि इस [illegible] के स्थान में [illegible] स्थापित होगा। जिन्होंने श्रीमच्छङ्कराचार्य के ग्रन्थों का अवलोकन किया है उन्हें स्पष्ट रूप से विदित ही है कि आचार्य ने अपने समय के प्रत्येक [illegible] का किस प्रकार परिशीलन किया था। ऐसे बुद्धिमान और [illegible] परिश्रम करनेवाले आचार्यों की फिर इस देश में आवश्यकता है। कुछ लोगों की तो परधर्म के विषय में [illegible] [illegible] बुद्धि रहती ही है। कुछ लोग तो परधर्म के ग्रन्थों का पढ़ना ही

[illegible] का [illegible] ज्ञान है। उपरोक्त दोनों प्रकार की मनःप्रवृत्ति [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] करनेवाला [illegible] [illegible] [illegible] में भी [illegible] [illegible] भी उसमें के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की ओर न समझे जाय। दूसरे [illegible] [illegible] सर्वथा त्याग करना [illegible] [illegible] अच्छा बात नहीं है परन्तु यह देखना चाहिये कि उस ग्रन्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसमें लाभ [illegible] है या नहीं। यदि उस लाभ [illegible] तो उसकी प्राप्ति के लिये उचित प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार के [illegible] को [illegible] [illegible] समय में धर्मतत्वों की तुलना [illegible] अभ्यास करते हैं। इस प्रकार की तुलना करने से जिस धर्म की उत्पत्ति है उस हिन्दुओं को मालूम [illegible] [illegible] से भी प्राप्त है। उसका [illegible] [illegible] हिन्दुओं को ले लेना चाहिये। कुरान में जो कुछ [illegible] है उसका यदि तुलना के [illegible] विचार हो जाय तो सचमुच उसमें मुहम्मद साहब के [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] से कुछ नुकसान नहीं [illegible] परन्तु जब उनके बारे में मुसलमान [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] में [illegible] [illegible] नहीं [illegible] सके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] किसी प्रकार [illegible] उसके बारे में हिन्दुओं के मन में प्रेम उत्पन्न होना ही चाहिये। [illegible] तो [illegible] [illegible] अध्ययन से [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] से [illegible] [illegible] अवश्य गिर जायगी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विचार [illegible] कि हिन्दूधर्म तथा उसके अनुयायी इतने कमजोर नहीं हैं। मुसलमान तथा मुसलमानी धर्म के विषय में [illegible] अध्ययन करने से हमारे हिन्दू भाइयों की "[illegible] [illegible] बुद्धि" [illegible] भी विस्मृत तथा दूर हो जायगी।

# रथयात्रा !

(१)

[illegible] क्या तुमको नहीं है [illegible] के प्रस्थान की
[illegible] जाते ए [illegible], क्या [illegible] तुमने ध्यान की ?
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जा [illegible]
[illegible] तुम्हारा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आज तुम्हारा [illegible]।

(२)

[illegible] बैठे [illegible] [illegible] [illegible] प्रिय को [illegible] ले
आरती भी [illegible] [illegible] हाथ में है [illegible] ले।
[illegible] की भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible]।

(३)

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हमें [illegible]
'[illegible] क्या है [illegible] का [illegible] [illegible]'
[illegible] [illegible] तो ध्यान से [illegible] लो [illegible] [illegible] [illegible]—
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] सभी आगे [illegible]।

(४)

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] दिन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible]
[illegible] उसका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible]।

(५)

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible]!
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] में ए क्या [illegible] इसका [illegible] [illegible] [illegible]?"
पूछने पर भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

(६)

[illegible] के भी [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] है [illegible] [illegible]—
[illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] का
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] पूछे।

(७)

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] में [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिन दिन।
[illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

(८)

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] है है [illegible]।
[illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible]।

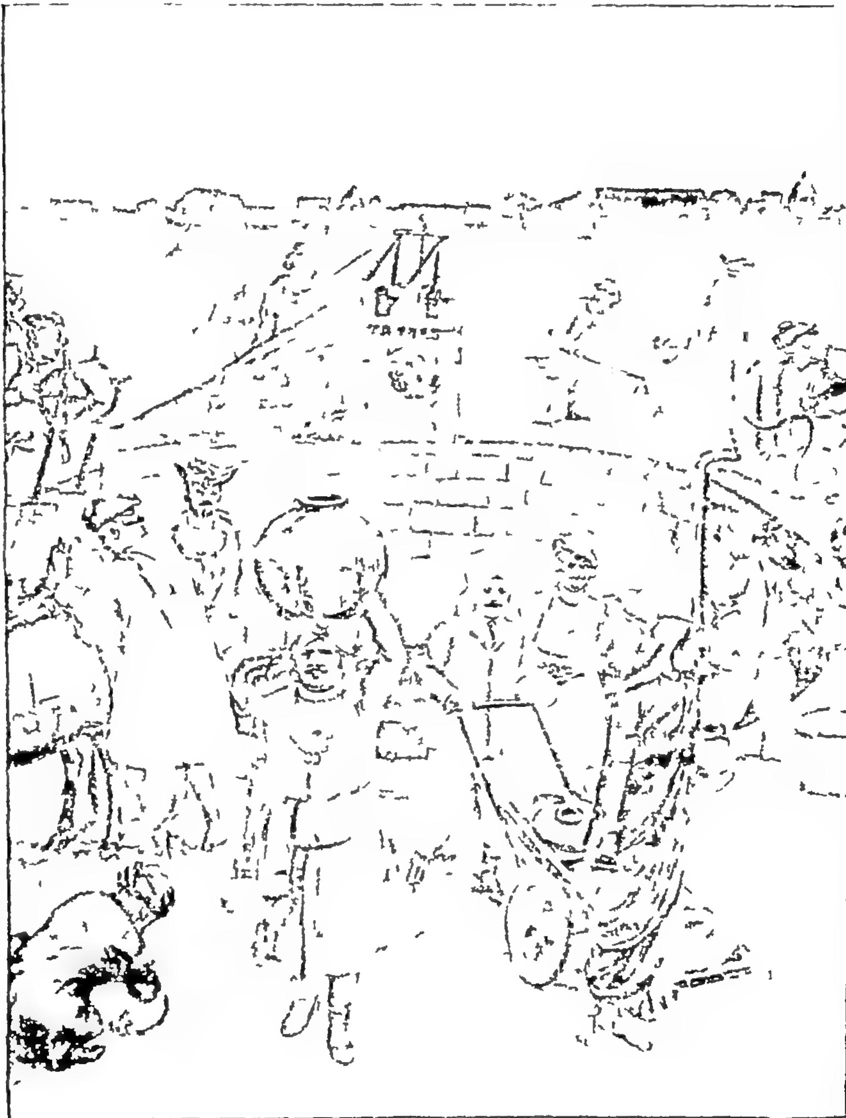
# अक्षय अज्ञान-वापी ।



सब लोग जानते हैं कि काशीक्षेत्र में एक "ज्ञान-वापी" है। हिन्दुओं का यह अत्यंत पवित्र स्थान है। आज उसके विषय में कुछ लिखना नहीं है, परंतु आज हम प्राचीन समय की एक "अज्ञान-वापी" का वर्णन सुनाते हैं। यद्यपि यह कल्पित कथा है तथापि, हमारा विश्वास है कि, इसके पढ़ने और मनन करने से, हमारे धर्म तथा वेदान्त विषयक कुछ महत्व के सिद्धान्तों का अच्छा बोध हो जायगा।

बात बहुत प्राचीन समय की है—सो दो सौ वर्ष नहीं, किंतु किसी एक प्राचीन कल्प की बात है। प्राचीन सृष्टि का प्रलय होकर बहुत समय व्यतीत हो गया था। अब नूतन सृष्टि की रचना का समय समीप आ पहुंचा था। तब, पूर्व के मन्वंतर के समान, सब से पहले, श्रीभगवान् विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मदेव उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के मन से एक मनु उत्पन्न हुए। जिन्हें ब्रह्मदेव ने सृष्टि की रचना करने की आज्ञा दी। जैसे खेती-किसानी करनेवाले लोग अपने घर में सब प्रकार के बीज इकट्ठा कर रखते हैं वैसे ही ब्रह्मदेव के यहां सृष्टि के बीज का संग्रह किया गया था। सब प्रकार के बीज जुदी जुदी पुड़ियों में रक्खे गये थे। सृष्टि की रचना की आज्ञा पाते ही मनुजी उन सब पुड़ियों को लेकर अपने स्थान पर आये और जगत् की उत्पत्ति करने लगे परंतु जल्दी जल्दी में एक छोटी सी पुड़िया कहीं खो गई—वही माया की पुड़िया थी!—यह बात मनुजी के ध्यान में न आई।

धीरे धीरे सृष्टि की रचना होने लगी। पृथ्वी स्थिर हो गई, जल बहने लगा, आग जलने लगी, हवा चलने लगी और आकाश इन सब वस्तुओं को व्याप्त करने लगा। प्राय सब स्थूल सृष्टि बन गई। पृथ्वी के पृष्ठ भाग पर पत्थर और पर्वत आदि बन गये और पृथ्वी के गर्भाशय में सोना, चांदी और लोहा इत्यादि धातुओं की उत्पत्ति भी हो गई। एक छोटे से तिनके से लेकर बड़े बड़े वृक्षों तक सब प्रकार की वनस्पतियां भूमि के ऊपर अपना अपना सिर उठाने लगीं। जल में जीव जंतु तैरने लगे। भूचर प्राणि बन में जाकर अपने अपने निवास के लिये तरह तरह के स्थान बनाने लगे। खेचर प्राणि आकाश में उड़ने लगे और वृक्षों पर अपने रहने के लिये स्थान बनाने लगे। आकाश में चांद और सूरज दिखने लगे। देखते ही देखते अनेक नक्षत्र और तारागण भी वहां चमकने लगे। इसके बाद मानव-सृष्टि की भी उत्पत्ति हुई।



देखिये, इस चित्र में, कोई कटोरा लेकर, कोई घड़ा लेकर, कोई गागर लेकर, कोई पतीला लेकर, और कोई कोई तो मोट तथा पुर लगाकर, अज्ञान जल भरकर ले जा रहे हैं!

मनुजी को यह आज्ञा दी गई थी कि अमुक समय तक सब सृष्टि की उत्पत्ति हो जानी चाहिये परंतु स्थूल सृष्टि की ही रचना में अधिक समय व्यतीत हो गया, इसलिये अब वे मानव सृष्टि की रचना के समय उतावली करने लगे। इस जल्दी और उतावली का फल बहुत बुरा हुआ—और वह बिचारे मनुष्यों को भोगना पड़ा! वे किसी मनुष्य का हाथ बनाना भूल गये! किसीके पैर बनाना भूल गये! किसीको एक ही आंख दे दी! किसीके कान में सुनने का यंत्र लगाना रह गया! किसीके हाथ में देखिये तो छै और सात अंगुलियां हैं, किसीके हाथ में दो या तीन, और किसीके हाथ में एक भी अंगुली नहीं! किसीके मुंह में दो दो जीभ और किसीके मुंह में एक भी नहीं! किसीके नाक है तो कान नहीं और कान है तो नाक नहीं! किसीकी नाक चपटी, किसीकी टेढ़ी और किसीकी मोटी और भद्दी! इस प्रकार अनेक भूलें—अनेक त्रुटियां—अनेक न्यूनताएं रह गईं! तौभी, इसमें संदेह नहीं कि, कार्य के महत्व की दृष्टि से, मनुजी ने सृष्टि रचना बहुत अच्छी की। अस्तु।

सारांश यह है कि, नियमित समय में, जारज, अंडज, उद्भिज्ज और स्वेदज नाम की चारों प्रकार की उत्पत्ति हो गई—चौरासी लाख योनियों की रचना सिद्ध हो गई। मनुष्य, तिर्यक्, पशु, वनस्पति इत्यादि सब प्रकार के जीव निर्माण किये गये। जब मनुजी ने यह देख लिया कि सारी सृष्टि की रचना पूरी हो चुकी तब आपने, सब लोगों के लिये, एक इश्तहार जारी किया। जिसका मतलब यह था—

"सुनो भाई सब आदमियो! श्रीभगवान् विष्णु की आज्ञा के अनुसार मैंने यह जगत् तुम्हारे लिये निर्माण किया है। इस जगत् में तुम लोग आनंद और सुख से निवास करो। तुम्हारे उपभोग के लिये मैंने इस सृष्टि में सब पदार्थ बना दिये हैं। तुम लोग इन पदार्थों का उपभोग करो और पूर्ववत् अपना व्यवहार जारी रक्खो।

यह इश्तहार सब लोगों को सुनाया और समझा दिया गया। यह सोच कर कि अब सब लोग अपने अपने काम और व्यवहार में लग जायंगे, मनुजी कुछ समय तक विश्रांति लेने को हिमालय की ओर चले गये। जाते समय उन्होंने सब लोगों को यह आश्वासन दिया कि 'कुछ समय के बाद मैं फिर यहां आऊंगा और यह देखूंगा कि तुम लोग पूर्वयुग के समान ही अपना सांसारिक कार्य कर रहे हो या नहीं।" यहां से चले जाने के पहले मनुजी ने नारद जी को यह आज्ञा दी कि, तुम इस नूतन सृष्टि के सब लोगों के सांसारिक कार्यों की देखभाल करते रहो।

इस प्रकार नई सृष्टि की रचना और उसके देखभाल का उचित प्रबंध करके मनुजी विश्रांति के हेतु हिमालय चले गये। परंतु आश्चर्य की बात है कि उनकी नूतन सृष्टि में कोई मनुष्य अपना व्यवहार करता हुआ नहीं देख पड़ता था! जैसे स्प्रिंग के बिना घड़ी का काम नहीं चलता, अथवा जैसे भाफ के बिना इंजन नहीं चलता, वैसे ही मनुजी का यह संसार-चक्र भी बेकाम जान पड़ता था! यह चलता ही न था! प्रत्येक मनुष्य विरक्त और उदासीन देख पड़ता था! कोई भी आदमी इस संसार चक्र को गति देने के लिये—चलाने के लिये—तयार न था। हर आदमी का यही कहना था कि, यह व्यर्थ परिश्रम कौन करे।

नारदजी ने बहुत यत्न करके लोगों को समझाया कि यह विरक्त और उदासीन प्रवृत्ति संसारी जनों के लिये अच्छी नहीं है। उन्होंने

लोगों को घर द्वार बनाकर रहने का उपदेश किया परन्तु कुछ लाभ न हुआ। वे लोग पूछने लगे कि 'घर द्वार की क्या आवश्यकता है? लकड़ी, चूना, मिट्टी और पत्थर इत्यादि इकट्ठा करके मकान बनाने की मिहनत क्यों करनी चाहिये? संसार में पशुओं ने कब घर बनाये? आकाश में पक्षियों के घर कहां हैं? क्या हम लोग भी उनके समान इस पृथ्वी पर बिना मकान के नहीं रह सकते?' यह युक्तिवाद सुन कर नारदजी हार गये। वहां से निकल कर वे कुरुस्थान में गये और सोना, चांदी इत्यादि सम्पत्ति के विषय में लोगों का मन लुभाने लगे। परन्तु वहां भी उनको निराशा हुई। वे लोग सम्पत्ति के प्रलोभन से मोहित न हुए—वे लोग सोना और मिट्टी को समान ही मानते थे। तब नारदजी ने स्त्रियों के विषय में ध्यान दिया। उन्हें यह आशा थी कि स्त्रियों के कारण सब लोग संसार में आसक्त हो जायंगे और अपना उचित व्यवहार करने लगेंगे। परन्तु जब नारदजी ने उन लोगों की स्त्रियों के विषय में भी विलक्षण विरक्ति देखी तब तो वे हताश हो गये। उन लोगों ने स्त्रियों की रचना की निन्दा की और कहा कि, 'इस असमान संसार में कौन मोहित होगा?' यह चमत्कार देख कर नारदजी घबरा गये। वे मन में कहने लगे कि यहां या तो कोई भूल [illegible] या कोई बड़ी भारी भूल हो गई होगी। तब इस बात की खबर देने के लिये वे मनुजी के पास गये। वहां जाकर आपने कहा —

'हे मनु महाराज, यद्यपि आपने बड़ा परिश्रम करके यह सृष्टि उत्पन्न की परन्तु इसके चलने का कोई ढंग नहीं पड़ता। केवल स्वर्ग सृष्टि का सब व्यवहार पूर्ववत् हो रहा है परन्तु मानव जाति के सब लोग हाथ पर हाथ रख कर सुस्त होकर बैठ रहे हैं। यद्यपि चांद और सूरज आसमान में घूम रहे हैं यद्यपि सब ग्रह अपने अपने ठिकाने पर ठीक समय आते और जाते हैं, यद्यपि जलवायु ठीक ठीक हो रही है तथापि आपके निर्माण किये हुए आदमी अपने

और उनमें माया का बीज डाल दिया गया। इसी वृक्ष को [illegible] अथवा [illegible] कहते हैं। जब रात के समय सब लोग सो गये थे तब इस अज्ञान वाटिका में से कल्पनारूपी जल निकाल कर एक एक बूंद सब लोगों के बदन पर डाल दी गई। इस वृक्ष के जल को भगवान विष्णु ने यह वरदान दिया कि वह कभी न घटे। इसीलिये उसको अक्षय अज्ञान वाटिका कहते हैं।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है [illegible] अज्ञान वाटिका के जल ने जादू का सा असर पैदा किया। संसार का रूप एकदम बदल गया। लोगों को [illegible] के [illegible] समान भाव सूझने लगा। 'मैं और तू' 'मेरा और तेरा' इस प्रकार के अनेक द्वन्द्वभाव लोगों के मन में उत्पन्न होने लगे। जिस संसार में कुछ समय के पहिले लोगों को किसी पदार्थ की आवश्यकता न थी उसी संसार में अब माया की—ममता की—आसक्तता की उत्पत्ति होते ही तुरन्त सब पदार्थ भी अत्यन्त उपयोगी समझे जाने लगे और उनके लिये मारपीट, लड़ाई झगड़ा और युद्ध-कलह इत्यादि होने लगे। अब इस बात की चिन्ता होने के लिये अनेक शास्त्र निर्माण हुए कि सम्पत्ति की प्राप्ति और रक्षा किस प्रकार की जाय। लोग मिहनत करना पसन्द करने लगे। न्यायोपार्जित सम्पत्ति की रक्षा के लिये धर्मशास्त्र बने। अब काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर इत्यादि विकारों का पूरा पूरा साम्राज्य इस संसार में हो गया। जब सृष्टि के उत्पत्ति करनेवाले देवताओं को विश्वास हो गया कि यह संसार-चक्र पूर्व कल्प ही के समान चलता रहेगा तब वे लोग यमादि देवताओं को इस संसार की देखभाल करने के लिये नियुक्त करके अपने निवासस्थान को चले गये।

# शतरंज के तीन खिलाड़ी।

थोड़े ही दिनों की बात है कि कलकत्ते में, हिंदुस्थान के सब शतरञ्ज खिलाड़ियों की परीक्षा ली गई थी। उस समय तीन महाराष्ट्रीयों को प्रधान पारितोषिक दिये गये। श्रीयुत जोशी को अव्वल नंबर का इनाम मिला। आज हम अपने पाठकों को उन तीनों खिलाड़ियों के नाम और चित्र का परिचय करा देते हैं:—



( १ ) श्रीयुत नारायण रघुनाथ जोशी।



( २ ) श्रीयुत विनायक काशीनाथ खाड़िलकर।



( ३ ) श्रीयुत श्रीपाद विष्णु बोडस।

# साहित्य-चर्चा।

## ग्रन्थ साहित्य।

( १ ) ब्राह्मणोत्पत्ति भास्कर,—लेखक पं० बटुक प्रसाद मिश्र। प्रकाशक हितचिन्तक प्रेस, राजघाट, बनारससिटी। पृष्ठ संख्या ८३। मूल्य १।।) आना। यह पुस्तक श्रुति, ब्राह्मण, स्मृति, पुराण तथा धर्मशास्त्र के ग्रंथों के आधार पर भाषा–टीका सहित प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में सृष्टि का जबसे प्रारम्भ हुआ है तबसे ब्राह्मणों की उत्पत्ति के विषय में लिख कर जहां पर ब्राह्मणों में भेद, अर्थात् पंच गौड और पंच द्राविड का भेद, हुआ है वहां तक की उत्पत्ति का विषय दिया हुआ है। ब्राह्मण मात्र अपनी प्राचीन उत्पत्ति के विषय में विज्ञ होना चाहता होगा, परन्तु बहुतों की उक्त इच्छा पूर्ति, अनेक ग्रंथों के संग्रह न कर सकने के कारण, नहीं हुई होगी, किन्तु अब इसके पढ़ने से साधारण में वे अपनी इच्छा पूर्ति का बहुत सा सामान पा सकते हैं। पुस्तक, "सारस्वतनाम भास्कर पुस्तकालय, बनारस सिटी।" के पते पर मिलती है।

( २ ) मानसिंह वा कमला देवी—लेखक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा। प्रकाशक हरिदास एंड कम्पनी, २०१ हरीसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ संख्या २५६। मूल्य ॥=) आना। यह एक औपन्यासिक पुस्तक है। इसके पढ़ने से मनोरंजन के साथ ही साथ मानसिंह के समय का इतिहास भी मालूम होते जाता है। इस पुस्तक का पढ़ना शुरू करने से जब तक इसको पूरा न पढ़ लें तब तक पुस्तक छोड़ने की तबियत नहीं चाहती। वर्तमान समय में ऐसे ही उपन्यासों की आवश्यकता है। प्रत्येक उपन्यास के प्रेमी को ऐसे ही उपन्यास पढ़ना चाहिये।

( ३ ) बाल गल्प माला—लेखक पं० ईश्वरीप्रसादशर्म्मा। प्रकाशक हरिदास एंड कम्पनी, २०१ हरीसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ संख्या १००। मूल्य ।=) आना। इस पुस्तक में उपदेशप्रद ११ आख्यायिकायें हैं। इन आख्यायिकाओं के पढ़ने से बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त होती है साथ ही साथ प्राचीन समय के महात्माओं के चरित्र मालूम होते जाते हैं। यह पुस्तक बालक बालिकाओं के पढ़ने योग्य है, अतएव हर एक को चाहिये कि अपने बालक-बालिकाओं को ऐसी ही शिक्षाप्रद पुस्तकें पढ़ावें। आज कल ऐसी ही पुस्तकों की, लड़कों को पढ़ाने के लिये, आवश्यकता है। यदि गवर्नमेंट ऐसी उपदेशप्रद पुस्तकों को मदरसों में जारी कर दे, तो विद्यार्थियों को बहुत लाभ हो।

( ४ ) ऐतिहासिक स्त्रियाँ—लेखक कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन, आरा। पृष्ठ संख्या ८०। मूल्य डा० म० समेत ।।) आना। इस पुस्तक में आठ प्राचीन समय की विदुषी देवियों के जीवन–चरित्र का इतिहास लिखा है। इसके पढ़ने से यह मालूम हो जाता है कि प्राचीन समय में देवियों ने कैसे कष्ट सहे हैं तिस पर भी पातिव्रत्य–धर्म को नहीं छोड़ा। किसी किसी देवी ( स्त्री ) के इतिहास का सारांश, पद्य में पहिले ही दर्शा दिया गया है। इस पुस्तक के साथ बुकमार्क भी है। इसका सिर्फ इतना ही उपयोग होता है कि पुस्तक जहां पर पढ़के छोड़ना हो वहां इसको रख दे जिससे दुबारा पढ़ने के समय, पहिले का पढ़ा हुआ ढूंढ़ने में, देरी तथा कष्ट कुछ न हो।

## सामयिक साहित्य।

(१) आर्य्यमित्र—यह एक वैदिक धर्म का साप्ताहिक पत्र है। यद्यपि यह पत्र पहिले भी अपने ढंग पर किसी तरह सम्पादित होता ही था तथापि अब पं० लक्ष्मीधर वाजपेयीजी उपनाम सर्वानन्दजी" के हाथ सम्पादित होने से ऐसी आशा की जाती है कि यह पत्र बहुत जल्दी, वर्तमान दशा को त्याग कर, उन्नति करेगा। इसकी आजतक की प्रति तात्विक और सामाजिक लेखों से युक्त है, अतएव प्रत्येक वैदिकधर्मावलम्बी को इसका आदर कर, इसके तात्विक तथा सामाजिक लेखों से, ज्ञान सम्पादन करना चाहिये।

(२) दारोगा दफ्तर—यह मासिक पत्र "८०।१२ अपरचीत पुर रोड, कलकत्ता।" से प्रकाशित होता है। इसकी जून १९१२ की संख्या में 'काला कुत्ता' नामक लेख है। यह लेख इस संख्या में समाप्त नहीं हुआ है। इस मासिक पत्र में जिस विषय के लेख रहते हैं वह तो मासिक पत्र के नाम से सबको विदित ही होजाते होंगे। परन्तु हां, इतना बतला देना आवश्यक है कि इस विषय के ( जासूसी ) प्रेमियों के लिये यह मासिक पत्र बहुत ही लाभदायक है। तरह तरह के ढंग, मामला का पता लगाने के लिये, मालूम होजाते हैं। पढ़ने में भी रुचि बढ़ती जाती है। इस पत्र का रंग–ढंग देखने से इसका वार्षिक मूल्य भी अधिक लायक नहीं है। वार्षिक मूल्य २) रु० मात्र है।

## अदालतों में हिन्दी।

यद्यपि आजकल हिन्दी की तो सब आफिसों में आवश्यकता है ही, तथापि अदालतों में हिन्दी का इस समय बहुत जरूरी है, क्योंकि हिन्दी के समान कोई स्पष्ट साक्षी देनेवाली अन्य लिपि नहीं है। उ इत्यादि में एक बिन्दु ( नुक्ते ) के ही रखने न रखने से की झूठी डिगरियां होजाती हैं। परन्तु अब हर्ष का विषय है कि अब अदालतों में भी नागरी प्रचार की ओर लोग ध्यान देने लगे हैं। कहीं कहीं हिन्दी ना० प्र० की ओर से अदालतों में हिन्दी के लेखक भी नियुक्त हो गये हैं। किन्तु लेखकों तथा अन्य हिन्दी–प्रेमियों के सुभीते के लिये इस बात की पूरी आवश्यकता थी कि हर तरह के अदालती फार्म उर्दू की भांति हिन्दी में भी छपे हुये मिला करें। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये गोरखपुर की 'ना० प्र० सभा' ने सर्व प्रकार के माल, दीवानी तथा फौजदारी सम्बन्धी अदालती फार्म लागत दाम पर बेचने के लिये छपवाये हैं। इस काम में सभा ने अपनी पूरी निःस्वार्थ भाव से लगायी है। अस्तु, युक्त प्रान्त के समस्त जिलों के वकीलों, मुख्तारों, लेखकों, और हिन्दीप्रेमियों तथा ना० प्र० सभाओं से प्रार्थना है कि इन फार्मों को मंगवा कर प्रचार करें। कुल फार्मों के नमूने के लिये ।) का टिकट भेजना चाहिये। अर्जीदावा दफा ५८, बयानहल्फ़ी, दाखिलखारिज बयान हल्फ़ी ( दीवानी ) इस्तगासा, तलबी मिसिल तथा उसका बयान हल्फ़ी, इजराय डिगरी माल, दीवानी ( दफा ८९ ) वाटरमार्क पेपर पर १।।।) सै० और फार्म कागजात सबूत का बटिया फुलिस्केप पर १) सै० तथा हर प्रकार के अर्जीदावे के मुसन्ने, रसीद और मेहनताना, पर्चा रसीदी साधारण फुल के पर ।>) सै० मूल्य पर दिया जाता है। फार्म रसीद मेहनताना की १०० फार्मों की जिल्द ।।) जिल्द दी जाती है। बाहरी ग्राहकों को डाकव्यय अलग देना होगा।

मिलने का पता—राजमणि त्रि० का०, मंत्री, 'ना० प्र० सभा' गोरखपुर (यु० पी०)।

वर्ष ३ ] आषाढ़. संवत् १९७० विक्रमी—जौलाई सन् १९१३ ईस्वी [ अंक ७

# रामकृष्ण—वाक्सुधा।

बिन्दु [illegible]।

गुरु और शिष्य परस्पर भी गुरु हैं।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

केवल असमर्थ होता है। यदि माता कहीं दूर चली जाय तो बालक बेचैन हो जाता है। यही दशा मेरी है। मुझे अपनी माता—परमेश्वर—के सिवाय और किसी का सहारा नहीं है।

इस संसार में गुरू अनेक हैं—गुरू की कमी नहीं है। मनुष्य-गुरू बहुतेरे है। गुरू की ऐंठ करना सब लोग जानते हैं। गुरू—पद की अभिलाषा सब लोग किया करते हैं, परन्तु शिष्य होना कोई नहीं चाहता! यथार्थ में शिष्यों ही की सब से अधिक आवश्यकता है।

आदिष्ट गुरु।

लोकशिक्षा का कार्य—लोकोपदेश का कार्य—कोई सहज काम नहीं है। यह बहुत महत्व का और कठिन काम है। जिस भाग्यवान् मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार हुआ होगा—जिसको भगवान् का आदेश हुआ होगा—वही आदिष्ट गुरु हो सकता है। नारद और शुकदेव आदि महात्माओं को आदेश हुआ था, शंकराचार्य को भी आदेश हुआ था। यदि यह आदेश प्राप्त न होगा और यदि तुम, अपने ही मन से, गुरू या उपदेशक का काम करने लगोगे, तो तुम्हारी बात कौन सुनेगा? कलकत्ते के आदमियों का हाल तो आप को मालूम ही है। उन लोगों को हमेशा नया जोश चाहिए। उनकी दशा दूध के समान है। जब दूध गरम करने के लिए आग पर रक्खा जाता है और आग जलने लगती है तब दूध उफनाने लगता है, ईंधन बाहर निकाल डालो और आग को कुछ ठंडा कर दो तो दूध बरतन के भीतर घुस जाता है। यही हालत कलकत्तेवालों की है। उन्हें हमेशा कुछ न कुछ उत्तेजक बातें मिलती ही रहनी चाहिए—हमेशा कुछ नई बातें चाहिए। जब कोई 'ताजे तार की खबर' नहीं मिलती तो उनके हृदय के 'तार' बेसुर हो जाते हैं!

जब पानी पीने की इच्छा होती है तब वे कुँआ खोदने का यत्न आरंभ करते है। परन्तु ज्योंही कुछ कठिन और पथरीली जमीन देख पड़ी त्योंही काम बंद कर दिया जाता है। दूसरी जगह कुआ खोदने का काम शुरू किया जाता है। यदि वहां भी जमीन अच्छी न देख पड़ी तो उसे छोड़ कर तीसरी जगह ढूंढने लगते हैं! इस तरह उनकी सारी आयु कुआ खोदने ही में बीत जाती है—परन्तु पानी का एक भी बूंद उन्हें नहीं मिलता। ऐसे लोगों के मत की क्या कीमत की जाय!

आदेश का जोर।

अच्छा, कुछ लोग ऐसे भी होते हैं कि जब उनके मन में कोई विशेष विचार आता है तब वे यही मान लेते है कि यह ईश्वर का आदेश है, परन्तु यह उनका मिथ्या भ्रम है। आदेशयुक्त स्फूर्ति—ईश्वर की प्रेरणाशक्ति—कोई रास्ते पर की चीज नहीं है! सच्चा आदेश तभी होता है जब कि ईश्वर का साक्षात्कार होता है—जब ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष बात-चीत करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। ओह! आदेश प्रत्यक्ष भगवान् का शब्द है! उसके जोर—उसकी शक्ति—का वर्णन कौन कर सकता है! उसके सामने पर्वत भी छार छार हो जायगा। यदि किसी व्याख्यान में इस आदेश का जोर न होगा तो उसका कोई प्रभाव न होगा—उससे कोई लाभ न होगा। स्वयं व्याख्यान ही में कौन सी शक्ति होती है? लोग सुनेंगे, ताली बजावेंगे और धन्यवाद देंगे, परन्तु इन सब बातों का फल क्या होता है? लोग, अपनी जगह से उठते ही, व्याख्यान की सब बातें भूल जाते हैं! इधर एक कान से सुनते हैं, उधर दूसरे कान से वही हवा निकल जाती है! जब व्याख्यान के विचारों की यह दशा होती है तो आचार की कौन कहे! आचार तो अभी बहुत दूर है!

अनादिष्ट गुरु का निषेध।

कमारपुकुर एक गांव है। वहां हालदारपुकुर नाम का एक तालाब है। हर दिन सवेरे लोग वहीं दिशा जाया करते थे। तालाब का पानी बिगड़ गया था। इससे बहुतेरे लोग नाराज थे। जो लोग तालाब पर स्नान संध्या करने जाया करते, वे क्रोध के मारे गाली-गलौज किया करते थे। परन्तु उनकी सुनता कौन था? यही हाल रोज बना रहता था। जगह कभी साफ रहने नहीं पाती थी। तब हैरान होकर कुछ लोगों ने सरकार में अर्जी दी। बस, तुरन्त ही काम हो गया। सरकार का एक सिपाही आया। उसने वहां एक इश्तहार लगा दिया "तालाब का पानी कोई मैला न करे।" इन शब्दों का प्रभाव देखिये कि, दूसरे दिन से वहां का सब मैला हट गया। (सब लोग हँस पड़े)।

इसका तात्पर्य क्या है? तात्पर्य यही है कि, जिसको लोकशिक्षा का काम करना है—जिसको समाज में उपदेशक का काम करना है—उसकी कमर में 'आदेश' की 'चपरास' लटकती रहनी चाहिए! परवाना चाहिए—आज्ञापत्र चाहिए—अधिकार का कोई चिन्ह चाहिए। यदि इस प्रकार का कोई अधिकार न हो और मनुष्य उपदेशक का काम करने लगे तो समाज में उनकी हँसी ही होगी! स्वयं अपने पास तो ज्ञान का कोई अधिकार नहीं और चले दूसरों को सिखाने! अन्धा आदमी दूसरे अंधे को रास्ता कैसे दिखा सकता है! इससे तो यही भला है कि किसी प्रकार का उपदेश न किया जाय। अनधिकारी उपदेशकों और शिक्षकों की शिक्षा से लाभ के बदले हानि ही अधिक होती है। बुरी दवाई लेने से कुछ दवाई न लेना ही अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि विपरीत परिणाम तो न होगा! जब तक ईश्वर की कृपा—ईश्वर की प्राप्ति—नहीं होती तब तक अन्तर्दृष्टि—ज्ञानदृष्टि—तीव्र नहीं होती। जब ज्ञानदृष्टि खुल जाती है तभी किसी रोग का निदान किया जा सकता है—तभी उस रोग को हटाने का उपाय बताया जा सकता है—और तभी उस उपाय से लाभ भी होता है।

सारांश यह है कि पहले 'आदेश' होना चाहिए, फिर 'उपदेश' करना चाहिए। बिना आदेश के जब उपदेश का यत्न किया जाता है तब मन में यह वृथा अभिमान उत्पन्न होता कि 'मैं कोई उपदेशक हूं'—'मैं गुरू हूं और यह शिष्य है।' अहंकार का जन्म केवल अज्ञान से होता है। 'मैं कर्ता हूं' यह भावना* केवल अज्ञान ही से खड़ी होती है! ज्योंही मनुष्य इस भावना के फंदे में पड़ जाता है त्योंही वह दुःख और अशांति का अनुभव करने लगता है। करनेवाला और करानेवाला, ईश्वर के सिवाय और कोई नहीं है—वही सब कुछ करता है और कराता है। मैं कौन हूं? मैं क्या कर सकता हूं?—जब इस प्रकार का बोध अन्तःकरण में जागृत रहता है और जब इसी बोध के अनुसार मनुष्य के सब कर्म होते रहते हैं तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

---

## बिंदु २२

### कर्म-विचारः—कर्म साध्य है या साधन?

श्रीरामकृष्ण—(केशवादि भक्तों से)—आपका कथन है कि 'हम लोगों का कल्याण करते हैं।' परंतु जिस जगत् के कल्याण का बीड़ा जो तुमने उठाया है वह क्या एक छोटी सी टोकरी में भरा है? अच्छा, यह तो कहो कि जगत् का कल्याण करनेवाले तुम लोग कौन हो? भाइयो, पहले अनेक साधनों के द्वारा साक्षात्कार का अनुभव करो। पहले उसीकी प्राप्ति कर लो। जब वह शक्ति प्राप्त हो जायगी तब लोकहित के लिये कमर कसो। तबतक कुछ न करो—केवल साधन ही करते रहो।

एक ब्राह्म भक्त—महाराज, क्या आपके कहने का यह मतलब है कि जब तक साक्षात्कार का लाभ न हुआ हो तब तक हम लोग को सब काम छोड़ देना चाहिये?

श्रीरामकृष्ण—नहीं, कर्मत्याग की क्या जरूरत है? यह कैसे होगा? ईश्वर का चिंतन, स्मरण और कीर्तन इत्यादि नित्यकर्म सब करते रहना चाहिये।

ब्राह्मभक्त—तो क्या आपका यह उद्देश्य है कि, हम लोग इस संसार के सब काम छोड़ दें—विषय कर्मों का त्याग कर दें?

श्रीरामकृष्ण—नहीं, यह भी ठीक नहीं है, जिन कामों के किये बिना जीवन का निर्वाह नहीं हो सकता—जो काम अत्यन्त आवश्यक हैं अर्थात् जो मनुष्य के स्वाभाविक कर्तव्य हैं—उन्हें करना ही चाहिये। और प्रत्येक काम करते समय परमेश्वर से यह प्रार्थना करनी चाहिये कि "हे भगवन् हमें ऐसा सामर्थ्य दे कि हम अपने सब कर्तव्यकर्म निष्काम भाव से कर सकें।" इस प्रकार प्रार्थना करते समय अन्तःकरण सद्गदित हो जाना चाहिये, आंखों से प्रेमाश्रु बहने लगना चाहिये और बुद्धि सात्विक भाव में स्थिर हो जानी चाहिये। प्रार्थना करते समय यह भी कहना चाहिये कि "हे प्रभो! ऐसा कीजिये कि हमारे हाथ से विषय कर्म दिन दिन कम होते जायं क्योंकि जितना जितना कर्म का अधिक व्याप होगा उतना ही उतना तुम्हारे चरणों की ओर से मेरा ध्यान हटता चला आवेगा। भूल करना तो मनुष्य का स्वभाव ही है। मैं निष्काम भाव से कर्म करने का, अपनी ओर से, बहुत प्रयत्न करता हूं, परंतु न जाने क्यों भूल हो जाती है। काम हो जाने पर मालूम होता है कि वह सकाम था—सहेतुक था, दान धर्म किये जाते हैं, सदावर्त खोले जाते हैं और बड़े बड़े परोपकार के काम किये जाते हैं, परंतु आश्चर्य यह है कि इन सब कामों में नाम कमाने की इच्छा, लोक मान्यता की इच्छा, गुप्त रीति से बनी ही रहती है। वह इच्छा न जाने कब, कैसे और क्यों आ जाती है।"

साध्य अथवा उद्देश।

एक बार शम्भू मल्लिक ने मुझसे कहा था कि "दवाखाना, दवाखाना, पाठशाला, तालाब और कुआ इत्यादि अनेक लोकोपयोगी काम मुझे करना हैं।" इस पर मैंने कहा "यह सब ठीक है, परंतु लोक-कल्याण के काम करते समय, तुम्हारी बुद्धि में निष्काम भाव होना चाहिये। इसके सिवाय यह भी नियम होना चाहिये कि जो काम अत्यन्त आवश्यक हों, जो काम सामने उपस्थित हो जाय, पहिले उन्हींको हाथ में लेना चाहिये। इस बात की खोज करते न बैठना चाहिये कि कौन सा काम किया जाय। काम करने की चिंता अपने मन में बढ़ने न देना चाहिये नहीं तो कार्य का विस्तार बहुत बढ़ जावेगा, वह तुम्हारी शक्ति के बाहर हो जावेगा, और तुम्हारा मन रातदिन

---

* "अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते—" गीता।

उसी काम के चिन्तन में फँसा रहेगा। तब तुम ईश्वर का सहज ही भूल जाओगे। उसका नाम तक याद न रहेगा। कुछ लोग स्वामी का दर्शन करने के लिए घर से निकलते हैं और दर्शन करने के पहिले, रास्ते पर तथा घाट पर बैठे हुए गरीब मोहताज लँगड़े अन्धे लोगों को कुछ दान दिया करते हैं। यह कोई बुरा काम नहीं है परन्तु यदि वे दानधर्म करने ही में बहुत समय नष्ट कर देंगे तो उधर मंदिर के कपाट बन्द हो जायँगे और उन्हें स्वामी का दर्शन न होगा। इसलिए सुजान और चतुर जन सब से पहिले स्वामी का दर्शन कर लेते हैं और फिर बचे हुए समय में दान धर्म इत्यादि अनेक व्यवहार किया करते हैं।

सब से पहिले ईश्वर की प्राप्ति कर लेना चाहिए। वही साध्य वस्तु है वही सत्य है और वही मुख्य उद्देश्य है। इसके बाद और दूसरे काम करना चाहिए।

अच्छा, जो लोग कुछ काम किया करते हैं उनका साध्य अथवा उद्देश्य क्या होता है? कर्म साधन है और परमेश्वर साध्य वस्तु है। साध्य और साधन में कभी गड़बड़ न करना चाहिए। मन में यह कभी न समझ लेना चाहिए कि साधन ही साध्य व अथवा उद्देश्य है। मान लो कि तुमको ईश्वर का साक्षात्कार हो गया, ईश्वर का तुम्हें दर्शन हुआ और ईश्वर तुम्हारे सामने आकर खड़ा हो गया। तब क्या तुम यह प्रार्थना करोगे कि "हे प्रभो मुझसे ऐसा काम करा कि मैं रुग्णालय, स्वास्थ्यशाला, शाला इत्यादि लोकोपयोगी काम कर सकूँ?" (लोग हँसते हैं) छिः, ये सब काम जितने भी अच्छे हों तौ भी वे सांसारिक अतएव नाशवान ही हैं। ईश्वर के चरणकमल के सामने उनकी क्या कीमत है। जो सच्चा भक्त होगा वह ईश्वर से हाथ जोड़ कर यह कहेगा कि "हे भगवन मुझे अपने चरणकमल के पास स्थान दो। तुम्हारा सहवास मुझे नित्य होना चाहिए। तुम्हारे चरणों में मेरी शुद्ध भक्ति निरन्तर बनी रहे।"

जब सब लोग गाड़ी में बैठ चुके तब महाराज ने कहा "यह कहाँ है?" [illegible] उन्होंने [illegible] को [illegible] कहा है। कुछ समय के बाद [illegible] हमने गाड़ी के पास [illegible] और बोले "महाराज के साथ कौन कौन जाते हैं?" इस प्रश्न का समाधानकारक उत्तर पाने पर [illegible] ने दण्डवत् प्रणाम किया और महाराज के चरण अपने मस्तक पर धारण किए। महाराज ने बड़े मीठे शब्दों से उन्हें आशीर्वाद दिया।

गाड़ी चलने लगी। कलकत्ते के जिस भाग से गाड़ी जाती थी उसी भाग में साहब लोगों की बस्ती थी। भला तब उसकी स्वच्छता और रमणीयता का वर्णन कौन कर सकता है। रास्ता खूब चौड़ा था और [illegible] के कारण पानी छिड़का गया था, रास्ते के दोनों तरफ सुन्दर और ऊँचे मकान थे। इसके सिवाय [illegible] थी? [illegible] के सर्वथा [illegible] के [illegible] के पढ़ने से [illegible] था। हर एक घर के दरवाजे के पास बिजली का दीपक था। और [illegible] सब [illegible] दीपक के प्रकाश से प्रकाशित था। हारमोनियम के सुर में सुर मिला कर [illegible] गाने की आवाज की ध्वनि कान पर पड़ने से मन को बहुत आनन्द होता था।

जिस समय गाड़ी इस रमणीय राजमार्ग से चली जा रही थी उस समय स्वामी आत्मानन्द में निमग्न थे। [illegible] मुझे प्यास लगी है क्या किया जाय? [illegible] के सामने गाड़ी खड़ी की। पानी लाने के लिए [illegible] गया। वह काच के ग्लास में पानी लाया। महाराज ने इस पर प्रश्न किया "यह ग्लास अच्छा साफ़ होगा?" [illegible] तब महाराज ने पानी पिया।

गाड़ी फिर चलने लगी। महाराज आत्मध्यान में [illegible] थे। रास्ते पर [illegible] गाड़ी [illegible]

# ईनाक आर्डन और ओडेशस की कथा!

अंग्रेज कवि टेनिसन ने ईनाक आर्डन ( Enoch Arden ) नामक एक छोटा सा काव्य लिखा है। यह अत्यन्त मनोहर है। इसकी कथा भी अत्यन्त हृदयद्रावक है। टेनिसन की कीर्ति के अनुसार ही इस छोटे से काव्य की भाषा बड़ी रोचक और कल्पना अति गंभीर है। कथा कुछ बहुत लंबी-चौड़ी और गहन नहीं है—वह सादी और सरल है, परंतु इसका तात्पर्यार्थ चित्ताकर्षक है। सुनिये—

किसी समय, इंग्लैंड में, समुद्र के किनारे, बन्दर स्थान पर, तीन बच्चे छुटपन से एक साथ रहा करते थे। इनमें से दो लड़के थे और एक लड़की। एक, किसी पुतलीघर के, श्रीमान और धनिक का लड़का था। इसका शरीर दुबला-पतला और अशक्त था। दूसरा, किसी गरीब और दरिद्री मल्लाह का, लड़का था वह सशक्त था। जब ये दोनों लड़के जवान हुए तब वे उस कन्या का प्रेम करने लगे—दोनों उस पर आसक्त हुए। उस लड़की ने दरिद्री मल्लाह के लड़के को, अर्थात् ईनाक आर्डन को, पसंद किया और उसीको अपना पति बनाया। श्रीमान् का पुत्र उसके मन में न भाया। ईनाक आर्डन मल्लाह का काम करता था, इसलिये उसको बार बार समुद्र-यात्रा करनी पड़ती थी। एक समय की बात है कि वह समुद्र-यात्रा के लिये गया और अपनी जवान स्त्री तथा दो छोटे छोटे बच्चों को पीछे छोड़ गया। इस बार वह यात्रा से लौट कर घर न आया, तब सब लोगों ने यह निश्चय किया कि वह तुफान में डूब गया होगा या और कहीं लापता हो गया होगा। दो तीन साल तक उसकी स्त्री ने बड़े कष्ट से अपने दिन काटे। उसकी बाल्यावस्था का दूसरा साथी, अर्थात् पुतलीघर के श्रीमान् मालिक का लड़का, अब तक अविवाहित था। वह उस स्त्री पर पहले ही की नाईं आसक्त था। उसने उस स्त्री के साथ विवाह करने की बात छेड़ी। बेचारी स्त्री को यह पूरा विश्वास हो गया था कि मेरा पति ईनाक आर्डन समुद्र में डूब कर मर गया है, अतएव उसने पुनर्विवाह की बात मंजूर कर ली। दोनों की शादी हो गई। वे बड़े सुख और चैन से रहने लगे। उनके लड़के-बच्चे भी हुए।

अब ईनाक आर्डन का कुछ हाल सुनिये। वह मरा नहीं था। समुद्र में तूफान होने के कारण उसकी जहाज किसी टापू के किनारे टकरा गई थी। उसको बहुत दिनों तक वहीं रहना पड़ा। जब दूसरी जहाज उस टापू की ओर आई तब वह उसमें बैठ कर अपने जन्मस्थान पर लौट आया। इस समय उसका रूप बदल गया था। डाढ़ी बहुत बढ़ गई थी, आंखें भीतर घुस गई थीं, शरीर व्याधिग्रस्त हो गया था और सिर्फ हड्डियां रह गई थीं। वह एक भठियारे के घर में ठहरा। वहां उसे मालूम हुआ कि मेरी स्त्री ने मेरे छुटपन के दोस्त से विवाह कर लिया है और अब वह उसके साथ अपने लड़कों-बच्चों को लेकर सुख से रहती है। रात्रि के समय वह अपने श्रीमान् मित्र के बंगले पर गया। कुछ दूर खड़े रह कर उसने अपनी स्त्री को, अपने नूतन पति और बालबच्चों के संग, आनंद से क्रीड़ा करते देखा। उसने अपने मन में सोचा कि, ऐसी अवस्था में अपना परिचय देकर, इन लोगों के सुख में बाधा डालना मेरे लिये उचित नहीं है। ऐसा सोच कर वह भठियारखाने में लौट आया। वहां कुछ लोगों को उसने अपना परिचय दिया और कहा कि मैं ही ईनाक आर्डन हूं। इसके बाद उसने आत्महत्या कर ली।

देखिये, ईनाक आर्डन ने अपने जीवन तथा सुख का इसलिये बलिदान कर दिया कि मेरी स्त्री और बालबच्चों का सुख नष्ट न हो। स्वार्थत्याग और आत्मसमर्पण का यह विलक्षण उदाहरण है।

अब ओडेशस की कथा सुनिये। यह कथा और ही प्रकार की है। इसका भावार्थ उक्त कथा के बिलकुल विरुद्ध है। यह कथा प्राचीन युनानियों के साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। ग्रीस में, इथाका नामक टापू में, ओडेशस नाम का एक राजा राज करता था। उस समय यूनानियों का सुप्रसिद्ध ट्रोजन-युद्ध जारी था। ओडेशस लड़ाई पर गया। उसके पीछे, पेनीलोप नाम की, उसकी स्त्री घर में अकेली रही। उसकी सेवा-टहल करने के लिये कई नौकर-चाकर थे। ओडेशस ने अपने प्यारे कुत्ते 'आर्गस' को भी घर पर छोड़ दिया था। ट्रोजन-युद्ध कई बरसों तक जारी रहा। पेनीलोप को अपने पति का कोई समाचार नहीं मिला। वह अत्यन्त सुंदर और लावण्यवती स्त्री थी। और इस समय, उसके पति की सारी सम्पत्ति भी उसीके आधीन थी। आसपास के अनेक तरुण सरदार और महत्वाकांक्षी पुरुष उस पर मोहित हो गये थे। वे लोग अनेक प्रकार की बातें बनाकर उससे पुनर्विवाह के लिये आग्रह करते थे। कोई कहता था कि 'हाय ! भयानक वेरे में ओडेशस मारा गया होगा।" कोई कहते थे कि "उसको शत्रुओं ने कैद कर लिया है और अब वह अंधियारी कोठरी में बंद पड़ा है।" कोई कहते थे कि "पति की बाट जोहने का समय हो गया। अब राह देखने से कोई लाभ न होगा। युवावस्था के दिन योंही व्यर्थ बीत जायेंगे। यह सारी सम्पत्ति व्यर्थ ही नष्ट हो जायगी।" इस प्रकार वे लोग उसको अपने आधीन कर लेने का बहुत यत्न कर रहे थे। उस समय के पंडित और शास्त्री लोग भी यही सलाह देते थे कि पेनीलोप को पुनर्विवाह कर लेना ही उचित है। जैसे हिंदूधर्मशास्त्र में पुनर्विवाह के विषय में लिखा है कि "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।" उसी प्रकार यूनानियों के धर्मशास्त्र में भी पुनर्विवाह की सम्मति दी गई है। यूनानी पंडितों ने पेनीलोप से कहा "बहुत दिन हो गये तेरे पति का कोई समाचार नहीं मिला। ऐसी अवस्था में यदि तुम्हारा पुनर्विवाह हो जायगा तो वह शास्त्रोक्त और धर्मविहित ही माना जायगा; अतएव तुम पुनर्विवाह के विषय में कोई शंका अपने मन में न लाओ।" परंतु पेनीलोप महासाध्वी और पतिव्रता थी। उसके अंतःकरण में यह दृढ़ विश्वास था कि मेरा पति ओडेशस बड़ा पराक्रमी और शूर पुरुष है—वह युद्ध में मारा नहीं जा सकता—वह किसी न किसी दिन अवश्य आ मिलेगा। उसने पुनर्विवाह की सलाह पसंद न की। जो लोग सलाह दिया करते थे उन्हें वह किसी न किसी उपाय से टाल दिया करती थी। उसने एक बड़ी भारी दरी बुनने का काम अपने हाथ में लिया और कहने लगी कि जब यह काम पूरा हो जायगा तब मैं शादी करूंगी। परंतु उस काम को पूरा करना वह चाहती ही न थी। जितना काम दिनभर में बुनती उतना सब रात को उधेड़ डालती थी। इस प्रकार की उधेड़-बुन करते करते कई दिन बीत गये। सरदार लोग उसे पुनर्विवाह के लिये आग्रह करते ही चले जाते थे। तब उन लोगों से अपना पीछा छुड़ाने के लिये उसने एक और उपाय रचा। उसने यह प्रतिज्ञा की कि जो मनुष्य मेरे पति के धनुष में बाण लगायेगा और बारह कुल्हाड़ियों के छेदों में से आरपार तीर चलायेगा वही मेरा पुनर्विवाहित पति हो सकेगा। वह जानती थी कि यह पण ओडेशस के सिवाय कोई दूसरा आदमी जीत नहीं सकता।

इतने में, किसी चमत्कारिक रीति से, ओडेशस भी, इथाका टापू में भिखारी का भेष बना कर आ पहुंचा। जब वह अपने महल के दरवाजे पर जाकर खड़ा हुआ तब वहां उसे किसीने नहीं पहचाना। उसके आर्गस नामक कुत्ते ने उसे पहचान लिया वह अपने स्वामी के पैरों के पास उछलने-कूदने लगा। ओडेशस का एक बहुत पुराना और ईमानदार नौकर था। उसका नाम युमियस था। उसने अपने स्वामी को नहीं पहिचाना। उस भिखारी वेषधारी ओडेशस को दरवाजे पर ही की एक कोठरी में रातभर रहने के लिये स्थान दिया। बेचारे ओडेशस ने, अपने ही महल में, एक नए आदमी के समान, डरते डरते प्रवेश किया। इसके बाद, उस समय की रीति के अनुसार, रानी पेनीलोप ने पाहुन का आदरसत्कार किया। वह बहुत दूर से चल कर आया होगा और थक गया होगा; ऐसा जानकर रानी ने एक लोटा भर गर्म पानी उसके पांव धोने के लिये अपनी दासी के हाथ भेजा। जब वह दासी उस भिखारी पाहुन के पांव धोने लगी तब उसने पांव पर वही निशान देखा जो कि ओडेशस के पांव पर था। वह चकित होकर दूर खड़ी रही और भय से कांपने लगी। वह जोर से चिल्ला कर पेनीलोप को पुकारना ही चाहती थी कि इतने में उस भिखारी ने उसका मुंह बंद कर दिया और अपना परिचय देकर चुप रहने को कहा। ओडेशस ने अपने नौकर युमियस को भी अपना परिचय दिया और घर का सब हाल पूछा। दूसरे दिन सबेरे सब सरदार पण जीतने के लिये वहां एकत्र होनेवाले थे। युमियस ने कहा "महाराज, जब से आप लड़ाई पर गये तब से आपका कोई समाचार नहीं आया। यहां के सब सरदारों ने यह निश्चय कर लिया कि आपकी मृत्यु हो गई। वे लोग पेनीलोप को पुनर्विवाह के लिये बहकाने लगे। यद्यपि आपकी मृत्यु वार्ता पर उसका विश्वास न था और यद्यपि वह पुनर्विवाह करना नहीं चाहती थी, तथापि इन मदांध सरदारों से अपना पिंड छुड़ाने के लिये उसने धनुष का पण लगाया है। वह जानती है कि ये सब सिर्फ नाम ही के सरदार हैं। इनमें यह ताकत नहीं है कि वे आपके धनुष में बाण लगा सकें। जब कोई भी पण जीत न सकेगा तब वे लोग हताश और लज्जित होकर लौट जायंगे और इस प्रकार बेचारी रानी का पिंड छूट जायगा।"

दूसरे दिन सबेरे इथाका टापू के सब तरुण सरदार ओडेशस का राज्य और उसकी स्त्री को जीत लेने की इच्छा से महल में इकट्ठा होने लगे। महल के सामने, आंगन में, बारह कुल्हाड़ियां एक सीधान में गाड़ दी गईं। ओडेशस का धनुष भी वहां लाकर रक्खा गया।

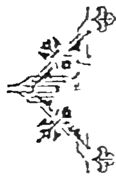
इसके बाद सब सरदारों को यह सूचना दी गई कि कुल्हाड़ियों के छेद में से तीर आर-पार चलाओ। परन्तु जिस प्रकार मिथिला में धनुष को उठाने की शक्ति सिवाय रामचन्द्रजी के न थी—रावण के समान अन्य पराक्रमी वीर उसको नहीं उठा सकते थे—उसी प्रकार यह धनुष ओडेसस के सिवाय और किसी से नहीं उठ सकता था। अण्टिनस नामक सरदार सब लोगों का मुखिया और बहुत बलवान था। वह भी धनुष को न झुका सका। सब लोग अत्यन्त लज्जित हुए। अब पेनीलोप किसी की नहीं हो सकती। तब उन लोगों ने यह निश्चय किया कि आज दिन भर यहाँ रहेंगे और सन्ध्या के समय भोजन करके सब लोग लौट जायेंगे।

इतने में वह भिखारी भी उस आँगन में आ पहुँचा जो कल रात को महल में टिका था। उसने कहा, 'मुझे भी इजाज़त हो कि मैं इस धनुष को उठा सकता हूँ या नहीं।' यह सुन कर सब सरदार लोग उसकी हँसी करने लगे—यह भिखारी हमारे सामने धनुष उठाने आया है। परन्तु पेनीलोप और ओडेसस के पुत्र, टेलिमेकस ने कहा कि "यह प्रण सब लोगों के लिये लगाया गया है—धनुष को उठाने और तीर चलाने का सबको अधिकार होना चाहिये। जो आदमी इस धनुष को उठायेगा उसको मैं भी अपने प्रण के अनुसार तीर चलाने में सफल होने पर अपनी माता के साथ विवाह होने का अधिकार दूँगा; इसलिये इस भिखारी को भी धनुष उठाने दो।' ओडेसस ने

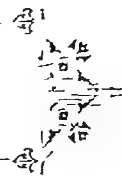
अण्टिनस के मस्तक का लक्ष्य कर ऐसा तीर चलाया कि वह छेदता हुआ चला गया! ज्यों ही अण्टिनस भाग रहा था त्यों ही उस भिखारी ने अपना भेष बदल दिया... [illegible] के सर में यह तीर जा लगा। सिंह के समान गर्जना करके वह बोला 'हे दुष्टो!' मैं... [illegible] जाने के बाद तुम लोगों ने यह निश्चय कर लिया था कि मैं डूब मर गया। अब तुम देखो मैं कौन हूँ और ... [illegible] का बदला लेने को तैयार हूँ। तुम लोग मेरी सम्पत्ति का नाश करना चाहते थे। अब मैं तुम्हें ... [illegible] पेनीलोप के साथ पुनर्विवाह करने का मज़ा ले जाओ। ऐसा कह कर उसने एक के बाद एक बाण की वृष्टि आरम्भ कर दी। कई सरदारों के सिर कट गये। अब इधर उधर भागने लगे, परन्तु महल के सब दरवाज़े बन्द थे इसलिये कोई भाग न जा सका। ओडेसस और उसके पुत्र टेलिमेकस दोनों ने मिल कर उन सब सरदारों की दुर्गति कर दी। कई लोग मर गये ... [illegible]

[illegible]

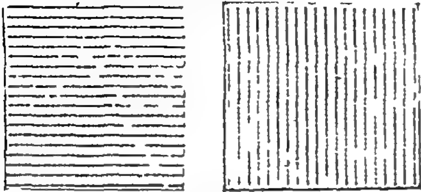
जलदा-वाहन !



# "चक्षुर्वै सत्यम् ।"

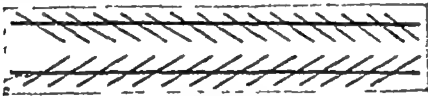


यह बात सब लोगों को मालूम है कि दृश्य पदार्थों का ज्ञान सिर्फ हमारी आंखों की सहायता से होता है। नेत्रेन्द्रिय के द्वारा जो ज्ञान हम लोगों को प्राप्त होता है वही विश्वासनीय माना जाता है। इसी लिए संस्कृत में यह कहावत भी प्रसिद्ध है—" चक्षुर्वै सत्यम् ।



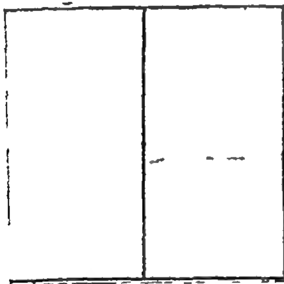
आकृति १

परन्तु यह सुन कर आप आश्चर्य करेंगे कि उक्त कहावत की बात हमेशा सच ही नहीं होती। माना कि आंख की देखी बहुतेरी बातें सच होती हैं, तौभी इस संसार में ऐसी अनेक बातें हैं जो 'प्रत्यक्ष आंख की देखी होने पर भी 'सत्य' नहीं होतीं। 'चक्षुर्वै सत्यम्' को भी, इस कलयुग में, मिथ्या कह सकते हैं! हम अपनी आंखों की देखी बातों पर भी विश्वास नहीं कर सकते हैं! हमारी आंखें भी कभी कभी धोखा खा जाती हैं।



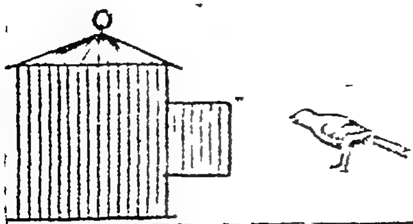
आकृति २

हमारी आंख कैसे धोखा खा जाती है इस बात के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। आकाश में सूर्य को, पूर्व से पश्चिम की ओर, 'चलते हुए' हम हर दिन 'देखते' हैं, परन्तु स्कूल में पढ़ने वाला एक छोटा सा बालक भी जानता है कि सूर्य—चलता नहीं वह स्थिर है—पृथ्वी चलती है!




आकृति ३

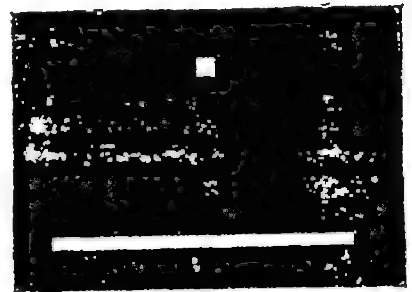
दूसरा उदाहरण रेलगाड़ी का लीजिये। जब हम रेल पर बैठ कर बाहर देखते हैं तब सड़क के किनारे पर सब वृक्ष दौड़ते हुए नजर आते हैं। क्या यह "आंख की देखी बात" सच है? नहीं। जब दो रेलगाड़ियाँ, समान वेग से, पास पास रह कर, दौड़ती चली जाती हैं तब जिस गाड़ी पर हम बैठे रहते हैं वह स्थिर मालूम होती है। यह भी हमारी 'दृष्टि' ही का भ्रम है। जब आकाश से मेह बरसता है तब जल की धारा लम्बी, समान और सरल रेखा में पृथ्वी की ओर आती है—परन्तु वही धारा हमारी आंखों को तिरछी देख पड़ती है!



आकृति ४

और दृष्टान्त लीजिये। जब हम किसी वस्तु को अपनी आंख के सामने कुछ समय तक रख कर हटा देते हैं तो लगभग आध सेकंड तक वह वस्तु हमारे नेत्र पटल पर प्रतिबिंबित हो जाती है। यदि उसी समय, पहिली वस्तु हटा कर उसके स्थान में, दूसरी वस्तु रख दी जाय तो वे दोनों एक ही समान प्रतीत होंगी—परन्तु यह केवल 'भास मात्र ही है'। सिने मेटोग्राफ के चित्रों में इसी नियम का उपयोग किया जाता है। एक लकड़ी में आग लगाकर जोर से घुमाओ तो एक अखंडित अग्नि-वृत्त देख पड़ेगा परन्तु यह भी हमारी दृष्टि का 'भास' ही है!

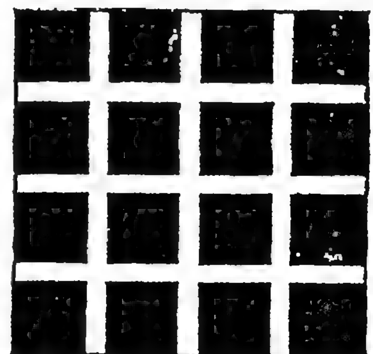
किसी वस्तु की लंबाई चौड़ाई का ज्ञान हमको कैसे होता है? जब हम अपनी आंख उस वस्तु के एक छोर से दूसरे छोर तक घुमाते हैं और जब इस क्रिया में अधिक समय लगता है तब हम कहते हैं कि यह चीज लंबी है और यदि कम समय लगे तो हम



आकृति ५

कहते हैं कि वह छोटी है। इस विषय का साधारण नियम यह है कि जो रेखा क्षितिज—समान्तर होती है उसकी लंबाई जानना सहज है परन्तु लंब रेखा का ज्ञान होना उतना सहज नहीं है। अतएव, लंबाई—चौड़ाई के विषय में नेत्रेन्द्रिय के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है वह कभी कभी अत्यन्त भ्रामक हो जाता है।

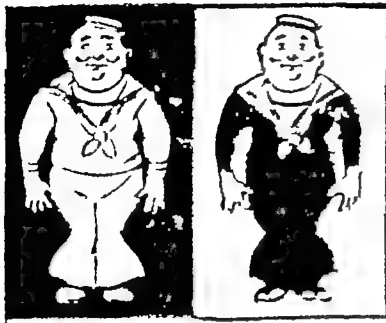
अब कुछ आकृतियों के द्वारा इस बात का वर्णन किया जायगा कि हमारी आंखें पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जानने में कैसे धोखा खा जाती हैं। आकृति १ देखिये—सिर्फ आंख से देख कर यह बताइए कि दोनों में से कौन सी पट्टी अधिक ऊंची और अधिक चौड़ी है? हम जानते हैं कि जिस पट्टी में खड़ी लकीरें हैं उसीको आप बड़ा कहेंगे परन्तु अब आंख का कहना सच न मानो। हाथ में डंडा लेकर दोनों नापो। तब जान पड़ेगा कि दोनों बराबर हैं—न कोई छोटी है और न कोई बड़ी! इसका कारण क्या है? कारण यह है कि, खड़ी लकीरवाली पट्टी की चौड़ाई, आड़ी लकीरवाली पट्टी से, बहुत शीघ्र आंख में जम जाती है और वह कुछ फैली हुई सी देख पड़ती है इसी लिए आंख कहती है कि खड़ी लकीर वाली पट्टी बड़ी है। अस्तु, यदि किसी ठिनगे और मोटे आदमी की यह इच्छा हो कि मैं ऊंचा देख पड़ूं तो उसको चाहिए कि वह खड़ी लकीरवाले कपड़े का ड्रेस पहन ले और यदि कोई ऊंचा लंबा आदमी ठिनगा होना चाहे तो वह आड़ी लकीरवाले कपड़े का ड्रेस पहन ले!



आकृति ६

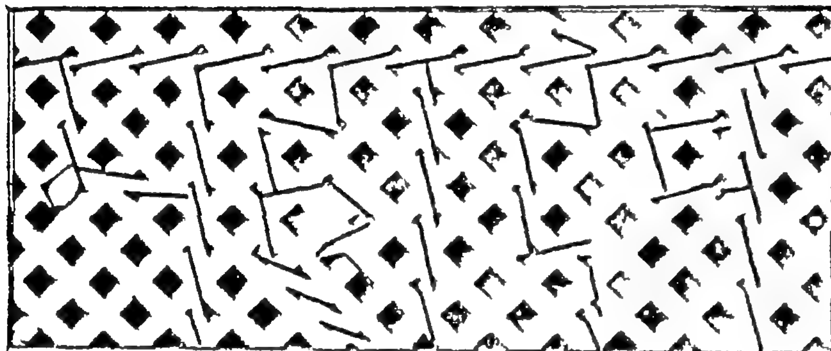
आकृति ७ की ओर देखने से यह सिद्ध हो जायगा कि आंख पर कभी विश्वास न करना चाहिए। इस चित्र में दो आड़ी लम्बी लकीरें हैं। चित्र की ओर देखने से आंख कहती है कि, यदि बाएं हाथ की ओर ये लकीरें बढ़ाई जांय तो वे दोनों आपस में मिल

जायगी। परन्तु टेप से नापने पर इस बात का [illegible] कि ये दोनों रेखाएं समानान्तर हैं—अतएव ये कभी मिल नहीं सकतीं। [illegible] रेखाओं पर [illegible] हैं [illegible] यही मालूम होता है कि दोनों रेखा समानान्तर नहीं हैं—यह भी [illegible] का भ्रम है।



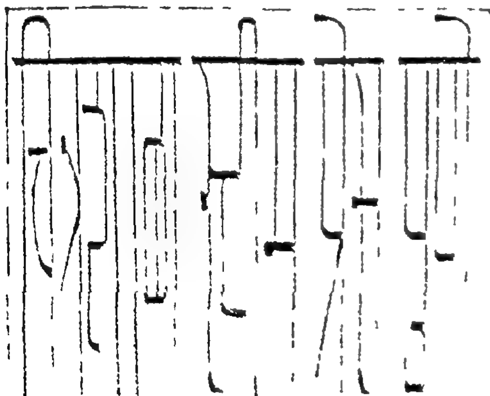
आकृति ७

आकृति ७ को [illegible] में भी नेत्र का भ्रम [illegible] है। [illegible] आप बतावें कि [illegible] बड़ी है या [illegible] बड़ी है? [illegible] हो जायगी। [illegible] और [illegible] कि [illegible] बड़ा [illegible] है। परन्तु सच बात यह है कि दोनों बराबर हैं।



आकृति ८ (अ)

[illegible] आकृति में [illegible] और उसका पिंजरा है। [illegible] चित्र को [illegible] आंख के [illegible] पास रखिए और फिर उसको [illegible] और [illegible] यह [illegible] होगा कि तोता पिंजरे में घुस गया! परन्तु ध्यान [illegible] यह भी [illegible] नेत्रों का ही भ्रम है।



[illegible] आकृति में [illegible] हैं। [illegible] स्थानों में जो [illegible] [illegible] एक [illegible] पड़ता है—ऐसे [illegible] को [illegible] कीजिये।



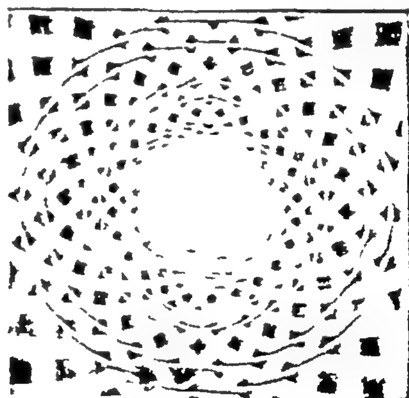
आकृति ९

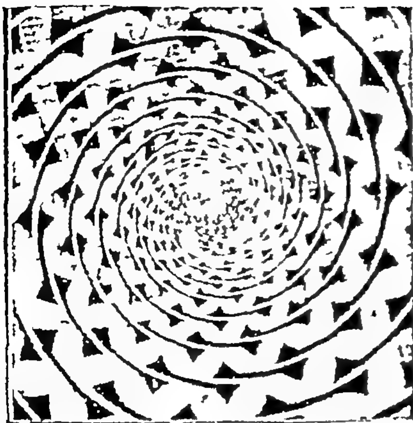
प्रत्येक [illegible] आकार [illegible] ही पड़ता। [illegible] प्रतिबिम्ब [illegible] पर [illegible] में [illegible] होता है [illegible] और [illegible] का [illegible] नहीं है—[illegible] है।

[illegible] आकृति में तीन [illegible] के चित्र हैं। यदि यह पूछा जाय कि इन तीनों में से अधिक [illegible] कौन है [illegible] और [illegible] की ओर [illegible] में तीनों [illegible] समान [illegible] हैं। [illegible] के पृष्ठ [illegible] पर [illegible] अनेक [illegible] पड़ता है। इसका कारण यही है कि [illegible] का प्रतिबिम्ब [illegible] पर [illegible] होता है [illegible] के [illegible] में [illegible] होता है। इसीलिए नेत्रों का भ्रम हो जाया करता है।

[illegible] ८ (क) और (ख) [illegible] (क) में [illegible] (ख) में [illegible] भी [illegible] (क) में [illegible]

इस प्रकार [illegible] सिद्ध हो गया है। यद्यपि [illegible] तथापि [illegible] यह [illegible] के [illegible] कारण [illegible] सकता।

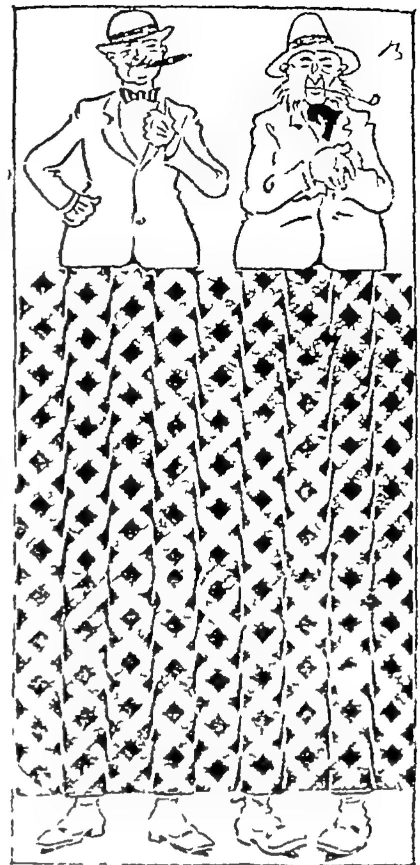




आकृति १० (ब)

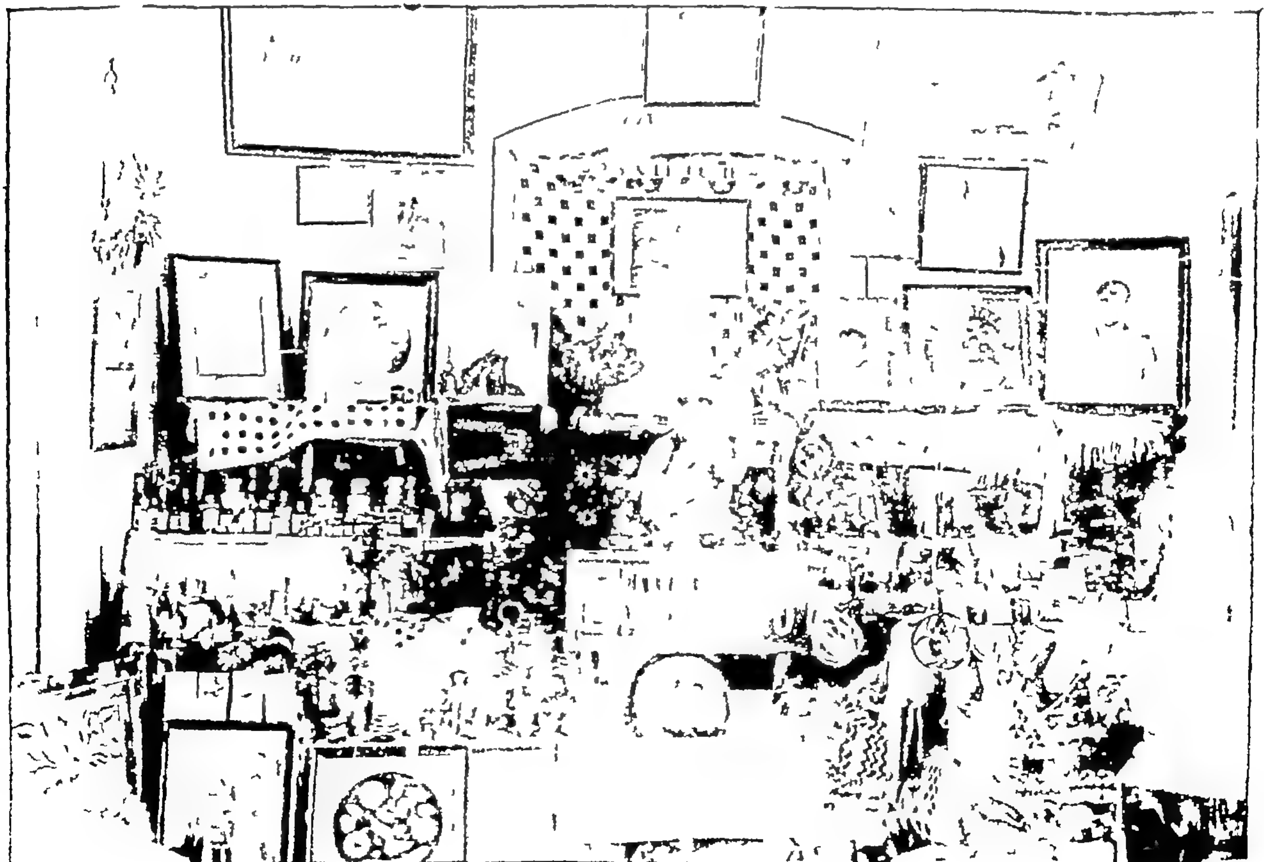
ग्यारहवीं आकृति में दो लंबी टांगवाले आदमी खड़े हैं। चित्र की ओर देख कर आप यही कहेंगे कि उनकी टांगें, तीर कमान के समान भीतर-बाहर झुकी हुई हैं ! परन्तु यह बात सच नहीं है। ८ वीं आकृति के समान, इसको भी, क्षितिज समानर रेखा में उठाकर, आंख के सामने रखिये। तब जान पड़ेगा कि उन आदमियों की टांगें बांस की नाईं बिलकुल सीधी हैं।

सारांश रूप से यही कहना है कि कभी कभी हमारी आंख भी हमको धोखा दे दिया करती है। क्या अब भी हमारे पाठकगण "चक्षुर्वै सत्यम्" ही कहते रहेंगे ?



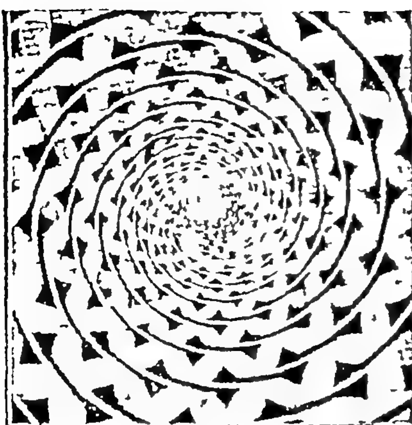
आकृति ११

# कला-कुशलता की प्रदर्शिनी !



न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

आज कल हिंदुस्थान के प्राय सब बड़े बड़े स्थानों में प्रदर्शनियां हुआ करती हैं। यह अच्छी बात है। प्रदर्शनी के द्वारा सर्व रंग लोगों को कला कुशलता, कृषि-सुधार, उद्यम, व्यापार और कारीगरी आदि अनेक विषयों की उपयोगी शिक्षा मिलती है। हमारे धर्म में कहा है कि "ज्ञान के समान और कोई पवित्र वस्तु नहीं है।" जब इस पवित्र ज्ञान की वृद्धि होगी तभी लोगों का कल्याण होगा और की भलाई होगी। ज्ञान दान ही सब से अच्छी देशसेवा है।

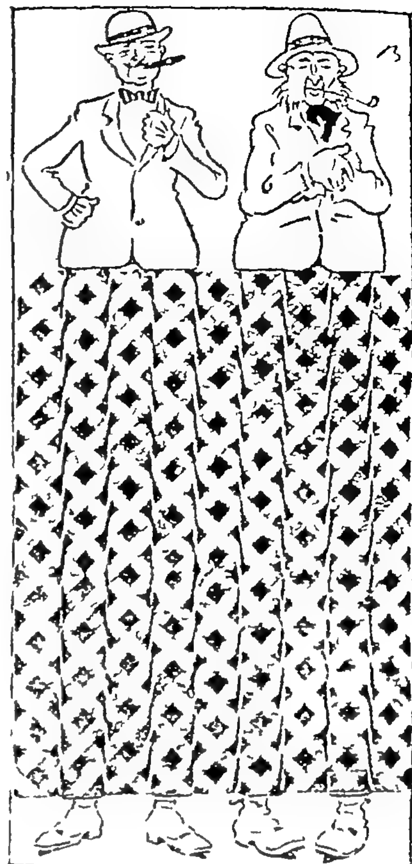


आकृति १० (ब)

ग्यारहवीं आकृति में दो लंबी टांगवाले आदमी खड़े हैं। चित्र को ओर देख कर आप यही कहेंगे कि उनकी टांगें, तीर कमान के समान भीतर-बाहर झुकी हुई हैं। परन्तु यह बात सच नहीं है। ८ वीं आकृति के समान, इसको भी, क्षितिज समानर रेखा में उठाकर, आंख के सामने रखिये। तब जान पड़ेगा कि उन आदमियों की टांगें बांस की नाईं बिलकुल सीधी हैं।

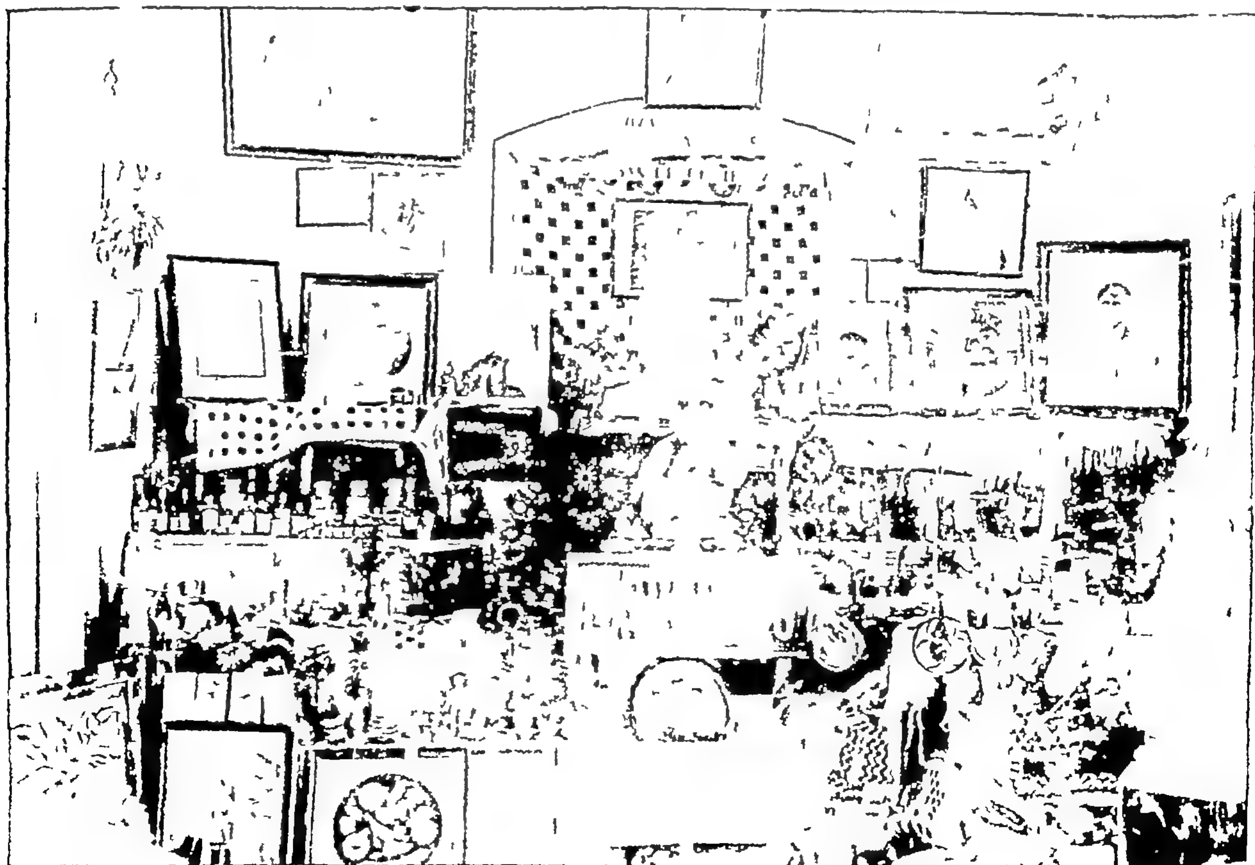
सारांश रूप से यही कहना है कि कभी कभी हमारी आंखें भी हमको धोखा दे दिया करती हैं। क्या अब भी हमारे पाठकगण "चक्षुर्वै सत्यम्" ही कहते रहेंगे?

---



आकृति ११

# कला-कुशलता की प्रदर्शिनी !



न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

आज कल हिंदुस्थान के प्राय सब बड़े बड़े स्थानों में प्रदर्शनियां हुआ करती हैं। यह अच्छी बात है। प्रदर्शनी के द्वारा सर्व रण लोगों को कला कुशलता, कृषि-सुधार, उद्यम, व्यापार और कारीगरी आदि अनेक विषयों की उपयोगी शिक्षा मिलती है। हमारे धर्म में कहा है कि "ज्ञान के समान और कोई पवित्र वस्तु नहीं है।" जब इस पवित्र ज्ञान की वृद्धि होगी तभी लोगों का कल्याण होगा और की भलाई होगी। ज्ञान-दान ही सब से अच्छी देशसेवा है।

# गंगा-वतरण अथवा भगीरथ प्रयत्न।

पौराणिक कथाओं के अनुसार, ज्येष्ठ महीने के शुक्ल पक्ष के प्रथम दस दिन बहुत पवित्र समझे जाते हैं। इन्हींको दशाहार भी कहते हैं। ज्येष्ठ सुदी दशमी को गंगा दशहरा होता है—यही गंगावतरण का मुख्य दिन है। इस दिन बड़े ठाटबाट और समारोह के साथ गंगा माता की पूजा होती है और स्त्रियां अनेक प्रकार के व्रत तथा दान करती हैं। गंगा अवतरण की कथा बहुत ही चित्ताकर्षक और बोधदायक है इसलिये आज यही कथा हम अपने पाठकों को सुनाते हैं।

बहुत प्राचीन समय की बात है। अयोध्या में सगर नाम का एक राजा था। एक बार उस राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया। घोड़ा, पृथ्वी पर्यटन करने के लिये, छोड़ा गया। राजा सगर की तपश्चर्या से भय भीत होकर इन्द्र गुप्त रीति से उस घोड़े को चुरा कर ले गया। घोड़े की रक्षा के लिये सगर के साठ हजार पुत्र उसके साथ थे। जब उन्होंने देखा कि घोड़ा खो गया तब वे उसकी खोज करने लगे। पहले उन्होंने पृथ्वी का सारा ऊपरी हिस्सा ढूंढ डाला परन्तु घोड़े का कहीं पता न लगा। तब वे लोग जमीन खोद कर पृथ्वी के अंदर बहुत दूर तक चले गये तब वहां भगवान वासुदेव कपिल रूप धारण कर तपश्चर्या करते बैठे हुए उन्हें देख पड़े और उन्हीके पास घोड़ा भी बंधा था। यह देख कर सगर राजा के पुत्र बहुत आनंदित हुए। उन लोगों ने मन में सोचा कि इसी तपश्चर्या करनेवाले मुनि ने हमारा घोड़ा चुराया है। वे क्रोधित होकर मुनिजी पर टूट पड़े। ज्योंही कपिलमुनि ने आंख खोल कर क्रोध से उनकी ओर देखा त्योंही वे सब सगर-पुत्र जल कर भस्म हो गये।

जब राजा सगर ने देखा कि लड़कों को जाकर बहुत दिन हो गये और अब तक वे घोड़े को लेकर नहीं लौटे तब वह, भयभीत होकर, चिंता करने लगा। उसने अंशुमान नामक अपने नाती से कहा 'हे वत्स तू शूर और विद्वान है। तू अपने पूर्वजों ही के समान तेजस्वी है। तुझे अपने पितरों का और घोड़े, को चुरा ले जानेवाले का पता जरूर लगाना चाहिये परन्तु इस बात की ओर सदा ध्यान रहने देना कि जो पुरुष वंदनीय हो उनका यथोचित आदर-सत्कार करना चाहिये और जो विघ्न करने वाले हों उनको दण्ड देना चाहिये।" महात्मा सगर का यह उपदेश सुन कर अंशुमान अपने पितरों तथा घोड़े की खोज में निकला। उसने सारी पृथ्वी ढूंढी परन्तु कहीं पता नहीं लगा। जब वह आठों दिशाओं में घूम रहा था तब उसे प्रत्येक दिशा में दिक्‌गज का दर्शन हुआ। पितामह के उपदेश के अनुसार उसने प्रत्येक दिग्गज को नमस्कार किया। दिग्गजों ने सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद दिया कि 'अश्वसहित तू शीघ्र लौट आवेगा।" इस आशीर्वाद से उसे दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुई और सब भूतल का निरीक्षण करते करते वह कपिलमुनि के आश्रम के समीप आ पहुंचा। वहां उसने घोड़े को और अपने मृत पितरों की भस्म-राशि को देखा।

अपने पितरों की मृत्युवार्ता सुन कर अंशुमान बहुत दुःखित हुआ। उस समय वहां गरुड़जी से उसकी भेंट हुई। गरुड़जी ने सब हाल उसको कह सुनाया उसका सान्त्वन किया और कहा 'तू इस घोड़े को अपने साथ ले जा और यज्ञ की समाप्ति करने के बाद हिमालय में जाकर गंगाजी को यहां ले आ और अपने सब पितरों का उद्धार कर।' तब वह घोड़े को ले गया' सगर ने यज्ञ की समाप्ति की। अपने साठ हजार पुत्रों की मृत्युवार्ता सुन कर वह विह्वल हो गया। उसको इस बात का कोई उपाय न सूझ पड़ा कि हिमालय से गंगाजी किस तरह नीचे लाई जा सकेंगी। इसी चिंता और शोक में उसका देहान्त हो गया।

राजा सगर की मृत्यु के बाद अंशुमान गद्दी पर बैठा। यद्यपि वह सब राजकाज तथा न्याय करता था तथापि उसका मन इस बात पर सदा चिंताग्रस्त रहता था कि गंगाजल का प्रवाह नीचे कैसे लाया जाय और अपने पितरों का उद्धार कैसे किया जाय। वह भी इसी चिंताग्रस्त अवस्था में मर गया। उसके दिलीप नाम का एक महा पराक्रमी पुत्र था। उसने अनेक यत्न किये और कठिन तप किया परन्तु उसको भी कोई उपाय न सूझ पड़ा कि गंगा का प्रवाह पृथ्वी पर कैसे लाया जाय। इसी चिंतातुर अवस्था में उसके भगीरथ नाम का एक पुत्र हुआ। भगीरथ के जन्म के समय उसके पिता दिलीप का सारा चित्त, गंगाजी को धरती पर लाने के विषय में, निमग्न रहा करता था, अतएव आनुवंशिक संस्कार के योग से उसके मन में भी वही इच्छा स्वभावतः उत्पन्न हुई। दिलीप के मरने पर जब वह राज सिंहासन पर आरूढ़ हुआ तब यद्यपि उसको राज्यप्रबंध के अनेक काम करने पड़ते थे तौभी, उसके मन में गंगावतरण और पितरों के उद्धार की चिंता सदा बनी ही रहती थी। यथार्थ में उसको इन दो बातों के सिवाय और कोई काम अच्छा न लगता था। इन बातों के विषय में उसके मन की एकाग्रता इतनी बढ़ गई और उसके अन्तःकरण का निश्चय इतना बढ़ गया कि उसने अपना सारा राज मंत्रियों के आधीन कर दिया और आप गोकर्णक्षेत्र में तप करने के लिये चला गया। वहां उसने कई वर्षों तक बड़ी तपश्चर्या की। वहां उसकी, कई बरसों तक की, बड़ी कठिन तपश्चर्या देख कर ब्रह्मदेव प्रसन्न हुए। उन्होंने भगीरथ से कहा "वर मांगो!"



गंगावतरण।

यह सुनते ही महातेजस्वी और महापराक्रमी भगीरथ ने हाथ जोड़ कर नम्रतापूर्वक कहा, हे भगवन्, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं तो, सब सगर पुत्रों का उद्धार करने के हेतु, मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि जिससे गंगाजी का प्रवाह धरती पर आ सके।" ब्रह्मदेव ने कहा, 'हे इक्ष्वाकु कुल भूषण, तेरी इच्छा तो बहुत बड़ी है! अच्छा, सबसे पहले हिमालय पर जाकर तू गंगाजी की प्रार्थना कर और फिर उसका वेग धारण करने के लिये श्रीशंकरजी की प्रार्थना कर। यह पृथ्वी गंगाजी का भार न सह सकेगी।''

ब्रह्मदेव की उक्त बात सुन कर भगीरथ के मन में खिन्नता अथवा निराशा का लेश मात्र भी उत्पन्न नहीं हुआ। होता क्यों? भगीरथ का नाम प्रयत्न ही के लिये प्रसिद्ध है न। वह तब जोशीले सार प्रयत्नवादी पुरुषों का आदि गुरु और मुकुटमणि थे, छोटी मोटी बातों की परवा क्यों करता? वह तुरन्त वहां से हिमालय पर चला गया। वहां जाकर उसने फिर कठिन तपश्चर्या की और गंगाजी को तथा शंकरजी को सुप्रसन्न कर लिया। महादेवजी ने अपने मस्तक पर गंगा का प्रवाह धारण करना स्वीकार किया। इस प्रकार जब सब

बातें सिद्ध हो गईं तब गंगाजी, अपना विशाल रूप धारण करके, शिवजी के मस्तक पर कूद पड़ीं। उस समय गंगाजी के मन में यह अभिमान उत्पन्न हुआ कि शिवजी के मस्तक से निकल कर मैं तुरंत ही धरती पर चली जाऊंगी। शिवजी को यह बात मालूम हो गई। तब उन्होंने गंगाजी का सारा प्रवाह अपने मस्तक की जटाओं में ही गुप्त कर दिया। जब भगीरथ ने यह देखा कि गंगाजी शिवजी के मस्तक ही में विला गई तब वे चिंतायुक्त होकर शंकरजी की प्रार्थना करने लगे। उससमय उन्होंने, गर्व से भ्रांत होकर, शंकरजी जटा-जूट में परिभ्रमण करती हुई गंगा को देखा। गंगाजी ने भी अपने अभिमान का त्याग किया। तब वह पुण्य-नदी, शंकरजी की जटा से मुक्त होकर, हिमालय पर्वत से धीरे धीरे नीचे उतरती हुई, भूतल पर आई। उस समय राजा भगीरथ के हृदय में जो हर्ष हुआ होगा उसका वर्णन कौन कर सकता है। इतने दिनों तक असीम भक्ति से, निष्ठा और निश्चयपूर्वक, एकाग्रचित्त से जो कठिन तप उसने किया था, उसका अब उसे फल मिला। अस्तु, गंगाजी का प्रवाह घनघोर गर्जना करता हुआ भगीरथ के पीछे पीछे जाने लगा। यह प्रचंड ध्वनि सुन कर सब देव, ऋषि, गंधर्व, यक्ष और सिद्ध इत्यादि आकाश मार्ग में एकत्र हो गये। गंगाजी का प्रवाह कहीं शीघ्र गति से और कहीं मंद गति से चला जा रहा था। किसी स्थान में वह अत्यंत विस्तृत और किसी स्थान में अत्यन्त संकुचित हो गया था।

इस प्रकार महाराज भगीरथ अपने दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर आगे आगे चले जा रहे हैं और उनके पीछे पीछे गंगा नदी का प्रवाह अद्भुत घोष करता हुआ चला जा रहा है। इतने में जन्हु ऋषि का आश्रम और यज्ञ मंडप उस प्रवाह में डूब गया। जन्हु ऋषि ने सोचा कि गंगा को गर्व हुआ है, इसलिये उन्होंने क्रोधित होकर सब गंगाजल पी लिया। यह देख कर भगीरथ दुःखित हुआ। उसने जन्हु भगवान् की स्तुति की। उसके साथ देव, गंधर्व इत्यादि सब लोगों ने भी जन्हु की स्तुति की। तब जन्हु ऋषि प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने कान के द्वारा गंगा को छोड़ दिया। तब से गंगा को जन्हुसुता (जान्हवी) कहने लगे। यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि भगीरथ के प्रयत्न से गंगा इस भूलोक पर आई, इसलिये उसको भागीरथी भी कहते हैं। इस प्रकार स्वर्ग में निवास करनेवाली गंगा नदी को लोक में, गंगा, भागीरथी और जान्हवी—ये तीन नाम प्राप्त हुए।

जन्हु ऋषि के कान से निकल कर गंगाजी फिर भगीरथ के पीछे पीछे जाने लगीं। अंत में वह उस स्थान में जा पहुंची जहां कि सगर-पुत्रों के भस्मीभूत शरीरों का ढेर पड़ा था। स्वर्गवासिनी पवित्र गंगाजी के जल का स्पर्श होते ही सब सगर-पुत्रों का उद्धार हो गया—वे निष्पाप और निष्कलंक होकर स्वर्गलोक को चले गये। इस प्रकार भगीरथ के अद्भुत प्रयत्न की सफलता से प्रसन्न होकर सब देवताओं ने उसे धन्यवाद दिया और जयजयकार किया। देवताओं ने कहा, "हे भाग्यवान् राजा भगीरथ, यद्यपि तुम्हारे पूर्वज राजा सगर अत्यंत कीर्तिमान् और धर्मनिष्ठ थे, तथापि उनकी इच्छा सफल न हुई। उसी तरह अंशुमान भी बड़ा तेजस्वी और पराक्रमी था परंतु वह भी यह अद्भुत कार्य न कर सका। क्षात्रधर्म के अनुसार चलनेवाला तेरा गुणवान् पिता रात दिन गंगावतरण के विषय में चिंतन करता था और अंत में निराश होकर वह भी मर गया। हे श्रेष्ठ पुरुष, जिस प्रतिज्ञा को तेरे पूर्वज सफल न कर सके उसको तूने सिद्ध कर दिखाया है, इसलिये तू शाश्वत यश का भागी हो गया है। जब तक इस भूलोक में गंगानदी का प्रवाह बना रहेगा तब तक तेरी पवित्र कीर्ति का डंका सारे त्रिभुवन में बजता रहेगा। अपने पूर्वजों की प्रतिज्ञा को सफल करने का तेरा दृढ़ निश्चय और तेरा विलक्षण प्रयत्न सदा के लिये सुप्रसिद्ध बना रहेगा। जो मनुष्य तेरे जीवनचरित्र का मनन करेगा वह प्रयत्नशील हो जायगा और असाध्य प्रतीत होनेवाले बड़े बड़े कार्य करने के लिये समर्थ हो जायगा।"

इसमें संदेह नहीं कि गंगा अवतरण का यह पौराणिक आख्यान अत्यंत उत्साहजनक और दुःख तथा शोक का नाश करनेवाला है। इस आख्यान से हम लोग कई महत्व की बातें सीख सकते हैं। पहली बात यह है कि माननीय पुरुषों का आदर-सत्कार करना चाहिये—इस बात की ओर ध्यान न देने से साठ हजार सगर-पुत्रों का नाश हो गया और इस बात की ओर उचित ध्यान देने से अंशुमान यज्ञ के अश्व को लौटा लाने में सफल हुआ—दूसरी बात यह है कि इस दुनिया में कोई बात 'असंभव' अथवा 'असाध्य' नहीं है—जो काम हम करना चाहें उसका निदिध्यास होना चाहिये—रात-दिन उसीका चिंतन होना चाहिये। देखिये, गंगावतरण की इच्छा सगर, अंशुमान और दिलीप तक तीन पीढ़ियों में बराबर बनी रही और वह इच्छा प्रत्येक पीढ़ी में प्रबल होती गई, अंत में उस इच्छा की अत्यंत तीव्र अवस्था में भगीरथ का जन्म हुआ। अर्थात् भगीरथ के जीवन में, गंगा अवतरण के सिवाय और कोई भी ध्येय उद्देश या कर्तव्य नहीं था। जब इच्छा इतनी तीव्र हो जाती है और मन इतना एकाग्र हो जाता है कि निश्चित ध्येय के सिवाय कुछ सूझ नहीं पड़ता तब सफलता की प्राप्ति में विलंब नहीं लगता। यद्यपि पहले पहल कोई काम असाध्य जान पड़े, तथापि इस बात को न भूलना चाहिये कि हमारी 'इच्छा-शक्ति' उसको सिद्ध कर सकती है। अनेक पीढ़ियों तक एक ही निश्चित उद्देश की भावना जागृत रहनी चाहिये—अपने निश्चित उद्देश का कभी विस्मरण न होना चाहिये—आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, कभी न कभी वह उद्देश सफल ही होगा। इस बात की परवा न करनी चाहिये कि हमारे उद्देश को सफलता हमारे जीवनकाल में—वर्तमान समय में—न हो सकी। बड़े महत्व के कार्य एक ही दिन में सिद्ध नहीं हो सकते। गंगावतरण के लिये तीन पीढ़ियों के विचारसामर्थ्य और इच्छाशक्ति की आवश्यकता थी। इस बात की ओर देख कर किसी विचारशील और काम करनेवाले मनुष्य को हताश न होना चाहिये।

साराश यह है कि, मनुष्य को अपने जीवन की सफलता के लिये सब से पहले अपना ध्येय अथवा उद्देश निश्चित रूप से जान लेना चाहिये। तब उसी उद्देश का चिंतन, मनन, ध्यान और निदिध्यास करते रहना चाहिये। अपने उद्देश का विस्मरण एक क्षण के लिये भी न होने देना चाहिये। इस प्रकार रात दिन स्मरण करते करते इच्छाशक्ति इतनी प्रबल हो जायगी कि अपने उद्देश की सफलता का उपाय शीघ्र ही मालूम हो जायगा। यदि इस कार्य में कुछ विलंब हो जाय तो हताश न होना चाहिये। इसके बाद, निश्चित अथवा स्वीकृत उपाय के अनुसार उद्देश की सफलता के लिये प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न करने ही यश की प्राप्ति होगी—उद्देश सफल होगा—मनोर्थ सिद्ध होगा। भगीरथ प्रयत्न का यही रहस्य है।

हमारे प्राचीन समय के इतिहास ग्रंथों में इस प्रकार के भगीरथ प्रयत्न के समान अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं। क्या हम आशा कर सकते हैं कि वर्तमान समय में भी इस प्रकार भगीरथ उत्पन्न होंगे जो अपनी भारत माता का उद्धार करेंगे? ध्वनि कहती है—"हां, अवश्य होंगे!" तथास्तु। गंगा माता की जय!

# गुरुकुल वृन्दावन।

संयुक्तप्रान्त की श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा ने सन् १९०५ में इस गुरुकुल को अपने हाथ में लिया और दिसेम्बर १९११ से यह गुरुकुल वृन्दावन में, श्रीमान् राजा महेन्द्रप्रताप के प्रदत्त उद्यान में, स्थित है, जो वृन्दावन रेलवे स्टेशन के सन्मुख पूर्व की ओर यमुना-निकट १ मील की दूरी पर है।

इस समय गुरुकुल में प्रायः १०० ब्रह्मचारी विद्याध्ययन कर रहे हैं। बड़े बड़े योग्य विद्वान् पढ़ानेवाले हैं, जिनमें श्रीमान् पं० श्यामलालजी साहित्याचार्य, पं० लल्लुरामजी व्याकरणाचार्य, ब्र० बालमुकुन्दजी बी० ए० तथा पं० रामचन्द्रशास्त्री आदि हैं। गुरुकुल का प्रबन्ध श्रीमती सभा की अन्तरंग के आधीन है। गुरुकुल के मुख्य अधिष्ठाता श्रीमान् मुन्शी नारायणप्रसादजी हैं तथा श्रीमान् दारोगा लक्ष्मीनारायणजी और म० महाराज सिंहजी सहायक हैं।

समस्त प्रविष्ट ब्रह्मचारी ६ आश्रमों और ८ श्रेणियों में विभक्त हैं, प्रति आश्रम पर एक एक सरक्षक नियुक्त है जो अहर्निश ब्र० चारियों की देखरेख करता है। छठी श्रेणी से अंगरेजी पढ़ानी आरम्भ कराई जाती है। अष्टाध्यायी से लेकर दर्शन, उपनिषद् और वेदों तक की शिक्षा दी जाती है। ५ वर्ष से ८ वर्ष तक की आयु का ब्रह्मचारी प्रविष्ट किया जाता है और १६ वर्ष तक गुरुकुल में वास करना पड़ता है। सब को समान वस्त्र और सात्यिकी भोजन मिलता है। वर्ष में दो मास की छुट्टियां ग्रीष्मऋतु में होती हैं, जिनमें ब्रह्मचारी चित्रविद्यादि सीखते हैं। वर्ष में एक बार उच्च कक्षा के ब्रह्मचारियों को ऐतिहासिक स्थान अवलोकन कराये जाते हैं।

वर्ष में एक बार गु० कु० में ब्रह्मचारी प्रविष्ट किये जाते हैं। उनके प्रार्थनापत्र अक्टोबर मास में लिये जाते हैं और डिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में गुरुकुल-मेले के समय प्रविष्ट किये जाते हैं। प्रति ब्रह्मचारी को १०) रु० मासिक फीस देनी पड़ती है। अब तक गुरुकुल विद्याध्ययन अस्थाई भवनों में है अब स्थाईरूप से भवन बनने का आयोजन हो रहा है।

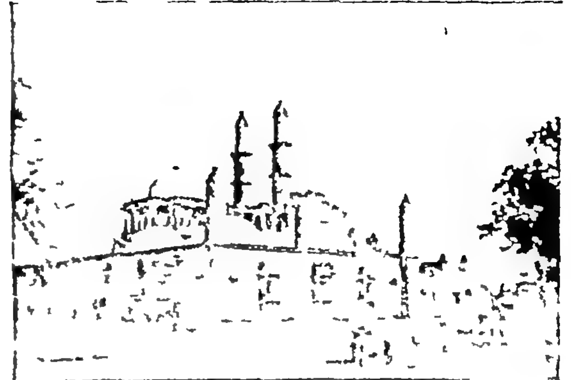
गुरुकुल एक दर्शनीय स्थान है जिसको देखने से पूर्वकाल के तपोभूमि ऋषिकुल का स्मरण होता है। स्थान बड़ा ही सुहावना और शान्तिदायक है। मथुरा-वृन्दावन में आनेवाले यात्री और दर्शकों को चाहिये कि वे जब मथुरा पधारें तब एक बार गुरुकुल अवश्य ही देखें।

विश्वनाथ मिश्र।

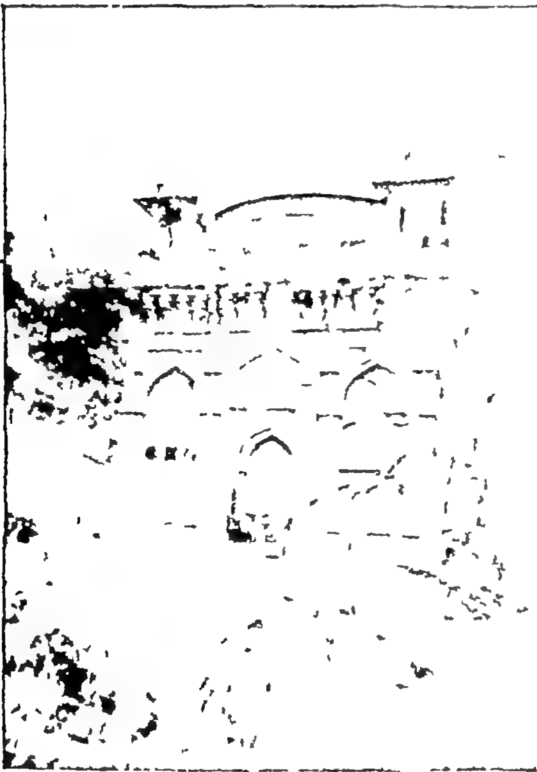
# पावागढ़ किले का दृश्य।



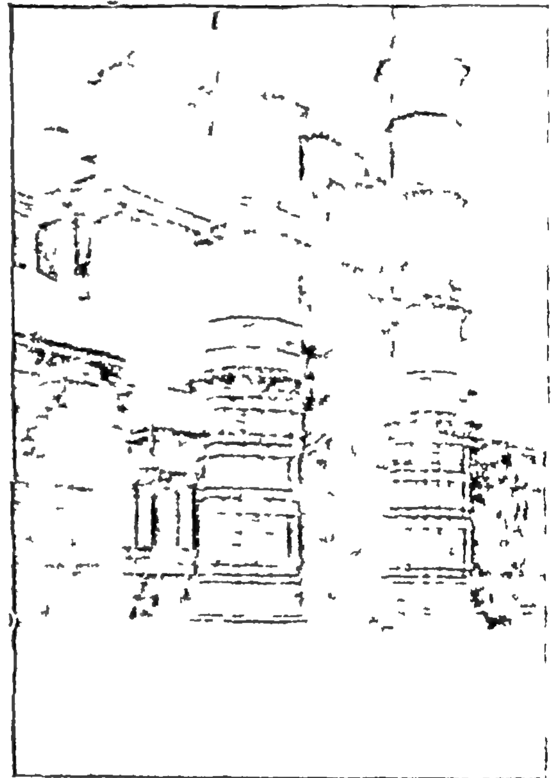
जुम्मा मसजिद के सामने का भाग।



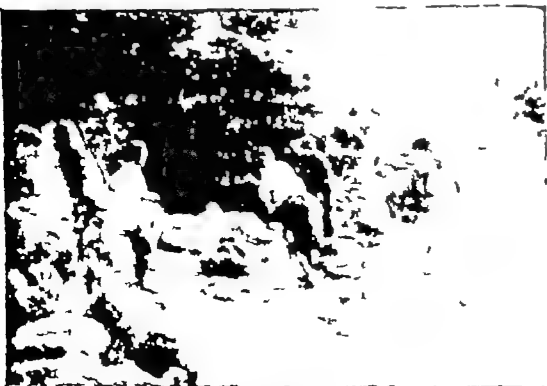
पीछे का भाग।



मत का बड़ा दरवाजा जिस पर खुदाव का काम किया गया है।



भीतर का दरवाजा।



दूधिया तालाब।



दूर से देख पड़नेवाला कालिका देवी और जैन लोगों का मंदिर।

यह किला बड़ोदा से दस-बारह कोस की दूरी पर है। पहले चांपानेर शहर इसी स्थान में था। बड़ोदा के उत्तरी दरवाजे को अब तक चांपानेर दरवाजा कहते हैं। अब चांपानेर शहर बरबाद हो गया है।

# तिलोत्तमा ।





तिलोत्तमा ।

(१)
है यह बाला बड़ी निराली ।
देवों के हिय हरनेवाली ॥
क्रीड़ा कौतुक रचनेवाली ।
जन मन मोहित करनेवाली ॥

(२)
मन हरना चहती मुनियों के ।
ऋषियों के त्यों तपस्वियों के ॥
पर जो कच्चे दिल के होते ।
अपने बल को हैं वे खोते ॥

(३)
शरीर इसका रम्य बना है ।
मानो साचे-बीच ढला है ॥
मुख की निर्मलता अति प्यारी ।
बालों की शोभा है न्यारी ॥

(४)
पड़ा लक में बल कैसा है ।
वसन बदन से क्या खिसका है ॥
बायें कर से उसे रोक कर ।
दृष्टि लगाये है कन्दुक पर ॥

(५)
अपना दहना कर ऊंचा कर ।
चोट लगाने को कन्दुक पर ॥
यह तन की सुध भूल गई है ।
छटा दिखाती नई नई है ॥

(६)
बायें कर में मारी आई ।
इसमें नग्न न होने पाई ॥
यद्यपि छवि कुछ दीख रही है ।
कोई दर्शक यहा नहीं है ॥

(७)
इसके कर से थप्पे खा कर ।
गेंद उछलती है गिरगिर कर ॥
भाती कहिये वह न किसे है ।
कुच समता का मान उसे है ॥

(८)
इधर उधर ज्यों ज्यों पद गिरते ।
त्यों त्यों कुछ नुपूर मे बजते ॥
पर वे नजर नहीं आते हैं ।
सारी में छुप शरमाते है ॥

(९)
कर कंकण का नाद मनोहर ।
बार बार होता है सुन्दर ॥
गले पडी मोती की माला ।
दिल, दिखलाती दृश्य निराला ॥

(१०)
देखो कैसा सुहा रहा है ।
श्रुति कुंडल मन लुभा रहा है ॥
तिल कपोल-छवि बढ़ा रहा है ।
है "तिलोत्तमा" बना रहा है ॥

(११)
मित्रो मोहित मन हो जाना ।
ज्ञान गांठ का मत खो जाना ॥
अपने मनको वश कर रखना ।
इस तिलोत्तमा को फिर लखना ॥

श्रीगिरिधरशर्मा ।

---

साधु, ब्राह्मण और महात्माओं के

## कर्तव्य ।

भारतवर्ष जो विद्या, सभ्यता, धन, धान्य, कलाकौशल और व्यापारादि सर्व प्रकार से उच्च, श्रेष्ठ और महोदय था, अत्यन्त शोक की बात है कि, वह आजकल अविद्या, निर्धनता और बहुत कुरीतियों के कारण पापों और मतमत में डूबा हुआ है। इस भारतवर्ष देश की विद्या का यश सुन कर यरुप का नैयायिक पियागोरस यहां विद्या ग्रहण करने के लिये पांच हजार कोस से आया था। हमारे महर्षियों और शास्त्रकारों ने विद्या के विषय में आज्ञा दी है कि 'विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्। पात्रत्वाज्ज्ञानमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।' विद्याहीन मनुष्य को शास्त्रों में पशु की उपमा दी है और इसी कारण विद्वान् साधु ब्राह्मण की ही सेवा करना लिखा है। यहां के शूरवीर अर्जुन, भीमसेनादि महात्माओं ने पाताल (अमेरिका) को विजय किया। यहां के वैश्य इस देश के उत्तम उत्तम पदार्थों को अन्य अन्य देशों में बेच कर धनी बनते थे।

हमारे महर्षि महात्माओं ने चार आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्यास नियत किये हैं।

ब्रह्मचारी २५ वर्ष पर्यंत, विद्या का उपार्जन करने के पश्चात्, विवाह करते थे और गृहस्थ लोगों को आज्ञा थी कि विद्वान्, साधु ब्राह्मण और अतिथि का हर, प्रकार से, मान-सत्कार करें। वाणप्रस्थ लोग जितेन्द्रिय और विद्वान् बन कर देश की सेवा और देशोन्नति का उपदेश करते थे। सन्यासियों, साधुओं और ब्राह्मणों का कर्तव्य था कि स्वयम् विद्वान् होकर देश और ग्राम ग्राम में फिर कर विद्या का प्रचार और देशोन्नति का सत्य और शुभ उपदेश करें। इस प्रकार क्षत्री लोग विद्वान होकर राजनीति और देश की रक्षा में कटिबद्ध थे। वैश्य भी केवल इसी देश में व्यापार नहीं करते थे, किन्तु अन्य अन्य धनाढ्य देशों में जाकर व्यापार की उन्नति से, धन कमा कर अपने देश और स्वदेश को सुख और लाभ पहुँचाते थे। अब अन्य सब देश और जातियां उन्नति कर रही हैं, केवल भारतवासी ही अविद्या में ग्रस्त हुए अभी तक घोर निद्रा में सो रहे हैं।

गृहस्थ लोग कहते हैं कि जब से साधु, ब्राह्मण, महात्माओं, सन्यासियों, ने, विद्या, गृह और देशोन्नति का, उपदेश देना त्यागा ... देश अधोगति को प्राप्त होने लगा। ... साधु, ब्राह्मण, महात्माओं को आज्ञा है कि ... पकाराय सता विभूतय ।' अब साधु, ... सियों, महात्माओं और ब्राह्मणों की ... में प्रार्थना है कि वे अपने शुभ कर्तव्य ... में पुन कटिबद्ध हो जावें और देश ... में भ्रमण करके स्वदेश वस्तु के प्रचार ... मदिरा, चरस आदि पापों के विरुद्ध ... और उपदेश देकर देश को पुन उच्च महोदय बनावें, ताकि भारतवर्षीय प्रत्येक के निवासियों सा भी, सभ्य मनुष्यों सा, हो, न कि आज कल की भांति कर्ता लोग, बहशी, पश्वादिकों की उपाधियां ... ईश्वर कृपा करे, कि आप अपने शुभ ... और विद्या के प्रचार में शीघ्र ही ... जावें।

इसी उद्देश्य के लिये 'डेरा इस्माइलखां' एक साधु विद्यालय खुलनेवाला है, साधुओं को धार्मिक और वैद्य बनने की ... दी जावेगी।

टहलराम गङ्गाराम जमींदार,
डेरा इस्माइलखां (पंजाब)।

---

# पूने की वसंतव्याख्यानमाला।

गत वर्ष जून की संख्या में इस विषय पर लिखा गया था कि "गर्मी की छुट्टियों में जहां अन्य स्थानों के लोग शारीरिक सुख चैन में अपना समय व्यतीत करते हैं वहां पूना के सज्जन विद्याव्यासंग में अपना यह अमूल्य समय बिताते हैं। यही कारण है कि सम्पूर्ण आधुनिक सुधारों में यह नगर, अन्य शहरों से, बहुत बढ़ा-चढ़ा हुआ



मि० परांजपे।

है। यहां प्रति वर्ष छुट्टी के दिनों में कुछ दिन किसी न किसी विद्वान् का व्याख्यान होता है। इन्हीं सब व्याख्यानों को "वसन्तव्याख्यान-माला" कहते हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक नगर में यदि इस प्रकार की व्याख्यान माला स्थापित हो जाय तो देश का बड़ा कल्याण हो। अनेक नवीन नवीन वक्ता तयार हों और उनके द्वारा चारों ओर ज्ञान का प्रसार भी खूब हो।" परन्तु खेद की बात है कि अब तक हमें कोई समाचार नहीं मिला है कि जिससे हम यह जान सकें कि किसी शहर में इस प्रकार की 'वसन्तव्याख्यान माला' स्थापित हुई है। क्या हिन्दी भाषा के प्रेमियों का ध्यान इस विषय की ओर कभी आकर्षित न होगा ?

इस वर्ष पूने की वसन्तव्याख्यान माला ता० ७ मई को आरम्भ हुई और ता० ७ जून को समाप्त हुई। इस माला में कुल ३० व्याख्यान हुए। इनमें ७ धार्मिक ४ ऐतिहासिक ४ तात्त्विक चर्चात्मक, ३ राजनीति और अर्थशास्त्र सम्बन्धी, २ वैद्यक, २ ज्योतिष २ फल ज्योतिष १ शिक्षा, १ सामाजिक १ छन्दशास्त्र सम्बन्धी और १ कृषिशास्त्रान्तर्गत शालिहोत्र सम्बन्धी विषय पर व्याख्यान हुए। इन सब व्याख्यानों का सारांश देना कठिन काम है। हमारे 'जगत्' का स्थान मर्यादित होने के कारण केवल दो-चार व्याख्यानों का संक्षेप में उल्लेख किया जा सकता है और कुछ व्याख्यानों के चित्र ( स्केच ) प्रकाशित किये जा सकते हैं। यथार्थ में इस अपूर्व 'माला' के सभी 'पुष्प' अत्यन्त मनोहर हैं। जी चाहता है कि 'जगत्' में सब का संग्रह हो जाता पर क्या किया जाय। कोई उपाय नहीं देख पड़ता। अस्तु।

## ज्योतिष-शास्त्र।

श्रीयुत केतकर ने 'ग्रहों की गति' पर व्याख्यान दिया। ग्रहों की



रा. पी. डी. चित्रे।

वास्तविक गति कैसी है, पृथ्वी पर से वह गति कैसी देख पड़ती है, यदि सूर्य पर से देखा जा सकता, तो वह गति कैसी देख पड़ती, मार्गी, स्तम्भी वक्री इत्यादि पारिभाषिक शब्दों का अर्थ क्या है इसमें ग्रहों के वक्री अथवा स्तम्भी होने का कारण क्या है; इत्यादि अनेक बातों की आपने चर्चा की। ये सब बातें बड़ी सरलता से समझा दीं और काले तख्ते पर आकृतियों के द्वारा कई दृष्टान्त भी दिये।



रा. अच्युतराव कोल्हटकर।

## ज्योतिःशास्त्र में वर्णलेखमाला का उपयोग।

इस विषय पर प्रोफेसर नाईक का व्याख्यान हुआ। पृथ्वी के ऊपर चारों ओर, जो वायुमंडल है उसको वातावरण कहते हैं। इस वायु से भी और सूक्ष्म 'ईथर' नाम की हवा है। उसी ईथर में से प्रकाश की लहरें आती हैं। यदि इस प्रकाश के पदार्थ किरण का पृथक्करण किया जाय तो, भिन्न भिन्न रंगों के वक्रीभवन की न्यूनाधिक शक्ति के कारण, उस किरण में भिन्न भिन्न रंगों की लकीरें देख पड़ेंगी। किसी पदार्थ की घनावस्था में जैसा वर्णलेख देख पड़ता है वैसा उसकी वायुरूप अवस्था में नहीं देख पड़ता—इन दोनों अवस्थाओं के वर्णलेख में बहुत भिन्नता होती है। इसी तरह, किसी एक पदार्थ से उत्पन्न होनेवाले वर्णलेख में, समान पदार्थ से आनेवाले किरणों को, ग्रहण करने की शक्ति होती है। एक और महत्व की बात है कि, ग्रहों की गति की दिशा और वेग के कारण भी वर्णलेख में

फर्क हो जाता है। उक्त सब सिद्धान्तों को एकत्र करके वैज्ञानिकों ने अनेक तारागणों के अंतर, वजन, गति और घटकावयव इत्यादि का पता लगाया है।

### जंतुशास्त्र।

डाक्टर गोखले ने जंतुविद्या में कई नये आविष्कार किये हैं और अनेक नये नये रोगों को रोकने के उपाय भी ढूंढ निकाले हैं। आपने इसी विषय पर व्याख्यान दिया। रोग के जंतु ही बीमारी के मुख्य कारण हैं। शरीर में, इन जंतुओं के नाश करने की शक्ति स्वभावतः होती है, परंतु यह शक्ति किसी कारण से क्षीण हो जाती है और रोग-जंतु बलवान् हो जाते हैं, अतएव किसी रोग का प्रादुर्भाव होने के पहले ही प्रतिबंधक ओषधियों का उपयोग किया जाना चाहिये।

### वेगोदीरण धारण के दुष्परिणाम।

इस विषय पर भिषग्वर्य बालशास्त्री का व्याख्यान हुआ। आपने कहा कि, स्वाभाविक प्रवृत्ति के विरुद्ध बर्ताव करने, मल-मूत्रादि स्वाभाविक वेगों का प्रतिबन्ध करने अथवा जबरदस्ती उन वेगों का उत्सर्जन करने ही से सब रोग उत्पन्न होते हैं। जंतु रोग के मुख्य कारण नहीं माने जा सकते। उन्हें रोग का परिणाम कहना चाहिये। जब शरीर में मलमूत्रादि वेगों का प्रतिबन्ध होता है तभी इन जंतुओं की वृद्धि होती है, अतएव शरीर की स्वस्थता के लिये यह उचित है कि शारीरिक वेगों का न तो जबरदस्ती उदीरण करना चाहिये और न जबरदस्ती धारण ही करना चाहिये।

### अथर्ववेद में वैद्यक।

श्रीयुत त्र्यंबक गुरुनाथ काले ने अथर्ववेद के सूक्तों पर से यह सिद्ध किया है कि प्राचीन समय में हमारे ऋषियों को, जन्तुविद्या के समान, आधुनिक वैद्यक की अनेक बातें मालूम थीं। पानी में अग्नि और विद्युत्शक्ति है इसलिये वह रोगनाशक होता है। सूर्य के किरणों से रोगकारक जन्तुओं का नाश होता है। ज्वर, शस्त्राघात, राजयक्ष्मा, जलोदर, गंडमाला इत्यादि रोगों पर क्या उपाय करना चाहिये—इत्यादि अनेक बातों का उल्लेख अथर्ववेद में पाया जाता है। मिट्टी में रोगनाशक शक्ति है यह बात भी उस समय के ऋषियों को मालूम थी। सुलभ प्रसूति के विषय में भी अनेक मंत्र हैं। वर्तमान समय के विशुन्मानसशास्त्रवेत्ताओं ने स्वीकार किया है कि मंत्रों में अद्भुत सामर्थ्य होता है।

### प्राचीन समय की संस्कृति ( सभ्यता ) का विस्तार।

रावसाहब पावगी ने ऋग्वेद के आधार पर इस बात का विवेचन किया कि प्राचीन आर्यों ने भिन्न भिन्न शास्त्रों में कितनी और कैसी उन्नति की थी। भाषाशास्त्र, धर्मशास्त्र, गणितशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, रसायन और भूगर्भ इत्यादि अनेक विद्याओं में उन लोगों ने उन्नति की थी। इन सब बातों से उस समय के आर्यों की सभ्यता का विस्तार भली भांति प्रगट होता है।

### जावा-टापू में हिन्दुओं की बस्ती।

इस विषय पर डाक्टर सरदेसाई का व्याख्यान हुआ। जावा हिंदुस्थान के आग्नेय दिशा में है। बहुत प्राचीन समय से हिंदू लोगों ने वहां अपनी बस्ती की थी। उसको 'पूर्वी उपवन' और 'शाश्वत वसंतऋतु का स्थान' कहते हैं। जिस समय अर्जुन के बाद पांचवां राजा करता था उस समय उसके प्रधान मंत्री ने इस टापू पर चढ़ाई की थी। वहां हिंदुओं का राज्य १४०० वर्ष तक रहा। इसके बाद अरबों ने वहां प्रवेश किया।

जावा में बुद्ध का एक बहुत बड़ा मंदिर है। इसके नीचे का भाग ५३१ फुट लंबा चौड़ा है। बाली नामक एक टापू जावा के पूर्व में है। वहां के निवासी अब तक हिंदू बने हैं। यहां चारों वर्ण के लोग पाये जाते हैं। ये लोग सूर्य की उपासना करते हैं। ये लोग गर्गाचार्य के मत के अनुसार काल-गणना करते हैं। यहां 'कवि' नाम की भाषा प्रचलित है जिसमें केवल बीस मूलाक्षर हैं। वेद और बौद्ध-ग्रंथ संस्कृत भाषा में और देवनागरी लिपि में लिखे हैं। महाभारत के केवल आठ ही पर्व हैं। रामायण का उत्तरकांड किसी दूसरे वाल्मीकि का लिखा मानते हैं। अठारह पुराणों में से केवल ब्रह्मांडपुराण ही इन लोगों को मान्य है। भगवद्गीता के सिर्फ १०० श्लोक हैं। मनुस्मृति ही उनका धर्मग्रंथ है। 'बाली' और 'लंबोक' जाति के लोग मिला कर जावा के हिंदुओं की संख्या पांच लाख के ऊपर है। क्या यह हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम लोग भी अपने हिंदुत्व का परिचय देकर उनके साथ भाईपन का व्यवहार करें?

---

# काव्य-एजन्सी।



( १ )

ख्यालीराम बड़ा उद्योगी और परिश्रमी मनुष्य था। यदि कठिन से भी कठिन काम को वह एक बार हाथ में लेता तो उसे पूरा ही कर छोड़ता। उसने दुनिया की सैर की थी। वह दुनिया के रंग-ढंग भली-भांति जानता था। उसका विश्वास था कि दुनिया झुकती है—पर झुकानेवाला चाहिए। वह कल्पावती नामक एक सुधार-प्रिय शहर में गया और थोड़े ही दिनों में वहां उसने अपने रोजगार का अड्डा अच्छी तरह जमा लिया। इस शहर के निवासी सामाजिक सुधार ही में नहीं, किन्तु सब प्रकार के सुधारों में, बहुत बढ़े-चढ़े थे। स्त्रीशिक्षा का प्रभाव—नहीं नहीं, प्रचार—भी, अन्य उन्नत स्थानों की अपेक्षा, अधिक हो गया था। यह नहीं कह सकते कि इस कल्पावती शहर ही में सुधार का इतना अधिक प्रचार क्यों हो गया था! कोई कहेंगे कि इस शहर के लोग सुशिक्षित और उद्योगी हैं तो प्रश्न उठेगा कि अन्य स्थानों के लोग क्या अज्ञानी और निरुद्योगी हैं? क्या उन्हें सुधार की चिंता नहीं है? हम समझते हैं कि यह कल्पावती की आबहवा का परिणाम है जो यहां सुधार का काम बड़े धड़ाके से हो रहा है। इस बात की सत्यता के लिए प्रमाणों की भी कुछ कमी नहीं है। हमने अच्छे अच्छे डाक्टरों से सुना है कि बंबई, कलकत्ता, पूना, लाहौर और दिल्ली आदि स्थानों की हवा पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक लाभदायक होती है। तब यह क्यों न मान लिया जाय कि कल्पावती की हवा समाज-सुधार के अनुकूल ही होगी? क्या यह बात आप लोगों को मालूम नहीं है कि 'हर हर' और अक्सीर दवाओं के लिए मुरादाबाद की हवा, 'प्यारी और तिलिस्मी किस्सों तथा उपन्यास भाण्डार' के लिए हिंदुओं के प्राचीन परम पवित्र तीर्थ काशी की हवा, जासूसी के लिए गहमर की हवा और 'कवि समाज' के लिए कानपुर की हवा बहुत उपयोगी है? इसी तरह इसी कृपा से, किसी विशेष आबहवा के बदौलत, कल्पावती शहर भी समाज-सुधार में उन्नति के शिखर पर जा पहुंचा! इस शहर में गान वादनादि संगीत विद्या की इतनी उन्नति हुई कि इस कला सम्बन्धी ग्रंथप्रकाशकों और ग्रंथ विक्रेताओं की सैकड़ों दुकानें खुल गईं! या कला का इतना प्रचार हो गया कि घर घर हारमोनियम की आवाज सुन पड़ती थी! ऐसी अवस्था में इस बात की बहुत आवश्यकता थी कि हारमोनियम के साथ गाने योग्य सुन्दर और नये नये पद्यों की भी रचना की जाय। जब किसी बात में लोगों का शौक बढ़ता जाता है तब रोजगारियों की खूब बन आती है। ज्योंही ख्यालीराम कल्पावती में पहुंचे त्योंही उन्हें मालूम हो गया कि यहां 'काव्य-एजन्सी' का काम अच्छा चलेगा। झटपट उन्होंने एक 'काव्य-एजन्सी' वहां स्थापित कर दी और धड़ाधड़ रुपया कमाने लगे।

'काव्य-एजन्सी' के मालिक मिस्टर ख्यालीराम ने हारमोनियम पर गाने बजाने योग्य अनेक पद्य ग्रंथ प्रकाशित किये और बहुत कमाया। परन्तु इस धन का बहुत ही थोड़ा हिस्सा उन कवियों को दिया जाता था जो कि बड़ी मिहनत से पद्य-रचना किया करते थे। यद्यपि इस थोड़ी सी आमदनी के लिए भी बेचारे 'कविरत्नों' 'कविभूषणों' को प्रकाशक महाशय की बहुत खुशामद करनी पड़ती थी, तथापि लोक समाज में और सभास्थानों में जो मान आदर और जो प्रतिष्ठा कवियों को होती थी उसका शतांश भी श्रीमान् प्रकाशक के भाग्य में न था। यह बात ख्यालीराम के मन में बहुत खटकती थी। यद्यपि वे इस महामंत्र का ध्यान किया करते थे कि "द्रव्य ही सर्वशक्तिमान है"—और प्रकाशक के व्यवसाय में आपने द्रव्य कमाया भी बहुत सा—तथापि उनका चित्त शांत न था। समाज में जो आदर और सन्मान कवियों को मिलता था उसको देख कर आपका जी ललचाने लगा। आप रात दिन

मान और प्रतिष्ठा की चिंता करने लगे। प्रकाशक का काम करते करते उन्हें इस बात का कुछ कुछ ज्ञान हो गया था कि हारमोनियम पर गाने-बजाने योग्य कौन से पद्य अच्छे होते हैं—उन्हें यह बात मालूम हो गई थी कि ऐसे पद्यों में श्रुतिमधुरता ही का विशेष गुण होता है। अब आपने अपने मन में सोचा कि "इस प्रकार के पद्यों की रचना करना मेरे लिए कोई कठिन बात नहीं है। मैं हारमोनियम अच्छी तरह बजा सकता हूँ। मुझे ताल-सुर का पूरा ज्ञान है। मैंने स्वयं हजारों काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। मुझे यह भली भाँति मालूम है कि श्रोताओं को किस प्रकार के पद्य पसन्द आते हैं। यदि मैं थोड़ी सी मिहनत करूँ और हारमोनियम के सुर में ऐसे ही योग्य कर्णमधुर पद्य रचना कर डालूँ तो मेरा काम बन जायगा। बस फिर मैं भी जनसमाज में एक नामांकित कवि हो जाऊँगा। मुझे दुगुना मान—प्रकाशक और कवि के नाते से—मिलने लगेगा।"

परन्तु मन में विचार करना तो एक बात है और उसके अनुसार काम करना दूसरी बात है। पहली बात सहज है, दूसरी बात बहुत कठिन है। इसके सिवाय, ग्यालीराम के स्वभाव में 'काव्य एजन्सी' का काम करते करते एक बड़ा भारी दोष भी आ गया था। जो काव्य प्रकाशित होने के लिए उनके पास आया करते थे, उनका यथोचित पारितोषिक न देने और उनका मूल्य घटा देने की इच्छा के कारण, वे सदा काकदृष्टि से उत्तमोत्तम काव्यों में भी कुछ न कुछ दोष ही ढूँढ़ निकालते थे। काव्य के विषय में उनकी आलोचनाशक्ति ऐसी तीव्र हो गई थी कि उन्हें किसी भी कवि की पद्यरचना सर्वांग सुन्दर प्रतीत नहीं होती थी। बेचारे अच्छे अच्छे नामी कवि उनकी कड़ी आलोचना से घबरा जाते थे। आपकी इस तीव्र आलोचना शक्ति का यह फल हुआ कि जब आप स्वयं पद्य-रचना करने लगे तब अपनी कृति आप ही को नापसन्द होने लगी। इसमें सन्देह नहीं कि मिस्टर ग्यालीराम ने अनेक बड़े बड़े कवियों की पद्यरचना मार्मिक रीति से देखी थी, उसकी कड़ी आलोचना की थी, उसमें छोटे-मोटे कई दोष निकाले थे और पद्य-रचना के आदर्श के बारे में 'कवि प्रभाकर' को भी फटकार दी थी परन्तु यह सब काम आपने केवल दोष-दृष्टि से किया था—आपका उद्देश यही था कि प्रत्येक कवि की पद्य रचना का दोषी ठहरा कर उसकी कीमत घटा देना चाहिए, ताकि पूरे दाम न देना पड़ें। आपके मस्तिष्क में केवल ईश्वरीय कृपा से प्राप्त होनेवाली 'काव्य-प्रभा' का एक भी किरण प्रकाशित नहीं हुआ था, तिस पर भी आपने स्वयं पद्य-रचना का साहस कर ही दिखाया। आप प्रकाशक तो थे ही, बस अब अपने ही नाम पर आपने अनेक काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित कर डाले। यह बात तो परमेश्वर ही जाने कि मिस्टर ग्यालीराम के नाम पर रचित काव्यों और पद्यों की रचना पर स्वाभाविक हक किसका था। यह कुछ भी हो, सच बात तो यह है कि अब हमारे प्रकाशक महाशय एक 'स्वतन्त्र' कवि भी बन गये। अब आप कहने लगे कि अन्य कवियों के सैकड़ों पद्य प्रकाशित करने से, स्वयं अपना एक ही पद्य प्रकाशित करने में अधिक आनंद और अधिक सन्मान होता है। जो आदर लौकिक 'कवि' या 'लेखक' होने में है वह प्रकाशक होने में नहीं है।

---

( २ )

ऐसे ऐसे उत्साह-प्रेरित विचार-तरंगों में निमग्न होकर मिस्टर ग्यालीराम एक दिन अपने आफिस के प्राइवेट कमरे में आरामकुर्सी पर लेटे थे। इतने में एक नौकर चिट्ठी लेकर भीतर आया और कहने लगा "दरवाजे पर आपके लिए एक गाड़ी खड़ी है।" प्रकाशक महाशय ने चिट्ठी हाथ में ली और खोल कर पढ़ी। कलापवती की सुप्रसिद्ध गानेवाली परम कुलीन विनयवती देवी स्वाभाग्यवती सुकण्ठादेवी ने विनयपूर्वक प्रार्थना की थी कि कुछ समय के लिए मेरे गायन मंदिर में आइये, बहुत जरूरी काम है। ग्यालीराम ने झटपट कपड़े पहने और बाहर जाकर गाड़ी में जा बैठे। उन्होंने अपने साथ गायन वादन कला-प्रेमियों की कुछ नूतन प्रकाशित पुस्तकें भी ले लीं। थोड़ी ही समय में गाड़ी एक सुन्दर महल के सामने जाकर खड़ी हो गई।

श्रीमती सुकण्ठादेवी अपने हाल में—गायन-मंदिर में—प्रकाशक महाशय की राह देख रही थीं। नाम ही से प्रकट है कि आप का कण्ठ कोयल के समान मीठा था। हारमोनियम बजाने में तो उनकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकता था। जब वे स्वयं अपने कोमल हाथ से हारमोनियम बजाती तब सुननेवाले आनंद से निमग्न होकर मोहित से हो जाते थे। वे लिखी पढ़ी थीं। स्वभाव और शील भी उनका बहुत अच्छा था। उनका गाना सुनने के लिए कलापवती के सब नामी सज्जन और सुन्दर आया करते थे। हाल ही में उनकी स्वपता आपका नवीन साधिक उत्साह ... आरंभ माना जाता था। ऐसा कोई भी विद्वान् रसिक और शिक्षित पुरुष वहाँ न था जो सुकण्ठादेवी के गायन-मंदिर में नवीन गायन के लिए न जाता हो। इस सुधरी हुई कलापवती नगरी में स्त्री-पुरुषों के बीच मर्यादा का पर्दा बिलकुल झिरझिरा हो गया था। स्त्री-पुरुष सब मिल कर एकत्र बैठते, बात-चीत किया करते।

गाड़ी से उतर कर मिस्टर ग्यालीराम ने गायन मंदिर में प्रवेश किया। सुकण्ठादेवी ने मधुर हास्य से आपका स्वागत किया, बैठने को चौकी दी और कहा "आपके प्रकाशित अनेक उत्तमोत्तम काव्यों और पद्यों से मैं परिचित हूँ। कवि 'सुदामा' का 'हरिश्चन्द्र' काव्य तो बहुत ही मीठा, मनोहर और करुणारस से भरा है। उसकी पद्य रचना भी ऐसी अच्छी है कि हारमोनियम के सुर में बिलकुल मिल जाती है।" यह प्रशंसा सुन कर ग्यालीराम बहुत खुश हुए। तुरन्त अपने बेग में से कुछ पुस्तकें निकालीं और सुकण्ठादेवी को अर्पण करके कहा "लीजिए, ये नूतन प्रकाशित पुस्तकें हैं। देखिये, इनमें से आपको कौन सी पसन्द है।" देवी ने उत्तर दिया कि "मुझे इन प्रकाशित पुस्तकों की जरूरत नहीं है। मुझे एक छोटा सा, नया काव्य 'राधा-कृष्ण-विलास' पर दरकार है। वह हारमोनियम पर गाने बजाने योग्य हो। आगामी कृष्णाष्टमी के दिन हमारे गायन-मंदिर में जलसा होगा। उस समय इस नूतन काव्य की आवश्यकता होगी। आपके यहाँ प्रायः सब कवि लोग आया करते हैं। यदि मेरी रुचि का कोई काव्य आपको मिल जाय तो मुझे दीजिए। मैं पुराने कवियों के पद्य नहीं चाहती। किसी वर्तमान कवि की नूतन, प्रभावशाली, प्रेमयुक्त और प्रसादपूर्ण कविता मिल जाय तो काम बन जायगा। कहिये, कितने दिनों में ला देंगे? इस काव्य के बदले आपको पूरे दाम दिये जायँगे और कवि को भी कुछ पुरस्कार दिया जायगा।"

ग्यालीराम को स्वयं कवि कहलाने का बड़ा शौक था। आपने कहा "अब तो मैं भी कुछ पद्यरचना करने लगा हूँ। दो-चार दिन में आपकी इच्छा के अनुसार एक सुन्दर काव्य अवश्य ला दूँगा। मुझे विश्वास है कि आपके समान रसिक व्यक्ति का पसन्द किया हुआ मेरा काव्य मेरे यश की वृद्धि करेगा—अब मुझे हृदय में शान्ति की अधिक अपेक्षा है। आपकी कृपा से मेरे मन में बहुत उत्साह हुआ है।" सुकण्ठादेवी ने कहा "बहुत अच्छा। चार दिन में अपनी कविता मुझे जरूर दीजिये।" "अच्छा अब जाता हूँ," ऐसा कह कर प्रकाशक महाशय स्वयं काव्य-रचना करने की कल्पना में मग्न होकर अपने घर लौट आये।

काव्य एजन्सी के आफिस में जाकर अपने प्राइवेट कमरे में कागज पेन्सिल हाथ में लेकर, टेबल पर सिर झुका कर, प्रकाशक महाशय काव्य रचना के लिए सिर खुजलाते बैठे। मन में यह इच्छा थी कि हाथ में कागज और पेन्सिल लेते ही पद्यरचना बहुत जल्द हो जायगी। परन्तु दो घंटे बीत गये—अब तक कागज पर दो सतरें भी नहीं देख पड़तीं। हाँ, दो-चार कटी-फूटी हुई पंक्तियाँ अवश्य देख पड़ती हैं। काव्यों की हस्तलिखित प्रतियाँ, जो उनके संग्रह में थीं, देखीं; उनमें से कुछ शब्द, कुछ वाक्य, कुछ विचार, कुछ नोट्स अपने कागज पर लिख लिये और फिर सोचने लगे कि अब इन सब बातों को जोड़ कर एक मनोहर पद्य तैयार कैसे किया जाय। बहुत सिर मारा, परन्तु एक भी पंक्ति मनोनुकूल कागज पर न लिखी गई। हैरान हो गये, कुछ दुखित हुए और चिंता करने लगे। ऐसी मानसिक अवस्था में बेचारे ग्यालीराम बैठे थे कि इतने में उनके परिचित कवि मुरली वहाँ आ पहुँचे।

---

( ३ )

ज्योंही मुरली कमरे के भीतर आया त्योंही ग्यालीराम ने नाक सिकोड़ कर और भौं चढ़ा कर मस्तक ही के इशारे से कविजी को कुर्सी पर बैठने के लिए कहा और बोलने लगे—"कहिये, कविजी, आज किधर आये? आज किसका कमाल का ख्याल है? तुम्हारा वह काव्य जो पार साल मैंने प्रकाशित किया, बिलकुल नहीं निकला। उसे कोई पढ़ता तक नहीं। एक भी माँग नहीं आती। वह पुस्तक अलमारियों में भरी पड़ी है। हमारा सब रुपया बरबाद हो गया। आप के समान कवियों ने हमको सीधा-सादा जान कर खूब ठगाया है। तुम ने तुक तो मिलाना जानते हो और रविदत्त की नकल करना जानते हो।" प्रकाशक महाशय का यह आक्षेपयुक्त भाषण सुन कर बेचारे कवि मुरली चकित हो गये। कुछ धीरज धरके धीरे से कहा "पुरानी बातें जाने दीजिये। मैंने कभी भी आपका नुकसान करने का यत्न नहीं किया। यह मेरी नई कविता देखिये—यह हारमोनियम पर बहुत अच्छी तरह गाई जा सकती है। मैं इसकी रचना में बहुत मिहनत की है। मैं समझता हूँ कि मैं अब सच्चे कवियों में यश पा सकता हूँ। मैंने बड़ी मेहनत करके इस काव्य में जो गुण हैं—सब नायक के बढ़ाने का दूरदर्शी भी बहुत ध्यान है। देखिये तो सही। मुझे आशा है कि आप इसे जरूर पसन्द करेंगे।

आपके समान रसिक और गुणग्राहक प्रकाशक इस कल्पावती में कोई नहीं है। यदि आप इस काव्य को प्रकाशित करेंगे तो इसकी धड़ाधड़ बिक्री हो जायगी। आपका लाभ होगा और मुझे भी कुछ द्रव्य ... " कविजी की बात काट कर प्रकाशक महाशय आतुरता से बोले " हां, हां, मैं जानता हूं। आपको भी कुछ द्रव्य मिल जायगा न! प्रकाशक का धन मुफ्त ही का माल है! प्रत्येक कवि अपने काव्य की और प्रत्येक लेखक अपने लेख की यों ही प्रशंसा किया करते हैं। सच बात तो यह है कि इस समय एक भी कवि नहीं है जो सर्वांग सुंदर पद्य-रचना कर सकता हो। मुझे संगीत विद्या की स्वाभाविक अभिरुचि है इसलिए प्रेमवश होकर, केवल इस प्रकार के काव्य की उन्नति करने ही के हेतु, मैंने अपनी यह 'एजन्सी' यहां खोली है और काव्यग्रंथ के प्रकाशक का काम कर रहा हूं। मेरी इस परोपकार बुद्धि का तुम्हारे कवि लोग बहुत दुरुपयोग करने लगे हैं। अब मेरे पास इतना धन नहीं है कि तुम्हारी सड़ी गली कविता प्रकाशित करने में मैं अपनी पूंजी लुटा दूं। यदि तुम लोगों को धन कमाना ही है तो कविता रचने का काम छोड़ कर और कोई व्यवसाय करो और ईमानदारी से मिहनत करके अपना पेट भरो।" यह कड़ी फटकार सुनने पर भी कवि सुरंग ने घिघिया कर कहा " महाशय, यदि यह काव्य आपको पसंद न होगा तो आज से कविता बनाने का काम मैं छोड़ दूंगा। जरा इसकी पद्य-रचना तो देखिये और हारमोनियम पर बजा कर इसकी परीक्षा तो कीजिये! मुझे विश्वास है कि आप जरूर इसे पसंद करेंगे।"

सुरंग कवि के घिघिया कर कहने पर अथवा यह समझकर कि प्रकाशक की ऐंठ बहुत हो चुकी—किसी कारण से— ख्यालीराम ने बेपर्वाही के साथ कहा " अच्छा, लाइये, देखें कहां है तुम्हारा काव्य?" पन्ने लौटाते लौटाते फिर आपने कहा "क्यों जी सुरंग, तुम अपनी कविता लेकर बारबार मेरी 'एजन्सी' में दौड़ कर आते हो, क्या इस कल्पावती में और कोई प्रकाशक नहीं है? उन लोगों का व्यवसाय तो मेरी 'एजन्सी' से बहुत तरक्की पर है! वे यहां के पुराने प्रकाशक हैं, और मैं तो यहां हाल ही में आया हूं।" सरल स्वभाव के सुरंग ने उत्तर दिया " हां, यहां प्रकाशक तो अनेक हैं, परन्तु गुण का ग्राहक कोई नहीं है। हमारे जैसे कवियों की कदर आप ही की एजन्सी में हुआ करती है। मैं अपनी कविता कई प्रकाशकों के पास ले गया था; परन्तु किसीने भी प्रकाशित करना स्वीकार नहीं किया। तब आप ही को कष्ट देना मैंने उचित समझा।" प्रकाशक महाशय को जिस बात के जानने की इच्छा थी वह आपही आप प्रकट हो गई। तब तिरस्कार युक्त मुद्रा से आपने कहा " वाह! जिस कविता को कोई स्वीकार नहीं करता—जो सचमुच कूड़ा-करकट की टोकरी में फेंक देने योग्य है—उसको मेरी 'एजन्सी' में प्रकाशित करने लाये हो और तारीफ यह है कि उसके बदले पुरस्कार, द्रव्य, भी मांगते हो! मेरी परोपकारी वृत्ति और सुजनता का बहुत अच्छा उपयोग करना जानते हो!"

ऐसा कहते कहते प्रकाशक महाशय उस हस्तलिखित कविता के पन्ने इधर-उधर लौटा रहे थे। इतने में, पहले ही पन्ने में, आपने यह शीर्षक पढ़ा " राधा-कृष्ण-विलास "—बस, मन ही मन आनंदित हुए परन्तु यह भाव आपने बाहर प्रगट न होने दिया। कुछ समय के बाद आपने कहा " कविजी, आप जानते हैं कि कुछ दिनों से मैं स्वयं अपनी रची कविता प्रकाशित किया करता हूं। इस समय भी मैं एक मनोहर काव्य लिख रहा हूं। आज तो तुम्हारी कविता पढ़ने के लिए मुझे अवकाश नहीं। कल-परसों आ जाना, तब जो कुछ कहना होगा देखा जायगा।" इस पर सुरंग कवि ने अत्यन्त नम्र होकर कहा " देखिये, इस काव्य में मेरा सारा जीव और प्राण धरा है! इसकी कदर करना, इसको प्रकाशित करके पब्लिक के सामने लाना आप ही के हाथ है!" श्रीमान व्यवसायी मनुष्य की सी लापरवाही दिखा कर ख्यालीराम ने कहा " हां, सच है; परन्तु इस समय कोई निश्चय नहीं हो सकता। कल देखा जायगा!"

बेचारे कविजी अपने घर लौट गये। कल तो बहुत दूर है! कल तक न जाने क्या होगा! आज द्रव्य की घर में बहुत आवश्यकता थी। यदि आज ही कहीं से कुछ मिल जाता तो बड़ा काम बन जाता। मन में चैन नहीं। ऐसी विकल अवस्था में खिड़की के पास बैठ कर उन्होंने अपना समय काटा। ख्यालीराम की 'काव्य-एजन्सी' में जाने का निश्चित समय आ पहुंचा। झटपट कपड़े पहन कर उत्सुकता से बाहर निकले। इतने में आपकी स्त्री ने विनयपूर्वक पूछा कि लौटना कब तक होगा। सुरंग ने कहा 'यदि प्रकाशक ने मेरा काव्य पसंद किया और पारितोषिक दे दिया तो इसी समय लौट आऊंगा।' कविजी की स्त्री बड़ी चतुर थी। पति के 'यदि' और 'तो' शब्दों का अर्थ उसके ध्यान में आ गया। उसने अत्यन्त प्रेमपूर्ण आवाज से प्रश्न किया " और यदि उस स्वार्थी प्रकाशक ने आपकी कविता की कुछ कदर न की, तो?" सुरंग ने शून्यवृत्ति से अपनी स्त्री की ओर देखा और फिर निराशा से कहा " तो—तो—तो, मेरा कोई निश्चय नहीं" और तुरंत ही घर के बाहर निकल पड़ा!

स्त्री ने जाना कि यह कोई अच्छी दशा नहीं है। आज कविजी की मानसिक स्थिति बहुत चंचल देख पड़ती है। न जाने क्या अनर्थ होगा! दस-ग्यारह वर्ष का उसका एक लड़का था। वह बड़ा बुद्धिमान और होशियार था। वह घर के पास ही मैदान में खेल रहा था। स्त्री ने पुकार कर कहा 'विक्रम, इधर आ, कपड़े पहन और अपने पिता के पीछे पीछे चला जा। वे जहां जायं, तू उन्हींके साथ साथ चला जा। छिन भर भी उनका साथ न छोड़ना। आज उनकी तबियत कुछ बिगड़ सी गई है!" माता के कहने का सब मतलब विक्रम ने समझ लिया। कपड़े पहन कर, अपने पिता के पीछे पीछे दौड़ता चला गया।

---

(४)

कवि सुरंग अपने घर से निकल कर, जल्दी जल्दी चलते हुए, 'काव्य एजन्सी' के दफ्तर में जा पहुंचे। बालक विक्रम भी उनके पीछे पीछे दौड़ता चला जाता था। ज्योंही कविजी प्रकाशक के कमरे में गये, और 'आइये, बैठिये' इत्यादि शिष्टाचार की बातें हो चुकीं त्योंही प्रकाशक महाशय का चेहरा देख कर आप निराश हो गये। मिस्टर ख्यालीराम ने दुःखित स्वर से कहा " आपकी कविता मैंने देखी, पूरी पढ़ ली कुछ पद्य हारमोनियम पर बजा कर और गाकर भी देखे परन्तु हमारे व्यवसाय की दृष्टि से उसको प्रकाशित करने में हमें कोई लाभ नहीं देख पड़ता। मैं इस बात के लिए बहुत दुःखित हूं। पर क्या किया जाय? कोई उपाय नहीं। लाचार होकर तुम्हारी कविता मुझे लौटा देना पड़ती है!" ऐसा कह कर उन्होंने कविजी के सामने उनके हस्तलिखित कविता की पोटला डाल दी।

कविजी निराशा के महासागर में डूब गये! सुरंग मुख मलीन होकर बदरंग हो गया! जिस कविता के बारे में उन्हें इतना विश्वास था वही नापसंद हुई—उसीकी बेकदरी हुई! हाय! पराकाष्ठा का दुःख हुआ। अब यह बात उनके ध्यान में भली भांति आ गई कि, व्यापारविषयक ज्ञान तथा पूंजी के अभाव से, अच्छे अच्छे लेखकों को भी कैसे परावलंबी हो जाना पड़ता है और स्वार्थी प्रकाशकों की अधीनता में कैसे रहना पड़ता है! क्रोधवश होकर उन्होंने उस कविता के टुकड़े टुकड़े कर डाले और वहीं डाल दिये। ज्योंही बाहर जाने लगे त्योंही दरवाजे पर उन्हें अपना प्यारा पुत्र विक्रम देख पड़ा! पिता की शोक-मुद्रा देख कर लड़का " बाबा बाबा" कहता समीप आया परन्तु कविजी ने उसे एक ओर हटा दिया और आप कमरे के बाहर निकल पड़े। लड़के को यह दशा देख कर व्यवसाय-चतुर प्रकाशक ने उसे अपने पास बुलाया और कहा " बच्चा, यह लो, तुम्हारे पिता की कविता के कागज यहां पड़े हैं, इन्हें घर ले जाओ और अपने पिता को दे देओ।" ऐसा कहकर प्रकाशक महाशय ने कागज के सब टुकड़े उठा कर विक्रम के कोट की जेब में भर दिये और एक पैसा उसके हाथ में देकर कहा " यह लो, तुम्हारी मिठाई के लिए—इनाम!" लड़का भी तुरंत कमरे के बाहर निकला—पर कुछ देर हो गई—कविजी न जाने किधर चल गये!

यह बात पाठक भूले न होंगे कि सुकण्ठादेवी के जलसे के लिए मिस्टर ख्यालीराम स्वयं " राधा-कृष्ण विलास " काव्य बनाने का यत्न कर रहे थे। दैवयोग से इसी विषय की, सुरंग कवि की, मनमोहक कविता उनके हाथ लग गई! इसी कविता की पूरी नकल उन्होंने अपने कागज पर कर ली थी। और, अब, इधर-उधर कुछ काटकूट और अदल-बदल करके उसी कविता को वे अपने नाम पर प्रकाशित करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि इस कविता के प्रकाशित होते ही मेरा नाम 'कवियों' में प्रसिद्ध हो जायगा। अब उनके भाग्य के उदय होने में विलंब सिर्फ इसी बात का था कि, उस कविता पर सुकण्ठादेवी की सम्मति प्राप्त करनी थी!

निश्चित समय पर वे अपनी नूतन कविता लेकर सुकण्ठादेवी के गायन-मंदिर में गये। देवी ने, उनके नियत समय पर काम करने की प्रशंसा की। प्रकाशक महाशय की कविता लेकर वे खिड़की में जा बैठीं। प्रकाशक महाशय की ओर उनकी पीठ थी इसलिए वे यह न जान सके कि पढ़ते पढ़ते सुकण्ठा के मुख की चर्या किस प्रकार बदलती जा रही थी। कुछ देर में सुकण्ठादेवी ने कहा " महाशय, यह कविता बहुत ही मनोहर बनी है कृपापूर्वक इसके कुछ पद्य हारमोनियम के सुर में बजा कर दिखाइये। इसमें संदेह नहीं कि रचना-चातुर्य अवर्णनीय है!"

मिस्टर ख्यालीराम हारमोनियम के पास जा बैठे। उस काव्य के कुछ मनोहर गीत हारमोनियम पर बड़ी कुशलता से बजा कर दिखाये। सुकण्ठा अति प्रसन्न हो गई। और प्रकाशक महाशय की प्रशंसा करने लगीं। हंसते हंसते आपने कहा " महाशय, आपकी सज्जनता का मैं दुरुपयोग नहीं करना चाहती। आपके हारमोनियम बजाने से मैं बहुत प्रसन्न हुई हूं। मेरी इच्छा एक बार और भी सुनने की है। यदि कोई हर्ज न हो तो एक और कविता हारमोनियम पर बजाइये।"

मुकण्ठा की स्तुति से आनन्दित होकर मि० ख्यालीराम ने कहा "हाँ, हाँ, लाइये एक ही क्यों, आप जितने पद्य कहें उतने सब हारमोनियम पर बजा कर दिखाने के लिए मैं तयार हूँ।" यह सुनते ही देवी ने सुरंग कवि की "राधा-कृष्ण-विलास" कविता प्रकाशक महाशय के हाथ में दी और कहा कृपापूर्वक इसको भी हारमोनियम पर बजाइये।

मि० ख्यालीराम ने देखा कि यह वही कविता है जो मैंने नापसन्द करके लौटा दी थी। उनके चेहरे का रंग फीका हो गया—भय और लज्जा से मुख सूख कर पीला देख पड़ने लगा। माथे पर पसीने की बूँद आ गई। रोंगटे खड़े हो गये। मुँह सूखने लगा। क्या कहूँ, क्या न कहूँ, क्या करूँ, क्या न करूँ—यह कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। सुकण्ठादेवी ने आश्चर्य का भाव प्रगट करके कहा "क्यों महाशय, आपकी उँगलियाँ क्यों नहीं चलतीं? हारमोनियम बिगड़ तो नहीं गया है? यदि बिगड़ गया हो तो दूसरा हारमोनियम लीजिए।" सच बात तो यह है कि हारमोनियम नहीं बिगड़ा था, हमारे प्रकाशक महाशय की उँगलियाँ भय के मारे थरथर काँप रही थीं। आपकी चोरी यहाँ अच्छी तरह पकड़ में आ गई थी। अब यहाँ बचने की कोई आशा नहीं देख पड़ती थी। तब देवी ने उनका खूब उपहास किया और कहा "महाशय आप सचमुच ख्यालीराम हैं—मुफ्त का माल लूटना चाहते हैं। लेखकों को हजारों उपायों से फँसाकर निराश करते हो—उन्हें एक फूटी कौड़ी तक नहीं देते—और अपनी 'काव्य-एजन्सी' ही का डंका बजाया करते हो। मैं बहुत दिनों से आपकी कीर्ति सुन रही थी। आज उसका प्रत्यक्ष नमूना यहाँ देख पड़ा।

"सुनिये, मैं एक दिन गाड़ी में बैठ कर हवा खाने जा रही थी। रास्ते में एक जगह आदमियों की बहुत भीड़ थी। दस-ग्यारह बरस का एक छोटा लड़का जल्दी जल्दी उस भीड़ में घुस रहा था—वह लड़का गाड़ी के धक्के से जमीन पर गिर पड़ा। पुलिस के सिपाही उसे अस्पताल ले जाना चाहते थे। वहाँ कोई गाड़ी न थी। तब मैंने अपनी गाड़ी पर उसे रख लिया। अस्पताल पहुँचने पर लड़का होश में आया। डाक्टर ने कहा इसके कोई चोट नहीं लगी है, यहाँ रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं उस लड़के को अपने घर ले आई। दैवयोग की बात है कि जब उस लड़के के कपड़े बदले गये तब उसके कोट के जेब में मुझे कागज के कुछ टुकड़े मिले। देखा, तो वह 'राधाकृष्ण विलास' काव्य था। प्रकाशक महाशय, अब सब बातें आपके ध्यान में आ गई होंगी। तौभी और दो बातें कहती हूँ। सुनिये। उस कविता को मैंने स्वयं हारमोनियम पर गा-बजा कर देखा। आहा! उस काव्य में कैसी मधुरता भरी है! शब्द शब्द में प्रेम रस टपकता है। प्रसाद पूर्ण है। उस कविता ने मेरे मन पर जादू का सा असर किया। लड़के से उसके माँ बाप का जब सब हाल पूछा और उन्हें मैं अपने घर ले आई तब मुझे मालूम हुआ कि सुरंग जैसे सत्कवि के साथ आपने कैसा बुरा बर्ताव किया। क्या आप नहीं जानते कि इस अपराध के लिए आपको न्यायालय से उचित दंड दिलाया जायगा? ध्यान में रखिये, कि इस चोरी के व्यवसाय का फल आपको शीघ्र ही मिल जायगा।

दूसरे ही एक दिन, कल्पावती के "वार्ताहर" नामक सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र में, बड़े बड़े अक्षरों में यह खबर छपी कि—'काव्य-एजन्सी' के मालिक मिस्टर ख्यालीराम बेपता हो गये। पुलिस के सिपाही खोज कर रहे हैं, यह भी कहा जाता है कि, कल्पावती के एक आनरेबुल महाशय लेजिसलेटिव कौंसिल में बिल पेश करनेवाले हैं, जिसके द्वारा लेखक और प्रकाशक का आर्थिक सम्बन्ध निश्चित रूप से ठहरा दिया जायगा।

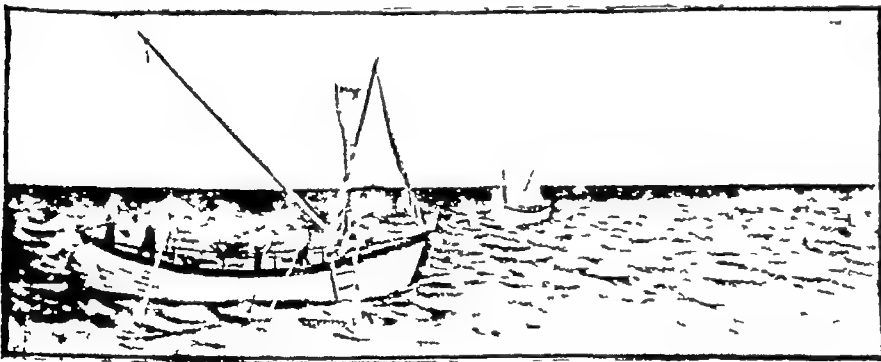
हमारी यही इच्छा है कि कल्पावती की यह कथा कल्पित ही बनी रहे; परन्तु क्या बिना आग के कहीं धुँआ भी देख पड़ा है! जो बात वास्तविक मूल में होगी ही नहीं, उसकी कल्पना भी कैसे उत्पन्न हो सकती है? अस्तु।

---

# स्पंज।

—✲—

वर्तमान समय में स्पंज का उपयोग बहुतायत से किया जाता है। यद्यपि इस पदार्थ को बहुत लोगों ने देखा होगा तथापि यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि स्पंज क्या चीज है और वह कैसे बनाया जाता है। डाक्टर लोग स्पंज को बहुत काम में लाते हैं। छोटे बच्चों को नहलाते समय स्पंज ही से उनका शरीर रगड़ा जाता है। जिन कारखानों में कला-कुशलता के काम किये जाते हैं वहाँ तो स्पंज के बिना एक क्षण भर भी काम नहीं चलता। आज-कल जैसे कृत्रिम नील बनने लगा है वैसे ही कृत्रिम स्पंज भी बनाया जाता है। परन्तु, यह बात सिद्ध है कि कृत्रिम वस्तु सृष्टिजन्य स्वाभाविक पदार्थ की बराबरी नहीं कर सकती। स्वाभाविक रीति से



चि० १—[illegible]

जो स्पंज उत्पन्न होता है वह कृत्रिम स्पंज से, अधिक गुणवान और उपयोगी होता है। पश्चिम देशों के वैज्ञानिक इस बात का यत्न कर रहे हैं कि स्पंज की पैदायश किस उपाय से बढ़ाई जा सकेगी।

क्या आप जानते हैं कि स्पंज क्या चीज है? सुनिये। यह अनेक छोटे छोटे और अत्यन्त सूक्ष्म जंतुओं के रहने का घर है जो समुद्र में पाया जाता है। जब ये जंतु मर जाते हैं तब उनके शरीर पानी में बह जाते हैं और उनके रहने का घर खाली हो जाता है। इन्हीं घरों के समुदाय को स्पंज कहते हैं। इन सूक्ष्म जंतुओं को भी स्पंज ही कहते हैं। समुद्र के भीतर जो चट्टानें होती हैं इन्हीं पर ये स्पंज नामक जंतु चिपके रहते हैं और वहीं पर वे जालीदार घर बनाते हैं। इनके घरों में हजारों छोटे छोटे छेद होते हैं। यथार्थ में इनका घर केवल छिद्रमय होता है। इन्हीं छेदों में समुद्र का पानी आता जाता रहता है और उस पानी के साथ जो अन्य प्रकार के छोटे जंतु बह कर आते हैं उन्हींको मार कर स्पंज जंतु अपना पेट भरते हैं।

जंतु-वर्ग में ऐसे अनेक प्राणी हैं जिनकी वृद्धि स्वयं उन्हीं के शरीर के विभाग से हुआ करती है। स्पंज भी इसी प्रकार के जंतु हैं। उनकी वृद्धि उनके शरीर के विभाग ही से होती है। इसी नियम के आधार पर वैज्ञानिक लोग स्पंज की कृत्रिम पैदावारी करने का यत्न कर रहे हैं।



चि० २—[illegible]

महासागर के जिन जिन भागों में उष्णोदक के प्रवाह पाए जाते हैं वहीं स्पंज बहुतायत से पैदा होता है। इस समय संसार में जितना स्पंज पैदा होता है उसका आधे से अधिक भाग केवल भूमध्यसागर ही में पाया जाता है। मेक्सिको की खाड़ी और करिबियन समुद्र में भी स्पंज की अच्छी पैदावारी होती है।

कृत्रिम स्पज का वर्णन करने के पहले यह जानना आवश्यक है कि समुद्र की तली में से स्पज किस तरह बाहर निकाला जाता है।

सब से पुरानी रीति यह है—लोग कंधे तक पानी में चलते जाते थे और पैर के अंगूठों से स्पज को चट्टान से उखाड कर बाहर फेंक दिया करते थे। इससे अधिक गहरे पानी में जाने के लिए नाव का उपयोग किया जाता है। एक बड़े लंबे डंडे में अंकुश के समान लोहे का हुक लगा रहता है। उसीसे स्पज को उखाड़ कर नाव में धर लेते हैं। समुद्र के भीतर स्पज किस स्थान में होगा इस बात का पता लगाने के लिए एक पीपे में कांच लगा कर नीचे छोड़ देते हैं। यदि पानी स्वच्छ हो और उसकी गहराई ५० फुट से अधिक न हो तो इस कांचवाले पीपों में से समुद्र के तले का स्पज देख पड़ता है।




आ० ३—पत्थर में जमाए हुए लोहे के डंडे में स्पज की 'कलम' लगा दी गई है।

जब इससे भी अधिक गहरे पानी में से स्पज निकालना पड़ता है तब १५०-२०० फुट गहरे पानी में डुबकी लगानेवाले आदमियों से काम लिया जाता है। ये पन-डुब्बे, पानी के भीतर, कभी कभी डेढ़ दो घंटे तक काम किया करते हैं। पानी में डूबने के पहले वे लोग अपने बदन में ऐसी पोशाक पहन लेते हैं कि उसमें पानी नहीं घुसने पाता। जल के ऊपर डोंगी में जो लोग बैठे रहते हैं वे वातपूरक यंत्र के द्वारा, उस पनडुब्बे की पोशाक में ताजी हवा भरते रहते हैं। इससे उसकी पोशाक हमेशा फूली रहती है और जब हवा अधिक हो जाती है तब वह कमर के पास वाले बंद से बाहर निकाल दी जाती है। जब पनडुब्बे को सांस लेने के लिये स्वच्छ हवा की जरूरत होती है तब वह अपनी पोशाक का एक विशेष भाग सिर से दबा देता है—तुरंत ही वहां की बुरी हवा बाहर निकल जाती है और उसको ताजी हवा मिल जाती है। जो पन-डुब्बे इस पोशाक का उपयोग नहीं करते वे अपने साथ एक बड़ा भारी पत्थर ले जाते हैं और समुद्र के नीचे पहुंचते ही उसे वहां छोड़ देते हैं। डोंगी का एक रस्सी बंधी रहती है जिसे वे बड़ी सावधानी और मजबूती से पकड़े रहते हैं। इस रस्सी के आधार पर वे चाहे जब पानी के ऊपर चले आ सकते हैं। ये पनडुब्बे २-३ मिनट से अधिक समय तक पानी के भीतर नहीं रह सकते।

अब यह सुनिये कि स्पज की पैदायश कृत्रिम रीति से कैसी की जाती है। अमेरिका में फ्लारिडा की खाड़ी में कृत्रिम-स्पज बहुतायत से पैदा किया जाता है। जिंदा स्पज के छोटे छोटे कई टुकड़े किये जाते हैं और वे लोहे के डंडों में चिपका दिये जाते हैं। ये डंडे चौकोन पत्थर में सिमेन्ट से जोड़ दिये जाते हैं और ये पत्थर समुद्र की तली पर छोड़ दिये जाते हैं। वहां एक या दो साल में अच्छा स्पज बढ़ जाता है। जिस प्रकार वृक्षों की कलम लगाई जाती है उसी तरह स्पज भी लगाया जाता है। जब स्पज पुख्ता हो जाता है तब वह एक हुकदार डंडे से खींच कर बाहर निकाल लिया जाता है। और, इसके बाद, उन्हीं पत्थरों पर स्पज की नई 'कलम' लगा दी जाती है।



आ० ५—ऊनी स्पज का नमूना।

स्पज पैदा करने की दूसरी कृत्रिम रीति यह है—पानी में खंभे गाड़ देते हैं और उन पर एक लोहे की आड़ी तार बांध देते हैं। इस तार में स्पज के टुकड़े लटका दिये जाते हैं। परन्तु जल प्रवाह के वेग से ये टुकड़े इधर उधर हिला करते हैं और तार के घर्षण से उनके छेद भी बहुत बड़े हो जाते हैं। कभी कभी तो तार को जंग भी खा जाता है और वह निरुपयोगी हो जाता है। अब लोहे की तार के बदले तांबे से मढ़ी हुई सीसे के तार का उपयोग किया जाने लगा है। इससे स्पज चारों ओर से बराबर बढ़ता चला जाता है। जो स्पज पत्थर पर लगाए जाते हैं वे आड़े फैलते हैं। वर्तमान समय में स्पज के विषय में जो वैज्ञानिक प्रयोग किये गये हैं उन पर से यह बात सिद्ध हुई है कि ढाई इंच के व्यास के टुकड़े पांच छै महीने में पचगुने बढ़ जाते हैं।

बोने के लिए जो स्पज के टुकड़े किये जाते हैं वे एक लकड़ी के पीपे में बंद करके बोने के स्थान पर लिये जाते हैं, कोई इन पीपों में भर देते हैं। इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है कि इन पीपों के भीतर ७०-८० अंश तक उष्णता बनी रहे। जब समुद्र में तूफान आता है या समुद्र का पानी बहुत मैला हो जाता है या मेघ वृष्टि के कारण समुद्रजल की क्षारता यकायक घट जाती है, तब इस कृत्रिम स्पज की पैदायश बिगड़ जाती है। स्पज के टुकड़ों के सब जंतु मर जाते हैं।



आ० ४—पुराना स्पज के नमूने।

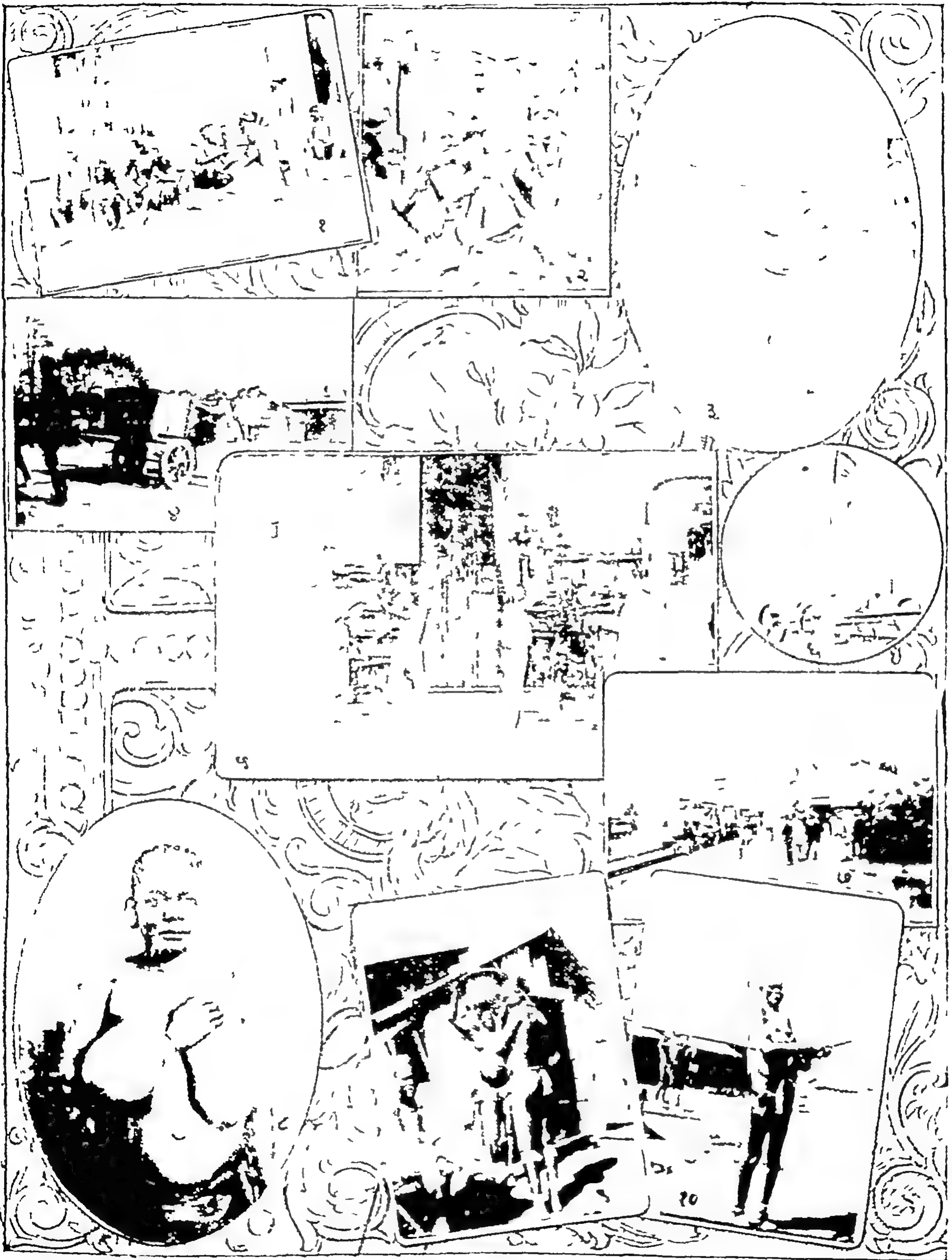


आ० ६—तार में लटकाए हुए स्पज के टुकड़े। खंभों का ऊपरी भाग पानी के बाहर बना रहता है, इसलिए यह निश्चित रूप से मालूम हो जाता है कि स्पज किस स्थान में बोया गया है।

जिंदा स्पज तले की ओर कुछ काले रंग का होता है। ऊनी स्पज बहुत नरम होता है। उसका व्यास डेढ़ से दो फुट तक का भी होता है। अन्य प्रकार के स्पजों की अपेक्षा ऊनी स्पज बहुत जल्द पानी को सोख लेता है। इस जाति के स्पज का उपयोग स्नान गृह में बहुतायत से किया जाता है।

पांचवीं आकृति में ऊनी स्पज का एक नमूना दिखाया गया है जो ३७ महीने का बढ़ा हुआ है।

# स्नैप-शाट्स !



नम्बर १ मद्रास के सोम्वेरी जाति के लोग बड़े आलसी होते हैं—इस समय व शराब पीकर मस्त हो रहे हैं। नम्बर २ 'थानकरी' जाति के लोग भोजन कर रहे हैं। ३ नम्बर टेनिस का खेल। नम्बर ४ खेत में मज़दूर काम कर रहे हैं। ५ नम्बर पूना के "काटन और सिल्क मिल्स" का इंजन घर। नम्बर ६ रेलवे लाइन की जाँच करनेवाले अफसर। नम्बर ७ रेलगाड़ी 'मोम्बासा' स्टेशन से छूट रही है। नम्बर ८ विशाल स्तन की एक स्त्री। नम्बर ९ आफ्रिका की क्रिया। नम्बर १० एक आफ्रिकन स्त्री टोकरी बुन रही है।

# साहित्य-चर्चा ।

### ग्रन्थ साहित्य ।

( १ ) पद्य प्रबोध —लेखक प० ( कवि ) रामनरेश त्रिपाठी, पो० फतहपुर, जयपुर । प्रकाशक भास्कर प्रेस, मेरठ सिटी । पृष्ठ सख्या ७१। मूल्य ।=) आना । भारतवर्ष में कविता करने की प्रथा बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है । प्राचीन समय में हमारे देश भर की संस्कृत ही मातृ-भाषा थी, अतएव कविता भी सस्कृत ही में होती रही । ज्यों ज्यों हमारी भाषा का रूप बदलते गया त्यों त्यों कविता का भी रूप रद् बदल होते गया । कवि में यह शक्ति है कि वह असम्भव कार्य को भी अपनी अमृतमयी कविता से सम्भव कर देता है । सस्कृत के कवियों में तो यह गुण पाया ही जाता था, परन्तु भाषा के कवियों में भी उक्त गुण का बहुत अश पाया जाता है । उदाहरण के लिये एक भाषा कवि का जिकर किया जाता है, इससे आपको विदित हो जायगा कि उक्त कवि ने अपनी भाषा-कविता से कैसा भारी सकट, जिसमें कि हजारों की मृत्यु हो जाना सम्भव था, बात की बात में टाल दिया । सुनिये —

" जोधपुर के राजा मानसिंह को तो आप लोग जानते ही होंगे। एक दफे उन्होंने लका पर चढाई करने का दृढ सकल्प कर लिया और सेना के तयार होने का आर्डर दे दिया । उस समय, यद्यपि यह बात सबको, मन्त्री से सिपाही तक को, मालूम थी कि, लका पर चढाई करना मानो मौत को बुलाना है—क्योंकि प्रथम तो अनेक बडे बडे राजाओ के कारण समुद्र के किनारे ही तक पहुचना बहुत कठिन है, मान लो किसी प्रकार पहुच भी गये तो समुद्रपार कैसे होंगे—तथापि, किसी की यह साहस न हुआ कि, राजा को उक्त बात समझाकर, राजा के दृढ सकल्प को रोक सके । अब सब ने यह निश्चय कर लिया कि हमारे अन्तिम दिन बहुत निकट आगये । परन्तु ईश्वरेच्छा से उन सब के मन में यह बात उत्पन्न हुई कि राजा के कवि से तो, यह सब इतिहास प्रकट करके, अपने बचाव के लिये प्रार्थना करें, शायद उसीके द्वारा किसी प्रकार हम लोगो का छुटकारा हो । ऐसा निश्चय करके वे सब राजा के कवि के पास गये और अपना सब वृत्तान्त कह कर रक्षा के लिये प्रार्थना की । कवि ने, उनकी बात सुनते ही, तुरन्त यह उत्तर दिया कि " आप लोगों का भार मैं अपने ऊपर लेता हू अर्थात् आप लोगों की रक्षा मैं करूगा । " ऐसा कह कर सब को बिदा किया । राजा जिस समय, सेना तयार करके, लका जीतने के लिये चलनेवाले थे उस समय सब लोग, अपने मन में, कवि को झूठा समझ कर, एक दम निराश हो गये, परन्तु जब राजा घोडे पर सवार होनेवाले थे तब कवि जी आकर राजा को आशीर्वाद दिया और यह प्रश्न किया कि " आप किस देश को विजय करने के लिये, जाने को, तयार हैं । " राजा ने कहा " लका को । " राजा की बात सुन कर जब कवि स्तब्ध सा हो गया तब राजा ने पूछा " क्यों कवि जी, आपने मौन क्यों धारण किया । " इस बात को सुन कर कवि ने कहा, सुनिये महाराज —

रघुपति कीन्हो दान, विप्र विभीषण जान के।

इसीसे मैंने मौन धारण किया, अतएव —

मान 'महीपति मान,' दियो दान किमि लीजिये ।

राजा ने कवि की इस बात को सुन कर लका विजय का सकल्प छोड दिया । "

हम लोगों को कवि शक्ति तो मालूम ही होगई, परन्तु अब इस बात का जानना भी बहुत आवश्यक है कि वर्तमान समय में किस प्रकार की कविता का प्रचार है और हम लोगों को किस प्रकार की कविता विशेष प्रिय है । आज कल " ब्रज भाषा " तथा " खडीबोली " की कविता का प्रचार है जिसमें प्राय हम लोग खडीबोली ही की कविता बहुत पसन्द करते हैं । हमारे बहुत से भाइ, खडीबोली के ही कवि बनने को बहुत अभिलाषी हो रहे हैं । बहुत से हमारे भाई, हमारे ही समान, बिना कुछ कविता के नियम जानेही, कविता बनाने के लिये, दिन-रात, अवकाश मिलने पर, उलटे पलटे शब्द जोडा करते है, परन्तु भला सोचिये तो सही कि ऐसा क्लिष्ट काम बिना गुरु के कैसे आ सकता है । कविता सीखने के लिये गुरु का होना आवश्यक है, परन्तु हरएक के लिये, हरएक स्थान पर, गुरु का मिलना बहुत कठिन है । इसी कारण हमारे कइ एक भाइयों पर आशा के बजाय निराशा का साम्राज्य छा रहा है । इसी निराशा को दूर करने के लिये त्रिपाठीजी ने बडे परिश्रम से " पद्य प्रबोध " नामक पुस्तक तयार की है । हरएक कविता-बनाना सीखनेवाले को, जो कि निराशा देवी से पीछा छुडाना चाहता है, चाहिये कि, उक्त पुस्तक की एक प्रति मगा कर, उसके नियमानुसार कविता बनाने का अभ्यास किया करे । यद्यपि बिना गुरु के पूर्णरूप से कवि नहीं हो सकता तथापि किसी न किसी प्रकार की शक्ति, उक्त पुस्तक के पढने से, आजाना सम्भव है । जहा सूर्य का प्रकाश नहीं होता वहा दीपक के ही प्रकाश से काम, लिया जाता है, लेना चाहिये । आशा है कविता प्रेमी पडित जी के परिश्रम को अवश्य सार्थक करेंगे ।

( २ ) दो बहिन-उपन्यास —लेखक प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, आरा । प्रकाशक " हितचिन्तक " प्रेस, बनारस सिटी । पृष्ठ सख्या ९८ । कीमत ।।) आना । यह पुस्तक बहुत उपदेशप्रद है । इसके पढने से यह बात मालूम हो जाती है कि जब तक अपनी आख से किसी बात की पूरी पूरी जाच न कर ले तब तक किसीकी बात का विश्वास न करना चाहिये । यदि अपनी आखों से अच्छी तरह न जाच किया हो और दूसरे के कहने को सत्य मान कर, उसी पर, अपनी राय कायम कर दी हो तो उससे जो दु ख उत्पन्न होता है वह इस पुस्तक के पढने से स्वत ही अनुभव में आजाता है । हरएक सासारिक आदमी को ऐसी ही पुस्तकें मगाना चाहिये । इसकी सब बातों का साराश हृदय में रखनेलायक है जाकि समय-सम्बन्ध मे बहुत लाभदायक होगा । भाषा और लेखक शैली बहुत सरस है । महाशय जी प्राय ऐसी ही उपदेश-प्रद बातें उपन्यास रूप में प्रकट करते रहते हैं जिससे पढने में भी खूब रुचि बढे और कुछ शिक्षा भी मिले । औपन्यासिक प्रेमियो को महाशय जी के परिश्रम की ओर ध्यान देना योग्य है ।

( ३ ) महाराणा प्रतापसिंह —लेखक गगाप्रसाद गुप्त । प्रकाशक बालमुकुन्दशर्मा, मासिक उपन्यास तरग कार्यालय, नेपाली खपरा, बनारस सिटी । पृष्ठ सख्या ६३। मूल्य ।–) आना । आज कल यद्यपि महाराणा प्रतापसिंह के चरित्र की प्राय अनेक पुस्तकें छपी हैं और प्राय सभी पुस्तकालयों में भी मिलती हैं तथापि पूरा पूरा जीवन चरित्र बहुत कम दृष्टिगोचर होता है । इस पुस्तक में महाराणा का सम्पूर्ण जीवनचरित्र दिया हुआ है, परन्तु सूक्ष्मता के साथ में । इस समय यह बताना अनुचित न होगा कि यद्यपि जीवन चरित्र सूक्ष्म लिखा है तथापि करीब करीब आवश्यक बातें सभी आगई हैं। शुरू में महाराणा जी का चित्र भी दिया है। स्वदेश भक्तों को चाहिये कि इस पुस्तक को भी एक बार पढे ।

( ४ ) श्रीमान् डा० आर्थर स्टिवेन्सन का सक्षिप्त जीवनचरित्र —लेखक हरिहर शकर उपाध्याय। प्रकाशक ताराप्रिंटिंग प्रेस, बनारस सिटी । पृष्ठ सख्या २८ । मूल्य ॥) आना । इस पुस्तक में कइ एक उपदेशप्रद चुटकुले लिखे हैं जो कि प्राय विद्यार्थियों और अध्यापको के लिये बहुत लाभदायक हैं। यद्यपि इस पुस्तक का दाम ज्यादा है तथापि इसके लाभदायक चुटकुलो की ओर ध्यान देने से इसके मूल्य की ओर ध्यान देना कम दर्ज का है ।

( ५ ) ब्रह्मविद्या —लेखक गुरु नारायण अग्रवाल, इटावा । प्रकाशक ब्रह्मप्रेस इटावा । पृष्ठ सख्या १६८। मूल्य ( एक पैसे का पोस्टकार्ड अथवा कुछ नहीं ) प्रेम । प्यारे पाठको ! आप से यदि कोइ यह प्रश्न करे कि आप किस विद्या का आदर करना रखते हो ? तो शायद आप यही उत्तर देंगे कि यद्यपि मुझे सब विद्याओ की आवश्यकता है तथापि ब्रह्मविद्या की सबसे विशेष आवश्यकता है,—ब्रह्मविद्या ही के अन्तर्गत सब विद्या हैं परन्तु यहा पर ब्रह्मविद्या से दूसरा अर्थ लिया गया है जोकि इस पुस्तक के पढने से आप ही आप मालूम हो जायगा—इस त्रुटि को दूर करने के लिये ' ब्रह्मविद्या ' नामक पुस्तक प्रसिद्ध हुइ है। इस पुस्तक को मगा कर इस पर विचार कीजिये और देखिये कि इस पुस्तक से आपकी किसी अश में भी इच्छापूर्ति होती है या नहीं। यदि किसी अश में भी इस पुस्तक से हम लोगो की इच्छापूर्ति होजाय तो ले० महाशय भी स्वश्रम को सार्थक समझेंगे।

### सामयिक साहित्य ।

( १ ) औदुंबर —यह एक सचित्र मासिक पत्र ' बनारस सिटी ' से प्रकाशित होता है । इसके वर्ष का पहिला पुष्प हमारे सामने उपस्थित है । इस पुष्प के देखने से यह मालूम हो जाता है कि इसने एक वर्ष में बहुत उन्नति कर दिखाइ है । इसमें प्राय लेख मार्मिक रहते हैं यह अक बडी योग्यता से सम्पादित हुआ है । इस बार से इसका आकार बढ कर बहुत शोभायमान होने की सम्भावना है। इसकी एक प्रति का मूल्य ॥) व वार्षिक मूल्य और राजा रईसों के लिये १।।।) है।

( २ ) जयाजी प्रताप —यह भी अपने ढग का निराला ही साप्ताहिक पत्र है । यह हिंदी तथा अंग्रेजी में सम्पादित होता है । अन्य साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पत्रों से इसमें यह विशेषता है कि इसमें कृषि तथा व्यापार सम्बन्धी अनेक उपयोगी लेख लिखे रहते हैं, अतएव यह पत्र भारतवर्ष के लिये तो बहुत ही लाभदायक है क्योंकि भारतवर्ष में प्राचीन समय से वर्तमान समय तक, कृषि ही प्रधान है। इस पत्र का ग्राहक बनना सब के लिये तो आवश्यक है ही, परन्तु काश्तकारों के लिये भी इसका ग्राहक बनना बहुत आवश्यक है । नमूने का अक पत्र आने पर मुफ्त भेजा जाता है । वार्षिक मूल्य २) " मात्र। मैनेजर " जयाजी प्रताप " ( लश्कर ) ग्वालियर के पते पर पत्रव्यवहार करना चाहिये ।

### प्राप्ति स्वीकार ।

दद्रुनाशक —यह दाद की दवा मैनेजर सर्वोपयोगी मेडीकल होम, नसीराबाद, हैदराबाद (दक्षिण) से प्राप्त हुई है। कहते हैं कि इसके लगाने से दाद बहुत जल्दी समूल नष्ट हो जाता है। आज कल प्राय, बहुत आदमियो को, यह रोग ग्रस लेता है और इसका देखते तमाम बदन में फैल जाता है, अतएव हर एक मनुष्य को इसकी दवा घर में रखना आवश्यक है। इस रोग के होते ही इसकी दवा करना बहुत जरूरी है । मूल्य एक शीशी का ।) आना ।



# THE EMPRESS

## ALBUM

OF THE

# ROYAL TOUR

## 1911-1912.

THACKER, SPINK & CO.
CALCUTTA

*PRICE ONE RUPEE*

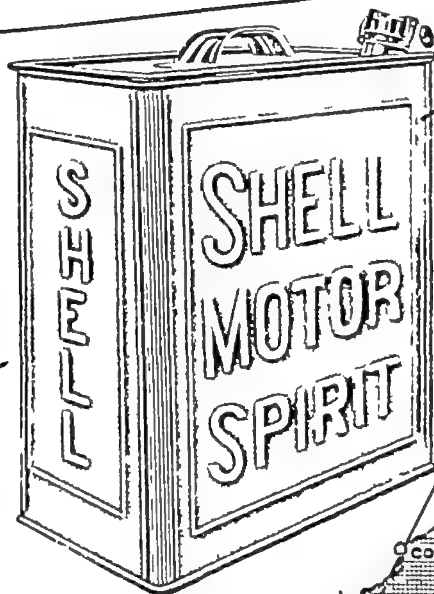
THERE MAY BE SEVERAL OPINIONS AS TO THE CAPITAL OF INDIA BUT THERE IS ONLY ONE AS TO THE "CAPITAL" OF SPIRITS

# "SHELL"

THE SPIRIT THAT IS ALWAYS WILLING

## CAPITAL IN EVERY WAY

"SHELL" MOTOR SPIRIT IS OBTAINABLE EVERYWHERE OR DIRECT FROM




MESSRS EWART RYRIE & Co
KARACHI

THE ASIATIC PETROLEUM Co (INDIA) LD
CALCUTTA

THE ASIATIC PETROLEUM Co (INDIA) LD
BOMBAY

COCANADA

MARMAGOA

MESSRS BEST & Co LD
MADRAS

CALICUT

COCHIN

TUTICORIN

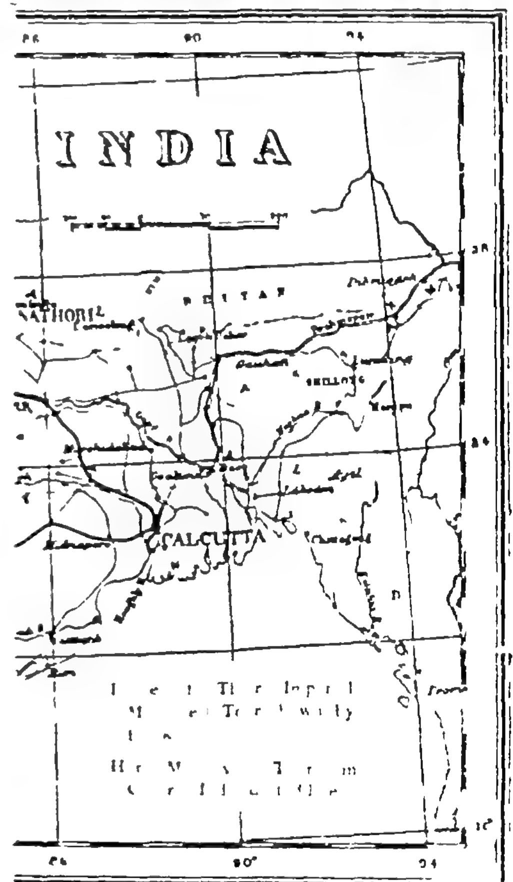
DELMEGE FORSYTH & Co
COLOMBO

THE CALCUTTA PHOTOTYPE Co

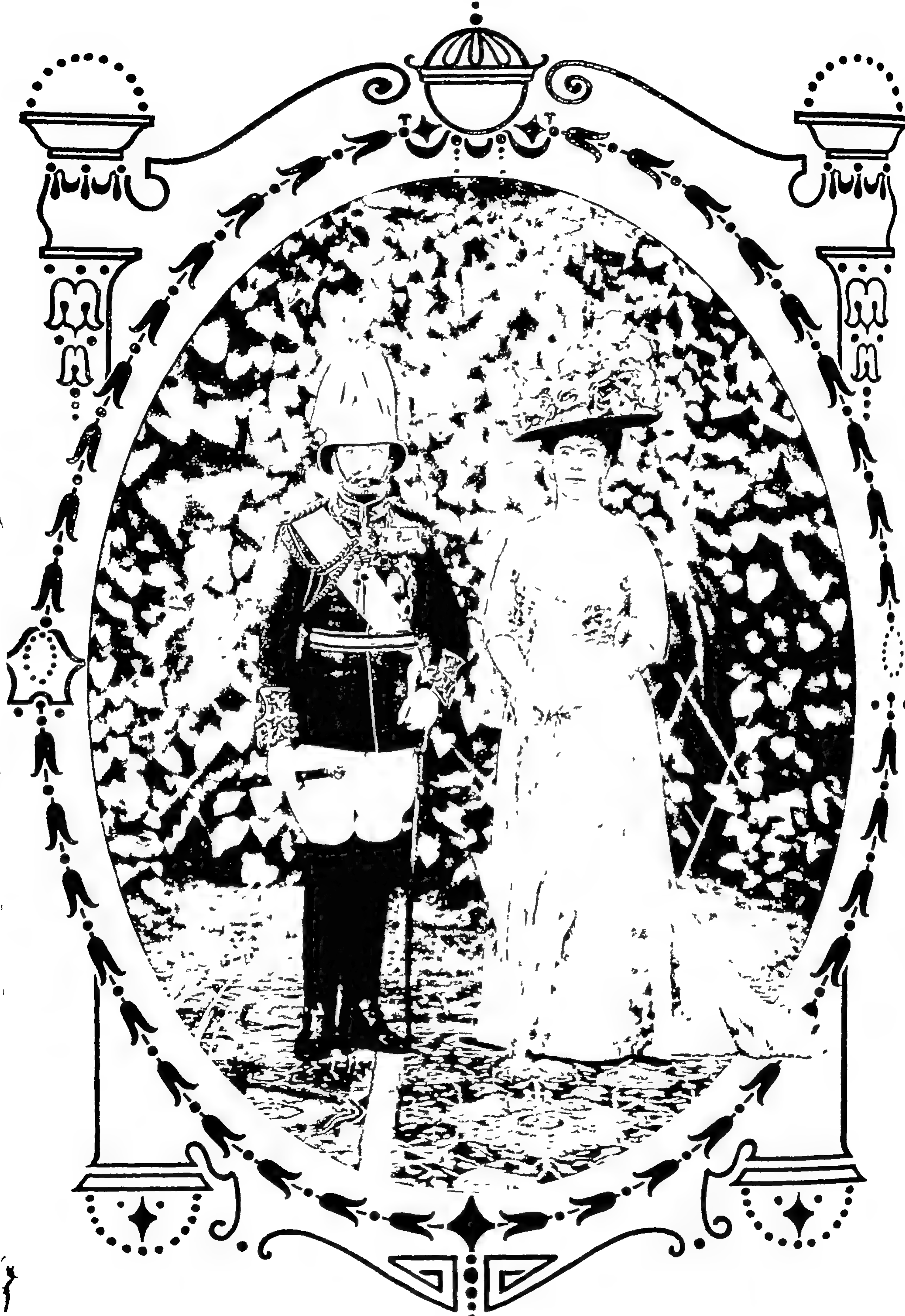
# THE ROUTE OF THE ROYAL TOUR, 1911-12





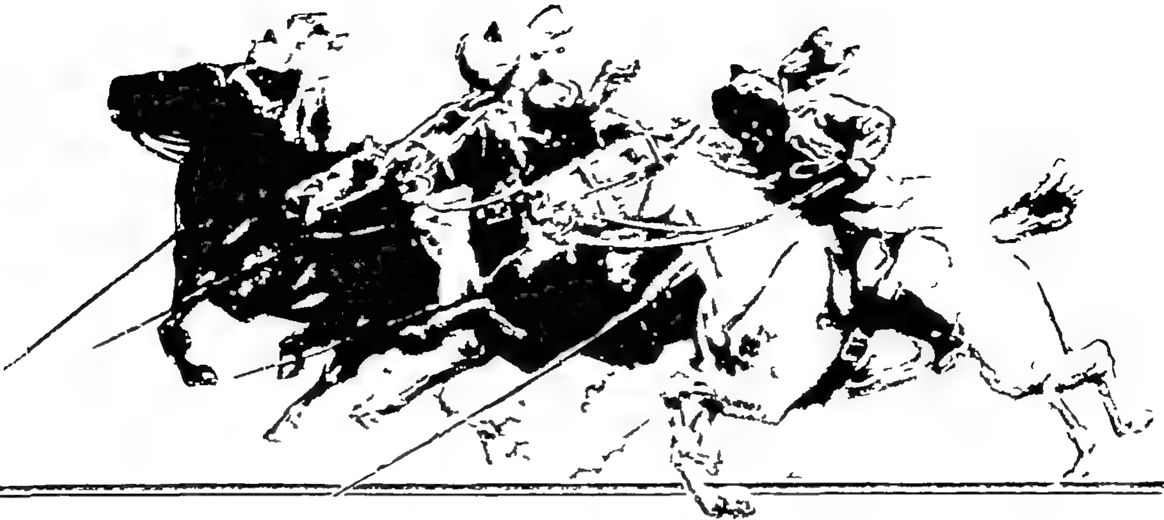




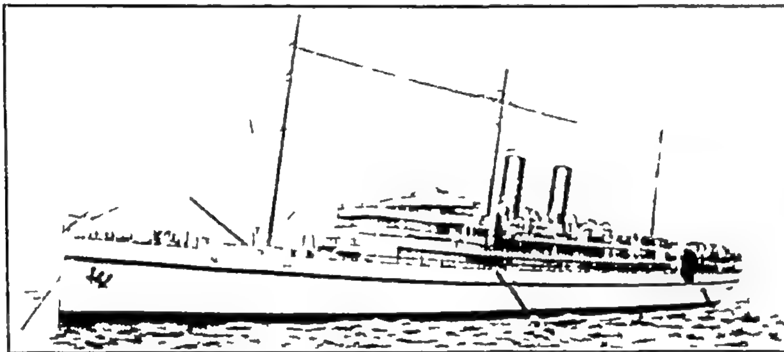
THEIR MAJESTIES THE KING-EMPEROR and QUEEN-EMPRESS

*[Photographed by Royal Command at Government House, Calcutta, by Johnston & Hoffmann.]*



# THE DIARY OF THE ROYAL TOUR

## 1911



The S S Medina on which Their Majesties made the passage to India

Nov 11 Departure from London

Nov 27 Arrived Aden

Dec [illegible] Arrived Bombay Royal Procession through the City

Dec [illegible] Attended Service in Cathedral

Dec 4 Childrens Fete and Fireworks

Dec 5 Visit to Caves of Elephanta Departure from Bombay

Dec 7 Arrival at Delhi State Entry Reception of Ruling Chiefs

8 Laying Foundation Stone of All-India King Edward Memorial

9 Reception of Ruling Chiefs Polo and Football Tournament Torchlight Tattoo

10 State Military Church Parade in Camp

11 Presentation of Colors to British and Indian Infantry Regiments

Dec 1[illegible] Great Durbar State Banquet and Reception

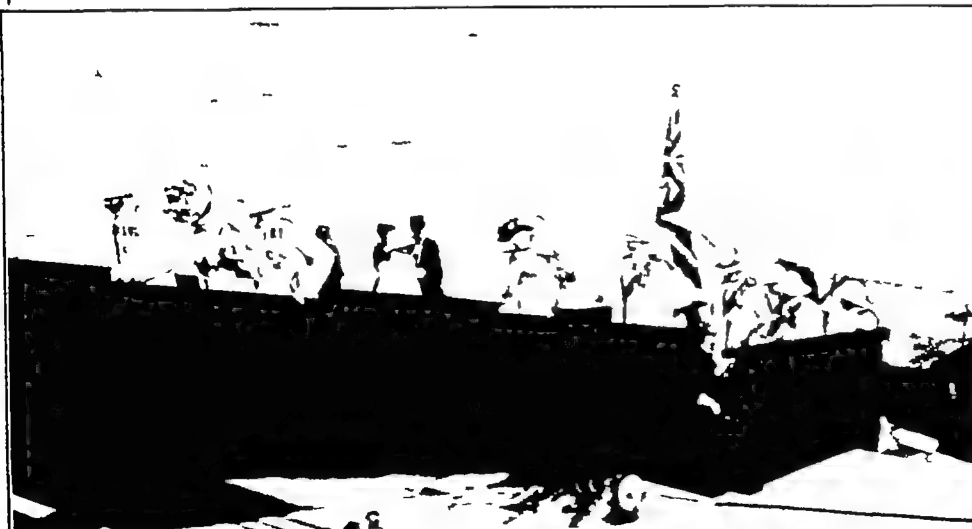
Dec 1[illegible] Reception of Officers of Volunteer Contingents Indian Officers of Indian Regiments and Imperial Service Troop

Dec 14 Review of 4 Battalions of Infantry, 13 Regiments of Cavalry and 114 Guns totalling nearly [illegible] Officers and Men

Dec 1[illegible] Laying Foundation Stone of New City of Delhi Review of Police

1[illegible] King Emperor leaves Delhi for Hunting Tour in Nepal Queen Empress leaves for Agra

1[illegible] King-Emperor visited Arrah and attended Divine Service Queen-Empress arrives at Agra and attends Divine Service at St George's Church Queen Empress visits Futtehpur Sikri and the Palaces of Akbar Jehangir and Shah Jehan in the Fort and the Tomb of Itimad-ud-Daulah



Their Majesties Ascending the Gangway at the Apollo Bunder, Bombay



A Native woman waiting to see the King Emperor

The Arrival of Their Imperial Majesties at the Apollo Bunder Bombay on Saturday the 2nd December, 1911

Phot by] His Majesty replying to the address read by the Chairman of the Bombay Municipal Corporation [C... & Co. P...

Dec 18 King-Emperor arrives Bhikna Thori Queen-Empress visits the Taj at Agra

" 19 Queen-Empress leaves Agra for Jaipur and Ajmer

" 20 Queen-Empress arrives Jaipur and visits Palace of Amber The Tothwara Gardens and witnesses a Naga Dance at the Residency

" 21 Queen-Empress arrives Ajmer and visits Historic and Religious Shrines

" 22 Queen-Empress visits Ajmer City

" 23 Queen-Empress visits Pushkar Sacred Lakes and Temple of Brahma, the Dargah and Arhai-dinka Jompra (Ajmer)

" 24 Queen-Empress arrives Bundi and visits the Palace Sar Bargh Shikar Burj and Phul Sagar and leaves for Kotah

" 25 Queen-Empress attends Divine Service in Camp at Kotah

" 26 Queen-Empress visits the Palace and Adhera and witnesses the Illuminations of City and River

" 27 Queen-Empress attends Pic Nic given by Maharao at Kotah

" 28 King-Emperor leaves Kasia for Calcutta

" 29 Queen-Empress leaves Kotah for Calcutta and meets King-Emperor at Bankipore

Dec 30 Arrival of Their Imperial Majesties at Calcutta Reception at Government House Visit to Zoological Gardens

" 31 Their Imperial Majesties attend Divine Service at Cathedral Queen-Empress visits Botanical Garden

## 1912

Jan 1 Polo Tournament State Dinner

" 2 Proclamation Parade and Review of 9,000 Troops Garden Party and Levee at Government House

" 3 Coronation Polo Tournament Attend Races in State Torchlight Tattoo and Fireworks

" 4 Visits to Indian Museum and Tollygunge Horse Show Court at Government House

" 5 Historic Pageant Dance at Government House

" 6 Visits to Tollygunge Races and the Hospitals Dinner at Government House Illuminations of Calcutta

" 7 Attend Divine Service at Cathedral Visit Governor General at Barrackpore

" 8 Departure from Calcutta for Bombay

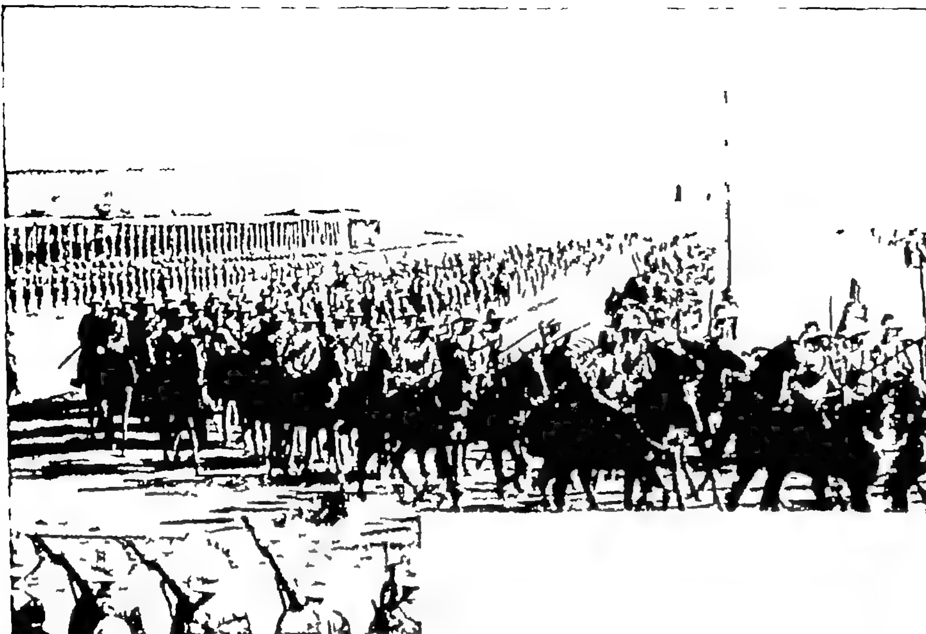
" 9 Stop at Nagpur and visit Fort

" 10 Departure from Bombay on Royal Yacht "Medina"





# DELHI—REHEARSING THE STATE ENTRY



Naturally a function like the great Coronation Durbar could not be carried through successfully without a great deal of hard preliminary work on the part of the responsible officials and others. The soldiers who took part in the various official functions also had to be trained in their different duties, and our pictures show units of various regiments rehearsing the parts they were required to take during the State Entry of His Imperial Majesty into Delhi. The route was lined with British and Native troops exactly as on the great day of the King-Emperor's entry and mounted men, cavalry of several British regiments, sowars of the native cavalry corps and Imperial service troops rode in procession along the route from the Fort to the Durbar Camps. Thanks to the trouble taken in rehearsing everything passed off with great eclat.





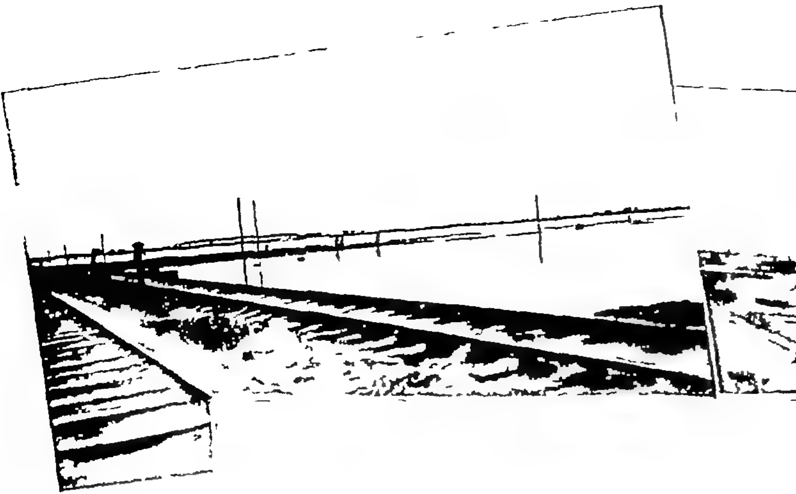
The Delhi Herald (Major General Peyton), The Assistant Herald (Capt. The Hon. Umar Hyat Khan) and the State Trumpeters

# THE STATE ENTRY INTO DELHI

**SNAPSHOTS AT THE STATE ENTRY INTO DELHI**

1 [illegible] The King Emperor [illegible] The Queen Empress [illegible] H. H. [illegible] Maharaja of [illegible] H. H. the Gaekwar of Baroda [illegible] The Imperial Cadet Corps [illegible]

7







THE SITE OF THE CAMPS IN OCTOBER, 1911

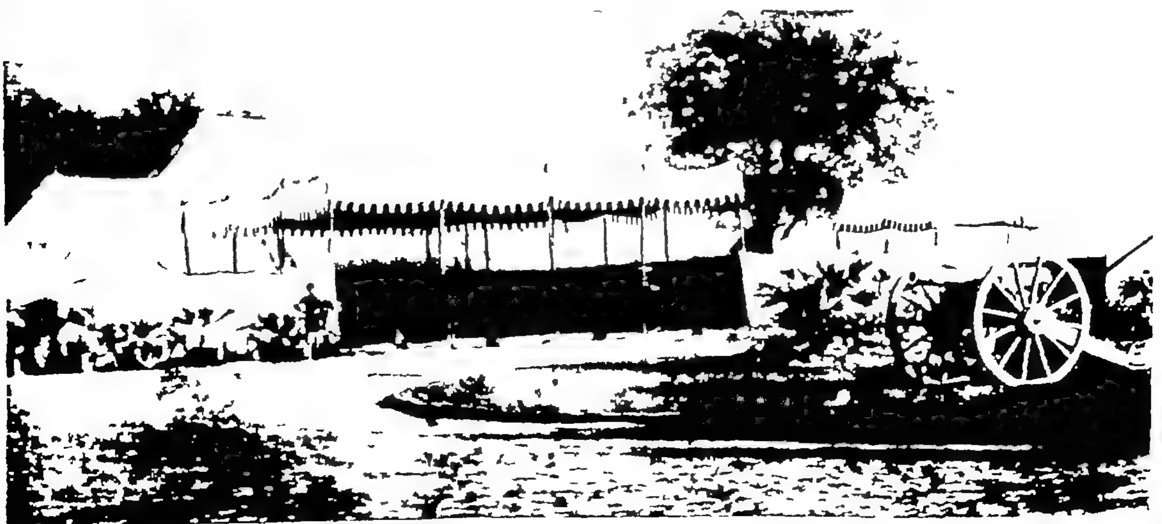
*[Photos by Mrs Dougla Bennett Delhi ]*

The heavy rains in October last retarded the work of preparation for the Durbar and caused a large amount of damage to the electric wires and cables which had been laid in readiness for the camps A large tract of country was under water for a considerable time Our pictures give some idea of the extent of the floods





A PORTION OF KINGSWAY, SHOWING CHIEFS CAMPS



H E THE COMMANDER IN CHIEF S CAMP

*Ph by J ... & H ... ]*



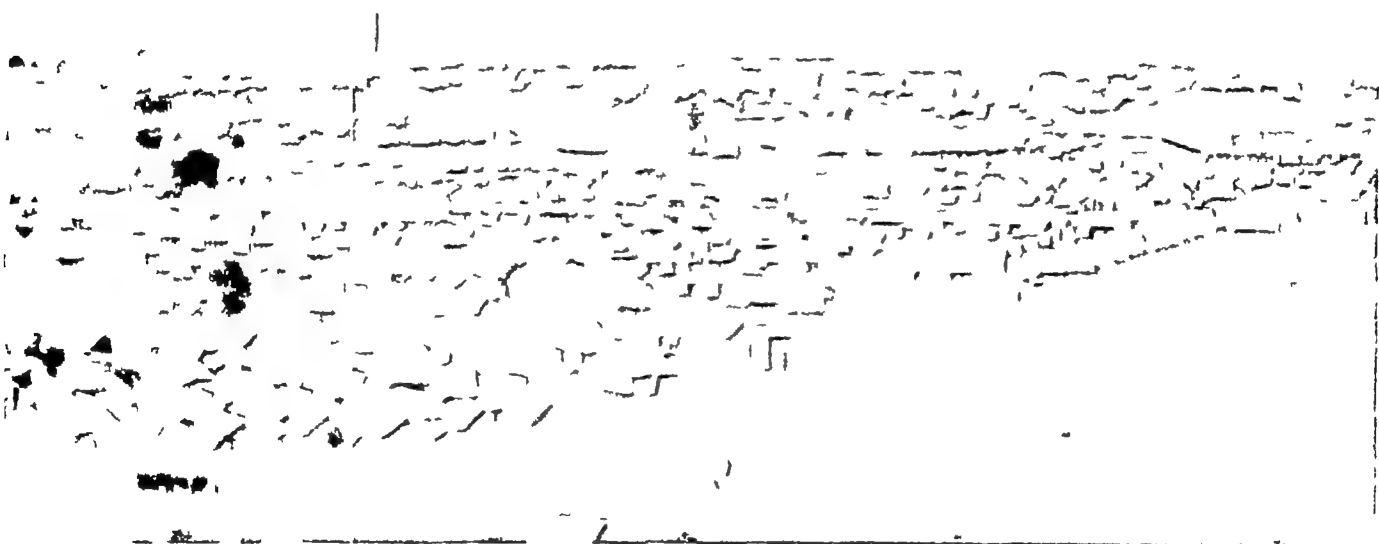
THE RAJA OF JIND'S CAMP IN KINGSWAY

THE FINE GATEWAYS AT SOME OF THE RULING CHIEFS CAMPS



The Magnificent Carved Wood Gates and Screen in the Maharaja of Kashmir's Camp. These were very fine examples [illegible] Indian wood carving.





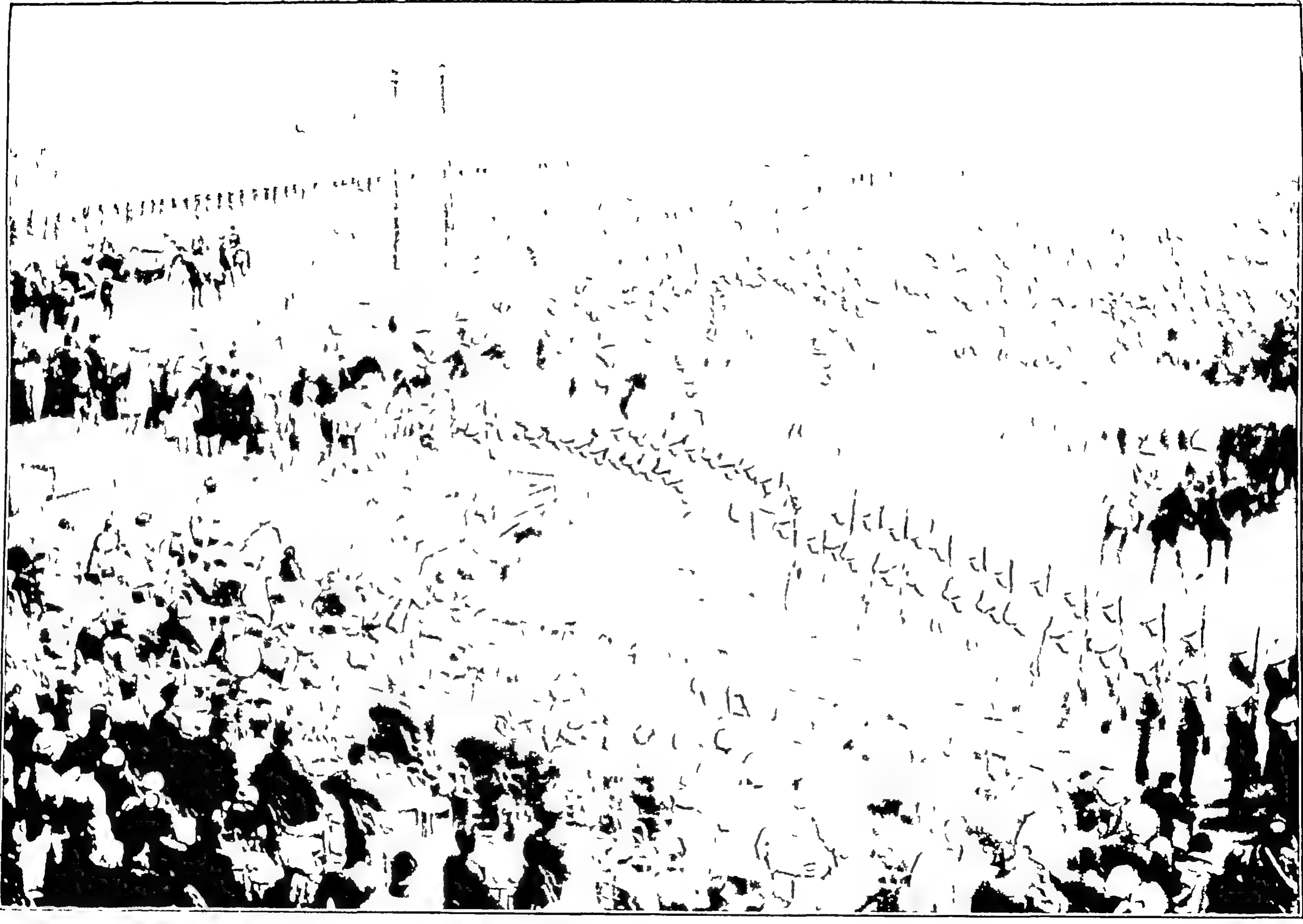
A GENERAL VIEW OF THE CANVAS CITY FROM THE HISTORIC RIDGE



THE ROYAL CAMPS FROM THE CIRCUIT HOUSE



THE STATE ENTRY INTO DELHI. The King-Emperor leaving the Fort by the Delhi Gate



THE STATE ENTRY OF THEIR IMPERIAL MAJESTIES DEC 7th 1911



The Retinue of a Ruling Chief and his beautifully caparisoned horse passing through the Delhi Gate of the Fort after the State Entry into Delhi. The horse's hoofs are ornamented with bells and the mane is plaited with gold and silver thread.

[[illegible] for [illegible]]

# Laying the Foundation-Stone of the King Edward Memorial.



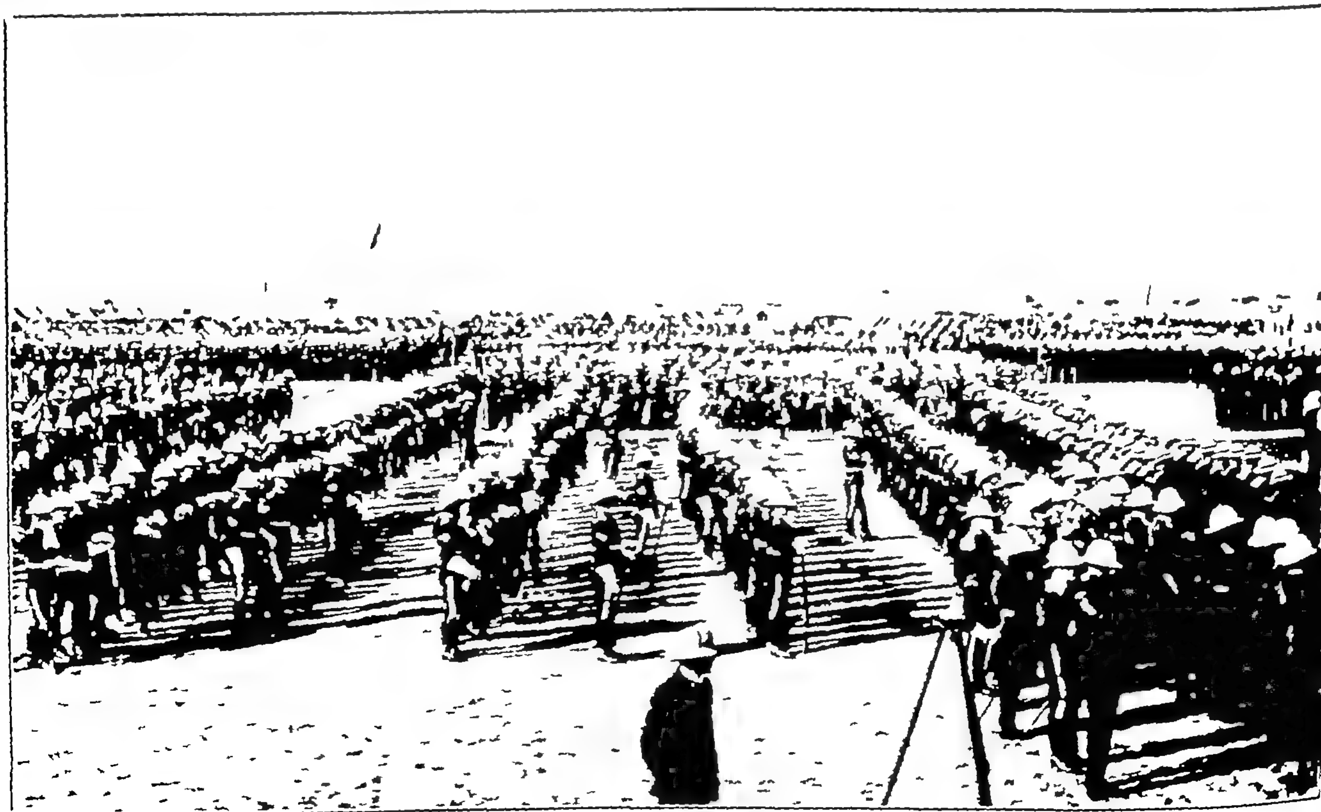
The King Emperor declaring the Foundation Stone of the All India King Edward Memorial well and truly laid

His Majesty receiving the address at the laying of the Foundation Stone of the King Edward Memorial

# H. M. The King-Emperor at the Hockey Final.

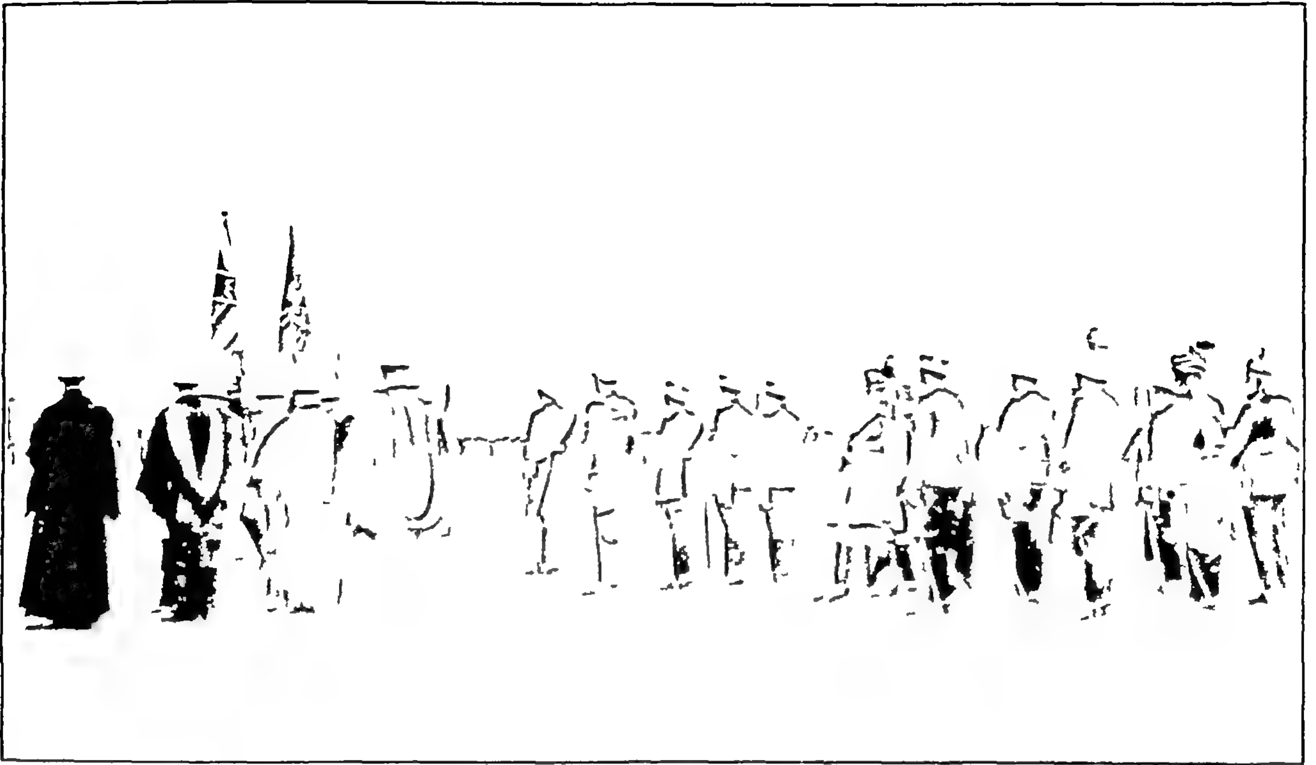
His Majesty The King-Emperor leaving the Hockey Ground with H E The Viceroy after the match

# State Church Parade at Delhi.



The Troops on Parade at the Church Service on Sunday December 10th

# The Presentation of Colours.



The Presentation of Colours [illegible]

[illegible]

The [illegible]

# The Great Coronation Durbar, December 12th.

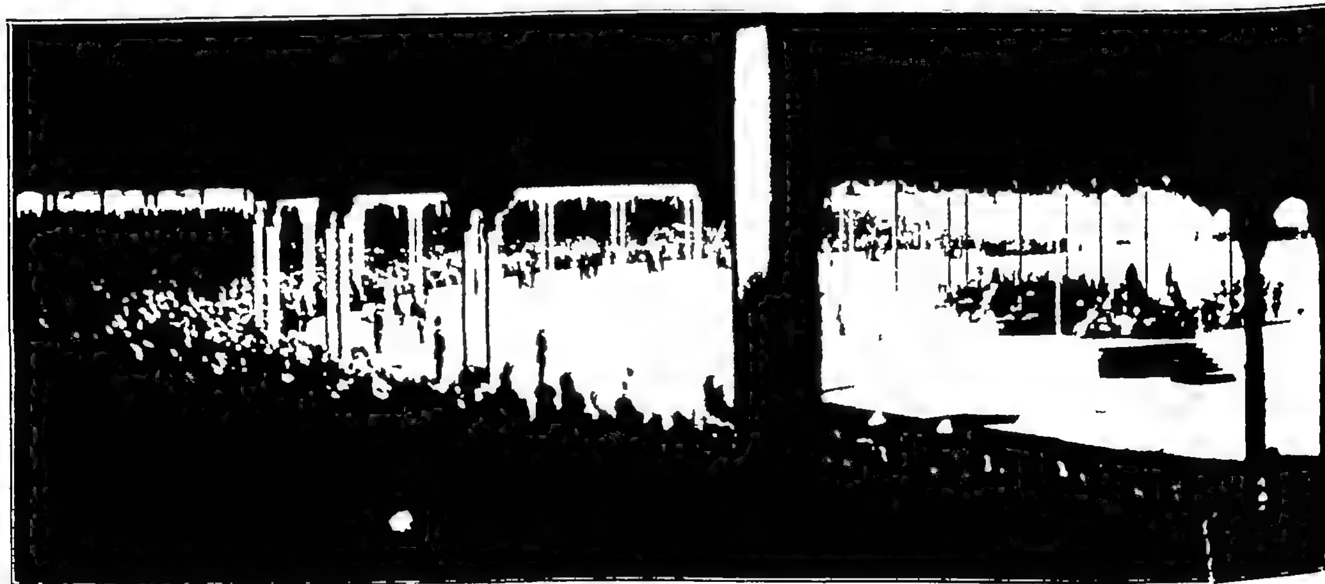


The Court Heralds and State Trumpeters on Durbar Day

*Pl te by Ballrd Iate Me l]*

The King and Queen standing at the Thrones in the Durbar Shamiana during the reading of the Proclamation

*P by J ... ll T ann Calutta]*



The Homage of the Chiefs at the Royal Pavilion

*[illegible]]*

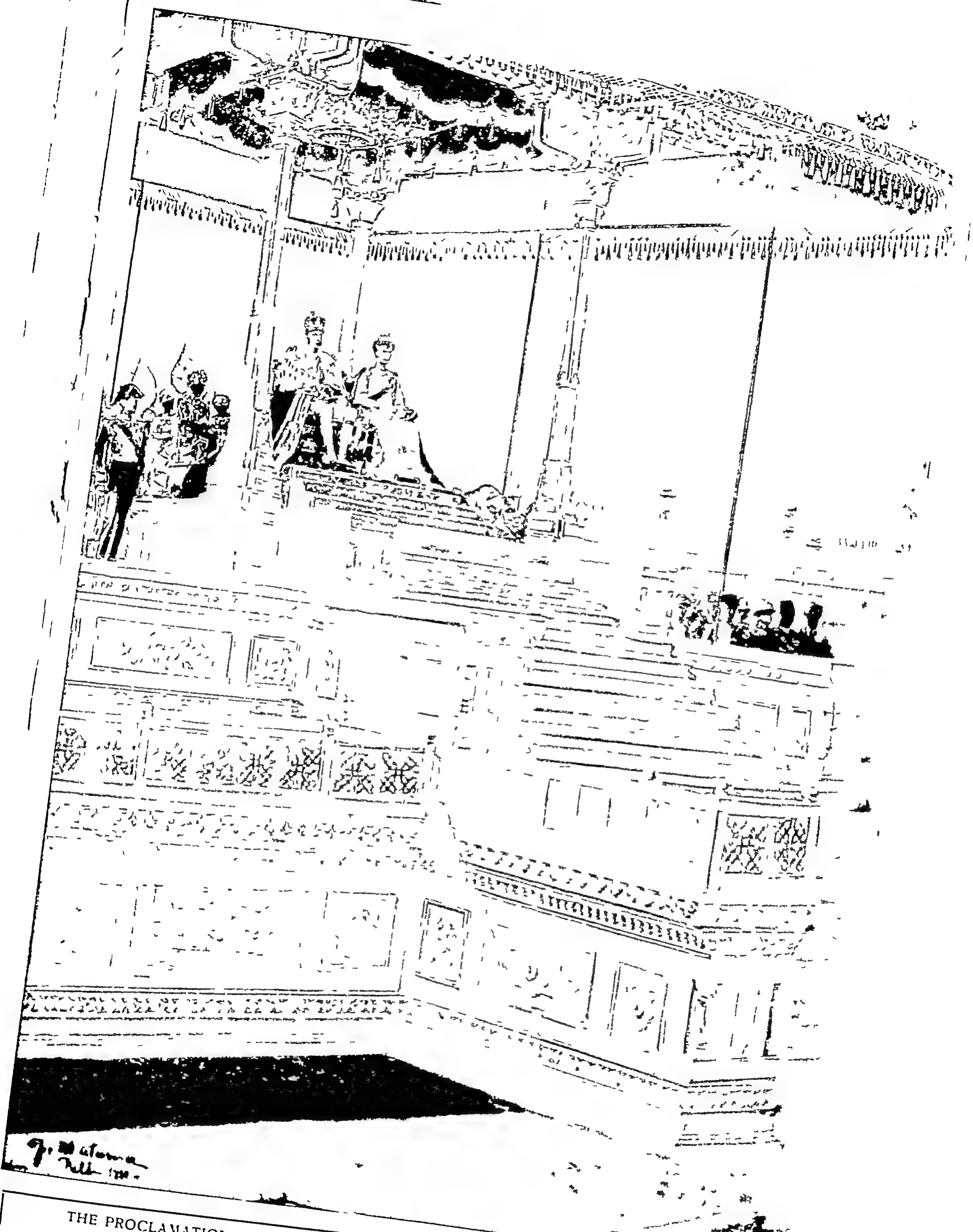
# The Great Coronation Durbar.



[... ls Lalye F ... acl in ]

General View ... the Am... ...eatre

The V... ce... oy announcing the Du...ba... Boons g...an...ed by H... ... The King Empe...

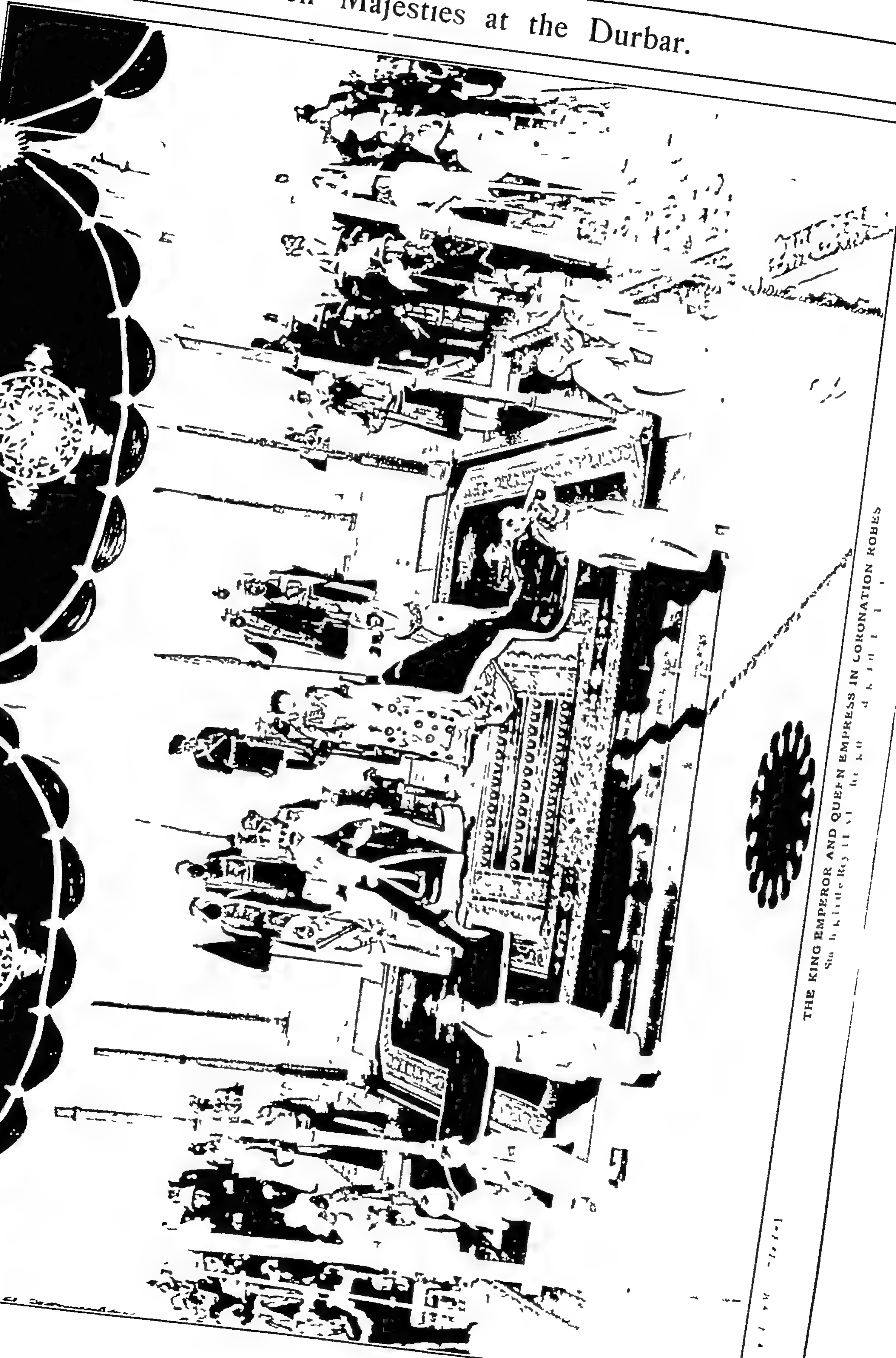


THE PROCLAMATION OF HIS MAJESTY KING GEORGE V AS KING-EMPEROR OF INDIA BY THE ASSISTANT HERALD AT THE CORONATION DURBAR



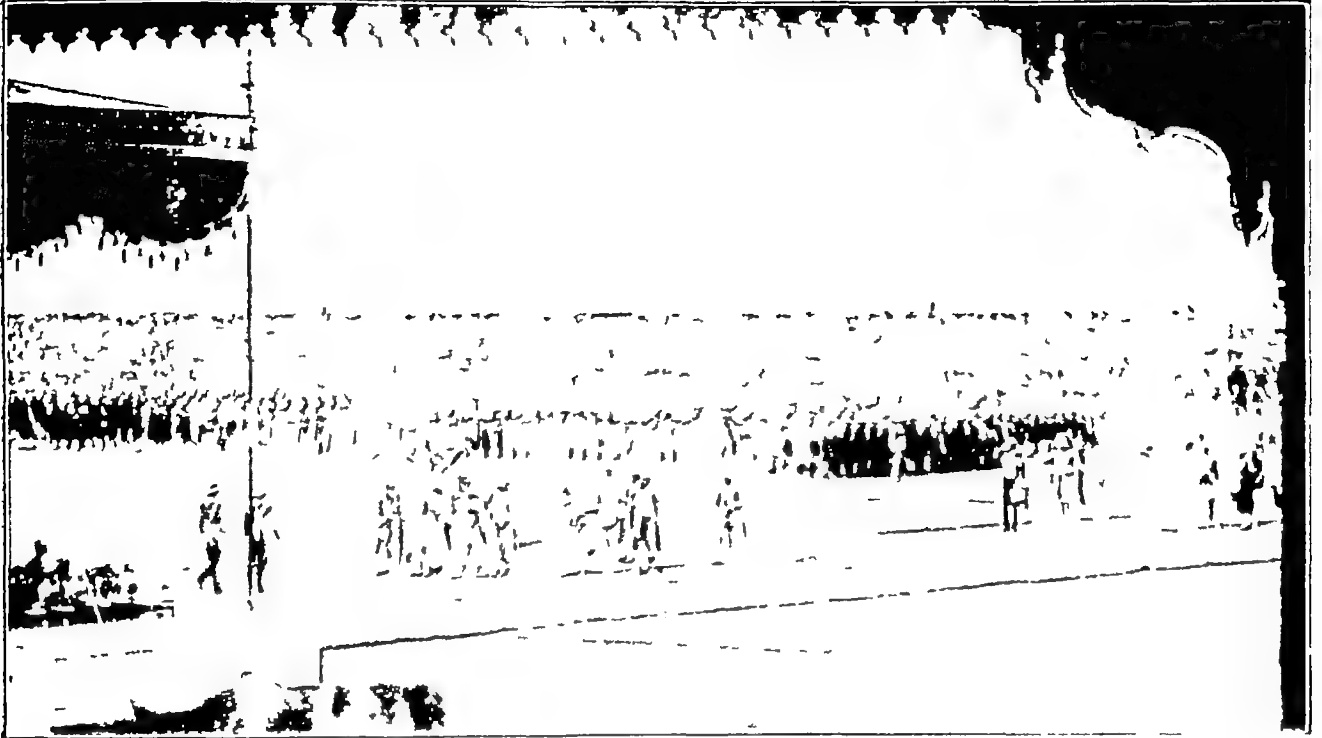
[illegible]

# Their Majesties at the Durbar.



THE KING EMPEROR AND QUEEN EMPRESS IN CORONATION ROBES

# The Great Coronation Durbar.



Their Majesties moving in Procession from the Durbar Shamiana to the Royal Pavilion after the homage of the Chiefs.
*[illegible]*

The King Emperor and Queen Empress watching the Sports at the Badshahi Mela from the Fort.
*[illegible]*

# The Striking Scene in the Durbar Shamiana after the Coronation.



Immediately after the King Emperor's departure from the Durbar, just as the procession left from the one side the crowd rushed forward on the other and running to the Coronation Pavilion before the police or troops could stop them or prevent it ascended to the Royal Thrones and bowing and kneeling salaamed in adoration the place where the King Emperor and Queen Empress had stood a few minutes before.

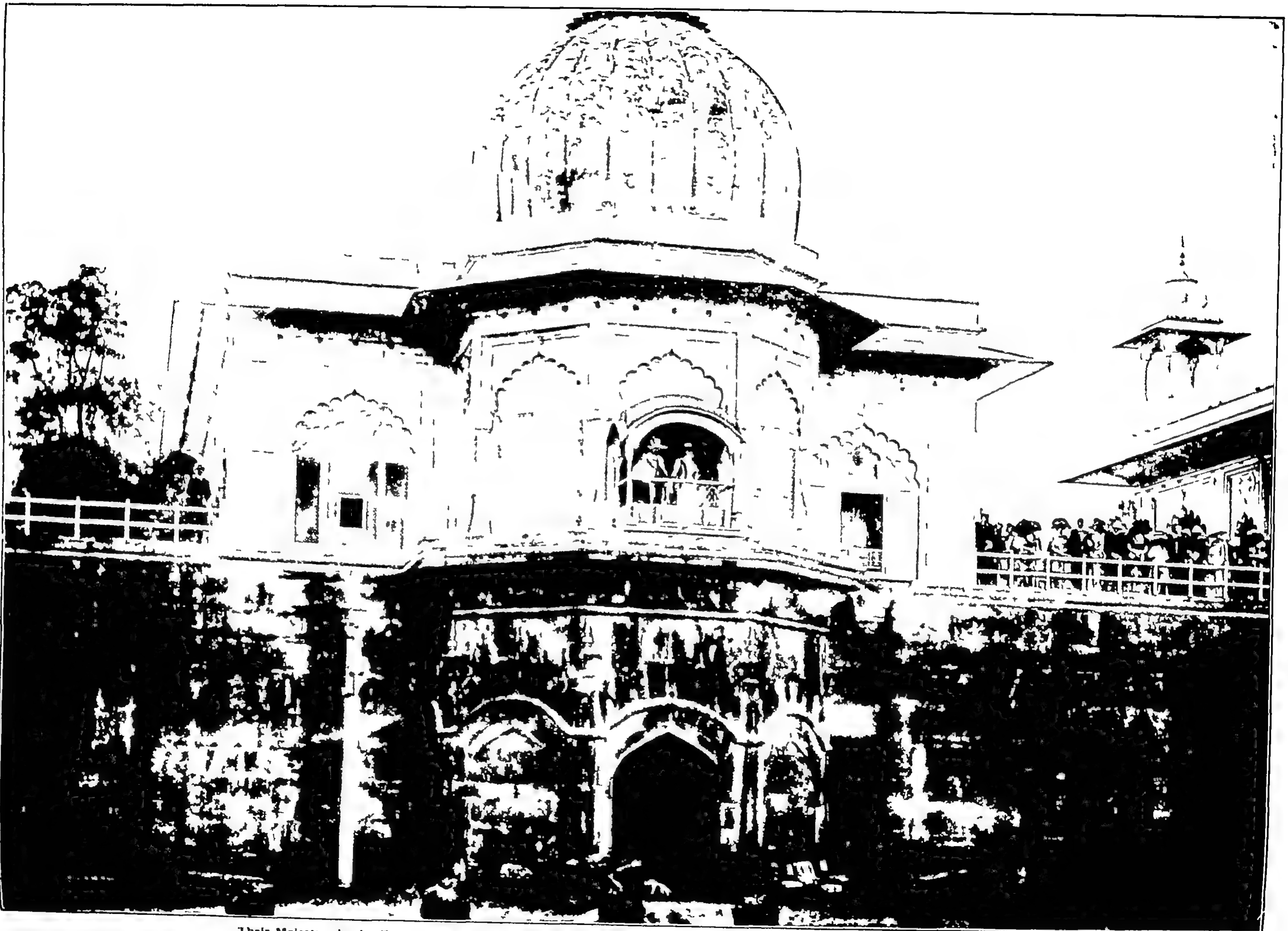
*[Drawn by F. Matania, the special artist of the "Sphere" at Delhi.]*

# The Garden Party in the Fort.

Her Majesty the Queen Empress. The Countess of Shaftesbury ... ate ... fa...ng Her Majesty

Her Majesty The Queen Empress and ... Ha...rge ... ng at the Garden Party

Ph... by ... & ... Co...



Their Majesties in the Zer Jharokha at the Fort where the Mogul Emperors used to appear before the people at certain times

# Scenes at the Coronation Durbar at Delhi.

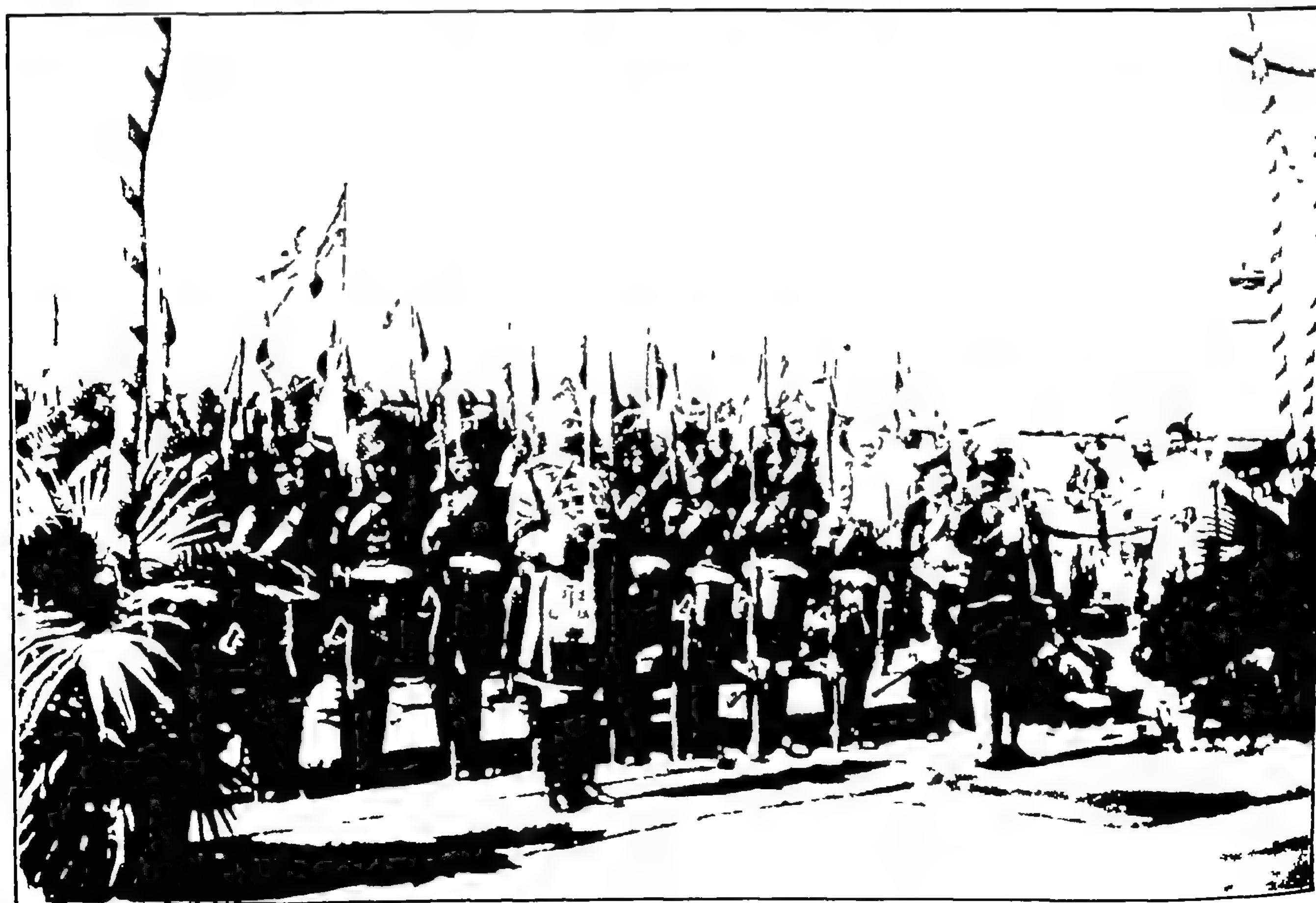
The Sikh Guru or High Priest riding in state with [illegible] attendants

THE MAHARAJA OF JAIPUR'S LANCERS [illegible]

[illegible]

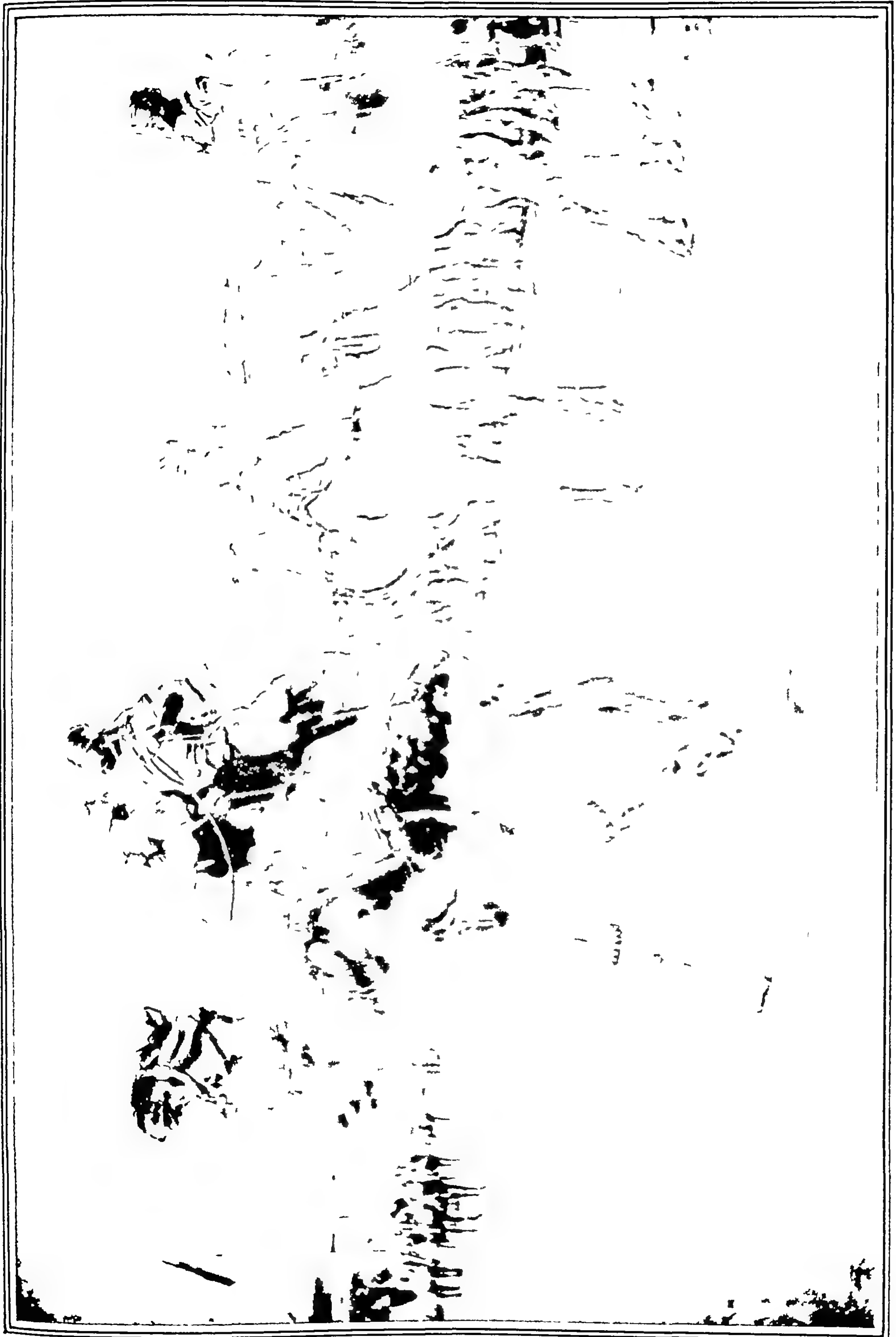
# H. E. The Viceroy returns the visits of the Chiefs.

H E The Viceroy returning the visit of H H The Maharaja of Indore to H M The King Emperor



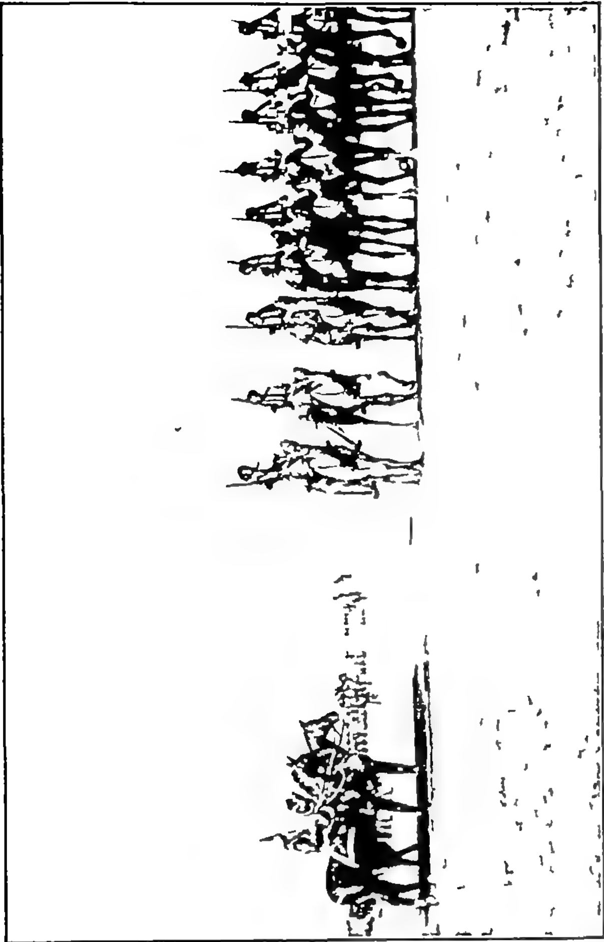
The Bodyguard of the Nawab of Padhanpur saluting H E The Viceroy

# The Bahawalpur Camelry at the Review.

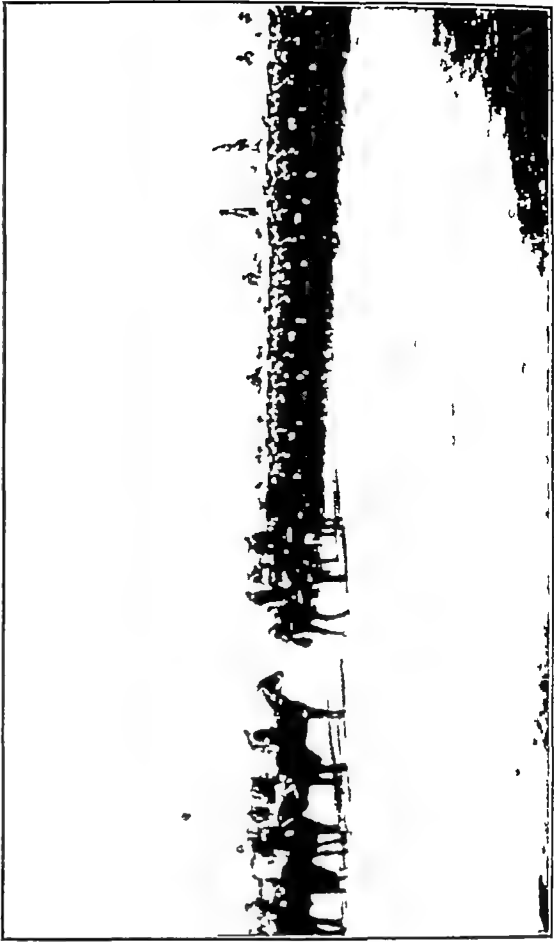


The young Nawab of Bahawalpur at the head of his Camel Corps [illegible] the King Emperor at the Review

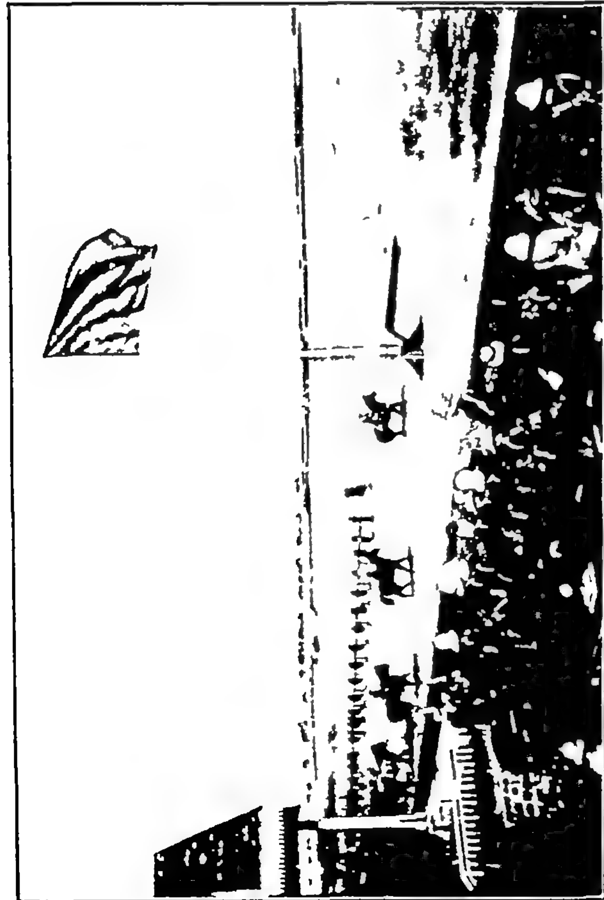
# Scenes at the Review, December 14th, 1911.



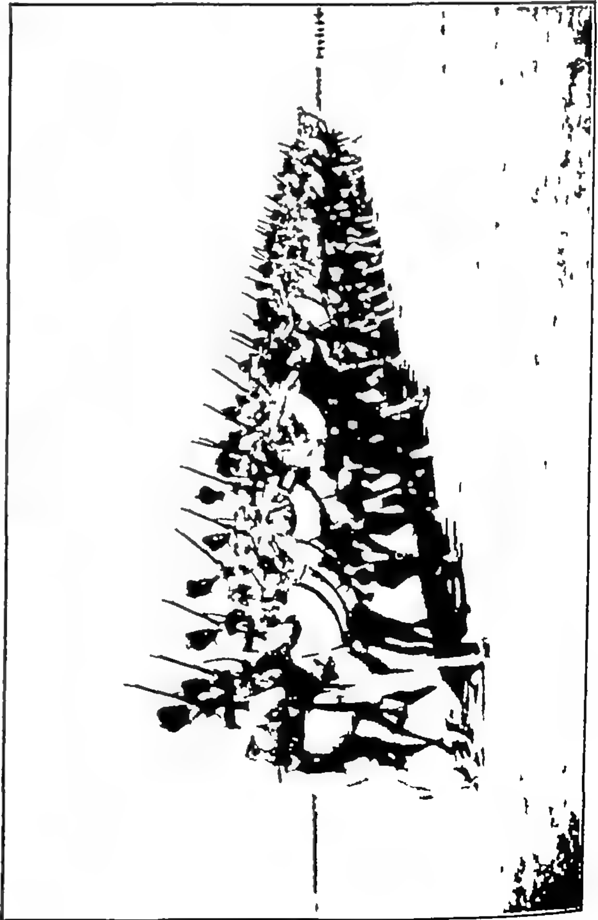
The Bikanir Camel Corps His Majesty taking the Salute
[Photo by the "Daily Mirror" London]



The March Past of the Troops
[Photo by [illegible] and Co.]



The King Emperor riding to the Saluting Base
[Photo by Major Hallon, Simla]



The Bikanir Camel Corps
[Photo by the "Daily Mirror" London]



HIS MAJESTY LAYING THE FOUNDATION STONE OF THE NEW CITY OF DELHI DECEMBER 15th 1911

# The Police Inspection and Departure from Delhi.

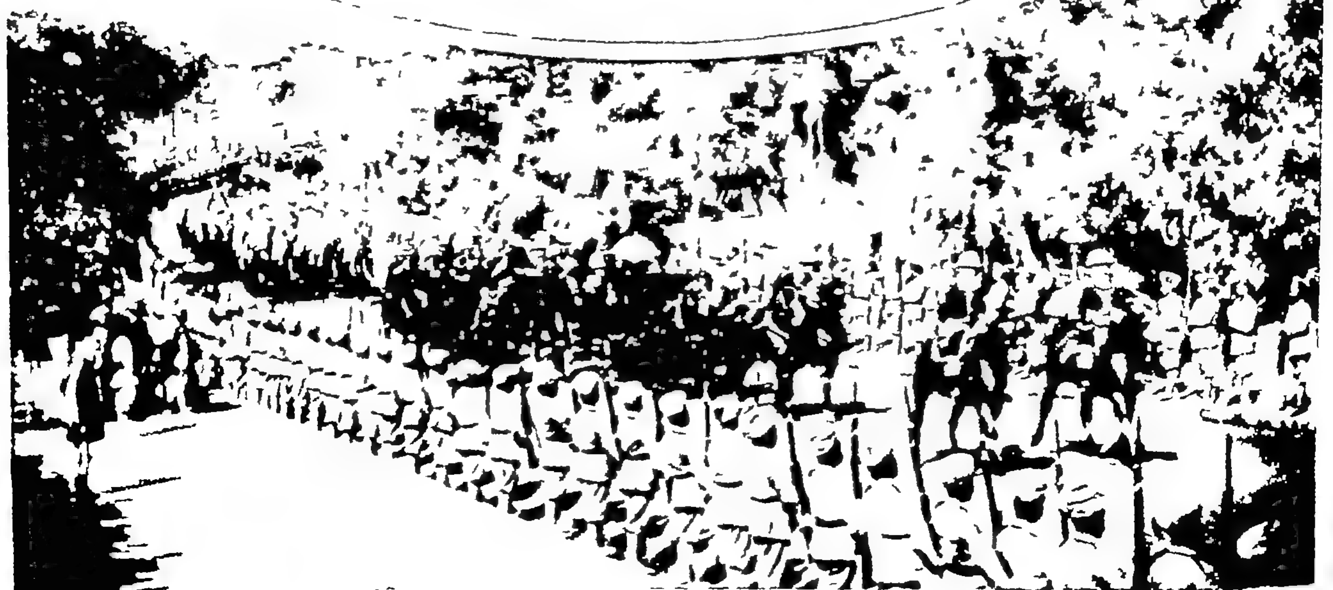




His Majesty at the Police Review
The King Emperor decorating Police Officials

*Photos by Johnston and Hoffmann.*





The Departure Their Majesties en route to the Railway Station

*[illegible]*



SIKH HORSEMEN AT THE DURBAR

# W. LESLIE & CO., Calcutta,

## HARDWARE AND METAL MERCHANTS,

### ENGINEERS AND CONTRACTORS.

*We Stock*:—

Machine and Engineers' Tools and Plant, Carpenters and Blacksmiths' Tools, Metals Steels, Brass and Copper Pipes Gas and Water Piping, Lifting and Hauling Tackle House Furnishings, Silver and Electro-Plate, Brass and Copper Fancy Goods, Stoves for Heating and Cooking and Utensils Fountains and Garden Furniture, Locks, Safes, Bedsteads and Furniture




HEAD OFFICE at 3, Chowringhee Road

*Agents* —

RUDGE-WHITWORTH BICYCLES,
RUDGE MOTOR BICYCLES,
BELSIZE AND HOTCHKISS MOTOR CARS
UNDERWOOD TYPEWRITERS,
CONTINENTAL LIGHTS,
and all accessories for same




BRANCH OFFICE —5, Chowringhee Road



WORKSHOPS —60 Dharamtala Street

*We undertake at our Works*
*(500 men employed)*

Blacksmiths, Fitters, Turners Foundry Work of all kinds Construction and Jobbing Work of any nature

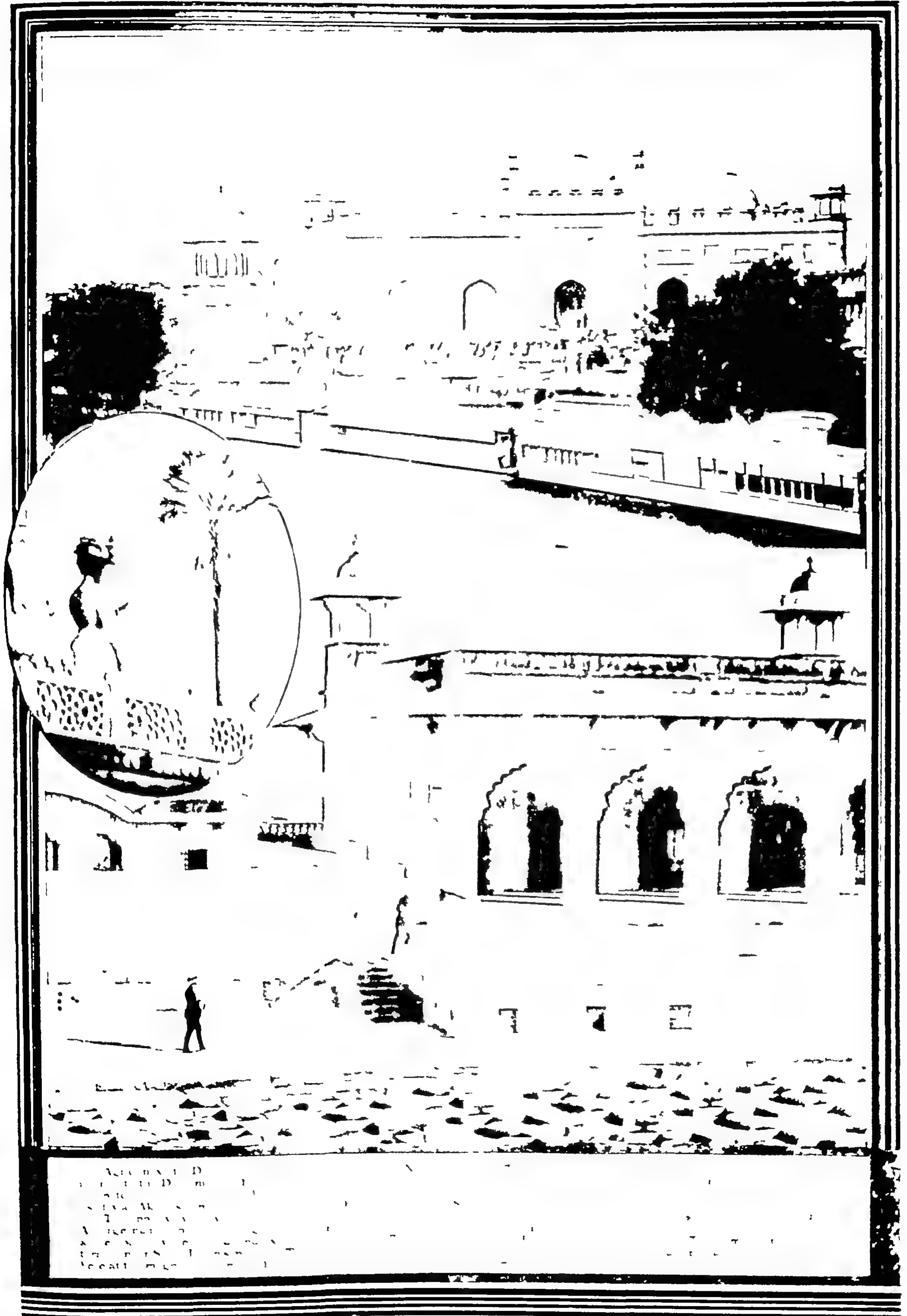
Plumbers Sanitary and Municipal Fittings Stocked and Work undertaken

**Quick Repairs Assured.**

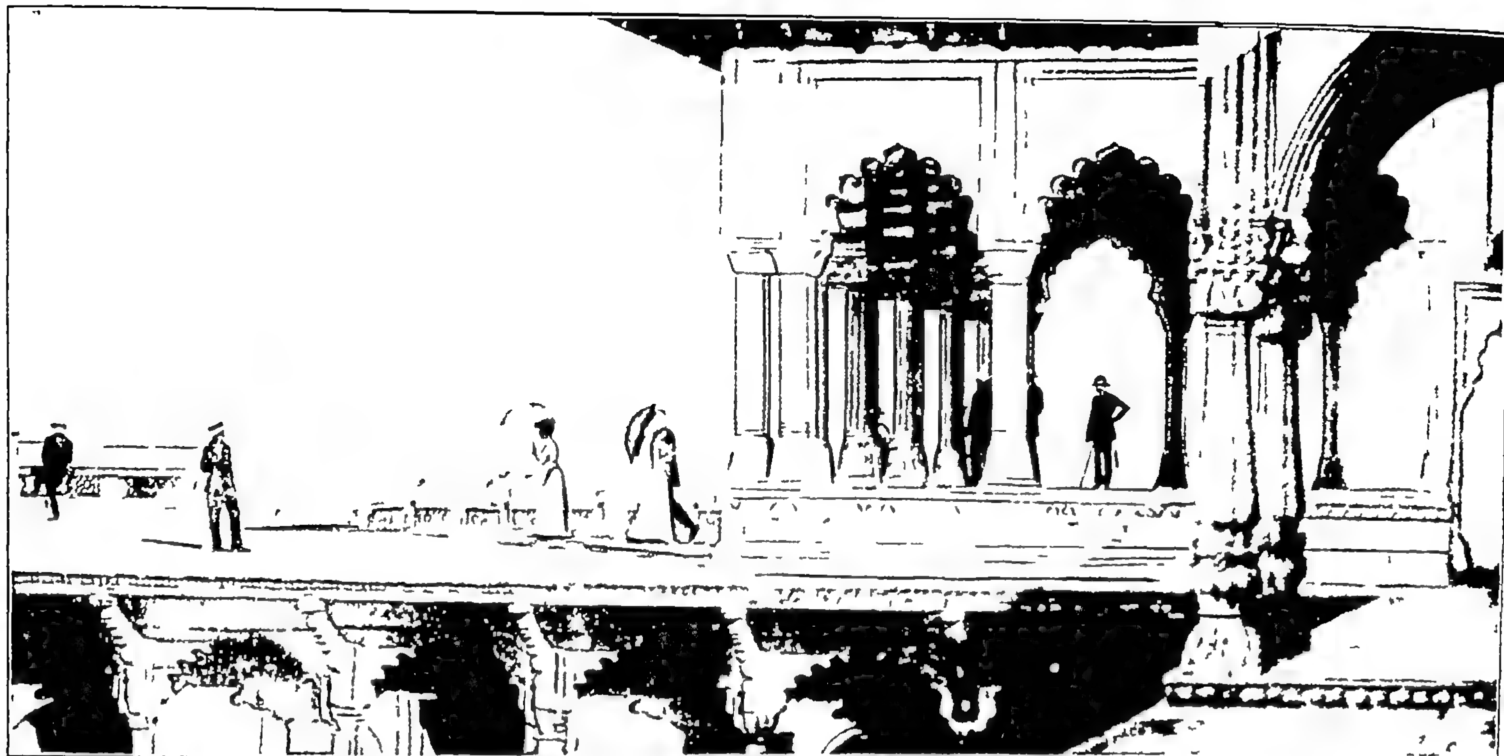
*Estimates on application*

ADDRESS Postal Box 56 | Telegraphic Metals | Telephone Nos 202 and 494

# Her Majesty the Queen-Empress at Agra.



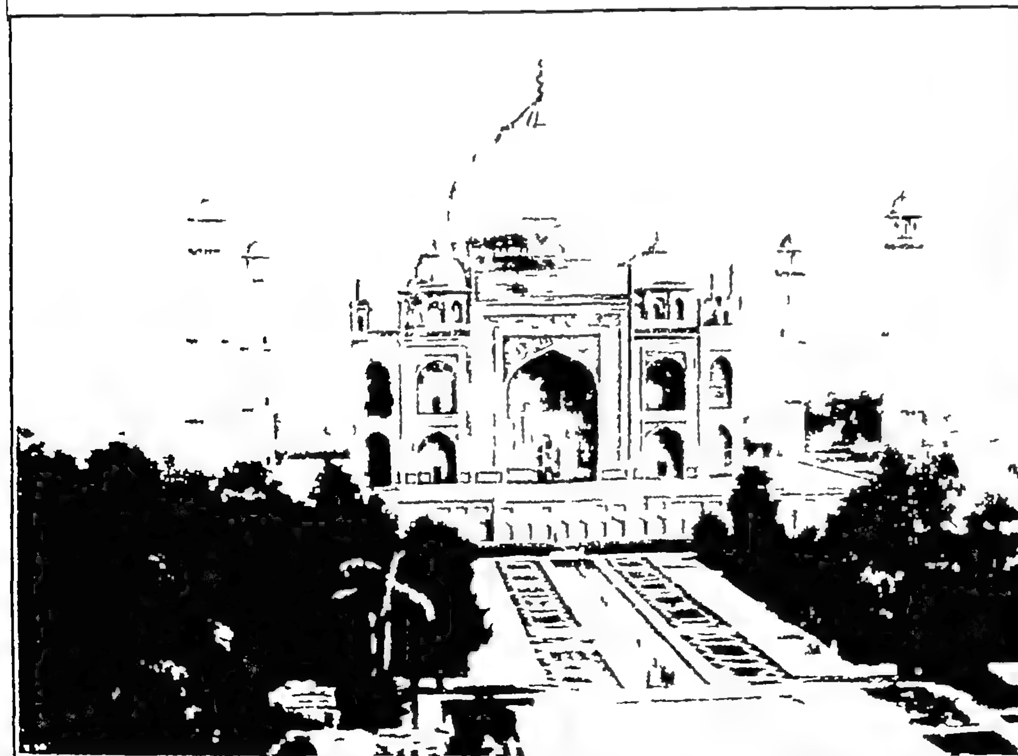
# Her Majesty the Queen-Empress at Agra.



HER MAJESTY THE QUEEN EMPRESS LOOKING OVER THE BUILDINGS INSIDE THE FORT

[*Photo by Illu trations Bu eau L ndon F (* ]

Agra is always connected with Shah Jehan and his wife Mumtaz Mahal to whose love the wo ld wes that magn fic nt tomb the T j Mah l. The Fort at Agra how v r wa in th main the work of Akbar who built the wall and many of the internal palaces. The beautiful Dewan i Kh the Pearl M que and some other buildings in the Fort w re built by Shah J h. In one of the marble palaces in the Fort looking over the river towards the T j Shah Jehan breathed h s l t after having been kept a cl se prison r in Agra Fort for eight year by his son A rungzeb who deposed him and succeeded to his throne





THE TAJ MAHAL BUILT BY SHAH J HAN AS A MAUSOLEUM FOR HIS BELOVED WIFE M MTAZ MAHAL

H re le b ried h and a d w fe in the mag ificent t mb wh ch in the words of a d t nguished author ngge is an ex n ite jew el ca ket in precious st nes." Twenty two year of labour and twenty thou nd workmen were d vot d to the building of th s splend d p e So perfect are it proport ons that it eems to be omething *fashioned* not built It is the *ne plus ul* a of Ind an rchitecture and the won ler and delight of a l who v it

The attendant of the T j Mahal who t k t Q n Empress s party round The man, who with the historic lantern is photographed at w w formerly a secret door ( nd is now a strict y p door) of the Taj Mahal is quite famed for k ow ledge of h story

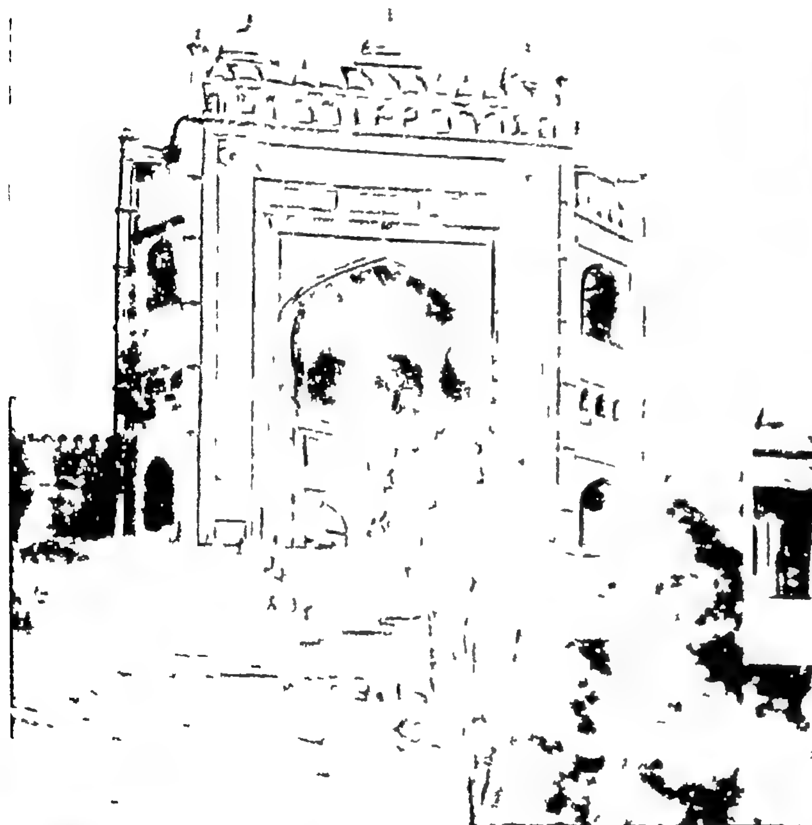
[*Photo by I. N A Staff Ph graph*

# Fatehpur-Sikri, visited by the Queen-Empress.

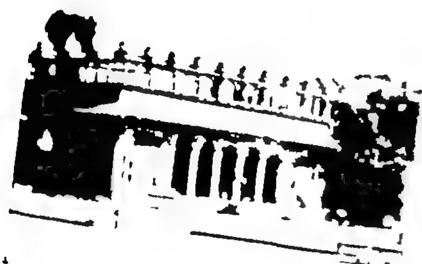
FATEHPUR SIKRI is the most beautiful of India's deserted cities. It was commenced by Akbar in 1570 and was deserted by his son Jehangir. It hold no dark record of blood-shed and violence with its aftermath of human sorrow. The early days of this city of Akbar are shrouded in mystery. Only the quaint old fable of Akbar's visit to Salim Chisti's hermit thought



THE PA[illegible] MAHAL AND HATHI [illegible] FROM THE SHOOTING TO[illegible]ER

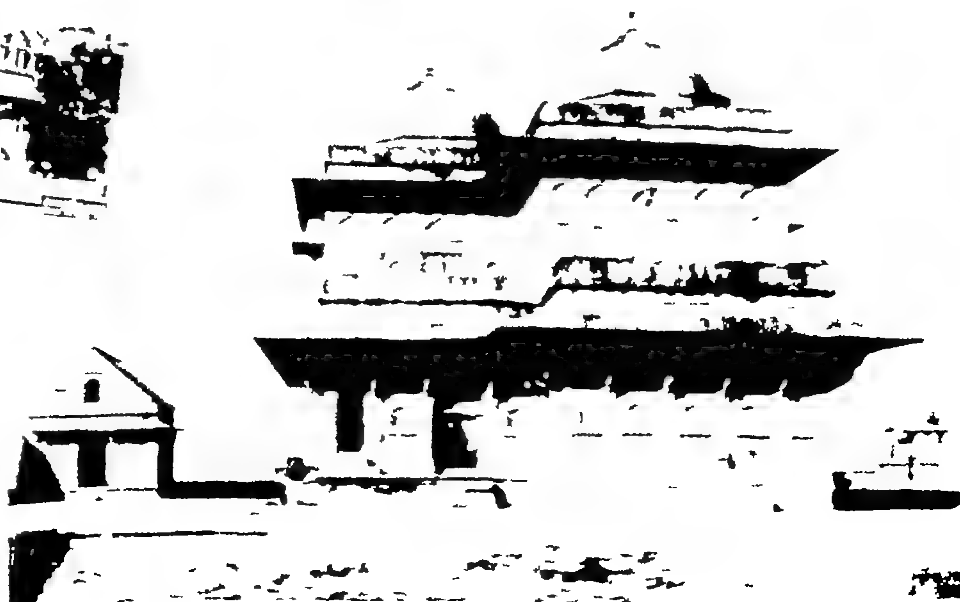


SHEIKH SALIM CHISTI'S TOMB

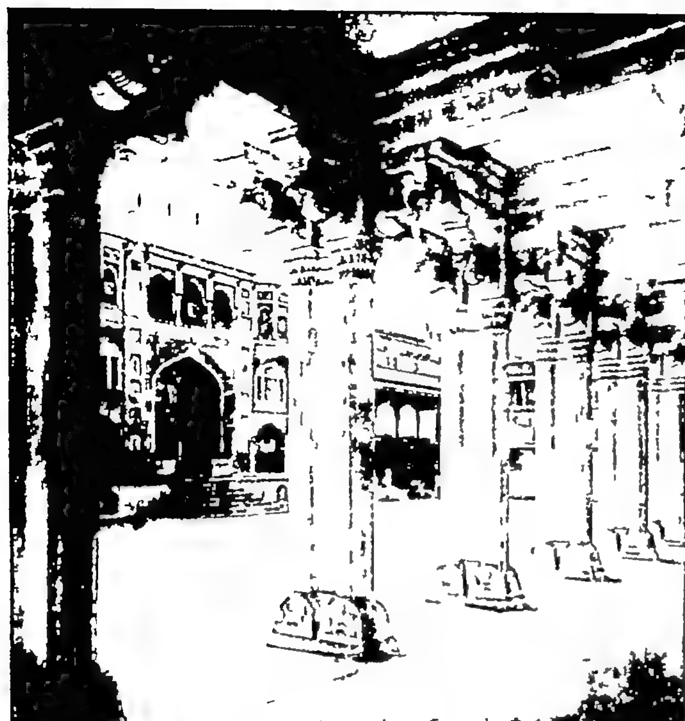


THE JAMA [illegible]

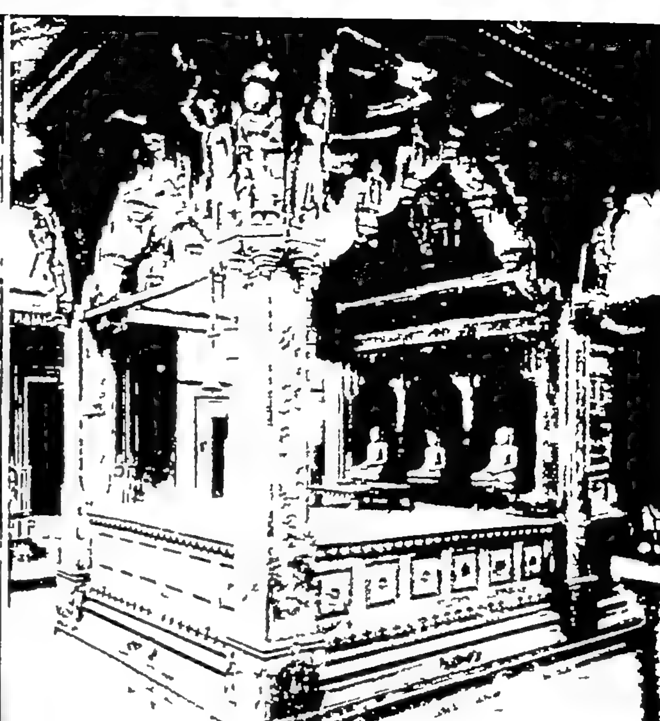
[illegible]



# Scenes at Jaipur visited by the Queen-Empress.



Hall of Audience Amber



Sanganeer Temple Jaipur

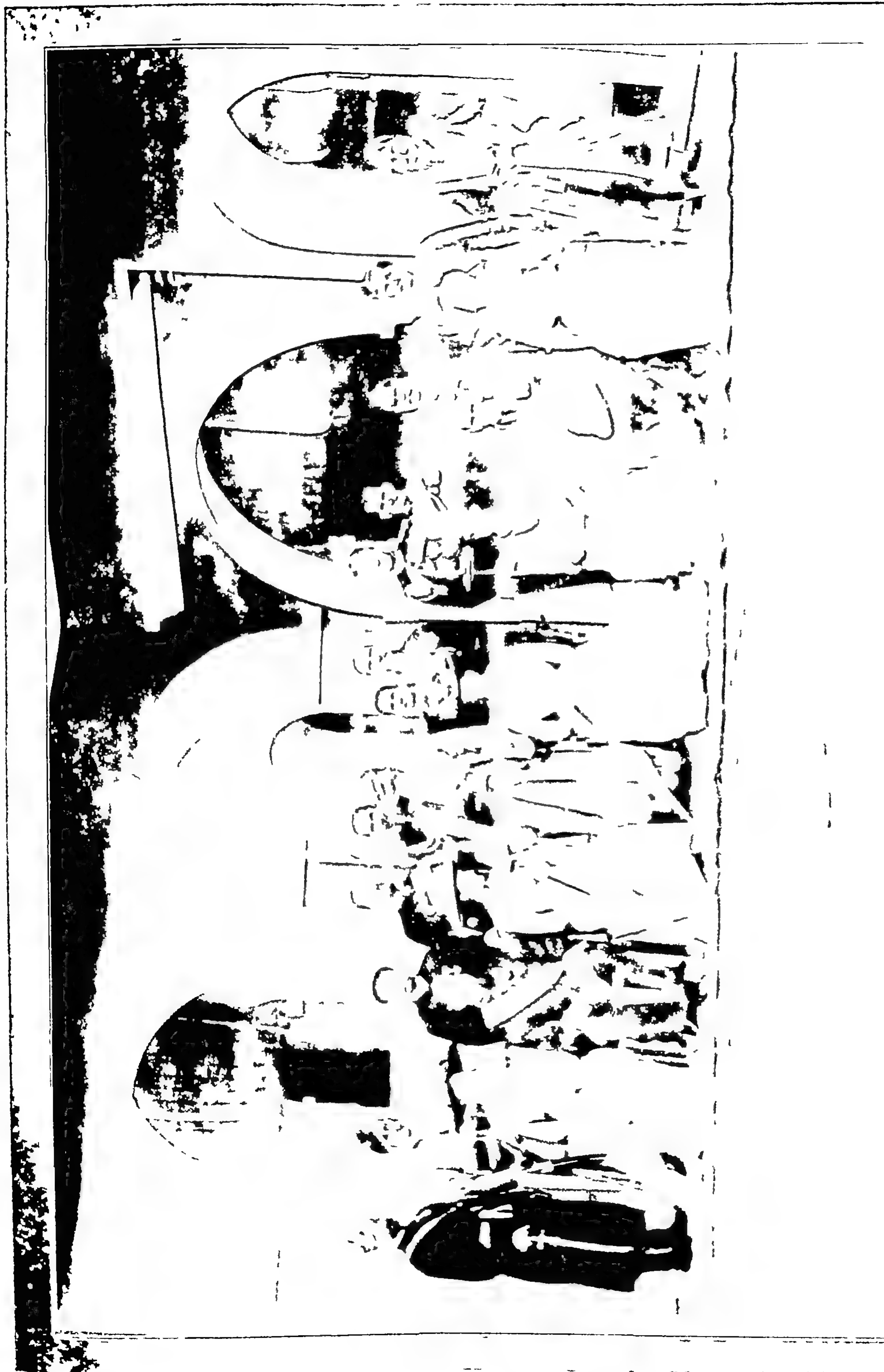
[*Photos by J[illegible] and Hoffm[illegible] Ca[illegible]*]

Temples in the Galta Pass Amber

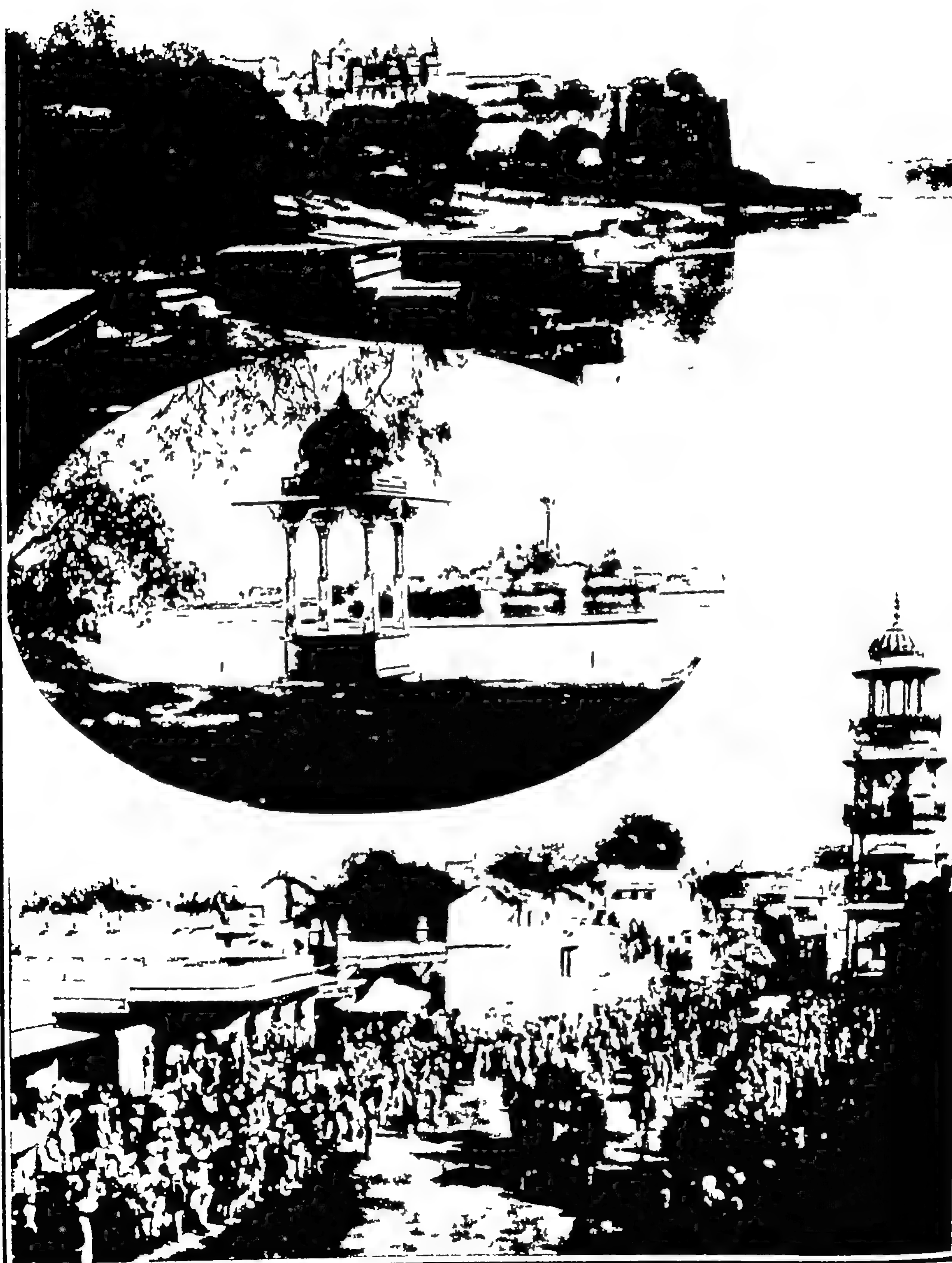
Amber is the ancient capital and Jaipur the modern one of the State of Jaipur, which covers an area of [illegible] square miles of Rajputana. Amber was founded in the 11th Century and remained the capital of Jaipur until [illegible]. Its picturesque situation on a [illegible] of a rocky mountain gorge in which there is a pretty lake has attracted the admiration of travellers. The Dewan-i-Am or Hall of Audience is a noble specimen of R[illegible] architecture. It magnificence attracted the envy of Jehangir and Mirza Raja of Jaipur to save his great work from destruction [illegible]. Amber formerly contained many fine temples but most are now in ruins.

The Sanganeer Temple is [illegible] miles south of Jaipur. It has three courts in [illegible] of which visitors are allowed to go, but the third is sacred and no visitors are allowed to enter.

Her Majesty The Queen-Empress at Kotah.



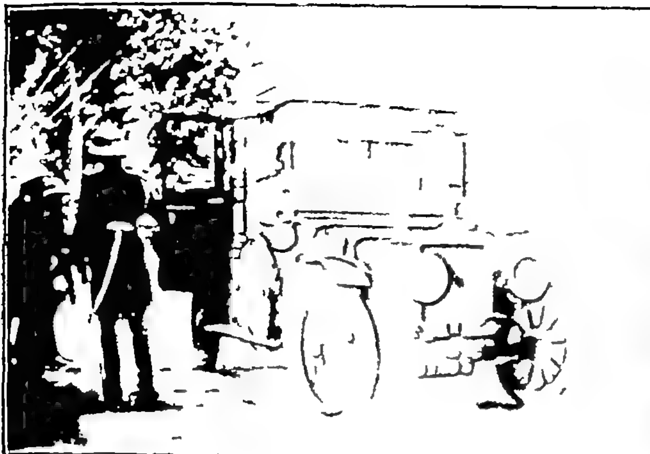
# Her Majesty The Queen-Empress at Kotah.



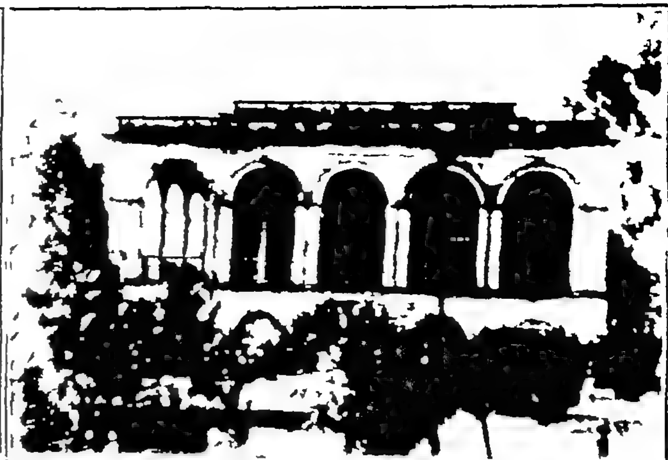
Kotah is a Rajputana State which is ruled over by H. H. Maharao Sir Umed Singh Bahadur, G.C.S.I., G.C.I.E., who holds the honorary rank of Major in the British Army. The upper view shows the Fort and Palace at Kotah, while the inset view shows the palace in the lake. This palace is very prettily situated in the middle of a small lake and makes a delightful resort in the hot weather. In the lower picture Her Majesty is shown driving through the streets of Kotah. This picture gives a very good idea of the appearance of an Indian city in which European ideas of building and architecture have not yet been adopted.

[Photo by Bourne & Shepherd, India.

# His Majesty visits "The Little House" at Arrah



His Majesty motoring to Arrah House



The [illegible] House

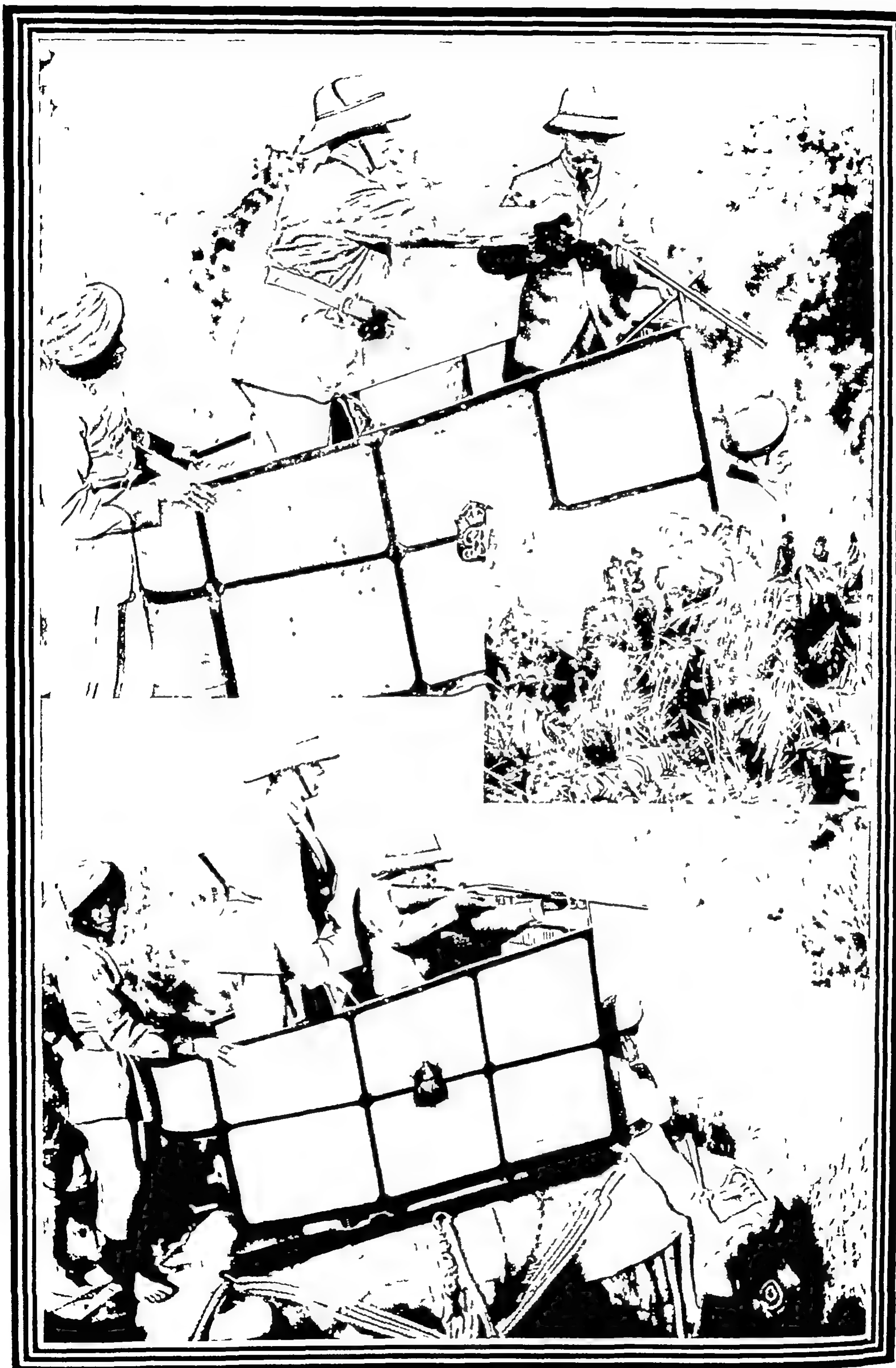
His Majesty the King visite[d] the historic little [illegible] Arrah situated in the compound of the house [illegible] by the District Judge. The house now belongs [illegible] the Maharaja of Dumraon but during the dark days [illegible] the Mutiny it afforded refuge to about [illegible] persons [illegible] and Indians. Although hemmed in by the mut[ineers] on all sides they maintained their stronghold for [illegible] days digging a deep well in the ground floor of the building with bayonets and knives to supply them with water. The well has been recently filled in with earth but [illegible] still [illegible]. An old Indian who was [illegible] one of [illegible] of the party is still living to relate the [illegible] the siege and how he acted as a secret messenger [illegible] evening [illegible]

[illegible]



[illegible]

# The King-Emperor's Shoot in Nepal



Christmas morning in the Jungle  Inset is a picture of the tiger shot by His Majesty the King Emperor on Christmas morning.

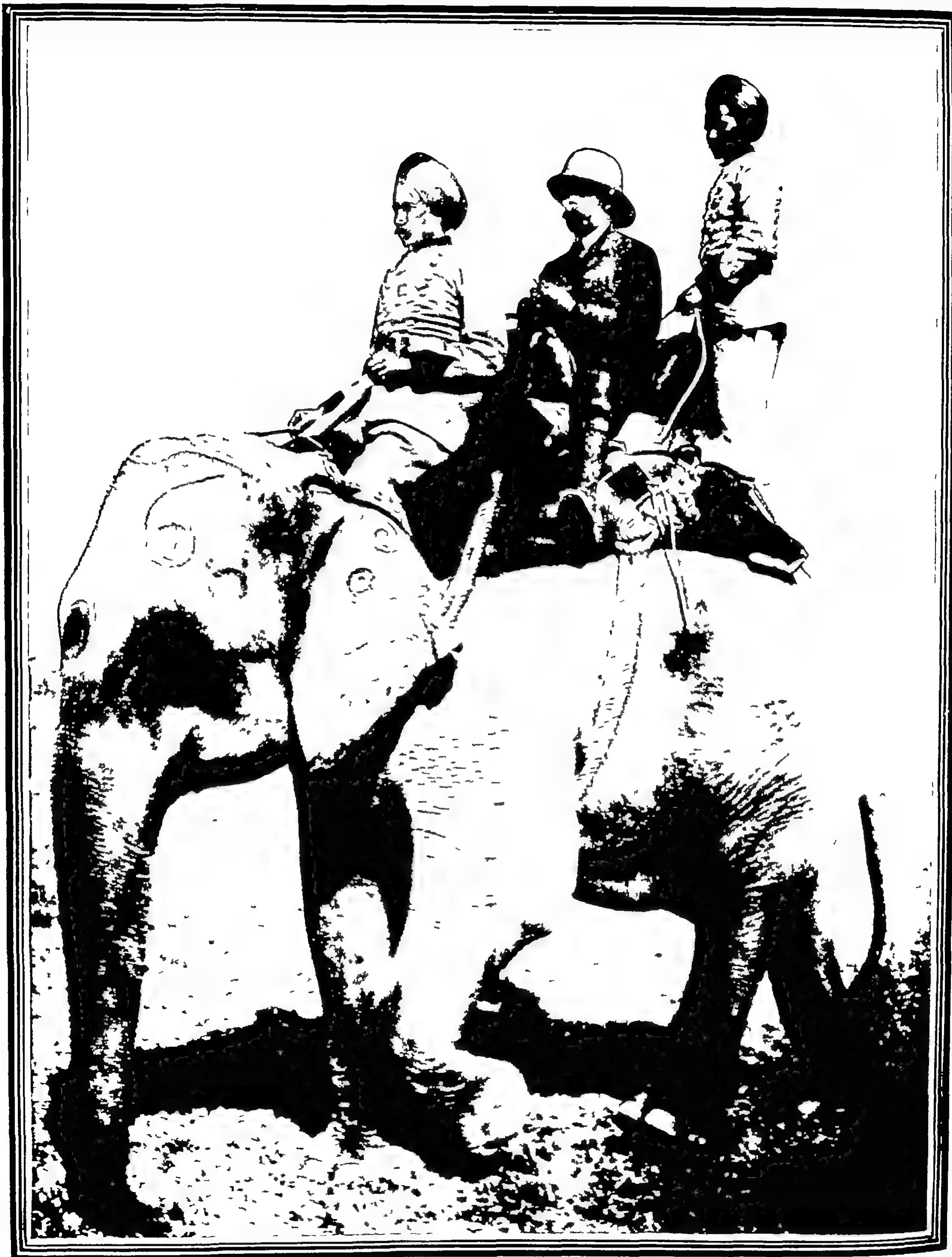
[Photos by Ernest Brooks]

# The King-Emperor's Shoot in Nepal.



[illegible]

# H. M. The King-Emperor in Nepal.



HIS MAJESTY RIDING BACK TO CAMP AFTEP A SUCCESSFUL DAY S SHOOT IN THE JUNGLE

# The King-Emperor's Shoot in Nepal.

His Majesty the King-Emperor at the [illegible]



The Royal Shooting Party [illegible] King-Emperor and the Maharaja [illegible]

# The King-Emperor's Shoot in Nepal.





A good day's Bag—2 Rhinoceri 2 Bears and 7 Tigers
Viewing a tiger that has just fallen to His Majesty's gun
One of the Rhinoceri shot by the King Emperor ☞

[Photos by Herzog and Higgins, Mhow.]

# The King-Emperor's Shoot in Nepal.



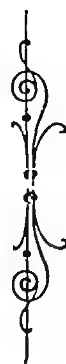
His Majesty the King-Emperor and [illegible] ... is seen a portion of the army of beaters [illegible]

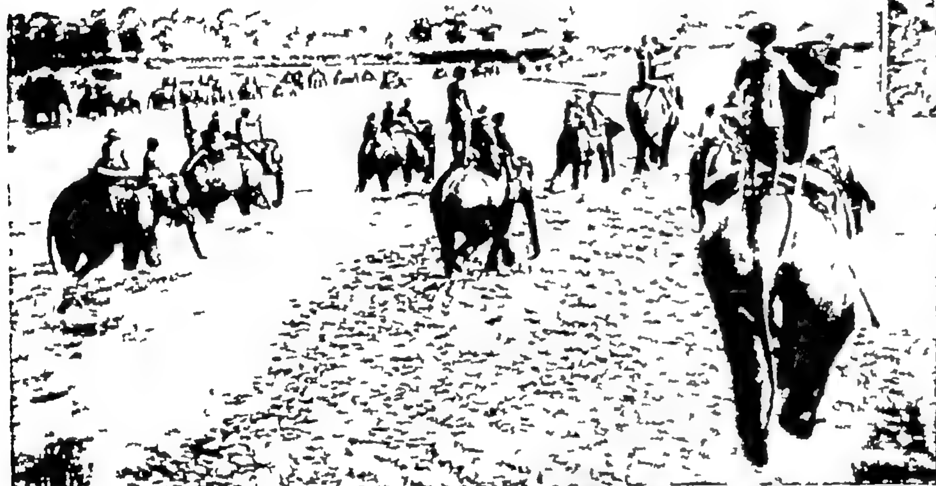
# The King-Emperor's Shoot in Nepal.

This picture shows His Majesty the King-Emperor (on the large elephant on the right) and the Maharaja Sir Chandra Shamsher Jung after having rounded up and shot three fine tigers

*[Photo by Herzog and Higgins, Mhow.]*







The shooting party crossing the Rapti River

*[Photo by Herzog and Higgins, Mhow.]*



Loading a dead tiger on to the pad elephant



Elephants and beaters crossing the Rapti River to take up their positions. Note the way the driver mounts the elephant

*[Photo by T. K. Fratt, Calcutta.]*

Four tigers and one bear which have fallen to H. M. The King-Emperor's gun

*[Photo by Herzog and Higgins, Mhow.]*

# The King-Emperor's Shoot in Nepal.



# The King-Emperor in the Nepal Jungle.



**Waiting for Khubber among the long grass**
*[Photo by Herzog and Higgins Mhow]*



**Motoring in the Jungle**
*[Photo by T R Pratt Calcutta]*

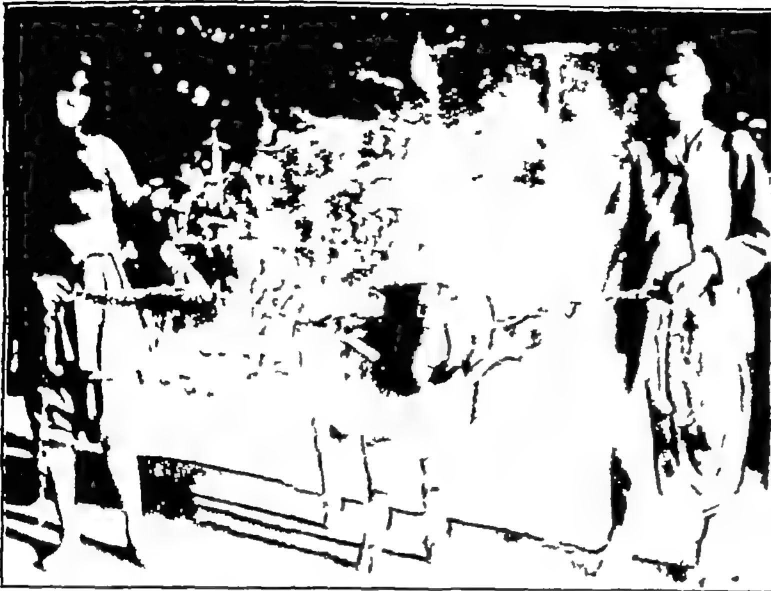
The kind of country over which the King Emperor and the Maharaja of Nepal shot during His Majesty's visit to Nepal is very well shown in these pictures. The Royal Party shot for four days on sloping country near the Rapti River where a splendid view of the vast Himalayas with peaks rising to 24,000 or 25,000 feet could almost always be obtained. The next move was to Khasra, seven or eight miles further up the country, where the scenery and forest surroundings were even more beautiful. The giant jungle grass which almost hides the elephants as they crush their way through it was frequently met with and one of these pictures gives a very good idea of its height. The difficulties too of motoring in the jungle are also well illustrated.

**IN THE NEPAL JUNGLE, EARLY MORNING**

Every evening at sunset a thick mist descends and blots out the whole landscape. All the time the King Emperor was in Nepal no shooting was possible until 10 A M owing to the mists

*[Photo by Herzog and Higgins Mhow]*

# Animals Presented to His Majesty by the Nepal Durbar.



A Fighting Ram



[illegible]



A Thibetan [illegible]





Specimen of a [illegible]



[illegible]

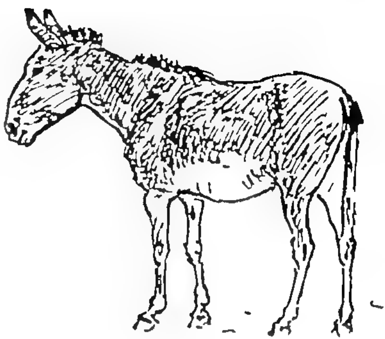


[illegible]

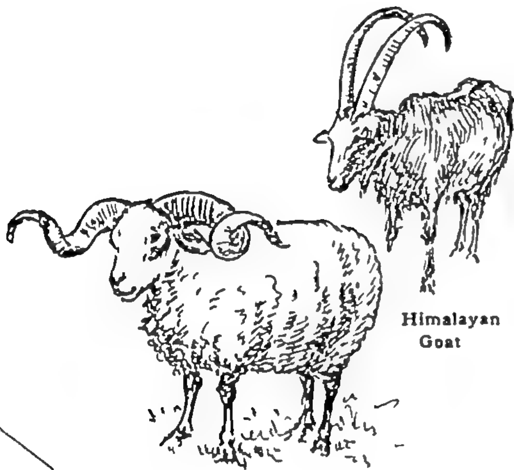
# Animals Presented to His Majesty by the Nepal Durbar.



Nepalese Fighting Rams
[Phot by T R Pratt Calcutta ]



The Kiang or Thib tan Wild Ass



Himalayan Goat

Mountain Sheep



The Baby Elephant
[Phot. by T R Pratt Cal utt ]

THE MAHARAJA OF NEPAL S FALCONERS



A Young Rhinoceros

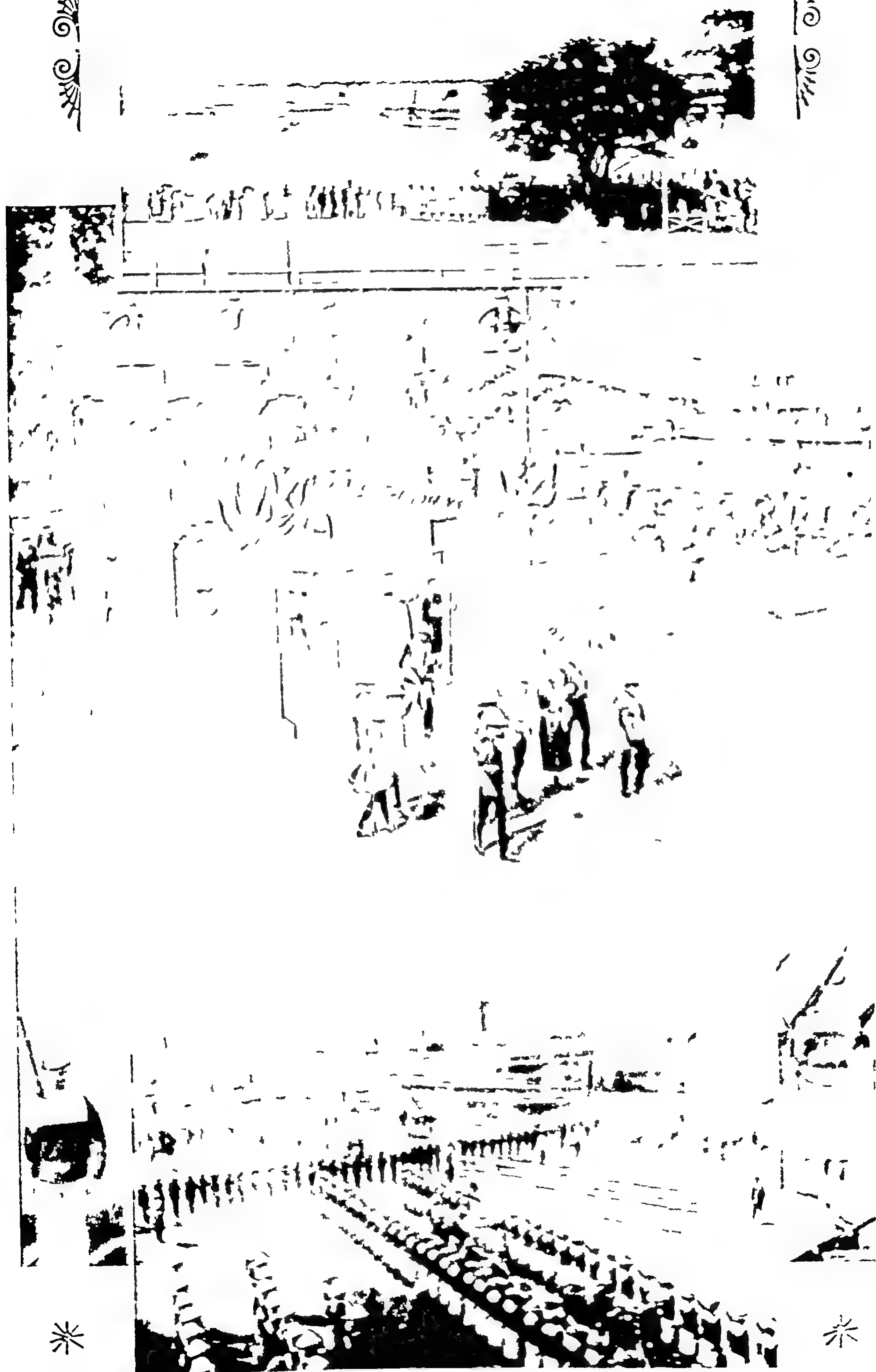


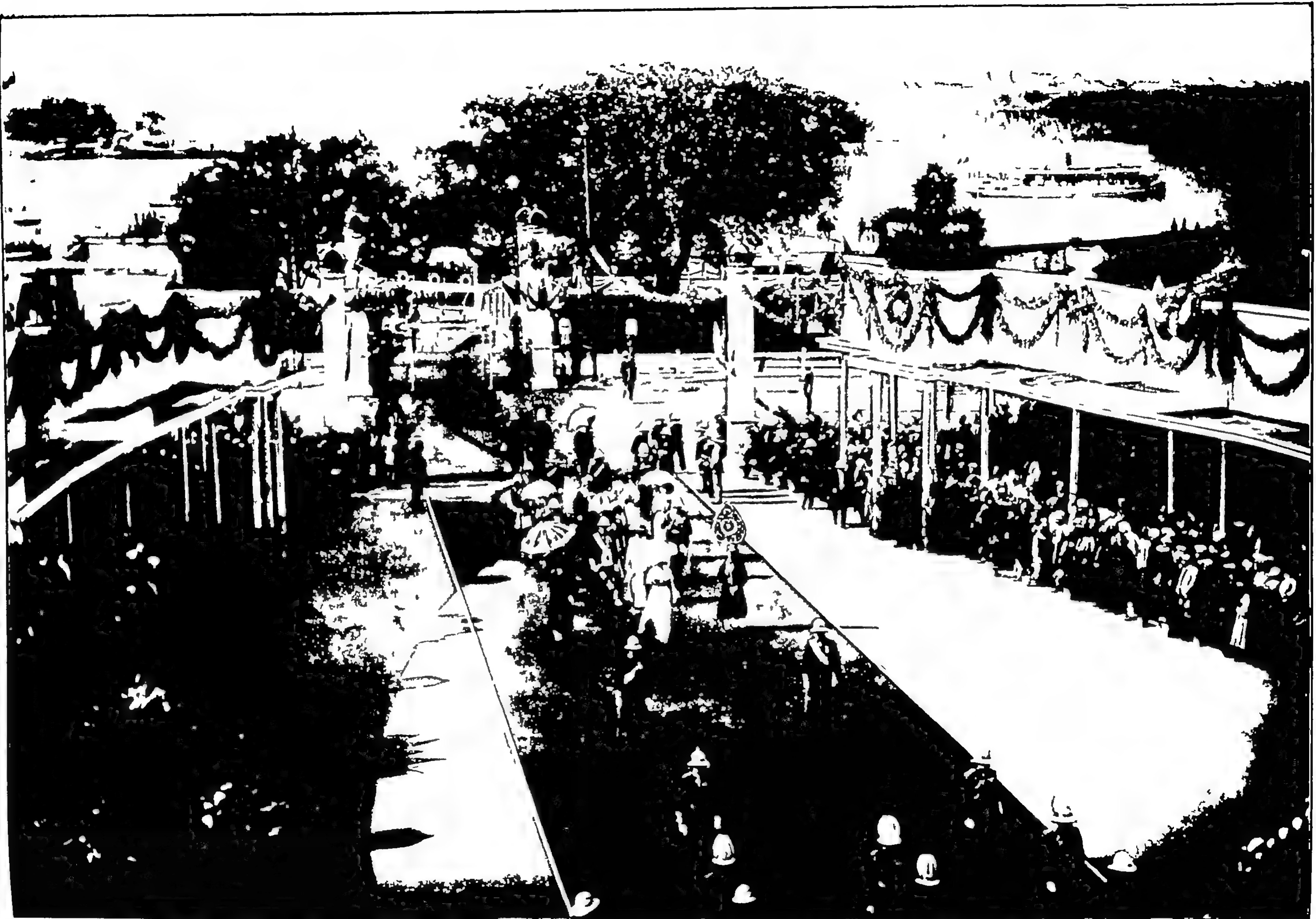
[Ph by T P Pr Calcutt ]



A Leopard Cat

# The Arrival of Their Majesties at Calcutta.



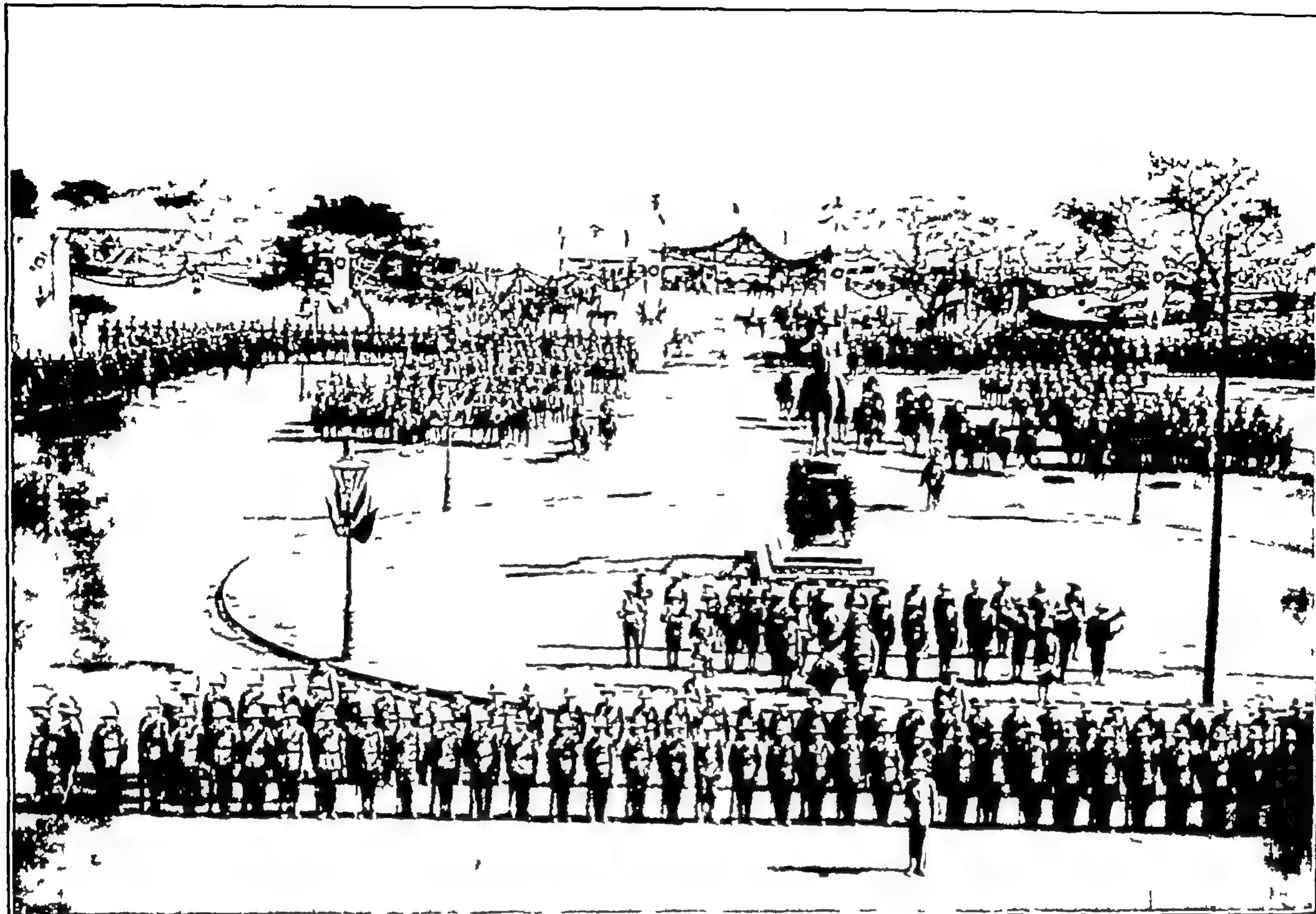


Their Imperial Majesties proceeding to the Thrones erected in the Amphitheatre at Prinsep's Ghat, to receive the address of welcome

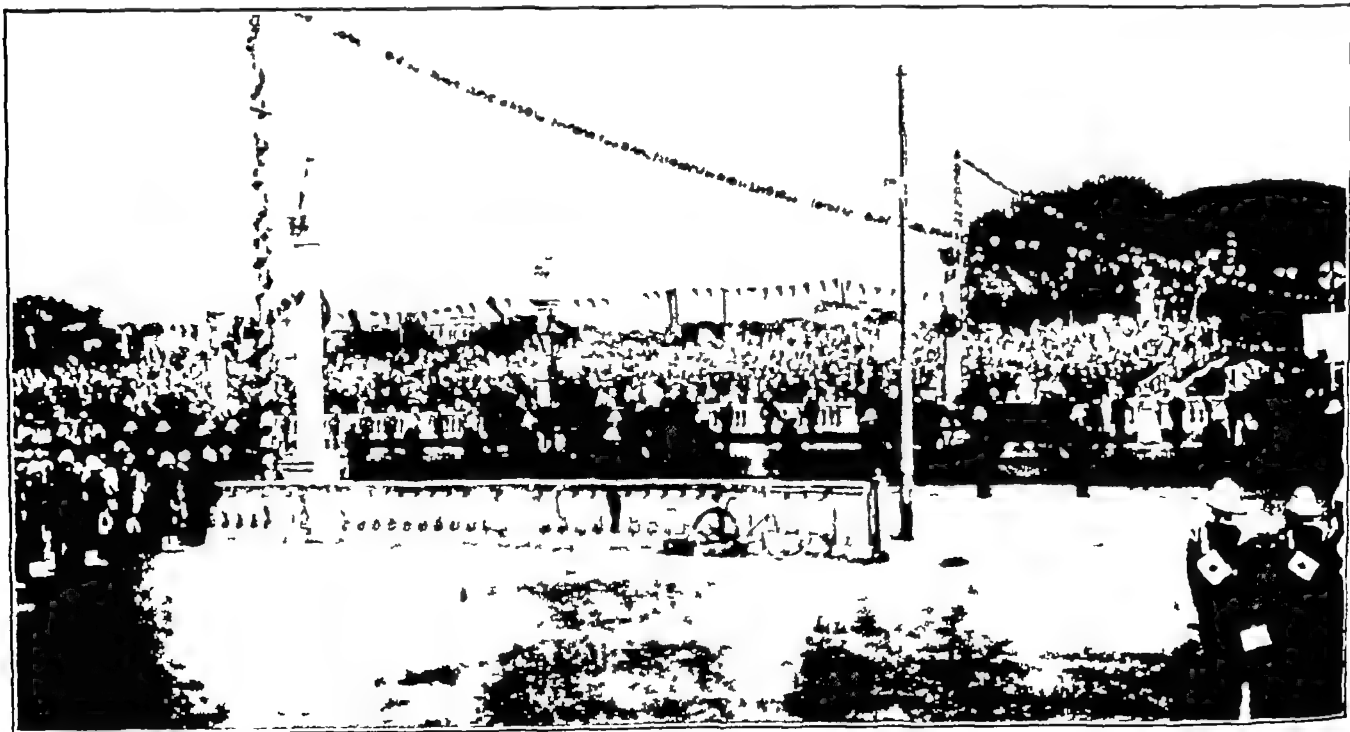
Phot. by A. Tait & Co.



# Their Imperial Majesties in Calcutta.



Inspecting the Guard-of-Honour of the 1st Calcutta Volunteer R[illegible] at Prinsep's Ghat. His Majesty is on the extreme left
[Photo by Calcutta Ph[illegible] C[illegible]]

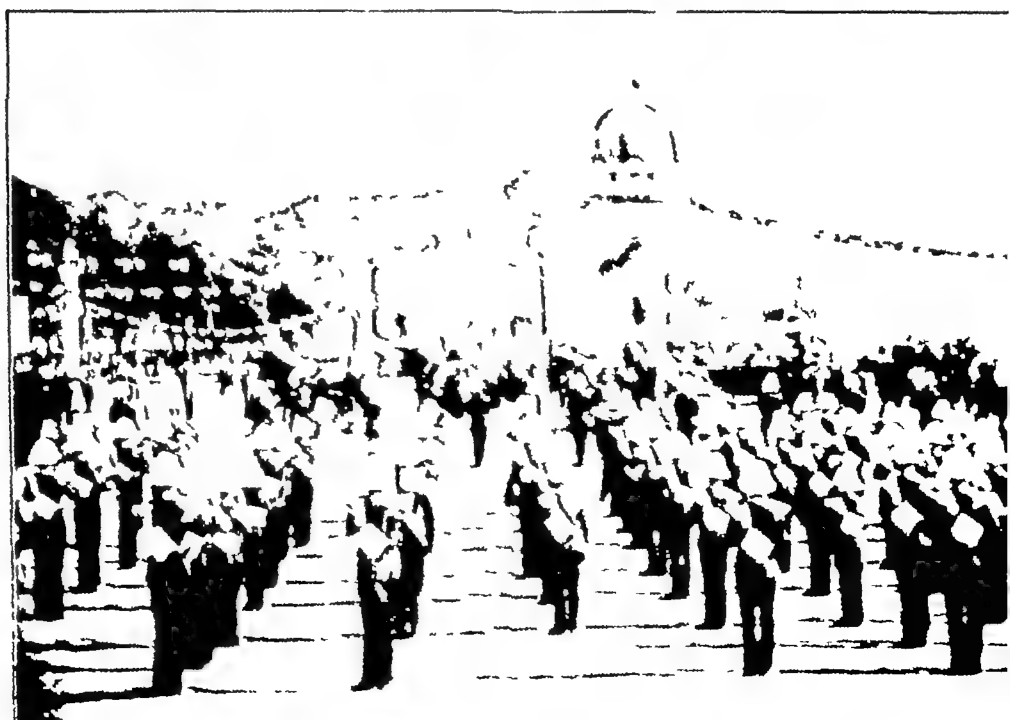


The Great Assemblage of School Children on the Red Road to witness the arrival of Their Majesties
[From a Ph[illegible]]

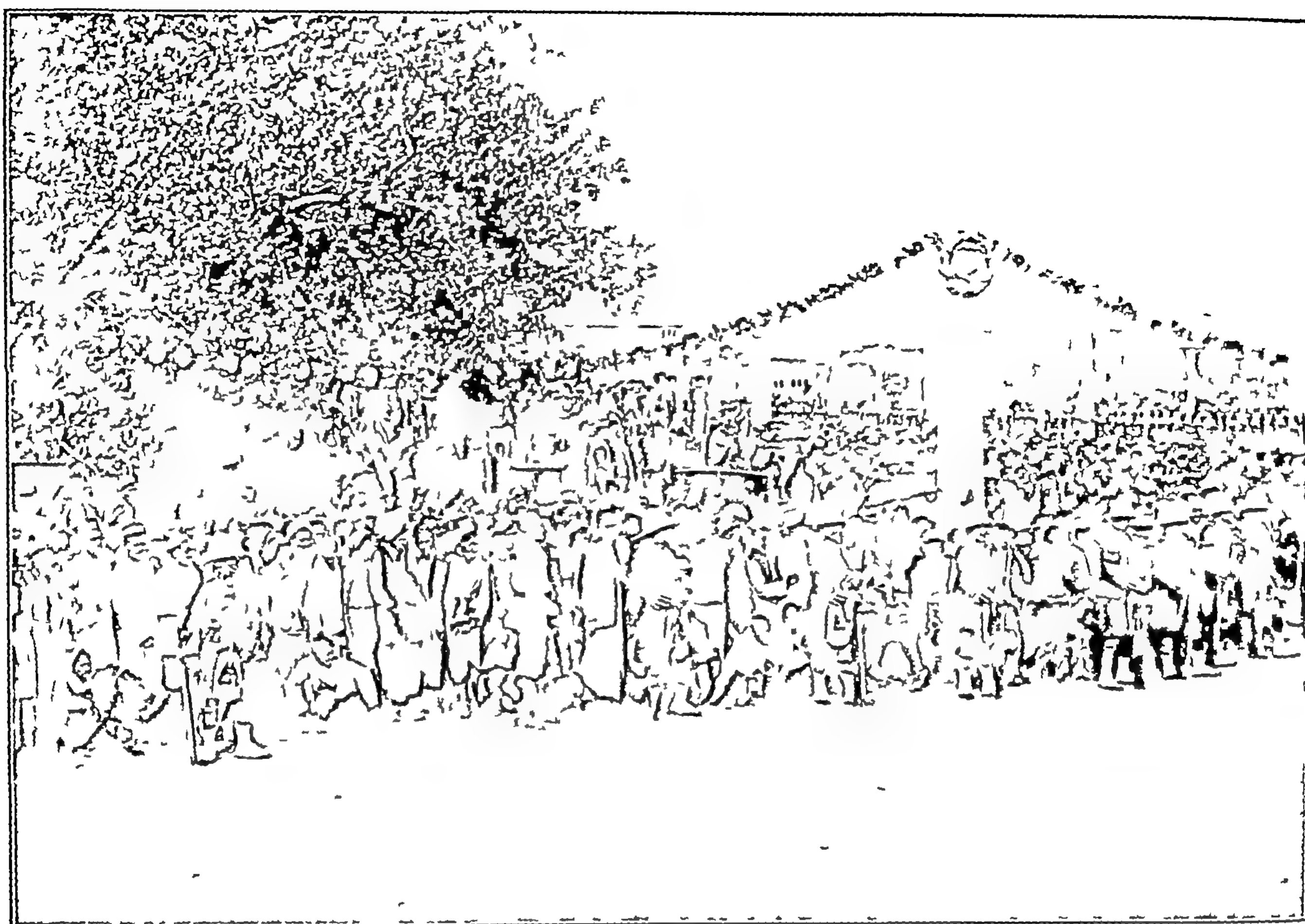
# Their Imperial Majesties in Calcutta



The Imperial [illegible]

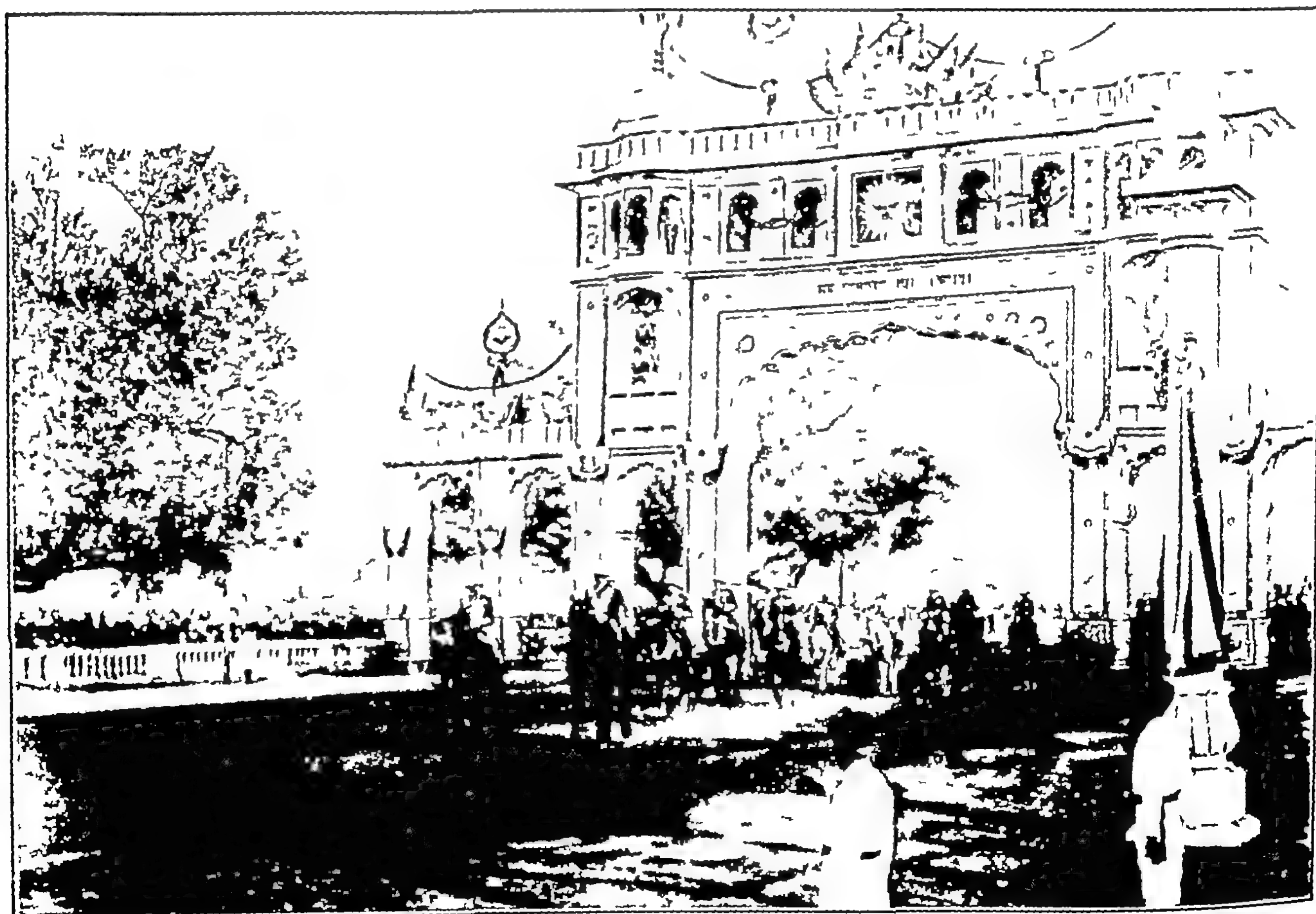


# Their Imperial Majesties in Calcutta.



The crowd in the Red Road awaiting the arrival of Their Majesties

[illegible]



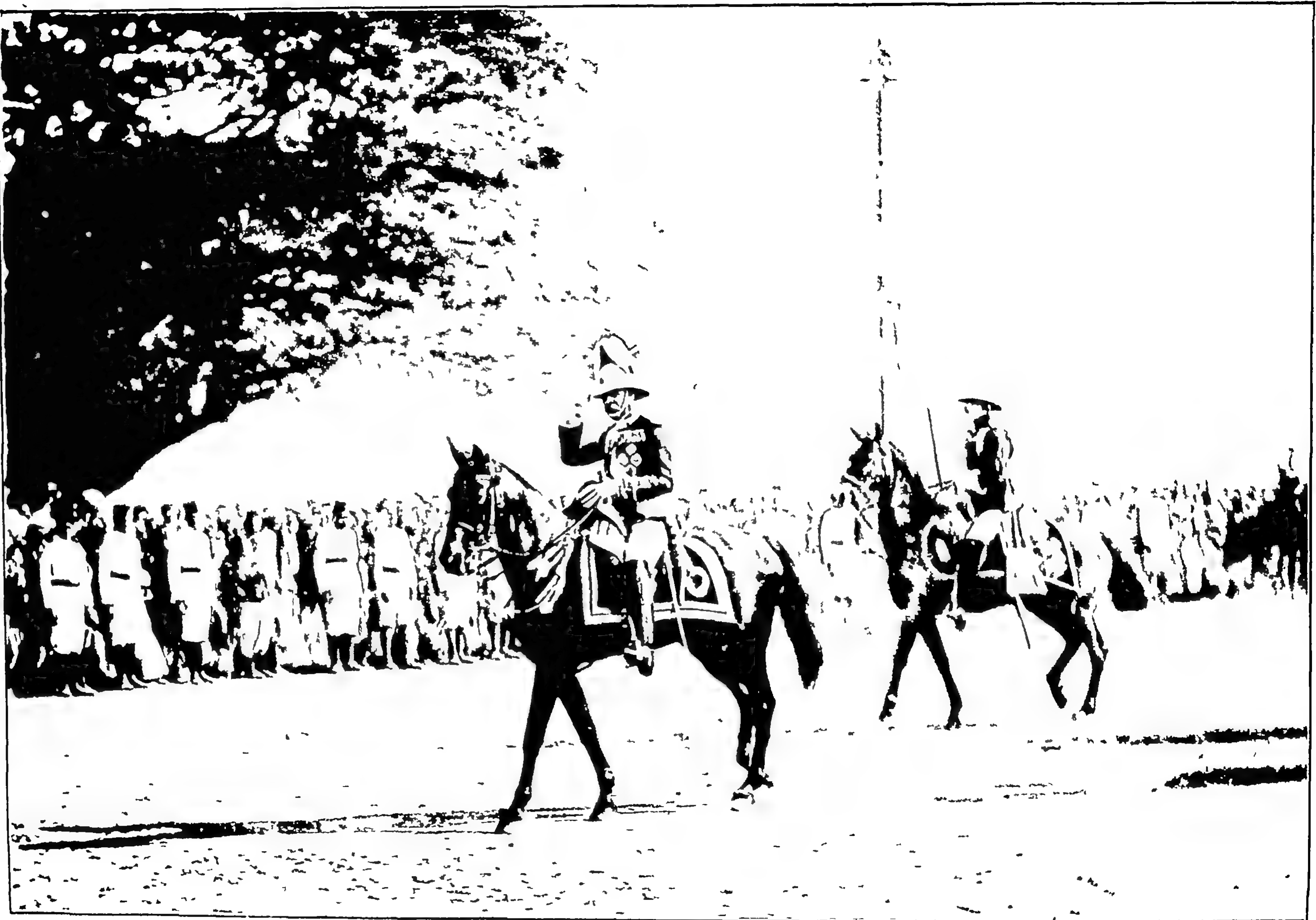
His Imperial Majesty and Staff passing under the Archway at the North end of the Red Road on the day of the Proclamation Parade

[illegible]

GROUP OF THEIR IMPERIAL MAJESTIES AND SUITE AT GOVERNMENT HOUSE, CALCUTTA



## THE PROCLAMATION PARADE



The arrival of His Majesty the King Emperor at the Proclamation Parade

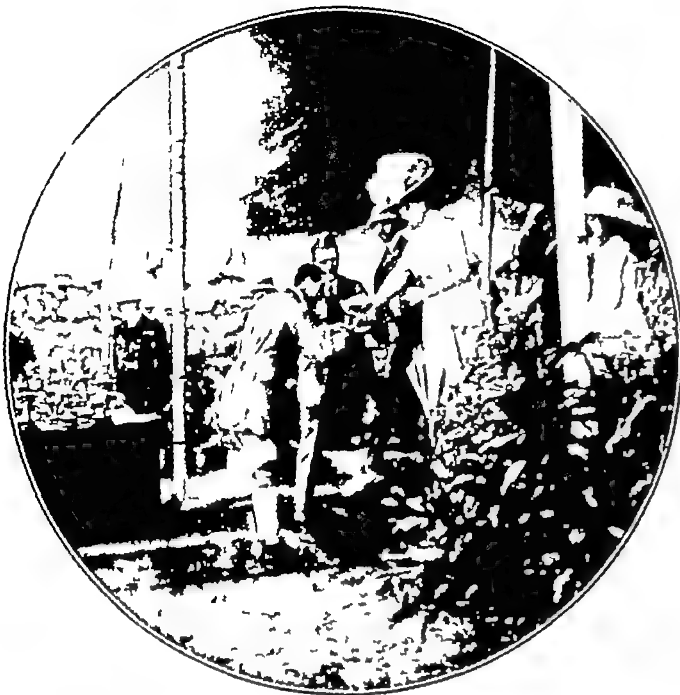
Photo by "Daily Mirror" [illegible]

# The Proclamation Parade.

[illegible]

[illegible]

# The Calcutta Horse Show and Races.



The Queen Empress presenting the prizes at the Horse Show held under the auspices of the Tollygunge Club
[*Photo by "Daily Mirror" London*]



The King Emperor in the Paddock on the King Emperor's Cup Day
[*Photo by P. Simp... Calcutta*]

A Cup was presented by H. I. M. The King Emperor to be run for during his stay in Calcutta and was won by Mr. Galstaun's Brogue ridden by Wootton



THE TURF CLUB STAND ON THE KING EMPEROR'S CUP DAY

Her Majesty the Queen is in the Royal Box in the centre of the picture and His Majesty the King is ascending the steps leading thereto

[*From a Photograph by P. ...mpson Calcutta*]

# The Historic Pageant at Calcutta



Their Imperial Majesties ...



... Members of the ...



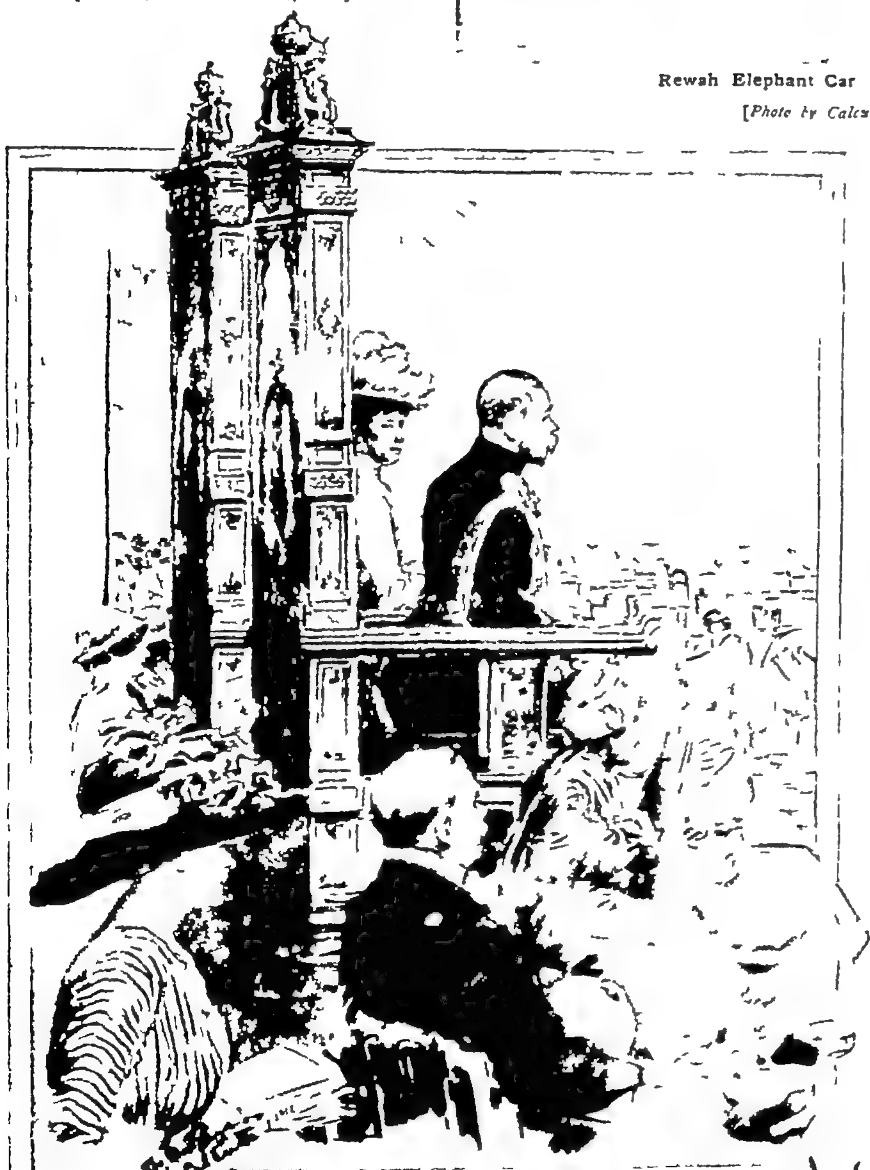
# The Historic Pageant at Calcutta.



Moorshedabad Bullock Raths
[Photo by Calcutta Phototype Co]



Rewah Elephant Car Dasahara Procession
[Photo by Calcutta Ph t typ Co





The Royal Programme printed on Ivory and mounted on Royal Purple Satin
[Ph b Harringt n and Flee ]

Their Majesties seated on the Thrones in the Royal Box of the Pandal
[Dra n by F Matania The Sphere" artis ]



Elephants in Dasahara Procession.



The Orissa Paiks or Yeomanry in their War Dance
[P t by Ca atta Ph ty e Co]

# The Historic Pageant at Calcutta.





The Two leading [illegible] from O[illegible]





[illegible]



[illegible]

# Fireworks and Illuminations at Calcutta.

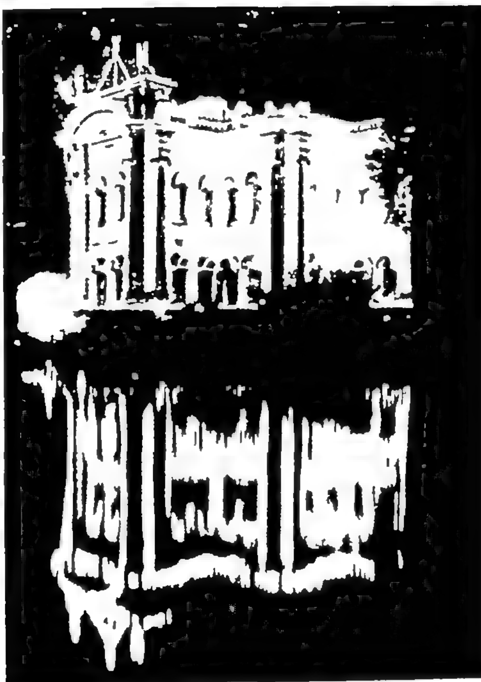








Dalhousie Square East



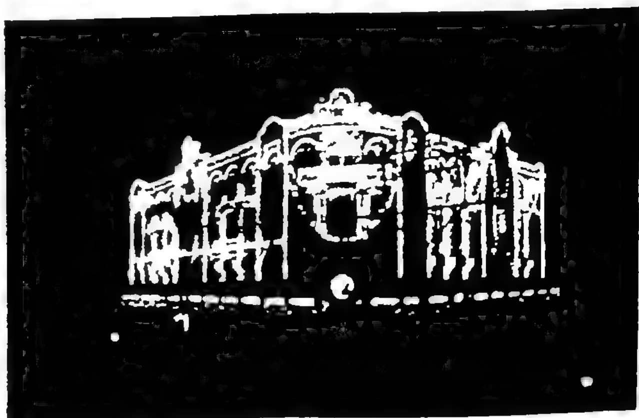
Bank of Bengal



Dalhousie Square East



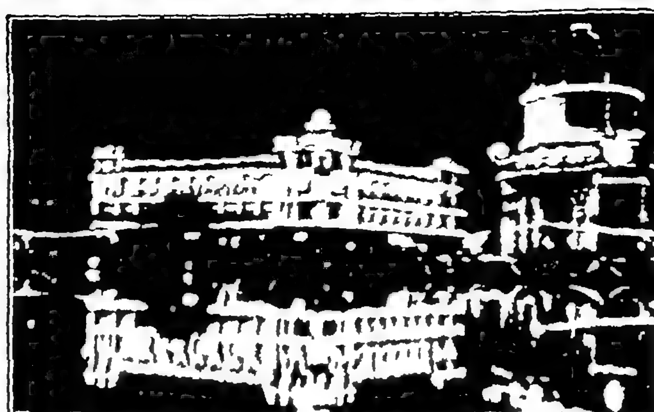
Esplanade Corner



Norton Buildings

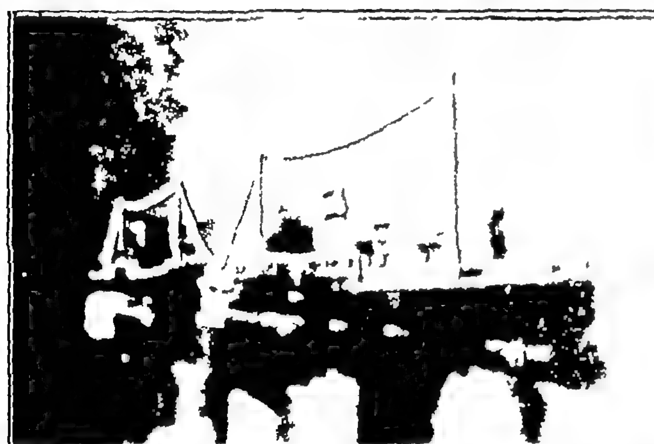
# The Calcutta Illuminations



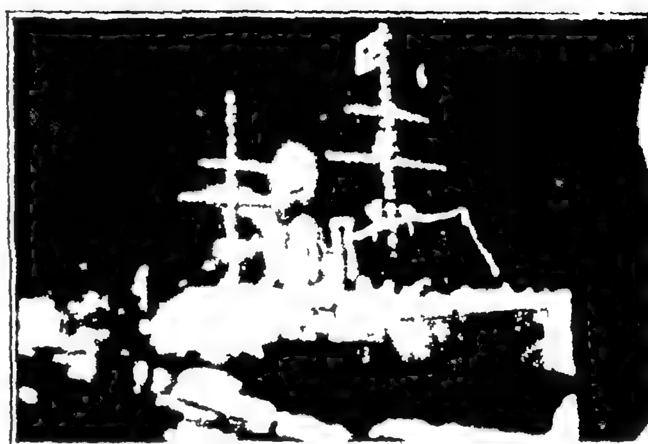




[illegible]

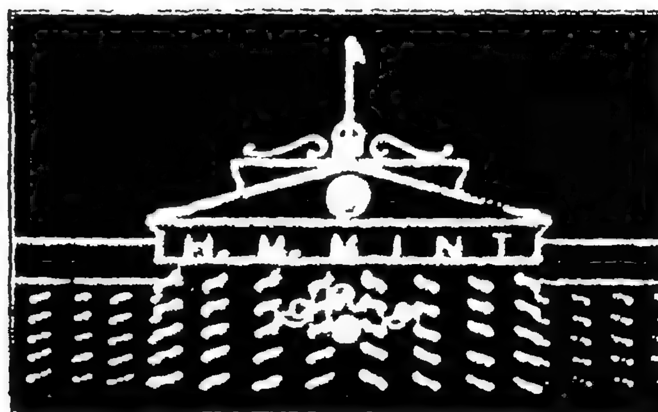


[illegible]



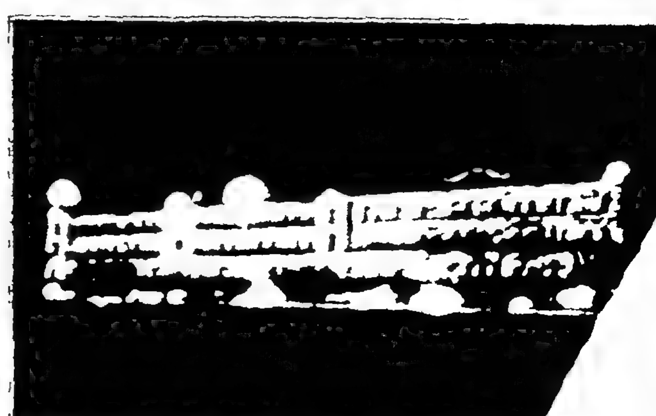


[illegible]



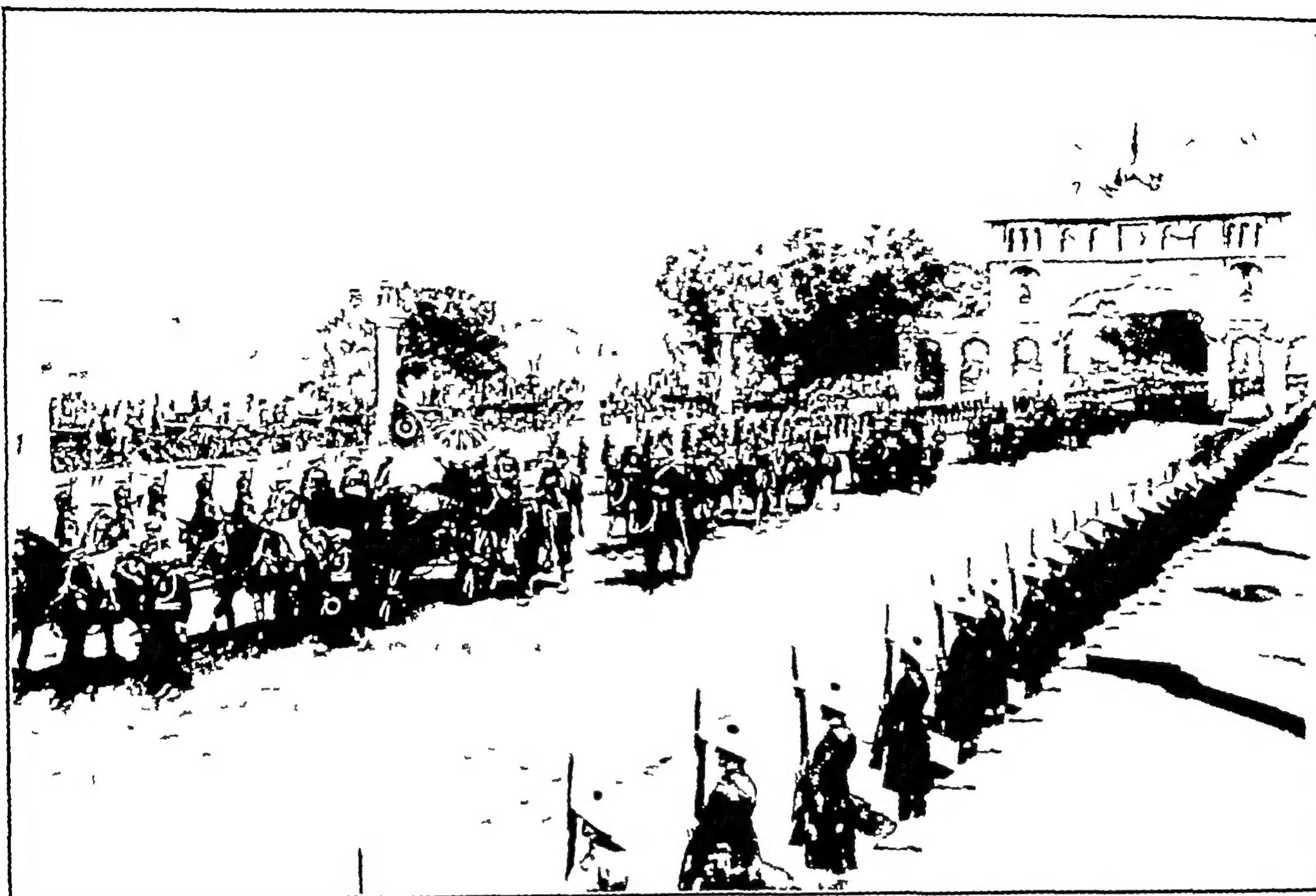



Old Court House Street

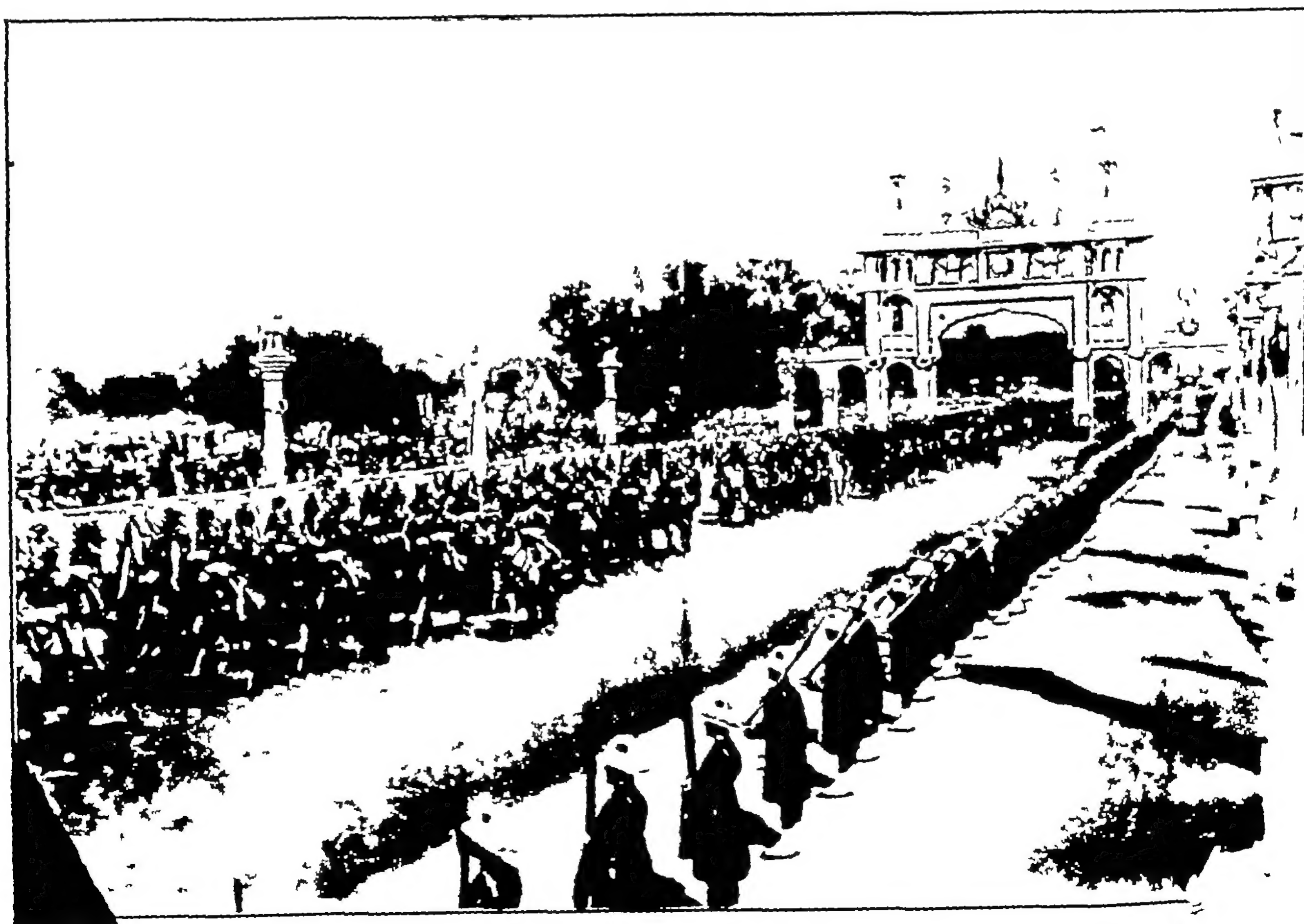


[illegible]

# Departure of Their Majesties from Calcutta.



Their Imperial Majesties passing the Red Road on their way to Prinsep's Ghat



The Viceroy's Body Guard on the Red Road [Harrington]